...साहित्यके अमूल्य ग्रन्थरत्न हैं। दोनों ही ऐसे
... पठन-पाठन एवं मननसे मनुष्य लोक-परलोक—दोनोंमें
...ायमें वर्ण, आश्रम, जाति, अवस्था आदिकी कोई बाधा नहीं
...तमसाच्छन्न समयमें तो इन दिव्य ग्रन्थोंके पाठ और प्रचारका
...ण जनताको इन मङ्गलमय ग्रन्थोंमें प्रतिपादित सिद्धान्तों एवं
सदुद्देश्यसे 'गीता-रामायण प्रचार-संघ'की स्थापना की गयी है।
... समय लगभग चालीस हजार हैं—श्रीगीताके छः प्रकारके,
...य उपासना-विभागके अन्तर्गत नित्य इष्टदेवके नामका जप, ध्यान
करनेवाले सदस्योंकी श्रेणीमें यथाक्रम रखा गया है। इन सभीको
के नियमित अध्ययन एवं उपासनाकी सत्प्रेरणा दी जाती है।
...क सज्जन परिचय पुस्तिका निःशुल्क मँगाकर पूरी जानकारी प्राप्त
...रामचरितमानसके प्रचार-यज्ञमें सम्मिलित होवें।

श्रीगीता-रामायण-प्रचार-संघ, गीताभवन, पत्रालय—स्वर्गाश्रम
...ढ़ी-गढ़वाल (उ०प्र०)

साधक-संघ

...सफलता आत्मविकासपर ही अवलम्बित है। आत्मविकासके
... निष्कपटता, भगवत्परायणता आदि दैवी गुणोंका संग्रह और
...दि आसुरी लक्षणोंका त्याग ही एकमात्र श्रेष्ठ उपाय है। मनुष्य
... पावन उद्देश्यसे लगभग ३० वर्ष पूर्व साधक-संघकी स्थापना की
... करनेके १२ और त्याग करनेके १६ नियम हैं। प्रत्येक सदस्यको
'आवेदन-पत्र' भेजा जाता है, जिन्हें सदस्य बननेके इच्छुक भाई
...। मनीआर्डर अग्रिम भेजकर मँगवा लेना चाहिये। साधक उस
...लनका विवरण लिखते हैं। सदस्यताका कोई शुल्क नहीं है। सभी
...सदस्य बनना चाहिये। विशेष जानकारीके लिये कृपया निःशुल्क
...धित सब प्रकारका पत्र-व्यवहार नीचे लिखे पतेपर करना चाहिये।
—'कल्याण' सम्पादकीय विभाग, पत्रालय—गीताप्रेस, जनप—

...गीता-रामायणकी परीक्षाएँ

...चरितमानस मङ्गलमय दिव्यतम जीवन ग्रन्थ हैं। इनमें मानव
...न मिल जाता है और जीवनमें अपूर्व सुख-शान्तिका अनुभव होता
...पूल्य ग्रन्थोंका [illegible] ...के अनुयायोंमें
...ता है। इस [illegible] ...धिक उजागर
...र और [illegible] ...या गया है। दोनों
[illegible] ...चार की प्रथाम)

'सूर्याङ्क'की विषय-सूची

चित्र-सूची

बहुरंगे चित्र

रेखा चित्र

भगवान् भुवन भास्कर

ॐ उदुत्य जातवेदस देव वहन्ति केतव । दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥

(यजु० अ० ७ म ४१)

ॐ पूर्णमद पूर्णमिद पूर्णात् पूर्णमुद यते । पूर्णस्य पूणमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

ध्येय. सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती नारायण. सरसिजासनसन्निविष्ट ।
केयूरवान् मकरकुण्डलवान किरीटी हारी हिरण्मयवपुर्धृतशङ्खचक्र. ॥

वर्ष ५३ } गोरखपुर, सौर माघ, श्रीकृष्ण-सवत् ५२०४, जनवरी १९७९ { सख्या १ पूर्ण सख्या ६२६

सवितृ प्रार्थना

ॐ विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद् भद्र तन्न आ सुव ॥
(ऋक्० ५ । ८२ । ५, शु० यजु० ३० । ३)

समस्त संसारको उत्पन्न करनेवाले—सृष्टि-पालन-संहार करनेवाले किंवा विश्वमें सर्वाधिक देदीप्यमान एव जगत्को शुभकर्मोमें प्रवृत्त करनेवाले हे परब्रह्मस्वरूप सविता देव ! आप हमारे सम्पूण आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक—दुरितों (बुराइयों—पापों)को हमसे दूर—बहुत दूर ले जायँ, दूर करें, किंतु जो भद्र (भला) है, कल्याण है, श्रेय है, मङ्गल है, उसे हमारे लिये—विश्वके हम सभी प्राणियोंके लिये—चारों ओरसे (भलीभाँति) ले आयें, दें—'यद् भद्रं तन्न आ सुव ।'

सूर्योपनिषद्

हरि ॐ ॥ अथ सूर्याथर्वाङ्गिरसं व्याख्यास्याम । ब्रह्मा ऋषि । गायत्री छन्द । आदित्यो देवता । हंस सोऽहमग्निनारायणयुक्त बीजम् । हृल्लेखा शक्ति । वियदादिसर्गसंयुक्त कीलकम् । चतुर्विधपुरुषार्थसिद्ध्यर्थे विनियोग । षट्स्वरारूढेन बीजेन षडङ्गं रक्ताम्बुजसंस्थितम् । सप्ताश्वरथिन हिरण्यवर्णं चतुर्भुजं पद्मद्वयाभयवरदहस्तं कालचक्रप्रणेतार श्रीसूर्यनारायणं य एवं वेद स वै ब्राह्मण । ॐ भूर्भुवःसुवः । ॐ तत्सवितुर्वरेण्य भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् । सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च । सूर्याद्वै खल्विमानि भूतानि जायन्ते । सूर्याद्यज्ञ पर्जन्योऽन्नमात्मा नमस्त आदित्य । त्वमेव प्रत्यक्षं कर्मकर्तासि । त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि । त्वमेव प्रत्यक्षं विष्णुरसि । त्वमेव प्रत्यक्षं रुद्रोऽसि । त्वमेव प्रत्यक्षमृगसि । त्वमेव प्रत्यक्षं यजुरसि । त्वमेव प्रत्यक्षं सामासि । त्वमेव प्रत्यक्षमथर्वासि । त्वमेव सर्वं छन्दोऽसि । आदित्याद्वायुर्जायते । आदित्याद्भूमिर्जायते । आदित्यादापो जायन्ते । आदित्याज्ज्योतिर्जायते । आदित्याद्व्योम दिशो जायन्ते । आदित्याद्देवा जायन्ते । आदित्याद्वेदा जायन्ते । आदित्यो वा एष एतन्मण्डल तपति । असावादित्यो ब्रह्म । आदित्योऽन्तःकरणमनोबुद्धिचित्ताहङ्कारा । आदित्यो वै व्यान समानोदानोऽपान प्राण । आदित्यो वै श्रोत्रत्वक्चक्षूरसनघ्राणा । आदित्यो वै वाक्पाणिपादपायूपस्थाः । आदित्यो वै शब्दस्पर्शरूपरसगन्धा । आदित्यो वै वचनादानागमनविसर्गानन्दा । आनन्दमयो ज्ञानमयो विज्ञानमय आदित्य । नमो मित्राय भानवे मृत्योर्मा पाहि । भ्राजिष्णवे विश्वहेतवे नम । सूर्याद् भवन्ति भूतानि सूर्येण पालितानि तु । सूर्ये लयं प्राप्नुवन्ति य सूर्यः सोऽहमेव च । चक्षुर्नो देव सविता चक्षुर्न उत पर्वत । चक्षुर्धाता दधातु न । आदित्याय विद्महे सहस्रकिरणाय धीमहि । तन्न सूर्यः प्रचोदयात् । सविता पश्चात्तात्सविता पुरस्तात्सवितोत्तरात्तात्सविताधरात्तात् । सविता नः सुवतु सर्वतातिं सविता नो रासतां दीर्घमायु । ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म । घृणिरिति द्वे अक्षरे । सूर्य इत्यक्षरद्वयम् । आदित्य इति त्रीण्यक्षराणि । एतस्यैव सूर्यस्याष्टाक्षरो मनु । यः सदाहरहर्जपति स वै ब्राह्मणो भवति । स वै ब्राह्मणो भवति । सूर्याभिमुखो जप्त्वा महाव्याधिभयात्प्रमुच्यते । अलक्ष्मीर्नश्यति । अभक्ष्यभक्षणात् पूतो भवति । अगम्यागमनात्पूतो भवति । पतितसम्भाषणात्पूतो भवति । असत्सम्भाषणात्पूतो भवति । मध्याह्ने सूर्याभिमुखः पठेत् । सद्योत्पन्न पञ्चमहापातकात्प्रमुच्यते । सैषा सावित्रीं विद्यां न किंचिदपि न कस्मैचित् प्रशंसयेत् । य एतां महाभाग प्रात पठति स भाग्यवाञ्जायते । पशून्विन्दति । वेदार्थं लभते । त्रिकालमेतज्जप्त्वा क्रतुशतफलमवाप्नोति । यो हस्तादित्ये जपति स महामृत्युं तरति स महामृत्युं तरति य एवं वेद ॥ ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥ (—इति सूर्योपनिषद् ।)

अथर्ववेदीय सूर्योपनिषद्का भावार्थ

आदित्यकी सर्वव्यापकता—सूर्यमन्त्रके जपका माहात्म्य

हरिः ॐ। अब सूर्यदेवतासम्बन्धी अथर्ववेदीय मन्त्रोंकी व्याख्या करेंगे। इस सूर्यदेवसम्बन्धी अथर्वाङ्गिरस-मन्त्रके ब्रह्मा ऋषि हैं। गायत्री छन्द है। आदित्य देवता हैं। 'हंस' 'सोऽहम्' अग्नि नारायणयुक्त बीज है। हृल्लेखा शक्ति है। वियत् आदि सृष्टिसे संयुक्त कीलक है। चारों प्रकारके पुरुषार्थोंकी सिद्धिमें इस मन्त्रका विनियोग किया जाता है। छः स्वरोंपर आरूढ़ बीजके साथ, छः अङ्गोंवाले, लाल कमलपर स्थित, सात घोड़ोंवाले रथपर सवार, हिरण्यवर्ण, चतुर्भुज तथा चारों हाथोंमें क्रमशः दो कमल तथा वर और अभयमुद्रा धारण किये, कालचक्रके प्रणेता श्रीसूर्यनारायणको जो इस प्रकार जानता है, निश्चयपूर्वक वही ब्राह्मण (ब्रह्मवेत्ता) है। जो प्रणवके अर्थभूत सच्चिदानन्दमय तथा भूः, भुवः और स्वः स्वरूपसे त्रिभुवनमय एवं सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि करनेवाले हैं, उन भगवान् सूर्यदेवके सर्वश्रेष्ठ तेजका हम ध्यान करते हैं, जो हमारी बुद्धियोंको प्रेरणा देते रहते हैं। भगवान् सूर्यनारायण सम्पूर्ण जङ्गम तथा स्थावर-जगत्के आत्मा हैं, निश्चयपूर्वक सूर्यनारायणसे ही ये भूत उत्पन्न होते हैं। सूर्यसे यज्ञ, मेघ, अन्न (बल-वीर्य) और आत्मा (चेतना) का आविर्भाव होता है। आदित्य! आपको हमारा नमस्कार है। आप ही प्रत्यक्ष कर्मकर्ता हैं, आप ही प्रत्यक्ष ब्रह्म हैं। आप ही प्रत्यक्ष विष्णु हैं, आप ही प्रत्यक्ष रुद्र हैं। आप ही प्रत्यक्ष ऋग्वेद हैं। आप ही प्रत्यक्ष यजुर्वेद हैं। आप ही प्रत्यक्ष सामवेद हैं। आप ही प्रत्यक्ष अथर्ववेद हैं। आप ही समस्त छन्द स्वरूप हैं।

आदित्यसे वायु उत्पन्न होती है। आदित्यसे भूमि उत्पन्न होती है, आदित्यसे जल उत्पन्न होता है। आदित्यसे ज्योति (अग्नि) उत्पन्न होती है। आदित्यसे आकाश और दिशाएँ उत्पन्न होती हैं। आदित्यसे देवता उत्पन्न होते हैं। आदित्यसे वेद उत्पन्न होते हैं। निश्चय ही ये आदित्यदेवता इस ब्रह्माण्ड-मण्डलको तपाते (गर्मी देते) हैं। वे आदित्य ब्रह्म हैं। आदित्य ही अन्तःकरण अर्थात् मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्काररूप हैं। आदित्य ही प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान—इन पाँचों प्राणोंके रूपमें विराजते हैं। आदित्य ही श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, रसना और घ्राण—इन पाँच इन्द्रियोंके रूपमें कार्य कर रहे हैं। आदित्य ही वाक्, पाणि, पाद, पायु और उपस्थ—ये पाँचों कर्मेन्द्रिय हैं। आदित्य ही शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये ज्ञानेन्द्रियोंके पाँच विषय हैं। आदित्य ही वचन, आदान, गमन, मल-त्याग और आनन्द—ये कर्मेन्द्रियोंके पाँच विषय बन रहे हैं। आनन्दमय, ज्ञानमय और विज्ञानमय आदित्य ही हैं। मित्रदेवता तथा सूर्यदेवको नमस्कार है। प्रभो! आप मृत्युसे मेरी रक्षा करें। दीप्तिमान् तथा विश्वके कारणरूप सूर्यनारायणको नमस्कार है। सूर्यसे सम्पूर्ण चराचर जीव उत्पन्न होते हैं, सूर्यके द्वारा ही उनका पालन होता है और फिर सूर्यमें ही वे लयको प्राप्त होते हैं। जो सूर्यनारायण हैं, वह मैं ही हूँ। सविता देवता हमारे नेत्र हैं तथा पर्वके द्वारा पुण्यकालका आख्यान करनेके कारण जो पर्वतनामसे प्रसिद्ध हैं, वे सूर्य ही हमारे चक्षु हैं। सबको धारण करनेवाले धाता नामसे प्रसिद्ध वे आदित्यदेव हमारे नेत्रोंको दृष्टिशक्ति प्रदान करें।

(श्रीसूर्यगायत्री—) 'हम भगवान् आदित्यको जानते हैं—पूजते हैं, हम सहस्र (अनन्त) किरणोंसे मण्डित भगवान् सूर्यनारायणका ध्यान करते हैं, वे सूर्यदेव हमें प्रेरणा प्रदान करें।' ('आदित्याय विद्महे सहस्रकिरणाय धीमहि। तन्नः सूर्यः प्रचोदयात्।') पीछे सविता देवता हैं, आगे सवितादेवता हैं, बायें सविता देवता हैं और दक्षिण भागमें भी (तथा ऊपर-नीचे भी) सविता देवता हैं। सवितादेवता हमारे लिये सब कुछ प्रसव (उत्पन्न) करें (सभी अभीष्ट वस्तुएँ दें) सवितादेवता हमें दीर्घ आयु प्रदान करें। 'ॐ' यह एकाक्षर मन्त्र ब्रह्म है। 'घृणिः' यह दो अक्षरोंका मन्त्र है, 'सूर्यः' यह दो अक्षरोंका मन्त्र है। 'आदित्य' इस मन्त्रमें तीन अक्षर हैं। इन सबको मिलाकर सूर्यनारायणका अष्टाक्षर महामन्त्र—'ॐ घृणिः सूर्य आदित्योम्' बनता है। यही अथर्वाङ्गिरस सूर्यमन्त्र है। इस मन्त्रका जो प्रतिदिन जप करता है

(ब्रह्मवेत्ता) होता है, यही भाव

सूर्यनारायणकी ओर मुख करके जपनेसे महाव्याधिके भयसे मुक्त हो जाता है। उसका दारिद्र्य नष्ट हो जाता है। सारे दोषों—पापोंसे वह मुक्त हो जाता है। मध्याह्नमें सूर्यकी ओर मुख करके इसका जप करे। यों करनेसे मनुष्य सद्य उत्पन्न पाँच महापातकोंसे छूट जाता है। यह सावित्रीविद्या है, इसकी किसी अपात्रसे कुछ भी प्रशंसा (परिचर्चा) न करे। जो महाभाग इसका त्रिकाल—प्रात, मध्याह्न और सायंकाल पाठ करता है, वह भाग्यवान् हो जाता है, उसे गौ आदि पशुओंका लाभ होता है। वह वेदके अभिप्रायका ज्ञाता होता है। इसका जप करनेसे सैकड़ों यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। जो सूर्यदेवताके हस्त नक्षत्रपर रहते समय (अर्थात् आश्विन मासमें) इसका जप करता है, वह महामृत्युसे तर जाता है, जो इस प्रकारसे जानता है, वह भी महामृत्युसे तर जाता है।

अथर्ववेदीय सूर्योपनिषद् समाप्त।

श्रीसूर्यस्य प्रातःस्मरणम्

प्रात स्मरामि खलु तत्सवितुर्वरेण्य
रूप हि मण्डलमृचोऽथ तनुर्यजूंषि।
सामानि यस्य किरणा प्रभवादिहेतु
ब्रह्माहरात्मकमलक्ष्यमचिन्त्यरूपम् ॥ १ ॥
प्रातर्नमामि तरणिं तनुवाङ्मनोभि
र्ब्रह्मेन्द्रपूर्वकसुरैर्नतमर्चित च।
वृष्टिप्रमोचनविनिग्रहहेतुभूत
त्रैलोक्यपालनपर त्रिगुणात्मक च ॥ २ ॥
प्रातर्भजामि सवितारमनन्तशक्ति
पापौघशत्रुभयरोगहर पर च।
त सर्वलोककलनात्मककालमूर्ति
गोकण्ठबन्धनविमोचनमादिदेवम् ॥ ३ ॥
श्लोकत्रयमिद भानो प्रातःकाले पठेत्तु य।
स सर्वव्याधिनिर्मुक्त पर सुखमवाप्नुयात् ॥ ४ ॥

मैं उन सूर्यभगवान्के श्रेष्ठ रूपका प्रातःसमय स्मरण करता हूँ, जिनका मण्डल ऋग्वेद, तनु यजुर्वेद और किरणें सामवेद हैं तथा जो ब्रह्मा और शङ्करके रूप हैं। जो जगत्की उत्पत्ति, रक्षा और नाशके कारण हैं, अलक्ष्य और अचिन्त्यस्वरूप हैं ॥ १ ॥ मैं प्रातःकाल शरीर, वाणी और मनके द्वारा ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवताओंसे स्तुत और पूजित, वृष्टिके कारण एवं अवृष्टिके हेतु, तीनों लोकोंके पालनमें तत्पर और सत्त्व आदि त्रिगुणरूप धारण करनेवाले तरणि (सूर्यभगवान्) को नमस्कार करता हूँ ॥ २ ॥ जो पापोंके समूह तथा शत्रुजनित भय एवं रोगोंका नाश करनेवाले हैं, सबसे उत्कृष्ट हैं, सम्पूर्ण लोकोंके समयकी गणनाके निमित्तभूत कालस्वरूप हैं और गौओंके कष्टबन्धन छुड़ानेवाले हैं, उन अनन्तशक्तिसम्पन्न आदिदेव सविता (सूर्यभगवान्) को मैं प्रातःकाल भजता हूँ ॥ ३ ॥ जो मनुष्य प्रातःकाल सूर्यके स्मरणरूप इन तीनों श्लोकोंका पाठ करेगा, वह सब रोगोंसे मुक्त होकर परम सुख प्राप्त कर लेगा ॥ ४ ॥

अनादि वेदोंमें भगवान् सूर्यकी महिमा

(अनन्तश्रीविभूषित दक्षिणाम्नाय शृङ्गेरी शारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीअभिनवविद्यातीर्थजी महाराजका शुभाशीर्वाद)

जीवात्मा परमात्माका अंश है। सांसारिक दुःख द्वन्द्वोंसे छुटकारा जीवको भी मिल सकता है, जब वह अपना वास्तविक स्वरूप जानकर भगवत्स्वरूप ब्रह्म बननेका प्रयत्न करे। अपना वास्तविक स्वरूप ठीक तरहसे जाननेका एकमात्र उपाय भगवान्‌की कृपाको पा लेना है। गीता (७। १४)में भगवान्‌ने कहा है—

मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥

'जो मेरी शरणमें आते हैं, वे मायासे पार पा जाते हैं—तर जाते हैं।'

यह कृपा हमको तभी मिलेगी, जब हम बाह्य संसारसे उपरत होकर उस परमात्मस्वरूपकी निष्ठासे उपासना करेंगे। उपासनासे ज्ञान और ज्ञानसे परमपद मिलता है। यदि लौकिक श्रेष्ठ कामनाको लेकर हम उपासना करें तो भगवत्सम्पर्कसे उसकी सिद्धि होनेके पश्चात् भगवत्प्राप्ति भी हो जाती है। इस प्रकारकी उपासना अभ्युदय और निःश्रेयस दोनोंका साधन बनती है। उपासनाएँ अनेक प्रकारकी हैं। हम शालग्रामशिलामें विष्णुबुद्धि करके उसकी जो पूजा करते हैं, वह भी उपासना है। शास्त्रोंमें इस प्रकार अनेकानेक वस्तुओंको प्रतीक बनाकर उसमें परमात्म-भावना करनेका विधान है। अन्य देवताकी स्वतन्त्र उपासना श्रेष्ठ नहीं है। भगवद्भावनासे किसी भी देवकी उपासना ही श्रेष्ठ है। जो अन्य देवोंकी स्वतन्त्र उपासना करते हैं, वे बुद्धिमान् नहीं हैं—

अथ योऽन्यदेवतामुपासते पशुरेव स देवानाम्।
(—बृहदारण्यक०)

भगवद्भावनाओंसे की जानेवाली उपासनाओंमें श्रीसूर्यमण्डलमें परमात्माकी भावना करना भी एक और बड़ा ही महत्त्वका विषय है। अनादिकालसे ऋषि-महर्षियोंने इस प्रकार उपासनाकर, अपने जीवनको धन्य बनाया और हमें मार्ग-दर्शन कराया है। उनके बताये मार्गपर चलनेवाले हम आस्तिक लोग प्रतिदिन तीनों संध्याओंमें भगवान् सूर्यकी उपासना करते हैं। मध्याह्नमें की जानेवाली उपासनामें यह मन्त्र पढ़ते हैं—

य उदगान्महतोऽर्णवाद्
विभ्राजमानः सलिलस्य मध्यात्।
स मा वृषभो लोहिताक्षः
सूर्यो विपश्चिन्मनसा पुनातु ॥
(—तैत्तिरीयसंहिता)

'सारे भूखण्डलपर व्याप्त हुए महासमुद्रके जलके बीचसे ऊपर उठकर सुशोभित हुए, वे रक्तनेत्र, अरुण-किरण, समस्त मानव-कृत कर्मोंके फलाभिवर्षक, सकलकर्मसाक्षीभूत सर्वज्ञ श्रीसूर्यदेव कृपापूर्वक मुझे अपने मनसे पवित्र करें।'

वैदिक-संस्कृतिमें पले हुए हम भारतीय हिंदू संध्याकी बड़ी महत्ता मानते हैं। संध्या उषःकाल और सायंकाल—दो समय तो अवश्य ही करनी चाहिये। मध्याह्नमें माध्याह्निक संध्या भी करना आवश्यक है। उन उपासनाओंमें भगवान् सूर्य ही उपास्य होते हैं। हम उन भगवान् सूर्यको अर्घ्य देते हैं। जिस गायत्रीमन्त्रसे भगवान्‌का चिन्तन करते हैं, उसका अर्थ शास्त्रोंमें सूर्यपरक भी बताया गया है—

यो देवः सवितास्माकं धियो धर्मादिगोचराः।
प्रेरयेत् तस्य यद् भर्गः तद्वरेण्यमुपास्महे ॥
(—याज्ञवल्क्य)

हमारे कर्मोंका फल देनेवाले सविता हैं। वे ही धर्मादि-विषयक हमारी बुद्धि-वृत्तियोंके प्रेरक हैं। हम उन परमात्मा सविताकी श्रेष्ठ ज्योतिकी उपासना करते हैं। गायत्रीमन्त्रका इस प्रकार सूर्यमें गया है। प्रातः और

भगवान् श्रीसूर्यका ही होता है। सन्ध्या किये बिना किसी भी मनुष्यका कोई भी वैदिक धर्म-कार्य सफल नहीं होता। इससे हम जान सकते हैं कि वैदिक विधानोंमें सूर्यकी कितनी महत्ता है। सन्ध्या-अनुष्ठानमें सूर्य-मण्डलमें भगवान् नारायणका ध्यान करनेका विधान है—

ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती
नारायणः सरसिजासनसंनिविष्टः।
केयूरवान् मकरकुण्डलवान् किरीटी
हारी हिरण्मयवपुर्धृतशङ्खचक्रः॥
(—बृहत्पाराशरस्मृति)

'भगवान् नारायण तपे हुए स्वर्ण-जैसे कान्तिमान् शरीरधारण किये हुए हैं। उनके गलेमें हार एवं सिरपर किरीट विराजमान हैं। उनके कान मकर-कुण्डलसे सुशोभित हैं। वे कंगनसे अलङ्कृत अपने दोनों हाथोंमें भक्तभयनिवारणके लिये शङ्ख-चक्र धारण किये हुए हैं। वे सूर्यमण्डलमें कमलासनपर बैठे हैं।' इसी प्रकार गायत्रीका जप करते समय भी सूर्यमण्डलमें भगवान्का चिन्तन करना चाहिये।

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी रावणके साथ युद्ध करते समय श्रान्त होकर चिन्तित होते हैं कि कैसे युद्धमें विजय पा सकेंगे। तब महर्षि अगस्त्य आकर रामजीको आदित्यहृदयका उपदेश देते हैं और उसका फल भी बतलाते हैं—

एनमापत्सु कृच्छ्रेषु कान्तारेषु भयेषु च।
कीर्तयन् पुरुषः कश्चिन् नावसीदति राघव॥
(—वाल्मीकि० ६। १०५। २५)

'राघव! विपत्तिमें फँसा हुआ, घने जंगलोंमें भटकता हुआ और भयोंसे किंकर्तव्यविमूढ़ व्यक्ति इस आदित्य हृदयका जप करके सारे दुःखोंसे पार पा जाता है।' वाल्मीकिरामायणकी इस कथासे भगवान् आदित्यका महत्त्व जान सकते हैं।

योगशास्त्रमें भगवान् पतञ्जलि कहते हैं कि 'भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात्'—'सूर्यमें संयमन करनेसे सारे संसारका स्पष्ट ज्ञान हो जाता है।' चित्तका संयम करनेसे मिलने-वाली सिद्धियोंके निरूपणके अवसरपर यह बात कही गयी है। धर्मशास्त्र कहता है कि सामान्य समयमें भी यदि कोई अशुचित्व प्राप्त हो तो सूर्यको देखो, तुम पवित्र हो जाओगे (स्मृतिरत्नाकर)। बीमारियोंसे पीड़ित हो तो सूर्यकी उपासना करो—'आरोग्यं भास्करादिच्छेत्।'

इस प्रकार भगवान् सूर्य हमारे अभ्युदय और निःश्रेयस दोनोंके कारण हैं। वे हमारी उपासनाके मूल बिन्दु हैं। इसी प्रकार मन्त्रशास्त्रोंमें भी उनके अनेक मन्त्र प्रतिपादित हैं, जिनके अनुष्ठानसे आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक—सभी प्रकारकी पीड़ाओंसे मुक्ति पाकर हम सुखी और कृतार्थ बन सकते हैं।

जयति सूर्यनारायण, जय जय

(रचयिता—नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

आदिदेव, आदित्य, दिवाकर, विभु, तमिस्रहर।
तपन, भानु, भास्कर, ज्योतिर्मय, विष्णु, विभाकर॥
शङ्ख-चक्रधर, रत्नहार-केयूर मुकुटधर।
लोकचक्षु, लोकेश, दुःख-दारिद्र्य-कष्टहर॥
सविता देव अनादि, सृष्टि-जीवन-पालनकर।
पाप-तापहर, मङ्गलकर, मङ्गल-विग्रह-वर॥
महातेज, मार्तण्ड, मनोहर, महारोगहर।
जयति सूर्य नारायण, जय जय सर्व सुखाकर॥
(—पदरत्नाकर ८८५)

प्रत्यक्ष देव भगवान् सूर्यनारायण

(अनन्तश्रीविभूषित पश्चिमाम्नाय श्रीद्वारकाशारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीअभिनवसच्चिदानन्दतीर्थजी महाराजका मङ्गलाशंसन)

भगवान् सूर्य प्रत्यक्ष देवता हैं। तत्त्वत तो वे पर ब्रह्म हैं। वे स्थावर-जङ्गमात्मक समस्त विश्वकी आत्मा हैं। सूर्योपनिषद् (१ । ४) के अनुसार सूर्यसे ही सम्पूर्ण प्राणियोंकी उत्पत्ति होती है, पालन होता है एव उन्हींमें विलय होता है। उनके उपासक साधकको स्वय भी सूर्यमें ब्रह्मात्मभावना करनेका निर्देश दिया गया है—'यः सूर्योऽहमव च।' भगवान् आद्यशंकराचार्यद्वारा प्रवर्तित पञ्चायतनोपासनामें वे अन्यतम उपास्य हैं। उनकी उपासनाका विधान वेदोंमें तो है ही उनके अतिरिक्त सूर्योपनिषद्, चाक्षुषोपनिषद्, अक्ष्युपनिषदादि उपनिषदें स्वतन्त्र रूपसे सूर्योपासनाका ही विधान करती हैं।

सूर्य समस्त नेत्र-रोगको (तथा अन्य सभी रोगोंको) दूर करनेवाले देवता हैं—'न तस्याक्षिरोगो भवति' (अक्ष्युपनिषद्)। 'आरोग्य भास्करादिच्छेत्' आदि पुराण-वचन इस विषयमें परम प्रसिद्ध हैं।

भगवान् सूर्य सबका श्रेय करें। 'कल्याण' का 'सूर्याङ्क' 'कल्याण'के पाठकों तथा विश्वका कल्याण करे'—इस आशीर्वाद एव शुभाशसाके साथ हम सबके प्रति अपना मङ्गलाशसन प्रेषित करते हैं। 'शिवमस्तु सर्वजगताम्।'

सूर्य-तत्त्व

(—अनन्तश्रीविभूषित ऊर्ध्वाम्नाय श्रीकाशीसुमेरुपीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीशंकरानन्द सरस्वतीजी महाराज)

भारतीय संस्कृत-वाङ्मयकी सनातन-परम्परामें भगवान् भास्करका स्थान अप्रतिम है। समस्त वेद, स्मृति, पुराण, रामायण, महाभारतादि ग्रन्थ भगवान् सूर्यकी महिमासे परिप्लुत हैं। विजय एव स्वास्थ्यलाभार्थ और कुष्ठादि रोग-निवारणार्थ विविध अनुष्ठानों तथा स्तोत्रोंका वर्णन उक्त ग्रन्थोंमें विविध प्रकारसे प्रचुर मात्रामें पाया जाता है। वास्तवमें भारतीय सनातन धर्म भगवान् सविताकी महिमा एव प्रकाशसे अनुप्राणित तथा आलोकित है। सूर्य-महिमा अद्वितीय है।

वेद ही हमारे धर्मके मूल हैं। शास्त्रानुसार वेदाध्ययन उपनीतके लिये ही विहित है। उपनयन-संस्कारका मुख्य उद्देश्य सावित्री-उपदेश है—'सावित्र्या ब्राह्मणमुपनयीत।' 'तत्सवितुर्वरेण्यम' के आधारपर गायत्रीमन्त्रमें सविता देव ही ध्येय हैं। सवितादेवके वरेण्य तेजके ध्यानादिक कथनसे स्पष्ट है कि इस मन्त्रमें सविता देवकी प्रार्थना है।

सविता कौन ?—गायत्रीमन्त्रके सविता देवता कौन हैं ? सविता शब्द सूर्यका पर्यायवाचक है। 'भानुर्हंसः सहस्रांशुस्तपनः सविता रविः' (अमर० १ । ३ । २८)—इसके आधारपर भानु, हंस, सहस्रांशु, तपन, सविता, रवि—ये सब सूर्यके अनेक नाम हैं, अत सविता सूर्य हैं, सूर्यमण्डलान्तर्गत सूर्याभिमानी देवविशेष हैं, चेतन हैं। हम अपने शास्त्रोंका अध्ययन कर यह कह सकते हैं कि जैसे जल आदिके अधिष्ठातृ देवता चेतन होते हैं, उसी प्रकार प्रत्यक्ष सूर्यमण्डल भले ही जड़ प्रतीत हो, परंतु उनके अभिमानी देवता चेतन हैं—'योऽसावादित्ये पुरुष सोऽसावहम्' (यजु० वा० सं० ४० । १७) यह मन्त्र भी आदित्यमण्डलस्थ पुरुषको चेतन प्रमाणित करता है।

हमारे शास्त्रोंमें अध्यात्मादि भेदसे त्रिविध अर्थकी तर्क तथा प्रमाणसम्मत व्यवस्था है, अतः अध्यात्म-सूर्य वह है, जो सब ज्योतियोंकी ज्योति और ज्योतिष्मती योग-प्रवृत्तिका कारणरूप शुद्ध प्रकाश है।

जिस प्रकाशराशि सूर्यमण्डलका हम प्रतिदिन दर्शन करते हैं, वह अधिभूत सूर्य हैं। इस सूर्यमण्डलमें परिव्याप्त चेतनदेव अधिदैव शक्ति ही आधिदैविक सूर्य हैं। तात्पर्य यह है कि सूर्य या सविता चेतन हैं।

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये॥
(—ईशोपनिषद् १५)

इस मन्त्रमें कार्य-कारणात्मक आदित्यमण्डलस्थ पुरुषकी प्रार्थना करते हुए सत्यधर्मा अधिकारी कहता है—'हे पूषन्! आदित्यमण्डलस्थ सत्यस्वरूप ब्रह्मका मुख हिरण्मय पात्रसे ढका हुआ है। मुझ सत्यधर्माको आत्माकी उपलब्धिके लिये आप उसे हटा दीजिये।' भगवान् शंकराचार्य लिखते हैं—

सत्यस्यैवादित्यमण्डलस्थस्य ब्रह्मणोऽपिहितं माच्छादितं मुखं द्वारम्। तत्त्वं हे पूषन् अपावृणु—अपसारय (—शांकरभाष्य)॥

'हे पूषन्! मुझ सत्योपासकको आदित्यमण्डलस्थ सत्यरूप ब्रह्मकी उपलब्धिके लिये आच्छादक तेजको हटा दें।'

पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन् समूह तेजो यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि॥ (—ईशो० १६)

जगत्के पोषक, एकाकी गमनशील, सबके नियन्ता, रश्मियोंके स्रोत, रसोंके ग्रहण करनेवाले हे सूर्य! हे प्रजापतिपुत्र! आप अपनी किरणों-(उष्ण)-को हटायें—दूर कीजिये और अपनी तापक ज्योतिको शान्त कीजिये। आपका जो अत्यन्त कल्याणमय रूप है, उसे (आपकी कृपासे) मैं देखता हूँ (देख सकूँ)। मैं भृत्यकी भाँति याचना नहीं करता, अपितु आदित्यमण्डलस्थ जो पुरुष है या प्राणबुद्ध्यात्मरूपसे जिसने समस्त जगत्को पूर्ण कर दिया है, किंवा जो शरीररूप पुरमें शयनके कारण पुरुष कहलाता है, वह मैं ही हूँ।

भगवान् शंकराचार्य वेदान्तसूत्रके देवताधिकरण (१।३।३३)में 'देवताओंका शरीर नहीं होता इत्यादि'—मीमांसक मतका खण्डन करते हुए लिखते हैं—

'ज्योतिरादिविषया अपि आदित्यादयो देवतावचनाः शब्दाः, चेतनावन्तमैश्वर्याद्युपेतं तं तं देवतात्मानं समर्पयन्ति, मन्त्रार्थवादेषु तथा व्यवहारात्। अस्ति ह्यैश्वर्ययोगाद् देवतानां ज्योतिराद्यात्मभिश्चावस्थातुं यथेष्टं च तं तं विग्रहं ग्रहीतुं सामर्थ्यम्। तथा हि श्रूयते सुब्रह्मण्यार्थवादे मेधातिथिम्' इन्द्रो मेषो भूत्वा जहार। स्मर्यते च आदित्य पुरुषो भूत्वा कुन्तीमुपजगाम ह 'इति ज्योतिरादेस्तु भूतधातोरादित्यादिष्वप्यचेतनत्वमभ्युपगम्यते, चेतनास्त्वधिष्ठातारो देवतात्मानो मन्त्रार्थवादादिषु व्यवहारादित्युक्तम्।

तात्पर्य यह कि आदित्यमें ज्योतिर्मण्डलरूप भूतांश अचेतन है, किंतु देवतात्मा अधिपति चेतन ही है। जैसे हमलोगोंका शरीर वस्तुतः अचेतन है, परंतु प्रत्येक जीवित शरीरका एक अधिपति जीवात्मा चेतन होता है, उसी प्रकार देवशरीरोंका अधिपति स्वामी या अधिष्ठाता रहता है। जैसे जीवका शरीर उसके अधीन है, वैसे ही भगवान् सूर्यके अधीन उनका सूर्यरूपी तेजोमण्डल देह है।

इसपर बहुत पहलेकी पढ़ी एक कहानी याद आती है, जो तथ्यपर आधारित है। मिस्टर जार्ज नामक एक अमेरिकन विज्ञानके प्रोफेसर थे। वे एक बार मध्याह्नके समयमें पाँच मिनटतक खुले शरीरसे धूपमें खड़े रहे, पश्चात् अपने कमरेमें आकर थर्मामीटरसे अपना तापमान देखा तो तीन डिग्री ज्वर था। दूसरे दिन जार्ज महाशयने पुष्प और फल लेकर सूर्यको धूप दिखाकर सूर्यको प्रणाम किया।

ोर वैसे ही नगे बदन मध्याह्नमें लगभग ११ मिनट धूपमें रहे, पश्चात् कमरेमें आकर थरमामीटरसे तापमान देखा तो वह नार्मल (सामान्य) था। इससे उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि वैज्ञानिकोंका सूर्य केवल अग्निका गोला है, जड़ है—यह सिद्धान्त ठीक नहीं, अपितु सूर्य चेतन हैं, देव हैं। उनमें प्रसन्नता है, अप्रसन्नता है। अतः हमारे यहाँ सूर्यदेव ही सन्ध्यादिकर्मोंमें उपास्य तथा पूज्य हैं।

आदित्यहृदयस्तोत्रके द्वारा भगवान् रामने सूर्यनारायणकी स्तुति की थी। श्रीहनुमान्‌जीने भगवान् सूर्यके सांनिध्यमें अध्ययन किया था, ऐसे अनेक उपाख्यान सूर्यकी चेतनतामें ज्वलन्त उदाहरण हैं। भविष्यपुराणके आदित्यहृदयमें—'यन्मण्डलं सर्वगतस्य विष्णोरात्मा परं धाम विशुद्धतत्त्वम्।'—इस श्लोकमें सूर्यको विष्णु भगवान्‌का स्वरूप (आत्मा) कहा गया है। यही क्यों, वेद भी सूर्यको चराचरात्मक जगत्‌की आत्मा कहते हैं—'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च', 'विश्वस्य भुवनस्य गोपा समाधीरः' (ऋ० १।१६४।२१)। इस मन्त्रमें सूर्यको धीर अर्थात् बुद्धिप्रेरक कहा है 'धियमीरयतो धीरः'। अतएव आस्तिक द्विज प्रतिदिन सन्ध्यामें 'धियो यो नः प्रचोदयात्' इस प्रकार बुद्धिके अच्छे कामोंमें लगानेके लिये प्रार्थना करते हैं।

'सूर्य' शब्दकी व्युत्पत्ति

निरुक्तकार यास्कने 'सूर्य' शब्दकी निरुक्ति—'सूर्यः सर्तेर्वा सुवतेर्वा' (१२।२।१४) इस प्रकार की है। 'सिद्धान्तकौमुदी'के कृत्य प्रकरणके 'राजसूयसूर्य०' (पा० ३।१।११४) इस सूत्रसे निपातनकर सूर्य शब्दकी सिद्धि इस प्रकार है—'सरति (गच्छति) आकाशे इति सूर्यः' (भ्वादि० प०), अथवा षू प्रेरणे (तुदादि प०), क्यपो रुट्, 'सुवति कर्मणि लोकं प्रेरयतीति सूर्यः'। इस प्रकार 'सूर्य' शब्दकी व्युत्पत्तिसे यह स्पष्ट है कि सूर्य भगवान् चेतन हैं। प्रेरकता चेतनका गुण है।

हमारे धर्ममें पञ्चदेवोंकी उपासनाका वर्णन मिलता है। 'कपिल-तन्त्र'में भी आता है—

> आकाशस्याधिपो विष्णुरग्नेश्चैव महेश्वरी।
> वायोः सूर्यः क्षितेरीशो जीवनस्य गणाधिपः॥
> गुरवो योगनिष्णाताः प्रकृतिं पञ्चधा गताम्।
> परीक्ष्य कुर्युः शिष्याणामधिकारविनिर्णयम्॥

आकाशके अधिपति विष्णु, अग्निकी महेश्वरी, वायुतत्त्वके अधिपति सूर्य, पृथ्वीके शिव एवं जलके अधिपति भगवान् गणेश हैं। योगपारङ्गत गुरुओंको चाहिये कि वे शिष्योंकी प्रकृति एवं प्रवृत्तिकी (तत्त्वानुसार) परीक्षा कर उनके उपासनाधिकार अर्थात् इष्टदेवका निर्णय करें।

इस कथनका तात्पर्य यह है कि परमात्मा और उक्त पञ्चदेवोंकी उपासनाएँ पाँच प्रकारकी हैं। अतः जैसे विष्णुभगवान् या शिवादिस्वरूप परमात्मा ही हैं, उसी प्रकार भगवान् सूर्य भी परमात्मा ही हैं। 'उपासनं पञ्चविधं ब्रह्मोपासनमेव तत्'—यह योगशास्त्रका वचन है। इसके आधारपर सगुण ब्रह्मकी ही पञ्चतत्त्वभेदानुसार पञ्चमूर्तियाँ हैं। हम भारतीय जबतक इन भगवान् भास्करकी गायत्री-मन्त्रके द्वारा उपासना करते रहे, तबतक भारत ज्ञान-विज्ञानसम्पन्न, स्वस्थ, शान्त एवं सुखी रहा। वर्तमान दुर्दशा एवं उत्पीडनको देखते हुए भगवान् भास्करकी उपासना अत्यावश्यक है।

भारतीय पुनः भगवान् भास्करका वास्तविक ज्ञान प्राप्त कर अभ्युदय एवं निःश्रेयसके पथपर चलकर भारतको 'भारत' (प्रभापूरित) करें—इस उद्देश्यमें 'कल्याण' का सञ्चालकमण्डल सफल हो, यही हमारी सूर्य भगवान्‌से प्रार्थना है।

सूर्यका प्रभाव

(अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु शंकराचार्य तमिलनाडुक्षेत्रस्थ काञ्चीकामकोटिपीठाधीश्वर स्वामी श्रीचन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वतीजी महाराजका आशीर्वाद)

'पूर्ण वेद—सम्पूर्ण वेदवाङ्मय धर्मका मूल (स्रोत) है। 'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्'—इस मनु-वचनके अनुसार वेदोंद्वारा प्रतिपाद्य—निर्वेच्य विषय (अर्थ) धर्म है। अतः यज्ञ (वेद-विहित पावन कर्तव्य कर्म) धर्मका स्वरूप है जो समयके अधीन है। समयका विधायक (व्यवहार-व्यवस्था नियामक) ज्योतिषशास्त्र है और यह ज्योतिषशास्त्र (ज्योतिषशास्त्रका विषय) आदित्य—श्रीसूर्यके अधीन है। सूर्य ही दिन-रातके कालका विभाजन करते हैं। ये ही संसारकी सृष्टि, स्थिति और संहारके मूल कारण हैं—इन्हींके द्वारा समस्तकी सृष्टि, स्थिति और उसका संहार होता है। (अतएव सूर्यदेव ब्रह्म-विष्णु-शिव-स्वरूप हैं—त्रिदेवमय हैं)।

सूर्यकी किरणें सभी लोकोंमें प्रसृत होती हैं। ये (सूर्य) ही ग्रहोंके राजा और प्रवर्तक हैं। ये रात्रिमें अपनी शक्ति अग्निमें निहित कर देते हैं। ये ही (सूर्यदेव) निखिल वेदोंके प्रतिपाद्य हैं। ये आकाश मण्डलमें प्रतिदिन नियमसे सत्यमार्ग (क्रान्तिवृत्त) पर स्वयं घूमते हुए संसारका संचालन करते हैं। आकाशमें देखे जानेवाले नक्षत्र, ग्रह और राशिमण्डल इन्हींकी शक्ति (आकर्षण-शक्ति) से टिके हुए हैं—यह शास्त्रोंमें कहा गया है।

थके प्राणी रात्रिमें सुप्त होकर सूर्योदयके समय पुनः जागरूक हो जाते हैं। ऋग्वेद कहता है कि सूर्य ही अपने तेजसे सबको प्रकाशित करते हैं। यजुर्वेदमें कहा गया है कि ये ही सम्पूर्ण भुवनको उज्जीवित करते हैं। अथर्ववेदमें प्रतिपादित है कि ये सूर्य हृदयकी दुर्बलता—हृद्रोग और यक्ष्मरोगको प्रशमित करते हैं। सूर्यकी किरणें पृथ्वीतलके गन्दे पदार्थोंको सोख लेती हैं और (खारे) समुद्र-जलको स्वयं पीकर पीनेयोग्य बना देती हैं। (किरणोंके उपकार अनेक और महान् हैं।)

नैमिषारण्यमें (पौराणिक) सूतजीने यज्ञसमारम्भके अवसानमें—सत्रान्तमें शौनकादि ऋषियोंके लिये सविताके विषयमें विस्तृत व्याख्या की। (इससे स्पष्ट है कि) सूर्योपासना भारतवर्षमें बहुत पुराने समयसे चली आती है। आद्य श्रीशङ्कराचार्यके द्वारा स्थापित षड्विध (साधना) मतोंमें सौर-मत अन्यतम है। पुराणोंमें स्थल-स्थलपर सूर्यकी प्रशंसा तो है ही, उपपुराणोंमें अन्यतम सूर्यपुराणमें भी सूर्यके सम्बन्धमें विस्तारसे और बहुत स्पष्टतासे वर्णन किया गया है। उसके आधारपर यहाँ कुछ लिखा जा रहा है।

महर्षि वसिष्ठजीने सूर्यवंशीय बृहद्बलको अभिलक्ष्य कर सूर्यके वैभव (महत्त्व) का वर्णन किया है। चन्द्रभागा नदीके तीरपर (बसे) साम्बपुरमें बहुत समयसे सूर्य प्रतिस्थापित हैं। वहाँपर की गयी उनकी पूजा अक्षय्य (अनश्वर) फल देता है। भगवान् श्रीकृष्णद्वारा अभिशप्त उनके पुत्र साम्बने अपने कोढ़के रोगको सूर्यके अनुग्रहसे शमित कर दिया। (सूर्यकी उपासनासे कुष्ठ-जैसे भयंकर रोग छूट जाते हैं—इसका प्रत्यक्ष प्रमाण साम्बोपाख्यान है)।

सूर्यकी पत्नी छायादेवी तथा पुत्र काल-स्वरूप शनैश्चर और यम हैं। सूर्य राजरत्न माणिक्यके अधिदेवता हैं। इनका रथ सुवर्णमय है। इनके सारथि (रथ हाँकनेवाले) ऊरु-रहित (अनूरु) अरुण हैं।

सूर्यकी किरणोंमेंसे चार सौ किरणें जल बरसाती हैं, तीन सौ किरणें हिम (शीत) उत्पन्न करती हैं। इन्हीं

सूर्यसे ओषधि-शक्तियाँ बढ़ती हैं। आगमें डाल हवि (आहुति) सूर्यतक पहुँचकर अन्न उत्पन्न करती है। यज्ञसे पर्जन्य और पर्जन्यसे अन्नका होना शास्त्रसिद्ध एवं लोकप्रसिद्ध है।

सूर्य जपापुष्पके सदृश (अड़हुलके फूलके समान) लाल वर्णवाले हैं। शास्त्र-वेत्ता—शास्त्रके मर्मको जाननेवाले आदित्यके भीतर 'हिरण्मयपुरुष' की उपासना करते हैं। पौराणिक जन (पुराण जाननेवाले लोग) कहते हैं कि भगवान् भानु आदिमें हजारों सिरवाले थे और उनका मण्डल नौ हजार योजनोंमें फैला हुआ था। वे पूर्वाभिमुख प्रादुर्भूत हुए थे।

ये (सूर्य) प्रतिदिन मेरुपर्वतके चारों ओर घूमते रहते हैं। महर्षि याज्ञवल्क्यने सूर्यदेवकी उपासना कर 'शुक्लयजुर्वेद' को प्रकाशित किया। सूर्यके ही अनुग्रहसे देवी द्रौपदीने अक्षय्य पात्र प्राप्त किया था*। महर्षि अगस्त्यने युद्धक्षेत्रमें (श्रान्त) श्रीरामको आदित्यहृदयस्तोत्रका उपदेश दिया था (जिसके पाठसे श्रीराम विजयी हुए)। अपनी पुत्रीके शापसे कुष्ठरोगसे अभिभूत मयूरकवि 'सूर्यशतक'† नामक स्तोत्र बनाकर सूर्यके अनुग्रहसे उससे (कोढ़से) छूटे। इन्हींके अनुग्रहसे सत्राजितने स्यमन्तकमणि‡ प्राप्त की थी।

इस (दिग्दर्शित) प्रभाववाले सूर्यकी सेवा-भक्ति किंवा आराधना करते हुए सभी आस्तिकजन ऐहिक अभ्युन्नति–'प्रेय' और पारलौकिक उत्कर्ष–'श्रेय' (कल्याण) प्राप्त करें—यह हमारा आशंसा है।

'नारायणस्मृति'।

नित्यप्रतिकी उपासना

ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती
नारायणः सरसिजासनसन्निविष्टः।

प्रतिदिन सूर्यके उदय और अस्त होनेके समय प्रत्येक पुरुष और स्त्रीको प्रातःकाल स्नानकर और सायंकाल हाथ मुँह, पैर धोकर सूर्यके सामने खड़े होकर सूर्यमण्डलमें विराजमान सारे जगत्के प्राणियोंके आधार परब्रह्म नारायणको 'ॐ नमो नारायणाय'–इस मन्त्रसे अर्घ्य देकर यदि जल न मिले तो मात्र हाथ जोड़कर मनको पवित्र और एकाग्र कर श्रद्धा-भक्तिपूर्वक १०८ बार अथवा २८ बार या कम-से-कम १० बार प्रातःकाल 'ॐ नमो नारायणाय'–इस मन्त्रका और सायंकाल 'ॐ नमः शिवाय'–इस मन्त्रको जपना तथा जपके उपरान्त परमात्माका ध्यान करते हुए प्रार्थना करनी चाहिये§—

सब देवनके देव प्रभु सब जगके आधार।
दृढ़ राखौ मोहि धर्ममें विनवौं बारबार॥
चन्दा सूरज तुम रचे रचे सकल संसार।
दृढ़ राखौ मोहि सत्यमें विनवौं बारबार॥

—महामना पूज्य श्रीमालवीयजी महाराज

---

* अक्षयपात्रकी कथा कथा-सन्दर्भमें पढ़ें।

† सूर्यशतककी रचना करनेवाले मयूरकवि सातवीं शतीमें हुए थे। उन्होंने अनवस्थान एवं कुष्ठरोगजनित आत्मवेदनासे मुक्ति पानेके लिये 'सूर्यशतक' की रचना की। सूर्यशतक उत्कृष्ट कोटिका सूर्य-स्तोत्र है। प्रसिद्ध है कि मयूरके छठे श्लोकके उच्चारण करते ही भगवान् सूर्यदेव प्रकट हो गये थे। सूर्यशतकके टीकाकार अन्नदपुत्रने लिखा है कि 'मयूरो नाम महाकविराद्यसर्वोपद्रवनिर्वृतिसिद्धये सर्वजनोपकाराय च आदित्यस्य स्तुतिं श्लोकशतेन प्रणीतवान्।'

‡ स्यमन्तकमणिकी कथा इसी विशेषाङ्कके कथाभागमें मिलेगी।

§ 'सनातनधर्मप्रदीपक'से

सूर्य और निम्बार्क-सम्प्रदाय

(—अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य पीठाधीश्वर श्री'श्रीजी' श्रीराधासर्वेश्वरशरण देवाचार्यजी महाराज)

अंशुमाली भगवान् भुवनभास्कर श्रीसूर्यकी महिमा अनन्त एवं असीम है। वेदमाता गायत्रीमें जहाँ निखिलान्तरात्मा, सर्वद्रष्टा एवं सर्वज्ञ भगवान् श्रीसर्वेश्वरका प्रतिपादन है, वहाँ सविता नामसे महाभाग सूर्यका भी परिबोध है। श्रुति, स्मृति, पुराण और सूत्रतन्त्र आदि शास्त्रोंमें तथा साहित्य एवं काव्य आदि उत्तम ग्रन्थोंमें सूर्य-स्वरूप, सूर्य प्रशस्ति, सूर्य-स्तवन तथा सूर्य-वन्दन आदिका सुन्दरतम वर्णन विपुलरूपसे विद्यमान है। यथार्थमें समग्र सृष्टिका जीवन तथा धारण-सम्पोषण भगवान् सूर्यकी अनुत्तम श्रेयोत्तर शक्तिपर ही निर्भर है। वेदोंमें—'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च', 'दृशे विश्वाय सूर्यम्'—अर्थात् समस्त जगत्के आत्मारूपमें सूर्य हैं तथा सारे संसारके दृष्टि-दाता सूर्य हैं—आदि विस्तारसे विवेचित हैं।

श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने भी विभूति स्वरूपके वर्णनमें—'ज्योतिषां रविरंशुमान्'-से स्वयंको ही इङ्गित किया है। प्रश्नोपनिषद्के 'स तेजसि सूर्ये सम्पन्नः'—इस वचनसे यह प्रतिपादन किया गया है कि वे अखिलान्तरात्मा श्रीप्रभु तेजोमय सूर्यरूपमें भी प्रतिष्ठित हैं। पातञ्जलयोगसूत्र (३।२६) में वर्णित है कि 'भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात्' अर्थात् सूर्यके ध्यान करनेसे ही निखिलभुवनका ज्ञान प्राप्त होता है। तब एव पुण्यात्मा धीर पुरुष भी सूर्यमार्गसे ही श्रीभगवद्धाम एवं श्रीभगवद्भावापत्तिरूप मोक्षकी प्राप्ति करते हैं। मुण्डकोपनिषद्के निम्नाङ्कित मन्त्रसे यह भाव स्पष्ट हो जाता है—

तपःश्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये
शान्ता विद्वांसो भैक्ष्यचर्यां चरन्तः।
सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति
यत्रामृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा॥
(१।२।११)

इसी प्रकार ब्रह्मसूत्रके—'रश्म्यनुसारी', 'अर्चिरादिना तत्प्रथितेः'—इन दो सूत्रोंसे उपर्युक्त निर्वचनका ही प्रतिपादन है। 'रश्म्यनुसारी' इस सूत्रके वेदान्त पारिजात सौरभाष्यमें आद्याचार्य भगवान् श्रीनिम्बार्कने स्पष्टीकरण किया है—

'विद्वान् मूर्द्धन्यया नाड्या निष्क्रम्य सूर्यरश्म्यनुसारेणोर्ध्वं गच्छति, नैव रश्मिभिरित्यवधारणात्' अर्थात् पवित्रात्मा विद्वान् भक्त इस पाञ्चभौतिक शरीरसे निष्क्रमण कर सूर्य-रश्मियोंमें प्रवेश करता है तथा उन्हीं रश्मियोंके मार्गसे दिव्यतम ऊर्ध्व लोकमें चला जाता है। इससे भगवान् सूर्यका अनन्त, अचिन्त्य एवं अपरिमित महत्त्व स्पष्ट हो जाता है।

अब यहाँ निम्बार्क-सिद्धान्तमें भी भगवान् सूर्यके जो वर्चस्व तथा उनका स्वाभाविक सम्बन्ध दृग्गोचर होता है, वह भी परम द्रष्टव्य है। सर्वप्रथम 'निम्बार्क'—इस नामसे ही सूर्यका सम्बन्ध स्पष्टतया परिलक्षित होता है, यथा—'निम्बे अर्कः निम्बार्कः'। इसमें सप्तमी-तत्पुरुष समाससे 'निम्ब वृक्षपर सूर्य'—ऐसा परिबोध होता है। 'भविष्योत्तरपुराण' एवं 'निम्बार्क-साहित्य'में निम्बार्क-सम्बन्धी एक विशिष्टतम दिव्य घटनाका उल्लेख है। एक समयकी बात है कि पितामह ब्रह्मा कृत्रिम वेष बनाकर दिवाभोजी संन्यासीके रूपमें ब्रजमण्डलके बीच गिरिराज गोवर्द्धनकी उपत्यकामें सुशोभित श्रीनिम्बार्क-तपःस्थलीपर गये और वहाँ उन्होंने सुदर्शनचक्रावतार-श्रीभगवन्निम्बार्काचार्यके चमत्कार-स्वरूपका परिज्ञान प्राप्त करना चाहा। अपने आश्रममें आये हुए अतिथिका स्वागत होना चाहिये—इस विचारसे श्रीआचार्यश्रीने यतिको भोजनके लिये संकेत किया। यद्यपि सूर्य अस्त हो चुके थे, किंतु आचार्यश्रीने रात्रिमें भी सूर्यका दर्शन

कराया और यतिरूप ब्रह्माका आतिथ्य किया। फिर सूर्यके अन्तर्हित होनेपर हठात् रात्रिका समय सामने आ गया। यह देखकर ब्रह्मा विस्मित हुए तथा समाधिस्थ होकर उन्होंने श्रीनिम्बार्क भगवान्‌के चक्रावतार-स्वरूपका यथार्थ अनुभव किया एवं तत्काल प्रत्यक्ष ब्रह्माके रूपमें प्रकट हो श्रीआचार्यवर्यको निम्बार्क नामसे सम्बोधित किया। इस लोकमहत्त्वकारी घटनासे पूर्व 'आचार्यश्रीका' नियमानन्द नाम ही प्रख्यात था। वस्तुतः श्रीमान् आद्याचार्यका यह सम्पूर्ण चरित भगवान् सूर्यसे स्वभावतः सम्बन्ध रखता है।

'निम्बार्क' नामसे यह भी एक गूढ़तम रहस्य सम्यक्तया स्पष्ट है कि 'सर्वरोगहरो निम्बः'। आयुर्वेदके इस महनीय वचनसे सिद्ध है कि समस्त रोग निम्बके वृक्षसे शान्त हो जाते हैं। रोगसे ग्रसित जो मानव निम्बका समाश्रय ले तो वह निश्चय ही असाध्य भीषण रोगोंसे मुक्ति सुलभतया प्राप्त कर सकता है।

इसी प्रकार भगवान् सूर्यकी प्रशस्त एवं प्रखर महिमाका वर्णन समग्र शास्त्रोंमें विविध रूपसे उपलब्ध है। सूर्यगीतामें यह प्रसङ्ग अवलोकनीय है—

विश्वप्रकाशक श्रीमान् सर्वशक्तिनिकेतन।
जगन्नियन्त सर्वेश विश्वप्राणाश्रय प्रभो॥

हे श्रीमन्! आप सम्पूर्ण विश्वके प्रकाशक, समस्त शक्तियोंके अधिष्ठान, जगन्नियन्ता, सर्वेश एवं विश्वके प्राणाधार प्रभु हैं।

इस उभयविध दृष्टिसे निम्ब और अर्क (सूर्य) का वैशिष्ट्य प्रत्यक्ष ही है। वस्तुतः निम्बार्क नामसे सूर्यका यह स्वाभाविक सम्बन्ध स्पष्ट है। इसके अतिरिक्त एक यह भी विलक्षणता है कि इस समय जहाँ राजस्थानमें स्थित पुष्करक्षेत्रके अन्तर्गत श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायका एकमात्र आचार्यपीठ अ० भा० श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ है, वह भी भगवान् सूर्यका अति प्राचीन पौराणिक पुण्यमय तीर्थ है। इस तीर्थका सुन्दरतम वर्णन पद्मपुराण (१५८। १-२४) में 'निम्बार्कदेव तीर्थ-माहात्म्य' नामसे मिलता है, जैसे—पिप्पलाद-तीर्थसे कुछ दूर साभ्रमती नदीके किनारे सम्पूर्ण आधि-व्याधियोंको मिटानेवाला पिचुमन्दार्क (निम्बार्क तीर्थ) है। प्राचीन समयमें एक कोलाहल नामक दैत्य था। उसके साथ देवताओंका युद्ध छिड़ गया। उस दैत्यके प्रहारोंसे घबड़ाकर अपने प्राण बचानेके उद्देश्यसे देवता सूक्ष्म रूप धारण करके वृक्षोंपर जा चढ़े।

जबतक महाविष्णुने उस कोलाहल दैत्यका वध नहीं किया, तबतक शङ्कर बिल्ववृक्षपर, विष्णु पीपलवृक्षपर, इन्द्र शिरीष-वृक्षपर और सूर्य निम्बवृक्षपर छिपे रहे। जो-जो देवता जिन जिन वृक्षोंपर रहे थे, वे-वे वृक्ष उन उन देवताओंके नामसे विख्यात हुए। इसी कारणसे इन देववृक्षोंको काटना निषिद्ध माना जाता है। जिस स्थानपर सूर्यने निम्बवृक्षपर निवास किया था, वह 'निम्बार्कतीर्थ' कहलाया। इस तीर्थमें स्नान करके निम्बस्थ (नीमवृक्ष पर विराजमान) सूर्य-(निम्बार्क) की पूजा की जाय तो पूजा करनेवाले व्यक्तिके समस्त रोग-दोषोंकी निवृत्ति हो जाती है।

आदित्य, भास्कर भानु, चित्रभानु, विश्वप्रकाशक, तीक्ष्णांशु, मार्तण्ड, सूर्य, प्रभाकर, विभावसु, सहस्रांशु और पूषन्, (रवि) इन बारह नामोंका पवित्र होकर जप करनेसे धन-धान्य, पुत्र-पौत्रादिकी प्राप्ति होती है। इन बारह नामोंमेंसे किसी भी एक नामका जप करनेवाला ब्राह्मण सात जन्मोंतक धनाढ्य एवं वेदपारग होता है। क्षत्रिय राजा और वैश्य धन-सम्पन्न हो जाता है। शूद्र तीनों वर्णोंका भक्त बन जाता है। अधिक क्या कहा जाय, हे पार्वति! निम्बार्क-तीर्थसे बढ़कर और कोई तीर्थ नहीं है, न भविष्यमें ऐसा तीर्थ हो सकता है, क्योंकि इस तीर्थमें केवल स्नान और आचमन करनेमात्रसे ही व्यक्ति मुक्ति (भगवत्प्राप्ति) का पात्र बन जाता है।'

भगवान् सूर्य—हमारे प्रत्यक्ष देवता

(अनन्तश्रीविभूषित पूज्यपाद स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराजका प्रसाद)

सभी प्राणियोंको जगत्में भगवान् सूर्यके दर्शन होते हैं। ये सर्वप्रसिद्ध देवता हैं। अन्य किसी देवताकी स्थितिमें कुछ सन्देह भी हो सकता है, किंतु भगवान् सूर्यकी सत्तामें किसीको संदेहके लिये कोई अवसर ही नहीं है। सभी लोग इनका प्रत्यक्ष (साक्षात्कार) प्राप्त करते हैं।

'सृ गतौ' अथवा 'षू प्रेरणे' से क्यप् प्रत्यय होनेपर 'सूर्य' शब्द निष्पन्न होता है। 'सरति आकाशे–इति सूर्यः'—जो आकाशमें निराधार भ्रमण करता है अथवा 'सुवति कर्माणि लोकं प्रेरयति'—जो (उदयमात्रसे) अखिल विश्वको अपने-अपने कर्मोंमें प्रवृत्त कराता है, वह सूर्य है। व्याकरण शास्त्रमें इसी अर्थमें—'राजसूयसूर्यमृषोद्यरुच्यकुप्यकृष्टपच्याव्यथ्याः' (पा० सू० ३।१।११४) इस पाणिनि-सूत्रसे निपातन होकर भी सूर्य शब्द बनता है।

अखिल विश्वमें प्रकाश देनेवाला, अनन्त तेजका [illegible]-मण्डल ही सूर्य शब्दका वाच्यार्थ है और इसका लक्ष्यार्थ है—मण्डलाभिमानी पुरुष—चेतन-आत्मा तथा उसका अन्तर्यामी। ऋग्वेदसंहिता कहती है—

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च (ऋ० सं० १।११५।१)

अर्थात्—'भगवान् सूर्य सभी स्थावर जङ्गमात्मक विश्वके अन्तरात्मा हैं।'

'कालात्मा पुरुष भी सूर्य ही हैं।' ऋग्वेदसंहिताका कथन है—

'सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रम्
एको अश्वो वहति सप्तनामा।
त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं
यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः॥'
(ऋ० सं० १।१६४।२)

अर्थात् इस कालात्मा पुरुषका रथ बहुत ही विलक्षण है। रंहणस्वभाव (गमनशील) होनेके कारण उसे रथ कहा जाता है। वह अविरत (सतत) गमन किया करता है। उस रथमें संवत्सरात्मा एक ही चक्र है। अहोरात्रके निर्माणके लिये (अहोरात्रके सम्यक् निर्माणके लिये) उसमें सात अश्व जोड़े जाते हैं—'रथस्यैकं चक्रं भुजगयमिताः सप्त तुरगाः।' ये सात अश्व ही सात दिन हैं। वस्तुतः अश्व एक ही है, किंतु सात नाम होनेके कारण सात अश्व कहे जाते हैं। उस एक चक्रमें ही (भूत, भविष्य और वर्तमान) ये तीन नाभियाँ हैं। यह रथ अजर-अमर (जरा-मरणसे रहित) अर्थात् अविनाशी है एवं अनर्व अर्थात् अत्यन्त दृढ़ है अर्थात् कभी शिथिल नहीं होता। इसी कालात्मा पुरुषके सहारे पिण्डज, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज सभी प्रकारके प्राणी टिके हुए हैं। ऐसे रथपर स्थित इन भुवनभास्करको देखकर (सूर्यभक्त) मनुष्य पुनर्जन्म नहीं पाता—मुक्त हो जाता है—

'रथस्थं भास्करं दृष्ट्वा पुनर्जन्म न विद्यते।'

शतपथब्राह्मणमें भगवान् सूर्यको त्रयीमय कहा गया है—'यदेतन्मण्डलं तपति तन्महदुक्थं ता ऋचः स ऋचां लोकोऽथ यदेतदर्चिर्दीप्यते तन्महाव्रतं तानि सामानि स साम्नां लोकोऽथ य एष एतस्मिन् मण्डले पुरुषः सोऽग्निस्तानि यजूंषि स यजुषां लोकः॥' (१०।५।२।१)

इस श्रुतिमें भगवान् सूर्यके दिव्य [illegible] मण्डलकी स्तुति की गयी है। मण्डलकी स्तुतिसे मण्डलाभिमानी पुरुष और उसकी स्तुतिसे अन्तर्यामीकी स्तुति स्वभावतः सिद्ध है। यह जो सर्वप्राणिप्रत्यक्षगोचर आकाशस्थ [illegible] वर्तुलाकार मण्डल है, वह महदुक्थ (बृहती सहस्र नामसे प्रसिद्ध होत्रमें शस्त्रविशेष) है तथा वही ऋक् है।

जो इस मण्डलमें अर्चि (सर्वजगत्प्रकाशक तेज) है, वह 'महाक्रतु' नामक क्रतु (यज्ञकर्म) विशेष है और बृहत् रथन्तर आदि साम भी वही है तथा जो मण्डलाभिमानी पुरुष है, वह अग्नि (अर्थात् अग्न्युपलक्षित सर्वदेव) है तथा यजुष् भी वही पुरुष है। अपने तेजसे तीनों लोकोंको पूरित करनेके कारण वह पुरुष है—'आ प्रा द्यावा पृथिवी अन्तरिक्षम्' अथवा सभी प्राणियोंके शरीररूप पुरमें शयन करनेके कारण वह पुरुष है—'सवा्तु पूर्षु शेते' (श० ब्रा० १४।२।५।१८) अथवा सभी पापोंको भस्म कर देनेके कारण वह पुरुष है—'सर्वान् पाप्मन औषत्तस्मात्पुरुष' (श० ब्रा० १४।१।१।२।२)। छान्दोग्य उपनिषद्में इस पुरुषका वर्णन किया गया है—

'य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते हिरण्यश्मश्रुर्हिरण्यकेश आ प्रणखात्सर्व एव सुवर्णः। स एष सर्वेभ्यः पाप्मभ्य उदित उदेति ह वै सर्वेभ्यः पाप्मभ्यो य एवं वेद' (छा० उ० १।६।६,७)।

श्रुति भी आदित्यरूपमें इसी अन्तर्यामी पुरुषका वर्णन कर रही है। 'अन्तस्तद्धर्मोपदेशात्' (ब्र० सू० १।१।२०)—इस ब्रह्मसूत्रमें भी यह निर्णय किया गया है कि इस छान्दोग्यश्रुतिमें प्रतिपादित पुरुष अन्तर्यामी है। इस प्रकार भगवान् सूर्य सर्वदेवमय हैं—'तस्मात्परमेश्वर एवेहोपदिश्यते इत्यादि' (शाङ्करभाष्य)।

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डमें आदित्य हृदयस्तोत्रके द्वारा इन्हीं भगवान् सूर्यकी स्तुति की गयी है। उसमें कहा गया है कि ये ही भगवान् सूर्य ब्रह्मा, विष्णु, शिव, स्कन्द और प्रजापति हैं। महेन्द्र, वरुण, काल, यम, सोम आदि भी यही हैं—

एष ब्रह्मा च विष्णुश्च शिवः स्कन्दः प्रजापतिः।
महेन्द्रो धनदः कालो यमः सोमो ह्यपां पतिः॥

आपत्तिके समयमें, भयङ्कर विषम परिस्थितिमें, जनशून्य अरण्यमें, अत्यन्त भयदायी घोर समयमें अथवा महासमुद्रमें इनका स्मरण, कीर्तन और स्तुति करनेसे प्राणी सभी विपत्तियोंसे छुटकारा पा जाता है—

एनमापत्सु कृच्छ्रेषु कान्तारेषु भयेषु च।
कीर्तयन् पुरुषः कश्चिन्नावसीदति राघव॥

तीनों सन्ध्याओंमें गायत्री-मन्त्रद्वारा इन्हींकी उपासना की जाती है। इनकी अर्चनासे सबकी मन कामनाएँ पूर्ण होती हैं। भगवान् श्रीरामने युद्धक्षेत्रमें इनकी आराधना करके रावणपर विजय प्राप्त की थी। इनका स्तोत्र 'आदित्यहृदय' वरदानी है, अमोघ है। उसके द्वारा इनकी स्तुति करनेसे सभी आपदाओंसे छुटकारा पाकर प्राणी अन्तमें परब्रह्म परमात्माको प्राप्त कर लेता है।

बाह्य प्राणके उपजीव्य आदित्य

आदित्यो ह वै बाह्यः प्राण उदयत्येष ह्येनं चाक्षुषं प्राणमनुगृह्णानः।
पृथिव्यां या देवता सैषा पुरुषस्यापानमवष्टभ्यान्तरा यदाकाशः स समानो वायुर्व्यानः॥
तेजो ह वा उदानस्तस्मादुपशान्ततेजाः पुनर्भवमिन्द्रियैर्मनसि सम्पद्यमानैः।

(—प्रश्नोपनिषद् ३।८,९)

निश्चय ही आदित्य बाह्य प्राण है। यह इस चाक्षुष (नेत्रेन्द्रियस्थित) प्राणपर अनुग्रह करता हुआ उदित होता है। पृथिवीमें जो देवता हैं, व पुरुषके अपानवायुको आकर्षण किये हुए हैं। इन दोनोंके मध्यमें जो आकाश है, वह समान है और वायु ही व्यान है। लोकप्रसिद्ध [आदित्यरूप] तेज ही उदान है। अतः जिसका तेज (शारीरिक ऊष्मा) शान्त हो जाता है, वह मनमें लीन हुई इन्द्रियोंके सहित पुनर्जन्मको [अथवा पुनर्जन्मके हेतुभूत मृत्युको] प्राप्त हो जाता है।

त्रिकाल-सन्ध्यामें सूर्योपासना

(—ब्रह्मलीन परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

समयकी गति सूर्यके द्वारा नियमित होती है। सूर्य भगवान् जब उदय होते हैं, तब दिनका प्रारम्भ तथा रात्रिका शेष होता है, इसको प्रातःकाल कहते हैं। जब सूर्य आकाशके शिखरपर आरूढ़ होते हैं, उस समयको दिनका मध्य अथवा मध्याह्न कहते हैं और जब वे अस्ताचलको चले जाते हैं, तब दिनका शेष एवं रात्रिका प्रारम्भ होता है। इसे सायंकाल कहते हैं। ये तीन काल उपासनाके मुख्य काल माने गये हैं। यों तो जीवनका प्रत्येक क्षण उपासनामय होना चाहिये, परंतु इन तीन कालोंमें तो भगवान्की उपासना नितान्त आवश्यक बतलायी गयी है। इन तीनों समयोंकी उपासनाके नाम ही क्रमशः प्रातःसन्ध्या, मध्याह्नसन्ध्या और सायंसन्ध्या है। प्रत्येक वस्तुकी तीन अवस्थाएँ होती हैं—उत्पत्ति, पूर्ण विकास और विनाश। ऐसे ही जीवनकी भी तीन ही दशाएँ होती हैं—जन्म, पूर्ण युवावस्था और मृत्यु। हमें इन अवस्थाओंका स्मरण दिलानेके लिये तथा इस प्रकार हमारे अंदर संसारके प्रति वैराग्यकी भावना जागृत करनेके लिये ही मानो सूर्य भगवान् प्रतिदिन उदय होते, उन्नतिके शिखरपर आरूढ़ होते और फिर अस्त होनेकी लीला करते हैं। भगवान्की इस त्रिविध लीलाके साथ ही हमारे शास्त्रोंने तीन कालकी उपासना जोड़ दी है।

भगवान् सूर्य परमात्मा नारायणके साक्षात् प्रतीक हैं, इसीलिये वे सूर्यनारायण कहलाते हैं। यही नहीं, सर्गके आदिमें भगवान् नारायण ही सूर्यरूपमें प्रकट होते हैं, इसलिये पञ्चदेवोंमें इनकी भी गणना है। यों भी ये भगवान्की प्रत्यक्ष विभूतियोंमें सर्वश्रेष्ठ, हमारे इस ब्रह्माण्डके केन्द्र, स्थूल कालके नियामक, तथा महान् आकर दिव्य तेजके एवं प्राणदाता तथा समस्त चराचर प्राणियोंके आधार हैं। वे प्रत्यक्ष दीखनेवाले सारे देवोंमें श्रेष्ठ हैं। इसीलिये सन्ध्यामें सूर्यरूपसे ही भगवान्की उपासना की जाती है। उनकी उपासनासे हमारे तेज, बल, आयु एवं नेत्रोंकी ज्योतिकी वृद्धि होती है और मरनेके समय वे हमें अपने लोकमेंसे होकर भगवान्के परमधाममें ले जाते हैं, क्योंकि भगवान्के परमधामका रास्ता सूर्यलोकमेंसे होकर ही गया है। शास्त्रोंमें लिखा है कि योगी लोग तथा कर्तव्यरूपसे युद्धमें शत्रुके सम्मुख लड़ते हुए प्राण देनेवाले क्षत्रिय वीर सूर्यमण्डलको भेदकर भगवान्के धाममें चले जाते हैं। हमारी आराधनासे प्रसन्न होकर भगवान् सूर्य यदि हमें भी उस लक्ष्यतक पहुँचा दें तो इसमें उनके लिये कौन बड़ी बात है। भगवान् अपने भक्तोंपर सदा ही अनुग्रह करते आये हैं। हम यदि शास्त्रानुसार नियमपूर्वक श्रद्धा एवं भक्तिके साथ निष्कामभावसे उनकी आराधना करेंगे, तो क्या वे मरते समय हमारी इतनी भी सहायता नहीं करेंगे? अवश्य करेंगे। भक्तोंकी रक्षा करना तो भगवान्का विरद ही ठहरा। अतः जो लोग आदरपूर्वक तथा नियमसे बिना नागा (प्रतिदिन) तीनों समय अथवा कम-से-कम दो समय (प्रातःकाल एवं सायंकाल) ही भगवान् सूर्यकी आराधना करते हैं, उन्हें विश्वास करना चाहिये कि उनका कल्याण निश्चित है और वे मरते समय भगवान् सूर्यकी कृपासे अवश्य परमगतिको प्राप्त होंगे।

इस प्रकार युक्तिसे भी भगवान् सूर्यकी उपासना हमारे लिये अत्यन्त कल्याणकारक, लोक-परलोकके मङ्गलको बढ़ानेवाली, अतएव अवश्यकर्तव्य है। अतः द्विजातिमात्रको चाहिये कि वे लोग नियमपूर्वक त्रिकालसन्ध्याके रूपमें भगवान् सूर्यकी उपासना

किया करें और इस प्रकार लौकिक एवं पारमार्थिक दोनों प्रकारके लाभ उठावें।

'उद्यन्तमस्तं यन्तमादित्यमभिध्यायन् कुर्वन् ब्राह्मणो विद्वान् सकलं भद्रमश्नुते।

अर्थात् 'उदय और अस्त होते हुए सूर्यकी उपासना करनेवाला विद्वान् ब्राह्मण सब प्रकारके कल्याणको प्राप्त करता है।' (तै० आ० प्र० २ अ० २)

जब कोई हमारे पूज्य महापुरुष हमारे नगरमें आते हैं और उसकी सूचना हमें पहलेसे मिली हुई रहती है तो हम उनका स्वागत करनेके लिये अर्घ्य, चन्दन, फल, माला आदि पूजाकी सामग्री लेकर पहलेसे ही स्टेशनपर पहुँच जाते हैं उत्सुकतापूर्वक उनकी बाट जोहते हैं और आते ही उनकी बड़ी आवभगत एवं प्रेमके साथ स्वागत करते हैं। हमारे इस व्यवहारसे उन आगन्तुक महापुरुषको बड़ी प्रसन्नता होती है और यदि हम निष्कामभावसे अपना कर्तव्य समझकर उनका स्वागत करते हैं तो वे हमारे इस प्रेमके आभारी बन जाते हैं और चाहते हैं कि किस प्रकार वन्होंने भी हमारी कोई सेवा करें। हम यह भी देखते हैं कि कुछ लोग अपने पूज्य पुरुषके आगमनकी सूचना होनेपर भी उनके स्वागतके लिये समयपर स्टेशन नहीं पहुँच पाते और जब वे गाड़ीसे उतरकर प्लेटफार्मपर पहुँच जाते हैं, तब दौड़े हुए आते हैं और देरके लिये क्षमा-याचना करते हुए उनकी पूजा करते हैं। और, कुछ इतने आलसी होते हैं कि जब हमारे पूज्य पुरुष अपने डेरेपर पहुँच जाते हैं और अपने कार्यमें लग जाते हैं, तब वे धीरे-धीरे फुरसतसे अपना अन्य सब काम निपटाकर आते हैं और उन आगन्तुक महानुभावकी पूजा करते हैं। वे महानुभाव तो तीनों ही प्रकारके स्वागत करनेवालोंकी पूजासे प्रसन्न होते हैं और उनका उपकार मानते हैं पूजा न करनेवालोंकी अपेक्षा देर-सवेर करनेवाले भी अच्छे हैं, किंतु दर्जेका अन्तर तो रहता ही है। जो जितनी तत्परता, लगन, प्रेम एवं आदर बुद्धिसे पूजा करते हैं, उनकी पूजा उतनी ही महत्त्वकी और मूल्यवान् होती है और पूजा ग्रहण करनेवालेको उससे उतनी ही प्रसन्नता होती है।

सन्ध्याके सम्बन्धमें भी ऐसा ही समझना चाहिये। भगवान् सूर्यनारायण प्रतिदिन सवेरे हमारे इस भूमण्डल पर महापुरुषकी भाँति पधारते हैं, उनसे बढ़कर हमारा पूज्य पात्र और कौन होगा। अतः हमें चाहिये कि हम ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर शौच-स्नानादिसे निवृत्त होकर शुद्ध वस्त्र पहनकर उनका स्वागत करनेके लिये उनके आगमनसे पूर्व ही तैयार हो जायँ और आते ही बड़े प्रेमसे चन्दन, पुष्प आदिसे युक्त शुद्ध ताजे जलसे उन्हें अर्घ्य प्रदान करें, उनकी स्तुति करें, जप करें। भगवान् सूर्यको तीन बार गायत्रीमन्त्रका उच्चारण करते हुए अर्घ्य प्रदान करना, गायत्रीमन्त्रका (जिसमें उन्हींकी परमात्मभावसे स्तुति की गयी है) जप करना और खड़े होकर उनका उपस्थान करना, स्तुति करना—ये ही सन्ध्योपासनके मुख्य अङ्ग हैं, शेष कर्म इन्हींके अङ्गभूत एवं सहायक हैं। जो लोग सूर्योदयके समय सन्ध्या करने बैठते हैं, वे एक प्रकारसे अतिथिके स्टेशनपर पहुँच जाने और गाड़ीसे उतर जानेपर उनकी पूजा करने दौड़ते हैं और जो लोग सूर्योदय हो जानेके बाद फुरसतसे अन्य कामोंसे निवृत्त होकर सन्ध्या करने बैठते हैं, वे मानो अतिथिके अपने डेरेपर पहुँच जानेपर धीरे-धीरे उनका स्वागत करने पहुँचते हैं।

जो लोग सन्ध्योपासन करते ही नहीं, उनकी अपेक्षा तो वे भी अच्छे हैं जो देर-सवेर, कुछ भी [illegible]

सन्ध्या कर लेते हैं। उनके द्वारा कर्मका अनुष्ठान तो हो ही जाता है और इस प्रकार शास्त्रकी आज्ञाका निर्वाह हो जाता है। वे कर्मलोपके प्रायश्चित्तके भागी नहीं होते। उनकी अपेक्षा वे अच्छे हैं, जो प्रातःकालमें तारोंके लुप्त हो जानेपर सन्ध्या प्रारम्भ करते हैं। किंतु उनसे भी श्रेष्ठ वे हैं, जो उषाकालमें ही तारे रहते सन्ध्या करने बैठ जाते हैं, सूर्योदय होनेतक खड़े होकर गायत्री-मन्त्रका जप करते हैं। इस प्रकार अपने पूज्य आगन्तुक महापुरुषकी प्रतीक्षामें उन्हींके चिन्तनमें उतना समय व्यतीत करते हैं और उनका पदार्पण, उनका दर्शन होते ही जप बंद कर उनकी स्तुति, उनका उपस्थान करते हैं।* इसी बातको लक्ष्यमें रखकर सन्ध्याके उत्तम, मध्यम और अधम—तीन भेद किये गये हैं।

> उत्तमा तारकोपेता मध्यमा लुप्ततारका।
> कनिष्ठा सूर्यसहिता प्रातःसन्ध्या त्रिधा स्मृता॥
> (—देवीभागवत ११।१६।४)

प्रातःसन्ध्याके लिये जो बात कही गयी है, सायंसन्ध्याके लिये उससे विपरीत बात समझनी चाहिये। अर्थात् सायंसन्ध्या उत्तम वह कहलाती है, जो सूर्यके रहते की जाय तथा मध्यम वह है, जो सूर्यास्त होनेपर की जाय और अधम वह है, जो तारोंके दिखायी देनेपर की जाय—

> उत्तमा सूर्यसहिता मध्यमा लुप्तभास्करा।
> कनिष्ठा तारकोपेता सायंसन्ध्या त्रिधा स्मृता॥
> (—देवीभागवत ११।१६।५)

कारण यह है कि अपने पूज्य पुरुषके विदा होने समय जो सेवक सब काम छोड़कर जो उनके साथ-साथ स्टेशन पहुँचता है, उन्हें आरामसे गाड़ीपर बिठाकर व्यवस्था कर देता है और गाड़ी छूटनेपर हाथ जोड़े हुए प्लेटफार्मपर खड़ा-खड़ा प्रेमसे उनकी ओर ताकता रहता है एवं गाड़ीके आँखोंसे ओझल हो जानेपर ही स्टेशनसे लौटता है, वही मनुष्य उनका सबसे अधिक सम्मान करता है और प्रेमपात्र बनता है। जो मनुष्य ठीक गाड़ीके छूटनेके समय हाँफता हुआ स्टेशनपर पहुँचता है और चलते-चलते दूरसे अतिथिके दर्शन कर पाता है, वह निश्चय ही अतिथिकी दृष्टिमें उतना प्रेमी नहीं ठहरता, यद्यपि उसके प्रेमसे भी महानुभाव अतिथि प्रसन्न ही होते हैं और उसपर प्रेमभरी दृष्टि रखते हैं। उससे भी नीचे दर्जेका प्रेमी वह समझा जाता है, जो अतिथिके चले जानेपर पीछेसे स्टेशन पहुँचता है, फिर पत्रद्वारा अपने देरीसे पहुँचनेकी सूचना देता है और क्षमा-याचना करता है। महानुभाव अतिथि उसके भी आतिथ्यको मान लेते हैं और उसपर प्रसन्न ही होते हैं।

यहाँ यह नहीं मानना चाहिये कि भगवान् भी साधारण मनुष्योंकी भाँति राग-द्वेषसे युक्त हैं, न पूजा करनेवालेपर प्रसन्न होते हैं और न करनेवालोंपर नाराज होते हैं या उनका अहित करते हैं। भगवान्‌की सामान्य कृपा सबपर समानरूपसे रहती है। सूर्यनारायण अपनी उपासना न करनेवालोंको भी उतना ही ताप एवं प्रकाश देते हैं, जितना वे उपासना करनेवालोंको देते हैं। उसमें न्यूनाधिकता नहीं होती। हाँ, जो लोग उनसे विशेष लाभ उठाना चाहते हैं, जन्म-मरणके चक्रसे छूटना चाहते हैं उनके लिये तो उनकी उपासना की आवश्यकता है ही और उसमें अन्तर एवं प्रकारकी दृष्टिसे तारतम्य भी होता ही है।

किसी कार्यमें प्रेम और आस्तिकबुद्धि होनेसे वह अपने-आप ठीक समयपर और नियमपूर्वक होने लगता है। जो लोग इस प्रकार इन तीनों बातोंका ध्यान रखते हुए श्रद्धा-प्रेमपूर्वक भगवान् सूर्यनारायणकी जीवनभर उपासना करते हैं, उनकी मुक्ति निश्चितरूपसे होती है।†

---

* एवं सन्ध्यां समासाद्य उपासीत यथाविधि। गायत्रीमभ्यसेत्तावद् यावदादित्यदर्शनम्॥
(—हारीतस्मृति ४।१८)

† ([illegible])

ज्योतिर्लिङ्ग सूर्य

(अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीरामानुजाचार्य स्वामी श्रीपुरुषोत्तमाचार्य रङ्गाचार्यजी महाराज)

पुराणोंमें ज्योतिर्लिङ्गका विशिष्ट लिङ्गोंमें परिगणन है। 'ज्योतिर्लिङ्ग' यह समस्त पद है। उसका विग्रह 'ज्योतिश्च तल्लिङ्गं च'—इस प्रकार है। अर्थ है ज्योतिरूप लिङ्ग। इनमें ज्योतिका स्वरूप प्रसिद्ध है। लिङ्गका स्वरूप '**लीनम् अर्थं गमयति इति लिङ्गम्**'—इस व्युत्पत्तिसे हेतु, कार्य और गमन आदि हैं। दर्शनोंमें अमूर्त पदार्थका लिङ्ग मूर्त और 'कारण' को 'लिङ्ग' माना गया है। परंतु '**लयं गच्छति यत्र च**'—इस व्युत्पत्तिसे विज्ञानकी भाषामें सृष्टिका उपादान कारण भी लिङ्ग शब्दसे अभिहित हुआ है। वेदमें क्षर तत्त्वसे मिश्रित अक्षर तत्त्व विश्वका उपादान कारण माना गया है। इस तत्त्वसे ही सञ्चरकालमें सम्पूर्ण विश्व उत्पन्न होता है एवं प्रतिसञ्चरकालमें उसीमें ही लीन हो जाता है, अतः यह '**लयं गच्छति यत्र च**' के आधारसे लिङ्ग शब्दसे अभिहित हुआ है। प्रकृति (क्षर तत्त्व) से आलिङ्गित पुरुष-(अक्षर तत्त्व) का ही स्थूल रूप शिवलिङ्ग है।

नाना लिङ्ग—यह विश्वका उपादान क्षर मिश्रित अक्षर तत्त्व अनन्त प्रकारका है। इसलिये सृष्टि धाराएँ भी अनन्त प्रकारकी हैं। नाना प्रकारकी सृष्टिधाराओंके प्रवर्तक नाना प्रकारके लिङ्गों (अक्षर तत्त्वों) का प्रतिपादन करनेवाला पुराण लिङ्गपुराण है। सृष्टिके इन अनन्त लिङ्गोंमें एक ज्योतिर्लिङ्ग भी है और वह है भगवान् सूर्य। ज्योतिर्लिङ्गरूपी सूर्य भिन्न भिन्न १२ प्रकारकी ज्योतियोंमें समाविष्ट हैं। अतः ज्योतिर्लिङ्गोंकी संख्या भी बारह ही है। यह ज्योतिर्घन सूर्यमण्डल अपने अन्तर्यामी आत्माका अनुमापक होनेसे भी लिङ्ग है और ज्योतिरूप होनेसे 'ज्योतिर्लिङ्ग' है।

किसका लिङ्ग?—सृष्टिके उत्पादक नाना लिङ्गोंमें सूर्यरूप एक ज्योतिर्लिङ्ग भी है। यह कहा गया है, परंतु इस सूर्यमण्डलरूप ज्योतिर्लिङ्गके विषयमें वेदवेत्ताओंके भिन्न भिन्न मत हैं। कतिपय वेदज्ञोंका मत है कि यह सूर्यमण्डलरूप ज्योतिर्लिङ्ग रुद्रका लिङ्ग है, शिवलिङ्ग नहीं, कारण कि सौर उत्ताप रौद्र है, सौम्य नहीं। सूर्यमें रुद्र प्राणोंके परस्पर संघर्षसे उत्ताप उत्पन्न होता है, शिवता (सौम्यता) के साथ इसका विरोध है। अतः उत्तापकर्मशाला सूर्यमण्डल रुद्रलिङ्ग है, शिवलिङ्ग नहीं है।

अन्य वेदज्ञ विद्वानोंका मत है कि यजुर्वेदमें एक ही परमात्माके दो रूप माने गये हैं—घोर और शिव, जैसा कि श्रुति कहती है—'**रुद्रो वा एष यदग्निस्तस्यैते द्वे तन्वौ घोरान्या शिवान्या च।**' इस श्रुतिके अनुसार परमात्माके दो रूप हैं—घोर और शिव। उसका घोररूप अग्नि है और शिवरूप सोम है। उसके घोर-भावके दर्शन अग्नियोंमें और शिवभावके दर्शन सोममें होते हैं। उष्णकालकी उष्णतम वायुमें रौद्रभाव प्रत्यक्ष है। वर्षाकालकी आर्द्रतामें शिवभाव प्रत्यक्ष है। जैसे एक ही वायुके अवस्थाभेदसे दो रूप हैं, वैसे एक ही परमात्माके रुद्र और शिव—ये दो रूप हैं, अतः जो रुद्रलिङ्ग है, वह शिवलिङ्ग भी है। जो शिवलिङ्ग है, वह रुद्रलिङ्ग भी है।

सूर्यमें पचपन रुद्र—वेदवेत्ताओंका मत है कि ज्योतिर्लिङ्गरूप सूर्य पचपन रुद्रप्राणोंकी समष्टि है। इसमें त्रिभुवनके सब पदार्थ प्रतिष्ठित हैं। इस सम्बन्धमें 'ब्रह्मसमन्वयम्'में भी वेदज्ञ विद्वान् गुरुचरण श्रीमधुसूदन झा महोदयका आवेदन है कि सूर्य, चन्द्र और अग्नि—ये तीन ज्योतियाँ उस महेश्वरके तीन नेत्र हैं। यह सूर्यमण्डलात्मक रुद्र-अवतार है।

एकलिंग—

एते च पञ्चाशत् रुद्रा यत्र समाश्रिता ।

तदेक लिङ्गमाख्यात तत्रेद सर्वमाश्रितम् ॥

'प्रतिमुख ग्यारह-ग्यारह कलाओंसे युक्त इस पञ्चाशत् रुद्रकी सब कलाओंका जहाँ एक स्थलमें सन्निपात होता है, वह एकलिङ्ग शब्दसे व्यवहृत है और वह है भगवान् सूर्य। भगवान् सूर्यमें ५५ रुद्रसमाश्रित हैं, अत वे 'एकलिङ्ग' हैं। इस एकलिङ्गमें विश्वके सब पदार्थ समाये हुए है अर्थात् इसमें आरूढ हैं।' राजस्थानमें विराजमान एकलिङ्गजी इस एकलिङ्गजीकी ही प्रतिमा हैं। यह एकलिङ्ग तेजोमय है। अति उग्र है, अति भीषण (भैरव) है। यह सबको तत्क्षण भस्म कर दे, यदि इसके चारों ओर जलका परिभ्रमण न हो। चारों ओरसे जलसे अभिषिक्त होकर यह रुद्र ही साम्ब (सजल) बनकर शान्त होनेसे शिवरूपमें परिणत हो जाता है। इसके मस्तकपर प्राणरूप सत्य ब्रह्मा हैं और नीचे अनन्त रूप विष्णु हैं। इसलिये यह एक ही मूर्ति ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वररूप तीन देव हैं। तीन देवोंसे युक्त इस एक मूर्तिको एक ब्रह्माण्ड कहते हैं। यही सम्पूर्ण विश्व है।

बारह ज्योतिर्लिङ्ग—यह सूर्यज्योति बारह प्रकार की है। इसलिये ज्योतिर्लिङ्ग भी बारह हैं। यह सूर्यमण्डल जिस अमूर्त अक्षर (अन्तर्यामी) का लिङ्ग (गमक) है, वह अमृत अक्षर इसमें विराजमान है। उपनिषदोंमें अक्षरको अन्तर्यामी भी कहा है। यह निश्चित अपने लिङ्ग सूर्यमण्डलमें प्रतिष्ठित है, इसलिये शास्त्रोंमें सूर्यमण्डलमें उसकी उपासना विहित है—

'ध्येय सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती

नारायण सरसिजासनसन्निविष्ट' ।'

मूर्तिमात्र लिङ्ग—लिङ्ग शब्दसे केवल शिवलिङ्ग ही अभिप्रेत है। यह एक भ्रम है। देवताओंकी सब मतियोंको भगवान् कृष्णने लिङ्ग कहा है। महाभागवत भगवान् शंकराचार्यजीने भी विष्णु-मूर्तिके लिये 'परब्रह्म लिङ्ग भजे पाण्डुरङ्गम्'—ऐसा कहा है। श्रीरामानुज सम्प्रदायमें भगवान्की मूर्तियों भी एक अवतार माना है। इसका नाम अर्चावतार है। इन लिङ्गों (मूर्तियों)-के विषयमें गुरुचरण श्रीमधुसूदन झा महाभागका यह यथार्थ विज्ञान है—

यस्य लिङ्गमिय मूर्तिरालिङ्ग तदिह स्थितम् ।

तदमर तदमृत तल्लिङ्गलिङ्गित ध्रुवम् ॥

ज्योतिर्लिङ्गोंके द्वादशतीर्थ

सौराष्ट्रे सोमनाथ च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम् । उज्जयिन्या महाकालमोङ्कारममरेश्वरम् ॥

केदार हिमवत्पृष्ठे डाकिन्या भीमशङ्करम् । वाराणस्या च विश्वेश त्र्यम्बक गौतमीतटे ॥

वैद्यनाथ चिताभूमौ नागेश दारुकावने । सेतुबन्धे च रामेश घुश्मेश च शिवालये ॥

द्वादशैतानि नामानि प्रातरुत्थाय य पठेत् । सप्तजन्मकृत पाप स्मरणेन विनश्यति ॥

एतेषा दर्शनादेव पातक नैव तिष्ठति । कर्मक्षयो भवेत्तस्य यस्य तुष्टो महेश्वरः ॥

(१) सौराष्ट्र प्रदेशमें श्रीसोमनाथ (२) श्रीशैलपर श्रीमल्लिकार्जुन (३) उज्जयिनीमें श्रीमहाकाल (४) (नर्मदा-तटपर) श्रीओंकारेश्वर अथवा अमरेश्वर (५) हिमाच्छादित केदारखण्डमें श्रीकेदारनाथ (६) डाकिनी नामक स्थानमें श्रीभीमशङ्कर, (७) काशीमें श्रीविश्वनाथ, (८) गौतमी (गोदावरी) तटपर त्र्यम्बकेश्वर, (९) चिताभूमिमें श्रीवैद्यनाथ (१०) दारुकावनमें श्रीनागेश (११), सेतुबन्धपर श्रीरामेश्वर और (१२) घुश्मेश्वर—ये द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग हैं, जिनका बड़ा माहात्म्य है। जो कोई नित्य प्रात काल उठकर इन नामोंका पाठ करता है, उसके सात जन्मोंतकके पाप क्षीण हो जाते हैं। इनके दर्शनमात्रसे पापोंका नाश हो जाता है। जिसपर भगवान् शंकर प्रसन्न होते हैं उसके पाप क्षय हुए बिना नहीं रहते। [शङ्कर और सूर्य दोनोंका अभेद प्रतिपादन भी शास्त्रोंमें है। परशुरामें प्राप्त ज्योतिर्लिङ्गोंके ये तीर्थ है। (शिवपु० ज्ञा० स० अ० ३८)]

सुवर्ण । तस्य यथा कप्यास पुण्डरीकमेवमक्षिणी तस्योदिति नाम। स एष सर्वेभ्य पाप्मभ्य उदित ।'

ब्रह्मसूत्रके भाष्यकारोंने 'अन्तस्तद्धर्मोपदेशात्' (१।१।२)—सूत्रका विषय-वाक्य इस श्रुतिको माना है और 'दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्य '—(पा० सू० ४।१।८५) इस पाणिनीयानुशासनके अनुसार ण्यत प्रत्ययान्त आदित्य पदको आदित्यमण्डलका वाचक माना है। आदित्यमण्डलके भीतर रहनेवाले पुरुषको सम्पूर्ण जगतके प्रेरक सूर्य-स्वरूप भगवान् नारायण ही माने गये हैं। प्रकृत श्रुति उन्हीं भगवान् नारायणके मनोहर रूपका वर्णन प्रस्तुत करती है।

आदित्य पदको आदित्यमण्डलका वाचक इसलिये भी माना गया है कि 'य एष एतस्मिन् मण्डले पुरुष' इस बृहदारण्यक श्रुति तथा 'य एष एतस्मिन् मण्डलेऽर्चिषि पुरुष'—इस तैत्तिरीय श्रुतिमें मण्डलवर्ती पुरुषका वर्णन मिलता है। उपर्युक्त आदित्यमण्डलवर्ती पुरुषके नेत्रोंके विशेषणरूपमें आया हुआ 'कप्यास' पद भाष्यकारोंकी दृष्टिमें विचारास्पद है।

श्रीभाष्यकार 'कप्यास' पदको कमलका वाचक मानते हैं। श्रुतप्रकाशिकाकारने कप्यास पदको कमलका वाचक मानते हुए उसकी दो प्रकारकी व्युत्पत्तियाँ दिखलायी हैं—

(१) 'कम् जलम् पिबतीति कपि, तेन आस्यते क्षिप्यते विकास्यते इति कप्यासम्'—इस व्युत्पत्तिका अभिप्राय यह है कि जलको अपनी किरणोंद्वारा शोषण करनेके कारण सूर्य कपि कहलाता है और किरणोंद्वारा विकसित किये जानेके कारण कमल कप्यास कहलाता है।

(२) अथवा जलको ही भीतर पुष्ट होनेवाला कमल-नाल कपिशब्दसे कहा जाता है और उसपर स्थित रहनेके कारण कमलपुष्प कप्यास कहलाता है—'कम् जलम् पिबतीति कपि तत्र आसत उपविशति यत् तत् कप्यासम्।' इस प्रकार आदित्यमण्डलवर्ती पुरुषके नेत्रोंकी उपमा लाल कमलसे उक्त श्रुतिमें बतलायी गयी है।

अब प्रश्न यह उठता है कि आदित्य-मण्डलमें रहनेवाले जिन पुरुषका उपास्यरूपसे वर्णन है, वे कौन हैं?— आदित्यशब्दसे कोई जीव कहा जाता है अथवा परमात्मा? इसके उत्तरमें ब्रह्मसूत्रकार बादरायणका कहना है कि आदित्यमण्डलमें रहनेवाले पुरुषके जो धर्म बतलाये गये हैं, वे धर्म परमात्माके ही हो सकते हैं, जीवके नहीं, क्योंकि श्रुति उसको अकर्मवश्य बतलाती है। छान्दोग्योपनिषद्के आठवें प्रपाठकमें परमात्माको ही अकर्मवश्य बतलाया गया है—'एष आत्माऽपहतपाप्मा।' साथ ही बृहदारण्यकोपनिषद्के अन्तर्यामिब्राह्मणमें आदित्य शब्दाभिधेय जीवसे भिन्न हो आदित्यान्तर्यामी पुरुषको बतलाते हुए महर्षि याज्ञवल्क्य कहते हैं कि जो परमात्मा आदित्यके भीतर रहते हुए आदित्यकी अपेक्षा अन्तरङ्ग हैं, जिन्हें आदित्य भी नहीं जानते और आदित्य जिनके शरीर हैं, जो आदित्यके भीतर रहकर उसका नियमन किया करते हैं, वे ही अमृत परमात्मा तुम्हारे भी अन्तर्यामी हैं।

य आदित्ये तिष्ठन्नादित्यादन्तरो यमादित्यो न वेद यस्यादित्य शरीरं य आदित्यमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृत ॥

अतएव आदित्यमण्डलके उपास्य देवता भगवान् नारायण ही हैं—जिस प्रकार देव आदि शरीरोंके वाचक शब्द देवादि शरीरवाले आत्माके भीतर रहनेवाले अन्तरात्मा परमात्माके भी वाचक होते हैं। यह अन्तरात्मा विज्ञानके पश्चात् ज्ञात होता है।

आदित्यहृदयके १२८वें श्लोकमें बतलाया गया है कि सवितृ-मण्डलके भीतर रहनेवाले पद्मासनपर बैठे हुए केयूर, मकर कुण्डल, किरीटधारी तथा हार पहने, शङ्ख-चक्रधारी स्वर्णके सदृश देदीप्यमान शरीरवाले भगवान् नारायणका सदा ध्यान करना चाहिये।

ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती
नारायणः सरसिजासनसंनिविष्टः ।
केयूरवान् मकरकुण्डलवान् किरीटी
हारी हिरण्मयवपुर्धृतशङ्खचक्रः ॥

सूर्योपनिषद्में सम्पूर्ण जगत्की उत्पत्तिमें एकमात्र कारण सूर्यको ही बतलाया गया है और उन्हींको सम्पूर्ण जगत्की आत्मा तथा ब्रह्म बतलाया गया है— 'सूर्याद् वै खल्विमानि भूतानि जायन्ते । असावादित्यो ब्रह्म ।' सूर्योपनिषद्की श्रुतिके अनुसार सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि तथा उसका पालन सूर्य ही करते हैं । सम्पूर्ण जगत्का लय सूर्यमें ही होता है और जो सूर्य हैं वही मैं हूँ अर्थात् सम्पूर्ण जगत्की अन्तरात्मा सूर्य ही हैं ।

सूर्याद् भवन्ति भूतानि सूर्येण पालितानि तु ।
सूर्ये लयं प्राप्नुवन्ति यः सूर्यः सोऽहमेव च ॥

महासौर सम्प्रदायमें सुरक्षित सूर्यतापिनी-उपनिषद्के अनुसार सूर्य त्रिमूर्त्यात्मक तथा प्रधान देवता हैं ।

वेदोंमें सूर्य

(अनन्तश्रीविभूषित वैष्णवपीठाधीश्वर गोस्वामी श्रीविट्ठलेशजी महाराज)

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥ (ऋ० १ । ११५ । १, शुक्लयजु० १३)

तत्त्वतः वेदोंमें एक एवं अद्वितीय ब्रह्मका ही प्रतिपादन है— 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म ।' जब उसको क्रीडा करनेकी इच्छा हुई तो किसके साथ क्रीडा करे, उसके अतिरिक्त दूसरी कोई वस्तु ही नहीं है । 'एकाकी न रमते द्वितीयमैच्छत्'— इस श्रुतिके अनुसार अकेले ब्रह्मको दूसरेकी अभिलाषा हुई— 'स ऐक्षत एकोऽहं बहु स्याम्', 'सोऽकामयत बहु स्यां प्रजायेय' (तै० उ० २ । ६)—उसने इच्छा की, मैं अकेला हूँ, बहुत हो जाऊँ, उसने कामना की—मैं बहुत हो जाऊँ और सृष्टि करूँ 'आत्मानं स्वयमकुरुत' (तै० उ० २ । ७)— फिर उस ब्रह्मने अपनेको जगद्रूपसे परिणत कर लिया, 'सच्च त्यच्चाभवत्' (तै० उ० २ । ६)—वह स्थावर-जङ्गमरूपमें परिणत हो गया । जगत् ब्रह्मात्मक है और ब्रह्म-सत्तात्मक जो सत्ता है, वह नित्य है । निराधार तमस्में जगत् लय है । 'तदनन्यत्वमारम्भणशब्दादिभ्यः'—इस सूत्रके भाष्यसे स्पष्ट है कि ब्रह्म ही स्थावर-जङ्गमात्मक प्रपञ्चका कारण है, और 'अवयवावयविनोरभेदात्'—इस सिद्धान्तसे कार्यकी कारणात्मकता अभिन्न होनेसे जगत् ब्रह्मरूप होनेसे सत्य सिद्ध होता है । 'वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्'—इस श्रुतिसे भी जगत्की सत्यता सिद्ध होती है । इस जगत्में अन्तर्यामीरूपसे वही प्रविष्ट है । 'तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्'—इस श्रुतिसे जगत् और सभी प्राणियोंके प्रेरक एवं प्रवर्तक वे परमात्मा हैं । वे ही स्थावर जङ्गमात्मक स्वरूपभूत हैं । जगत्, जीव और अन्तर्यामी—ये तीन भगवान्के पर्यायरूप विग्रह हैं । इनमें जगत् जड, जीव चेतन और अन्तर्यामी आनन्दमय है । चेतनके सम्पर्कसे जड भी चेतन-सा प्रतीत होता है और वह ज्योतिर्मय होनेसे त्रिलोकीको प्रकाशित करता है ।

भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक—ये तीनों लोक समष्टि ब्रह्माण्डस्वरूप होनेसे विराट्स्वरूप भगवान्के स्थूल रूप हैं । अतः जगत् सत्य है । उपर्युक्त तीनों लोकोंको प्रकाशित करनेके लिये अग्नि, वायु, सूर्य क्रमशः वे ही क्षिति, अन्तरिक्ष और द्युलोकमें स्थित हैं । ये तीनों देवता उसी परमात्माकी विभूतियाँ हैं । उनमेंसे एक ही प्रधान माना जाता है जो सूर्य कहलाता है । ये सभी भूतोंके अन्तरात्मा हैं—

'एक एव स महानात्मा देवता स सूर्य इत्याचक्षते ।
स हि सर्वभूतात्मा तदुक्तमृषिणा सूर्य आत्मा

जगतस्तस्थुषश्च' (सर्वानुक्रमपरिभाषा १२ । २), 'अन्तर्याम्यधिदैवादिषु तद्धर्मव्यपदेशात्' (ब्र० सू०) इस परमर्षिसूत्रसे सभी देवताओंका अन्तर्यामी परमेश्वर सिद्ध है । इसमें निम्नलिखित श्रुतियाँ प्रमाण हैं—

य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते ।
(छा० उ० १ । ६ । ६)
य एष आदित्ये पुरुषो दृश्यते ।
(छा० उ० ४ । ११ । २)
स यश्चायं पुरुषे यश्चासावादित्ये स एकः ।
(तै० उ० ३ । ४)

'य आदित्ये तिष्ठन्नादित्यादन्तरो यमादित्यो न वेद यस्यादित्यः शरीरम् एष आत्मा अन्तर्याम्यमृतः ।' —इत्यादि श्रुतियाँ प्रमाणित करती हैं कि सभी देवोंके अन्तर्यामी भगवान् हैं । यही कारण है—स्मृतियाँ आत्माकी परिभाषा करती हुई कहती हैं—

यश्चाप्नोति यदादत्ते यच्चात्ति विषयानिह ।
यच्चास्य सततो भावस्तस्मादात्मेति कथ्यते ॥

तजोमय ज्योतिःस्वरूप परमात्मासे तीन ज्योतियाँ निकलीं—अग्नि, वायु, सूर्य । इनमेंसे सर्वाधिक प्रकाशमान सूर्य ही हैं । उस तेजसमूहरूप सूर्य-मण्डलके अन्तर्गत नारायण ही उपास्य हैं । सूर्यका शब्दार्थ है सर्वप्रेरक । षू प्रेरणे (तुदादि) धातुसे 'सुवति कर्मणि तत्तद् व्यापारे लोकं प्रेरयति इति सूर्यः'—इस व्युत्पत्तिमें षू धातुसे क्यप् प्रत्यय एवं रुडागम करनेपर 'सूर्य' शब्द निष्पन्न होता है । अथवा 'सरति आकाशे इति सूर्यः' इस व्युत्पत्तिसे कर्तामें क्यप् प्रत्ययके निपातनसे उत्पन्न करनेपर 'राजसूयसूर्यमृषोद्यरुच्यकुप्यकृष्टपच्याव्यथ्याः' इस पाणिनीय सूत्रसे 'सूर्य' शब्द सिद्ध होता है । वह सर्वप्रकाशक, सर्वप्रेरक तथा सर्वप्रवर्तक होनेसे मित्र, वरुण और अग्निका चक्षु स्थानीय है—'चष्टे इति चक्षुः' । चक्षुषश्चक्षुः—इस श्रुतिसे प्रतिपाद्य है । वह सभीकी चक्षुरिन्द्रियका अधिष्ठाता देव है, उसके बिना कोई भी वस्तु दृश्य नहीं होती । कहा है—

दीप्यति क्रीडति खस्मिन् द्योतते रोचते दिवि ।
यस्माद् देवस्ततः प्रोक्तः स्तूयते देवतासु वै ॥

अतः वही अपने तेजपुञ्जसे तपता हुआ उदित होता है और मृतप्राय सम्पूर्ण जगत् चेतनवत् उपलब्ध होता है, इसलिये वह सभी स्थावर-जङ्गमात्मक प्राणिजातका जीवात्मा है । 'योऽसौ तपन्नुदेति स सर्वेषां भूतानां प्राणानादायोदेति'—इस श्रुतिसे उपर्युक्त विषयकी पुष्टि होती है ।

'य एषोऽन्तरादित्ये०'—इत्यादि श्रुतियोंसे प्रतिपादित सूर्यमण्डलाभिमानी आदित्यदेव हैं और सभी प्राणियोंके हृदय-आकाशमें चिद्रूपसे परमात्मा स्थित हैं तथा जो समस्त उपाधियोंसे रहित परब्रह्म हैं, वे सभी एक ही वस्तु हैं । अतः सूर्य और ब्रह्ममें अनन्यता होनेसे सर्वात्मत्व सिद्ध होता है । 'यदतः परो दिवो ज्योतिर्दीप्यते, यश्चायं पुरुषे यश्चासावादित्ये स एकः'—(तै० उ० ३ । ४) इत्यादि श्रुतियाँ इस बातकी सम्पुष्टि करती हैं कि सूर्यमण्डलके अन्तर्गत नारायणके तेजसे ही सभी ब्रह्माण्डगत सूर्य, चन्द्र, अग्नि और विद्युत् आदि प्रकाश्य वस्तु प्रकाशित होते हैं, क्योंकि वह स्वप्रकाशमान है । उसको अग्निस्फुलिङ्गवत् कोई प्रकाशित नहीं कर सकता है । उपनिषदें कहती हैं—

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥
(मुण्डकोप० २ । २ । १०)

श्रीमद्भगवद्गीतामें योगेश्वर श्रीकृष्ण भगवान्ने भी अर्जुनके प्रति इसकी पुष्टि की है कि ज्योतिर्मय वस्तुओं एवं तृणाग्नियोंमें जो प्रकाश है, वह मेरा ही प्रकाश है—

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् ।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ॥
(१५ । १२)

मूर्धा भुवो भवति नक्तमग्नि-
स्ततः सूर्यो जायते प्रातरुद्यन्।
(ऋ० १० । ८८ । ६)

'भातीति भानुः'—इस व्युत्पत्तिसे 'भानु' शब्द भी सूर्य भानु वाचक है। ये भगवान् के तेजसे दीप्त होकर प्रकाशमान होते हैं तथा अन्तरिक्षमें भ्रमण करते हुए समस्त द्युलोक एवं भूलोकको प्रकाशित करते हैं।

भानुः शुक्रेण शोचिषा व्यद्यौत्
प्रारूरुचद्रोदसी मातरा शुचिः।
(ऋ० ७ । । १२)

सविता सकल जनोंके दुःखका निवारण करनेवाली वृष्टियों उपजानेसे सविता-पद-वाच्य वे ही सूर्यमण्डलमध्यवर्ती नारायण हैं। 'याभिरादित्यस्तपति रश्मिभिस्ताभिः पर्जन्यो वर्षति' (श्रुति) तथा 'आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः'। (स्मृति) एवं 'अष्टौ मासान्निपीतं यद् भूम्याश्चोदमयं वसु। स्वगोभिर्मोक्तुमारेभे पर्जन्यः काल आगते (भा० १० । २० । ५)—प्रभृति पुराणादि वचनोंसे वे ही वर्षा करते हैं अथवा 'सूयते इति सविता' सम्पूर्ण जगत्के प्रसवकर्ता उद्गमस्थानीय हैं। अथवा—'सूते सकलश्रेयांसि ध्यातॄणामसौ सविता' अर्थात् सभी ध्यातृगणोंके सकल श्रेयका कारण होनेसे वे ही सविता पद-वाच्य हैं। 'उद्यन्तमस्तं यान्तमादित्यमभिध्यायन् ब्राह्मणो विद्वान् सकलं भद्रमश्नुते'—यह श्रुति भी इसी बातको प्रमाणित करती है। अदिति देवमाताके उदरसे उत्पन्न होनेके कारण वे ही आदित्य-पदवाच्य हैं। ऋग्वेदमें अदितिके आठ पुत्रोंकी परिगणना है—मित्र, वरुण, धाता, अर्यमा, अंश, भग, विवस्वान् और आदित्य। इनमेंसे आदित्यको मार्तण्ड भी कहते हैं। इस आठवें पुत्रको उत्पन्न और उत्पन्न किया पुनः प्राणियोंके जनन-मरणके लिये उसका आहरण कर लिया, इससे सिद्ध होता है कि प्राणियोंके जनन-मरण सर्वोच्च-सूर्यके अधीन हैं। प्राणिमात्र भास्करसे आयुका आगमन करते आते हैं।

अष्टौ पुत्रासो अदितेर्ये जातास्तन्वस्परि।
देवाँ उप प्रैत् सप्तभिः परा मार्ताण्डमास्यत्॥
सप्तभिः पुत्रैरदितिरुप प्रैत् पूर्व्यं युगम्।
प्रजायै मृत्यवे त्वत् पुनर्मार्ताण्डमाभरत्॥
(ऋ० १० । ७२ । ८-९)

सम्पूर्ण विश्वका प्रसव करनेवाले सब प्रेरक सविता देवता ही अपने नियमन-साधनोंसे, वृष्टि प्रदानादि उपायोंसे पृथ्वीको सुखसे अवस्थित रखते हैं तथा वे ही आलम्बनरहित प्रदेशमें द्युलोकको दृढ़ करते हैं, जिससे नीचे न गिरें। वे ही अन्तरिक्षगत होकर वायवीय पाशोंसे बँधे हुए मेघमय समुद्रको दुहते हैं—

सविता यन्त्रैः पृथिवीमरम्णा-
दस्कम्भने सविता द्यामदृंहत्।
अश्वमिवाधुक्षद्धुनिमन्तरिक्ष-
मतूर्ते बद्धं सविता समुद्रम्॥
(ऋ० १० । १४९ । १)

ये सूर्य केवल सम्पूर्ण विश्वके प्रकाशक, प्रवर्तक, धारक, प्रेरकमात्र ही नहीं, अपितु आरोग्यकारक भी हैं। सूर्यकी उपासनासे दुःस्वप्नसे जनित अनिष्ट एवं ग्रहजन्य पीड़ाका भी परिहार होता है एवं अनेक विघातक राक्षसोंसे भी रक्षा करनेवाले सूर्य हैं। ऋग्वेदमें इसका स्पष्ट प्रमाण है।

येन सूर्य ज्योतिषा बाधसे तमो
जगच्च विश्वमुदियर्षि भानुना।
तेनास्मद्विश्वामनिरामनाहुति-
मपामीवामप दुःष्वप्न्यं सुव॥
विश्वस्य हि प्रेषितो रक्षसि व्रतम्॥
(ऋ० १० । ३७ । ४)

इसी कारण पुराणमूर्धन्य मत्स्यमहापुराणमें कहा है कि—

'आरोग्यं भास्करादिच्छेत्'

इस प्रकार वेदने भगवान् सूर्यको विविधरूपमें देखकर उनके स्वरूपका विशद विवेचन किया है। प्रभु! भगवान् सूर्य हमारी बुद्धियोंको शुभ कर्मोंमें लगायें—

धियो यो नः प्रचोदयात्।

भगवान् विवस्वान्को उपदिष्ट कर्मयोग

(लेखक—श्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

कर्मयोगमें दो शब्द हैं—कर्म और योग। कर्मका अर्थ है करना और योगका अर्थ है समता—'समत्वं योग उच्यते'* अर्थात् समतापूर्वक निष्काम भावसे शास्त्रविहित कर्मोंका आचरण ही कर्मयोग कहलाता है। कर्मयोगमें निषिद्ध कर्मोंका सर्वथा त्याग तथा फल और आसक्तिका त्याग करके विहित कर्मोंका आचरण करना चाहिये। भगवान्ने कहा है—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥
(गीता २। ४७)

'तेरा कर्म करनेमें ही अधिकार है, उसके फलोंमें कभी नहीं। इसलिये तू कर्मोंके फलका हेतु मत बन तथा तेरी कर्म न करनेमें भी आसक्ति न हो।'

मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ, शरीर, पदार्थ, धन-सम्पत्ति आदि जो कुछ भी हमारे पास है, वह सब-का-सब संसारसे, भगवान्से अथवा प्रकृतिसे मिला है। अतः 'अपना' और 'अपने लिये' न होकर संसारका एवं संसारके लिये ही है (अथवा भगवान्का और भगवान्के लिये अथवा प्रकृतिका एवं प्रकृतिके लिये है)—ऐसा मानते हुए निःस्वार्थभावसे दूसरोंको सुख पहुँचाने (अथवा संसारकी सामग्रीको संसारकी ही सेवामें लगा देने) को ही कर्मयोग कहते हैं।

कोई भी मनुष्य क्षणमात्र भी कर्म किये बिना नहीं रह सकता, क्योंकि (संसारकी मूलभूत) प्रकृति निरन्तर क्रियाशील है। अतः प्रकृतिके साथ सम्बन्ध रखनेवाला कोई भी प्राणी क्रियारहित कैसे रह सकता है†। यद्यपि पशु, पक्षी तथा वृक्ष आदि योनियोंमें भी स्वाभाविक क्रियाएँ होती रहती हैं, परंतु फल और आसक्तिका त्याग करके कर्तव्यबुद्धिसे कर्म करनेकी क्षमता उनमें नहीं है, केवल मनुष्ययोनिमें ही ऐसा ज्ञान सुलभ है। वस्तुतः मनुष्य-शरीरका निर्माण ही कर्मयोगके आचरणके लिये हुआ है और इसमें सम्पूर्ण सामग्री केवल कर्म करनेके लिये ही है। जैसा कि सृष्टिके प्रारम्भमें अपनी प्रजाओंको उपदेश देते हुए ब्रह्माजीके शब्दोंमें श्रीभगवान् कहते हैं—

'अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्‡।'
(गीता ३। १०)

'तुम यज्ञ (कर्तव्यकर्म)के द्वारा उन्नतिको प्राप्त करो, यह (कर्तव्यकर्म) तुम्हें कर्तव्यकर्म करनेकी सामग्री प्रदान करनेवाला हो।' मनुष्यको प्रत्येक कर्म कर्तव्यबुद्धिसे ही करना चाहिये (गीता १८। ९)। शास्त्रविहित कर्म करना कर्तव्य है—केवल इस भावसे ममता, आसक्ति और कामनाका त्याग कर कर्म करनेसे वे कर्म बन्धनकारक नहीं होते।

---

* गीता २। ४८। † वही ३। ५।

‡ 'इष्टकामधुक्' का अर्थ है 'कर्तव्यकर्म करनेकी सामग्री प्रदान करनेवाला है'। यहाँ यदि इष् धातुसे 'इष्ट' पदकी निष्पत्ति करेंगे तो इसी श्लोकके पहिले उपक्रम (३। ९)में विरोध होगा, क्योंकि उसमें स्पष्ट कहा है कि कर्तव्यके लिये कर्म करनेके अतिरिक्त कर्म करनेमें बन्धन होगा। फिर अपनी बातको ब्रह्माजीके वचनोंसे पुष्ट करनेहेतु यहाँ सर्गारम्भ करनेसे 'इच्छित भोग-पदार्थकी प्राप्ति करानेवाला' यह अर्थ संगत प्रतीत नहीं होता एवं इसी प्रसङ्गके उपसंहारमें 'भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्' (३। १३)में भी विरोध होगा। अतएव 'इष्ट' पद देवपूजासंगतिकरणदानेषु 'यज्' धातुसे निष्पन्न है, जिसका अर्थ है—कर्तव्यकर्मसे भावित। यज्+क्त, 'वचिस्वपि०'—से सम्प्रसारण, 'व्रश्चभ्रस्ज०'—से 'ज्' को 'ष्', तत् ष्टुत्व—इस प्रकार 'इष्ट' शब्द बना है। इसी प्रकार ३। १२ में भी 'इष्ट' शब्द यज् से ही निष्पन्न समझना चाहिये। "काम्यन्त इति कामाः"। इस व्युत्पत्तिसे काम शब्दका अर्थ पदार्थ एवं [illegible] है।

विवस्वान (सूर्य) और भगवान् नारायण

कर्मयोगका प्रथम

अनुष्ठान करनेपर वह अवश्य ही 'फलप्राप्तिवाला' हो जाता है—'कालेनात्मनि विन्दति' (४ । ३८)

श्रीभगवान्‌ने सर्वसाक्षी सूर्यको सृष्टिके प्रारम्भमें कर्मयोगका उपदेश इसलिये दिया था कि जैसे सूर्यके प्रकाशमें अनेक कर्म होते हैं, किंतु वे उन कर्मोंसे बँध नहीं सकते, क्योंकि सूर्यके प्रकाशमें भले ही वे कर्म हों, परंतु सूर्यका उन कर्मोंसे अपना कोई सम्बन्ध नहीं, वैसे ही चेतनकी साक्षीमें सम्पूर्ण कर्म होनेसे वे (कर्म) बन्धनकारक नहीं होते, हाँ, उनसे यदि सुख चाहकर थोड़ा-सा भी सम्बन्ध होगा तो वह अवश्य ही बन्धनकारक हो जायगा। जैसे सूर्यमें कर्मोंका भोक्तापन नहीं है, वैसे ही कर्तापन भी नहीं है। साथ-ही-साथ नियत कर्मका किसी भी अवस्थामें त्याग न करना तथा नियत समयपर कार्यके लिये तत्पर रहना भी सूर्यकी अपनी विलक्षणता है, जैसे—

'यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः।'
(गीता १३ । ३३)

कर्मयोगीको भी इसी प्रकार अपने नियत कर्मोंको नियत समयपर करनेके लिये तत्पर रहना चाहिये। इसलिये कर्मयोगका वास्तविक अधिकारी सूर्यको जानकर ही श्रीभगवान्‌ने उनको ही सर्वप्रथम कर्मयोगका उपदेश दिया था और उसकी परम्पराका उल्लेख करते हुए इसके विषयको उत्तम रहस्य कहा है—

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्॥
एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परंतप॥
स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम्॥
(गीता ४ । १—३)

'मैंने इस अविनाशी योगको विवस्वान् (सूर्य) से कहा था। सूर्यने अपने पुत्र वैवस्वत मनुसे कहा और मनुने अपने पुत्र राजा इक्ष्वाकुसे कहा। हे परंतप अर्जुन! इस प्रकार परम्परासे प्राप्त इस योगको राजर्षियोंने जाना, किंतु उसके बाद वह योग बहुत कालसे इस पृथ्वीलोकमें लुप्तप्राय हो गया। तू मेरा भक्त और प्रिय सखा है, इसलिये वही यह पुरातन योग आज मैंने तुझे कहा है, क्योंकि यह बड़ा ही उत्तम रहस्य है।'

सृष्टिमें जो सर्वप्रथम उत्पन्न होता है, उसे ही (कर्तव्यका) उपदेश दिया जाता है। उपदेश देनेका तात्पर्य है—कर्तव्यका ज्ञान कराना। सृष्टिक्रममें सर्वप्रथम सूर्यकी उत्पत्ति हुई और फिर सूर्यसे समस्त लोक उत्पन्न हुए। हमारे शास्त्रोंमें सूर्यको 'सविता' कहा गया है, जिसका अर्थ है—उत्पन्न करनेवाला।

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः॥
(मनु० ३ । ७६)

'अग्निमें सम्यक् प्रकारसे समर्पित आहुति सूर्यतक पहुँचती है। सूर्यसे वृष्टि, वृष्टिसे अन्न और अन्नसे प्रजाएँ उत्पन्न होती हैं।' पाश्चात्त्य विज्ञान भी सूर्यको सम्पूर्ण सृष्टिका कारण मानता है। सबको उत्पन्न करनेवाले सूर्यको सर्वप्रथम कर्मयोगका उपदेश [illegible] अभिप्राय उनसे उत्पन्न सम्पूर्ण सृष्टिको परम्परासे कर्मयोग सुलभ करा देना था।

१—'कालेन' इस शब्दमें 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' (पा० सू० २ । ३ । ५) से प्राप्त द्वितीया विभक्तिका [illegible] 'अपवर्गे तृतीया' (पा० सू० २ । ३ । ६) इस सूत्रसे फलप्राप्तिके अर्थमें तृतीया विभक्ति हुई है। यद्यपि उक्त सूत्रके द्वारा कालवाचक शब्दोंमें तृतीया विधान है, तथापि [illegible] [illegible] आदि शब्दोंका ही प्रयोग होता है। अतः 'कालेन' ([illegible] । ६) एवं 'कालेन' (४ । ३ [illegible]) से यह ध्वनित होता है कि कर्मयोगसे शीघ्र तथा अवश्य परमात्मप्राप्ति होती है—इसमें सन्देह नहीं।

२ [illegible] [illegible] इति [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible]

प्रजाके हितमें उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति रहती थी। कर्मयोगका पालन करनेके कारण राजाओंमें इतना विलक्षण ज्ञान होता था कि बड़े-बड़े ऋषि भी ज्ञानप्राप्त करनेके लिये उनके पास जाया करते थे। श्रीवेदव्यासजीके पुत्र शुकदेवजी भी ज्ञानप्राप्तिके लिये राजर्षि जनकके पास गये थे। छान्दोग्योपनिषद्के पाँचवें अध्यायमें भी आता है कि ब्रह्मविद्या सीखनेके लिये कई ऋषि एक साथ महाराज अश्वपतिके पास गये थे।

शङ्का—जिसे ज्ञान नहीं होता, उसीको उपदेश दिया जाता है। सूर्य तो स्वयं ज्ञानस्वरूप भगवान् ही हैं, फिर उन्हें उपदेश देनेकी क्या आवश्यकता थी?

समाधान—जिस प्रकार अर्जुन महान् ज्ञानी नर ऋषिके अवतार थे, परंतु लोकसंग्रहके लिये उन्हें भी उपदेश देनेकी आवश्यकता हुई। ठीक उसी प्रकार भगवान्ने सूर्यको उपदेश दिया—जिसके फलस्वरूप संसारका महान् उपकार हुआ और हो रहा है।

वास्तवमें नारायणके रूपमें उपदेश देना और सूर्यके रूपमें उपदेश ग्रहण करना जगन्नाट्यसूत्रधार भगवान्की एक लीला ही समझनी चाहिये, जो कि संसारके हितके लिये बहुत आवश्यक थी।

भगवान् श्रीसूर्यको नित्यप्रति जल दिया करो

(काशीके सिद्ध संत ब्रह्मलीन पूज्य श्रीहरिहर बाबाजी महाराजके सदुपदेश)

श्रीविश्वनाथपुरी काशीमें ब्रह्मलीन प्रातःस्मरणीय सिद्धसंत श्रीहरिहर बाबाजी अस्सी घाटपर पतितपावनी भगवती भागीरथीजीमें नौकापर दिगम्बररूपमें रहा करते थे। बड़े-बड़े राजा-महाराज, विद्वान्, संत-महात्मा आपके दर्शनार्थ आया करते थे। पूज्य महामना मालवीयजी महाराज तो आपको साक्षात् शंकरस्वरूप ही मानकर सदा श्रद्धासे आपके श्रीचरणोंमें नतमस्तक हुआ करते थे। आपने बहुत कालतक श्रीगङ्गाजीमें खड़े होकर भगवान् श्रीसूर्यकी ओर मुख करके घोर अमोघ तपस्या की थी। आपके दर्शनार्थ जो भी जाता था, उसे आप (१) श्रीरामनाम जपने और (२) भगवान् श्रीसूर्यको जल देनेका उपदेश दिया करते थे। संतस्वभाववश कृपापूर्वक आपने हजारों मनुष्योंको निष्ठासे सूर्याराधना एवं सूर्यके रूपमें परमात्माकी भक्ति करना सिखाया था। आपका उपदेश होता था—नित्य प्रति श्रीसूर्यको जल दिया करो। प्रश्नोत्तर-रूपमें उनके उपदेशके दो प्रसंग दिये जा रहे हैं—

(१) प्रश्न—पूज्यपाद बाबाजी! हमारा कल्याण कैसे होगा?

पूज्य बाबा—तुम किस जातिके हो?

महाराजजी—मैं तो जातिका वैश्य हूँ।

पूज्य बाबा—तुम नित्यप्रति स्नान करके, लोटेमें जल लेकर भगवान् श्रीसूर्यनारायणको जल दिया करो और भगवान् सूर्यको नित्यप्रति भक्तिभावसहित हाथ जोड़कर प्रणाम किया करो। कम-से-कम एक माला रामनाम जपा करो, इसके साथ ही अपना जीवन धर्ममय बनाओ। यही तुम्हारे कल्याणका मार्ग है।

(२) एक स्त्री—महाराजजी! हम स्त्रियोंके कल्याणका साधन क्या है?

पूज्य बाबा—तुम अपने पूज्य पतिकी श्रद्धासे सेवा किया करो। साथ-साथ तुम भी भगवान् सूर्यनारायणको नित्यप्रति जलका अर्घ्य दिया करो। भगवान्‌के नामका जप, जब भी समय मिले, अवश्य कर लिया करो। ऐसा करनेसे अन्तःकरण शुद्ध होकर भगवान्‌की कृपासे निश्चय ही आत्मकल्याण होगा।

अपने कर्तव्यका पालन करते हैं। प्रेरणा और ज्ञानके बिना कर्तव्य पालनमें प्रवृत्ति नहीं होती। किसी किसीके मतमें युग शब्दका अर्थ युग्म—जोड़ा अर्थात् पति-पत्नी है। इस पक्षमें अर्थ होगा—दोनों मिलकर पूरी शक्तिसे कर्तव्य-कर्मका पालन करते हैं।

मर्त—इस शब्दका अर्थ है—मरणशील मनुष्य।

भद्रम्—'भवद् रमयति' अर्थात् जो होनेके साथ ही कल्याणकारी हो। तात्पर्य यह है कि मनुष्यको अन्तर्यामीकी प्रेरणासे कर्म करना चाहिये, अज्ञान-अन्धकारमें नहीं। अपना उद्देश्य मङ्गल हो कर्म मङ्गलमय हो, मङ्गलमयकी पूजा हो।

भद्रा अश्वा हरितः सूर्यस्य
चित्रा एतग्वा अनुमाद्यासः।
नमस्यन्तो दिव आ पृष्ठमस्थुः
परि द्यावापृथिवी यन्ति सद्यः॥

'सूर्यकी यह रश्मि मण्डल अश्वके समान उन्हें सर्वत्र पहुँचानेवाला चित्र विचित्र एवं कल्याणरूप है। यह प्रतिदिन अपने पथपर ही चलता है और अर्चनीय तथा वन्दनीय है। यह सबको नमना है नमनकी प्रेरणा देता है और स्वयं द्युलोकके ऊपर निवास करता है। यह तत्काल द्युलोक और पृथ्वीका परिभ्रमण कर लेता है।'

विवेचन—

इस मन्त्रमें रश्मि-मण्डलके ब्याजसे मानव-समाजके उन्नति पथका निर्देश है। मनमें कल्याण-भावना हो। जीवन गतिशील हो। प्रकाशमयी दृष्टि हो। परिस्थितिका ध्यान हो। परम्परासे अनुभूत हो। जनताका अनुकूलता हो हृदयमें विनय हो। लोकदृष्टिसे प्रशस्त हो। ऐसा चरित उन्नतिशील और त्वरित गतिसे बढ़ता है और सारे विश्वको व्याप्त कर लेता है।

तत् सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं
मध्या कर्तोर्विततं सं जभार।
यदेदयुक्त हरितः सधस्थाद्
आद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै॥

'सर्वान्तर्यामी प्रेरक सूर्यका यह ईश्वरत्व और महत्त्व है कि वे प्रारम्भ किये हुए, किंतु अपरिसमाप्त कृष्यादि कर्मको ज्यों-का-त्यों छोड़कर अस्ताचल जाते समय अपनी किरणोंको इस लोकसे अपने आपमें समेट लेते हैं। साथ ही उसी समय अपने रसाकर्षी किरणों और घोड़ोंको एक स्थानसे खींचकर दूसरे स्थानपर नियुक्त कर देते हैं। उसी समय रात्रि अन्धकारके ढक्कनसे सबको ढक देती है।'

विवेचन—

सूर्यकी स्वतन्त्रता ही ईश्वरता है। वे कर्मासक्त नहीं हैं। स्वतन्त्रतासे कर्म पूरा होनेके पहले ही उसे छोड़ देते हैं। कर्म-पूर्तिकी अपेक्षा या प्रतीक्षा नहीं करते। ठीक इसी प्रकार मनुष्यको चाहिये कि वह फलासक्तिसे तो दूर रहे ही, कर्मासक्तिसे भी बचे। आजतक सृष्टिके कर्म कितने पूरे किये हैं? केवल कालका पेट भरते हुए अपने कर्तव्य करते चलना चाहिये। कर्तव्य कर्म छोड़ना नहीं चाहिये।

सूर्यकी महिमा अथवा माहात्म्य यह है कि इन फैले हुए किरणोंको समेट लेना बड़े-बड़े देवताओंके लिये भी महान् प्रयत्न और लम्बे समयके द्वारा भी साध्य नहीं है, किंतु सूर्य उन्हें बिना परिश्रमके तत्काल उपसंहृत कर लेते हैं। मनुष्यको अपने कर्मजाल उतना ही फैलाना चाहिये जितना वह अनायास और तत्काल समेट सकता हो, अन्यथा वह अपने फैलाये जालमें स्वयं फँस जायगा। सूर्यका यह स्वातन्त्र्य और सामर्थ्य ही उनका देवत्व अथवा ईश्वरत्व है।

सूर्यकी उपस्थिति ही ज्ञान प्रकाशका विस्तार करती है, दिन होता है। लोग कर्म करते हैं। उनकी अनुपस्थिति अज्ञानान्धकार है उसमें लोग अपने कर्तव्य कर्म छोड़ देते हैं। यही रात्रि है।

ऋग्वेदीय सूर्यसूक्त

(—अनन्तश्रीस्वामी श्रीअखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज)

ॐ चित्रं देवानामुदगादनीकं
चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं
सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥

'प्रकाशमान रश्मियोंका समूह अथवा राशि-राशि देवगण सूर्यमण्डलके रूपमें उदित हो रहे हैं । यह मित्र, वरुण, अग्नि और सम्पूर्ण विश्वके प्रकाशक ज्योतिर्मय नेत्र हैं । इन्होंने उदित होकर द्युलोक, पृथ्वी और अन्तरिक्षको अपने देदीप्यमान तेजसे सर्वत्र परिपूर्ण कर दिया है । इस मण्डलमें जो सूर्य हैं, वह अन्तर्यामी होनेके कारण सबके प्रेरक परमात्मा हैं तथा जङ्गम एवं स्थावर सृष्टिके आत्मा हैं ।'

व्याख्या—

चित्रम्—इस शब्दका अर्थ सायणने आश्चर्य कर दिया है । स्कन्दस्वामीने 'विचित्र विचित्र' और पूज्य वेङ्कटमाधवने चयनीय अर्थात् चयन करने योग्य कहा है । मुद्गल सायणसे सहमत है । चयनीय अर्थ वैज्ञानिक पक्षका है । किरणोंके चयनसे नाना प्रकारके व्यावहारिक कार्य सिद्ध हो सकते हैं । ऊर्जा चयन उसी सत्कर्मका कार्य है ।

देवानाम्—क्षीरस्वामी, माधव आदिके अनुसार 'दिवु' धातु अनेक अर्थोंमें प्रसिद्ध है—क्रीडा, विजिगीषा, व्यवहार, द्युति स्तुति मोद, मद, स्वप्न, कान्ति, गति, यथायोग्य सभी अर्थोंमें जोड़ सकते हैं ।

सूर्य आत्मा—सूर्य सम्पूर्ण स्थावर-जङ्गमात्मक कार्यवर्गके कारण हैं । कार्य कारणसे अतिरिक्त नहीं होता (ब्रह्मसूत्र २ । १ । १४) । चराचर जगत्‌के नायक-दाता होनेसे सूर्यको आत्मा कहा है । सूर्योदय होनेपर निश्चेष्ट जगत् चेतनयुक्त—सचेष्ट हो जाता है । सूर्य सबका प्राण अपने साथ लेकर आते हैं (ऐतरेय आ० २ । ४ । १ ।)।

आप्रा—यह 'प्रा पूरणे' धातुका लङ्का रूप है । अर्थ है—भर देना है, तर कर देना है ।

जो सबका आत्मा है, वही सब शरीरोंमें फुरने 'मैं-मैं'का एक आत्मा है । अर्थात् सूर्यान्तर्यामी अन्तःकरणान्तर्यामी चैतन्य उपाधिनिर्मुक्त दृष्टिसे एक हैं । सूर्य शब्दका मूल है 'सृ' धातु, जिसका अर्थ है अथवा 'षु' धातु जिसका अर्थ प्रेरणा है—'धियो यो नः प्रचोदयात्'। तात्पर्य यह कि प्रेरक परमात्मा सूर्य हैं ।

सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां
मर्यो न योषामभ्येति पश्चात् ।
यत्रा नरो देवयन्तो युगानि
वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम् ॥

सूर्य गुणमयी एवं प्रकाशमान उषादेवीके पीछे-पीछे चलते हैं—जैसे कोई मनुष्य सर्वाङ्गसुन्दरी युवतीका अनुगमन करे । जब सुन्दरी उषा प्रकट होती है । प्रकाशक उनका सूर्यकी आराधना करनेके लिये कर्मनिष्ठ मनुष्य अपने कर्तव्य-कर्मका सम्पादन करते हैं । सूर्य कल्याणरूप हैं और उनकी आराधनासे कर्तव्य-कर्मके पालनसे कल्याणकी प्राप्ति होती है ।

व्याख्या—

देवीम्—दानादि-गुणयुक्त ।

युगानि—'युग' शब्द कालका वाचक है । इससे तत्तत्-कालके कर्तव्य लक्षित होते हैं, जैसे—दर्शपूर्णमास अग्निहोत्र आदि । 'युग' शब्दका दूसरा अर्थ है—हलके या रथके अवयव (जुए) जिन्हें बैलके कन्धेपर रखते हैं । प्रातःकाल किसान लोग जुए लेकर खेती करनेके लिये घरसे निकलते हैं । अभिप्राय यह है कि अन्तर्यामीकी प्रेरणासे सूर्यके प्रकाशमें लोग अपने-

अपने कर्तव्यका वहन करते हैं । प्रेरणा और ज्ञानके बिना कर्तव्य-पालनमें प्रवृत्ति नहीं होती । किसी किसीके मतमें युग शब्दका अर्थ युग्म—जोड़ा अर्थात् पति-पत्नी है । इस पक्षमें अर्थ होगा—दोनों मिलकर पूरी शक्तिसे कर्तव्य-धर्मका पालन करते हैं ।

मर्त्य—इस शब्दका अर्थ है—मरणशील मनुष्य ।

भद्रम्—'भयद् रमयति' अर्थात् जो होनेके साथ ही कल्याणकारी हो । तात्पर्य यह है कि मनुष्यको अन्तर्यामीकी प्रेरणासे कर्म करना चाहिये, अज्ञान अन्धकारमें नहीं । अपना उद्देश्य मङ्गल हो कर्म मङ्गलमय हो, मङ्गलमयकी पूजा हो ।

भद्रा अश्वा हरितः सूर्यस्य
चित्रा एतग्वा अनुमाद्यासः ।
नमस्यन्तो दिव आ पृष्ठमस्थुः
परि द्यावापृथिवी यन्ति सद्यः ॥

'सूर्यका यह रश्मि-मण्डल अश्वके समान उन्हें सर्वत्र पहुँचानेवाला चित्र-विचित्र एवं कल्याणरूप है । यह प्रतिदिन अपने पथपर ही चलता है और अर्चनीय तथा वन्दनीय है । यह सबको नमता है, नमनकी प्रेरणा देता है और स्वयं द्युलोकके ऊपर निवास करता है । यह तत्काल द्युलोक और पृथ्वीका परिभ्रमण कर लेता है ।'

विवेचन—

इस मन्त्रमें रश्मि-मण्डलके व्याजसे मानव-समाजके उन्नति-पथका निर्देश है । मनमें कल्याण-भावना हो । जीवन गतिशील हो । प्रकाशमयी दृष्टि हो । परिस्थितिका ध्यान हो । परम्परासे अनुभूत हो । जनताकी अनुकूलता हो, हृदयमें विनय हो । लोकदृष्टिमें प्रणम्य हो । ऐसा चरित्र उन्नतिकी ओर त्वरित गतिसे बढ़ता है और सारे विश्वको व्याप्त कर लेता है ।

तत् सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं
मध्या कर्तोर्विततं सं जभार ।
यदेदयुक्त हरितः सधस्था
दाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ॥

'सर्वान्तर्यामी प्रेरक सूर्यका यह ईश्वरत्व और महत्त्व है कि वे प्रारम्भ किये हुए, किंतु अपरिसमाप्त कृत्यादि कर्मको ज्यों-का-त्यों छोड़कर अस्ताचल जाते समय अपनी किरणोंको इस लोकसे अपने आपमें समेट लेते हैं । साथ ही उसी समय अपने रसाकर्षी किरणों और घोड़ोंको एक स्थानसे खींचकर दूसरे स्थानपर नियुक्त कर देते हैं । उसी समय रात्रि अन्धकारके ढक्कनसे सबको ढक लेती है ।'

विवेचन—

सूर्यकी स्वतन्त्रता ही ईश्वरता है । वे कर्मासक्त नहीं हैं । स्वतन्त्रतासे कर्म पूरा होनेके पहले ही उसे छोड़ देते हैं । कर्म पूर्तिकी अपेक्षा या प्रतीक्षा नहीं करते । ठीक इसी प्रकार मनुष्यको चाहिये कि वह फलासक्तिसे तो दूर रहे ही, कर्मासक्तिसे भी बचे । आजतक सृष्टिके कर्म किसने पूरे किये हैं ? केवल कालका पेट भरते हुए अपने कर्तव्य करते चलना चाहिये । कर्तव्य कर्म छोड़ना नहीं चाहिये ।

सूर्यकी महिमा अथवा माहात्म्य यह है कि इन फैली हुई किरणोंको समेट लेना बड़े-बड़े देवताओंके लिये भी महान् प्रयत्न और लम्बे समयके द्वारा भी साध्य नहीं है, किंतु सूर्य उन्हें बिना परिश्रमके तत्काल उपसंहृत कर लेते हैं । मनुष्यको अपने कर्मोंका जाल उतना ही फैलाना चाहिये, जितना वह अनायास और तत्काल समेट सकता हो, अन्यथा वह अपने फैलाये जालमें स्वयं फँस जायगा । सूर्यका यह स्वातन्त्र्य और सामर्थ्य ही उनका देवत्व अथवा महत्त्व है ।

सूर्यकी उपस्थिति ही मानो प्रकाशका विस्तार करती है, दिन होता है । लोग कर्म करते हैं । उनकी अनुपस्थिति अज्ञानान्धकार है, उसमें लोग अपने कर्तव्य कर्म छोड़ देते हैं । वही रात्रि है ।

व्याख्या—

कर्तु-पद कर्मका वाचक है। स जभार- इसमें 'ह' का 'भ' हो गया है। सधस्थ-सह स्थान अथवा रथ। सिम-सर्व।

तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे
सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे।
अनन्तमन्यद् रुशदस्य पाजः
कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति॥

'प्रत्यक्ष सूर्य प्रातःकाल मित्र, वरुण और समग्र सृष्टिको सामनेसे प्रकाशित करनेके लिये प्राचीन आकाशीय क्षितिजमें अपना प्रकाशक रूप प्रकट करते हैं। इनकी रसभोजी रश्मियाँ अथवा हरे घोड़े बलशाली रात्रिकालीन अन्धकारके निवारणमें समर्थ विलक्षण तेज धारण करते हैं। उन्हींके अन्यत्र जानेसे रात्रिमें काले अन्धकारकी सृष्टि होती है।'

विवेचन—

दिनका देवता मित्र है, रात्रिका वरुण। इनसे सभी जगत् उपलक्षित होता है। सूर्य दोनों देवताओं तथा जगत्के प्रकाशक एवं प्रेरक हैं। दिन और रात—दोनोंका विभाग सूर्यसे ही होता है।

पाजः—यह रक्षणार्थक 'पा' धातुसे बना रूप है। इसका अर्थ है बल। इसका कभी अन्त नहीं होता। सम्पूर्ण जगत्में व्यापक और देदीप्यमान है। यह बल ही प्रकाशका आनयन और अपनयन करता है। यहाँ यह कहा गया कि सूर्यकी किरणोंमें ही इतना बल है तब सूर्यकी महिमाका गान कोई नहीं कर सकता है।

स्कन्द स्वामीने कहा है कि जब सूर्य मेरुसे व्यवहित होते हैं तब तमकी सृष्टि करते हैं, इसलिये देशान्तरस्थ सूर्यका ही रूप तम है।

सूर्यका भौतिक रूप सूर्यमण्डल है। आधिदैविक रूप तदन्तर्यामी पुरुष है। आध्यात्मिक पुरुष नयनस्थ ज्योतिर्मय द्रष्टा है। नामरूपात्मक उपाधिके पृथक्करण सूर्य सब ही है।

अद्या देवा उदिता सूर्यस्य निरंहसः
पिपृता निरवद्यात्।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः
सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः॥
(—ऋग्वेद सं० १। ११५। ५-६)

'हे प्रकाशमान सूर्यरश्मियो! आज सूर्योदयके समय इधर-उधर बिखरकर तुम लोग हमें पापोंसे निकाल कर बचा लो। न केवल पापसे ही, प्रत्युत जो कुछ निन्दित है, गर्हणीय है, दुःख-दारिद्र्य है, सबसे हमारी रक्षा करो। जो कुछ हमने कहा है, मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथ्वी और द्युलोकके अधिष्ठातृ देवता उसका आदर करें, अनुमोदन करें, वे भी हमारी रक्षा करें।'

विवेचन—

प्रातःकालीन प्रार्थनामें रात्रि-सञ्चित समग्र शक्तियोंका सन्निवेश हो जाता है। प्रार्थनामें बल और ऊर्जा आ जाता है। यह जीवन निर्माणके लिये एक सुनहरा अवसर है। प्रार्थनासे भावना पवित्र होती है,

'मित्र' मृत्युसे बचानेवाला अभिमानी देवता है और वरुण अनिष्टोंका निवारक रात्रि अभिमानी। अदिति अखण्डनीय अथवा अदीन देवमाता हैं। सिन्धु स्यन्दनशील जलका अभिमानी देवता है और पृथिवी भूलोकका अधिष्ठातृ देवता है, द्यौ द्युलोकका देवता है।

इन सब देवताओंसे प्रार्थना करनेका अर्थ है—हमारे जीवनमें पापकर्म, दुःख-दारिद्र्य और गर्हणीयके लिये कोई स्थान न रह जाय और हम शुद्ध सच्चरित्र, कर्मण्य एवं अभ्युदयशील होकर ज्योतिर्मय प्रकाशका साक्षात्कार करनेके अधिकारी हो जायँ।

श्रीसूर्यदेवका विवेचन

(श्रीपीताम्बरापीठस्थ राष्ट्रगुरु श्री १००८ श्रीस्वामीजी महाराज, दतिया)

आकृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च ।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥
(ऋग्वेद १ । ३५ । २)

यह वैदिक मन्त्र भगवान् सूर्यकी पूजामें विनियुक्त है। इसमें उनके धाम एवं स्थितिका वर्णन है। कृष्णवर्ण रजोगुणके द्वारा वे संसारमें अमृत और मरण दोनोंके नियामक हैं। हिरण्यरूप रथके ऊपर बैठे हुए ऐसे सविता (देव) सब जगत्के प्रेक्षक एवं प्रेरक हैं। चौदह भुवनोंको देखते हुए वे अपना व्यवहार कार्य कर रहे हैं। विद्वानोंकी मान्यता है कि कालका नियमन चन्द्र और सूर्य दोनोंके द्वारा हो रहा है। सूर्य दिनके स्वामी तथा चन्द्रमा रात्रि—विशेषकर तिथि-नक्षत्रोंके स्वामी हैं। तिथियाँ सोलह हैं, ये ही चन्द्रमाकी षोडश कलाएँ हैं। सूर्यकी द्वादश कलाएँ हैं जिनसे सौरवर्षके बारह मास निर्मित होते हैं। प्रत्येक मासमें कृष्ण और शुक्ल दो पक्ष आते हैं। स्वरोदयशास्त्रमें भी कृष्णपक्ष सूर्यका और शुक्लपक्ष चन्द्रमाका माना गया है। मन्त्रमें जो 'आकृष्णेन' पद आया है, उससे यह बात स्पष्ट होती है। योगशास्त्रमें इडा पिङ्गला जो दो नाडियाँ हैं, उनमें इडा चन्द्रमाकी तथा पिङ्गला सूर्यकी नाडी मानी गयी है। नियमानुसार इन्हीं दो नाडियोंमें पाँचों तत्त्वोंका प्रवाह होता है। आनन्द और क्रियाके अधिष्ठान चन्द्र हैं। ज्ञानके अधिष्ठान सूर्य हैं। इन्हीं सूर्यके ध्यानमें—

आदित्यं सर्वकर्तारं कलाद्वादशसंयुतम् ।
पद्महस्तद्वयं वन्दे सर्वलोकैकभास्करम् ॥

—इत्यादि श्लोक पढ़े गये हैं, जो मन्त्रार्थको स्पष्ट करते हैं। इसीलिये महर्षि पतञ्जलिने योगदर्शन विभूतिपाद २६में—'भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात्' सूर्यमें संयम करनेसे भुवनोंका ज्ञान होता है—कहा है। यह मन्त्रांश भी—'भुवनानि पश्यन्' पदको स्पष्ट करता है। सत्ताईस नक्षत्र, बारह राशियाँ और नवग्रह—ये सब काल-तत्त्वके सूचक हैं। इनमें सूर्य प्रधान हैं। कालतत्त्व इन्हींके द्वारा नियमन करता है। भगवान् सूर्यके वैदिक पक्षका यह परिचय है।

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च—सम्पूर्ण चराचर जगत्की आत्मा सूर्य हैं। आध्यात्मिक पक्षमें जिसे साधना-मार्गमें परालिङ्ग कहते हैं, शिवका सर्वोत्कृष्ट रूप है। इसमें शिव और विष्णुका अभेद रूप है। इसीको उपनिषदों तथा पुराणोंमें विष्णुका परम पद कहा है—**'तद् विष्णोः परमं पदम्।'**

जब यही परमतत्त्व भक्तोंकी रक्षा, धर्मकी स्थापना और दुष्टोंके दमनार्थ चन्द्रमण्डलसे आविर्भूत होता है, तब उसे श्रीकृष्णचन्द्र कहते हैं। सूर्यमण्डलसे प्रकट होनेवाला यही परम तत्त्व श्रीरामचन्द्र हैं। तन्त्रसाधनामें ऐसा माना जाता है कि चन्द्रमण्डलसे आविर्भूत होनेवाला परमतत्त्व आनन्द, भैरव है। सूर्यमण्डलसे प्रकट होनेवाले शिवके द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग हैं, अग्निमण्डलकी सप्त जिह्वाएँ हैं। इसका मुण्डकोपनिषद्में इस प्रकार वर्णन है—

काली कराली च मनोजवा च
सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा ।
विस्फुलिङ्गिनी विश्वरुची च देवी
लेलायमाना इति सप्त जिह्वाः ॥
(२ । ४)

इनसे प्रकट होनेवाले सप्त भैरव हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—मन्थानभैरव, षट्कालभैरव, षट्चक्रभैरव, व्यापकभैरव, हरिसिद्धभैरव, चण्डभैरव और भ्रमरभास्करभैरव।

महात्मा तुलसीदासजीने रामायणमें श्रीरामजी एवं शिवजीका अभेदसम्बन्ध प्रतिपादन किया है। इसपर

पुराणोंमें भी स्पष्टरूपसे वर्णन आया है। मन्त्रमें आये अमृतपदसे उक्त आध्यात्मिक स्वरूप और मर्त्यपदसे समाष्टिक जीवन-मरण स्वभावत स्पष्ट है। तान्त्रिक साधनामें इसी परमतत्त्वको इस प्रकार बताया गया है—

> चित्रभानुशशिभानुपूर्वका
> त्रिविवेकेण नियतेषु वस्तुषु।
> तत्तदात्मकतया विमर्शन
> तत्समष्टिगुरुपादुकाजप ॥
> (चिद्विलास ७)

अग्नि चन्द्र, सूर्य ये तीन त्रिबिन्दु प्रत्येक तत्त्व एव पदार्थमें विद्यमान हैं। इन तीनोंका समष्टिरूप ही परब्रह्म स्वरूप गुरुका स्मरण है। चन्द्रबिन्दुसे श्रीकृष्ण, सूर्य बिन्दुसे श्रीराम तथा अग्निबिन्दुसे श्रीपरशुराम-अवतार माने गये हैं। तीनोंकी एकता उस परमतत्त्वमें बताया गयी है। इनका आराधन करनेसे जीवका सर्वप्रकारका कल्याण होता है। शब्दब्रह्मका आविर्भाव भी उक्त तीनों मण्डलोंसे हुआ है। चन्द्रमण्डलसे षोडश सूर्यमण्डलसे चौबीस व्यञ्जन तथा अग्निमण्डलसे आठ तक आविर्भूत हुए हैं। मन्वर्ग बिन्दुस्थानीय इसी शब्दब्रह्मसे समस्त व्यावहारिक ज्ञान होता है।

गीता (१५।१२)में भगवान् श्रीकृष्णने कहा है:

> यदादित्यगत तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्
> यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्

'जो चन्द्र, सूर्य और अग्निमें तेज है, वह मैं; यह मेरा ही स्वरूप है।' (वस्तुत सभी तेजस्वी प उसीके तेजसे अनुप्राणित हैं।)

'आरोग्य भास्करादिच्छेत्' (म० पु०) मानसि और बाह्य दोनों रोगोंकी निवृत्ति भगवान् सूर्य उपासनासे हो जाती है। और भी सूर्यभगवान् अनेक रहस्य हैं, जो साधना करनेवालोंको व्यक्त जाते हैं। अत सूर्याराधन आवश्यक कर्तव्य है।

प्रभाकर नमोऽस्तु ते

[श्रीशिवप्रोक्त सूर्याष्टकम्]

आदिदेव नमस्तुभ्य प्रसीद मम भास्कर। दिवाकर नमस्तुभ्य प्रभाकर नमोऽस्तु ते ॥ १ ॥
सप्ताश्वरथमारूढ प्रचण्ड कश्यपात्मजम्। श्वेतपद्मधर देव त सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥ २ ॥
लोहित रथमारूढ सर्वलोकपितामहम्। महापापहर देव त सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥ ३ ॥
त्रैगुण्य च महाशूर ब्रह्मविष्णुमहेश्वरम्। महापापहर देव त सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥ ४ ॥
बृंहित तेज पुञ्ज च वायुमाकाशमेव च। प्रभु च सर्वलोकाना त सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥ ५ ॥
बन्धूकपुष्पसकाश हारकुण्डलभूषितम्। एकचक्रधर देव त सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥ ६ ॥
त सूर्यं जगत्कर्तार महातेज प्रदीपनम्। महापापहर देव त सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥ ७ ॥
त सूर्यं जगता नाथ ज्ञानविज्ञानमोक्षदम्। महापापहर देव त सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥ ८ ॥

इति श्रीशिवप्रोक्त सूर्याष्टक सम्पूर्णम्।

हे आदिदेव भास्कर! आपको प्रणाम है। हे दिवाकर! आपको नमस्कार है। हे प्रभाकर! आपको प्रणाम है, आप मुझपर प्रसन्न हों ॥ १ ॥ सात घोड़ोंवाले रथपर आरूढ, हाथमें श्वेत कमल धारण किये हुए, प्रचण्ड तेजस्वी कश्यपकुमार सूर्यको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ २ ॥ लोहित वर्णके रथपर आरूढ सर्वलोकपितामह महापापहारी श्रीसूर्यदेवको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ३ ॥ जो त्रिगुणमय-ब्रह्मा, विष्णु और शिवस्वरूप हैं उन महापापहारी महान् वीर श्रीसूर्यदेवको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ४ ॥ जो बढ़े हुए तेजके पुञ्ज और वायु तथा आकाशके स्वरूप हैं, उन समस्त लोकोंके अधिपति भगवान् सूर्यको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ५ ॥ जो बन्धूक (दुपहरिया) पुष्पके समान रक्तवर्ण हैं और हार तथा कुण्डलोंसे विभूषित हैं उन एक चक्रधारी श्रीसूर्यदेवको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ६ ॥ महान् तेजके प्रकाशक, जगत्के कर्ता, महापापहारी उन सूर्यभगवान्‌को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ७ ॥ ज्ञान-विज्ञान तथा मोक्षके प्रदाता, बड़े-से-बड़े पापोंके अपहरणकर्ता, जगत्‌के स्वामी उन भगवान् सूर्यदेवको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ८ ॥

विश्वात्मा चतुर्भुज, परम सुन्दर प्रफुल्ल कमलसदृश मुखमण्डलवाले हिरण्यवर्ण पुरुष विराजित हैं। उनके केश, मूँछें और नख भी हिरण्मय हैं। उनका दर्शन पापोंका नाश करनेवाला है। वे सभी लोगोंको अभय देनेवाले हैं। उनके ललाटकी आभा पद्मके गर्भपत्रके समान लाल है। वे समस्त जगत्के प्रकाशक और सब लोगोंके अद्वितीय साक्षी हैं। मुनिजन उनका दर्शन और स्तवन कर रहे हैं।' ऐसे भगवान् आदित्यका दर्शन करके यह निश्चय करे कि वे आदित्य मुझसे अभिन्न हैं। फिर इस निश्चयके साथ ही अपनेको उनमें चित्त वृत्तिके द्वारा विलीन कर दे।

ध्यानकी अमित महिमा है। महर्षि पतञ्जलि अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश—ये पाँच महान् क्लेश बताये हैं। तपआदि क्रियायोगसे ये क्षीण होते हैं—इनका दमन होता है, परंतु समूल नाश नहीं होता। बीजरूपसे ये छिपे रह जाते हैं और अनुकूल अवसर और सङ्ग पाकर पुनः अङ्कुरित एवं पुष्पित फलित हो जाते हैं, परंतु ध्यानयोगी तो क्रमशः पूर्ण समाधिमें परिणत होकर उनके बीजतकको नष्ट कर देता है। ध्यानका आनन्द कोई लिखकर नहीं बता सकता इसके महत्त्व और आनन्दका पता तो साधना करने पर ही लगता है। (—भगवच्चर्चा भाग तीसरे

सूर्योपासनाके नियमसे लाभ

(लेखक—स्वामी श्रीकृष्णानन्द सरस्वतीजी महाराज)

भगवान् सूर्य परमात्माके ही प्रत्यक्ष स्वरूप हैं। ये आरोग्यके अधिष्ठातृ देवता हैं। मत्स्यपुराण (६७। ७१)का वचन है कि 'आरोग्यं भास्करादिच्छेत्' अर्थात्—आरोग्यकी कामना भगवान् सूर्यसे करनी चाहिये, क्योंकि इनकी उपासना करनेसे मनुष्य नीरोग रहता है। वेदके कथनानुसार परमात्माकी आँखोंसे सूर्यकी उत्पत्ति मानी जाती है—चक्षोः सूर्योऽजायत।

श्रीमद्भगवद्गीताके कथनानुसार ये भगवान्की आँखें हैं—शशिसूर्यनेत्रम्। (—११। १९)

श्रीरामचरितमानसमें भी कहा है—नयन दिवाकर कच घन माला (—६। १५। ३) आँखोंके सम्पूर्ण रोग सूर्यकी उपासनासे ठीक हो जाते हैं।

भगवान् सूर्यमें जो प्रभा है, वह परमात्माकी ही प्रभा है—वह परमात्माकी ही विभूति है—

(१) प्रभास्मि शशिसूर्ययोः (—गीता ७। ८)

(२) यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि ...
(—गीता ...)

भगवान् कहते हैं—'जो सूर्यगत तेज समस्त जगत्को प्रकाशित करता है तथा चन्द्रमा एवं अग्निमें है, उस तेजको तू मेरा ही तेज जान।'

इससे सिद्ध होता है कि परमात्मा और सूर्य—ये दोनों अभिन्न हैं। सूर्यकी उपासना करनेवाला परमात्माकी ही उपासना करता है। अतः नियमपूर्वक सूर्योपासना करना प्रत्येक मनुष्यका कर्तव्य है। ऐसा करनेसे जीवनमें अनेक लाभ होते हैं, आयु, विद्या, बुद्धि, बल, तेज और मुक्तितककी प्राप्ति सुलभ हो जाती है। इसमें संदेह नहीं करना चाहिये।

[illegible] निम्न नियमोंका पालन करना [illegible]

[illegible] ही शय्या त्यागकर [illegible]

[illegible] देकर [illegible]

(३) सन्ध्या-समय भी अर्घ्य देकर प्रणाम करना चाहिये।

(४) प्रतिदिन सूर्यके २१ नाम, १०८ नाम या १२ नामसे युक्त स्तोत्रका पाठ करे। सूर्यसहस्रनाम का पाठ भी महान् लाभकारक है।

(५) आदित्य-हृदयका पाठ प्रतिदिन करे।

(६) नेत्ररोगसे बचने एवं अन्धापनसे रक्षाके लिये नेत्रोपनिषद्का पाठ प्रतिदिन करके भगवान् सूर्य को प्रणाम करे।

(७) रविवारको तेल, नमक और अदरखका सेवन नहीं करे और न किसीको करावे।

(८) रविवारको एक-भुक्त करे। हविष्यान्न खाकर रहे। ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करे।

उपासक स्मरण रखें कि भगवान् श्रीरामने आदित्य-हृदयका पाठ करके ही रावणपर विजय पायी थी। धर्मराज युधिष्ठिरने सूर्यके एक सौ आठ नामोंका जप करके ही अक्षयपात्र प्राप्त किया था। समर्थ श्रीरामदासजी भगवान् सूर्यको प्रतिदिन एक सौ आठ बार साष्टाङ्ग प्रणाम करते थे। संत श्रीतुलसीदासजीने सूर्यका स्तवन किया था। इसलिये सूर्योपासना सबके लिये लाभप्रद है।

पुराणोंमें सूर्योपासना

(लेखक—अनन्तश्रीविभूषित पूज्यपाद संत श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी)

एकमात्र हैं ध्येय भुवन-भास्कर भगवन्ता।
ध्यान त्रिकाल महान करें ऋषि मुनि सब सन्ता॥
कमलासन आसीन मकर कुण्डल श्रुति धारे।
कनक करनि केयूर मुकुट मणिमय शिर धारे॥
वर्ण सुवर्ण समान वपु, सब कर्मनिके साक्ष्य हैं।
सूर्यनारायण देववर, जगमें नित प्रत्यक्ष हैं॥

सूर्यनारायण प्रत्यक्ष देव हैं। हम सब सनातन वैदिक धर्मावलम्बी सर्वदा-सदा सूर्यनारायणकी ही उपासना करते हैं, क्योंकि वे हमारे सभी शुभाशुभ कर्मोंके साक्षी हैं। इसीलिये हम सब कर्मोंके अन्तमें सूर्य भगवान्को अर्घ्य देकर कहते हैं—'हे भगवान् विवस्वान्! आप विष्णुके तेजसे युक्त हैं, परम पवित्र हैं, सम्पूर्ण जगत्के सविता हैं और समस्त शुभ और अशुभ कर्मोंके साक्षी हैं।* हमारा कोई कर्म सूर्य नारायणसे छिपा नहीं है। इसीलिये प्रातःकाल, मध्याह्नकाल और सायंकाल हम त्रिसन्ध्या गायत्रीके माध्यमसे सूर्य-नारायणकी उपासना करते हैं। हम द्विजातियोंको बाल्यकालसे ही गायत्रीकी दीक्षा दी जाती है। गायत्री-मन्त्र सूर्यनारायणकी उपासना ही है। गायत्रीसे बढ़कर दूसरा कोई मन्त्र नहीं। गायत्री वेदोंकी माता है। चारों वेदोंमें गायत्रीमन्त्र है। गायत्रीकी उपासना करनेवालोंको अन्य किसी मन्त्रकी उपासनाकी अनिवार्यता नहीं है। गायत्री सर्वदेवमय एवं सर्ववेदमय है। इसीलिये देवीभागवतमें कहा है—केवल गायत्री-उपासना ही नित्य है। इसी बातको समस्त वेदोंने कहा है। गायत्री-उपासनाके बिना ब्राह्मणका अधःपात होता है। द्विजाति केवल गायत्रीमें ही निष्णात हो तो वह मोक्ष प्राप्त कर लेता है।† मनुजीने स्पष्ट कहा है—द्विज अन्य मन्त्रोंमें श्रम करे चाहे न करे, परंतु जो द्विज गायत्रीको छोड़कर अन्य मन्त्रोंमें श्रम करता है वह नरकका भागी होता है। इसीलिये सत्य युगादिमें ऋषि-मुनि तथा उत्तम द्विज गायत्रीपरायण होते थे।

*—नमो विवस्वते ब्रह्मन् भास्वते विष्णुतेजसे। जगत्सवित्रे शुचये सवित्रे कर्मसाक्षिणे॥ (आदित्यहृदय)

†—गायत्र्युपासना नित्या सर्ववेदैः समीरिता। यया विना त्वधःपातो ब्राह्मणस्यास्ति सर्वथा॥
तावता कृतकृत्यत्वं नान्यापेक्षा द्विजस्य हि। गायत्रीमात्रनिष्णातो द्विजो मोक्षमवाप्नुयात्॥

सूर्यनारायणमें गायत्री-मन्त्रद्वारा अपने इष्टकी उपासना कर सकते हैं।

समस्त पुराणोंमें गायत्री-महिमा तथा सूर्योपासनाको सनातन बताया गया है। उनमें सूर्योपासनापर बहुत बल दिया गया है। वाराहपुराणकी कथा है—श्रीकृष्णभगवान्‌का पुत्र साम्ब अत्यन्त ही सुन्दर था। उसके सौन्दर्यके कारण भगवान्‌की सोलह हजार एक सौ रानियोंके मनमें कुछ विकृति पैदा हो गयी। भगवान्‌ने नारदजीके द्वारा इस बातको जानकर और उसकी परीक्षा करके साम्बको कोढ़ी होनेका शाप दे दिया। तब नारदजीने उसे सूर्योपासनाका ही उपदेश दिया *। साम्बने मथुरामें जाकर सूर्यनारायणकी उपासना की। इससे उसका कुष्ठरोग चला गया। फिर तो वह सुवर्णके समान कान्तिवाला हो गया, और मथुरामें उसने सूर्य नारायणकी मूर्ति स्थापित की। मार्कण्डेयपुराणमें मार्तण्ड सूर्यकी उत्पत्तिका तथा उनकी संज्ञा और छाया दोनों पत्नियों का और छः सन्तानोंका विस्तारसे वर्णन आया है। अन्तमें कहा गया है कि जो सूर्यसम्बन्धी देवोंके जन्मको तथा सूर्यमाहात्म्यको सुनता है या पढ़ता है, वह आपत्तिसे छूट जाता है और महान् यश प्राप्त करता है। इसके सुननेसे दिन-रात्रिमें किये हुए पाप नष्ट हो जाते हैं†। विष्णुपुराणमें प्रजापालके पूछनेपर महातपा मर्षिने कहा है कि जो सनातननारायण-ज्ञानशक्ति अर्थात् ब्रह्मने जब एकसे दो होनेकी इच्छा की, तभी वह शक्ति तेजरूपमें सूर्य बनकर जगत्‌में प्रकट हुई। वे नारायण ही तेजरूपमें सूर्य बनकर प्रकाशित हो रहे हैं। इतना बताकर फिर सूर्यके मण्डलका और उनके रथ एवं रथके परिमाण आदिका विस्तारसे वर्णन किया है। उनके रथके साथ कौन-कौनसे देवता, ऋषि, अप्सरा, गन्धर्व आदि किस-किस मासमें चलते हैं, उपासनाके लिये इसका वर्णन किया है। ऐसा ही वर्णन श्रीमद्भागवतमें भी आया है। इन द्वादशादित्योंकी पृथक्-पृथक् मासमें उपासना करनेकी पद्धति बतायी गयी है। श्रीमद्भागवतमें इस उपासनाका माहात्म्य बताते हुए कहा गया है—'ये सब सूर्यभगवान्‌की विभूतियाँ हैं। जो लोग इनका प्रतिदिन प्रातःकाल और सायंकाल स्मरण करते हैं, उनके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं।‡ फिर अन्तमें सूर्यको साक्षात् नारायणका स्वरूप बताते हुए कहा गया है कि 'अनादि, अनन्त, अजन्मा,

... ... कुर्यादन्यन्न वा कुर्यात् इति प्राह मनुः स्वयम्।
तस्मादाद्ययुगे राजन् गायत्रीजपतत्पराः। देवीपादाम्बुजरता आसन् सर्वद्विजोत्तमाः॥ (—देवीभागवत)

* ततस्तु नारदेनैव साम्बशापविनाशकः। आदिष्टो हि महान् धर्म आदित्याराधनं प्रति॥
साम्ब साम्ब महाबाहो शृणु जाम्बवतीसुत। पूर्वाह्णे च पूर्वाह्णे उद्यन्तं तु विभावसुम्॥
नमस्कुरु यथान्यायं वेदोपनिषदादिभिः। स्वयार्चितो रविः भूत्वा तुष्टिं यास्यति नान्यथा॥
(—वाराहपु० अ० १७७। ३२—३४)

† ... ... य इदं जन्म देवानां शृणुमाहात्म्यमेव च॥
विवस्वतस्तु जातानां शृणुयाद् वा पठेत् तथा। आपदं प्राप्य मुच्येत प्राप्नुयाच्च महद्यशः॥
अहोरात्रकृतं पापं तत्क्षणात् शमयति श्रुतम्। माहात्म्यमादिदेवस्य मार्तण्डस्य महात्मनः॥
(—मार्कण्डेयपुराण)

‡ एता भगवतो विष्णोरादित्यस्य विभूतयः। स्मरतां सन्ध्ययोर्नॄणां हरन्त्यंहो दिने दिने॥
(—श्रीमद्भा० १२। ११। ४५)

भगवान् श्रीहरि ही कल्प-कल्पमें अपने स्वरूपका विभाग करके लोकोंका पालन-पोषण करते हैं।' * कूर्मपुराणमें भगवान् सूर्यनारायणकी अमृतमयी रश्मियोंका विस्तारसे वर्णन किया गया है और कौनसे ग्रह किस अमृतमयी रश्मिसे तृप्त होते हैं, इसका वर्णन करते हुए अन्तमें कहा गया है—'चन्द्रमाका कभी नाश नहीं होता। सूर्यको निमित्त बनाकर उनकी रश्मियोंके द्वारा देवतागण अमृत-पान करते हैं। उन्हींके कारण चन्द्रमामें क्षय और वृद्धि दिखायी देती है।' † इसी पुराणके १०१ अध्यायमें सूर्य चन्द्रके परिभ्रमणकी गतियोंका वर्णन है।

निष्कर्ष यह कि—वेदों, शास्त्रों और विशेषकर पुराणोंमें सूर्यकी सर्वज्ञता, सर्वात्मता, सृष्टि-कर्तृता, कालचक्र-प्रणेता आदिके रूपोंमें वर्णन करते हुए इनकी उपासनाका विधान किया गया है, अतः प्रत्येक आस्तिक जनके लिये ये उपास्य और नित्य ध्येय हैं।

भगवान् सूर्यकी सर्वव्यापकता

(लेखक—अनन्तश्री वीतराग स्वामी नारायणाश्रमजी महाराज)

सूर्यकी उत्पत्ति

सूर्यकी उत्पत्ति—संसारकी उत्पत्तिके पहले सर्वत्र एकमात्र अन्धकार ही भरा हुआ था—'तम आसीत्'—श्रुतिके अनुसार सम्पूर्ण दिशाएँ अन्धतामिस्र तमसे व्याप्त थीं। सर्वशक्तिमान् परमात्मा हिरण्यगर्भका परम उत्कर्ष तेज उस दिगन्तव्यापिनी अन्धकारमयी निशामें आत्मप्रकाशके रूपमें उदित हुआ—'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'—और उस अप्रतिम प्रकाशके आविर्भावसे सम्पूर्ण दिशाओंका अन्धकार समाप्त हो गया।

व्याकरण-शास्त्रकी दृष्टिमें सूर्य शब्द 'सृ' धातुसे बना है। इसका अर्थ है 'गतौ यस्मात् परो नास्ति' अर्थात् जिसके प्रकाशके समान अन्यतम प्रकाश इस भूतलपर नहीं है, उसे सूर्य कहते हैं।

शाश्वतं जायते यस्मात्तच्छाश्वतस्तिष्ठते यतः।
तस्मात् सर्वैः स्मृतः सूर्यो निगमज्ञैर्मनीषिभिः॥
(—साम्बपु० ७।१९)

जहाँसे अचेतनात्मक नश्वर संसारको चेतनाकी उपलब्धि होती है और जिसकी सचित चेतना प्राप्त होनेपर सम्पूर्ण प्राणी जीवनधारणकी सत्ता उपलब्ध करते हैं, उस अखण्ड मण्डलाकार घन प्रकाशको ही विद्वान् सूर्य कहते हैं। यह तेज हजारों रश्मियोंसे संयुक्त हिरण्यगर्भके नामसे विख्यात था। कुछ युगोंके बीत जानेपर यह दिव्य तेज ब्रह्माण्डके गोलेमेंसे आविर्भूत हुआ था, जैसा कि साम्बपुराणमें वर्णन मिलता है—

तत्रोत्पन्नः सहस्रांशुर्ह्यादित्यात्मा दिवाकरः।
नवयोजनसाहस्रो विस्तारस्तस्य वै स्मृतः॥
(—साम्बपु० ७।३४)

पुराणकी कथाके अनुसार भगवान् कश्यपका जन्म मरीचि नामके प्रजापतिसे हुआ था। भगवान् कश्यप ब्रह्माके समान ही तेजस्वी प्रजापति थे। उनकी पत्नी देवमाता अदितिके उदरसे ब्रह्माण्डका व्यापक गोला उत्पन्न हुआ। वह गोला अन्धकाररूप तमसे आच्छादित था। भगवान् हिरण्यगर्भका वह अप्रतिम तेज इसी

* एवं ह्यनादिनिधनो भगवान् हरिरीश्वरः। कल्पे कल्पे स्वमात्मानं सृष्ट्वा लोकान् पाति॥
(—श्रीमद्भा० १२।११।५०)

† न सोमस्य विनाशः स्यात् सुधा देवैस्तु पीयते। एवं सूर्यनिमित्तोऽस्य क्षयो वृद्धिश्च सत्तमा॥

ब्रह्माण्ड-गोलाके मध्यमें आविर्भूत होकर सम्पूर्ण संसारके तम (अन्धकार) का अन्त कर डाला—

यथा पुष्पं कदम्बस्य समन्तात् केसरैर्वृतम् ।
तथैव तेजसो गोल समन्ताद् रश्मिभिर्वृतम् ॥
(—साम्बपु० ७ । ३५)

जिस प्रकार कदम्बका फूल अतिसुन्दर केसर किञ्जल्कसे आवृत रहता है, उसी प्रकार भगवान् सहस्ररश्मि सूर्य भी अखण्ड मण्डलाकार तेज पुञ्ज रश्मिसे सभी दिशाओंमें व्याप्त हो गये हैं। उस गोल आकारमें व्याप्त तेज पुञ्जके मध्य वेदमें वर्णित सहस्र शीर्षा भगवान् हिरण्यगर्भ उपस्थित थे। जिस प्रकार विशाल कुम्भमें अग्नि व्याप्त होकर अग्नि-कुम्भके सदृश हो जाता है, उसी प्रकार सहस्र रश्मिवाले सूर्यका दिव्य रश्मिमण्डल अग्निकुम्भके आकारमें होकर पृथ्वी एवं आकाशमण्डलको सन्तप्त करने लगा।

स एष तेजसो राशिर्दीप्तिमान् सार्वलौकिक ।
पादैर्नोर्ध्वमधश्चैव प्रतपत्येष सर्वतः ॥
(—साम्बपु० ७ । ५६)

परम दिव्य तेजसमूह ही भगवान् सूर्यका स्वरूप है, जिसकी (दीप्तिमान्) प्रभाशक्तिसे चौदहों लोक दीप्तिमान हो रहे हैं। सूर्यके समग्र तेजोमण्डल दो मार्गोंमें विभक्त हैं। उनका कार्य पातालोकसे ब्रह्मलोक-पर्यन्तके चतुर्दश लोकोंमें निवास करनेवाले प्राणियोंके भीतर ज्ञान एवं क्रिया-शक्तिका उद्दीपन करना है। सूर्य-मण्डलका पहला तेज ऊर्ध्वकी ओर ब्रह्मलोकपर्यन्त उद्दीपन करता है। उस तेजकी शक्ति 'संज्ञा' है। दूसरा तेज अधोगामी—पृथ्वीसे पाताल-पर्यन्त उद्दीपन करता है। उस तेजकी शक्तिका नाम 'छाया' है। पुराणकी कथाके अनुसार संज्ञा तथा छाया—ये दोनों सूर्यकी पत्नियाँ मानी गयी हैं।

भगवान् सूर्यकी ये दोनों पत्नियाँ शक्तिके रूपमें निरन्तर कार्यरत रहती हैं। पुराण-कथाके अनुसार भगवान् सूर्यका तेज अग्निके समान अत्यन्त दीप्तिमान् था। प्राणिमात्रके लिये असह्य था। युग-निर्माणके समय इन्द्र, मुनि एवं महर्षि भगवान् सूर्यके अप्रधर्ष्य तेजसे व्याकुल होकर ब्रह्माजीसे प्रार्थना करने लगे। देवताओं, मुनियों एवं महर्षियोंकी स्तुतिसे संतुष्ट होकर ब्रह्माजीने त्वष्टासे सूर्यके तेजपर नियन्त्रण करनेके लिये कहा। त्वष्टाने भ्रमी नामक यन्त्रद्वारा भगवान् सूर्यके तेजको नियन्त्रित कर व्यवहारमें उपयुक्त करने योग्य बना दिया। तत्पश्चात् संज्ञा एवं छाया नामकी वे दो पत्नियाँ सूर्यके तेजका उपभोग करने लगीं।

सूर्यका ऊर्ध्वगामी द्यु-तेज संज्ञासे संयुक्त हो जानेसे सम्पूर्ण संसारके प्राणियोंमें ज्ञान-संवित् चेतना-रूपसे स्थित हुआ। अतः संज्ञासे सम्बद्ध होकर सब प्राणी श्रेयकी ओर चलने लगे। दूसरा अधोगामी तेज छाया-शक्तिसे संयुक्त हुआ। फिर तो छायासे अनुप्राणित होकर संसारके सब प्राणी क्रिया-कर्मकी ओर प्रवृत्त होने लगे। अर्थात् संज्ञासे संवित-चेतना—ज्ञानद्वारा श्रेय तथा छायासे कर्मपरायण क्रियादक्ष होकर प्रेयकी ओर समस्त संसारके प्राणी प्रवृत्त हुए।

देवता, मुनि और महर्षियोंने श्रेय तथा प्रेयका मार्ग भगवान् सूर्यके तेजसे ही उपलब्ध किया था। संज्ञा श्रेयोगामिनी शक्ति है। यह मुनि एवं महर्षियोंके हृदयमें संवित्-चेतनाका उदय कराती है। श्रेयोगामी शक्ति संज्ञाका भगवान् सूर्यके द्युलोकव्याप्त तेजसे अनन्य संयोग होनेपर विद्या नामकी शक्ति उत्पन्न हुई। यह देवत्व शक्तिके नामसे विख्यात हुई। देवता, मुनि एवं महर्षि इसी श्रेयोगामी विद्या शक्तिकी उपासना श्रद्धा-भक्तिसे करने लगे। 'विद्ययामृतमश्नुते'—इस श्रुतिके अनुसार विद्याकी उपासनासे उन्हें अमृत-पानका अवसर मिला। प्रश्न यह होता है कि अमृत किस मार्गसे प्राप्त हुआ?

केन मार्गेणामृतत्वमश्नुत इत्युच्यते तद्यत्तत्सत्यमसौ स आदित्यो य एष एतस्मिन्मण्डले पुरुष (शाङ्करभाष्य)।

उत्तरमें—सत्य ही आदित्य है। उस आदित्य में विद्यमान हिरण्मय पुरुष ही अमृत है। मुनि, महर्षि और देवताओंने उसी हिरण्मय तेजकी उपासनामयी विद्याके द्वारा अमृत-पान किया। अविद्या प्रेय-मार्गका प्रकाशन करनेवाली शक्ति है। भगवान् सूर्यका अधोन्यास तेज छायासे संयुक्त होनेपर यानी छाया और तेजके परस्पर मिलनसे अविद्या नामकी कन्या उत्पन्न हुई। छाया अविद्याकी जननी है। अविद्यासे मनुष्योंको कर्मका मार्ग ही सत्य दिखलायी पड़ता है।

वेद शास्त्रके जाननेवाले विद्वान् भी प्रेय—ऐहिक विषय-सुख या आमुष्मिक स्वर्गमें प्राप्त भोग-ऐश्वर्यकी प्राप्तिके लिये अविद्याकी उपासना करते हैं। अविद्या कर्मका स्वरूप है। कामनासे युक्त होकर कर्म करनेपर अदर्शनात्मक तमोव्यापिनी बुद्धि उदित होती है। इससे मनुष्य परस्परमें न पहचानकर अभिमानके वशीभूत हुए कर्म करते हैं।

सूर्यरश्मि-ग्रह-मण्डल

यथा प्रभाकरो दीपो गृहमध्ये व्यवस्थितः।
पार्श्वेनोर्ध्वमधश्चैव तमो नाशयते समम्॥
तद्वत्सहस्रकिरणो ग्रहराजो जगत्पतिः।
त्रीणि रश्मिशतान्यस्य भूर्लोकं द्योतयन्ति च॥
(—साम्बपु० ७। ५७-५८)

भगवान् सूर्य सम्पूर्ण ग्रहोंके राजा हैं। जिस प्रकार घरके मध्यमें उज्ज्वल दीपक ऊपर-नीचे—सम्पूर्ण घरको प्रकाशित करता है, उसी प्रकार अखिल जगत्के अधिपति सूर्य हजारों रश्मियोंसे ब्रह्माण्डके ऊपर-नीचेके मार्गोंको प्रकाशित करते हैं।

सूर्यका तेज अग्निकुम्भके समान आकाशके मध्य चमकता है। उस अखण्डमण्डलाकार तेजसे उत्पन्न किरणें ही रश्मि हैं। सूर्य-तेजका प्रकाश तथा अग्निका ऊष्मा परस्पर मिल जानेपर सूर्यकी रश्मि बनती है। सूर्यकी हजारों रश्मियोंमें तीन सौ रश्मियाँ पृथ्वीपर, चार सौ चान्द्रमस पितर-लोकपर तथा तीन सौ देवलोकपर प्रकाश फैलाती हैं। रश्मिके साथ सूर्य-तेजका प्रकाश तथा अग्नि-तेजका ऊष्मा—दोनोंके परस्पर मिश्रणसे ही दिन बनता है। केवल अग्निके ऊष्माके साथ सूर्यका तेज मिलनेपर रात्रि होती है। यथा—

प्रकाश्यं च तथौष्ण्यं च सूर्याग्न्योर्ये च तेजसी।
परस्परानुप्रवेशादाप्यायेते दिवानिशम्॥
(—साम्बपु० अ० ७)

सूर्य दिन-रातमें समान प्रकाश करते हैं। उनकी रश्मियाँ रात्रिमें अन्धकार तथा दिनमें प्रकाश उत्पन्न करती हैं। सूर्यका नित्य प्रकाशमान तेज दिनमें, प्रकाश उष्मामें तथा रात्रिमें केवल अग्नि उष्मामें विद्यमान रहता है। सूर्यकी रश्मियाँ व्यापक हैं। परस्पर मिलकर गरमी, वर्षा-सर्दीका वातावरण उत्पन्न करती हैं।

नक्षत्रग्रहसोमानां प्रतिष्ठायोनिरेव च।
चन्द्राद्याश्च ग्रहा सर्वे विज्ञेया सूर्यसम्भवा॥
(—साम्बपु० ७। ६०)

अखण्डमण्डलाकारमें व्याप्त भगवान् सूर्यका तेज एक है। जिस प्रकार उनकी रश्मियोंमें दिन-रात्रि, गरमी वर्षा, सरदी उत्पन्न होकर नियमित व्यवहारमें प्रतिष्ठित हैं, उसी प्रकार चन्द्रमा, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि ग्रह तथा नक्षत्र-मण्डल सूर्य-रश्मिसे उत्पन्न होकर उन्हींमें प्रतिष्ठित—अधिष्ठित रहते हैं।

सूर्यकी हजारों रश्मियाँ हैं—जैसा कि पहले कहा जा चुका है; उनमें सात रश्मियाँ

सात रश्मियाँ ही ग्रह-नक्षत्र-मण्डलकी प्रतिष्ठा मानी गयी हैं। ये सात रश्मियाँ क्रमशः (१) सुषुम्णा, (२) सुरादना, (३) उदन्वसु-संयद्वसु, (४) विश्वकर्मा (५) उदावसु, (६) विश्वव्यचा, अम्बराट तथा (७) हरिकेश हैं। उक्त रश्मियोंका कार्य क्रमशः इस प्रकार है—

१-सुषुम्णा-यह रश्मि कृष्णपक्षमें क्षीण चन्द्र कलाओंपर नियन्त्रण करता है और शुक्लपक्षमें उन कलाओंका आविर्भाव करती है। चन्द्रमा सूर्यकी सुषुम्णा रश्मिसे पूर्णकला प्राप्त करके अमृतका प्रसारण करते हैं। संसारके सभी जड़-चेतन प्राणी चन्द्रमाकी पूर्णकलासे क्षरित अमृतको सूर्य-रश्मिसे उपलब्धकर जीवित रहते हैं।

२-सुरादना-चन्द्रमाकी उत्पत्ति सूर्यसे मानी गयी है। सूर्यकी रश्मिसे ही देवता अमृत-पान करते हैं। इसलिये वे चन्द्रमाके नामसे विख्यात हैं। चन्द्रमामें जो शीत किरणें हैं, वे सूर्यकी रश्मियाँ हैं। इसीसे चन्द्रमा अमृतकी रक्षा करते हैं।

३-उदन्वसु-इस सूर्य-रश्मिसे मङ्गल ग्रहका आविर्भाव हुआ है। मङ्गल प्राणिमात्रके शरीरमें रक्त संचालन करते हैं। इसी रश्मिसे प्राणिमात्रके शरीरमें रक्तका संचालन होता है। यह सूर्य-रश्मि सभी प्रकारके रक्त दोषसे प्राणियोंको मुक्त करकर आरोग्य ऐश्वर्य तथा तेजका अभ्युदय कराती है।

४-विश्वकर्मा-यह रश्मि बुध नामक ग्रहका निर्माण करती है। बुध प्राणिमात्रके शुभचिन्तक ग्रह हैं। इस रश्मिके उपयोगसे मनुष्यकी मानसिक उद्विग्नता शान्त होती है—शान्ति मिलती है।

५-उदावसु-यह रश्मि बृहस्पति नामक ग्रहका निर्माण करती है। बृहस्पति प्राणिमात्रके अभ्युदय—निःश्रेयसप्रदायक हैं। गुरुसे अनुकूल-प्रतिकूलमें मनुष्य का उत्थान-पतन होता है। इस सूर्य-रश्मिके सेवनसे मनुष्यके सभी प्रतिकूल वातावरण निरस्त होते और अनुकूल वातावरण उपस्थित होते हैं।

६-विश्वव्यचा-इस सूर्य-रश्मिसे शुक्र तथा शनि नामक दो ग्रह उत्पन्न हुए हैं। शुक्र वीर्यके अधिष्ठाता हैं। मनुष्यका जीवन शुक्रसे ही निर्मित होता है। शनिदेव मृत्युके अधिष्ठान हैं। जीवन एवं मृत्यु दोनोंका नियन्त्रण उक्त सूर्यकी रश्मिसे है, जिसके कारण समस्त प्राणी जन्मके उपरान्त पूर्ण आयु व्यतीत—उपभोग करके मरते हैं।

७-हरिकेश-आकाशके सम्पूर्ण नक्षत्र इसी सूर्य-रश्मिसे उत्पन्न हुए हैं। नक्षत्र-कार्य प्राणिमात्रके तेज, बल और वीर्यका क्षरण-ह्रासरूपसे रक्षण करना है। यह सूर्य रश्मि नक्षत्र, तेज, बल, वीर्यके प्रभावसे प्राणीद्वारा आचरित शुभ-अशुभ कर्मफलको मरणोपरान्त परलोकमें प्रदान करती है।

> क्षणा मुहूर्ता दिवसा निशाः पक्षास्तथैव च।
> मासा संवत्सराश्चैव ऋतवोऽथ युगानि च॥
> तदादित्यादृते ह्येषां कालसंख्या न विद्यते।
> कालादृते न नियमो नाग्नेर्विहरण क्रिया॥
> (साम्बपु०, अ० ८।७-८)

भगवान् सूर्य काल-रूपमें—अविचल प्रतिष्ठामें स्थित हैं। क्षणमें भी सूक्ष्मातीत काल है। यह भगवान् अवस्थासे अतीत होनेके कारण अत्यन्त सूक्ष्मस्वरूप माने गये हैं। कालसे अतीत अन्यतम अवस्था नहीं होती। यद्यपि उनकी अवस्था आध्यात्मिक दृष्टिसे सूक्ष्मातीत मानी गयी है तथापि लोकव्यवहारकी दृष्टिसे क्षण, मुहूर्त, दिन, रात्रि, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, वर्ष—ये सब कालकी अवस्था माने गये हैं। मृत्यु और अमृत—ये दोनों कालरूप सूर्यके अवयव हैं, इनके द्वारा भगवान् सूर्य कालके रूपमें क्षणसे प्रलय पर्यन्तकी अवस्थाका उपयोग करते हैं। जब सारा संसार प्रलयमें कालसूर्यके मुखमें कवलित होने लगता है, तब

कालरूप सूर्य मृत्युके आकारमें दिखलायी पड़ते हैं। जिस अवस्थामें काल-सूर्यक तेजसे संहारका आविर्भाव होने लगता है, उस अवस्थामें भगवान् सूर्य-काल अमृतके रूपमें साक्षात् होते हैं।

वस्तुत —

सूर्यात् प्रसूयते सर्वं तत्र चैव प्रलीयते।
भावाभावौ हि लोकानामादित्यान्निःसृतौ पुरा ॥
(साम्बपु० ८।५)

प्रलय—मृत्युके समय समस्त संसारको रूपका अभाव रहता है। उत्पत्तिके समय सभी संसार अमृतसे व्याप्त भाव-स्वरूप दिखलायी पड़ता है। भाव तथा अभावकी अवस्था कालरूप भगवान् सूर्यसे उत्पन्न होती है। सूर्यके ऊपर गमन करनेवाली द्युलोकगामी सहस्ररश्मि अमृत है। आदित्यमण्डलमें विद्यमान अन्तर्यामी परमात्मा रश्मिमय-ज्योतिर्मय हिरण्यपात्रसे आच्छन्न हैं।

रश्मीनां प्राणानां रसानां च स्वीकरणात् सूर्यः (शांकरभाष्य) सूर्यरश्मि ही सम्पूर्ण प्राणियोंकी प्राण-शक्ति है। यह दिव्य अमृत-रससे प्राणियोंको जीवन प्रदान करती है। गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, उष्णिक—ये सात व्याहृतियाँ सूर्यके सप्तरश्मिसे उत्पन्न हुई हैं। व्याहृतियाँ रश्मियोंके अवयव हैं, जिनके द्वारा ज्ञान (चेतना-संवित्) सदा उपलब्ध होती है। वैदिक कालके मुनि, महर्षि सूर्यरश्मि पान करके सूर्य-रश्मिके अवयव सप्त-व्याहृति तथा सम्पूर्ण वेदका साक्षात् अनुभव करते थे यानी सूर्यरश्मिके प्रभावसे व्याहृति एवं ऋग्यजु-साम-अथर्ववेद मुनि-महर्षियोंके हृदयमें आविर्भूत हो जाते थे। महर्षि याज्ञवल्क्यने इन्हीं सूर्य-रश्मियोंको पीकर ही व्याहृति एवं वेदको अन्तर्मानसमें आविर्भूत किया था। (क्रमशः)

सूर्योपासनासे श्रीकृष्ण-प्राप्ति

(लेखक—पूज्य श्रीरामदासजी शास्त्री महामण्डलेश्वर)

भगवान् भुवनभास्कर मानवमात्रके उपास्यदेव हैं। विश्वके सभी धर्मों, मतों, पंथों एवं जाति-उपजातियोंमें भगवान् श्रीआदित्यनारायणके श्रीचरणोंमें श्रद्धाके फूल चढ़ाये जाते हैं। भगवान् सूर्य प्रत्यक्ष देवता हैं, नित्य दर्शन देते हैं एवं नित्य पूजा ग्रहण करते हैं। उनके अमोघ आशीर्वादसे प्राणी अपनी ऐहलौकिक यात्राको सानन्द सम्पन्न कर लेता है।

धर्मप्राण भारतवर्षमें-विशेषतः हिंदू-जातिमें आरम्भसे ही सूर्यनारायणकी पूजा विविध पद्धतियोंसे होती चली आयी है। वैदिक ग्रन्थोंसे लेकर आजतक समस्त आर्षग्रन्थोंमें भगवान् सूर्यदेवकी प्रचुर महिमा एवं आराधनाके प्रकारोंका विस्तृत वर्णन मिलता है। श्रीमद्भागवतके अनुसार—ये सूर्यदेव समस्त लोकोंके आत्मा तथा आदिकर्ता हैं। श्रीहरि ही सूर्यके रूपमें विराजमान हैं। समस्त वैदिक क्रियाओंके मूल कारण होनेसे ऋषियोंने विविध प्रकारसे उनके गुणोंका गान किया है। सूर्यरूप श्रीहरिका ही माया उपाधिके कारण देश, काल, क्रिया, कर्ता, करण, कर्म, योगादि वेदमन्त्र, द्रव्य और व्रीहि आदि फलरूपमें नौ प्रकारका वर्णन किया गया है—

एक एव हि लोकानां सूर्य आत्माऽऽदिकृद्धरिः।
सर्ववेदक्रियामूलमृषिभिर्बहुधोदितः ॥
कालो देशः क्रिया कर्ता करणं कार्यमागमः।
द्रव्यं फलमिति ब्रह्मन् नवधोक्तोऽजया हरिः ॥
(श्रीमद्भा० १२।११।३०-३१)

लोकयात्रा समुचित रूपसे चलाते—रहनेके लिये वर्षके बारहों महीनोंमें अपने भिन्न भिन्न गणोंके साथ वे हैं। भ्रमण करते हैं। ऋषिगण वैदिक मन्त्रोंसे इनकी स्तुति हैं, गन्धर्व और अप्सराएँ आगे-आगे नाचकर

हैं, यक्षगण रथकी साज-सज्जा करते और नागगण बाँधे रखते हैं, राक्षस पीछेसे ढकेलते हैं तो बालखिल्य ऋषि आगे स्तुति करते चलते हैं। इस प्रकार आदि-अन्तहीन भगवान् सूर्य कल्प-कल्पमें लोकोंका पालन करते आये हैं—

एष ह्यनादिनिधनो भगवान् हरिरीश्वरः।
कल्पे कल्पे समात्मान व्यूह्य लोकानवत्यजः॥
(श्रीमद्भा० १२। ११। ५०)

इस प्रकार हम देखते हैं कि भगवान् सूर्य उभय लोक-संरक्षक, साधकोंके मार्गदर्शक, लोकयात्राके पालक एवं जगत्‌के प्राणियोंके लिये कल्याणस्तम्भ हैं। अन्य नित्य-नैमित्तिक कर्मोंकी भाँति सूर्य-उपासना भी हमारे जीवनका एक अङ्ग है, 'उदिते जुहोति अनुदितेजुहोति' आदि वाक्योंके द्वारा साधक अपने अन्तःकरणकी मलिनताओं, वासनाओं, हृदयगत कालुषिताओंका निवारण करता है। त्रिकाल-संध्यामें भी नारायण सूर्यका वरण करके अपनी बुद्धिको सत्कर्मके लिये किया जाता है।

तात्पर्य यह है कि जब जीव भगवान्‌की उपासनाके द्वारा मायिक जगत्‌के व्यामोहसे निकल ऊपर उठता है और परात्पर परब्रह्म श्रीकृष्णका साक्षात्कार करता है, तब वह पुण्य-पापरहित विद्वान् प्रभुकी समताको प्राप्त कर लेता है—

यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं
　कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्।
तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय
　निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति॥
(—मुण्डक ३।१।३)

आदित्यो वै प्राणः

(लेखक—स्वामी श्रीओंकारानन्दजी आदिबदरी)

अपने दोनों पाँवोंको फैलाकर मृगराजने अँगड़ाई ली और भुवन-भास्करके स्वागतमें कुमकुम बिखेरती उषा देवीकी ओर ऊर्ध्व मुखकर 'आऽऽओऽऽम्' का गम्भीर नाद किया। ओंकारके उत्तरोत्तर द्रुत व्यवहृत तृतीय निनादने चञ्चल भावनाओंको भयभीत करनेकी ही भाँति मृग एवं शशकसमूहोंको प्रकम्पित कर दिया और वे झाड़ियोंकी ओटमें दुबक गये। सूर्योदय हो रहा था—'यत्पुरोदयात्स हिंकारस्तदस्य पशवोऽन्वायत्तास्तस्माते हिं कुर्वन्ति' (छान्दोग्योपनिषद् २। ९। २)।

'धेनुओंने' 'हऽऽ म्बाऽऽ' की ध्वनिद्वारा भगवान् सूर्यका स्वागत किया और बछड़े पीठपर पूँछ रखकर पय पान हेतु बन्धनमुक्त होनेके लिये उतावले हो उठे। ग्राम-वधूने चक्कीको ब्यारह घुर मिटाते हुए अपनी प्रभातीके लोक-गीतकी अन्तिम पंक्ति समाप्त की—'उठो लालजी भोर भयो है।'

अपने गीले कौपीनको एक ओर फैलाकर ब्राह्म मुहूर्तमें ही गङ्गा-स्नानकर लौट वैदिक महर्षिने मन्दिरके प्राङ्गणमें लगे घण्टेका निनाद किया और उसकी वाणी फूट पड़ी—

अपसेधन् रक्षसो यातुधानान्
　अस्थाद् देवः प्रतिदोषं गृणानः।
ये ते पन्थाः सवितः पूर्व्यासो
　ऽरेणवः सुकृता अन्तरिक्षे॥
(—ऋ० १। ३५। १०)

'हे स्वर्णाभायुत किरणोंवाले, प्राणशक्तिप्रदाता, उत्तम नेता, सुखदाता, निज शक्तिसे सम्पन्न देव! यहाँ पधारें। प्रत्येक रात्रिमें स्तुति किये जानेवाले राक्षसों तथा यातना देनेवालोंको दूर करते हुए सूर्यदेव यहाँ शुभागमन करें।'

वेदमन्त्रकी इन ऋचाओंके उद्घोषके साथ ही सारथि अरुणने अपने स्वामी आदित्यके रथको गति

बढ़ा दिया। दिशाएँ प्रकाशित हो उठीं। इसे देख उपासकने सिर झुकाया—

आदिदेव नमस्तुभ्यं प्रसीद मम भास्कर।
दिवाकर नमस्तुभ्यं प्रभाकर नमोऽस्तु ते ॥

'विश्वके कण-कणके नियामक प्रत्यक्ष देव भगवान् दिवाकरका शुभागमन इतना आह्लादकारी है कि उसकी तुलना अवर्णनीय है। सतत गतिशील अद्भुत आभा-युक्त, हिरण्य-वल्गाओं (किरणों) से अलंकृत रथारूढ, चित्र विचित्र किरणोंसे अन्धकारका नाश करनेवाले भगवान् आदित्य बढ़ रहे हैं'—

अभीवृतं कृशनैर्विश्वरूपं
हिरण्यशम्यं यजतो बृहन्तम्।
आस्थाद् रथं सविता चित्रभानुः
कृष्णा रजांसि तविषीं दधानः॥
(—ऋ० १ । ३५ । ४)

अपनी उपासनामें निरन्तर ध्यानरत सुकेशा, सत्यकाम, गार्ग्य, कौसल्य, भार्गव तथा कबन्धीका अनुष्ठान वर्षों चलता रहा। सभीका शोधविषय परब्रह्मका अन्वेषण था। सभीने अपने-अपने मतानुसार परब्रह्मका विवेचन किया और अन्तमें अपने विषयके समापन प्रतिपादनहेतु वे भगवान् पिप्पलादके समीप उपस्थित हुए। सभीके हाथोंमें समिधा देखकर ब्रह्मज्ञानी महर्षि समझ गये कि ये सभी विधिवत् ब्रह्मविद्या प्राप्तिहेतु आये हैं। गुरु शिष्यकी वैदिक परम्परानुरूप पिप्पलादने कहा—'तुम सभी तप इन्द्रिय-संयम, ब्रह्मचर्य और श्रद्धासे युक्त हो, गुरु-निर्देशानुरूप एक वर्ष आश्रममें निवास करो' तत्पश्चात् मैं तुम्हारी शङ्काओंका समाधान करूँगा।'

गुरुकुलवासकी अवधिको कुशलतापूर्वक निर्वहन कर महर्षि कात्यके प्रपौत्र कबन्धीने मुनि पिप्पलादसे पूछा—'भगवन्! ये सम्पूर्ण प्रजाएँ किससे उत्पन्न होती हैं?'—

'भगवन् कुतो ह वा इमाः प्रजाः प्रजायन्त इति।' तब पिप्पलादने गम्भीर गिरामें कहा—

आदित्यो ह वै प्राणो रयिरेव चन्द्रमा रयिर्वा एतत्सर्वं यन्मूर्तं चामूर्तं च तस्मान्मूर्तिरेव रयिः॥ अथादित्य उदयन्यत्प्राचीं दिशं प्रविशति तेन प्राच्यान् प्राणान् रश्मिषु संनिधत्ते॥ यद्दक्षिणाम्... सहस्ररश्मिः शतधा वर्तमानः प्राणः प्रजाना-मुदयत्येष सूर्यः॥
(—प्रश्नो० १ । ५—८)

'निश्चय ही, आदित्य ही प्राण और चन्द्रमा ही रयि हैं। सभी स्थूल और सूक्ष्म मूर्त और अमूर्त रयि ही हैं, अतः मूर्ति ही रयि है। जिस समय उदय होकर सूर्य पूर्व दिशामें प्रवेश करते हैं, उससे पूर्व दिशाके प्राणों को सर्वत्र व्याप्त होनेके कारण अपनी किरणोंमें उन्हें प्रविष्ट कर लेते हैं। इसी प्रकार सभी दिशाओंको वे आत्म-भूत कर लेते हैं। वे भोक्ता होनेके कारण वैश्वानर, विश्वरूप प्राण और अग्निरूप हो प्रकट होते हैं। ये सर्वरूप, ज्ञानसम्पन्न, समस्त प्राणोंके आश्रयदाता सूर्य ही सम्पूर्ण प्रजाके जनक हैं।'

महान् वैज्ञानिक लार्ड केल्विनने सूर्यकी आयु पचास करोड़ वर्ष ऑकसर जो भूल की थी या हेल्म होल्ट्जके सूर्य-सम्बन्धी अन्वेषण आजके वैज्ञानिक पैट्रिक मूर आदि अमान्य घोषित कर चुके हैं, उन सभीको हमारी उपनिषदें चुनौती देती प्रतीत होती हैं। वे न तो सूर्यके विकिरणका कारण गुरुत्वाकर्षणीय आकुञ्चन मानती हैं और न सूर्यको हाइड्रोजनसे हीलियममें परिवर्तित द्रव्यकी संज्ञा देती हैं, वरन् अपने निश्चयका डिमडिम घोष करती हैं कि 'आदित्यो ब्रह्म'। सूर्य-सम्बन्धी वैज्ञानिक छान्दोग्योपनिषद्के इकीसवें खण्डका सूक्ष्म अध्ययन करें तो उन्हें सूर्य-सम्बन्धी वैदिक मान्यताओंका ज्ञान हो जायगा। सूर्यके मानवके साथ जुड़ी पृथ्वीके रहस्य सूर्यको बिना समझे अधूरे रहेंगे। अस्तु,

यज्ञानुष्ठानोंकी उपादेयता, वाञ्छित फलप्रदायक शक्ति तथा आवश्यकता वैदिककालसे वर्तमानतक स्वान्त सुखायके एकमात्र साधनके रूपमें निरन्तर बनी हुई है और चाहे किसी भी उपलब्धिहेतु यज्ञ-समारम्भ हो, सभीमें सूर्यका स्थान सर्वोपरि है।

अग्निहोत्री पुरुष दीप्तिमान् अग्निशिखाओंमें आहुतियों-द्वारा अग्निहोत्रादि कर्मका जो आचरण करता है, उस यजमानकी आहुतियोंको देवताओंके एकमात्र स्वामी इन्द्रके पास ले जानेका गुरुतर कार्य सूर्यकिरणोंद्वारा ही सम्पन्न होता है—

पह्येहीति तमाहुतयः सुवर्चसः
सूर्यस्य रश्मिभिर्यजमानं वहन्ति।
(—मुण्डक० २। ६)

रंग-बिरंगे मुस्काते सुगन्धित पुष्प, सुस्वादु फलोंसे लदे वृक्ष 'अन्नं हि भूतानां ज्येष्ठम्'का प्रतिपादन करती लहलहाती फसलें—इन सभीका आधार आदित्य ही तो हैं।

प्रभाकर उद्दीप्त होते हुए भी प्रजाओंके अन्न-उत्पत्तिके लिये उद्गान करते हैं। इतना ही नहीं, वे उदित होकर अन्धकार एवं तज्जन्य भयका भी नाश करते हैं।

अथाधिदैवतं य एवासौ तपति तमुद्गीथमुपासीतोद्यन्वा एष प्रजाभ्य उद्गायति उद्यंस्तमोभयमपहन्त्य-पहन्ता ह वै भयस्य तमसो भवति य एवं वेद॥
(—छान्दो० १। ३। १)

विभावसुकी विभिन्न दृष्टियोंसे उपासना—जैसे बृहत्सामो-पासना, आध्यात्म तथा आधिदैविक उपासना, आत्मब्रह्मो-पासना, विराट्पुरुषोपासना आदिका विशद विवरण इसी उपनिषद्में विस्तारपूर्वक समझाया गया है। महर्षियोंने इसी प्रकारके मन्त्र-ब्राह्मणसे आत्माको शान्ति दिया और जीवनको यज्ञ बनाकर उस सत्यको उपलब्ध किया जो ब्रह्माण्डको धारण करनेवाला मध्यबिन्दु बना।

शाकल्यके पुत्र विदग्धकी शङ्काओंका समाधान करते हुए महर्षि याज्ञवल्क्यने जिन तैंतीस देवताओंका विवरण समझाया है, वे भी सूर्यके बिना अधूरे रहते—'त्रिंशदित्यष्टौ वसव एकादश रुद्रा द्वादशादित्या-स्त एकत्रिंशदिन्द्रश्चैव प्रजापतिश्च त्रयस्त्रिंशाविति।'
(—बृहदारण्यक० ३। ९। २)

वे आठ वसु, एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य, इन्द्र और प्रजापति हैं। अर्जुनके व्यामोहको भंग करनेका उपदेश देते हुए भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—मैं अदितिके बारह पुत्रोंमें विष्णु और ज्योतियोंमें किरणोंवाला सूर्य हूँ—'आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान्' (गीता १०। २१) यदि भगवान् रवि उदित न हों तो सभी आँखोंवाले चक्षुविहीन हो जायँ। आँख सूर्यके प्रकाशसे ही देखती है—'आदित्यश्चक्षुर्भूत्वाक्षिणी' (ऐतरेयो० १। २। ४) इसीलिये तो चराचर विश्व सूर्यके समक्ष नत हैं—

नमः सवित्रे जगदेकचक्षुषे
जगत्प्रसूतिस्थितिनाशहेतवे।
त्रयीमयाय त्रिगुणात्मधारिणे
विरञ्चिनारायणशङ्करात्मने॥
यस्योदयेनेह जगत् प्रबुध्यते
प्रवर्तते चाखिलकर्मसिद्धये।
महेन्द्रनारायणरुद्रवन्दितः
स नः सदा यच्छतु मङ्गलं रविः॥

मन्त्र-ब्राह्मणके उस उपदेष्टाके स्वरमें स्वर मिलाकर आइये हम सब भी उस सङ्कल्पको दोहरायें।

सूर्य व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयम्। तेनर्ध्यासम्। इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि॥

हे व्रतपति सूर्य! आजसे मैं अनृत (असत्य) से सत्यकी ओर, अज्ञानसे प्रकाशकी ओर जानेका व्रत ले रहा हूँ। आपको उसकी सूचना दे रहा हूँ। मैं इसे निभा सकूँ। उस मार्गपर आगे बढ़ सकूँ।

परब्रह्म परमात्माके प्रतीक भगवान् सूर्य

(लेखक—स्वामी श्रीज्योतिर्मयानन्दजी महाराज मियामी फ्लोरिडा, संयुक्त राज्य, अमरीका)

अति प्राचीन कालसे आजतक किसीने मानवके मस्तिष्कको इतना आकृष्ट एवं चमत्कृत नहीं किया है, जितना कि पूर्वमें उदित हो अनन्त आकाशमें विचरण करते हुए पश्चिममें अस्त होनेवाले परम तेजस्वी एवं स्तुत्य भगवान् सूर्यने किया और इनकी किरणोंके बिना इस पृथ्वीपर प्राणिमात्रका जीवन सम्भव नहीं है। प्राय सभी व्यक्ति इन परम तेजस्वी भगवान् सूर्यका स्वागत एवं पूजन करते हैं। समयकी कल्पना, दिन और रातका आवागमन, मास एवं ऋतुओंका विभाजन तथा चन्द्रमाके क्षय एवं वृद्धिद्वारा कृष्ण एवं शुक्ल-पक्षोंका होना आदि—सभी व्यावहारिक बातें मानव-जीवनको निरन्तर प्रभावित करती हैं। इन सबके कारण भगवान् सूर्य ही हैं। अनादिकालसे ही मनुष्य-जीवनकी अनन्त प्रेरणाओं एवं इच्छाओंको पूर्ण करनेके मार्गमय मन्त्र वेदमें अभिव्यक्त हैं—

'असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्माऽमृतं गमय।'

प्रभो! आप मुझे असत्से सत्की ओर, अन्धकारसे प्रकाशकी ओर तथा मृत्युसे अमृतत्वकी ओर ले चलें। अन्धकारमय जागतिक प्रपञ्चोंसे आत्मप्रकाशकी ओर चलना ही मानव-जीवनकी उन्नति यात्रा है। माया, मोह या अज्ञान—ये समस्त भय शक्तियोंके विरुद्ध एवं निरन्तर सक्रिय हैं, जो क्रोध, घृणा, हिंसा, लोभ एवं समस्त दुर्गुणोंके रूपमें विद्यमान हैं और जिसका मूल कारण अविद्या तथा जन्म-जन्मान्तरकी वासना है, उसे अज्ञान कहते हैं। परंतु ज्ञान-स्वरूप सूर्य ऐसा प्रकाशका स्रोत है, जो अनन्तके सर्वोच्च प्रकाशके साथ प्राणोंको जोड़ता है। प्रकाश परम पवित्र चेतनाका प्रतीक है। विश्वके सभी धर्मोंने सार्वभौमरूपसे प्रकाशको ईश्वरकी उपस्थितिका प्रतीक माना है। अतएव विश्व भरके समस्त मन्दिरों, चर्चों एवं पूजनीय स्थानोंमें दीपक जलाये जाते हैं। गीताने भी उस अनन्तका वर्णन—'ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते'—अन्धकारसे परे एवं प्रकाशोंका भी प्रकाश आदिरूपसे किया है। निदान, परब्रह्म ज्योतियोंका भी ज्योति है। जो मायासे अत्यन्त परे कहा जाता है, वह परमात्मा बोधस्वरूप, जाननेयोग्य (ज्ञेय) एवं तात्त्विक ज्ञानसे प्राप्त करने योग्य है। पर वह तो सबके हृदयमें ही विराजमान है। उपनिषदोंके द्रष्टा ऋषि कहते हैं—'भूः भुवः तथा स्वः'—इन तीन लोकोंके अधिष्ठाता उस श्रेष्ठ कल्याणकारी सूर्यदेवताके 'भर्ग'का हम ध्यान करते हैं, जो हमारी बुद्धिको सन्मार्गके प्रति प्रेरित करता है। सूर्योपनिषद्के अनुसार सूर्य सम्पूर्ण विश्वके आत्मा हैं। मृत्युसे रक्षा पानेके लिये उन्हें प्रणाम किया जाता है। सूर्योपनिषद्के अनुसार सूर्यसे ही समस्त प्राणियोंकी उत्पत्ति एवं रक्षा होती है तथा सूर्यमें ही उन सबका अवसान होता है। मैं वही हूँ, जो सूर्य है—

'नमो मित्राय भानवे मृत्योर्मा पाहि।
भ्राजिष्णवे विश्वहेतवे नमः॥
सूर्याद् भवन्ति भूतानि सूर्येण पालितानि तु।
सूर्ये लयं प्राप्नुवन्ति यः सूर्यः सोऽहमेव च॥'
(—सूर्योपनिषद् २।४)

देवयान एवं पितृयाग (धूम्रमार्ग तथा अर्चिमार्ग)—

उपनिषदोंने श्रेय और प्रेयके दो मार्ग बतलाये हैं। पहलेको देवयान या अर्चिमार्ग तथा दूसरेको पितृयान अथवा धूम्रमार्ग कहा है। श्रेयोमार्गके पथिक अर्चिमार्गका अनुसरण करते हुए मुक्ति प्राप्त करते हैं। इसके विपरीत, जो प्रेयमार्गका अनुसरण करते हैं, वे दुःखके चक्रमें पड़े रहते हैं। पहलेवाले

करनेवाले शाश्वत सूर्यकी ओर जाते हैं। प्रेयोमार्गवाले इन्द्रियोंके मिथ्या सुखमें मोहित हुए रहते हैं। इनके अतिरिक्त एक तीसरा अन्य मार्ग भी उन लोगोंके लिये है, जो पापपूर्ण कार्योंमें सदा लिप्त हैं। उनके लिये जो मार्ग है, वह अन्धकार एवं नारकीय यातनाओंसे सम्पन्न है। अज्ञानमार्गका अनुसरण करनेवाले पापी नरकको प्राप्त करते हैं। जो गुणवान् हैं, किंतु अहंभावसे पूर्ण होनेके कारण माया-मोहको दूर करनेमें असमर्थ हैं, वे अपने इन कर्मोंके द्वारा स्वर्गको प्राप्त होते हैं। वहाँके स्वर्गीय आनन्दोंका अनुभव करके पुनः इस मृत्युलोकमें लौट आते हैं। ये दोनों दक्षिणायन या धूम्रमार्गका अनुसरण करनेवाले हैं। जो बार-बार सांसारिक जन्म-मरणकी आवृत्ति करता है, किंतु अहंभावसे उत्पन्न माया-मोहको नष्टकर जिसने परमात्मासे एकत्व स्थापित कर लिया है, वह पाप-पुण्यसे मुक्त होकर कर्म एवं उनके फलोंसे ऊपर उठकर आत्म-प्रकाशको प्राप्त कर लेता है। इन्हें ही अर्चिमार्गका अनुयायी कहा गया है। पिप्पलाद मुनि कहते हैं—

> अथोत्तरेण तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया
> विद्ययात्मानमन्विष्यादित्यमभिजयन्ते।
> एतद्वै प्राणानामायतनमेतदमृतमभय-
> मेतत्परायणमेतस्मान्न पुनरावर्तन्त।
> (—प्रश्नोपनिषद् १।१०)

जिन्होंने आध्यात्मिक दृष्टिसे विश्वासपूर्वक ब्रह्मचर्य तथा तपस्यासे अपने जीवनको सूर्यरूपी ईश्वरको खोजमें लगा दिया है, वे उत्तरी मार्गसे जाने और सूर्यलोक प्राप्त करते हैं। ये दिव्य सूर्य प्राणोंके ग्रन्थात हैं। यह अमृतमय, निर्भय तथा सर्वोत्कृष्ट स्थान है, जहाँ किसीको पुनरागमनरूप संसृतिचक्रमें लौटना नहीं पड़ता। अतः मानवजीवनकी चरमसिद्धिके लिये इन सूर्यदेवकी साधना प्रत्येक मनुष्यका परम कर्तव्य है।

(अनुवादक—शशिशेखर त्रिपाठी, एम्० ए०, साहित्यरत्न)

वेदोंमें श्रीसूर्यदेवकी उपासना

(लेखक—श्रीदीनानाथजी शर्मा शास्त्री, सारस्वत, विद्यावाचस्पति, विद्यावागीश, विद्यानिधि)

वेदोंमें श्रीसूर्यकी उपासनाकी विवृति भरी हुई है। 'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च' (यजु० माध्य० ७। ४२) सूर्य चलनशील पदार्थों तथा स्थिर वस्तुओंकी आत्मा हैं। यह सम्पूर्ण जगत् सूर्यके आश्रयसे ही स्थित है। सूर्यके अभावमें यह जगत् नहीं रह सकता। सूर्य ऊष्माके पुञ्ज हैं। जगत्में ऊष्मा न होनेपर जल नहीं रह सकता। केवल बर्फ ही रहेगी। सूर्यसे ही अग्नि तथा विद्युत् प्राप्त होती है। वृष्टिका जल भी सूर्यकी कृपासे ही प्राप्त होता है।

सूर्य चेतन देवता हैं; इस विषयमें दार्शनिक कहा जाता है कि सभी पदार्थ चेतन हुआ करते हैं। इसी अभिप्रायसे व्याकरण महाभाष्यमें एक वार्तिक आया है—'सर्वस्य वा चेतनावत्त्वात्' (३। १। ७)—इस वार्तिकके विवरणमें कहा गया है—'सर्वं चेतनावत्।' वस्तुतः सभी पदार्थ चेतनावान् हैं।

'दुष्प्रनाथ चरकाचार्यम्'में एक आधुनिक विद्वान्ने लिखा है—वस्तुतः अभिमानी देवताकी कल्पना भी अर्वाचीन विद्वानोंद्वारा हुई है। प्राचीन आचार्य 'अचेतनेषु चेतनावत्' अर्थात्—अचेतनोंमें चेतनवत् व्यवहार औपचारिक (गौण) मानते थे। इसी नियमसे ही 'शृणोत ग्रावाणः' (कृ० य० तै० सं० १। ३। १३। १) आदि वैदिक वाक्योंका सामञ्जस्य स्पष्ट हो जाता है। उसमें अभिमानी देवताकी कल्पनाकी कोई आवश्यकता भी नहीं है। हमारे अनुसार यह कथन युक्त नहीं है। यह कथन महाभाष्यके उस वार्तिकके आधारसे प्रयुक्त प्रतीत होता है। वस्तुतः यहाँ

'चेतनावत्' पाठ है, 'चेतनवत्' नहीं और यहाँ 'मतुप्' प्रत्यय है, 'वति' नहीं। (अर्थात् सभी पदार्थ चेतनावाले हैं, न कि चेतनके समान।)

उक्त वार्तिकके विवरणमें महाभाष्यमें कहा है—'अथवा सर्वं चेतनावत्।' एष हि आह—'कस्तक सर्पति, शिरीषोऽयमपिति, सुवर्चला आदित्यमनु पर्येति।' अयस्कान्तमयः संक्रामति। ऋषिश्च (वेदम्) पठति—'शृणोत ग्रावाणः'। (कृ० य० तै० सं० १।३।१३।१)

उपर्युक्त वाक्योंको देकर सिद्ध किया गया है कि सभी दीख रही जड़ वस्तुएँ वेदानुसार चेतन हैं। श्रीकैयट तथा नागेशभट्टने भी यही सिद्ध किया है। वार्तमानिक विज्ञान भी यही सिद्ध करता है। इन अपूर्व बातोंको देखकर वैज्ञानिकोंकी यह धारणा हो गयी है कि समस्त चराचरमें सारभूत वस्तु कोई भी नहीं और संसारमें कोइ पदार्थ भी जड़ नहीं है। इसी कारण वैज्ञानिक लोग सूर्यमें भी प्रसन्नता-अप्रसन्नताके परमाणु मानने लगे हैं।

इसका विवरण इस प्रकार है—'कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी—लंदनमें सूर्यके विषयमें एक लेक्चर हुआ था। उस व्याख्याताने कहा—उत्तरी अमेरिकाके मेनलैंड प्रदेशमें एक दफीने (खजाने)का खोदना शुरू हुआ था। वहाँ दफीना तो मिला नहीं, एक देवमन्दिर अवश्य मिला। उसमें सूर्यकी एक मूर्ति है, उसके सामने एक हिंदू व्यक्ति प्रणाम कर रहा है। सामने ही अग्निसे धुआँ उठ रहा है, जिससे मालूम होता है कि अग्निमें कुछ सुगन्धित द्रव्य डाला गया है। इधर-उधर फल पड़े हैं। यह सब दृश्य पत्थरोंसे बनाया गया है।

इस विचित्र सूर्य-मन्दिरसे मालूम हुआ कि किसी युगमें हिंदुओंका राज्य अमेरिकातक फैला था। इसके अतिरिक्त यह भी मालूम हुआ कि हिंदुओंका विश्वास था कि सूर्य प्रसन्न तथा अप्रसन्न भी हो सकते हैं। यदि ऐसा न होता, तो एक हिंदू सूर्यकी इस प्रकार नमस्कारादि पूजा क्यों करता? इस विषयको लेकर वैज्ञानिक संसारमें क्रान्ति उत्पन्न हो गयी।

मिस्टर जार्ज नामक किसी विज्ञानके प्रोफेसरने सूर्यके विषयमें यह परीक्षा की कि सूर्यमें कृपाशक्ति है या नहीं? हिंदुओंकी सूर्यपूजाका पता भारतीय प्राचीन इतिहाससे पहले ही था। मिस्टर जार्जने सोचा कि हिंदुओंकी सूर्योपासना क्या मूर्खतापूर्ण थी या वास्तविक? इसकी एक दिन रोचक परीक्षा हुई। मईका महीना था। पूरे दोपहरके समय केवल पजामा पहनकर मि० जार्ज नंगे शरीर धूपमें ठहरे। पाँच मिनट सूर्यके सामने ठहरकर वे कमरेमें गये। थर्मामीटरसे उन्होंने अपना तापमान देखा। तीन डिग्रीतक बुखार चढ़ा था। दूसरे दिन उस महाशयने श्रद्धासे फल-फूलोंका उपहार तैयार किया। अग्निमें धूप जलाया। अब वे पूरे दोपहरमें नंगे शरीर धूपमें गये। उन्होंने सूर्यके सामने श्रद्धासे फल-फूल चढ़ाये। हाथ जोड़कर प्रणाम किया। जब वे अपने कमरेमें गये तो उन्होंने देखा कि आज वे ग्यारह मिनटतक सूर्यके सामने रहे। थर्मामीटरसे मालूम हुआ कि आज उनका तापमान नार्मल (सामान्य) रहा। उनका पारा ठण्डकी ओर रहा।

इससे उन्होंने यह परिणाम निकाला कि सूर्य केवल अग्निका गोला और जड़ है, वैज्ञानिकोंका यह सिद्धान्त गलत है। उसमें प्रसन्नता और अप्रसन्नताका तत्त्व भी विद्यमान है। यह विवरण बरालोकपुर (इटावा)की 'अनुभूत योगमाला' पत्रिकामें छपा था। वेदमें सूर्यके लिये कहा है—'इना विश्वस्य भुवनस्य गोपाः स मा धीरः' (ऋ० १।१६४।२१)—इसमें सूर्यको बुद्धियुक्त बताया गया है और 'धियो यो नः प्रचोदयात्' (यजु० माध्य० ३।३५)—इस मन्त्रके द्वारा सूर्यसे धार्मिक लोग बुद्धिकी प्रार्थना किया

इसीलिये वेदमें 'उद्यते नमः', 'उदायते नमः,' 'उदिताय नमः' (अथर्व० १७ । १ । २२) 'अस्तं यते नमोऽस्तमेष्यते नमोऽस्तमिताय नमः' (२३) सूर्यकी उदय और अस्तकी तीन दशाओंको नमस्कार किया गया है। इसी सूत्रको लेकर—

उत्तमा तारकोपेता मध्यमा लुप्ततारका।
अधमा सूर्यसहिता प्रातःसन्ध्या त्रिधा मता॥
उत्तमा सूर्यसहिता मध्यमा लुप्तभास्करा।
अधमा तारकोपेता सायंसन्ध्या त्रिधा मता॥

—सन्ध्योपासनाके ये तीन भेद बताये गये हैं।

ऋषयो दीर्घसन्ध्यत्वाद् दीर्घमायुरवाप्नुयुः।
प्रज्ञां यशश्च कीर्तिं च ब्रह्मवर्चसमेव च॥
(मनु० ४ । ९४)

ऋषियोंकी सन्ध्या लम्बी होनेसे उनकी आयु भी लम्बी होती थी। उनका यश तथा ब्रह्मतेज भी तेज होता था। इसको मनुस्मृतिमें इस प्रकार स्पष्ट किया गया है—

पूर्वां सन्ध्यां जपंस्तिष्ठेत् सावित्रीमार्कदर्शनात्।
पश्चिमां तु समासीनः सम्यगृक्षविभावनात्॥
(—मनु० २ । १०१)

सावित्रीमन्त्रकी मुख्यताका कारण अदृष्टमें जो भी हो, (क्योंकि यह वेदकी सारस्वरूप है।) पर दृष्टमें यह मुख्य है। इसकी मुख्यताका कारण यह है कि इस मन्त्रमें बुद्धिकी प्रार्थना है। सूर्यसे बुद्धिकी प्रार्थना इस कारण है कि वे बुद्धिके अधिष्ठाता देव हैं। इनके बुद्धिके दाता होनेसे सूर्योदयके समय चोरोंकी चौर्य-प्रवृत्ति और व्यभिचारियोंकी प्रवृत्ति छूट जाती है।

रूसमें ही वैज्ञानिकोंने एक ऐसी सूई बनायी है कि जिसके इन्जेक्शनसे दुष्ट व्यक्तियोंमें सद्बुद्धि उदित हो जाती है और सर्वसाधारणका भय हट जाता है। बुद्धिकी प्रार्थनासे ही वृद्धा कुमारी तथा ब्राह्मण वरदानमें सब कुछ माँग ले सकता है। इस कारण सावित्रीमन्त्र बुद्धिदाता होनेसे सभी कुछ देनेवाला है। अब उसकी महत्ता स्पष्ट है। एक वृद्धा कुमारीने पति, पुत्र, धान्य, गाय, यौवन आदि चाहते हुए तप किया था। वरदाता देवताने साक्षात् होकर उसे वरदान देनेके लिये वर माँगनेके लिये कहा। उसने वर माँगा—'मैं अपने पुत्रको बहुत घी-दूध मिले सोनेके पात्रोंमें भात खाता हुआ देखना चाहती हूँ।' इस प्रकार उसने अपने यौवन, पति, पुत्र, सोना, धान्य और गाय आदिको माँग लिया।

इसी प्रकार एक जन्मान्ध, निर्धन, अविवाहित ब्राह्मणकी भी कथा है। देवताके मुखसे वरकी प्राप्ति जानकर उसने भी देवतासे वर माँगा—'मैं अपने पोतेको राज्यसिंहासनपर बैठा देखना चाहता हूँ।' इस प्रकार उसने एक वरसे आँखें, धन, पुत्र, यौवन, विवाह, स्त्री, पुत्र, पौत्र और सन्तान भी माँग ली। यही बात है, बुद्धिकी प्रार्थनाकी। हमारे जो कार्य सिद्ध नहीं होते, उसका कारण है बुद्धिकी विपरीतता। इसीलिये प्रसिद्ध है—

'विनाशकाले विपरीतबुद्धिः।' (चाणक्य नीति)

महाभारतमें देवताओंके लिये कहा है—'देवता डंडा लेकर पशुपालकी भाँति पुरुषकी रक्षा नहीं करते। जिसकी वे रक्षा करना चाहते हैं, उसे बुद्धि दे दिया करते हैं। जिसे गिराना चाहते हैं—उसकी बुद्धि छीन लिया करते हैं (महाभारत, उद्योगपर्व ३४ । ८०-८१)।' इससे जब बुद्धिकी महत्ता सिद्ध हुई तब बुद्धिप्रद सावित्री-मन्त्रकी भी महत्ता सिद्ध हो गयी।

इसलिये इस वेदमाता सावित्रीका वेदमें महान् वर कहा है (अथर्व० १९ । ७१ । १)। 'स्तुता मया वरदा वेदमाता प्र चोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्। आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्। मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्' (अथर्व० १९ । ७१ । १)।

यही कारण कि यहाँ सूर्यदेवका वेदमें विशेष वर्णन किया है। 'योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्' (यजु० माध्य० ४० । १७)। इससे सूर्यदेवकी उपासना अग्निद्वारा उपासना करना सभी द्विजोंका कर्तव्य है।

वैदिक वाङ्मयमें सूर्य और उनका महत्त्व

(लेखक—आचार्य प० श्रीविष्णुदेवजी उपाध्याय, नव्यव्याकरणाचार्य)

विश्वम जीवन और गतिके महान् प्रेरक, हमारी इस पृथ्वीको अपने गर्भसे उत्पन्न करनेवाले और गतिमान्के रूपमें सम्पूर्ण ससारके सभी गतिमानोंमें प्रमुख सूर्य[1] चराचर विश्वके सचालक, घटी, पल, अहोरात्र, मास एव ऋतु आदि समयके प्रवर्तक प्रत्यक्ष देवता हैं। उनका नाम सौर-मण्डल-वाचक शब्दके (व्युत्पत्ति-मूलक स्वारस्यके) अनुरूप है। यही कारण है कि सूर्यकी कल्पनामें सौर-शरीरका भान बराबर बना रहता है[2]।

ऋग्वेदमें सूर्यदेवको चौदह सूक्त समर्पित हैं। इन सूक्तोंमें प्राय सूर्य शब्दसे भौतिक सौर-मण्डलका बोध होता है, यथा—ऋषि हमें बतलाते हैं कि आकाशमें सूर्यका ज्वलन्त प्रकाश मानो अमूर्त अग्निदेवका मुख है[3]। मृतककी चक्षु (आँखें) उसमें चला जाती हैं[4]। सूर्य विराट् ब्रह्मकी आँखोंसे उत्पन्न हैं। वे सूर्यदेव दूरद्रष्टा[5], सर्वद्रष्टा[6] और अशेष जगतीके सर्वेक्षक हैं[7]।

---

१ 'सरति गच्छति वा सुवति प्रेरयति वा तत्तद्व्यापारेषु कृत्स्नं जगदिति सूर्यः। यद्वा सुष्ठु ईर्यते प्रकाशप्रवर्षणादिव्यापारेषु प्रेर्यते इति सूर्यः'।—(ऋग्वेद १।११४।३ पर सायण)

और भी देखें—'सूते श्रियमिति सूर्यः' (विष्णुसहस्रनाम १०७ पर आचार्य शङ्कर) 'स्वरति—आचरति कर्म स्वायते अर्च्यते भक्तैरिति सूर्यः' (निघण्टु ३।१), तुलनीय—'सूर्यकी निष्पत्ति वैदिक 'स्वर' से हुई, जो ग्रीक helios से सम्बद्ध है'। (मैकडॉनल, 'वैदिक देवशास्त्र', पृष्ठ ६६) तथा—

सूर्यः सरति भूतेषु सुवीरयति तानि वा। सु ईर्यत्वात् या क्षेपे सर्वकर्माणि सन्दधत्॥

(बृहद्देवता ७।१२८।१)

२ तुलनीय—अपामीवां बाधते वेति सूर्यम्॥ (ऋ० १।३५।९)

और भी देखें—उषा उच्छन्ती समिधाने अग्ना उद्यन्त्सूर्य उर्विया ज्योतिरश्रेत्॥ (ऋ० १।१२४।१)

३ अग्नेरनीकं बृहतः सपर्यं दिवि शुक्रं यजतं सूर्यस्य॥ (ऋ० १०।७।३)

४ सूर्यं चक्षुर्गच्छतु वातमात्मा॥ (ऋ० १०।१६।३) और भी देखें—(१) चक्षोः सूर्यो अजायत।

(ऋ० १०।९०।१३)

(२) चक्षुर्नो देवः सविता चक्षुर्न उत पर्वतः। चक्षुर्धाता दधातु नः॥ (ऋ० १०।१५८।३)

(३) चक्षुर्नो धेहि चक्षुषे चक्षुर्विख्यै तनूभ्यः॥ (ऋ० १०।१५८।४)

इसलिये अथर्ववेदमें सूर्यको चक्षुओंका पति बताया गया है और उनसे अपनी रक्षाकी कामना की गयी है—

सूर्यश्चक्षुषामधिपतिः स मावतु॥ (अथर्व० ५।२४।९)

अथर्ववेदमें यह उल्लेख भी है कि वे प्राणियोंके एक नेत्र हैं, जो आकाश, पृथिवी और जल परोवर (अन्यस्त [illegible]—निपुणता)से देखते हैं।

सूर्यो द्यां सूर्यः पृथिवीं सूर्य आपोऽति पश्यति। सूर्यो भूतस्यैकं चक्षुरारुरोह दिवं महीम्॥

(अथर्व० १३।१।४५)

तुलना—'चक्षु भानो जगच्चक्षुः'—(महाभारत ३।१६६)

५ [illegible] सूर उदगाद् उदेतु॥ (ऋ० ७।६३।८)

और भी देखें—दूरेदृशे देवजाताय केतवे दिवस्पुत्राय सूर्याय शंसत॥ (ऋ० १०।३७।१)

६ सूराय विश्वचक्षसे॥ (ऋ० १।५०।२)

७ तं सूर्यं हरितः सप्त यह्वीः स्पर्शं विश्वस्य जगतो वहन्ति॥ (ऋ० ४।१३।३)

इसीलिये वेदमें 'उद्यते नमः', 'उदायते नमः' 'उदिताय नमः' (अथर्व० १७।१।२२) 'अस्तं यते नमोऽस्तमेष्यते नमोऽस्तमिताय नमः' (२३) सूर्यको उदय और अस्तकी तीन दशाओंको नमस्कार किया गया है। इसी दृष्टिसे लेकर—

उत्तमा तारकोपेता मध्यमा लुप्ततारका।
अधमा सूर्यसहिता प्रातःसन्ध्या त्रिधा मता॥
उत्तमा सूर्यसहिता मध्यमा लुप्तभास्करा।
अधमा तारकोपेता सायंसन्ध्या त्रिधा मता॥

—सन्ध्योपासनाके ये तीन भेद बताये गये हैं।

ऋषयो दीर्घसन्ध्यत्वाद् दीर्घमायुरवाप्नुयुः।
प्रज्ञां यशश्च कीर्तिं च ब्रह्मवर्चसमेव च॥
(मनु० ४।९४)

ऋषियोंकी सन्ध्या लम्बी होनेसे उनकी आयु भी लम्बी होती थी। उनका यश तथा ब्रह्म भी तेज होता था। इसको मनुस्मृतिमें इस प्रकार स्पष्ट किया गया है—

पूर्वां सन्ध्यां जपंस्तिष्ठेत् सावित्रीमार्कदर्शनात्।
पश्चिमां तु समासीनः सम्यगृक्षविभावनात्॥
(मनु० २।१०१)

सावित्रीमन्त्रकी मुख्यताका कारण अन्यमें जो भी हो, (क्योंकि यह वेदका सारभूत है) पर इसमें यह मुख्य है। इसकी मुख्यताका कारण यह है कि इस मन्त्रमें बुद्धिकी प्रार्थना है। सूर्यसे बुद्धिकी प्रार्थना इस कारण है कि वे बुद्धिके अधिष्ठाता देव हैं। इनके बुद्धिके दाता होनेसे सूर्योदयके समय चोरोंकी चौर्य-प्रवृत्ति और जारोंकी जारताकी प्रवृत्ति हट जाती है।

इसीसे ही वेदज्ञानियोंने एक ऐसी युक्ति बनायी है कि जिसके [illegible] सद्बुद्धि उदित हो जाती है और सर्वसाधारणोंका भय दूर हो जाता है। बुद्धिकी प्रार्थनासे ही कृपा ... सब कुछ माँग ले सकता है। इस कारण सावित्रीमन्त्रके बुद्धिप्रद होनेसे सभी कुछ ... है। [illegible]

धन, पुत्र, धान्य, गाय, यौवन आदि चाहते हुए नहीं थी। वरदाता देवताने साक्षात् होकर उसे एक ही वर माँगनेके लिये कहा। उसने वर माँगा— 'मैं अपने पुत्रको बहुत घी-दूध मिला सोनेके पात्रोंमें भात खाता हुआ देखना चाहती हूँ।' इस प्रकार उसने अपने एक वरमें पुत्र, सोना, धान्य और गाय आदिको माँग लिया।

इसी प्रकार एक जन्मान्ध, निर्धन, अपुत्र ब्राह्मणकी भी कथा है। देवताके मुखसे एक वरकी प्राप्ति जानकर उसने भी देवतासे वर माँगा— 'मैं अपने पोतेको राज्यसिंहासनपर बैठा देखना चाहता हूँ।' इस प्रकार उसने एक वरसे अपने आँखें, धन, पुत्र, यौवन, विवाह, स्त्री, पुत्र, पौत्र आदि सन्तान भी माँग ली। यही बात है, बुद्धिकी प्रार्थनाकी। हमारे जो कार्य सिद्ध नहीं होते, उसका कारण है बुद्धिकी विपरीतता। इसलिये प्रसिद्ध है—

'विनाशकाले विपरीतबुद्धिः।' (चाणक्य नीति)

महाभारतमें देवताओंके लिये कहा है— 'वे डंडा लेकर पशुपालकी भाँति पुरुषकी रक्षा नहीं करते, जिसकी वे रक्षा करना चाहते हैं, उसे बुद्धि दे दिया करते हैं। जिसे गिराना चाहते हैं—उसकी बुद्धि छीन लिया करते हैं' (महाभारत, उद्योगपर्व ३४।८०-८१)। इससे जब बुद्धिकी महत्ता सिद्ध हुई तब बुद्धिप्रद सावित्रीमन्त्रकी भी महत्ता सिद्ध हो गयी।

इसलिये इस वेदमाता सावित्रीको वेदमें महान् फलदायक कहा है (अथर्व० १९।७१।१)। 'स्तुता मया वरदा वेदमाता प्र चोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्। आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्। मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्' (अथर्व० १९।७१।१)।

इसी वेदमाताके ऋषि सूर्यदेवका वेदमें निरूपण भी किया है। 'योऽसौ आदित्ये पुरुषः सोऽसावहम्' (यजु० माध्य० ४०।१७)। ऐसे सूर्यदेवकी इनसे अभिन्नताकी उपासना करना सभी द्विजोंका कर्तव्य है।

वैदिक वाङ्मयमें सूर्य और उनका महत्त्व

(लेखक—आचार्य पं० श्रीविष्णुदेवजी उपाध्याय, नव्यव्याकरणाचार्य)

विश्वमें जीवन और गतिके महान् प्रेरक, हमारी इस पृथ्वीको अपने गर्भसे उत्पन्न करनेवाले और गतिमान्‌के रूपमें सम्पूर्ण संसारके सभी गतिमानोंमें प्रमुख सूर्य[1] हमारे विश्वके संचालक, घटी, पल, अहोरात्र, मास एवं ऋतु आदि समयके प्रवर्तक प्रत्यक्ष देवता हैं। उनका नाम सौर-मण्डल-वाचक शब्दके (व्युत्पत्ति-मूलक वास्तवके) अनुरूप है। यही कारण है कि सूर्यकी कल्पनामें सौर-शरीरका भान बराबर बना रहता है[2]।

ऋग्वेदमें सूर्यदेवको चौदह सूक्त समर्पित हैं। इन सूक्तोंमें प्रायः सूर्य शब्दसे भौतिक सौर-मण्डलका बोध होता है, यथा—ऋषि हमें बतलाते हैं कि आकाशमें सूर्यका ज्वलन्त प्रकाश मानो अद्भुत अग्निदेवका मुख है[3]। मृतककी चक्षु (आँखें) उसमें चली जाती हैं[4]। सूर्य विराट् ब्रह्मकी आँखोंसे उत्पन्न हैं। वे सूर्यदेव दूरद्रष्टा[5], सर्वद्रष्टा और अशेष जगतीके सर्वेक्षक हैं[6]।

१ 'सरति गच्छति वा सुवति प्रेरयति वा तत्तद् व्यापारेषु कृत्स्नं जगदिति सूर्यः। यद्वा सुष्ठु ईर्यते प्रकाशप्रवर्षणादि व्यापारेषु प्रेर्यते इति सूर्यः'।—(ऋग्वेद १ । ११४ । ३ पर सायण)

और भी देखें—'सूते श्रियमिति सूर्यः' (विष्णुसहस्रनाम १०७ पर आचार्य शंकर), 'स्वरति—आचरति कर्म स्वीयंते अर्च्यते भक्तैरिति सूर्यः' (निघण्टु ३ । १), तुलनीय—'सूर्यकी निष्पत्ति वैदिक 'स्वर' से हुई, जो ग्रीक helios से सम्बद्ध है'। (मैकडॉनल, 'वैदिक देवशास्त्र', पृष्ठ ६६) तथा—

सूर्यः सरति भूतेषु सुवीरयति तानि वा। सु ईरयत्यायं यो ह्येष सर्वकर्माणि सन्दधत् ॥

(बृहद्देवता ७ । १२८ । १)

२ तुलनीय—अपामीवां बाधते वेति सूर्यम् ॥ (ऋ० १ । ३५ । ९)

और भी देखें—उषा उच्छन्ती समिधाने अग्ना उद्यन्त्सूर्य उर्विया ज्योतिरश्रेत् ॥ (ऋ० १ । १२४ । १)

३ अग्नेरनीकं बृहतः सपर्यं दिवि शुक्रं यजतं सूर्यस्य ॥ (ऋ० १० । ७ । ३)

४ सूर्यं चक्षुर्गच्छतु वातमात्मा ॥ (ऋ० १० । १६ । ३) और भी देखें—(१) चक्षोः सूर्यो अजायत। (ऋ० १० । ९० । १३)

(२) चक्षुर्नो देवः सविता चक्षुर्न उत पर्वतः। चक्षुर्धाता दधातु नः ॥ (ऋ० १० । १५८ । ३)

(३) चक्षुर्नो धेहि चक्षुषे चक्षुर्विख्यै तनूभ्यः ॥ (ऋ० १० । १५८ । ४)

इसीलिये अथर्ववेदमें सूर्यको चक्षुओंका पति बताया गया है और उनसे अपनी रक्षाकी कामना की गयी है—

सूर्यश्चक्षुषामधिपतिः स मावतु ॥ (अथर्व० ५ । २४ । ९)

अथर्ववेदमें यह उल्लेख भी है कि ये प्राणियोंके एक नेत्र हैं, जो आकाश, पृथिवी और जलको परोवर (अत्यन्त श्रेष्ठता—निपुणता)से देखते हैं।

सूर्यो द्यां सूर्यः पृथिवीं सूर्य आपोऽतिपश्यति। सूर्यो भूतस्यैकं चक्षुरारुरोह दिवं महीम् ॥

(अथर्व० १३ । १ । ४५)

तुलनीय—'त्वं भानो जगतश्चक्षुः'—(महाभारत ३ । १६६)

५ शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु ॥ (ऋ० ७ । ३५ । ८)

और भी देखें—दूरेदृशे देवजाताय केतवे दिवस्पुत्राय सूर्याय शंसत ॥ (ऋ० १० । ३७ । १)

६ सूराय विश्वचक्षसे ॥ (ऋ० १ । ५० । २)

७ सं सूर्यं हरितः सप्त यह्वीः स्पर्शं विश्वस्य जगतो वहन्ति ॥ (ऋ० ४ । १३ । ३)

सूर्यके द्वारा उद्बुद्ध होनेपर मनुष्य अपने लक्ष्योंकी ओर निकल पड़ते हैं और सत्कर्तव्योंको पूरा करनेमें व्यस्त हो जाते हैं। सूर्य मानवजातिके लिये उद्बोधक बनकर उदित होते हैं।[८] वे चर और अचर विश्व—सभीकी आत्मा तथा उनके रक्षक हैं[१०]। उनके (दिव्य) रथ[११]-को एक ही घोड़ा (सारथि अथवा सब ब्रह्माण्डोंके सूर्योंमें एक समान विराजमान दिव्यशक्ति)[१२] परिवहन करता है, जिसका नाम एतश है[१३]। उनके रथको अगणित घोड़े अथवा घोड़ियाँ खींचते हैं। ये सख्यामें स[…] हैं[१५]। ये घोड़े (अथवा घोड़ियाँ) अन्य कुछ नहीं, सूर्यकी किरणें ही हैं[१६]। ऐसा अन्यत्र भी कहा गया है। 'सूर्यकी किरणें ही उन्हें लाती हैं'[१७]। इन किरणोंका प्रादुर्भाव जब सूर्यके रथसे होता है, तब किरणों (घोड़ियों) को रथकी (सात) पुत्रियोंके रूपमें ग्रहण किया गया है[१८]।

एक चक्र-धारी[१९] सूर्यके पथका निर्माण वरुणने कि[या] है[२०]। इस कार्यमें उनके सहायकोंका नाम अन्यत्र मि[…]

---

८ उद्वेति सुभगो विश्वचक्षाः साधारणः सूर्यो मानुषाणाम्॥—(ऋ० ७। ६३। १)
और भी देखें—(१) दिवा रुक्म उरुचक्षा उदेति॥ (ऋ० ७। ६३। ४)
(२) नूनं जनाः सूर्येण प्रसूता अयन्नर्थानि कृणवन्नपांसि॥ (ऋ० ७। ६३। ४)
९ उद्वेति प्रसवीता जनानां महान् केतुरर्णवः सूर्यस्य॥ (ऋ० ७। ६३। २)
और भी देखें—एष स्य देव सविता चच्छन्द यः समानं न प्रमिनाति धाम॥ (ऋ० ७। ६३। ३)
१० सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च॥ (ऋ० १। ११५। १) (यजु० ७। ४२)
और भी देखें—विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च गोपाः॥ (ऋ० ७। ६०। २)
तुलनीय—त्वमात्मा सर्वदेहिनाम्॥ (महाभारत ३। १६६)
११ महाभारत (५। १७०) में भी इनके दिव्य रथका उल्लेख मिलता है।
१२ मेरे विचारसे एकवचन 'एतश' शब्द या तो सारथिके लिये या सब ब्रह्माण्डोंके सूर्योंमें एक [समान] विराजमान दिव्यशक्तिके लिये प्रयुक्त हुआ है। यह इसलिये कि ऋग्वेदमें अन्यत्र घोड़ियों (हरित) तथा एत[श]में भेदकर उसे उनके ऊपर बताया गया है। यथा—वहन् हरित एतशेन वहन्ती पुत्र सर्वोदधरा एतशेन॥ (ऋ० ५। २९। ५) इस प्रकार 'एतश' सारथिके लिये सुनिश्चित होता है, जब कि एक अन्य स्थल, जहाँ सविताको एतश बताते हुए उ[नके] द्वारा पार्थिव लोकोंका माप जानेका उल्लेख है—य पार्थिवानि विममे स एतशो रजांसि देवः सविता महित्वना (ऋ० ५। ८१। ३)—एतशकी दिव्यशक्ति घोषित करता है।
१३ समानं चक्रं पर्याविवृत्सन् यदेतशो वहति धूर्षु युक्तः॥ (ऋ० ७। ६३। २) तुलनीय—[…]युक्त एतश पवमानः॥ (ऋ० ९। ६३। ७)
१४ भद्रा अश्वा हरितः सूर्यस्य। (ऋ० १। ११५। ३ और भी ऋ० १०। ३७। ३ तथा ऋ० १०। ४९। ७)
१५ सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य॥ (ऋ० १। ५०। ८, ९। ६०। ९, और—ऋ० ७। ६०। ३)
१६ तं सूर्यं हरितः सप्त यह्वीः स्पर्शं विश्वस्य जगतो वहन्ति॥ (ऋ० ४। १३। ३ और भी देखें ४। १३। ४)
१७ तत्रैव (वही)
१८ अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः॥ (ऋ० १। ५०। [९])
१९ मुषाय सूर्यं कवे चक्रमीशान ओजसा॥ और (ऋ० ४। ३०। ४)
ऋग्वेदमें दो अन्य स्थलोंपर सूर्यचक्रका उल्लेख इस प्रकार है—
(१) प्रा[…] सुपर्णो […] (ऋ० ४। २८। २)
(२) […] सूर्यस्य॥ (ऋ० ५। २९। १०)
२०—(ऋ० १। २४। ८)

और अर्यमा लिया गया है[21]। वरुणने ऐसा क्यों किया ? सम्भवतः इसलिये कि सूर्य मापका साधन हैं[22] और इस फीतेसे वरुण अपना काम करते हैं[23]। अपनी सुवर्णमय नौकाओंसहित पूषा उनका संदेशवाहक है। पूषा की नौकाएँ अन्तरिक्षरूपी समुद्रमें संतरण करती हैं[24]। अग्नि और यज्ञके समान उनको प्रकट करनेवाली भी उषा है[25]। वे उषाओंके उत्सङ्गमेंसे चमकते हैं[26]। इसीलिये उन्हें एक स्थानपर उपमाके रूपमें उषाके द्वारा लाया गया श्वेत और चमकीला घोड़ा बताया गया है[27]। उनके पिता (क्रीडाक्षेत्र) द्यौ हैं[28]। देवताओंने[29] उन्हें, जबकि वे समुद्रमें विलीन थे, वहाँसे उभारा[30] और अग्निके ही एक रूपमें[31] उन्हें द्यौमें टाँगा[32]। उनकी उत्पत्ति विश्वपुरुषके नेत्रसे हुई है[33]। वही विश्वपुरुषके नेत्र भी हैं[34]। वह एक उड़नेवाले[35] पक्षी हैं[36], पक्षियोंमें भी बाज[37]। वह आकाशके रत्न हैं[38]। उनकी उपमा एक चित्र वर्णके पत्थरसे दी गयी है, जो आकाशके मध्यमें विराजमान है[39]। उन ज्योतिष्मान् आयुधको मित्र और वरुण बादल और वर्षासे

२१ (ऋ० ७।६०।४ और भी देखें—७।८७।१)

२२ (ऋ० २।१५।३, ऋ० ३।३८।३)

२३ मानेनेव तस्थिवाँ अन्तरिक्षे वि यो ममे पृथिवीं सूर्येण ॥ (ऋ० ।८५।५)

२४ यास्ते पूषन्नावो अन्तः समुद्रे हिरण्ययीरन्तरिक्षे चरन्ति। ताभिर्यासि दूत्यां सूर्यस्य ॥ (ऋ० ६।५८।३)

२५ (ऋ० ७।८०।२ और भी देखें—ऋ० ७।७८।३)

२६ विभ्राजमान उषसामुपस्थाद्रेभैरुदेत्यनुमद्यमानः ॥ (ऋ० ७।६३।३)

२७ (ऋ० ७।७७।३ तुलनीय ऋ० ७।७६।१)

२८ दिवस्पुत्राय सूर्याय शंसत ॥ (ऋ० १०।३७।१) द्युलोकसे रक्षा करनेके लिये सूर्यसे की गयी प्रार्थनासे तुलनीय सूर्यो नो दिवस्पातु ॥ (ऋ० १०।१५८।१) और भी देखें—सूर्यो द्युस्थान ॥ (निरुक्त ७।५)

२९ इन देवताओंमें इन्द्र, विष्णु, सोम, वरुण, मित्र, अग्नि आदिका नाम उल्लेखनीय है।

३० यद्देवा यतयो यथा भुवनान्यपिन्वत। अत्रा समुद्र आ गूळ्हमा सूर्यमजभर्तन ॥ (ऋ० १०।७२।७)

३१ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण देवता अग्नि उसके उपासक पुरोहितोंकी दृष्टिमें द्युलोकमें सूर्यके भीतर प्रवर्तमान अग्निके रूपमें आविर्भूत हुए हैं।

३२ यदेदेनमदधुर्यज्ञियासो दिवि देवाः सूर्यमादितेयम् ॥ (ऋ० १०।८८।११)

३३ चक्षोः सूर्यो अजायत ॥ (ऋ० १०।९०।१३)

३४ मुक्तिकोपनिषद्के उस स्थलसे तुलनीय, जिसमें उन्हें और चन्द्रमाको एक साथ, विराट्रूप परमात्माका नेत्र बताया गया है। 'चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ।' और भी देखें स्मृतिवचन—चन्द्रसूर्यौ च नेत्रे।

३५ उदपप्तदसौ सूर्य ॥ (ऋ० १।१९१।९)

३६ पतङ्गमक्तमसुरस्य मायया ॥ (ऋ० १०।१७७।१) और भी देखें—पतङ्गो वाच मनसा बिभर्ति ॥ (ऋ० १०।१७७।२।) उस मन्त्रसे तुलनीय, जिसमें उन्हें अरुणको सुपर्ण बताया गया है। उक्षा समुद्रो अरुणः सुपर्णः ॥ (ऋ० ५।४७।३)

३७ (ऋ० ७।६३।५, ऋ० ५।४५।९)

३८ दिवो रुक्म उरुचक्षा उदेति ॥ (ऋ० ७।६३।४) और भी देखें—रुक्मो न दिव उदिता व्यद्यौत् ॥ (ऋ० ६।५१।१)

३९ मध्ये दिवो निहितः पृश्निरश्मा ॥ (ऋ० ५।४७।३) और भी देखें—अथ यदश्रु संक्षरितमासीत्सोऽश्मा पृश्निरभवदश्रुर्ह वै तमश्मेत्याचक्षते ॥ (शतपथब्राह्मण ६।१।२।३)

सूर्यके द्वारा उद्बुद्ध होनेपर मनुष्य अपने लक्ष्योंकी ओर निकल पड़ते हैं और स्वकर्तव्योंको पूरा करनेमें व्यस्त हो जाते हैं। सूर्य मानवजातिके लिये उद्बोधक बनकर उदित होते हैं।[८] वे चर और अचर विश्व—सभीकी आत्मा तथा उनके रक्षक हैं[१०]। उनके (दिव्य) रथ[११] को एक ही घोड़ा (सारथि अथवा सब ब्रह्माण्डोंके सूर्योंमें एक समान विराजमान दिव्यशक्ति)[१२] परिवहन करता है, जिसका नाम एतश है[१३]। उनके रथको अगणित घोड़े अथवा घोड़ियाँ खींचते हैं। य सख्याने हैं[१४]। ये घोड़े (अथवा घोड़ियाँ) अन्य कुछ नहीं सूर्यकी किरणें ही हैं[१६]। ऐसा अन्यत्र भी कहा गया है 'सूर्यकी किरणें ही उन्हें लाती हैं'[१७]। इन किरणोंका प्रादुर्भाव पन सूर्यके रथमें होता है, अत किर (घोड़ियों) को रथकी (सात) पुत्रियोंके रू ग्रहण किया गया है[१८]।

एक चक्र-धारी[१९] सूर्यके पथका निर्माण वरुणने कि है[२०]। इस कार्यमें उनके सहायकोंका नाम अन्यत्र भि

८ उद्वेति सुभगो विश्वचक्षा साधारण' सूर्यो मानुषाणाम् ॥—(ऋ० ७ । ६३ । १)।
और भी देखें—(१) दिवो रुक्म उरुचक्षा उदेति ॥ (ऋ० ७ । ६३ । ४)
(२) नूनं जना सूर्येण प्रसूता अयन्नर्थानि कृणवन्नपांसि ॥ (ऋ० ७ । ६३ । ४)
९ उद्वेति प्रसवीता जनाना महान् केतुरर्णवः सूर्यस्य ॥ (ऋ० ७ । ६३ । २)
और भी देखें—एष मे देव सविता चच्छन्द य समानं न प्रमिनाति धाम ॥ (ऋ० ७ । ६३ । ३)
१० सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥ (ऋ० १ । ११५ । १) (यजु० ७ । ४२)
और भी देखें—विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च गोपा ॥ (ऋ० ७ । ६० । २)
तुलनीय—त्वमात्मा सर्वदेहिनाम् ॥ (महाभारत ३ । १६६)
११ महाभारत (५ । १७०) में भी इनके दिव्य रथका उल्लेख मिलता है।
१२ मेरे विचारसे एकवचन 'एतश' शब्द या तो सारथिके लिये या सब ब्रह्माण्डोंके सूर्योंमें एक समान विराजमान दिव्यशक्तिके लिये प्रयुक्त हुआ है। यह इसलिये कि ऋग्वेदमें अन्यत्र घोड़ियों (हरित) तथा 'एतश'में भेदकर उसे उनके ऊपर बताया गया है। यत्सूर्यस्य हरित पतन्ती पुर सतीरुपरा एतशे क ॥ (ऋ० ५ । २९ । ५) इस प्रकार 'एतश' सारथिके लिये सुनिश्चित होता है, जब कि एक अन्य स्थल, जहाँ सविताको एतश बताते हुए उनके द्वारा पार्थिव लोकोंको माप जानेका उल्लेख है—य पार्थिवानि विममे स एतशो रजांसि देव सविता महित्वना ॥ (ऋ० ५ । ८१ । ३)—एतशको दिव्यशक्ति घोषित करता है।
१३ समान चक्रं पर्याविवृत्सन् यदेतशो वहति धूर्षु युक्त ॥ (ऋ० ७ । ६३ । २) तुलनीय—अयुक्त सूर एतश पवमान ॥ (ऋ० ९ । ६३ । ७)
१४ भद्रा अश्वा हरित सूर्यस्य॥ (ऋ० १ । ११५ । ३ और भी ऋ० १० । ३७ । ३ तथा ऋ० १० । ४९ । ७)
१ सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य ॥ (ऋ० १ । ५० । ८, १ । ५० । ९, और—ऋ० ७ । ६० । ३)
१६ त सूर्यं हरित सप्त यह्वी स्पर्शं विश्वस्य जगतो वहन्ति ॥ (ऋ० ४ । १३ । ३, और भी देखें ४ । १३ । ४)
१७ तत्रैव (वहीं)
१८ अयुक्त सप्त शुन्ध्युव सूरो रथस्य नप्त्य ॥ (ऋ० १ । ५० ।)
१९ मुषाय सूर्यं कवे चक्रमीशान ओजसा ॥ और (ऋ० ४ । ३० । ४)
ऋग्वेदके दो अन्य स्थलोंपर सूर्य-चक्रका उल्लेख इन शब्दोंमें है—
(१) त्वा युजा नि खिदत् सूर्यस्येन्द्रश्चक्रं सहसा सद्य इन्दो ॥ (ऋ० ४ । २८ । २)
(२) प्रान्यच्चक्रमवृह सूर्यस्य ॥ (ऋ० ५ । २९ । १०)
२०—(ऋ० १ । २४ । ८)

*

और अर्यमा लिया गया है[21]। वरुणने ऐसा क्यों किया? सम्भवत इसलिये कि सूर्य मापका साधन हैं[22] और इस फीतेसे वरुण अपना काम करते हैं[23]। अपनी सुवर्णमय नौकाओंसहित पूषा उनका सन्देशवाहक है। पूषाकी नौकाएँ अन्तरिक्षरूपी समुद्रमें सतरण करती हैं[24]। अग्नि और यज्ञके समान उनको प्रकट करनेवाली भी उषा है[25]। वे उषाओंके उत्सङ्गमेंसे चमकते हैं[26]। इसीलिये उन्हें एक स्थानपर उपमाके रूपमें उषाके द्वारा लाया गया श्वेत और चमकीला घोड़ा बताया गया है[27]। उनके पिता (क्रीडाक्षेत्र) द्यौ हैं[28]। देवताओंने[29] उन्हें, जबकि वे समुद्रमें विलीन थे, वहाँसे उभारा[30] और अग्निके ही एक रूपमें[31] उन्हें द्यौमें टाँगा[32]। उनकी उत्पत्ति विश्वपुरुषके नेत्रसे हुई है[33]। वही विश्वपुरुषके नेत्र भी हैं[34]। वह एक उड़नेवाले[35] पक्षी हैं[36], पक्षियोंमें भी बाज[37]। वह आकाशके रत्न हैं[38]। उनकी उपमा एक चित्र वर्णके पत्थरसे दी गयी है, जो आकाशके मध्यमें विराजमान है[39]। उन ज्योतिष्मान् आयुधको मित्र और वरुण बादल और वर्षासे

२१ (ऋ० ७ । ६० । ४ और भी देखें—७ । ८७ । १)

२२ (ऋ० २ । १५ । ३, ऋ० ३ । ३८ । ३)

२३ मानेनेव तस्थिवाँ अन्तरिक्षे वि यो ममे पृथिवीं सूर्येण ॥ (ऋ० ५ । ८५ । ५)

२४ यास्ते पूषन्नावो अन्तः समुद्रे हिरण्ययीरन्तरिक्षे चरन्ति । ताभिर्यासि दूत्यां सूर्यस्य ॥ (ऋ० ६ । ५८ । ३)

२५ (ऋ० ७ । ८० । २ और भी देखें—ऋ० ७ । ७८ । ३)

२६ विभ्राजमान उषसामुपस्थाद्रेभैरुदेत्यनुमद्यमानः ॥ (ऋ० ७ । ६३ । ३)

२७ (ऋ० ७ । ७७ । ३ तुलनीय ऋ० ७ । ७६ । १)

२८ दिवस्पुत्राय सूर्याय शंसत ॥ (ऋ० १० । ३७ । १) द्युलोकसे रक्षा करनेके लिये सूर्यसे की गयी प्रार्थनासे तुलनीय सूर्यो नो दिवस्पातु ॥ (ऋ० १० । १५८ । १) और भी देखें—सूर्यो द्युस्थानः ॥ (निरुक्त ७ । ५)

२९ इन देवताओंमें इन्द्र, विष्णु, सोम, वरुण, मित्र, अग्नि आदिका नाम उल्लेखनीय है।

३० यद्देवा यतयो यथा भुवनान्यपिन्वत । अत्रा समुद्र आ गूळ्हमा सूर्यमजभर्तन ॥ (ऋ० १० । ७२ । ७)

३१ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण देवता अग्नि उसके उपासक पुरोहितोंकी दृष्टिमें द्युलोकमें सूर्यके भीतर प्रवर्तमान अग्निके रूपमें आविर्भूत हुए हैं।

३२ यदेदेनमदधुर्यज्ञियासो दिवि देवाः सूर्यमादितेयम् ॥ (ऋ० १० । ८८ । ११)

३३ चक्षोः सूर्यो अजायत ॥ (ऋ० १० । ९० । १३)

३४ मुक्तिकोपनिषद्के उस स्थलसे तुलनीय, जिसमें उन्हें और चन्द्रमाको एक साथ, विराट्रूप परमात्माका नेत्र बताया गया है। 'चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ।' और भी देखें स्मृतिवचन—चन्द्रसूर्यौ च नेत्रे।

३५ उदपप्तदसौ सूर्यः ॥ (ऋ० १ । १९१ । ९)

३६ पतङ्गमक्तमसुरस्य मायया ॥ (ऋ० १० । १७७ । १) और भी देखें—पतङ्गो वाचं मनसा बिभर्ति ॥ (ऋ० १० । १७७ । २) उस मन्त्रसे तुलनीय, जिसमें उन्हें अरुणको सुपर्ण बताया गया है। उक्षा समुद्रो अरुणः सुपर्णः ॥ (ऋ० ५ । ४७ । ३)

३७ (ऋ० ७ । ६३ । ५, ऋ० ५ । ४५ । ९)

३८ दिवो रुक्म उरुचक्षा उदेति ॥ (ऋ० ७ । ६३ । ४) और भी देखें—रुक्मो न दिव उदिता व्यद्यौत् ॥ (ऋ० ६ । ५१ । १)

३९ मध्ये दिवो निहितः पृश्निरश्मा ॥ (ऋ० ५ । ४७ । ३) और भी देखें—अथ यदश्रु संक्षरितमासीत्सोऽश्मा पृश्निरभवदश्रुह वै तमश्मेत्याचक्षते ॥ (शतपथब्राह्मण ६ । १ । २ । ३)

आवृत करते हैं[४०] और जब मित्र तथा वरुण उन्हें अपने बादल और वर्षाके आवरणसे मुक्त करते हैं, तो वे मित्र और वरुणके द्वारा आकाशमें छोड़ गये ज्योतिष्मान् रथ प्रतीत होते हैं[४१]।

सूर्य अनिशित चराचर (प्रकाशक प्राणियों) के लिये चमकते हैं[४२]। उनका यह चमकना मनुष्यों और देवताओंके लिये एक समान है[४३]। अन्धकारको चर्मके समान लपेटते हुए[४४] वे उसका विध्वंस करते हैं[४५]। इस प्रकार उन्हें अन्धकारके प्राणियों और यातुधानोंको पराजित करते देर नहीं लगती[४६]। वे दिनोंको नापते[४७] और आयुके दिनोंको बढ़ाते हैं[४८]। वे बीमारी और प्रत्येक प्रकारके दुःस्वप्नका विनाश करते हैं[४९]। जीवनका अर्थ ही सूर्योदयका दर्शन करना है[५०]। सभी प्राणी उनपर अवलम्बित हैं[५१]। अपनी महत्ताके कारण वे देवोंके दिव्य पुरोहित (नायक) हैं[५२]। आकाश उन्हींके द्वारा ठहरा हुआ है[५३]। उन्हें विश्वकर्मा कहा गया है[५४]। सभी प्राणियोंको और उनके भले-बुरे कर्मोंको निहारनेमें समर्थ होनेके कारण[५५] वे मित्र, वरुण और अग्निकी आँख हैं,[५६] अर्थात् मित्र, वरुण और अग्नि उनसे ही सब प्राणियोंके भले-बुरे कर्मोंकी जानकारी प्राप्त करते हैं। इसीलिये ऋग्वेदमें यत्र-तत्र उनके उदयके समय उनसे प्रार्थना की गयी है। वे मित्र, वरुण एवं अन्य देवताओंके समक्ष मनुष्

४० (ऋ० ५।६३।४)

४१ सूर्यमाधत्थो दिवि चित्र्यं रथम्॥ (ऋ० ५।६३।७)

४२ उद्वेति सुभगो विश्वचक्षाः साधारणः सूर्यो मानुषाणाम्॥ (ऋ० ७।६३।१)

४३ प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषान्॥ (ऋ० १।५०।५)

४४ चर्मेव यः समविव्यक् तमांसि॥ (ऋ० ७।६३।१) तुलनीय—दविध्वतो रश्मयः सूर्यस्य चर्मेवावाधुस्तमो अप्स्वन्तः॥ (ऋ० ४।१३।४)

४५ येन सूर्य ज्योतिषा बाधसे तमः॥ (ऋ० १०।३७।४)

४६ उत्पुरस्तात्सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा। अदृष्टान्त्सर्वाञ्जम्भयन्त्सर्वाश्च यातुधान्यः॥ (ऋ० १।१९१।८) और भी देखें—(१) (ऋ० १।१९१।९) (२) (ऋ० ७।१०४।२)

४७ (ऋ० १।५०।७)

४८ (ऋ० ८।४८।७)

४९ (ऋ० १०।३७।४)

५० ज्योक्पश्यात्सूर्यमुच्चरन्तम्॥ (ऋ० ४।२५।४) और भी देखें—पश्येम नु सूर्यमुच्चरन्तम्॥ (ऋ० ६।५२।५)

५१ सूर्यस्य चक्षू रजसैत्यावृतं तस्मिन्नार्पिता भुवनानि विश्वा॥ (ऋ० १।१६४।१४)

५२ मह्ना देवानामसुर्यः पुरोहितः॥ (ऋ० ८।९०।१२)

५३ सूर्येणोत्तभिता द्यौः॥ (ऋ० १०।८५।१)

५४ येनेमा विश्वा भुवनान्याभृता विश्वकर्मणा विश्वदेव्यावता॥ (ऋ० १०।१७०।४)

५५ पश्यञ्जन्मानि सूर्य॥ (ऋ० १।५०।७) और भी देखें—(१) ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन्नभि चष्टे सूरो अर्य एवान्॥ (ऋ० ६।५१।२) (२) उभे उदेति सूर्यो अभि ज्मन्। विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च गोपा ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन्॥ (ऋ० ७।६०।२)
(३) उद्वां चक्षुर्वरुण सुप्रतीकं देवयोरेति सूर्यस्ततन्वान्। अभि यो विश्वा भुवनानि चष्टे स मन्युं मर्त्येष्वा चिकेत॥ (ऋ० ७।६१।१)

५६ चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः॥ (ऋ० १।११५।१) और भी देखें—(६।५१।१, ७।६१।१, ७।६३।१, १०।३७।१) अवस्तामें भी 'ह्वरे' अर्थात् सूर्यके शीघ्रगामी घोड़ोंको अहुरमज्दा (वरुण) का नेत्र बताया गया है।

को निष्पाप घोषित करें[५७]। एक स्थलपर घटाओंके मध्य घिर गये सूर्यके आलंकारिक वर्णनका सार है कि इन्द्रने उनका हनन किया[५८] और उनके चक्रको चुरा लिया[५९]। (इन्द्र वर्षा-बादलके देवता हैं।)

सूर्य रात्रिके समय निम्नतलसे यात्रा करते हैं[६०]। उनका रात्रिके एक ओर उदय और दूसरी ओर अस्त होता है[६१]। वे इन्द्रके अधीन हैं[६२]। अग्निमें दी हुई आहुति वे ही प्राप्त करते हैं। उससे वृष्टि, वृष्टिसे अन्न और अन्नसे प्रजाकी उत्पत्ति होती है[६३]। उनको कभी-कभी एक असुर (राहु) छायारूपसे ग्रस लेता है[६४]। अजस्र होनेके कारण सदा प्रकाशित उनका उच्चतम पद ही पितरोंका आवास है[६५]। अश्वोंका दान करनेवाले उनके साथ निवास करते हैं[६६]। उनका रक्षक

---

५७ यदद्य सूर्य ब्रवोऽनागा उद्यन् मित्राय वरुणाय सत्यम् ॥ (ऋ० ७ । ६० । १) और (ऋ० ७ । ६२ । २)

५८ सवर्गं यन्मघवा सूर्यं जयत् ॥ (१० । ४३ । ५)

५९ मुषाय सूर्यं कवे चक्रमीशान ओजसा ॥ (ऋ० १ । १७५ । ४) और भी देखें—प्रान्यच्चक्रमवृहः सूर्यस्य कुत्साय ... युध्यते । मुषाय इन्द्र सूर्यम् ॥ (ऋ० ४ । ३० । ४)

६० अहश्च कृष्णमहरर्जुनं च वि वर्तेते रजसी वेद्याभिः ॥ (ऋ० ६ । ९ । १) और (ऋ० ७ । ८० । १)

सूर्यके रात्रिपथके विषयमें ऐतरेयब्राह्मणका मत यह है कि रात्रिके समय सूर्यकी चमक ऊपरकी ओर होती है और फिर वह इस प्रकार गोल घूम जाता है कि दिनमें उसकी चमक नीचेकी ओर हो जाती है। 'रात्रीमेवावस्तात्कुरुतेऽह परस्तात्' (३ । ४४ । ४)। ऋग्वेदकी एक उक्तिके अनुसार सूर्यका प्रकाश कभी 'रुशत्' अर्थात् चमकनेवाला और कभी 'कृष्ण' होता है। (ऋ० १ । ११५ । ५)

एक दूसरे मन्त्रमें वर्णित है कि पूर्वकी ओर सूर्यके साथ चलनेवाला 'रजस्' उस प्रकाशसे भिन्न है, जिसके साथ वह उदय होता है। देखें—(ऋ० १० । ३७ । ३)

६१ (ऋ० ५ । ८१ । ४)

६२ यस्य व्रते वरुणो यस्य सूर्यः ॥ (ऋ० १ । १०१ । ३)

६३ अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते । आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥
(मनुस्मृति ३ । ७६)

६४ सूर्य स्वर्भानुस्तमसाऽविध्यदासुरः ॥ ऋग्वेद, और भी देखें—राहुसे कहा गया है—
पर्वकाले तु सम्प्राप्ते चन्द्रार्कौ छादयिष्यसि । भूमिच्छायागतश्चन्द्रं चन्द्रगोऽर्कं कदाचन ॥
(ब्रह्मपुराण)

'तुम पूर्णिमा आदि पर्वोंके दिनोंमें चन्द्रमा और सूर्यको आच्छादित करोगे। कभी पृथिवीकी छायारूपसे चन्द्रपर और कभी चन्द्रकी छायारूपसे सूर्यपर तुम्हारा आक्रमण होगा।'

पृथिवीकी छाया चन्द्रमापर पड़नेसे चन्द्रग्रहण और चन्द्रमाकी छाया सूर्यपर पड़नेसे सूर्यग्रहण होनेके वैज्ञानिक रहस्योद्घाटनसे तुलनीय।

६५ यत्रानुकामं चरणं त्रिनाके त्रिदिवे दिवः । लोका यत्र ज्योतिष्मन्तस्तत्र माममृतं कृधि ॥ (ऋ० ९ । ११३ । ९)

६६ उच्चा दिवि दक्षिणावन्तो अस्थुर्ये अश्वदाः सह ते सूर्येण । हिरण्यदा अमृतत्वं भजन्ते वासोदाः सोम प्रतिरन्त आयु ॥ (ऋ० १० । १०७ । २)

सूर्यका सांनिध्य प्राप्त करनेवाले एक ऋषिके सम्बन्धमें वर्णित है कि वे ज्ञानद्वारा स्वर्णिम हंस बनकर स्वर्गमें गये और वहाँ उन्होंने सूर्यका सांनिध्य प्राप्त किया। अहीना हाऽऽश्वथ्य । सावित्रं विदाञ्चकार । स ह हंसो हिरण्मयो भूत्वा स्वर्गलोकमियाय । आदित्यस्य सायुज्यम् ॥ (तै० ब्रा० ३ । १० । ९ । ११) और भी देखें—किं तद् यज्ञे यजमान कुरुते येन जीवन्त्सुवर्गं लोकमेतीति जीवग्रहो वा एष यददाभ्योऽनभिषुतस्य गृह्णाति । जीवन्तमेवैनं सुवर्गं लोकं गमयति
(तै० सं० ६ । ६ । ९ । २)

सहस्रनयन कवियों बतलाया गया है[६७]। ऋग्वेदमें इनको समर्पित एक सुन्दर सूक्तका भाव है—सर्वभूतोंके ज्ञाता प्रकाशमान सूर्यकी ध्वजाएँ आकाशमें ही गमन करती हैं। सर्वदर्शी सूर्यकी रश्मियोंके प्रकट होते ही नक्षत्रादि प्रसिद्ध चोरोंके समान छिप जाते हैं। सूर्यकी ध्वजारूप रश्मियाँ प्रज्वलित अग्निके समान मनुष्योंकी ओर जाती हुई स्पष्ट दिखायी देती हैं। हे सूर्य! तुम वेगवान् सबके दर्शन करने योग्य हो। तुम प्रकाशवाले सबको प्रकाशित करते हो। सूर्य! तुम देवगण, मनुष्य तथा सभी प्राणियोंके निमित्त साक्षात् हुए तेजको प्रकाशित करनेके लिये आकाशमें गमन करते हो। हे पवित्रताकारक वरुण (सूर्य)! तुम जिस नेत्रसे मनुष्योंकी ओर देखते हो, हम उस नेत्रको प्रणाम करते हैं। हे सूर्य! रात्रियोंको दिनोंसे पृथक् करते हुए और जीवमात्रको देखते हुए तुम विस्तृत आकाशमें गमन करते हो। हे दूरद्रष्टा सूर्य! तेजवन्त रश्मियोंसहित रथारोही हुए तुमको सात घोड़े चलाते हैं। रथकी पुत्रीरूप स्वय उड़नेवाली सात अश्वियोंको जोड़कर आकाशमें गमन करते हैं, (ऐसे) ... के ऊपर विस्तृत प्रकाशको फैलाते हुए ... श्रेष्ठ सूर्यको हम प्राप्त हों[६८] (महाभारतमें उल्ल... एक स्तोत्रके अनुसार वे सम्पूर्ण प्राणियोंकी ये... कृत्य करनेवालोंका आचार, सर्वसांख्योंकी ग... योगियोंके परम परायण और मुमुक्षुओंके... गति हैं[६९]। यही नहीं, वे उस सहस्रयुगका अ... और अन्त हैं, जो ब्रह्माका दिन कहलाता है[७०]। ... मनुपुत्रों, मनुसे उत्पन्न सम्पूर्ण जगत् और ... मन्वन्तरोंके अधिपति होनेके कारण वे प्रलयका ... उपस्थित होनेपर सब कुछ भस्म कर देनेवाले स... अग्निको अपने क्रोधसे उत्पन्न करते हैं[७१]।)

सूर्य अनेक हैं, वह इस प्रकार कि प्रत्येक ब्रह्माण्डकी[७२] केन्द्रशक्ति उसके अपने एक पृथक् सूर्य हैं[७३] और श्रीभगवान्का विराट् स्थूल देह अनन्त

---

६७ सहस्रणीथा कवयो ये गोपायन्ति सूर्यम्। (ऋ० १०। १५४। ५)

६८ देखिये (ऋ० वे० १। ५०। १—१०) अथर्ववेदमें उपलब्ध इनको समर्पित एक विस्तृत सूक्तका कुछ अंश ... सूक्तका ही प्रतिरूप प्रतीत होता है। देखें (१३। २)

६९ त्वं योनिः सर्वभूतानां त्वमाचारः क्रियावताम्। त्वं गतिः सर्वसांख्यानां योगिनां त्वं परायणम्।
अनावृतार्गलद्वारं त्वं गतिस्त्वं मुमुक्षुताम्॥ (महाभारत ५। १६६)

७० यदहो ब्रह्मणः प्रोक्तं सहस्रयुगसम्मितम्। तस्य त्वमादिरन्तश्च कालज्ञैः सम्प्रकीर्तितः॥ (महाभारत ५। १७०)

७१ (वही ५। १८५)

७२ ज्योतिष-शास्त्रके सिद्धान्तानुसार पञ्चभूतमय सूर्यप्रधान ब्रह्माण्डका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार दिया जा सकता है—'प्रत्येक ब्रह्माण्डकी केन्द्रशक्ति सूर्य है'। तदनुसार ये ब्रह्माण्डवर्ती सूर्य इस ब्रह्माण्डके केन्द्रस्थानीय हैं। समस्त ग्रह-उपग्रह उन्हींकी आकर्षण-विकर्षण शक्तिके प्रभावसे उनके चारों ओर अनुक्षण प्रदक्षिणा किया करते हैं। समस्त ब्रह्माण्डमें एतद्व्यतिरिक्त ज्योतिष्मान् कोई भी वस्तु नहीं है। समस्त ज्योतिके आधाररूप सूर्यसे ही ब्रह्माण्डके अन्तर्गत समस्त ग्रह-उपग्रहमें ज्योतिका सञ्चार होता है। हमारे सूर्य-परिवारमें अबतक ऐसे २६८ ग्रह-उपग्रह देखे गये हैं, जो सूर्यकी ज्योतिसे ज्योतिष्मान् होकर उनके चारों ओर घूमते हैं। ग्रहगण सूर्यकी प्रदक्षिणा करते हैं और उपग्रहगण ग्रहोंकी प्रदक्षिणा करते हैं। इन सब ग्रह-उपग्रहोंको लेकर सूर्य ध्रुवके चारों ओर प्रदक्षिणा करते हैं।

७३ प्रो० हेण्डरसन (Prop. A. Henderson) का वचन है—"It would take ray of light ... billion years to go 'around the Universe, travelling at the ra...

कोटि ब्रह्माण्डोंसे सुशोभित हैं। प्रत्येक सूर्य सविता हैं। सविता अर्थात् सम्पूर्ण ब्रह्माण्डोंके सूर्योंमें एक समान विराजमान प्रेरक दिव्यशक्तिरूप परब्रह्म

परमात्मा। तात्पर्य यह है कि सूर्य भौतिक सौर-मण्डल-के स्थूल देवता हैं, जबकि सविता उनमें अन्तर्निहित दिव्यशक्तिका ध्यानावस्थित महर्षियोंके अन्तःकरणमें

---

of 186 000 miles per second. The sun is the supreme existence in the whole solar system All of the sun we are fitted to receive comes to us as the sunshine, illuminating, vivifying pleasant, bringing into existence all that is living on this plane."—ब्रह्माण्ड इतना बड़ा है कि प्रति सेकंड १८६००० मील चलनेवाली एक रश्मिको ब्रह्माण्डकी प्रदक्षिणा करनेमें करोड़ों वर्ष लग जायगा। लिटरेरी डाइजेस्टकी इस सम्मतिसे तुलनीय—

"Our own universe—we mean this limited Einsteinian universe—is a thousand million times larger than the region now telescopically accessible to us."—दूरबीनसे जहाँतकका पता लगता है, उससे कई करोड़ मीलतक ब्रह्माण्डका विस्तार है। इस ब्रह्माण्डमें सबसे उत्तम वस्तु सूर्य हैं। उनकी किरणोंमें जो प्राणशक्ति है, उसके बलसे ही विश्वके सब जड़-चेतन पदार्थ उत्पन्न हुए हैं।

७४ आइन्स्टीन (Einstein) के अनुसार ब्रह्माण्डकी सीमा तो है, किंतु इसकी सीमाका पता लगाना असम्भव है। इसके चारों ओर और भी ब्रह्माण्ड होंगे। " the universe is finite but un bounded 'space being affected with a curvature which makes it return upon itself' Outside there may be other universes—admits Einstein."

७५ यास्क 'सविता'की परिभाषा करते हुए कहते हैं—'सविता सर्वस्य प्रसविता' (निरुक्त १० । ३१)—'सविता' अर्थात् सबका प्रेरक। आचार्य शंकरके अनुसार, 'सर्वस्य जगतः प्रसविता सविता' (विष्णुसहस्रनाम १०७ पर आचार्य शंकर)। विष्णुपुराणके शब्दोंमें, 'प्रजानां प्रसवनात्सवितेति निगद्यते' (१ । ३० । १५)। शतपथब्राह्मणमें कहा गया है। 'सविता देवानां प्रसविता' (सविता देवोंके भी उपजीव्य हैं) (१ । १ । २ । १७)।

उपर्युक्त परिभाषाओं तथा अन्य मिलती-जुलती अनेक परिभाषाओंके सम्बन्धमें ए० ए० मैकडॉनलके इस व्याख्यात्मक वचन से प्रकृत विषय तुलनीय कि "सू धातुका, जिससे 'सविता' शब्द बना है, इस शब्दके साथ लगातार प्रयोग हुआ है और वह भी एक ऐसे ढंगसे जो कि ऋग्वेदकी अपनी विशेषता है। उन्हीं कार्योंकी अभिव्यक्ति दूसरे किसी भी देवताके सम्बन्धमें किसी और ही धातुसे की गयी है। साथ ही 'सविता'के सम्बन्धमें न केवल सू धातुका, अपितु इससे निष्पन्न अनेक शब्दोंका भी प्रयोग हुआ है, जैसे कि प्रसवितृ और प्रसव। बार-बार आनेवाले इन एक धातुज प्रयोगोंसे स्पष्ट हो जाता है कि इस धातुका अर्थ 'प्रेरित करना', 'उद्बुद्ध करना' और 'प्रचोदित करना' रहा है।"

पुष्टिके लिये इस विशिष्ट प्रयोगके कुछ उदाहरण प्रस्तुत करते हुए उन्होंने अन्तमें कहा है कि 'स्पष्ट है कि 'सू' धातुका यह प्रयोग प्रायः सविताके लिये ही हुआ है। ('वैदिक देवशास्त्र, पृष्ठ ७४-५)

७६ अनेक मन्त्रोंमें सूर्य और सविता अविविक्त ढंगसे एक ही देवता बनकर आते हैं। यथा—

ऊर्ध्वं केतुं सविता देवो अश्रेज्ज्योतिर्विश्वस्मै भुवनाय कृण्वन्। आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं वि सूर्यो रश्मिभिश्चेकितानः ॥

(ऋ० ४ । १४ । २)

"सविता देवने अपनी ज्योतिको ऊँचा उभारा है और इस प्रकार उन्होंने समस्त लोकको प्रकाशित किया है; सूर्य प्रखरताके साथ चमकते हुए द्युलोक, पृथिवी और अन्तरिक्षको अपनी किरणोंसे आपूरित कर रहे हैं"।

एक और सूक्तके प्रथम—(ऋ० ७ । ६३ । १),
द्वितीय—(ऋ० ७ । ६३ । २)
और चतुर्थ—(ऋ० ७ । ६३ । ४)

प्रादुर्भूत आध्यात्मिक प्रेरणाके अनुसार वर्णित रूप[७८]। (क्रमशः)

—मन्त्रोंमें सूर्यका वर्णन उन्हीं पदोंके द्वारा हुआ है, जो प्रायः सविताके लिये प्रयुक्त होते हैं, और तृतीय मन्त्रमें तो सविताको स्पष्टतया सूर्यका तद्रूप कहा गया है।

यही नहीं, अन्य अनेक सूक्तोंमें भी दोनों देवताओंको पृथक् करके देखना कठिन हो गया है। देखिये—
(१) (ऋ० १० । १५८ । १, २, ३ और ५)
(२) (ऋ० १ । ३५ । १—११) (३) (ऋ० १ । १२४ । १)

शत० ब्रा० में भी देखें—'असौ वै सविता य एष सूर्यस्तपति' ॥ (३ । २ । ३ । १८) (इसमें अभिन्नता स्पष्ट है।)

यद्यपि निरुक्तमें भी कहा गया है—'आदित्योऽपि सवितोच्यते' ॥ (१० । ३२), तथापि उनकी दृष्टिमें सविताका काल अन्धकारकी निवृत्ति होनेके उपरान्त आता है। "सविता व्याख्यातः। तस्य कालो यदा द्यौरपहततमस्काकीर्णरश्मिर्भवति" (नि० १२ । १२)। इसी प्रकार ऋग्वेदके मन्त्र ५ । ८१ । ४ पर सायण भी सूर्यको उदयके पूर्व सविता और उदयसे अस्ततक सूर्य कहते हैं—'उदयात् पूर्वभावी सविता, उदयास्तमयवर्ती सूर्य इति।' परन्तु यदि ऋषियोंने सूर्यको उदयके पूर्व सविता और उदयास्ततक सूर्यके रूपमें देखा होता तो उनके द्वारा सूर्योदयके पश्चात् भी स्तोताको प्रेरित करनेके लिये सविताकी मित्र, अर्यमा और भगके साथ स्तुति न की जाती (ऋ० ७ । ६६ । ४)।

यही नहीं, ऐसी स्थितिमें अन्यत्र (१० । १३९ । १) उन्हें 'सूर्यरश्मियोंसे सम्पन्न' विशेषणसे युक्त भी कभी न किया जाता—'सूर्यरश्मिर्हरिकेशः पुरस्तात् सविता ज्योतिरुदयाँ अजस्रम्' फिर, सविताकी स्तुति अस्तगामी सूर्यके रूपमें भी की गयी है (आगे पढ़िये)।

अतः सविताको सम्पूर्ण ब्रह्माण्डोंके सूर्योंमें एक समान विराजमान प्रेरक दिव्यशक्तिरूप परब्रह्मपरमात्मा-अर्थमें ग्रहण करना ही अधिक समीचीन है। आर्ष ऋषियोंने इसी रूपको ग्रहण कर सवितृ मण्डल मध्यवर्ती नारायणको ध्यातव्य बताया है।

७७ हिरण्यपाणिः सविता विचर्षणिरुभे द्यावापृथिवी अन्तरीयते। अपामीवां बाधते वेति सूर्यम् ... ॥
(ऋ० १ । ३५ । ९)

और भी देखें—उत सूर्यस्य रश्मिभिः समुच्यसि ॥ (ऋ० ५ । ८१ । ४)

तुलनीय—
येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृळ्हा येन स्व स्तभितं येन नाकः। यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥
यं क्रन्दसी अवसा तस्तभाने अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने। यत्राधि सूर उदितो विभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम॥
(ऋ० १० । १२१ । ५, ६)

७८ भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं कहते हैं—
यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्। यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ॥
(गीता १५ । १२)

कठोपनिषद् (२ । ३ । १५)में वर्णित है—'परमात्माकी ज्योतिसे ही सूर्य, चन्द्र आदिमें ज्योति आती है और उसीसे यह सारा संसार आलोकित है'—तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥

और भी देखें—स यथा सैन्धवघनो अनन्तरोऽबाह्यः कृत्स्नो रसघन एवैवं वा अरेऽयमात्मा अनन्तरोऽबाह्यः कृत्स्नः प्रज्ञानघन एव।

'जिस प्रकार सैन्धवखण्ड भीतर-बाहर सर्वत्र ही लवणमय है, उसी प्रकार आत्मा भी भीतर-बाहर सर्वत्र ज्ञानमय है। उसीकी चित्सत्ताका आध्यात्मिक विलास ज्ञानरूपसे वेदके द्वारा, अधिदैव विलास शक्तिरूपसे सूर्यात्माके द्वारा और अधिभूत विलास (स्थूल) ज्योतिरूपसे सूर्यगोलक, अग्नि तथा अन्यान्य ज्योतिष्कगणके द्वारा हृदयसंसारमें विलसित है।'

तुलनीय—विद्वानादित्यं ब्रह्मेत्युपास्ते ॥ (छान्दोग्योपनिषद् ३ । १९ । १—४)

श्रीसूर्य-तत्त्व-चिन्तन

(लेखक—डा० श्रीत्रिभुवनदास दामोदरदासजी सेठ)

ऋग्वेद कहता है—

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ।
(१ । ११५ । १)

'सूर्य सबकी आत्मा हैं'—प्राणस्वरूप होनेसे वे सबकी आत्मा हैं। उनके बाद ही सूर्यका उदय होता है। सूर्यके प्रत्यक्ष देव होनेसे उनकी पूजाके लिये किसी भी प्रकारकी मूर्तिकी आवश्यकता नहीं रहती।

ऋग्वेद आगे कहता है—

न सूर्यस्य सदृशो यथोथा (२ । ३२ । १)

हम सूर्यके प्रकाशसे कभी दूर न रहें। सूर्य स्थावर जङ्गम सभीकी आत्मा हैं। वेदोंने सूर्यका महत्त्व प्रतिपादित किया है। यदि सूर्य न हों तो पलभरके लिये भी स्थावर-जङ्गम जगत् अपना अस्तित्व न टिका सके। सूर्य सबका प्राण है।

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् ।
(ऋ० १० । १९० । ३)

'परमेश्वरने सूर्य और चन्द्रमाको ... पूर्व कल्पवत् निर्माण किया ... सर्व प्राण ... की शक्तियो ... रयि ... प्रकाश है।

होता है। अतः घरोंकी रचना ऐसी बनायी जाती है कि उनमें अधिक-से-अधिक सूर्यकी रश्मियाँ आयें और घरको शुद्ध करें। रोगोत्पादक कीटाणुओंका विनाश इन्हीं सूर्य-रश्मियोंसे होता है। सूर्यका जो यह उदय होता है, वह सम्पूर्ण प्राणमय है। उदय होते ही वे अपनी प्राणपूर्ण किरणोंसे सभी दिशा-उपदिशाओंको व्याप्त कर देते हैं और सर्वत्र अपनी अद्भुत प्राणशक्तिसे सबको नवजीवन प्रदान करते हैं।

सूर्य यज्ञके उत्पत्तिकर्ता एवं उसके मुख हैं। उत्तम सकल्प करनेवाले देव सूर्यको प्राप्त होते हैं। सूर्यदेवद्वारा सर्व शुभ कर्मोंके स्रोतरूप यज्ञ बना है। उस यज्ञसे जो सामर्थ्य प्राप्त होती है, वह सब मुझे प्राप्त होवे।
(अथर्व० १३ । १। १३ १४)

ये सूर्य अहो-रात्रका निर्माण करते हैं। पृथ्वीके जिस अर्ध भूभागमें प्रत्यक्ष होते हैं, वहाँ दिन और अन्य अर्ध भूभागमें रात्रि होती है। इस अन्तरिक्षमें विराजमान तेजस्वी सूर्यकी हम स्तुति करते हैं। वे हमारे मार्ग दर्शक बनें। (अथर्व० १३ । २ । ४३)

... प्रेरणासे वायु और जलके प्रवाह चलते हैं, ... करते हैं, जिनसे सब जीवित रहते हैं, ... वृत और अन्नसे समुद्रको परिपूर्ण ... आदि सर्वदेव एक पङ्क्तिमें आश्रित ... । २—५), वे सूर्यदेव गायत्रीके ...

... प्राणाग्नि हैं। (प्र० उ० ... चैतन्य हैं। वे ही सबकी ... ज्योति हैं। वे प्रजाओंके ... रश्मियोंवाले प्रकाशमान ... हुई है। अगर

प्रादुर्भूत आध्यात्मिक प्रेरणाके अनुसार वर्णित स्तुति[७६] । (क्रमशः)

—मन्त्रोंमें सूर्यका वर्णन उन्हीं पदोंके द्वारा हुआ है, जो प्रायः सविताके लिये प्रयुक्त होते हैं, और तृतीय मन्त्रमें तो सविताको स्पष्टतया सूर्यका तद्रूप कहा गया है ।

यही नहीं, अन्य अनेक सूक्तोंमें भी दोनों देवताओंको पृथक् करके देखना कठिन हो गया है । देखिये—
(१) (ऋ० १० । १ ८ । १, २, ३ और ५)
(२) (ऋ० १ । ३५ । १—११) (३) (ऋ० १ । १२४ । १)

शत० ब्रा० में भी देखें—'असौ वै सविता य एष सूर्यस्तपति' ॥ (३ । २ । ३ । १८) (इसमें अभिन्नता स्पष्ट है ।)

यद्यपि निरुक्तमें भी कहा गया है—'आदित्योऽपि सवितोच्यते' ॥ (१० । ३२), तथापि उनकी दृष्टिमें सविताका काल अन्धकारकी निवृत्ति होनेके उपरान्त आता है । "सविता व्याख्यातः । तस्य कालो यदा द्यौरपहततमस्काकीर्णरश्मिर्भवति" (नि० १२ । १२) । इसी प्रकार ऋग्वेदके मन्त्र ५ । ८१ । ४ पर सायण भी सूर्यको उदयके पूर्व सविता और उदयसे अस्ततक सूर्य कहते हैं—'उदयात् पूर्वभावी सविता, उदयास्तमयवर्ती सूर्य इति ।' परन्तु यदि ऋषियोंने सूर्यको उदयके पूर्व सविता और उदयास्ततक सूर्यके रूपमें देखा होता तो उनके द्वारा सूर्योदयके पश्चात् भी स्तोताको प्रेरित करनेके लिये सविताकी मित्र, अर्यमा और भगके साथ स्तुति न की जाती (ऋ० ७ । ६६ । ४) ।

यही नहीं, ऐसी स्थितिमें अन्यत्र (१० । १३९ । १) उन्हें 'सूर्यरश्मियोंसे सम्पन्न' विशेषणसे युक्त भी कभी न किया जाता—'सूर्यरश्मिर्हरिकेशः पुरस्तात् सविता ज्योतिरुदयान् अजस्रम्' फिर, सविताकी स्तुति अस्तगामी सूर्यके रूपमें भी की गयी है (आगे पढ़िये) ।

अतः सविताको सम्पूर्ण ब्रह्माण्डोंके सूर्योंमें एक समान विराजमान प्रेरक दिव्यशक्तिरूप परब्रह्मपरमात्मा-अर्थमें ग्रहण करना ही अधिक समीचीन है । आर्ष ऋषियोंने इसी रूपको ग्रहण कर सवितृ मण्डल मध्यवर्ती नारायणको ध्यातव्य बताया है ।

७७ हिरण्यपाणिः सविता विचर्षणिरुभे द्यावापृथिवी अन्तरीयते । अपामीवां बाधते वेति सूर्यम् ॥
(ऋ० १ । ३५ । ९)

और भी देखें—उत सूर्यस्य रश्मिभिः समुच्यसि ॥ (ऋ० ५ । ८१ । ४)

तुलनीय—

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृळ्हा येन स्वः स्तभितं येन नाकः । यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

यं क्रन्दसी अवसा तस्तभाने अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने । यत्राधि सूर उदितो विभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥
(ऋ० १० । १२१ । ५-६)

७८ भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं कहते हैं—

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् । यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ॥
(गीता १५ । १२)

कठोपनिषद् (२ । २ । १५) में वर्णित है—'परमात्माकी ज्योतिसे ही सूर्य, चन्द्र आदिमें ज्योति आती है और उसीसे यह सारा संसार आलोकित है'—तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥

और भी देखें—स यथा सैन्धवघनोऽनन्तरोऽबाह्यः कृत्स्नो रसघन एवैवं वा अरेऽयमात्माऽनन्तरोऽबाह्यः कृत्स्नः प्रज्ञानघन एव ।

'जिस प्रकार सैन्धवखण्ड भीतर-बाहर सर्वत्र ही लवणमय है, उसी प्रकार आत्मा भी भीतर-बाहर सर्वत्र ज्ञानमय है । उसीकी चित्शक्ति आध्यात्मिक विलास ज्ञानरूपसे बुद्धिके द्वारा, अधिदैव विलास शक्तिरूपसे सूर्यात्माके द्वारा और अधिभूत विलास (स्थूल) ज्योतिरूपसे सूर्यगोलक, अग्नि तथा अन्यान्य ज्योतिष्कगणके द्वारा दृश्यसंसारमें विलसित है ।'

तुलनीय—विद्वानादित्य ब्रह्मेत्युपास्ते ॥ (छान्दोग्योपनिषद् ३ । १९ । १—४)

वेदोंमें सूर्य विज्ञान

(लेखक—स्व० म०म० पं० श्रीगिरिधरजी शर्मा चतुर्वेदी)

सूर्यका विज्ञान वेद-मन्त्रोंमें बहुत आया है। वेद सूर्यको ही सब चराचर जगत्का उत्पादक कहता है—'नूनं जनाः सूर्येण प्रसूता' और इसको ही 'प्राणः प्रजानाम्' कहा जाता है। वेदोंमें सूर्यको इन्द्र शब्दसे भी कहा गया है। उस इन्द्र नामसे ही सूर्यकी स्तुतिका ऋग्वेदीय मन्त्र यहाँ उद्धृत करते हैं—

इन्द्राय गिरो अनिशितसर्गा अपः प्रेरयं सगरस्य बुध्नात्।

यहाँ इन्द्र शब्द सूर्यका बोधक है। इन्द्र शब्द अन्तरिक्षके देवता विद्युत्के लिये भी प्रयुक्त है और द्युलोकके देवता सूर्यके लिये भी। इन्द्र शब्दका दोनों ही प्रकारका अर्थ सायण-भाष्यमें भी प्राप्त होता है। इन्द्र चौदह भेदोंसे श्रुतिमें वर्णित हैं। उन भेदोंका संग्रह ब्रह्मविज्ञानके इस पद्यमें किया गया है—

> इन्द्रा हि वाक्प्राणधियो बलं गति
> 　　र्विद्युत्प्रकाशोदयरत्नपराक्रमाः ।
> शुक्लादिवर्णो रविचन्द्रपुरुषा
> 　　वुत्साह आत्मेति मताश्चतुर्दश ॥

ये हैं—१—वाक्, २—प्राण, ३—मन, ४—बल, ५—गति, ६—विद्युत, ७—प्रकाश, ८—ऐश्वर्य, ९—पराक्रम, १०—रूप, ११—सूर्य, १२—चन्द्रमा, १३—उत्साह और १४—आत्मा। इन्द्रका विज्ञान श्रुतिमें सबसे गम्भीर है। अस्तु! दो विशेषण इन्द्रके आते हैं—एक सहस्वान् और दूसरा मरुत्वान्। इन्द्र अन्तरिक्षस्थ वायु या विद्युत्स्वरूप है और सहस्वान् इन्द्र सूर्यरूप है। यहाँ भी यह सूक्ष्म विभाग है कि सूर्य-मण्डलको द्युलोक कहा जाता है और उसमें प्रतिष्ठित प्राणशक्ति देवताको इन्द्र कहा जाता है। श्रुतिमें अतिस्पष्ट इसका उल्लेख है—'यथाग्निगर्भा पृथिवी तथा द्यौरिन्द्रेण गर्भिणी'—जैसे पृथ्वीके गर्भमें अग्नि है, वैसे द्युलोक (सूर्य-मण्डल) के गर्भमें इन्द्र है। तात्पर्य यह कि पूर्वोक्त मन्त्रमें इन्द्र पदका अर्थ सूर्य है। तब मन्त्रका स्पष्टार्थ यह हुआ—'यह महान् स्तुतिरूप वाणी इन्द्रके लिये प्रयुक्त है।' इन्द्र अन्तरिक्षके मध्यमें जलको प्रेरित करता है और अपनी शक्तियोंसे पृथ्वीलोक और द्युलोक—दोनोंको रोके हुए है, जैसे कि अक्ष रथके चक्रोंको रोके रहता है। विचारिये कि इससे अधिक आकर्षणका स्पष्टीकरण क्या हो सकता है? फिर भी, यहाँ केवल इन्द्र शब्द आनेसे यदि यह संदेह रहे कि यहाँ इन्द्र सूर्यका नाम है या वायुका? तो इसी सूक्तका—इससे दो मन्त्र पूर्वका मन्त्र देखिये, जिसमें सूर्य शब्द स्पष्ट है—

> स सूर्यः पर्युरू वरांस्येन्द्रो ववृत्याद्रथ्येव चक्रा।
> अतिष्ठन्तमपस्यं न सर्गं कृष्णा तमांसि त्विष्या जघान ॥
> (ऋ० १०।८९।२)

यहाँ श्रीमाधवाचार्य 'वरांसि' का अर्थ तेज बतलाते हैं। उनके मतानुसार मन्त्रका अर्थ है कि 'यह सूर्यरूप इन्द्र बहुत-से तेजोंको इस प्रकार घुमाता है, जिस प्रकार सारथि रथके चक्रोंको घुमाता है और यह अपने प्रकाशसे कृष्णवर्णके अन्धकारपर इस प्रकार आघात करता है, जैसे तेज चलनेवाले घोड़ेपर चाबुकका आघात किया जाता है।' किंतु, सत्यव्रत सामश्रमी महाशय यहाँ 'वरांसि' का अर्थ नक्षत्र आदिका मण्डल करते हैं, जो कि यहाँ सुसंगत है और तब मन्त्रका अर्थ स्पष्ट रूपसे यह हो जाता है कि 'सूर्यरूप इन्द्र समस्त महान् मण्डलोंको रथचक्रकी भाँति घुमाता है।' इसमें आकर्षण-विज्ञान अधिक स्पष्ट हो जाता है और श्रीमाधवाचार्यके अर्थके अनुसार भी तेजोमण्डलका घुमाना और इन्द्र शब्दका अर्थ सूर्य होना अभिव्यक्त हो ही है। फिर भी संदेह हो तो सूर्य सबके मध्यमें और

सूर्य न होते तो ज्ञान कहाँसे उत्पन्न होता और सूर्यकी अग्नि न होती तो रत्न भी न होते। अतः वे ज्ञान और धनके उत्पादक हैं।

सूर्यके मण्डलस्वरूपका भी वर्णन किया जाता है। सूर्य आकाशमें जिस मार्गसे गमन करते हैं, उस आकाशपथको 'रविपथ' कहते हैं। उस मार्गको सत्ताइस मार्गोंमें विभक्त करके उनके 'नक्षत्र' नाम दिये गये हैं। इस विशाल आकाशस्थानको 'सौर जगत्' कहते हैं। इस भ्रमणपथमें सूर्यके साथ, उनके आस-पासमें नवग्रह घूमते हैं। उनमें पृथ्वीका भी समावेश हो जाता है। इन सत्ताइस नक्षत्रोंके अधिष्ठाता देवके रूपमें एक सूर्य ही हैं, परंतु बारह महीने और बारह राशियोंकी गणना करनेसे उन सूर्यके बारह नाम हैं। वर्षमें सूर्यकी दो गतियाँ होती हैं, जिनको उत्तरायण और दक्षिणायन कहते हैं। सूर्य जब उत्तरायणमें गमन करते हैं, तब दिन दीर्घ बन जाते हैं और सूर्यके तेजमें वृद्धि होती है। दक्षिणायनमें गमन करनेपर रात्रि दीर्घ हो जाती है और तेज-बलकी कमी हो जाती है।

सत्यरूपी सूर्यके उदय होनेसे पहले 'उषा'का प्रादुर्भाव होता है। 'उषा'के प्रादुर्भावके साथ सम्पूर्ण यज्ञोंकी क्रियाएँ भी आती हैं। इसका विस्तृत वर्णन ऋग्वेदके छठे मण्डलमें किया गया है। सूर्यगीता कहती है—

ब्रह्माण्डानि च पिण्डानि समष्टिव्यष्टिभेदतः।
परस्परविमिश्राणि सन्त्यनन्तानि सङ्ख्यया॥
(१।२१)

ब्रह्माण्ड और पिण्ड, समष्टि और व्यष्टि-भेदसे परस्पर मिले हुए हैं और उनकी संख्या अनन्त है।

यदा कुण्डलिनी शक्तिराविर्भवति साधके।
तदा स पञ्चकोशे मत्तेजोऽनुभवति ध्रुवम्॥
(१।४८)

साधकमें जब कुण्डलिनी-शक्तिका आविर्भाव होता है, तब वह अवश्य ही पञ्चकोशोंमें मेरे (सूर्यके) तेजका अनुभव करता है।

पीठोत्पादकरेष्वेषु साधनेष्वष्टकेष्वपि।
योगिभिस्तु निजं देहं साधनोत्तममीरितम्॥
(१।६०)

पीठको उत्पन्न करनेवाले आठ साधनोंमें योगियोंने निज देहको ही उत्तम साधन कहा है।

यथा सर्वेषु कायेषु गवां तिष्ठति गोरसः।
तथापि गोस्तनादेव स्रवतीति विनिश्चितम्॥
तथैव मामिका शक्तिर्विद्यमानाऽपि सर्वतः।
नित्यनैमित्तिकैः पीठैराविर्भवति भूतले॥
(१।८१-८२)

जिस प्रकार गौके समस्त शरीरमें गोरस रहता है, परंतु स्तनसे ही वह निर्गत होता है, उसी प्रकार मेरी शक्ति सर्वत्र विद्यमान होते हुए भी पृथ्वीपर नित्य और नैमित्तिक पीठोंद्वारा आविर्भूत होती है।

मरणे दाहहीनस्त्वेषोऽस्तत्त्व समाश्रिता।
अथवा धूम्रतत्त्व स शुक्र कृष्णगतिश्रितः॥
(यो० गी० ८।७६)

जिस पुरुषकी मृत्यु होनेपर भी उसका मृत शरीर दहनहीन रहे अथवा अघोर स्थलमें या अरण्यमें मरनेसे दहन कार्यके अभावमें दहन क्रियाका अभाव हो, तो उस तत्त्वको देवता उसे सूर्यरूप तेजतत्त्वमें ग्रहण करता है।

एकस्मिन्नयने मृशं तपति यः काले स दाहकरो
येनातन्यतयत्प्रकाशसमये नैषा पदं दुर्लभम्।
सा व्योमावयवस्य यस्य विदिता लोके गतिः शाश्वती
श्री सूर्यः सुरसेवितोऽपि हि महादेवः स नस्त्रायताम्॥

जिनकी देवोंने सेवा की है, ऐसे वे भगवान् सूर्यनारायण हैं। जो एक अयन (उत्तरायण)में बहुत तपते हैं, जिन्होंने प्रतिदिन समयानुसार नियमित गति की है, जिनके प्रकाशसे कोई भी स्थान रिक्त नहीं रहता है और जिनकी शाश्वत गति इस पृथ्वीलोकमें किसीके द्वारा भी जाननेमें नहीं आता है, ऐसे आकाशमें गति करनेवाले सूर्यदेव हमारा सदा रक्षण करें।

वेदोंमें सूर्य-विज्ञान

(लेखक—स्व० म०म० पं० श्रीगिरिधरजी शर्मा चतुर्वेदी)

सूर्यका विज्ञान वेद-मन्त्रोंमें बहुत आया है। वेद र्यको ही सब चराचर जगत्का उत्पादक कहता है—
ूनं जनाः सूर्येण प्रसूताः' और इसको ही प्राणः प्रजानाम्' कहा जाता है। वेदोंमें सूर्यको इन्द्र ्द्रसे भी कहा गया है। उस इन्द्र नामसे ही सूर्यकी तुतिका ऋग्वेदीय मन्त्र यहाँ उद्धृत करते हैं—

्न्द्राय गिरो अनिशितसर्गा अपः प्रेरयं सगरस्य बुध्नात्।

यहाँ इन्द्र शब्द सूर्यका बोधक है। इन्द्र शब्द न्तरिक्षके देवता विद्युत्के लिये भी प्रयुक्त है और लोकके देवता सूर्यके लिये भी। इन्द्र शब्दका दोनों ो प्रकारका अर्थ सायण-भाष्यमें भी प्राप्त होता है। ्द्र चौदह भेदोंसे श्रुतिमें वर्णित हैं। उन भेदोंका ंग्रह ब्रह्मविज्ञानके इस पद्यमें किया गया है—

> इन्द्रा हि वाक्प्राणधियो बलं गति
> विद्युत्प्रकाशैश्वरतापराक्रमाः ।
> शुक्लादिवर्णो रविचन्द्रपुरुषा
> बुत्साह आत्मेति मताश्चतुर्दश ॥

ये हैं—१—वाक्, २—प्राण, ३—मन, ४—बल, ५—गति, ६—विद्युत्, ७—प्रकाश, ८—ऐश्वर्य, ९—पराक्रम, १०—रूप, ११—सूर्य, १२—चन्द्रमा, १३—उत्साह और १४—आत्मा। इन्द्रका विज्ञान श्रुतिमें सबसे ंभीर है। अस्तु! दो विशेषण इन्द्रके आते हैं—एक ुरुत्वान् और दूसरा मरुत्वान्। इन्द्र अन्तरिक्षस्थ वायु या ैद्युत्स्वरूप है और मरुत्वान् इन्द्र सूर्यरूप है। ंहाँ भी यह सूक्ष्म विभाग है कि सूर्य-मण्डलको द्युलोक कहा जाता है और उसमें प्रतिष्ठित प्राणप्रधान देवताको ्द्र कहा जाता है। श्रुतिमें स्पष्ट इसका उल्लेख है—'यथाग्निगर्भा पृथिवी तथा द्यौरिन्द्रेण गर्भिणी'—जैसे पृथ्वीके गर्भमें अग्नि है, वैसे द्युलोक (सूर्य-मण्डल) के गर्भमें इन्द्र है। तात्पर्य यह कि पूर्वोक्त मन्त्रमें इन्द्र पदका अर्थ सूर्य है। तब मन्त्रका सारार्थ यह हुआ—'यह महान् स्तुतिरूप वाणी इन्द्रके लिये प्रयुक्त है।' इन्द्र अन्तरिक्षके मध्यसे जलको प्रेरित करता है और अपनी शक्तियोंसे पृथ्वीलोक और द्युलोक—दोनोंको रोके हुए है, जैसे कि अक्ष रथके चक्रोंको रोके रहता है। विचारिये कि इससे अधिक आकर्षणका स्पष्टीकरण क्या हो सकता है? फिर भी, यहाँ केवल इन्द्र शब्द आनेसे यदि यह संदेह रहे कि यहाँ इन्द्र सूर्यका नाम है या वायुका? तो इसी सूक्तका—इससे दो मन्त्र पूर्वका मन्त्र देखिये, जिसमें सूर्य शब्द स्पष्ट है—

> स सूर्यः पर्युरू वरांस्येन्द्रो ववृत्याद्रथ्येव चक्रा।
> अतिष्ठन्तमपस्यं न सर्गं कृष्णा तमांसि त्विष्या जघान ॥
> (ऋ० १० । ८९ । २)

यहाँ श्रीमाधवाचार्य 'वरांसि' का अर्थ तेज बतलाते हैं। उनके मतानुसार मन्त्रका अर्थ है कि 'वह सूर्यरूप इन्द्र बहुत-से तेजोंको इस प्रकार घुमाता है, जिस प्रकार सारथि रथके चक्रोंको घुमाता है और वह अपने प्रकाशसे कृष्णवर्णके अन्धकारपर इस प्रकार आघात करता है, जैसे तेज चलनेवाले घोड़ेपर चाबुकका आघात किया जाता है।' किंतु, सत्यव्रत सामश्रमी महाशय यहाँ 'वरांसि' का अर्थ नक्षत्र आदिका मण्डल करते हैं, जो कि यहाँ सुसंगत है और तब मन्त्रका अर्थ स्पष्ट रूपसे यह हो जाता है कि 'सूर्यरूप इन्द्र समस्त महान् मण्डलोंको रथचक्रकी भाँति घुमाता है।' इसमें आकर्षणका विज्ञान अधिक स्पष्ट हो जाता है और माधवाचार्यके अर्थके अनुसार भी तेजोमण्डलका घुमाना और इन्द्र शब्दका अर्थ सूर्य होना अभिव्यक्त होता है। ... हो तो सूर्य सबके

सबका आकर्षक है, इस विज्ञानको दूसरे मन्त्रोंमें भी स्पष्ट देखिये—

वैश्वानर नाभिरसि क्षितीनाम्। विश्वस्य नाभि चरतो ध्रुवस्य। (ऋ० १०।५।३)
दिवो धर्ता भुवनस्य प्रजापति।(४।५३।२)
यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थु:।(१।१६४।२)

—इत्यादि बहुत-से मन्त्रोंमें भगवान् सूर्यका नाभिस्थानपर, अर्थात् मध्यमें रहना और सब लोकोंको धारण करना स्पष्ट रूपसे कहा गया है। और भी देखिये—

तिस्रो मातृस्त्रीन् पितॄन् बिभ्रदेक
ऊर्ध्वस्तस्थौ नेममवग्लापयन्ति।
मन्त्रयन्ते दिवो अमुष्य पृष्ठे
विश्वविदं वाचमविश्वमिन्वाम्॥
(ऋ० १।१६४।१०)

मातृ शब्द पृथ्वी और पितृ शब्द द्युका वाचक है, जो वेदमें बहुधा प्रयुक्त होता है। इस मन्त्रका अर्थ यह है कि एक ही सूर्य तीन पृथ्वी और तीन द्युलोकोंको धारण करते हुए ऊपर स्थित हैं। इनको कोई भी ग्लानिको प्राप्त नहीं करा सकते, अर्थात् दबा नहीं सकते। उस द्युलोकके पृष्ठपर सभी देवता संसारके जानने योग्य सर्वत्र व्याप्त न होनेवाली वाक्को परस्पर बोलते हैं।

तिस्रो भूमीर्धारयन् त्रीरुत द्यून् त्रीणि व्रता विदथे अन्तरेषाम्।
ऋतेनादित्या महि वो महित्वं तदर्यमन् वरुण मित्र चारु॥
(ऋ० २।२७।८)

इसका अर्थ यह है—'आदित्य तीन भूमि और तीन द्युलोकोंको धारण करते हैं। इन आदित्योंके अन्तर्ज्ञानमें या यज्ञमें तीन प्रकारके व्रत, अर्थात् कर्म हैं। हे अर्यमा, वरुण, मित्र नामक आदित्य-देवताओ ऋतसे तुम्हारा सुन्दर अतिविशिष्ट महत्त्व है।'

इस प्रकार कई एक मन्त्रोंमें तीन भूमि एवं ती द्युलोकोंका धारण सूर्यके द्वारा बताया गया है सत्यव्रत सामश्रमी महाशयका विचार है कि 'ये छह मह यहाँ सूर्यके आकर्षणमें स्थित बताये गये हैं पृथ्वी और सूर्यके मध्यमें रहनेवाले चन्द्रमा, बुध औ शुक्र—ये तीन भूमियोंके नामसे कहे गये हैं और सूर्य ऊपरके मंगल, बृहस्पति और शनि—ये द्युके नाम कहे गये हैं। यों इन सब ग्रहोंका धारणाकर्षण सूर्य द्वारा सिद्ध हो जाता है।'

श्रीगुरुजी[१] तीन भूमि और तीन द्युलोककी यह व्याख्या उपयुक्त नहीं मानते, क्योंकि यों विचा करनेपर ग्रह-नक्षत्र आदि भूमि बहुत हैं। तीन-तीनक परिच्छेद ठीक नहीं बैठता। यहाँ तीन भूमि औ तीन द्युलोकका अभिप्राय दूसरा है। छान्दोग्योपनिषद्में बताये हुए तेज, अप्, अन्नके त्रिवृत्करणके अनुसार प्रत्येक मण्डलमें तेज, अप्, अन्न तीनोंकी स्थिति है और प्रत्येक मण्डलमें पृथ्वी, चन्द्रमा और सूर्य—यह त्रिलोकी नियत रहती है। इस त्रिलोकीमें भी प्रत्येकमें तेज, अप्, अन्न तीनोंका भाग है। इनमेंसे अन्नका भाग पृथ्वी, अप्का भाग अन्तरिक्ष और तेजका भाग द्यु कहलाता है। तब तीनों मण्डलोंको मिलाकर तीन भूमि और तीन द्यु हो जाते हैं। ये तीनों भृत और रवि हैं और इनका धारण करनेवाले प्राण-रूप आदित्य-देवता हैं, जो 'तथा द्यौरिन्द्रेण गर्भिणी'में बताया गया है।

अथवा दूसरा अभिप्राय यह है कि छान्दोग्यो निषद्में सत्से जो तेज, अप् और अन्नकी सृष्टि

१ लेखकके आचार्य स्व० श्रीवेदसमाणव मधुसूदनजी झा।

बतलायी गयी है। उनमें प्रत्येक फिर तीन-तीन प्रकारका होता है। तेजके भी तीन भेद हैं—तेज, अप्, अन्न। अप्के भी तीन भेद हैं—तेज, अप्, अन्न और अन्नके भी तीन भेद हैं—तेज, अप्, अन्न। इनमें प्रथम वर्गकी अन्न-अवस्था और द्वितीय वर्गकी तेज-अवस्था एकरूप होती है, अर्थात् तेज-वर्गका अन्न और अप् वर्गका तेज एक ही है। यों ही अप्के वर्गका अन्न और अन्नके वर्गका तेज एक ही है। तब नौमेंसे दो घट जानेपर सात रह जाते हैं। ये ही सात व्याहृति या सात लोक प्रसिद्ध हैं—भू, भुव, स्व, महः जन, तप, सत्यम्। वहाँ भू पृथ्वी है। भुव जल है या जल-प्रधान अन्तरिक्ष है। स्व तेज या तेज प्रधान द्युलोक है। मह वायु या केवल वायु प्रधान लोक है। जनः आकाश या वायुमण्डल-बहिर्भूत शुद्ध आकाशलोक है। तप क्रिया या सकल क्रियाके मूल कारणभूत प्राण-प्रजापतिका लोक है। सत्यम् सत्की पहली व्याकृत-अवस्था मन या मनोमय परमेष्ठी का लोक है। अब इनमें भू, भुवः, स्वः—ये तीनों पृथ्वी कहलाते हैं। स्व, महः, जनः—ये तीनों अन्तरिक्ष कहलाते हैं और जनः, तप, सत्यम्—ये तीनों द्यु हैं, जिनका धारण पूर्वोक्त मन्त्रोंमें सूर्यद्वारा बताया गया है। अब चाहे संसारमें सैकड़ों-हजारों मण्डल या गोल बन जायँ, अनन्त पृथ्वी-गोल हों, किंतु तत्त्व विचारसे सात व्याहृतियोंसे बाहर कोई नहीं हो सकता। अतएव यह व्यापक अर्थ है। श्रीमाधवाचार्यने भी 'तिस्रो भूमीः' से व्याहृतियाँ ही ली हैं। अस्तु, चाहे कोई भी अर्थ स्वीकार कीजिये, किंतु सूर्यका धारणाकर्षण-विज्ञान इन मन्त्रोंमें अवश्य ही मानना पड़ेगा। नौ भूमियों या सैकड़ों-हजारों भूमियोंका इन्द्र या सूर्यके अधिकारमें बद्ध रहना भी मन्त्रोंमें बताया गया है, और सूर्यका चक्रकी भाँति सबको घुमाना और स्वयं भी अपनी धुरीपर घूमना पूर्वोक्त मन्त्रोंमें और 'विवर्तते अहनी चक्रियेव' इत्यादि बहुत-से मन्त्रोंमें स्फुट रूपसे कहा गया है।

भूमिके भ्रमणका भी संकेत मन्त्रोंमें कई जगह प्राप्त होता है। केवल इतना ही नहीं, भूमि अपनी धुरीपर क्यों घूमती है? इसका कारण एक मन्त्रमें विलक्षण ढंगसे प्रकट किया गया है—

> यद इन्द्रमवर्द्धयद् यद् भूमिं व्यवर्तयत्।
> चक्राण ओपशं दिवि ॥
>
> (ऋ० मं० ८। १४५)

मन्त्रका सीधा अर्थ यह है कि 'यज्ञ इन्द्रको बढ़ाता है, इन्द्र द्युलोकमें ओपश—अर्थात् शृंग बनाता हुआ पृथ्वीको विवर्तित करता है अर्थात् घुमाता है।' किरण जिस समय किसी मूर्त पदार्थपर आघात करके लौटती है, तब उसका गमन-मार्ग आगमन मार्गसे कुछ अन्तरपर होता है। उसे ही वैज्ञानिक भाषामें शृङ्ग या ओपश कहते हैं। तब किरणोंके आघातसे पृथ्वीका घूमना इस मन्त्रसे प्राप्त होता है। (अवश्य ही यह उन्मत्त-प्रलाप नहीं है, किंतु इसके स्पष्टीकरणके लिये गहरी परीक्षाकी आवश्यकता है। सम्भव है कि किसी समय परीक्षासे यह विज्ञान स्फुट हो जाय और कोई बड़ी गम्भीर बात इसमेंसे प्रकट हो पड़े।)

और भी सूर्यका और सूर्यके रथ और अश्वोंका वर्णन देखिये—

> सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्र
> मेको अश्वो वहति सप्तनामा।
> त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं
> यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः ॥
>
> (ऋ० १। १६४। २)

'सूर्यके एक पहियेके रथमें सात घोड़े जुड़े हैं। वस्तुत (घोड़े सात नहीं

नामका या सात जगह नमन करनेवाला घोड़ा इस रथको चलाता है। इस रथचक्रकी तीन नाभियाँ हैं। यह चक्र (पहिया) शिथिल नहीं, अत्यन्त दृढ़ है और कभी जीर्ण नहीं होता। इसीके आधारपर सारे लोक स्थिर हैं।' यह हुआ सीधा शब्दार्थ। अब इसके विज्ञानपर दृष्टि डाली जाय।

निरुक्तकार यास्क कहते हैं कि देवताओंके रथ, अश्व, आयुध आदि उन देवताओंसे अत्यन्त भिन्न नहीं होते, किंतु परम ऐश्वर्यशाली होनेके कारण उनका स्वरूप ही रथ, अश्व, आयुध आदि रूपोंसे वर्णित हुआ है अर्थात् आवश्यकता होनेपर वे अपने स्वरूपसे ही रथ, अश्व आदि प्रकट कर लेते हैं। मनुष्योंकी भाँति काष्ठ आदिके रथ आदि बनानेकी उन्हें आवश्यकता नहीं होती। अतएव श्रुति रथ, अश्व, आयुध आदि रूपसे देवताओंकी ही स्तुति करती है। अस्तु, इसके अनुसार यहाँ रथ शब्दका तात्पर्य सूर्यके ही वर्णनमें है। रथ शब्दकी सिद्धि करते हुए निरुक्तकारने कहा है कि यह स्थिरका विपरीत है, अर्थात् 'स्थिर' शब्द ही वर्ण विपर्यय होकर 'रथ' शब्दके रूपमें आ गया है। अतः सूर्यकी स्थिरताका भी प्रमाण कई विद्वान् इससे निकालते हैं।

रथ और रथीमें भेदकी ही यदि अपेक्षा हो, तो सौर-जगन्मण्डल—सूर्यकिरण-क्रान्त ब्रह्माण्ड सूर्यका रथ मानना चाहिये। पुराणमें सूर्यकी गतिके प्रदेश क्रान्तिवृत्तको सूर्यरथ बताया गया है—

> साशीतिमण्डलशतं काष्ठयोरन्तरं द्वयोः।
> आरोहणावरोहाभ्यां भानोरब्देन या गतिः॥
> स रथोऽधिष्ठितो देवैरादित्यैर्ऋषिभिस्तथा। इत्यादि
> (वि० पु० २। १०। १२)

सम्वत्सर इस रथका चक्र (पहिया) माना गया है। वस्तुतः सम्वत्सररूप काल ही इस सब जगत्को फिरा रहा है। कालके ही कारण जगत् घूम रहा है। परिणाम होना—एक अवस्थासे दूसरी अवस्थामें चला जाना ही जगत्का जगत्पन है। उसका कारण काल ही है। सुतरां, सौर जगत्का पहिया सम्वत्सररूप काल हुआ। इस सम्वत्सररूप चक्रका मन्त्रके उत्तरार्धमें वर्णन हुआ है। तीन इसकी नाभियाँ हैं, एक सम्वत्सरमें तीन बार जगत्की स्थिति बिल्कुल पलट जाती है। वे ही तीन ऋतुएँ (शीत, उष्ण, वर्षा) यहाँ चक्रकी नाभि बतलायी गयी हैं। पाँच-छः ऋतुओंका जो विभाग है, उसके अनुसार अन्यत्र पाँच या छः अरे बताये जाते हैं—

> त्रिनाभिमति पञ्चारे षण्नेमिन्यक्षयात्मके।
> सम्वत्सरमये कृत्स्नं कालचक्रं प्रतिष्ठितम्॥
> (वि० पु० २। ८। ४)

अथवा तीन—भूत, वर्तमान, भविष्यत्-भेदसे भिन्न काल इस चक्रकी नाभियाँ हैं। जो व्याख्याता चक्र पदसे भी सौर जगत् (ब्रह्माण्ड)का ही ग्रहण करते हैं, उनके मतसे भूमि, अन्तरिक्ष और दिव-नामके तीनों लोकोंकी तीन नाभि हैं।

और इस चक्रका विशेषण दिया गया है—'अनर्वम्।' इसकी व्याख्या करते हुए निरुक्तकार कहते हैं कि 'अप्रत्यृतमन्यस्मिन्' अर्थात् यह सूर्य-मण्डल किसी दूसरे आधारपर नहीं है। यह 'अजर' है, अर्थात् जीर्ण नहीं होता और इसीके आधारपर सम्पूर्ण लोक स्थित हैं। इस व्याख्याके अनुसार सूर्यमण्डलके आकर्षणमें सब लोग बँधे हुए हैं एवं सूर्य अपने ही आधारपर हैं, वे किसी दूसरेके आकर्षणपर बद्ध नहीं हैं। यह आधुनिक विज्ञानसे स्पष्ट हो जाता है। सम्वत्सररूप कालको चक्र माननेके पक्षमें भी इन तीनों विशेषणोंकी सगति स्पष्ट है। कालके ही आधारपर सब हैं, काल किसीके आधारपर नहीं और काल कभी जीर्ण भी नहीं होता।

भेद माननेवाले वायुको सूर्यका अश्व कहते हैं अर्थात् वायुमण्डलके आधारसे सूर्य चारों ओर घूमते हैं। वह

वायु वस्तुतः एक है, किंतु स्थान-भेदसे उसकी आवह-प्रवह आदि सात संज्ञाएँ हो गयी हैं। अतएव कहा गया कि 'एक ही सात नामका या सात स्थानोंमें नमन करनेवाला अश्व वहन करता है।' किंतु निरुक्तकारके मतानुसार अशन, अर्थात् सब स्थानोंमें व्याप्त होनेके कारण सूर्य ही अश्व है। किंतु सूर्यमण्डल हमसे बहुत दूर है। उसे हमारे समीप सूर्यकी किरणें पहुँचाती हैं। सूर्य अश्व है, तो किरणें वल्गा (लगाम) हैं। जहाँ किरणें ले जाती हैं, वहीं सूर्यको भी जाना पड़ता है। (लगाम या रास और किरण —दोनोंका नाम संस्कृतमें 'रश्मि' है—यह भी ध्यान देनेकी बात है।) इससे सूर्यको वहन करनेवाली किरणें ही सूर्याश्व हुईं। कई भावोंसे मन्त्रोंका विचार होता है— कहीं सूर्य अश्व तो रश्मि वल्गा, कहीं सूर्य अश्वारोही, तो किरण अश्व आदि। वह किरण भी वस्तुतः एक अर्थात् एक जातिकी है, किंतु किरणें सात भी कही जा सकती हैं। सात कहनेके भी अनेक कारण हैं। किरणोंके सात रूप होनेके कारण भी उन्हें सात कह सकते हैं। अथवा संसारमें वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त और शिशिर—ये छः ऋतुएँ होती हैं और सातवीं एक साधारण ऋतु। इन सातोंका कारण सूर्यकी किरणें ही हैं। सूर्यकी किरणोंके ही तारतम्यसे सब परिवर्तन होते हैं। इसलिये सात प्रकारका परिवर्तन करानेवाली सूर्य किरणोंकी अवस्थाएँ भी सात हुईं। अथवा भूमि, चन्द्रमा, बुध, शुक्र, मङ्गल, बृहस्पति और शनि—इन सातों ग्रहों और लोकोंमें या भूः भुवः स्वः आदि सातों भुवनोंमें प्रकाश पहुँचानेवाले और इन सभी लोकोंसे रस आदि लेनेवाली सूर्य किरणें ही हैं। अतः सात स्थानोंके सम्बन्धसे इन्हें सात कहा जाता है, यह बात 'सप्तनामा' पदसे और भी स्पष्ट होती है। सूर्यकी किरणें सात स्थानोंमें नत होती हैं। प्रकारान्तरमें यह 'सप्तनामा' पद सूर्यका विशेषण है, अर्थात् सात रश्मियाँ सूर्यसे रस प्राप्त करती रहती हैं। सातों लोकोंसे इसका आहरण सूर्य-रश्मिद्वारा होता है अथवा सातों ऋषि सूर्यकी स्तुति करते हैं। यहाँ भी ऋषिसे तारा-रूप ग्रह भी लिये जा सकते हैं और वसिष्ठ आदि ऋषि भी। इस प्रकार, मन्त्रार्थका अधिकतर विस्तार हो जाता है।

अब पाठक देखेंगे कि पुराणों और वृद्ध पुरुषोंके मुखसे जिन बातोंको सुनकर आजकलके विज्ञानी सज्जनोंका हास्य नहीं रुकता, वे ही बातें साक्षात् वेदमें भी आ गयी हैं। उनका तात्पर्य भी ऐसा निकल पड़ा कि बात-बातमें बहुत-सी विद्याका ज्ञान हो जाय। क्या अब भी ये हँसी उड़ानेकी ही बातें हैं? क्या पुराणोंमें भी इनका यही स्पष्ट अभिप्राय उद्घाटित नहीं है? खेद इसी बातका है कि हम इधर विचार नहीं करते।

अब इन तीनों देवताओंका परस्पर कैसा सम्बन्ध है? इसका प्रतिपादक एक मन्त्र भी यहाँ उद्धृत किया जाता है—

> अस्य वामस्य पलितस्य होतु-
> स्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः।
> तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्या-
> त्रापश्यं विश्पतिं सप्तपुत्रम्॥
> (ऋ० १।१६४।१)

दीर्घतमा ऋषिके द्वारा प्रकाशित इस मन्त्रका निरुक्तकारने केवल अधिदैवत (देवता-पक्षका) अर्थ किया है और भाष्यकार श्रीसायणाचार्यने अधिदैवत और अध्यात्म—दो अर्थ किये हैं। पहला अधिदैवत अर्थ इस प्रकार है—

(वामस्य) सबकी सेवा करने योग्य या सबको प्रकाश देनेवाले, (पलितस्य) सम्पूर्ण ... पालक (होतुः) स्तुतिके द्वारा यज्ञादिमें (तस्य अस्य) ...

(मध्यमः भ्राता) बीचका भाई अन्तरिक्षस्थ वायु अथवा विद्युत्-रूप अग्नि (अश्न अस्ति) सर्व-व्यापक है। (अस्य तृतीयः भ्राता) इन्हीं सूर्यदेवका तीसरा भाई (घृतपृष्ठ) घृतको अपने पृष्ठपर धारण करनेवाला—घृतसे प्रदीप्त होनेवाला अग्नि है। (अत्र) इन तीनोंमें (सप्तपुत्रम्) सर्वत्र फैलनेवाले सात किरण-रूप पुत्रोंके साथ सूर्यदेवको ही मैं (विश्पतिम्) सबका स्वामी और सबका पालन करनेवाला (अपश्यम्) जानता हूँ। इस अर्थसे सिद्ध हुआ कि अग्नि, वायु और सूर्य—ये तीनों लोकोंके तीन मुख्य देवता हैं। इन तीनोंमें परस्पर सम्बन्ध है और सूर्य सबमें मुख्य हैं। इस मन्त्रमें विशेषणोंके द्वारा कई एक विशेष विज्ञान प्रकट होते हैं, उन्हींका वर्णन नीचे किया जाता है।

वामस्य—निरुक्तकार 'वन्' धातुसे इस शब्दकी सिद्धि मानते हैं। धातुका अर्थ है—सम्भक्ति, अर्थात् सम्यक् भाजन या सविभाग—बाँटना। इससे सिद्ध हुआ कि सूर्य सबको अपना प्रकाश और वृष्टि-जल आदि बाँटते रहते हैं। इतर सभी सूर्यके अधीन रहते हैं। यज्ञमें भी सूर्यकी ही प्रधान स्तुति की जाती है।

पलितस्य—निरुक्तकार इसका पालक अर्थ करते हैं, अर्थात् सूर्य सबका पालन करनेवाले हैं। किंतु पलित शब्द श्वेत केशका भी वाचक है और श्वेत केशके सम्बन्धसे कई जगह वृद्धका भी वाचक हो जाता है। अतः इसका यह भी तात्पर्य है कि सूर्य सबसे वृद्ध (प्राचीन) हैं।

होतु—यह शब्द वेदमें 'हु' धातु और 'ह्वा' धातु—दोनोंसे बनाया जाता है। हु धातुका अर्थ है—दान, आदान और प्रीणन। ह्वा धातुका अर्थ है—स्पर्धा, आह्वान और शब्द। अतः इस विशेषणके अनेक तात्पर्य हो सकते हैं—जैसा कि सूर्य हमें वृष्टि-जलका दान करते हैं, पृथ्वीमेंसे रसका आहरण (भोजन) करते हैं और सबको प्रसन्न रखते हैं। सब ग्रह-उपग्रहोंके नाभि-रूप केन्द्र-स्थानमें स्थित रहकर मानो उनसे स्पर्धा कर रहे हैं। सब ग्रह-उपग्रहोंका आह्वान-रूप आकर्षण करते रहते हैं और तापके द्वारा वायुमें गति उत्पन्न कर उसके द्वारा शब्द भी कराते हैं। चतुर्थ पादमें भी सूर्यके दो विशेषण हैं।

विश्पतिम्—प्रजाओंको उत्पन्न करनेवाले और उन पालन करनेवाले। 'नूनं जनाः सूर्येण प्रसूताः' इत्य श्रुतियोंमें स्पष्ट रूपसे सूर्यको सबका उत्पादक कहा है।

सप्तपुत्रम्—यहाँ पुत्र शब्दका रश्मियोंसे प्रयोजन है। यह समीका अभिमत है। अतः इस तात्पर्य हुआ कि रश्मियाँ (सप्त) बड़े वेगसे फैलनेवा हैं। और उनमें सात भाग हुआ करते हैं, सूर्य अदि के सप्तम पुत्र हैं—इस ऐतिहासिक पक्षका अर्थ यहाँ ध्यान देने योग्य है।

भ्राता—इसका निरुक्तकार अर्थ करते हैं कि भरण करनेयोग्य अथवा भरण करनेवाला। इससे य तात्पर्य सिद्ध होता है कि अपनी रश्मियोंके द्वारा आकृ रसको सूर्यदेव वायुमें समर्पित करते हैं, वायुको ग आदि भी अपनी किरणोंद्वारा देते हैं अथवा वायु सूर्य अन्तरिक्षस्थ रसको हरण कर लेता है, मानो तीनों लोकोंके स्वामी सूर्यदेव ही थे, उनसे अन्तरिक्ष स्थान वायुने छीन लिया।

मध्यम—पदसे विद्युत्-(बिजलीकी आग) का ग्रहण करनेपर भी ये अर्थ इस प्रकार ही ज्ञातव्य हैं। उसकी उत्पत्तिमें भी निरुक्तकार सूर्यको कारण मानते हैं और वह भी मध्यम स्थानका हरण करता है।

अश्न—इससे वायु और विद्युत्की व्यापकता सिद्ध होती है। इनके बिना कोई स्थान नहीं—सर्वत्र वायु और विद्युत् अनुस्यूत रहती हैं।

भ्राता—इसका अभिप्राय भी पूर्ववत् है। सूर्य अपने प्रकाशद्वारा इसका भरण करते हैं, अर्थात् अग्निमें तेज सूर्यसे ही आया है और यह भी अपने लिये सूर्यके राज्यमेंसे पृथ्वी-रूप स्थान छीन लेता है।

घृतपृष्ठ—घृतसे अग्निकी वृद्धि होती है, अथवा घृत शब्द द्रव्यका वाचक होनेसे सोमका उपलक्षक है। अग्नि सदा सोमके पृष्ठपर आरूढ रहती है। बिना सोमके अग्नि नहीं रह सकती और बिना अग्निके सोम नहीं मिलता—'अग्नीषोमात्मक जगत्।'

इस प्रकार देवताओंके विशेषणोंसे छोटे-छोटे शब्दोंमें विज्ञानकी बहुत-सी बातें प्रकट होती हैं। देवता विज्ञान ही श्रुतिका मुख्य विज्ञान है। ऐसे मन्त्रोंके अर्थ सम्यक् समझकर आधुनिक विज्ञानसे उनकी तुलना करनेपर हमारे विज्ञानसे उक्त आधुनिक विज्ञानका जितने अंशमें भेद है, यह भी स्पष्ट हो सकता है। इस प्रकारकी चेष्टासे हम भी अपने शास्त्रोंका तत्त्व समझ सकेंगे और आधुनिक विज्ञानको भी अधिक लाभ होगा, क्योंकि आधुनिक विज्ञानका अभी कोई सिद्धान्त स्थिर नहीं हुआ है। सम्भव है, उनको भी इन प्राचीन सिद्धान्तोंसे बहुत अंशोंमें सहायता मिले। अस्तु अब संक्षेपमें उक्त मन्त्रका आध्यात्मिक अर्थ भी लिखा जाता है।

(वामस्य) समस्त जगत्का उद्गिरण करनेवाला अर्थात् अपने शरीरमें स्थित जगत्को बाहर प्रकाशित करनेवाला, (पलितस्य) सबका पालक, अथवा सबसे प्राचीन, (होतुः) सबको फिर अपनेमें ले लेनेवाला अर्थात् संहार करनेवाला—सृष्टि, स्थिति, लयके कारण परमात्माका (भ्राता) भाग हरण करनेवाला अर्थात् अंशरूप (अश्नः) व्यापनशील (मध्यमः अस्ति) सबके मध्यमें रहनेवाला सूत्रात्मा है। और (अस्य) इसी परमात्माका (तृतीयः भ्राता) तीसरा भ्राता (घृतपृष्ठः अस्ति) विराट् है। घृतपृष्ठ शब्द जलका भी वाचक है और जलसे उस जलका कार्य स्थूल शरीर लक्षित होता है। उस शरीरका स्पर्श करनेवाला स्थूल शरीराभिमानी विराट् सिद्ध हुआ। (अत्र) इन सबमें (विश्पतिम्) सब प्रजाओंके स्वामी, (सप्तपुत्रम्) सातों लोक जिसके पुत्र हैं, ऐसे परमात्माको (अपश्यम्) जानता हूँ, अर्थात् उसका जानना परम श्रेयस्कर है। इसका तात्पर्य यही है कि सम्पूर्ण जगत्का स्वाधीन कारण एक परमात्मा है और सूत्रात्मा एवं विराट्, जो सूक्ष्म दशा और स्थूल दशाके अभिमानी, वेदान्त-दर्शनमें माने गये हैं—दोनों इसी परमात्माके अंश हैं।

अब आप लोगोंने विचार किया होगा कि वेदमें विज्ञान प्रकट करनेकी शैली कुछ अद्भुत है। ऊपरसे देखनेपर जो बात हमें साधारण-सी दिखायी देती है, वही विचार करनेपर बड़ी गहरी सिद्ध हो जाती है। इसका एक रोचक उदाहरण यहाँ दिया जा रहा है।

अश्वमेध यज्ञमें मध्यके दिन एक ब्रह्मोद्यका प्रकरण है। एक स्थानपर होता, अध्वर्यु, उद्गाता, ब्रह्मा—इन सबका परस्पर प्रश्नोत्तर होता है। इस प्रश्नोत्तरके मन्त्र ऋग्वेदसंहिता और यजुर्वेदसंहिता—दोनोंमें आये हैं। उनमेंसे एक प्रश्नोत्तर देखिये—

पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः
पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभिः।
(ऋ० १। १६४। ३४ यजु० २३। ६१)

यह यजमान और अध्वर्युका संवाद है। यजमान कहता है कि 'मैं तुमसे पृथ्वीका सबसे अन्तका भाग पूछता हूँ और भुवन अर्थात् उत्पन्न होनेवाले सब पदार्थोंकी नाभि जहाँ है, वह (स्थान) पूछता हूँ।' इनमें दो प्रश्न हुए—एक यह कि पृथ्वीकी जहाँ समाप्ति होती है वह अवधि-भाग कौन-सा है और उत्पन्न होनेवाले

सब पदार्थोंकी नाभि कहाँ है ? अब उत्तर सुनिये। अध्वर्यु कहता है—

इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या ।
अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः ॥
(पूर्वसे आगेका मन्त्र)

यज्ञकी वेदीको दिखाकर अध्वर्यु कहता है कि 'यह वेदी ही पृथ्वीका सबसे अन्तिम अवधि-भाग है और यह यज्ञ सब भुवनोंकी नाभि है।' स्थूल दृष्टिसे कुछ भी समझमें नहीं आता। बात क्या हुई ? भारतवर्षके हर एक प्रान्तके प्रत्येक स्थानमें यज्ञ होते थे। सभी जगह कहा जाता है कि यह वेदी पृथ्वीका अन्त है। भला सब जगह पृथ्वीका अन्त किस प्रकार आ गया ?

यह तो एक विनोद-जैसी बात मालूम होती है। दो गाँववाले एक जगह खड़े थे। एक अपनी समझदारीकी बड़ी डींग मार रहा था। दूसरेने उससे पूछा—'अच्छा, तू बड़ा समझदार है, तो बता सब जमीनका बीच कहाँ है ?' पहला था बड़ा चतुर। उसने झटसे अपनी लाठी एक जगह गाड़कर कह दिया—'यही कुल जमीनका बीच है।' दूसरा पूछने लगा—'कैसे ?' तो पहलेने जवाब दिया कि 'तू जाकर नाप आ। गलत हो तो मुझसे कहना।' अब वह न नाप सकता था, न पहलेकी बात झूठी हो सकती थी। यह एक उपहासका गल्प प्रसिद्ध है। तो क्या वेद भी ऐसी ही मजाककी बातें बताता है ? नहीं, विचार करनेपर आपको प्रतीत होगा कि इन अक्षरोंमें वेद भगवान्ने बहुत कुछ कह दिया है। पहले एक मोटी बात लीजिये। आदि और अन्त, समतल, लम्बे तथा चौकोर प्रभृति रूप पदार्थोंके नियत होते हैं। किंतु गोल वस्तुका कोई आदि-अन्त या ओर-छोर नियत नहीं होता। जहाँसे भी प्रारम्भ मान लें, उसके समीप ही अन्त आ जायगा। भूमि गोल है, इससे इसका आदि-अन्त नियत नहीं। जहाँसे एक मनुष्य चलना आरम्भ करे, उसके समीप भागमें ही प्राप्त होकर (आकर) वह अपनी प्रदक्षिणा समाप्त करेगा। ऐसा अवसर नहीं आयगा कि जहाँ जाते-जाते वह रुक जाय और आगे भूमि न रहे। इससे अध्वर्यु यजमानको बताता है कि भाई! भूमिका अन्त क्या पूछते हो, यह तो गोल है। हर एक जगह उसके आदि-अन्तकी कल्पना की जा सकती है। इससे तुम दूर क्यों जाते हो। समझ लो कि तुम्हारी यह वेदी ही पृथ्वीका अन्त है। जहाँ आदिकी कल्पना करोगे, वहींपर अन्त भी बन जायगा। इससे वेद भगवान्ने एक रोचक प्रश्नोत्तरके रूपमें पृथ्वीका गोल होना हमें बता दिया।

अब याज्ञिक प्रसङ्गमें इन मन्त्रोंका दूसरा भाव देखिये। यज्ञके कुण्डों और वेदीका सन्निवेश प्राकृत सन्निवेशके आधारपर कल्पित किया जाता है। सूर्यके सम्बन्धसे पृथ्वीपर जो प्राकृत यज्ञ हो रहा है, उसमें एक ओर सूर्यका गोला है, दूसरी ओर पृथ्वी है और मध्यमें अन्तरिक्ष है। अन्तरिक्षद्वारा ही सूर्य-किरणोंसे सब पदार्थ पृथ्वीपर आते हैं। इस सन्निवेशके अनुसार यज्ञमें भी ऐसा सन्निवेश बनाया जाता है कि पूर्वमें आहवनीय कुण्ड, पश्चिममें गार्हपत्य कुण्ड और दोनोंके बीचमें वेदी। तब यहाँ आहवनीय कुण्ड सूर्यके स्थानमें है। गार्हपत्य पृथिवीके स्थानमें और वेदी अन्तरिक्षके स्थानमें है। इस विभागको दृष्टिमें रखकर जब यह कहा जाता है कि यह वेदी ही पृथ्वीका अन्त है, तो उसका यह अभिप्राय स्पष्ट समझमें आ सकता है कि पृथ्वीका अन्त वहीं है, जहाँसे अन्तरिक्षका प्रारम्भ है। वेदीरूप अन्तरिक्ष ही पृथ्वीका दूसरा अन्त है। इसके अतिरिक्त पृथ्वीका और कोई अन्त नहीं हो सकता।

इन मन्त्रोंको समझानेका एक तीसरा प्रकार भी है और वह इन दोनोंसे गम्भीर है। ऋग्वेद-भाष्यमें इस

मन्त्रकी व्याख्या करते हुए श्रीमाधवाचार्यने ब्राह्मणकी यह श्रुति उद्धृत की है—

एतावती वै पृथिवी यावती वेदिरिति श्रुते ।

अर्थात् जितनी वेदी है, उतनी ही पृथ्वी है । इसका तात्पर्य यह है कि सम्पूर्ण पृथ्वीरूप वेदीपर सूर्य किरणोंके सम्बन्धसे आदान-प्रदानरूप यज्ञ बराबर हो रहा है । अग्नि पृथ्वीमें सर्वत्र अभिव्याप्त है और बिना आहुतिके वह कभी रहती नहीं है । वह अन्नाद है । उसे प्रतिक्षण अन्नकी आवश्यकता है । इससे वह स्वयं बाहरसे अन्न लेती रहती है और सूर्य अग्नि आदिको अन्न देते रहते भी हैं । जहाँ यह अन्न-अन्नादभाव अथवा आदान-प्रदानकी क्रिया न हो, वहाँ पृथ्वी रह ही नहीं सकती । उससे स्पष्ट हो सिद्ध है कि जहाँतक प्राकृत यज्ञकी वेदी है, वहाँतक पृथिवी भी है । बस, इसी अभिप्रायको मन्त्रने भी स्पष्ट किया है कि वेदी ही पृथ्वीका अन्त है । अन्त पदको आदिका भी उपलक्षक समझना चाहिये । पृथ्वीका आदि-अन्त जो कुछ भी है, वह वेदीमय है । यह वेदी जहाँ नहीं, वहाँ पृथ्वी भी नहीं है ।

आजकलका विज्ञान जिसको मुख्य आधार मान रहा है, उस विद्युत्का प्रसंग वेदमें किस प्रकार है ? यह भी देखिये—

अप्स्वग्ने सधिष्टव सौषधीरनुरुध्यसे ।
गर्भे सन् जायसे पुनः । (यजु० १२ । ३६)

अर्थात् 'हे अग्निदेव ! जलमें तुम्हारा स्थान है, तुम ओषधियोंमें भी व्याप्त रहते हो और गर्भमें रहते हुए भी फिर प्रकट होते हो ।' ऐसे मन्त्रोंमें अग्नि सामान्य पद है और उससे पार्थिव अग्नि और वैद्युत अग्नि—दोनोंका ग्रहण होता है । किंतु इसमें भी विद्युत्का जलमें रहना स्पष्ट न माना जा सके, तो खास विद्युत्के लिये ही यह मन्त्र देखिये—

यो अनिध्मो दीदयदप्स्वन्त
र्यं विप्रास ईळते अध्वरेषु ।
अपां नपान्मधुमतीरपो दा
याभिरिन्द्रो वावृधे वीर्याय ॥
(ऋ० १० । ३० । ४)

'जो बिना ईंधनकी अग्नि जलके भीतर दीप्त हो रही है, यज्ञमें मेधावी लोग जिसकी स्तुति करते हैं, वह हमें 'अपां नपात्' मधुयुक्त रस देवें—जिस रससे इन्द्र वृद्धिको प्राप्त होता है और बलका कार्य करता है ।'

इस मन्त्रमें बिना ईंधनके जलके भीतर प्रदीप्त होनेवाली जो अग्नि बतलायी गया है, वह विद्युत्के अतिरिक्त कौन-सी हो सकती है, यह आप ही विचार करें । फिर भी कोई सज्जन यह कहकर टालनेका यत्न करें कि जलमें बड़वानलके रहनेका पुराना खयाल है, वही यहाँ कहा गया होगा तो उन्हें देखना होगा कि इसमें उस अग्निको 'अपां नपात्' देवता बताया गया है और 'अपां नपात्' निघण्टुमें अन्तरिक्षके देवताओंमें ही आता है । तब 'अन्तरिक्षकी अग्नि जलके भीतर प्रज्वलित' इतना कहनेपर भी यदि विद्युत न समझी जा सके, तो फिर समझनेका प्रकार कठिनतासे मिल सकेगा ।

अभि प्रवन्त समनेव योषाः
कल्याण्यः स्मयमानासो अग्निम् ।
घृतस्य धाराः समिधो नसन्त
ता जुषाणो हर्यति जातवेदाः ॥
(ऋ० ४ । ५८ । ८)

इस मन्त्रमें भी भगवान् यास्कने विद्युत्का विज्ञान और जलसे उसका उद्भव स्पष्ट ही लिखा है । विस्तारकी आवश्यकता नहीं । यह स्पष्ट प्रमाणित होता है कि विद्युत और उसकी उत्पत्ति आदिका परिचय वेदमें स्पष्ट है; प्रत्युत जहाँ आजकलका विज्ञान विद्युत्पर सब कुछ अवलम्बित करता हुआ भी अभीतक यह न जान सका कि विद्युत् वस्तु क्या है ? वह 'मैटर' है इसका विवाद अभी निर्णयपर ही।

वेदने इसे 'इन्द्र देवता'का रूप मानते हुए इसका प्राणविशेष 'शक्तिविशेष' (एनर्जी) (अनमैटेरियल) होना स्पष्ट उद्घोषित कर रखा है। (देवता प्राणविशेष है, यह पूर्व कहा जा चुका है) और, इसे सूर्यका भ्राता कहते हुए सूर्यसे ही इसका उद्भव भी मान रखा है। यों जिन सिद्धान्तोंका आविष्कार वैज्ञानिकोंके लिये अभी शेष ही है, वे भी वेदमें निश्चित रूपसे उपलब्ध हो जाते हैं।

रूपके सम्बन्धमें वर्तमान विज्ञानका मत है कि जिन वस्तुओंमें हम रूप देखते हैं, उनमें रूप नहीं, रूप सूर्यकी किरणोंमें है। वस्तुओंमें एक प्रकारकी भिन्न-भिन्न शक्ति है, जिसके कारण कोई वस्तु सूर्य-किरणके किसी रूपको उगल देती है और शेष रूपोंको खा जाती है। तात्पर्य यह कि रूपोंका आधार—रूपोंको बनानेवाली सूर्य-किरणें हैं। आप देखिये, वेद भी रूप विज्ञानके सम्बन्धमें उपदेश करता है—

> शुक्रं ते अन्यद् यजतं ते अन्यद्
> विषुरूपे अहनी द्यौरिवासि।
> विश्वा हि माया अवसि स्वधावो
> भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु॥
> (ऋ० ६।५८।१)

इस मन्त्रमें भाष्यकार श्रीमाधवाचार्यने भी शुक्र-शुक्ल-रूप और यजत-कृष्ण-रूप यही अर्थ किया है। पूषा देवताकी स्तुति है कि 'रूप तुम्हारे हैं, तुम्हीं इन दोनोंके द्वारा भिन्न भिन्न प्रकारकी सब मायाओंको बनाते हो या रक्षा करते हो।'

इससे यह भी प्रकट किया गया है कि रूप मुख्य दो ही हैं—शुक्ल और कृष्ण। उन्हींके सम्मिश्रणसे सर्वत्र स्थान एक-रूप और फिर परस्पर मेलसे नाना रूप बन जाते हैं। यों यहाँ 'पूषा' देवताको रूपका कारण माना गया है और—'इन्द्रो रूपाणि कनिक्रदचरत्।' तैत्तिरीयसंहिता इत्यादिमें इन्द्रको सब रूपोंका बनानेवाला कहा गया है। तात्पर्य यह कि सूर्य किरण-संसक्त देवता ही रूपोंके उत्पादक हैं। यह विज्ञान हमें इन मन्त्रोंमें मिल जाता है। [वैदिक सूर्य विज्ञानके इन बातोंके परिप्रेक्ष्यमें आधुनिक विज्ञानवेत्ताओंको परिशीलन करना चाहिये और उभय विज्ञानोंके समन्वयका प्रयास करना चाहिये—सं०]

'उदयत्येष सूर्यः'

> विश्वरूपं हरिणं जातवेदसं परायणं ज्योतिरेकं तपन्तम्।
> सहस्ररश्मिः शतधा वर्तमानः प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः॥

सूर्यके तत्त्वके ज्ञाताओंका कहना है कि ये किरणजालसे मण्डित एवं प्रकाशमय, तपते हुए सूर्य विश्वके समस्त रूपोंके केन्द्र हैं। सभी रूप (रंग और आकृतियाँ) सूर्यसे उत्पन्न और प्रकाशित होते हैं। ये सविता ही सबके उत्पत्तिस्थान हैं और ये ही सबकी जीवन-ज्योतिके मूल-स्रोत हैं। ये सर्वज्ञ और सर्वाधार हैं, ये वैश्वानर (अग्नि) और प्राण-शक्तिके रूपमें सर्वत्र व्याप्त हैं और सबको धारण किये हुए हैं। समस्त जगत्के प्राणरूप सूर्य अद्वितीय हैं—इनके समान विश्वमें अन्य कोई भी जीवनी शक्ति नहीं है। ये सहस्ररश्मि—सूर्य हमारे शतशः व्यवहारोंको सिद्ध करते हुए उदित होते हैं। (प्रश्नोप० १।८)

वैदिक सूर्यविज्ञानका रहस्य

(लेखक—म० म० म० आचार्य प० श्रीगोपीनाथजी कविराज, एम्० ए०)

(क) उपक्रम

बहुत दिन पहलेकी बात है, जिस दिन महापुरुष परमहंस श्रीविशुद्धानन्दजी महाराजका पता लगा था, तब उनके सम्बन्धमें बहुत-सी अलौकिक शक्तिकी बातें सुनी थीं। बातें इतनी असाधारण थीं कि उनपर सहसा कोई भी विश्वास नहीं कर सकता था। यद्यपि 'अचिन्त्यमहिमानः खलु योगिनः' (योगियोंकी महिमा अचिन्त्य होती है)—इस शास्त्र-वाक्यपर मैं विश्वास करता था और देश-विदेशके प्राचीन और नवीन युगोंमें विभिन्न सम्प्रदायोंके जिन विभूतिसम्पन्न योगी और सिद्ध महात्माओंकी कथाएँ ग्रन्थोंमें पढ़ता था, उनके जीवनमें घटित अनेक अलौकिक घटनाओंपर भी मेरा विश्वास था, तथापि आज भी हमलोगोंके बीचमें ऐसे कोई योगी महात्मा विद्यमान हैं, यह बात प्रत्यक्ष-दर्शकि मुखसे सुनकर भी ठीक-ठीक हृदयङ्गम नहीं कर पाता था। इसलिये एक दिन सन्देह-नाश तथा औत्सुक्यकी निवृत्तिके लिये महापुरुषके दर्शनार्थ मैं गया।

उस समय सन्ध्या समीपप्राय थी, सूर्यास्तमें कुछ ही काल अवशिष्ट था। मैंने जाकर देखा, बहुसंख्यक भक्तों और दर्शकोंसे घिरे हुए पृथक् आसनपर एक सौम्यमूर्ति महापुरुष व्याघ्रचर्मपर विराजमान हैं। उनकी सुन्दर लम्बी दाढ़ी है, चमकते हुए विशाल नेत्र हैं, पकी हुई उम्र है, गलेमें सफेद जनेऊ है, शरीरपर काषाय वस्त्र है और चरणोंमें भक्तोंके चढ़ाये हुए पुष्प तथा पुष्पमालाओंके ढेर लगे हैं। पास ही एक स्वच्छ काश्मीरी उपलसे बना हुआ गोल यन्त्रविशेष पड़ा है। महात्मा उस समय योगविद्या और प्राचीन आर्यविज्ञानके गूढ़तम रहस्योंकी उपदेशके बहाने साधारणरूपमें व्याख्या कर रहे थे। कुछ समयतक उनका उपदेश सुननेपर जान पड़ा कि इनमें अनन्य साधारण विशेषता है, क्योंकि उनकी प्रत्यक्ष बातपर इतना जोर था, मानो वे अपनी अनुभवसिद्ध बात कह रहे हैं—केवल शास्त्रवचनोंकी आवृत्तिमात्र नहीं। इतना ही नहीं, वे प्रसङ्गपर ऐसा भी कहते जाते थे कि शास्त्रकी सभी बातें सत्य हैं, आवश्यकता पड़नेपर किसी भी समय योग्य अधिकारीको मैं दिखला भी सकता हूँ। उस समय 'जात्यन्तरपरिणाम' का विषय चल रहा था। वे समझा रहे थे कि जगत्‌में सर्वत्र ही सत्तामात्ररूपसे सूक्ष्मभावसे सभी पदार्थ विद्यमान रहते हैं। परंतु जिसकी मात्रा अधिक प्रस्फुटित होती है, वही अभिव्यक्त और इन्द्रियगोचर होता है। जिसका ऐसा नहीं होता, वह अभिव्यक्त नहीं होता—नहीं हो सकता। अतएव इनकी व्यञ्जनाका कौशल जान लेनेपर किसी भी स्थानसे किसी भी वस्तुका आविर्भाव किया जा सकता है। अभ्यासयोग और साधनाका यही रहस्य है। हम व्यवहार-जगत्‌में जिस पदार्थको जिस रूपमें पहचानते हैं, वह उसकी आपेक्षिक सत्ता है, यह केवल हम जिस रूपमें पहचानते हैं, वही है—यह बात किसीको नहीं समझनी चाहिये। लोहेका टुकड़ा केवल लोहा ही है सो बात नहीं है, उसमें सारी प्रकृति अव्यक्त-रूपमें निहित है, परंतु लौहभावकी प्रधानतासे अन्यान्य समस्त भाव उसमें विलीन होकर अदृश्य हो रहे हैं। किसी भी विलीन भावको (जैसे सोना) प्रबुद्ध करके उसकी मात्रा बढ़ा दी जाय तो पूर्वभाव स्वभावतः ही अव्यक्त हो जायगा और उस सुवर्णादिके प्रबुद्धभावके प्रबल हो जानेसे वह वस्तु फिर उसी नाम और रूपमें परिचित होगी। सर्वत्र ऐसा ही समझना चाहिये। वस्तुतः लोहा सोना नहीं हुआ, वह

और सुवर्णमात्र अव्यक्तताको हटाकर प्रकाशित हो गया। आपातदृष्टिसे यही समझमें आयेगा कि लोहा ही सोना हो गया है—परंतु वास्तवमें ऐसा नहीं है।* कहना नहीं होगा कि यही योगशास्त्रका 'जात्यन्तरपरिणाम' है। पतञ्जलिजी कहते हैं कि प्रकृतिके आपूरणसे 'जात्यन्तरपरिणाम' होता है—एकजातीय वस्तु अन्य जातीय वस्तुमें परिणत होती है ('जात्यन्तरपरिणाम प्रकृत्यापूरात्')। यह कैसे होता है, सो भी योग-शास्त्रमें बतलाया गया है।†

कुछ देरतक जिज्ञासुरूपसे मेरे पूछताछ करनेपर उन्होंने मुझसे कहा—'तुम्हें यह करके दिखाता हूँ।' इतना कहकर उन्होंने आसनपरसे एक गुलाबका फूल हाथमें लेकर मुझसे पूछा—'बोलो, इसको किस रूपमें बदल दिया जाय?' यहाँ जवाफूल नहीं था, इसीसे मैंने उसको जवाफूल बना देनेके लिये उनसे कहा। उन्होंने मेरी बात स्वीकार कर ली और बायें हाथमें गुलाबका फूल लेकर दाहिने हाथसे उस स्फटिकयन्त्रके द्वारा उसपर विकीर्ण सूर्यरश्मिको संहत करने लगे। मैंने

* योगियोंने 'मूलपृथक्त्व' कहकर अव्यक्तभावसे बीज-निष्कम्पमें भी पृथक्‌ताकी सत्ता स्वीकार की है। ऐसा न करनेसे सृष्टिवैचित्र्यका कोई मूल नहीं रह जाता। व्यासदेवने कहा है, 'जात्यनुच्छेदेन सर्वं सर्वात्मकम्।' इससे यह जाना जाता है कि जातिका उच्छेद प्रलयमें भी नहीं होता, प्रलय और अव्यक्तावस्थामें भी जातिभेद रहता है—परंतु वह अधिष्ठानके लोपक कारण अव्यक्त रहता है। सृष्टिके साथ ही-साथ उसकी स्फूर्ति होती है। प्रलयकी परमावस्थामें समस्त प्रकृतिपर ही आवरण पड़ जाता है, इसलिये उसमें विकारोन्मुख परिणाम नहीं रहता। साधारणतः जिसको सृष्टि कहा जाता है, वह आंशिक सृष्टि और आंशिक प्रलय होता है—आवरण जहाँ नहीं है, वहाँ निरन्तर विकार पैदा होता रहता है, जहाँ है, वहाँ कोई भी विकार नहीं होता। जहाँ कोई आवरण नहीं होता, वहाँ प्रकृति सर्वतोभावसे मुक्त होकर अखिल परिणामकी ओर उन्मुख हो जाती है। युगपत् अनन्त आकारोंका स्फुरण होता है, इसलिये किसी विशिष्ट आकारका भान नहीं होता, उसको निराकार स्फूर्ति कहते हैं, यही ब्रह्म है।

† पतञ्जलिका सिद्धान्त है—'निमित्तमप्रयोजकम्'—निमित्तकारण उपादानस्वरूपा प्रकृतिको प्रेरणा नहीं कर सकता। वह प्रकृतिनिष्ठ आवरणको दूर करता है। आवरण दूर होनेपर आच्छन्न प्रकृति उन्मुक्त होकर अपने आप ही अपने विकारोंके रूपमें परिणत होने लगती है। लोहेमें सुवर्ण-प्रकृति है, वह आवरणसे ढकी है—और लौह प्रकृति आवरणसे मुक्त है, इसासे लौहपरिणाम चल रहा है किंतु यदि सुवर्ण-प्रकृतिका यह आवरण किसी उपायसे (योग या आयविज्ञानसे) हटा दिया जाय तो लौह प्रकृति ढक जायगी और सुवर्ण प्रकृति परिणामकी धारामें विकार उत्पन्न करेगी। यह स्वाभाविक है, यह कौशल ही प्रकृति विद्या है। परंतु इसके द्वारा असत्‌को सत् नहीं किया जा सकता। केवल अव्यक्तको व्यक्त किया जा सकता है। वस्तुतः सत्कार्यवादमें सृष्टिमात्र ही अभिव्यक्त है। जो कभी नहीं था, वह कभी होता भी नहीं, (नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः)। इसीसे ऋषि कहते हैं कि निमित्त प्रकृतिको प्रेरित नहीं कर सकता—प्रवृत्ति नहीं दे सकता। प्रकृतिमें विकारोन्मुखताकी ओर स्वाभाविक प्रेरणा विद्यमान है। प्रतिबन्धक रहनेके कारण वह कार्य कर नहीं पाता। पूर्वोक्त कौशल या निमित्त (धर्माधर्म और इसी प्रकार निमित्त) इस प्रतिबन्धकको केवल हटा भर देता है।

क्रान्तदर्शी कविने कहा है—

शमप्रधानेषु तपोधनेषु गूढं हि दाहात्मकमस्ति तेजः। स्पर्शानुकूला अपि सूर्यकान्तास्ते ह्यन्यतेजोऽभिभवाद् वहन्ति॥

इससे जाना जाता है, जो शीतल (शमप्रधान) है उसमें भी 'दाहात्मक तेज' या ताप है, परंतु वह गूढ है। अर्थात् सभी जगह सभी वस्तुएँ हैं, परंतु जो गूढ है (छिपी है) वह देखनेमें नहीं आती। उसकी क्रिया भी नहीं होती। जो व्यक्त है, उसीकी क्रिया होती है, यही दृश्य है। 'गूढ' धर्मकी क्रिया न हो सकनेका कारण 'व्यक्त' धर्मकी प्रधानता है। यदि व्यक्त धर्म बाह्य तेज (अन्य तेज) के द्वारा अभिभूत कर दिया जाय तो विद्यमान धर्म जो अभीतक गुप्त था, वह अनभिभूत होनेके कारण प्रकट हो जाता है और क्रिया करने लगता है।

ा, उसमें क्रमश एक स्थूल परिवर्तन हो रहा है। ले एक लाल आभा प्रस्फुटित हुई—धीरे-धीरे तमाम गवका फूल विलीन होकर अव्यक्त हो गया और की जगह एक ताजा हल्का खिला हुआ झुमका ा प्रकट हो गया। कौतूहलवश इस जपापुष्पको मैं ने घर ले आया था।* स्वामीजीने कहा—'इसी ार समस्त जगत्में प्रकृतिका खेल हो रहा है, जो । खेलके तत्त्वको कुछ समझते हैं, वे ही ज्ञानी हैं। ज्ञानी इस खेलसे मोहित होकर आत्मविस्मृत हो जाता । योगके बिना इस ज्ञान या विज्ञानकी प्राप्ति नहीं ती। इसी प्रकार विज्ञानके बिना वास्तविक योगपदपर रोहण नहीं किया जा सकता।'

मैंने पूछा—'तब तो योगीके लिये सभी कुछ सम्भव ?' उन्होंने कहा—'निश्चय ही है, जो यथार्थ योगी , उनकी सामर्थ्यकी कोई इयत्ता नहीं है, क्या हो कता है और क्या नहीं, कोई निर्दिष्ट सीमारेखा नहीं । परमेश्वर ही तो आदर्श योगी हैं, उनके सिवा हाशक्तिका पूरा पता और किसीको प्राप्त नहीं है, न ाप्त हो ही सकता है। जो निर्मल होकर परमेश्वरकी ाक्तिके साथ जितना युक्त हो सकते हैं, उनमें उतनी ी ऐसी शक्तिकी स्फूर्ति होती है। यह युक्त होना क दिनमें नहीं होता, क्रमश होता है। इसीलिये शुद्धिके तारतम्यके अनुसार शक्तिका स्फुरण भी न्यूनाधिक होता है। शुद्धि या पवित्रता जब सम्यक्प्रकारसे सिद्ध हो जाती है, तब ईश्वर-सायुज्यकी प्राप्ति होती है। उस समय योगीकी शक्तिकी कोई सीमा नहीं रहती। उसके लिये असम्भव भी सम्भव हो जाता है। अघटनघटना-पटीयसी माया उसकी इच्छाके उत्पन्न होते ही उसे पूर्ण कर दिया करती है।'

मैंने पूछा—'इस फूलका परिवर्तन आपने योगबलसे किया या और किसी उपायसे ?' स्वामीजी बोले—'उपायमात्र ही तो योग है। दो वस्तुओंको एकत्र करनेको ही तो योग कहा जाता है। अवश्य ही यथार्थ योग इससे पृथक् है। अभी मैंने यह पुष्प सूर्यविज्ञानद्वारा बनाया है। योगबल या शुद्ध इच्छाशक्तिसे भी सृष्टि आदि सब कार्य हो सकते हैं, परंतु इच्छा-शक्तिका प्रयोग न करके विज्ञानकौशलसे भी सृष्ट्यादि कार्य किये जा सकते हैं।' मैंने पूछा—'सूर्यविज्ञान क्या है ?' उन्होंने कहा, 'सूर्य ही जगत्का प्रसविता है। जो पुरुष सूर्यकी रश्मि अथवा वर्णमालाको भलीभाँति पहचान गया है और वर्णोंको शोधित करके परस्पर मिश्रित करना सीख गया है, वह सहज ही सभी पदार्थोंका संघटन या विघटन कर सकता है। यह

* घर लानेका कारण यह था कि आँखोंद्वारा देखनेपर भी उस समय मैं यह धारणा नहीं कर पाता था कि ऐसा क्योंकर हो सकता है। मुझे अस्पष्टरूपसे ऐसा भान होता था कि इसमें कहीं मेरा दृष्टिभ्रम तो नहीं है, मैं कहीं सम्मोहनी विद्या (मेस्मेरिज्म)से वशीभूत होकर ही जवा-फूलकी कोई सत्ता न होनेपर भी जवाफूल तो नहीं देख रहा हूँ। लोग Optical illusion, hallucination hypnotism आदि शब्दोंके द्वारा इसी प्रकार ऐसी सृष्टिक्रियाको समझानेकी चेष्टा किया करते हैं। वे लोग अज्ञ हैं, क्योंकि सम्मोहनविद्याके प्रभावसे अथवा तज्जातीय अन्य कारणोंसे जिस सृष्टिका प्रकाश होता है, वह प्रातिभासिक होती है, स्थायी नहीं होती। वह लौकिक व्यवहारमें भी नहीं आ सकती। परंतु व्यावहारिक सृष्टि इससे अलग है। स्वप्न और जाग्रत्-अवस्थामें जैसे भेद है, वैसे ही प्रातिभासिक और व्यावहारिक सत्तामें भी पृथकता है। वेदान्तियोंकी जीवसृष्टि और ईश्वरसृष्टिका भेद भी इस प्रसङ्गमें आलोचनीय है। वस्तुत मैंने अज्ञानवश ही संदेह किया था। यह जपापुष्प जागतिक जपापुष्पोंकी तरह ही व्यावहारिक सत्तासम्पन्न पदार्थ था, द्रष्टाके दृष्टिभ्रमसे उत्पन्न आभासमात्र नहीं था। इस फूलको मैंने बहुत दिनोंतक अपने पास पेटीमें रक्खा और लोगोंको दिखाया था, बहुत दिन बीत जानेपर वह सूख गया।

देखता है कि सभी पदार्थोंका मूल बीज इस रश्मितत्त्वके विभिन्न प्रकारके संयोगसे ही उत्पन्न होता है। वर्णभेदसे और विभिन्न वर्णोंके संयोगसे भेद, विभिन्न पद उत्पन्न होते हैं, वैसे ही रश्मिभेद और विभिन्न रश्मियोंके मिश्रण-भेदसे जगत्के नाना पदार्थ उत्पन्न होते हैं। अवश्य ही यह स्थूल दृष्टिमें बीज-सृष्टिका एक रहस्य है। सूक्ष्म दृष्टिमें अव्यक्त गर्भमें बीज ही रहता है। बीज न होता तो इस प्रकार सम्स्थान-भेदजनय रश्मिविशेषके संयोग-वियोग-विशेषसे और इच्छाशक्ति या सत्यसङ्कल्पके प्रभावसे भी सृष्टि होनेकी सम्भावना नहीं रहती। इसीलिये योग और विज्ञानके एक होनेपर भी एक प्रकारसे दोनोंका किञ्चित् पृथक्रूपमें व्यवहार होता है। रश्मियोंको शुद्धरूपसे पहचानकर उनकी योजना करना ही सूर्यविज्ञानका प्रतिपाद्य विषय है। जो ऐसा कर सकते हैं, वे सभी स्थूल और सूक्ष्म कार्य करनेमें समर्थ होते हैं। सुख-दुःख, पाप-पुण्य, काम-क्रोध, लोभ, प्रीति, भक्ति आदि सभी चैतसिक वृत्तियाँ और संस्कार भी रश्मियोंके संयोगसे ही उत्पन्न होते हैं। स्थूल वस्तुके लिये तो कुछ कहना ही नहीं है। अतएव जो इस योजन और वियोजनकी प्रणालीको जानते हैं, वे सभी कुछ कर सकते हैं—निर्माण भी कर सकते हैं और संहार भी, परिवर्तनकी तो कोई बात ही नहीं। यही सूर्यविज्ञान है।'

मैंने पूछा—'आपको यह कहाँसे मिला? मैंने तो कहीं भी इस विज्ञानका नाम नहीं सुना।' उन्होंने हँसकर कहा, 'तुम लोग बच्चे हो, तुम लोगोंका ज्ञान ही कितना है? यह विज्ञान भारतकी ही वस्तु है—उच्च कोटिके ऋषिगण इसको जानते थे और उपयुक्त क्षेत्रमें इसका प्रयोग किया करते थे। अब भी इस विज्ञानके पारदर्शी आचार्य अवश्य ही वर्तमान हैं। वे हिमालय और तिब्बतमें गुप्तरूपसे रहते हैं। मैंने स्वयं तिब्बतके उपान्तभागमें ज्ञानगंज नामक बड़े भारी योगाश्रममें रहकर एक योगी और विज्ञानवित् महापुरुषसे ... कठोर साधना करके इस विद्याको तथा ऐसी ही और भी अनेक लुप्त विद्याओंको सीखा है। यह अत्यन्त ही जटिल और दुर्गम विषय है—इसका दायित्व भी अत्यन्त अधिक है। इसीलिये आचार्यगण सहसा किसीको यह विषय नहीं सिखाते।'

मैंने पूछा, 'क्या इस प्रकारकी और भी विद्याएँ हैं?' उन्होंने कहा, 'हैं नहीं तो क्या? चन्द्रविज्ञान, नक्षत्र-विज्ञान, वायुविज्ञान, क्षणविज्ञान, शब्दविज्ञान और मनोविज्ञान इत्यादि बहुत विद्याएँ हैं। केवल नाम सुनकर ही तुम क्या समझोगे? तुमलोगोंने शास्त्रोंमें जिन विद्याओंके नाममात्र सुने हैं, वे तथा उनके अतिरिक्त और भी न मालूम कितनी और हैं!'

इस प्रकार बातें होते-होते सन्ध्या हो चली। पास ही घड़ी रक्खी थी। महापुरुषने देखा, अब समय नहीं है, वे तुरंत नित्यक्रियाके लिये उठ खड़े हुए और क्रियागृहमें प्रविष्ट हो गये। हम सब लोग अपने-अपने स्थानोंको लौट आये।

इसके बाद मैं प्रायः प्रतिदिन ही उनके पास जाता और उनका सङ्ग करता। इस प्रकार क्रमशः अन्तरङ्गता बढ़ गयी। क्रमशः नाना प्रकारकी अलौकिक बातें मैं प्रत्यक्ष देखने लगा। कितनी देखीं, उनकी संख्या बतलाना कठिन है। दूरसे, नजदीकसे, स्थूलरूपसे, सूक्ष्मरूपसे भौतिक जगत्में, दिव्य जगत्में—यहाँतक कि आत्मिक जगत्में भी—मैं उनकी असंख्य प्रकारकी लोकोत्तर शक्तिके खेलको देख-देखकर स्तम्भित होने लगा। केवल मैंने निजमें स्वयं जो कुछ देखा और अनुभव किया है, उसीको लिखा जाय तो एक महाभारत बन सकता है। परंतु यहाँ उन सब बातोंको लिखनेकी आवश्यकता नहीं है और सारी बातें बिना विचार सर्वत्र प्रकट करने योग्य भी नहीं हैं। मैं यहाँ यथासम्भव निरपेक्ष

...रूपसे स्वामीजी महोदयके उपदिष्ट और प्रदर्शित ...(सूर्य-) विज्ञानके सम्बन्धमें दो-चार बातें लिखूँगा।

(ख) सूर्यविज्ञानका रहस्य

यद्यपि कालधर्मके कारण हम सौरविज्ञान या सावित्री संध्याको भूल गये हैं, तथापि यह सत्य है कि प्राचीन कालमें यही विद्या ब्राह्मण-धर्मकी और वैदिक साधनाकी भित्तिस्वरूप थी। सूर्यमण्डलतक ही संसार है, सूर्यमण्डलका भेद करनेपर ही मुक्ति मिल सकती है—यह बात ऋषिगण जानते थे। वस्तुतः सूर्यमण्डलतक ही वेद या शब्दब्रह्म है—उसके बाद सत्य या परब्रह्म है। शब्दब्रह्ममें निष्णात ही परब्रह्मको पा सकता है—

शब्दे ब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति।

—यह बात जो लोग कहा करते, वे जानते थे कि शब्दब्रह्मका अतिक्रमण किये बिना या सूर्यमण्डलको लाँघे बिना सत्यमें नहीं पहुँचा जाता। श्रीमद्भागवतमें लिखा है—

> य एष संसारतरुः पुराणः
> कर्मात्मकः पुष्पफले प्रसूते॥
> द्वे अस्य बीजे शतमूलस्त्रिनालः
> पञ्चस्कन्धः पञ्चरसप्रसूतिः।
> दशैकशाखो द्विसुपर्णनीड-
> स्त्रिवल्कलो द्विफलोऽर्कं प्रविष्टः॥
> (११। १२। २१-२२)

'यह कर्मात्मक संसारवृक्ष है—जिसके दो बीज, सौ मूल, तीन नाल, पाँच स्कन्ध, पाँच रस, ग्यारह शाखाएँ हैं, जिनमें दो पक्षियोंका निवासस्थान है, जिसके तीन वल्कल और दो फल हैं।* यह संसार-वृक्ष सूर्यमण्डलपर्यन्त व्याप्त है। श्रीधरस्वामी और विश्वनाथ दोनोंने कहा है—अर्कं प्रविष्टः सूर्यमण्डलपर्यन्तव्याप्तः। तद्भित्त्वा गतस्य संसाराभावात्।

प्रकृतिका रहस्य जाननेके लिये यह सूर्य ही साधन है। श्रुतिमें आया है कि सूर्यमें रहनेवाला पुरुष मैं हूँ—

> हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
> योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽहम्॥
> (मैत्री-उपनिषद् ६। ३५)

सूर्यसे ही चराचर जगत् उत्पन्न होता है, यह श्रुतिने स्पष्टरूपमें निर्देश किया है। इसी मैत्री-उपनिषद्में लिखा है कि प्रसवधर्मके कारण ही सूर्यका 'सविता' नाम सार्थक हुआ है (सवनात् सविता)।† बृहद्योगियाज्ञवल्क्यमें स्पष्ट तौरपर लिखा है—

> सविता सर्वभावानां सर्वभावांश्च सूयते॥
> सवनात् प्रेरणाच्चैव सविता तेन चोच्यते।
> (९। ५५-५६)

सूर्योपनिषद्में सूर्यके जगत्‌की उत्पत्ति उसके पालन और नाशका हेतु होनेका वर्णन आया है—

> सूर्याद् भवन्ति भूतानि सूर्येण पालितानि तु।
> सूर्ये लयं प्राप्नुवन्ति यः सूर्यः सोऽहमेव च॥

आचार्य शौनकने बृहद्देवतामें उच्चस्वरसे कहा है कि एकमात्र सूर्यसे ही भूत, भविष्य और वर्तमानके समस्त स्थावर और जङ्गम पदार्थ उत्पन्न होते हैं और उसीमें लीन हो जाते हैं।

यही प्रजापति तथा सत् और असत्‌के योनिस्वरूप हैं—यह अक्षर, अव्यय, शाश्वत ब्रह्म हैं। ये तीन

---

* बीज=पुण्य-पाप। मूल=वासना (शत=असंख्य)। नाल=गुण। स्कन्ध=भूत। रस=शब्दादि विषय। शाखा=इन्द्रिय। फल=सुख-दुःख। सुपर्ण या पक्षी=जीवात्मा और परमात्मा। नीड=वासस्थान। वल्कल-धातु अर्थात् वात, पित्त और श्लेष्मा।

† षूङ् प्राणिप्रसवे इत्यस्य धातोरेतद्रूपम्। सुनोति सूयते वा उत्पादयति चराचरं जगत् स सविता।
षू प्रसवैश्वर्ययोः—सर्ववस्तूनां प्रसवं उत्पत्तिस्थानं सर्वैश्वर्यस्य च।

मार्गोंमें विभक्त होकर तीन लोकोंमें वर्तमान हैं—समस्त देवता इनकी रश्मिमें निविष्ट हैं—

भवद् भूत भविष्यच्च जङ्गम स्थावर च यत्।
अस्यैके सूर्यमेवैक प्रभव प्रलय विदुः॥
असतश्च सतश्चैव योनिरेषा प्रजापति ।
तदक्षर चाव्यय च यच्चैतद् ब्रह्म शाश्वतम्॥
कृत्वैव हि त्रिधात्मानमेषु लोकेषु तिष्ठति।
देवान् यथायथ सर्वान् निवेश्य स्वेषु रश्मिषु॥

सूर्यसिद्धान्तनामक ज्योतिष-ग्रन्थमें लिखा है कि ये सब जगत्के आदि हैं, इस कारण ये आदित्य हैं। जगत्को प्रसव करते हैं, इस कारण सूर्य और सविता हैं—ये तमोमण्डलके उस पार परम ज्योति स्वरूप हैं—

आदित्यो ह्यादिभूतत्वात् प्रसूत्या सूर्य उच्यते।
पर ज्योतिस्तम पारे सूर्योऽय सवितेति च॥

यह जो परम ज्योतिकी बात कही गयी, वह शब्द ब्रह्ममय मन्त्रज्योति है—यही अखण्ड अविभक्त प्रणवात्मक वेदस्वरूप है—इसीसे विभक्त होकर ऋक्, यजु और सामरूप वेदत्रयका आविर्भाव होता है। सूर्यपुराणमें इसलिये स्पष्ट कहा गया है कि—

नत्वा सूर्य पर धाम ऋग्यजु सामरूपिणम्।

अर्थात् परधाम सूर्य ऋक्-यजु-साम रूप हैं, उन्हें नमस्कार है।

विद्यामाधवकारने भी इसीलिये सूर्यको 'त्रयीमय' और 'अमेयाम्बुनिधि'के नामसे निर्देश किया है और कहा है कि ये तीनों जगत्के 'प्रबोधहेतु' हैं। उन्होंने कहा है कि सूर्यके विना 'सर्वदर्शित्व' सम्भव नहीं, इसीसे मानो शंकरने उन्हें नेत्ररूपसे धारण किया है। सूर्यसे ही सब भूतोंके चैतन्यका उन्मेष और निमेष होता है, यह श्रुतिमें भी लिखा है—

योऽसौ तप उदेति स सर्वेषा भूताना प्राणानाद् योदेति। असौ योऽस्तमेति स सर्वेषा भूताना प्राणा नादायास्तमेति॥

विष्णुपुराणके याज्ञवल्क्यकृत सूर्यस्तोत्र (अश ३, अध्याय ५)में सूर्यको 'विमुक्तिका द्वार', सामभूत', 'त्रयीधामवान्', 'अग्नीषोमभूत', कारणात्मा' और 'परम सौषुम्नतेजोधारणकारी' क्यों वर्णन किया गया है, यह बात अब आवेगी। अग्नि और सोम मूलत सूर्यसे अभि यह श्रुतिसे भी माळूम होता है।

उद्यन्त वादित्यमग्निरनुसमारोहति
सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्व ।

श्रुतिमें आया है कि सूर्य पूर्वाह्णमें ऋग्द्वारा, यजु द्वारा और अस्तकालमें सामद्वारा युक्त होते हैं-

ऋग्भि पूर्वाह्णे दिवि देव ईयते
यजुर्वेदे तिष्ठति मध्य अह्न।
सामवेदेनास्तमये महीयते
वेदैरसू यस्त्रिभिरेति सूर्यः॥

सूर्यसिद्धान्तकार कहते हैं कि ऋक् ही मण्डल और यजु तथा साम उनकी मूर्ति कालात्मक, कालकृत, त्रयीमय भगवान् हैं।

ऋचोऽस्य मण्डल सामान्यस्य मूर्तिर्यजूषि च।
त्रयीमयोऽय भगवान् कालात्मा कालकृद् विभुः॥

वस्तुत प्रणव या ॐकार या उद्गीथ ही सूर्य हैं ये नादब्रह्म हैं, ये निरन्तर रव करते हैं, इस कारण 'रवि' नामसे विख्यात हैं। छान्दोग्य-उपनिषद् (१। ४। १–५) में है कि त्रयीविद्या या छन्दोरूप तीन वेदोंने इस उद्गीथको आवृत कर रक्खा है। इसके बाहर मृत्युराज्य है। देवताओंने मृत्यु-भयसे डरकर सबसे पहले वेदकी शरण ग्रहण की और छन्दों द्वारा अपनेको आच्छादित किया—अपना गोपन या रक्षा (गुप्=रक्षा) की, तथापि मृत्युने उन लोगोंको देख लिया था—जिस तरह जलके अदर मछली दिख पड़ती है, उसी तरह। जलके दृष्टान्तसे माळूम होता है कि वेदत्रय जलवत् स्वच्छ आवरण है। मधुविद्यामें वेदको 'आप' या जल कहा गया है। एक दि

ही पुराणवर्णित पञ्चगव्यादि है * । देवताओंने उस समय वेदसे निकलकर नादका आश्रय ग्रहण किया । इसीसे वेद-अन्तमें नादका आश्रय लिया जाता है । यही अमर अभय पद है । उसके बाद (छा० १।५।१–५ में ही) स्पष्ट कहा गया है कि उद्गीथ या प्रणव ही सूर्य हैं— ये सर्वदा नाद करते हैं । इस प्रणव-सूर्यकी दो अवस्थाएँ हैं । एक अवस्थामें इनकी रश्मिमाला चारों ओर विकीर्ण हुई है † । दूसरी अवस्थामें समस्त रश्मियाँ संहृत होकर मध्यबिन्दुमें विलीन हुई हैं । यह द्वितीय अवस्था ही प्रणवकी कैवल्य या शुद्धावस्था है । ऋषि कौषीतक प्राचीन कालमें इसके उपासक थे । प्रथम अवस्था प्रणव-सूर्यकी सृष्टिमुख अवस्था है । उन्होंने अपने पुत्रसे प्रथम उपासनाकी बात कही । उद्गीथ या प्रणव ही अधिदैवरूपमें सूर्य हैं, यह कहकर अध्यात्मदृष्टिसे यही प्राण है, यह समझाया गया है ।

प्रश्नोपनिषद् (५ । १—७) में लिखा है कि ॐकारका अभिध्यान प्रयाणकालतक करनेसे अभिध्यानके भेदके कारण भिन्न भिन्न लोक अधिकृत (लोकजय) होते हैं । यह ॐकार ही 'पर' और 'अपर' ब्रह्म है । एक मात्राके अभिध्यानके फलस्वरूप जीव उसके द्वारा संवेदित होकर शीघ्र ही जगतीको यानी पृथिवीको प्राप्त होता है । उस समय ऋक् उसको मनुष्यलोकमें पहुँचा देते हैं । वहाँ वह तपस्या, ब्रह्मचर्य और श्रद्धाद्वारा सम्पन्न होकर महिमाका अनुभव करता है । द्विमात्राके अभिध्यानके फलसे मन सम्पत्ति उत्पन्न होती है—उस समय यजु उसको अन्तरिक्षमें ले जाते हैं । वह सोमलोकमें जाता है और विभूति का अनुभव कर पुनरावर्तन करता है । त्रिमात्राके —अर्थात् ॐअक्षरके—द्वारा परम पुरुषके अभिध्यानके प्रभावसे तेज या सूर्यमें सम्पत्ति उत्पन्न होती है— उस समय साधक सूर्यके साथ तादात्म्य प्राप्त करता है । जिस तरह साँपकी बाह्य त्वचा या केंचुल खिसक पड़ती है—सूर्यमण्डलस्थ आत्मा भी उसी तरह समस्त पापों या मलसे विमुक्त हो जाता है । ‡ वहाँसे साम उसे ब्रह्मलोकमें ले जाते हैं । साधक सूर्यसे—'जीवघन'से

* वेदसे ही सृष्टि होती है, यह इस प्रसङ्गमें स्मरण रखना चाहिये । वेद ही शब्द-ब्रह्म हैं ।

† ये रश्मियाँ ठीक रास्तोंके समान हैं । जिस तरह रास्ता एक गाँवसे दूसरे गाँवतक फैला रहता है, उसी तरह सब रश्मियाँ भी इह लोकसे परलोक पर्यन्त फैली हुई हैं । इनकी एक सीमापर सूर्यमण्डल है और दूसरी सीमापर नाडीचक्र । सुषुप्तिकालमें जीव इस नाड़ीके भीतर प्रवेश करता है—उस समय स्वप्न नहीं रहता, शान्ति उत्पन्न होती है । यह तेज स्थान है । देहत्यागके बाद जीव इन सब रश्मियोंका अवलम्बन लेकर, ॐकारभावनाकी सहायतासे ऊपर उठता है । सङ्कल्पमात्रसे ही मनमें वेग होता है और उसी वेगसे सूर्यपर्यन्त उत्थान होता है । सूर्य ब्रह्माण्डके द्वारस्वरूप हैं—ज्ञानी इस द्वारको भेदकर सत्यमें और अमर धाममें पहुँच सकते हैं, अज्ञानी नहीं पहुँच सकते । हृदयसे चारों ओर असंख्य नाड़ियाँ या पथ फैले हुए हैं—केवल एक सूक्ष्म पथ ऊपर मूर्द्धाकी ओर गया हुआ है । इसी सूक्ष्म पथसे चल सकनेपर सूर्यद्वार अतिक्रम किया जाता है । अन्यान्य पथोंसे चलनेपर भुवनकोशमें ही आवद्ध रहना पड़ता है । यद्यपि भुवनकोशका केन्द्र सूर्य होनेके कारण समस्त भुवन एक प्रकारसे सौरलोकके ही अन्तर्गत हैं, तथापि केन्द्रमें प्रविष्ट न हो सकनेके कारण सौरमण्डलके बाहर जाना असम्भव हो जाता है ।

‡ श्रीवैष्णव भी इसे स्वीकार करते हैं । सूर्यमण्डलमें प्रवेश किये बिना जीवका लिङ्ग शरीर नहीं नष्ट होता । लिङ्ग शरीरके मुक्त हुए बिना जीवकी मुक्ति कहाँ ! जीव रविमण्डलमें आनेपर ही पवित्र होता है और उसके सब क्लेश दग्ध हो जाते हैं । ऐसा महाभारतमें भी कहा है । पिथागोरसके मतसे भी शुद्धिमण्डल सूर्यमें स्थित है—सूर्य जगत्के मध्यमें अवस्थित है । जीवमात्र ही यहाँ आनेपर अपने आत्मभावको प्राप्त करते और पवित्र होते हैं । अरस्तुका भी कहना है कि पिथागोरसके मतसे शुद्धिमण्डल या Sphere of fire सूर्यस्थ है ।

—परात्पर पुरमें सोये हुए पुरुषका दर्शन कराता है। तीनों मात्राएँ पृथक्-पृथक् विनश्वर और मृत्युमती हैं, परंतु एकीभूत होनेपर ये ही अजर और अमर भावको प्राप्त करानेवाली हैं।

इससे मालूम होता है कि वेदत्रय पृथक् रूपमें लोकत्रयको प्राप्त करानेवाले हैं—ऋक् भूलोकको, यजु अन्तरिक्षलोकको और साम स्वर्गलोकको प्राप्त करानेवाला है। ये तीनों लोक पुनरावर्तनशील हैं। ये ही प्रणवकी तीन मात्राएँ हैं। वेदत्रयको घनीभूत करनेपर ही ॐकाररूप ऐक्यका स्मरण होता है। उसके द्वारा पुरुषोत्तमका अभिध्यान होता है। वेदत्रय जब सूर्य हैं एवं प्रणव जब वेदका ही घनीभूत प्रकाश है, तब सूर्य प्रणवका ही वाह्य विकास है, इसमें कोई संदेह नहीं।

हमारे ऋषियोंका कहना है कि शुद्ध आत्मतेज अंशतः सूर्यमण्डल भेदकर जगत्में उतर आता है। शुद्ध भूमिसे जगत्में अवतीर्ण होनेके लिये और जगत्से शुद्ध धाममें जानेके लिये सूर्य ही द्वारस्वरूप हैं। पियागोरसने कहा है कि सूर्य एक तेजोधारकमात्र है—इसीमेंसे होकर आत्मज्योति जगत्में उतरती है। प्लेटोका कहना है कि ज्योति Kabalis और अन्यान्य तत्त्वदर्शियोंके मतसे परम पदार्थका प्रथम विकास है।* अपनी रश्मिसे ईश्वरने जो तेज प्रज्वलित किया है, वही सूर्य है। सूर्य प्रकाश या तापकी प्रभा नहीं है, बल्कि Focus है, यह एक Lens मात्र है, जिसके प्रभावसे आदिम ज्योतिका रश्मिसमूह स्थूल Material बन जाता है, हमारे सौरजगत्में एकत्र होता है और नाना प्रकारकी शक्ति उत्पन्न करता है।

सूर्यरश्मियाँ अनन्त हैं—जातिमें और संख्यामें अनन्त हैं। परंतु मूल प्रभा एक ही है—यह शुक्लवर्ण है। यही मूल शुक्लवर्ण लाल, नील इत्यादिके मिलनेके कारण और भी विभिन्न उपवर्णोंके प्रकाशित होता है। शुक्लसे सर्वप्रथम लाल, प्रभृति प्रथम स्तरका आविर्भाव होता है। शुक्लसे जो वर्णातीत तत्त्व है, उसके साथ शुक्लका संघर्ष होनेसे इस प्रथम भूमिका विकास होता है। यह अन्तः संघर्षका फल है। यह वर्णातीत तत्त्व ही चिद्रूपा शक्ति है। इस प्रथम स्तरसे परस्पर संयोग या बहिःसंघर्ष होनेके कारण द्वितीय स्तरका आविर्भाव होता है। आपेक्षिक दृष्टिसे पहली शुद्ध सृष्टि है और दूसरी मलिन सृष्टि है।

दूसरे प्रकारसे भी यही बात मालूम होती है। ब्रह्म एक और अखण्ड है। यह अविभक्त रहता हुआ भी पुरुष और प्रकृतिरूपमें द्विधा विभक्त होता है—यही आत्मविभाग या अन्तःसंघर्षसे उत्पन्न स्वाभाविक सृष्टि है। निम्नवर्ती सृष्टि पुरुष और प्रकृतिके परस्पर सम्पर्क या बहिःसंघर्षसे आविर्भूत हुई है—यही मलिन मैथुनी सृष्टि है।

सूर्यविज्ञानका मूल सिद्धान्त समझनेके लिये इस अवर्ण, शुक्लवर्ण, मौलिक विचित्र वर्ण और यौगिक विचित्र उपवर्ण—सबको समझना आवश्यक है—विशेषतः अन्तके तीनोंको।

ऊपर जो शुक्लवर्णकी बात कही गयी है, वही विशुद्ध सत्त्व है—इस सादे प्रकाशके ऊपर जो अनन्त वैचित्र्यमय रंगका खेल निरन्तर हो रहा है, वही विश्वलीला है, वही संसार है। जैसा बाहर है वैसा ही भीतर भी एक ही व्यापार है। पहले गुरूपदिष्ट क्रमसे इस सादे प्रकाशके स्फुरणको प्राप्त करके, उसके ऊपर यौगिक विचित्र उपवर्णोंके विश्लेषणसे प्राप्त मौलिक विचित्र वर्णोंको एक-एक करके अलग-अलग पहचानना होता है।

* इसका नाम Sephiro या Divine Intelligence है।

है। मूल वर्णको जाननेके लिये सादेकी सहायता अत्यावश्यक है, क्योंकि जिस प्रकाशमें रंग पहचानना है, वह प्रकाश यदि स्वयं रंगीन हो तो उसके द्वारा ठीक-ठीक वर्णका परिचय पाना सम्भव नहीं।

रंगीन चश्मेके द्वारा जो कुछ दिखायी देता है, वह दृश्यका रूप नहीं होता, यह कहनेकी कोई आवश्यकता नहीं। योगशास्त्रमें जिस तरह चित्तशुद्धि हुए बिना तत्त्वदर्शन नहीं होता, उसी तरह सूर्यविज्ञानमें भी वर्णशुद्धि हुए बिना वर्णभेदका तत्त्व हृदयङ्गम नहीं हो सकता। हम जगत्में जो कुछ देखते हैं, सब मिश्रण है—उसका विश्लेषण करनेपर सघटक शुद्ध वर्णका साक्षात्कार होता है। उन सब वर्णोंको अलग-अलग सादे वर्णके ऊपर उठाकर पहचानना होता है। सृष्टिके अन्दर शुक्लवर्ण कहीं भी नहीं है। जो है वह आपेक्षिक है। पहले विशुद्ध शुक्लवर्णको कौशलसे प्रस्फुटित कर लेना होगा। यह प्रस्फुटित करना और कुछ नहीं है, पहले ही कहा है कि समस्त जगत् सादेके ऊपर खेल रहा है, रंगोंके इस खेलको स्थानविशेषमें अवरुद्ध कर देनेसे ही वहाँपर तुरत शुक्ल तेजका विकास हो जाता है। इस शुक्लको कुछ कालतक स्तम्भित करके उससे पूर्वोक्त विचित्र वर्णोंका स्वरूप पहचान लेना होता है। इस प्रकार वर्णपरिचय हो जानेपर सब वर्णोंके संयोजन और वियोजनको अपने अधीन करना होता है। कुछ वर्णोंके निर्दिष्ट क्रमसे मिलनेपर निर्दिष्ट वस्तुकी सृष्टि होती है, क्रमभङ्ग करनेसे नहीं होती। किस वस्तुमें कौन-कौन वर्ण किस क्रमसे रहते हैं, यह सीखना होता है। उन सब वर्णोंको ठीक उसी क्रमसे सजानेपर ठीक उस वस्तुकी उत्पत्ति होगी—अन्यथा नहीं। जगत्के यावत् पदार्थ ही जब मूलतः वर्णसङ्घर्षजन्य हैं, तब जो पुरुष वर्णपरिचय तथा वर्णसंयोजन और वियोजनकी प्रणाली जानते हैं, उनके लिये उन पदार्थोंकी सृष्टि और संहार करना सम्भव न होनेका कोई कारण नहीं।

साधारणतः लोग जिसे वर्ण कहते हैं, वह सूर्यविज्ञानविद्की दृष्टिमें ठीक वर्ण नहीं—वर्णकी छटामात्र है। शुद्ध तत्त्वका आश्रय लिये बिना वास्तविक वर्णका पता पानेका कोई उपाय नहीं। काकतालीय न्यायसे भी पाना कठिन है—क्योंकि एक ही वर्णसे सृष्टि नहीं होती, एकाधिक वर्णके संयोगसे होती है। इसीसे एकाधिक शुद्ध वर्णोंके संयोगकी आशा काकतालीय न्यायसे भी नहीं की जा सकती। भारतवर्षमें प्राचीन कालमें वैदिक लोगोंकी तरह तान्त्रिक लोग भी इस विज्ञानका तत्त्व अच्छी तरह जानते थे। इसे जानकर ही तो वे 'मन्त्रज्ञ', 'मन्त्रेश्वर' और 'मन्त्रमहेश्वर'के पदपर आरोहण करनेमें समर्थ होते थे। क्योंकि षडध्वशुद्धिका रहस्य जो जानते हैं, वे समझ सकते हैं कि वर्ण और कला नित्यसंयुक्त हैं। वर्णसे मन्त्र एवं मन्त्रसे पदका विकास जिस तरह वाचक भूमिपर होता है, उसी तरह वाच्य भूमिपर कलासे तत्त्व और तत्त्वसे भुवन तथा कार्यपदार्थकी उत्पत्ति होती है। वाक् और अर्थके नित्यसंयुक्त होनेके कारण जिन्होंने वर्णको अधिकृत किया है, उन्होंने कलाको भी अधिकृत कर लिया है। अतएव स्थूल, सूक्ष्म और कारण जगत्में उनकी गति अबाधित होती है।*

---

* देवाधीनं जगत् सर्वं मन्त्राधीनाश्च देवता। ते मन्त्रा ब्राह्मणाधीनास्तस्माद् ब्राह्मणदैवतम्॥

समस्त जगत् देवताओंद्वारा संचालित है। जो कुछ जहाँ होता है, उसके मूलमें देवशक्ति है। देवता मन्त्रका ही अभिव्यक्त रूप है। वाचक मन्त्र ही साधकके प्रयत्नविशेषसे अभिव्यक्त होकर देवतारूपमें आविर्भूत होता है। जिस तरह बिना बीजके वृक्ष नहीं, उसी तरह मन्त्रके बिना देवता नहीं। जो वर्णतत्त्ववित् पुरुष वर्णसंयोजनके गठन कर सकते हैं, सुतरां जो मन्त्रेश्वर हैं, वे देवताके भी नियामक हैं, इसमें कोई संदेह नहीं। इस प्रकार मन्त्रज्ञ, मन्त्रेश्वर ब्राह्मणके अधीन हो जायगा, इसमें संशय करनेका कोई कारण नहीं।

ऊपर शुक्र वर्ण या शुद्ध सत्त्वकी जो बात कही गयी है, वही आगमशास्त्रका बिन्दु-तत्त्व है। यह चन्द्रबिन्दु है। यही कुण्डलिनी और चिदाकाश है—यही शब्दमातृका है। इसके विक्षोभसे ही नाद और वर्ण उत्पन्न होते हैं। अकारादि वर्णमाला इस शुद्ध सत्त्वरूप चन्द्रबिन्दुसे ही शुक्र वर्णसे क्षरित होती है।* जो इन सब वर्णोंके उद्भव और विस्तार-क्रम नहीं जानते, जो सब वर्णोंके अन्योन्य सम्बन्धको नहीं समझते, जो सम्बन्ध स्थापित करने और तोड़नेमें समर्थ नहीं हैं, वे किस प्रकारसे मन्त्रोद्धार कर सकते हैं?

सूर्य-विज्ञानके मतसे, सृष्टिका आरम्भ किस प्रकार होता है, यह हमने बतला दिया। वैज्ञानिक सृष्टि मूल सृष्टि नहीं है, यह स्मरण रखना चाहिये। इसके बाद सृष्टिका विस्तार किस प्रकार होता है, यह बतलाना है।

परंतु विषयको और भी स्पष्टरूपमें समझनेकी चेष्टा करें। दृष्टान्तरूपसे ले लें कि हमें कर्पूरकी सृष्टि करनी है। मान लीजिये कि सौरविद्याके अनुसार क, म, त, र—इन चार रश्मियोंका इस प्रकार क्रमबद्ध संयोग होनेसे कपूर उत्पन्न होता है। अब उद्बुद्ध श्वेत वर्णके ऊपर क्रमशः क, म, त और र—इन चार रश्मियोंको डालनेसे कपूरकी गन्ध मिलेगी। परंतु एक ही साथ चारों रश्मियाँ नहीं डाली जा सकतीं—डालनेसे भी कोई लाभ नहीं। सृष्टि कालमें ही सम्पन्न होती है। क्रम कालका धर्म है। सुतरां क्रमलङ्घन असम्भव है। इसलिये सत्त्वशोधन करके उसके ऊपर पहले 'क' वर्ण डालनेसे ही स्वच्छ सत्त्व 'क'के आकारमें आकारित और वर्णमें रञ्जित हो जायगा। शुद्ध [illegible] ही वास्तविक आकर्षण-शक्तिका मूल है। इसमें 'क' को आकर्षित करके रखता है और स्वयं भी [illegible] भावमें भावित हो जाता है। इसके बाद 'म' [illegible] वह भी उसमें मिलकर उसके अन्तर्गत आ जाता [illegible] इसी प्रकार 'त' और 'र'के विषयमें भी समझना चाहिये। 'र' अन्तिम वर्ण है—इसीसे इसके डालते ही कर्पूर अभिव्यक्त हो जाता है। अव्यक्त कर्पूर-सत्ताकी अभिव्यक्तिका यही आदि क्षण है। यदि क, म, [illegible] और र—इन रश्मियोंके उस संघातको अक्षुण्ण रखा जाय तो यह अभिव्यक्ति अक्षुण्ण रहेगी, अव्यक्त अवस्था नहीं आवेगी। परंतु दीर्घ कालतक उसे रखना कठिन है। इसके लिये विशिष्ट चेष्टा चाहिये, क्योंकि जगत् गमनशील है। यहाँपर एक गम्भीर रहस्य [illegible] बात है। अव्यक्त कर्पूर ज्यों ही व्यक्त हुआ त्यों [illegible] उसको पुष्ट करनेके लिये—धारण करनेके लिये यन्त्र चाहिये। इसीका दूसरा नाम योनि है। यह व्यक्त सत्ता लिङ्गमात्र है। योनिरूपा शक्ति प्रकृतिमें अन्तर्निहित लाञ्छना है। उसका आविर्भाव भी शिक्षा-सापेक्ष है। यद्यपि सारे वर्णोंकी तरह यह लाञ्छना भी विश्वव्यापी है तथापि इसकी भी अभिव्यक्ति है। अन्तिम वर्णके संघर्षसे जिस समय कर्पूर सत्ता केवल लिङ्गरूपमें अपनी अव्यक्त सत्तासे आविर्भूत होती है, उस समय यह लाञ्छना ही अभिव्यक्त होकर उसको धारण करती है और उसको स्थूल कर्पूररूपमें प्रसव करती है। विश्वसृष्टिमें यवनिकाकी आड़में यह गर्भाधान और प्रसव-क्रिया निरन्तर चल रही है। सूर्यविज्ञानवेत्ता प्रकृतिके

* अ, आ प्रभृति वास्तवमें अक्षर नहीं—क्योंकि ये सब वर्ण या रश्मियाँ सहस्रारस्थ शादे चन्द्रबिम्बसे निकलते क्षरित होती हैं। मूलाधारकी प्रसुप्त अग्नि क्रिया-कौशलसे उद्बुद्ध होकर ऊपरकी ओर प्रवाहित होती है और अन्तमें चन्द्रबिन्दुको स्पर्शकर गला देती है। इसीसे रश्मियाँ विकीर्ण होती हैं। परंतु मूलके साथ योगसूत्र अक्षुण्ण रहता है, इसीसे उनको अक्षर कहते हैं। सब वर्णोंके मूलमें जो 'अ'कार रहता है, वही उस मूल वर्णका प्रतीक है।

'अकारः सर्ववर्णाग्र्यः प्रकाशः परमः शिवः।'

इस कार्यको देखकर उसपर अधिकार करनेकी चेष्टा करता है। संयोगकी तीव्रताके अनुसार सृष्टिविस्तारका तारतम्य होता है। कर्पूरका सत्तारूपसे आविर्भाव (विलक्षण, अभिनव) सृष्टि है, उसका परिमाण या मात्राकी वृद्धि (पूर्वसृष्ट पदार्थकी मात्राविषयक) सृष्टि है। मात्रावृद्धि अपेक्षाकृत सहज कार्य है। जो एक बूँद कर्पूर निर्माण कर सकते हैं, वे सहज ही उसे क्षणभरमें लाख मनमें परिणत कर सकते हैं, क्योंकि प्रकृतिका भाण्डार अनन्त और अपार है—उसके साथ संयोजन करके दोहन कर सकनेपर चाहे जिस वस्तुको चाहे जिस परिमाणमें आकर्षित किया जा सकता है*। परंतु वस्तुकी विशिष्ट सत्ताका आविर्भाव कठिन कार्य है। यही स्थूल जगत्की बीज सृष्टि है।

परंतु यह बीजसृष्टि भी प्रकृत बीजकी सृष्टि नहीं है, मूल बीजकी सृष्टि नहीं है। ऊपर जो अव्यक्त कर्पूर-सत्ताकी बात कही गयी है, वही मूल बीज है। और जो लिङ्गरूपसे बीजकी बात कही गयी, वही गौण या स्थूल बीज है। स्थूल बीज विभिन्न रश्मियोंके क्रमानुकूल संयोगविशेषसे अभिव्यक्त होता है। परंतु मूल बीज अलिङ्ग अव्यक्त, प्रकृतिका आत्मभूत और नित्य है। इस प्रकारके अनन्त बीज हैं। प्रत्येक बीजमें एक आवरण है—उससे वह निकारो मुक्त नहीं हो सकता, मूल बीज स्थूल बीजके रूपमें परिणत नहीं हो सकता। सूर्यविज्ञान रश्मिविन्यासके द्वारा उस मूल बीजको व्यक्त करके सृष्टिका आरम्भ दिखा देता है।

परंतु उस बीजको व्यक्त करनेके और भी कौशल हैं। वायुविज्ञान, शब्दविज्ञान इत्यादि विज्ञान-बलसे चेष्टापूर्वक रश्मिविन्यास किये बिना भी अन्य उपायोंसे यह अभिव्यक्तिका कार्य संघटित किया जाता है। पूज्यपाद परमहंसदेवने, उन सब विज्ञानोंके द्वारा भी सृष्टि प्रभृति प्रक्रिया किस प्रकार साधित हो सकती है, यह योग्य अधिकारियोंको प्रत्यक्ष दिखा दिया है। इन पंक्तियोंके लेखकने भी सौभाग्यवश उसे कई बार देखा है, परंतु उन सब गुह्य विषयोंकी अधिक आलोचना करना अनुचित समझकर यहींपर हम छोड़ रहे हैं। जो ऋषि-मुनियोंके हृदयकी वस्तु है, उसे सर्वसाधारणके सामने रखना अच्छा नहीं। (संकेत मात्र पर्याप्त है।)

सृष्टिकी आलोचना करते हुए साधारणत तीन प्रकारकी सृष्टिकी बात कही जाती है। उनमें पहली परा सृष्टि, दूसरी ऐश्वरिक सृष्टि और तीसरी ब्राह्मी सृष्टि या वैज्ञानिक सृष्टि है। सूर्यविज्ञानके बलसे जिस सृष्टि की बात कही गयी है, उसे तीसरे प्रकारकी सृष्टि समझनी चाहिये।

---

* शून्यको किसी भी बड़ी-से-बड़ी संख्याके द्वारा गुणा करनेपर भी एक बिन्दुमात्र सत्ताका उद्भव नहीं होता। परंतु अति क्षुद्र सत्ताको भी संख्याद्वारा गुणा करनेपर मात्रा-वृद्धि होती है। किसीके भी हृदयमें सरसों बराबर भी पवित्रता होनेपर कृपाबलसे महापुरुषगण उसका उद्धार कर सकते हैं क्योंकि कुछ रहनेपर उसे बढ़ाया जा सकता है। परंतु जहाँपर कुछ नहीं है—अर्थात् अभिव्यक्तरूपमें नहीं है—वहाँ बाहरकी सहायता बेकार है। उस समय साधकको अपनी चेष्टा के द्वारा उसे भीतरसे जाग्रत् करना पड़ता है। यही पौरुषका क्षेत्र है। फिर बिन्दुमात्र भी उद्‌बुद्ध होते ही बाह्य शक्ति कृपारूपसे उसको बढ़ा देती है। इस पौरुषके बिना केवल कृपाद्वारा कोई फल नहीं होता। श्रीकृष्णने द्रौपदीके पात्रसे बिन्दुबराबर अन्न लेकर उसके द्वारा हजारों ऋषियोंको तृप्त कर दिया था। देश और विदेशमें महापुरुषोंके ऐसे अनेक दृष्टान्त मिल जायँगे।

सूर्य-(भगवद्) दर्शन

सर्वव्यापक विष्णु (सूर्य भगवान्) का परम पद द्युलोकमें सूर्यसदृश विस्तृत है। सूरिलोग सूर्यके समान ही उन्हें सदा देखते हैं—

तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्। (ऋक्० १।२२।२०)

यहाँ भी सर्वव्यापक ब्रह्म तथा सूर्यमें समानता दर्शायी गयी है।

सूर्य जड, चेतन, विद्वान्, मूर्ख तथा पुण्यात्मा और पापी—सबको समानरूपसे प्रकाश एवं प्रेरणा देते हैं—

साधारणः सूर्यो मानुषाणाम्। (ऋक्० ७।६३।१)
प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ् उदेषि मानुषान्। प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे। (ऋक्० १।५०।५)

वे सब प्रकारके अन्न तथा वनस्पतियो पकाते हैं—

स ओषधीः पचति विश्वरूपाः।
(ऋक्० १०।८८।१०)

जीवनी शक्ति प्रदान करते हैं—

अपसत क्षयं जीवातुं च प्रचेतसः।
(ऋक्० ८।४७।४)

आ दाशुषे सुवति भूरि वामम्। (ऋक्० ६।७१।४)

फिर भी संसारका प्रत्येक प्राणी और पदार्थ अपनी सामर्थ्यके अनुसार ही शक्ति ग्रहण करता है। सूर्यकी प्रेरणामें मनुष्य जिस मात्रामें कर्म करते हैं, उसी मात्रामें पदार्थ अथवा अर्थ-लाभ करते हैं।—

नूनं जनाः सूर्येण प्रसूता अयन्नर्थानि कृणवन्नपांसि।
(ऋक्० ७।६३।४)

सूर्यद्वारा भगवत्प्राप्ति

सविताके गर्भमें सूर्य नाना सुखोंके धर्म हैं, जड-जंगम दोनोंके नियन्त्रक हैं। इसलिये हमें भी शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक रोग, दोष तथा पापके नाशके लिये तीनों प्रकारकी रक्षा करनेयोग्यके सुख एवं [illegible] प्रदान करें—

बृहत्सुम्नः प्रसवीता निवेशनो जगतः स्थातुरुभयस्य यो [illegible]
स नो देवः सविता शर्म [illegible] यच्छत्वस्मे क्षयाय त्रिवरूथमंहसः।
(ऋक्० ४।५३।[illegible])

वे सविता देव नाना प्रकारके अमृत-तत्त्व प्र[illegible] करते हैं—

स घा नो देवः सविता साविषदमृतानि भूरि।
(अथर्व० ६।१।[illegible])

हम उन सविता देवके पापों और दुःखोंको न[illegible] करनेवाले वरणीय तेजका ध्यान करते हैं और फिर उ[illegible] धारण करनेका प्रयत्न करते हैं। वह सर्वप्रेरक [illegible] मनोबल, बुद्धि और कर्मोंको सन्मार्गपर प्रेरित करें—

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो [illegible] प्रचोदयात्। (ऋक्० ३।६२।१०)

जिससे हम उन देवोंके देव, परमज्योतिर्मय[illegible] प्राप्त कर सकें—

उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्।
(यजु० २०।२[illegible])

यहाँ सूर्य और भगवान्में भेद ही नहीं दीख[illegible] भगवद्दर्शन या प्राप्ति सूर्यद्वारा ही सम्भव मानी गयी है।

आदित्यवर्ण पुरुष

ब्रह्मके बिना ब्रह्माण्डकी कल्पना (सृष्टि) स[illegible] नहीं। इसी प्रकार सूर्यके बिना इस सौर [illegible] कल्पना (सृष्टि) सम्भव नहीं है। यद्यपि [illegible] सृष्टि भगवान्द्वारा हुई है, फिर भी उन सूर्यमें भगवान्की शक्ति कार्य कर रही है। शक्ति और [illegible] मान्में अभेद मानकर स्वयं वेदने आदित्यस्थित और ब्रह्माण्डस्थित पुरुषमें अभेद दर्शाया है—

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
योऽसावादित्यपुरुषः सोऽसावहम्, ओम् खं ब्रह्म॥
(यजु० ४० । १७)

भगवान्‌के बाद सौर-जगत्‌के सृष्ट पदार्थोंमें सूर्य ही सबसे महिमामय तत्त्व हैं। इसलिये भगवान्‌की झलक दिखानेके लिये वेदमें भगवान्‌को आदित्यवर्ण कहा है। जैसे सूर्य सर्वरोगमोचक हैं, वैसे ही भगवान् मृत्युसे मोक्ता हैं—

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥
(यजु० ३१ । १९)

जैसे सूर्य जगत्‌के अन्धकारके आवरणको झटककर हटा देते हैं, वैसे ही भगवान् भक्तके अज्ञानावरणको झटक देते हैं—

आर्द्रा केचित्पद्यमानास आप्य वसुरुचो दिव्या अभ्यनूषत। वारं न देवः सविता व्यूर्णुते॥
(ऋक्० ९ । ११० । ६)

इस प्रकार वेदोंमें आदित्यपुरुष और ब्रह्मपुरुषमें या भगवान् और सूर्यमें गुणों और कार्योंकी इतनी समानता दर्शायी है कि उनमें कभी-कभी अभेद प्रतीत होता है। हमारी सृष्टिमें सबसे महिमामय तत्त्व सूर्य ही हैं और इसलिये भगवान्‌को यदि किसी स्थूल दृश्यमान तत्त्वसे समझना हो तो केवल सूर्यद्वारा ही समझा जा सकता है। इसीलिये आदित्य-हृदयमें कहा गया है कि सूर्यमण्डलमें कमलासनपर आसीन 'नारायण'का सदा ध्यान करना चाहिये—

ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती
नारायणः सरसिजासनसंनिविष्टः।

प्रेरणा, दीप्ति और हितकारिताकी दृष्टिसे मनुष्यका आदर्श पुरुष या लक्ष्य सूर्य हैं। वह सूर्य-सदृश बनकर ही भगवान् परमेश्वर या ब्रह्मका दर्शन कर सकता है और उन्हें प्राप्त कर सकता है।

वेदोंमें भगवान् सूर्यकी महत्ता और स्तुतियाँ

(लेखक—श्रीरामस्वरूपजी शास्त्री 'रसिकेश')

पृथ्वीसे भी अत्यधिक उपकारक भगवान् सूर्य हैं। अतः हमारे पूर्वज ऋषि-महर्षियोंने श्रद्धा-विभोर होकर सूर्यदेवकी स्तुति-प्रार्थना और उपासनाके सैकड़ों सुन्दर मन्त्रोंकी उद्भावना की है। उनके प्रशंसनीय प्रयासका दिग्दर्शन कराया जा रहा है।

१—सूर्य-स्तुति—

वैदिक ऋषियोंका ध्यान भगवान् सूर्यके निम्नलिखित गुणोंकी ओर विशेषरूपसे गया है—(क) अन्धकारका नाश, (ख) राक्षसोंका नाश, (ग) दुःखों और रोगोंका नाश, (घ) नेत्र-ज्योतिकी वृद्धि, (ङ) चराचरकी आत्मा, (च) आयुकी वृद्धि और (छ) लोकोंका धारण।

नीचे भुवन-भास्करके इन्हीं गुणोंके सम्बन्धमें वेद मन्त्रोंद्वारा प्रकाश डाला जाता है।

(क) अन्धकारका नाश—

अभितपा सौर्य ऋषिकी प्रार्थना है—

येन सूर्य ज्योतिषा बाधसे तमो जगच्च विश्वमुदियर्षि भानुना। तेनास्मद् विश्वामनिरामनाहुतिमपामीवामप दुष्ष्वप्न्यं सुव॥
(ऋग्वेद १० । ३७ । ४)

हे सूर्य! आप जिस ज्योतिसे अन्धकारका नाश करते हैं तथा प्रकाशसे समस्त संसारमें स्फूर्ति उत्पन्न कर देते हैं, उसीसे हमारा समग्र अन्नोंका अभाव, यज्ञका अभाव, रोग तथा दुःस्वप्नोंके कुप्रभाव दूर कीजिये।

(ख) राक्षसोंका नाश—

महर्षि अगस्त्य ऐसे ही विचारोंको निम्नाङ्कित मन्त्रमें व्यक्त करते हैं—

उत् पुरस्तात् सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा ।
अदृष्टान्त्सर्वाञ्जम्भयन्त्सर्वाश्च यातुधान्यः ॥
(ऋग्वेद १ । १९१ । ८)

'सबको दीखनेवाले, न दीखनेवाले (राक्षसों) को नष्ट करनेवाले, सब रजनीचरों तथा राक्षसियोंको मारते हुए वे सूर्यदेव सामने उदित हो रहे हैं ।'

(ग) रोगोंका नाश—

प्रस्तुत मन्त्रसे विदित होता है कि सूर्यका प्रकाश पीलिया रोग तथा हृदयके रोगोंमें विशेष लाभप्रद माना जाता था । प्रस्कण्व ऋषिकी सूर्य देवतासे प्रार्थना है—

उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम् ।
हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय ॥
(ऋग्वेद १ । ५० । ११)

'हे हितकारी तेजवाले सूर्य ! आप आज उदित होते तथा ऊँचे आकाशमें जाते समय मेरे हृदयके रोग तथा पाण्डुरोग (पीलिया) को नष्ट कीजिये ।' इस मन्त्रके 'उद्यन्' तथा 'आरोहन्' शब्दोंसे सूचित होता है कि दोपहरसे पूर्वके सूर्यका प्रकाश उक्त रोगोंका विशेषतः नाश करता है ।

(घ) नेत्र-ज्योतिकी वृद्धि—

वेदमें विभिन्न देवताओंको पृथक्-पृथक् पदार्थोंका अधिपति एवं अधिष्ठाता कहा गया है । उदाहरणार्थ, अथर्ववेद (५ । २४) में अथर्वा ऋषि हमें बताते हैं कि जैसे अग्नि वनस्पतियोंके, सोम लताओंके, वायु अन्तरिक्षके तथा वरुण जलोंके अधिपति हैं, वैसे ही सूर्यदेवता नेत्रोंके अधिपति हैं । वे मेरी रक्षा करें ।

सूर्यश्चक्षुषामधिपतिः स मावतु ॥
(अथर्व० ५ । २४ । ९)

यहाँ नेत्र प्राणियोंके नेत्रोंतक ही सीमित नहीं है, क्योंकि वेद तो भगवान् सूर्यको मित्र, वरुण तथा अग्नि देवके भी नेत्र बताते हैं—

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
(ऋ० १ । ११५ । १)

ये सूर्य देवताओंके अद्भुत मुखमण्डल ही हैं, जो कि उदित हुए हैं । ये मित्र, वरुण और अग्निके चक्षु हैं । सूर्य तथा नेत्रोंके घनिष्ठ सम्बन्धको ब्रह्मा ऋषिने इन अमर शब्दोंमें व्यक्त किया है—

सूर्यो मे चक्षुर्वातः प्राणोऽन्तरिक्षमात्मा पृथिवी शरीरम् ।
(अथर्व० ५ । ९ । ७)

'सूर्य ही मेरे नेत्र हैं, वायु ही प्राण हैं, अन्तरिक्ष ही आत्मा है तथा पृथिवी ही शरीर है ।'

इसी प्रकार दिवंगत व्यक्तिके चक्षुके सूर्यमें लय होनेकी कामना की गयी है । (ऋ० १० । १६ । ३) सूर्यदेवता हमलोगोंको ही दृष्टि-दान नहीं करते, स्वयं दूर रहते हुए भी प्रत्येक पदार्थपर पूरी दृष्टि डालते हैं । ऋजिश्वा ऋषिके विचार इस विषयमें इस प्रकार हैं—

वेद यस्त्रीणि विदथान्येषां देवानां जन्म सनुतरा च विप्रः । ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन्नभि चष्टे सूरो अर्य एवान् ॥ (ऋ० ६ । ५१ । २)

जो विद्वान् सूर्यदेवता तथा इन अन्य देवताओंके स्थानों (पृथिवी, अन्तरिक्ष एवं द्यौ) और इनकी सन्तानोंके ज्ञाता हैं, वे मनुष्योंके सरल और कुटिल कर्मोंको सम्यक् देखते रहते हैं ।

(ङ) चराचरकी आत्मा—

वैदिक ऋषियोंकी प्रगाढ़ अनुभूति थी कि सूर्यका इस विशाल विश्वमें वही स्थान है, जो शरीरमें आत्माका । इसी कारणसे वेदोंमें ऐसे अनेक मन्त्र सहज सुलभ हैं, जिनमें सूर्यको सभी जड़-चेतन पदार्थोंकी आत्मा कहा गया है । यथा —

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥ (ऋ० १ । ११५ । १)

ये सूर्यदेवता जङ्गम तथा स्थावर सभी पदार्थोंकी आत्मा हैं ।

(च) आयु-वर्धक—

यों तो रोगोंसे बचाव तथा उनके उपचारसे भी आयु वृद्धि होती है, फिर भी वेदोंमें ऐसे मन्त्र विद्यमान हैं, जिनमें सूर्य एवं दीर्घायुका प्रत्यक्ष सम्बन्ध दिखाया गया है। यथा—

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतम्। (यजु० ३६। २४)

देवताओंद्वारा स्थापित वे तेजस्वी सूर्य पूर्वदिशामें उदित हो रहे हैं। उनके अनुग्रहसे हम सौ वर्षोंतक (तथा उससे भी अधिक) देखें और जीवित रहें।

(छ) लोक-धारण—

वैदिक ऋषि इस बातको सम्यक् अनुभव करते थे कि लोक-लोकान्तर भी सूर्य-देवताद्वारा धारण किये जाते हैं। निदर्शनके लिये एक ही मन्त्र पर्याप्त होगा—

विभ्राजञ्ज्योतिषा स्वरगच्छो रोचनं दिवः। येनेमा विश्वा भुवनान्याभृता विश्वकर्मणा विश्वदेव्यावता॥ (ऋ० १०। १७०। ४)

'हे सूर्य! आप ज्योतिसे चमकते हुए द्यौ लोकके सुन्दर सुखप्रद स्थानपर जा पहुँचे हैं। आप सर्वकर्म साधक तथा सब देवताओंके हितकारी हैं। आपने ही सब लोक-लोकान्तरोंको धारण किया है।'

२-सूर्य-देवसे प्रार्थनाएँ—

उपर्युक्त अनेक मन्त्रोंमें सूर्यदेवताका गुण-गान ही नहीं है, प्रसंगवश प्रार्थनाएँ भी आ गयी हैं। दो-एक अभ्यर्थनापूर्ण मन्त्र द्रष्टव्य हैं—

दिवस्पृष्ठे धावमानं सुपर्णमदित्याः
पुत्रं नाथकाम उप यामि भीतः।
स नः सूर्य प्रतिर दीर्घमायु-
र्मा रिषाम सुमतौ ते स्याम॥
(अथर्व० १३। २। ३७)

'मैं द्यौकी पीठपर उड़ते हुए अदितिके पुत्र, सुन्दर पक्षी (सूर्य) के पास कुछ माँगनेके लिये डरता हुआ जाता हूँ। हे सूर्यदेव! आप हमारी आयु खूब लंबी करें। हम कोई कष्ट न पावें। हमपर आपकी कृपा बनी रहे।'

अपने उपास्य प्रसन्न हो जायँ तो उनसे अन्य कार्य भी कराये जाते हैं। निम्नलिखित मन्त्रमें महर्षि वसिष्ठ भगवान् सूर्यसे कुछ इसी प्रकारका कार्य करानेकी भावना व्यक्त करते हैं—

स सूर्य प्रति पुरो न उद्गा एभिः स्तोमेभिरेतशेभिरेवैः।
प्र नो मित्राय वरुणाय वोचोऽनागसो अर्यम्णे अग्नये च॥
(ऋ० ७। ६२। २)

'हे सूर्य! आप इन स्तोत्रोंके द्वारा तीव्रगामी घोड़ोंके साथ हमारे सामने उदित हो गये हैं। आप हमारी निष्पापताकी बात मित्र, वरुण, अर्यमा तथा अग्निदेवसे भी कह दीजिये।'

उपासना—

स्तुति, प्रार्थनाके पश्चात् उपासककी एक ऐसी अवस्था आ जाती है, जब वह अपने आपको उपास्यके पास ही नहीं, बल्कि, अपनेको उपास्यसे अभिन्न अनुभव करने लगता है। ऐसी ही दशाकी अभिव्यक्ति निम्नलिखित वेद-मन्त्रमें की गयी है—

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्॥
(यजु० ४०। १७)

'उस अविनाशी आदित्यदेवताका शरीर सुनहले ज्योतिपिण्डसे आच्छादित है। उस आदित्यपिण्डके भीतर जो चेतन पुरुष विद्यमान है, वह मैं ही हूँ।' उपर्युक्त विवरणसे सिद्ध है कि जहाँ हमारे वैदिक पूर्वज भौतिक सूर्य पिण्डसे विविध लाभ उठाते थे, वहाँ उसमें विद्यमान चेतन सूर्य-देवतासे स्व-कामना-पूर्तिके लिये प्रार्थनाएँ भी करते थे। तत्पश्चात् उनसे एकरूपताका अनुभव करते हुए असीम आत्मिक आनन्दके भागी बनते थे। सचमुच महाभाग सूर्य महान् देवता हैं।

ऋग्वेदमें सूर्य-सन्दर्भ

ऋग्वेदमें सूर्यसे सन्दर्भित कुल चौदह सूक्त हैं, जिनमेंसे ग्यारह पूर्णत सूर्यकी उपवर्णना, स्तुति या महत्त्व-प्रतिपादक हैं। संक्षेपमें उदाहरण देखें—सूर्य 'आदित्य' हैं, क्योंकि वे अदितिके पुत्र बतलाये गये हैं। अदितिदेवीके पुत्र आदित्य (सूर्य) माने गये हैं। आदित्य छ हैं—मित्र, अर्यमा, भग, वरुण, दक्ष और अंश (म० २, सूक्त २७, म० १)। पृ०९। ११४। में सात तरहके सूर्य बताये गये हैं। १०। ७२। ८ में कहा गया है कि अदितिके आठ पुत्र थे—मित्र, वरुण, धाता, अर्यमा, अंश, भग, विवस्वान् और आदित्य। इनमेंसे सातको लेकर अदितिदेवी चली गयीं और आठवें सूर्यको उन्होंने आकाशमें छोड़ दिया। [तैत्तिरीय ब्राह्मणमें आदित्यके स्थानपर इन्द्रका नाम है। शतपथ ब्राह्मणमें १२ आदित्योंका उल्लेख है। महाभारत (आदिपर्व, १२१ अध्याय) में इन १२ आदित्योंके नाम हैं—धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, अंश, भग, इन्द्र, विवस्वान्, पूषा, त्वष्टा, सविता और विष्णु। अदितिका यौगिक अर्थ अखण्ड है। यास्कने अदितिको देवमाता माना है।]

कहा जाता है कि वस्तुत सूर्य एक ही हैं। कर्म, काल और परिस्थितिके अनुसार उनके विविध नाम रखे गये हैं।

मण्डल १, सूक्त ३५ में ११ मन्त्र हैं और सब-के-सब सूर्यवर्णनसे पूर्ण हैं। एक ही सूक्तमें सूर्यका अन्तरिक्षमें भ्रमण, प्रात से सायतक उदय-नियम, रश्मि-विकिरण, सूर्यके कारण चन्द्रमाकी स्थिति, किरणोंसे रोगादिकी निवृत्ति, सूर्यके द्वारा भूलोक और द्युलोकका प्रकाशन आदि बातें भी विदित होती हैं। आठवें मन्त्रमें कहा गया है—'सूर्य आठों दिशाओं (चार दिशाओं और चार उनके कोनों) को प्रकाशित किये हुए हैं। उन्होंने प्राणियोंके तीन संसार और सिन्धु भी प्रकाशित किये हैं। सोनेकी आँखोंवाले [सविता] यजमानको द्रव्य देकर यहाँ आवें।'

म० १, सू० ५०, मं० ८ में लिखा है—[सूर्य!] तुम्हें हरित नामके सात घोड़े (किरणें) [ले] जाते हैं। किरणें या ज्योति ही तुम्हारे केश [हैं]। म० २, म० ३६-२ में कहा गया है—सूर्यके चक्रवाले रथमें सात घोड़ जोते गये हैं। एक ही (किरण) सात नामोंसे रथ ढोता है। इससे [विदित] होता है कि ऋषिको सूर्य-रश्मिके सात भेदों और [उनके] एकत्वका भी ज्ञान था।

म० १, सू० १२३, म० ८ में कहा गया है—'उषा सूर्यसे ३० योजन आगे रहती है।' [इसपर] आचार्य सायणने लिखा है—'सूर्य प्रतिदिन ५० [सहस्र] योजन भ्रमण करते हैं। इस तरह सूर्य प्रत्येक द[ण्डमें] ७९ योजन घूमते हैं। उषा सूर्यसे ३० यो[जन] पूर्वगामिनी है, इसलिये सूर्योदयसे प्राय आधा [घंटा] पहले उषाका उदय मानना चाहिये।' पाश्चात्य [मत]से सूर्य बीस हजार मील प्रतिदिन चलते [हैं,] परंतु सूर्यकी गति अपने कक्षमें ही होती है।*

इन दो मन्त्रोंमें सूर्य-सम्बन्धी अनेक विषय ज्ञा[त होते] हैं—'सत्यात्मक सूर्यका बारह अरों, खूँटों या राशि[योंसे] युक्त चक्र स्वर्गके चारों ओर बार-बार भ्रमण करता [है] और कभी पुराना नहीं होता। अग्नि इस चक्रमें [पुत्र]स्वरूप होकर सात सौ बीस दिन (अर्थात् ३६० दिन [और ३६० रात]

* ऋ० यजु० य० तै० ब्रा०के दिवोकम मन्त्रके भाष्यमें आचार्य सायणने सूर्यको नमस्कार करते हुए उनकी गतिका [यों] उल्लेख किया है—

योजनानां सहस्रे द्वे द्वे शते द्वे च योजने। एकेन निमिषार्धेन क्रममाण नमोऽस्तु ते॥

[वैज्ञानिक सूर्यकी गति एक सेकण्डमें १२ मील बतलाते हैं।]

३६० रात्रियाँ) निवास करते हैं। अगले मन्त्रमें दक्षिणायन (पूर्वार्द्ध) और उत्तरायण (अन्त्यार्ध)का भी कथन है (म० १, सू० १६४, म० ११-१२)। म० १, सू० ११७, म० ४ १ में भी दक्षिणायनका विषय है। म० १, सू० १६, म० ४८ में भी ३६० दिनोंकी बात है।

म० १, सू० १५५, म० ६ में कालके ये ९४ अंश बताये गये हैं—सवत्सर, दो अयन, पाँच ऋतु (हेमन्त और शिशिरको एक माननेपर), बारह मास, चौबीस पक्ष, तीस अहोरात्र, आठ पहर और बारह राशियाँ।

म० ५, सू० ४०, मं० ५–९ में सूर्य-ग्रहणका पूर्ण विवरण है।

म० ७, सू० ६६, म० ११में सूर्य (मित्र वरुण और अर्यमा) के द्वारा वर्ष, मास, दिन और रात्रिका बनाया जाना लिखा है। पृ०१२८ ८में १२ मासोंकी बात तो है ही, तेरहवें महीनेका भी उल्लेख है। यह तेरहवाँ महीना मलमास अथवा मलिम्लुच है। पृ०१३५०–३में भी मलमासका उल्लेख है।

पृथिवीके चारों ओर सूर्यकी गतिसे जो वर्ष-गणना की जाती है, उसमें बारह 'अमावास्याओं'की गणना करनेसे कई दिन कम हो जाते हैं। अत सौर और चान्द्र वर्षोंमें सामञ्जस्य करनेके लिये चान्द्र वर्षके प्रति तीसरे वर्षमें एक अधिक मास, मलमास अथवा मलिम्लुच रखा जाता है। इस मन्त्रसे ज्ञात होता है कि वैदिक साहित्यमें दोनों (सौर और चान्द्र) वर्ष माने गये हैं और दोनोंका समन्वय भी किया गया है।

म० १०, सू० १५६, म० ४ में कहा गया है, कि 'अमर और ज्योतिर्दाता सूर्य सदा चलते रहते हैं।'

म० १०, सू० १८९, के १–३ मन्त्रोंमें सूर्यकी गतिशीलता और तीस मुहूर्तोंका उल्लेख है। पृ०१९२६ ३०में इन्द्रद्वारा सूर्यके आकाशमें स्थापनके साथ ही सारे ससारके नियमनकी बात लिखी है।

म० १०, सू० १४९, म० १ में कहा गया है कि 'सूर्यने अपने यन्त्रोंसे पृथिवीको सुस्थिर रखा है। उन्होंने विना अवलम्बनके द्युलोकको दृढ़ रूपसे बाँध रखा है।

इन उद्धरणोंसे विदित होता है कि भ्रमणशील सूर्यने अपनी आकर्षणशक्तिसे पृथ्वीप्रभृति ग्रहोपग्रहोंके साथ *आकाश एव स्वर्ग (द्यौ) और सारे सौर-मण्डलको बाँधकर* नियमित कर रखा है। इससे स्पष्ट ही विदित होता है कि आर्योंको सूर्यकी आकर्षण शक्ति और खगोलका निपुण ज्ञान था। अगले मन्त्रसे भी इस मतका समर्थन होता है। इस गतिशील चन्द्रमण्डलमें जो अन्तर्हित तेज है, वह आदित्य किरण ही है।

म० १, सू० ८४के १५ वें मन्त्रपर सायणने निरुक्त (२ ६) उद्धृत किया है—'**अथाप्य स्यैको रश्मिश्चन्द्रमस प्रति दीप्यते। आदित्यतोऽस्य दीप्तिर्भवति।**' अर्थात् 'सूर्यकी एक किरण चन्द्रमण्डलको प्रदीप्त करती है। सूर्यसे ही उसमें प्रकाश आता है।'

वैज्ञानिकोंके मतसे सूर्यकी किरणें अनेक रोगोंको विनष्ट करती हैं। ऋग्वेदके तीन मन्त्रों (म० १ सू० ५०, म० ८, ११, १३) से वैज्ञानिकोंके इस मतका समर्थन मिलता है—'सूर्य उदित होकर और उन्नत आकाशमें चढ़कर हमारा मानस (हृदयस्थ) रोग और पीतवर्णरोग एव शरीररोग विनष्ट कर देते हैं। रोगसे मुक्त होनेकी इच्छावाले सूर्योपासकोंके लिये ये तीन मन्त्र मुख्य हैं। प्रत्येक सूर्योपासक अपनी आधि व्याधिकी शान्तिके लिये इन मन्त्रोंको जपता है। सूर्य नमस्कारके साथ भी इन मन्त्रोंका जप किया जाता है। सायणके मतसे इन्हीं मन्त्रोंका जप करनेसे प्रस्कण्व ऋषिका चर्म-रोग विनष्ट हुआ था।

ऋग्वेदमें खगोलवर्ती सप्तर्षि, ग्रह, तारा तथा उल्का आदिका भी उल्लेख है। कहा गया है कि जो सप्तर्षि नक्षत्र हैं, आकाशमें सम्थापित हैं और रात होनेपर दिखायी देते हैं, वे दिनमें कहाँ चले जाते हैं। १।२४।१० मन्त्रके मूलमें 'ऋक्षा' शब्द है, जिसका अर्थ सायणने 'सप्त तारा' किया है। ऋक्षु धातुसे ऋक्ष शब्द बना है, जिसका अर्थ उज्ज्वल है। इसीलिये नक्षत्रोंका नाम उज्ज्वल पड़ा और सप्तर्षियोंका नाम उज्ज्वल मालूम हुआ। पाश्चात्य भी इन्हें (ऐसा ही) कहते हैं। अन्यान्य मन्त्रोंमें भी सप्तर्षियोंका उल्लेख है।

म० १, सू० ५५, म० ६ में इन्द्रके। ताराओंका निरावरण करना लिखा है। म० १०, ६५, म० ४ में ग्रहों, नक्षत्रों और पृथिवीको ... द्वारा यथास्थान नियमित करनेकी बात है। १०।६८। ४में कहा गया है कि मानो आकाशसे सूर्य उल्काको ... रहे हैं। १४ भुवनोंका उल्लेख है। इस प्रकार मन्त्रोंसे सौर-परिवारका ज्ञान होता है। आर्य ... विद्याके ज्ञाता थे। वैदिक साहित्यके अन्यान्य ... इसका विस्तार है। ऋग्वेदमें प्रत्येक विषय सू... सूत्रमें वर्णित हैं। अत बड़ी सावधानीसे ... विषयका अध्ययन और अन्वेषण करना चाहिये।*

औपनिषद श्रुतियोंमें सूर्य

(लेखक—डॉ० श्रीसियारामजी सक्सेना 'प्रवर', एम्० ए०, (द्वय), पी-एच्० डी०, साहित्यरत्न, आयुर्वेदरत्न)

> येन मितो अर्णवाद्धिर्बभूव
> येन सूर्यं तमसो निर्मुमोच।
> येनेन्द्रो विद्या अजहादराती
> स्तेनाहं ज्योतिषा ज्योतिरानशान आक्षि ॥
> (तैत्तिरीय आरण्यक २।३।७)

आदित्य ब्रह्म—सूर्यदेव समस्त जगतमें प्राणोंका सचार करते है। सूर्योदय होते ही अन्धकारकी जड़ता दूर हो जाती है, प्रकाशकी उत्साहमयी कार्य-तत्परता सब ओर दृष्टिगोचर होने लगती है तथा रोगी भी अपनेको नीरोग-जैसे अनुभव करते हैं। इन सबके हेतु सूर्य भला क्यों न अभिनन्द्य होंगे? प्रत्येक हिंदू अपने दैनन्दिन जीवनका आरम्भ रवि-वन्दनसे करता है। वैदिकों तथा आगमिकोंकी गायत्री उपासना और यौगिक त्राटक सूर्योपासनाके ही अङ्ग हैं।

सूर्योपनिषद्में सूर्यब्रह्मकी उपासनाका निर्देश ... उसमें ऋषि-कथन है—'नारायणाकार सूर्य एवं चि... वैभवको नमस्कार करता हूँ। सूर्य चराचरकी ... तथा आगमिकोंकी गायत्री उपासना और यौ... त्राटक सूर्योपासनाके अन्तर्गत उपास्य-रूप हैं।'[1]

'हे सूर्य! तुम प्रत्यक्ष कर्म-कर्ता हो तथा ब्रह्मा... महेश हो। आदित्यसे देव और वेद उत्पन्न होते... आदित्यमण्डल तप रहा है। यह प्रत्यक्ष चिन्मूर्ति... वैभव है।'[2] श्वेताश्वतर उपनिषद्में भी आदित्य, ... और सोमको ब्रह्म कहा है।

*—श्रीरामगोविन्द त्रिवेदीके ऋग्वेद हिन्दी अनुवादके भूमिका भागसे साभार।

1. सूर्यनारायणाकारं नौमि चिन्मूर्तिवैभवम्। सूर्यं आत्मा जगतस्तस्थुषश्च। त्वमेव प्रत्यक्षं कर्मकर्तासि त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि।
2. त्वमेव प्रत्यक्षं विष्णुरसि त्वमेव प्रत्यक्षं रुद्रोऽसि। आदित्याद् देवा जायन्ते आदित्याद् वेदा जायन्ते। आदित्यो वा एष एतन्मण्डलं तपति असावादित्यो ब्रह्म॥ (—सूर्योपनिषद्)

'आदित्य ब्रह्म हैं'—इसकी व्याख्या छान्दोग्य उपनिषद्में हुई है। पहले असत् ही था। वह सत्—'कार्याभिमुख' हुआ। अङ्कुरित होकर वह एक अण्डमें परिणत हो गया। उस अण्डके दो खण्ड हुए। रजत खण्ड पृथ्वी है और स्वर्ण-खण्ड द्युलोक है। फिर इससे जो उत्पन्न हुए, वे आदित्य हैं। इनके उदय होते समय घोष उत्पन्न होते हैं। सम्पूर्ण प्राणी और भोग भी इन्हींसे उत्पन्न होते हैं। इन आदित्य ब्रह्मके उपासकको ये घोष सुंदर सुख देते हैं।[3] अन्यत्र श्रुति कहती है कि जो उद्गीथ (गाने योग्य) है, वह प्रणव है और जो प्रणव है, वह उद्गीथ है। ये आकाशमें विचरने वाले सूर्य ही उद्गीथ हैं और ये ही प्रणव भी हैं। आशय यह है कि सूर्यमें ही परमात्मा और उनके वाचक ॐकी भावना करनी चाहिये, क्योंकि ये ॐका उच्चारण करते हुए ही गमन करते हैं।[4]

ब्रह्माण्डके दो मूल भाग हैं—द्यौ और पृथिवी, जिनमें समस्त प्राण, देव, लोक और भूत हैं। ये दो मूल भाग ब्रह्मके दो रूप हैं, जिन्हें मूर्त्त-अमूर्त्त, मर्त्य-अमृत, स्थित-यत, सत्-त्यत् और पुरुष-प्रकृति भी कहा जाता है।[5] अमूर्त्तके अन्तर्गत वायु तथा अन्तरिक्षका ज्योतिर्मय 'रस' आता है, जिसका प्रतीक आदित्यमण्डलस्थ 'पुरुष' है। मूर्त्तके अन्तर्गत वायु तथा अन्तरिक्षके अतिरिक्त और जो कुछ है, उसका रस आता है, जिसका प्रतीक स्वयं तपनेवाला आदित्य-मण्डल है।[6]

मूर्त्त-अमूर्त्त, वाक्—ब्रह्म अथवा माया और पुरुष—ब्रह्मके दो-दो रूप विश्वके दो मूल तत्त्व हैं। द्यावा-पृथिवी मूर्त्त रूपका संयुक्त नाम है। इन स्थूल रूपोंमें इनके अमूर्त्त (सूक्ष्म) रूप व्याप्त रहते हैं। इसका एक मूर्त्त (स्थूल) रूप सूर्यमण्डल है, जिसमें अमूर्त्तरूप 'ज्योतिर्मय' पुरुष रहता है। इन दोनोंकी संयुक्त संज्ञा मित्रावरुण है। आगेकी विचारणामें मित्र और वरुण—ये दोनों आदित्यके पर्याय हैं और इनके कुछ पृथक्-पृथक् कार्य भी बताये गये हैं। बारह आदित्योंकी विचारणा भी कदाचित् इसीसे क्रमशः बढ़ी है।

आदित्यमें ब्रह्म—बृहदारण्यक उपनिषद्में कहा है कि यह व्यक्त जगत् पहले आप् (जल) ही था। उस आप्ने सत्यकी रचना की। अतः सत्य ब्रह्म है और यह जो सत्य है, वही आदित्य है।[7] इस सूर्यमण्डलमें जो यह पुरुष है, उसका सिर 'भूः' है। सिर एक है और यह अक्षर भी एक है। दक्षिण नेत्रमें जो यह पुरुष है, उसका 'भूः' सिर है। सिर एक है और यह अक्षर भी एक है। 'भुवः' यह भुजा है। भुजाएँ दो हैं और ये अक्षर भी दो हैं। 'स्वः' यह प्रतिष्ठा (चरण) है। प्रतिष्ठा दो हैं और ये अक्षर भी दो हैं। 'अहम्' यह उसका उपनिषद (गूढ़नाम) है।[8]

३ आदित्यो ब्रह्मेत्यादेशस्तस्योपव्याख्यानम्। असदेवेदमग्र आसीत्। तत् सदासीत्। तत् समभवत्। तदाण्डं निरवर्तत। तत् संवत्सरस्य मात्रामशयत। तन्निरभिद्यत। ते आण्डकपाले रजतं च सुवर्णं चाभवताम्। तद् यत् रजतं सेयं पृथिवी। यत् सुवर्णं सा द्यौः ...। अथ यत् तदजायत सोऽसावादित्यस्तं जायमानं घोषा उलूलवोऽनूदतिष्ठन्सर्वाणि च भूतानि सर्वे च कामाः ...। स य एतमेवं विद्वानादित्यं ब्रह्मेत्युपास्तेऽभ्याशो ह यदेनं साधवो घोषा आ च गच्छेयुरुप च निम्रेडेरन्निम्रेडेरन्॥ (—छा० उ० ३। १९। १-४)

४ अथ खलु य उद्गीथः स प्रणवो यः प्रणवः स उद्गीथ इत्यसौ वा आदित्य उद्गीथ एष प्रणव ओमिति ह्येष स्वरन्नेति॥ (—छा० उ० १। ५। १)

५ बृ० उ० २। ३। १—   ६ डॉ० फतहसिंह 'वैदिक दर्शन' पृष्ठ ७९

७ बृ० उ० ५। ५। १२   ८. बृ० उ० ५। ५। ३४

इसी उपनिषद्में याज्ञवल्क्य राजा जनकसे कहते हैं कि यह पुरुष 'आदित्य-ज्योति' है। आदित्यके अस्त होनेपर चन्द्र, आदित्य और चन्द्र—इन दोनोंके अस्त होनेपर अग्नि, अग्निके भी अस्त होनेपर वाक्, और वाक्के शान्त होनेपर आत्मा ही ज्योति है।[९] आशय यह है कि आदित्यादिक सभीका प्रकाशक परमात्मा हैं। उन्हींकी ज्योतिसे समस्त ज्योतिष्पिण्ड पुष्ट होते और कर्म करते हैं। ब्रह्माण्डमें ब्रह्मकी यह ज्योति आदित्यमण्डलके हिरण्मय पुरुषके रूपमें अवस्थित है और वह विभिन्न रूपोंमें राजती है अर्थात् नाना नाम-रूपात्मक जगत्के रूपमें अभिव्यक्त होती है।[१०]

गोपालोत्तरतापिनी उपनिषद् कहता है कि आदित्योंमें जो ज्योति है, वह गोपालकी शक्ति ही है[११]। नारायणोपनिषद् भी आदित्यमें परमेष्ठी ब्रह्मात्माका निवास बताता है।[१२] कौषीतकि-ब्राह्मणके अनुसार भी आदित्यका प्रकाश ब्रह्मकी ही दीप्ति है।[१३] श्रुतियों और गीतामें ब्रह्मको ही ज्योतिका मूल स्रोत और प्रकाशकोंको भी प्रकाश देनेवाला कहा गया है।[१४]

बृहदारण्यक श्रुतिका कथन है कि इस आदित्यमें यह जो तेज स्वरूप अमृतमय पुरुष है, यह जो अध्यात्म चाक्षुष-तेज अमृतमय पुरुष है, वही यह आत्मा है, अमृत है एवं ब्रह्म है[१५]। पिण्ड और ब्रह्माण्डकी एकता होनेसे यह भी सिद्ध है कि दोनोंके पुरोंमें रहनेवाले पुरुषोंमें भी एकता है—मानव-पुरुषका प्राण-पुरुष वही है, जो आदित्यमण्डलरूप पुरमें रहनेवाला पुरुष है।[१६] जो अन्तर्यामी हमारे शरीरमें है, वही देव 'सहस्रशीर्षा' 'सहस्राक्ष' और 'सहस्रपाद' होकर समस्त विश्वके भीतर और बाहर है।[१७] वह अमृतका स्वामी चराचरका वशी है, वही ब्रह्म भूत और भव्य सब कुछ है, वही हमारी देहकी नवद्वार पुरीमें निवास करनेवाला देही है।[१८]

सूर्यदेव—सूर्यका तपना और प्रकाशित होना सर्वव्यापी परमात्माकी अन्तर्निहित शक्तिके कारण हैं। इसे इस प्रकार भी कहा गया है कि सूर्य आदि सभी परमात्माके भयसे या उनकी इच्छा अथवा प्रेरणासे और उनके सङ्केतपर अपने-अपने कार्यमें लगे हुए हैं।[१९]

---

९ बृ० उ० ४। ३। १—६। १० बृ० उ० ४। ३। ३२। ११ स होवाच तं हि वै नारायणो देव आद्या व्यक्ता द्वादश मूर्तयः सर्वेषु लोकेषु सर्वेषु देवेषु सर्वेषु मनुष्येषु तिष्ठन्तीति। 'आदित्येषु ज्योति (—गो० उ० ता० उ० २। १)

१२ य एष आदित्ये पुरुष स परमेष्ठी ब्रह्मात्मा॥ (—नारा० उप०)

१३ एतद् वै ब्रह्म दीप्यते यदादित्यो दृश्यते॥ (—कौ० ब्रा० १२)

१४ येन सूर्यस्तपति तेजसेद्ध॥ तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥ (मु० उ० २। २। १० उ० ६। १५ क० उ० २। १५) तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योति॥ (—मु० उ० २। २। ९), ज्योतिषामपि॥ (—गीता १३। १७)

तथा—यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्। यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्॥

(—गीता १५। १२)

१५ यश्चायमस्मिन्नादित्ये तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो यश्चायमध्यात्मं चाक्षुषस्तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदꣳ सर्वम्॥ (—बृ० उ० २। ५। ५)

१६. (क) यश्चायं पुरुषे यश्चासावादित्ये स एकः स य एवंवित्॥ (—तै० उ० २। ८। ५)

(ख) —ऐ० उ० ३। ११ १७ —ऐ० उ० ३। १२-४

१८. नवद्वारे पुरे देही हꣳसो लेलायते बहिः। वशी सर्वस्य लोकस्य स्थावरस्य चरस्य च॥

(—श्वे०उ० ३। १८)

१९. (क) भीषोदेति सूर्यः॥ (—तै० उ० २। ८। १)

गायत्री मन्त्रमें सविताको देव कहा है। सूर्य प्रत्यक्ष देवता हैं। सूर्यमण्डल उनका तेज है—'देवस्य भर्गः'। आदित्यके सविता आदिक बारह स्वरूप हैं। श्रुति कहती है कि आदित्य, रुद्र और वसु आदि तैंतीसों देवता नारायणसे उत्पन्न होते हैं, नारायणके द्वारा ही अपने-अपने कर्मोंमें प्रवृत्त होते हैं और अन्तमें नारायणमें ही लीन हो जाते हैं।[२०] परमात्माके तीन पद तीन गुहाओंमें निहित हैं। वे ही सबके बन्धु, जनक और सविता तथा सबके रचयिता हैं।[२१] (सविताके रथ और घोड़ोंका वर्णन वेद और पुराणोंमें विस्तारसे आया है।[२२])

नेत्रगत सूर्य—सूर्य भगवान्‌के नेत्र हैं[२३]। जब विराट् पुरुष प्रकट हुआ तो उसके नेत्रमें सूर्यने प्रवेश किया।[२४] इसी प्रकार समस्त प्राणियोंके नेत्रोंमें मूलशक्ति सूर्यकी ही है[२५]। हिरण्यगर्भरूप पुरुषके नेत्रोंसे आदित्य प्रकट हुए हैं[२६]। बृहदारण्यकमें इसे इस प्रकार कहा है कि इस आदित्य-मण्डलमें जो पुरुष है और दक्षिण नेत्रमें जो पुरुष है—वे ये दोनों पुरुष एक-दूसरेमें प्रतिष्ठित हैं। आदित्य रश्मियोंके द्वारा चाक्षुष पुरुषमें प्रतिष्ठित है और चाक्षुष पुरुष प्राणोंके द्वारा उसमें प्रतिष्ठित है।[२७]

इस विषयका पूर्ण स्पष्टीकरण कृष्णयजुर्वेदीय 'चाक्षुष उपनिषद्'में हुआ है। उसमें बताया है कि चाक्षुष्मती विद्यासे अक्षि-रोगोंका निवारण होता है और हम अन्धतासे बचते हैं। इस सन्दर्भमें सूर्यके स्वरूप और शक्तिका निर्वचन हुआ है। सूर्य नेत्रके तेज हैं और उसको ज्योति देते हैं। वे महान् हैं, अमृत हैं एवं कल्याणकारी हैं। शुचि और अप्रतिमरूप हैं। वे रजोगुण (क्रियाशक्ति) और तमोगुण (अन्धकारको अपनेमें

(ख) भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः। भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः॥ (—कठ० २।३।३)

२० (क) द्वादशादित्या रुद्रवसवः सर्वाणिच्छन्दांसि नारायणादेव समुत्पद्यन्ते नारायणात् प्रवर्तन्ते नारायणे प्रलीयन्ते च। एतद् ऋग्वेदशिरोऽधीते॥ (—नारायणाथर्वशिर उप० १)

(ख) यतश्चोदेति सूर्योऽस्तं यत्र च गच्छति। तं देवाः सर्वे अर्पितास्तदु नात्येति कश्चन॥ एतद्वै तत्॥ (—कठ० २।१।९)

२१ त्रीणि पदा निहिता गुहासु यस्तद्वेद स पितुः पितासत्।
स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा॥ (—नारायण उप० १।४)

२२ ऋक्० १।८।२, वि० पु० २।१०।

२३ (क) अथ चक्षुरत्यवहत् तद् यदा मृत्युमत्यमुच्यत स आदित्योऽभवत् सोऽसावादित्यः परेण मृत्युमतिक्रान्तस्तपति॥ (—बृ० उ० १।३।१४)

(ख) अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ॥ (—मुण्डक० २।१।४)

२४ आदित्यश्चक्षुर्भूत्वाक्षिणी प्राविशत्॥ (—ऐ० उ० १।२।४)

२५ सूर्यश्चक्षुः॥ (—बृ० उ० १।१।१) तद् यद् इदं चक्षुः सोऽसावादित्यः। (—बृ० उ० ३।१।४)
चक्षुर्नो देवः सविता चक्षुर्न उत पर्वतः। चक्षुर्धाता दधातु नः॥ (—सूर्य उ०)
पर्वके द्वारा पुण्यकालका आख्यान करनेके कारण सूर्यको 'पर्वत' कहा है। सबको धारण करनेवाला होनेसे सूर्यको 'धाता' कहा जाता है।

२६ चक्षुष आदित्यः॥ (—ऐ० उ० १।१।४)

२७ तद् यत् तत् सत्यमसौ स आदित्यो य एष एतस्मिन् मण्डले पुरुषो यश्चायं दक्षिणेऽक्षन् पुरुषस्तावेतावन्योन्यस्मिन् प्रतिष्ठितौ रश्मिभिरेषोऽस्मिन् प्रतिष्ठितः प्राणैरयममुष्मिन्। स यदोत्क्रमिष्यन् भवति शुद्धमेवैतन्मण्डलं पश्यति नैनमेते रश्मयः प्रत्यायन्ति॥ (—बृ० उ० ५।५।२)

सूर्य अग्निमय हैं और जगत् अग्नि तथा सोम-रूपके योगसे बना है—'अग्नीषोमात्मक जगत्'। आशय यह कि सृष्टि व्यष्टि या मिथुन-प्रक्रियासे होती है। इसे स्पष्ट करते हुए श्रुति कहती है कि तेजोवृत्ति द्विविध है—सूर्यात्मक और अनलात्मक। इसी प्रकार रस-शक्ति भी द्विविध है—सोमात्मक और अनलात्मक। तेज विद्युदादिमय है और रस मधुरादिमय। तेज और रसके विभेदोंसे ही चराचरका प्रवर्तन हुआ है[39]। अग्नि ऊर्ध्वग है और सोम निम्नग। ये क्रमशः शिव और शक्तिके रूप हैं। इन दोनोंसे सब व्याप्त हैं। तैत्तिरीयोपनिषद्की शीक्षावल्लीके तृतीय अनुवाकमें कहा है—'अग्नि पूर्वरूप है और आदित्य उत्तररूप। हाँ, तो इनके द्वारा होनेवाला सृष्टि विस्तार आगे बताया गया है। सप्तम अनुवाकमें आधि भौतिक और आध्यात्मिक पदार्थोंकी रचना स्पष्ट की गयी है। मुण्डक-उपनिषद्में सृष्टिक्रम इस प्रकार बताया है—परमेश्वरसे अग्निका उद्भव हुआ, अग्निकी समिधा आदित्य हैं। इनसे सोम हुआ। सोमसे पर्जन्य, पर्जन्यसे नाना प्रकारकी ओषधियाँ और ओषधियोंमें शक्ति पाकर जीव—प्राणी बने (—मु० उ० २।१।५) तथा नारायण-उपनिषद् (१।७९) आदि अन्य श्रुतियोंमें भी सूर्यतापसे पर्जन्य और उससे आगेकी उद्भूतियाँ बतायी गयी हैं।

प्रश्नोपनिषद्में आदित्य (अग्नि) की 'प्राण' और सोमकी 'रयि' संज्ञाएँ बतायी गयी हैं। प्रजापतिने इन दोनोंको उत्पन्न करके इनसे सृष्टिका विस्तार किया। मूर्त्त (पृथिवी, जल और तेज) तथा अमूर्त्त (वायु एवं आकाश) ये सब रयि हैं (—प्र० उ० १।४) अतः मूर्त्तमात्र अर्थात् देखने और जाननेमें आनेवाली सभी वस्तुएँ रयि हैं। सूर्य जीवनी-शक्ति और चेतना शक्तिके प्रतीभूत रूप हैं। चन्द्रमामें स्थूल तत्त्वों (मांस, मद और अस्थि आदि) को पुष्ट करनेवाली भूत तन्मात्राओंकी अस्मिता है। समस्त प्राणियोंके शरीरमें रवि एवं शशीकी ये शक्तियाँ विद्यमान हैं।

सावित्री-उपनिषद्में प्रथम प्रश्न है—'सविता क्या है? और सावित्री क्या है?' इसके उत्तरमें कहा है—'अग्नि और पृथ्वी, वरुण और जल, वायु और आकाश, यज्ञ और छन्द, मेघ एवं विद्युत्, चन्द्र तथा नक्षत्र, मन एवं वाणी तथा पुरुष और स्त्री- ये सविता और सावित्रीके विविध जोड़े हैं। इन जोड़ोंसे विश्वकी उत्पत्ति हुई है।' इसीके क्रममें (सा० उ० ११० में) यह भी कहा गया है कि आदित्य सविता हैं और द्युलोक सावित्री है। जहाँ आदित्य हैं, वहाँ द्युलोक है, जहाँ द्युलोक है, वहाँ आदित्य है। ये दोनों योनि (विश्वके उत्पादक) हैं। ये दोनों एक जोड़ा हैं।

बृहदारण्यक-उपनिषद् (१।२।१-२) में शुद्ध और अशुद्ध दो प्रकारकी सृष्टियोंका वर्णन है। इनमें अर्क-सृष्टि शुद्ध है। अर्कका तेज वायु और प्राण तत्त्वोंमें विभक्त हुआ है। यह शाश्वत सृष्टि है। आदित्यसे संवत्सर हुआ। संवत्सर और वाक्से व्युष्टि या मिथुन प्रक्रियाद्वारा जो सृष्टि हुई वह नश्वर है, अतः अशुद्ध है।

वेदोंका सृष्टि-विज्ञान उपनिषदोंमें स्पष्ट किया गया है। उसका विवेचन करनेसे इस लेखका विस्तार हो जायगा, जो यहाँ अभी अभीष्ट नहीं है।

सूर्य-लक्षण—सावित्र्युपनिषद्में गायत्रीमन्त्रके 'भर्ग' शब्दकी व्याख्यामें कहा गया है कि सावित्रीका दूसरा पाद है—'भुवः। भर्गो देवस्य धीमहि।' अन्तरिक्षलोकमें सविता

३९-द्विविधा तेजसो वृत्तिः सूर्यात्मा चानलात्मिका। तथैव रसशक्तिश्च सोमात्मा चानलात्मिका॥
वैद्युदादिमयं तेजो मधुरादिमयो रसः। तेजोरसविभेदैस्तु वृत्तमेतच्चराचरम्॥
(—बृहज्जाबालोपनिषद् २।२३)

देवताके तेजका हम ध्यान करते हैं। अग्नि भर्ग है, चन्द्रमा भर्ग है। सूर्योपनिषद्में भगवान् सूर्यनारायणके तेजकी वन्दना है। सूर्य-गायत्री यों है—'आदित्याय विद्महे सहस्रकिरणाय धीमहि। तन्नः सूर्यः प्रचोदयात्।' यहाँ 'सहस्रकिरण' शब्द सूर्यकी परम तेजस्विताका बोधक है। फिर स्पष्ट कहा है कि सूर्यसे ज्योति उत्पन्न होती है—'आदित्याज्ज्योतिर्जायते।' बृहदारण्यकमें भी है कि आदित्य-ज्योति ही यह पुरुष है और आदित्य ही सबको ज्योति देते तथा कर्ममें प्रवृत्त करते हैं[४०]। मुण्डकोपनिषद् (२ । १ । ४-१०) के अनुसार भी ये सूर्य ही ज्योतिके मूल और निधान हैं।

इस ज्योति पिण्डसूर्यको प्रकाशित करनेवाले परमात्मा हैं। सूर्य उन्हें प्रकाशित नहीं करते, यहाँतक कि परमात्माके लोकतक सूर्य और उनके प्रकाशकी गति ही नहीं है। उन परमेश्वरके प्रकाशसे ही सब प्रकाशित हैं।[४१] ब्रह्म ज्योतियोंकी भी ज्योति हैं,[४२] जो सूर्य-चन्द्र नक्षत्र-रहित लोकमें अपना प्रकाश फैलाते हैं।[४३]

सूर्यका नाम हिरण्यगर्भ है। सूर्यके चारों ओर परिविस्तृत प्रकाश पुञ्ज हिरण्यमय होनेसे 'हिरण्य' कहलाता है। उस हिरण्यके गर्भमें अर्थात् मध्यमें सू[र्य] स्थित हैं। अतः सूर्य हिरण्यगर्भ हैं।[४४] सूर्य-प्राण, इन्द्र और विष्णु भी कहते हैं। ईश्वरके द्वारा ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र—ये तीन अक्षर-तत्त्व नित्य विद्यमा[न] रहते हैं। तीनों अक्षरोंमें अविनाभाव-सम्बन्ध* है अर्था[त्] एकके बिना दूसरा नहीं रह सकता। अतः तीनों ए[क] ही हैं और इन तीनोंसे प्रत्येकका और तीनोंके समष्टि रूप ईश्वरका बोध हो जाता है।

ये सूर्य कल्प, युग, संवत्सर, मास, पक्ष, दि[न] रात्रि, घटी, पल और क्षण—सबके निर्माता हैं।[४५] [इ]न पक्षोंके तीस दिन-रात्रि सूर्यके तीस अङ्ग या धाम कहलाते हैं। संवत्सरके बारह मासोंके बारह आदित्य देवता हैं, जो सब कुछ ग्रहण करते-कराते चलते हैं अतः वे आदित्य कहलाते हैं।[४६] तेरहवें अधिमासको भ[ी] सूर्य ही बनाते हैं।[४७] प्रतिवर्ष पृथ्वी जो सूर्यकी परिक्रम[ा] करती है, उस अवधिको द्वादश मासोंमें विभाजित करने[पर] भी कुछ दिन और घटे बच रहते हैं। तीन वर्षोंके बाद य[ह] एक पृथक् मास बन जाता है। उसे अधिमास कहते हैं।

---

४० याज्ञवल्क्य किं ज्योतिरयं पुरुष इति। आदित्यज्योतिः सम्राडिति होवाचादित्येनैवायं ज्योतिषास्ते पल्ययते कर्म कुरुते विपल्येतीत्येवमेवैतद् याज्ञवल्क्य ॥ (बृ० उ० ४ । ३ । २)

४१ न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥
(कठ० २ । २ । १५ मुण्डक० २ । २ । १०, श्वेता० ६ । १४)

यत्र न सूर्यस्तपति यत्र न वायुर्वाति यत्र न चन्द्रमा भाति ... तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ॥
(बृहज्जाबाल उ० ८ । ६)

४२ हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम्। तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदुः ॥
[*—व्याप्यनिष्ठ-व्यापकनिरूपितधर्मरूपसम्बन्धः।] (मुण्डक उ० २ । २ । ९)
सर्वव्यापि निरालम्बो ह्यमायोऽग्न्यनो ध्रुवः। एष ब्रह्ममयो ज्योतिर्ब्रह्मशब्देन शब्दितः ॥
(हरिवंशपुराण ३ । १६ । १४)

४३ श्वे० उ० ६ । १४ ४४ कालचक्रप्रणेतारं श्रीसूर्यनारायणम् ॥ (सू० उ०) ४५ ऋग्वेद १० । १८९ । ३

४६ कतम आदित्या इति द्वादश वै मासाः संवत्सरस्यैत आदित्या एते हीदꣳ सर्वमाददाना यन्ति ते यदिदꣳ सर्वमाददाना यन्ति तस्मादादित्या इति ॥ (बृ० उ० ३ । ९ । ५) संवत्सरोऽथाप्यादित्य ॥ (नारायण उ० १ । ७१)

४७ अहोरात्रैर्विमितं त्रिंशदङ्गं त्रयोदशं मासं यो निर्मिमीते ॥ (अथर्व० १३ । ३ । ८)

सूर्योपासना—सूर्य स्वर्गद्वार और मुक्ति-पथ हैं[४८]। तैत्तिरीय उपनिषद्‌में कहा है कि 'स्व' व्याहृतिकी प्रतिष्ठा आदित्यमें है और 'मह' की ब्रह्ममें है। इनके द्वारा स्वाराज्यकी प्राप्ति होती है[४९]। सूर्यको 'गुरु' भी कहा गया है। सूर्यदेवसे श्रीमारुतिने शिक्षा ग्रहण की थी। आगम-ग्रन्थोंमें भी सूर्यका गुरुरूप प्रदर्शित किया गया है। इससे स्पष्ट है कि सूर्य अध्यात्मविद्याओंके प्रदाता और प्रचारक हैं। गायत्री मन्त्रमें सूर्यदेवसे बुद्धि माँगी गयी है[५०]। सूर्यके 'पूषा' रूपसे भक्तगण अपने कल्याणकी प्रार्थना करते हैं[५१]। श्वेताश्वतर उपनिषद्‌में भी सविताको बुद्धिकी योजना करनेवाला कहा गया है[५२]।

उपनिषदोंमें सूर्यकी उपासना विविध रूपोंमें बतायी गयी है। सूर्योपासना विषयक कुछ विद्याओंका भी निरूपण उपनिषदोंमें हुआ है। ये विद्याएँ हैं—ब्रह्म विज्ञान[५३] दहर विद्या,[५४] मधु विद्या,[५५] उपकोसल विद्या[५६], मन्थ विद्याएँ[५७] और पञ्चाग्निविद्या[५८]। सूर्यरूप ओंकारकी उपासना[५९], आदित्य-दृष्टिसे मासोपासना[६०], त्रिकाल-सन्ध्योपासना[६१], सूर्योपस्थान[६२] और महावाक्य विधिसे सूर्य अद्वैत ब्रह्मकी भावना और उपासना[६३]—इन उपासनाओंसे समस्त इष्ट-प्राप्ति होती है और अन्तमें मुक्ति मिल जाती है।

सात्त्विक विद्याओंमें प्रवेशके लिये बुद्धिको विकसित करना और स्मरणशक्तिको बढ़ाना आवश्यक है। बुद्धि सूर्यका ही एक अंश है। अतः उसका विकास सूर्यके उपस्थान (आराधन) से ही हो सकता है। पलाशके वृक्षमें स्मरण-शक्तिवर्धनका गुण है, क्योंकि वह ब्रह्म-स्वरूप[६४] है। अतः ब्रह्मचारीके लिये पलाशका दण्ड धारण करने और पलाशकी समिधाओंसे यज्ञ करनेका विधान किया गया है।

सूर्य सत्य-रूप हैं। आदित्यमण्डलस्थ पुरुष और दक्षिणेक्षन् पुरुष परस्पर रश्मियों और प्राणोंसे प्रतिष्ठित हैं—यह कहा जा चुका है। जब वह उत्क्रमणकी इच्छा करता है, तो उसमें ये रश्मियाँ प्रत्यागमन नहीं

४८ भूरित्यग्नौ प्रतितिष्ठति। भुव इति वायौ॥ १॥ सुवरित्यादित्ये॥ २॥ (तै० उ० १। ६। १२)
सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्रामृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा॥ (मुण्डक उ० १। २। ११)

४९ मह इति ब्रह्मणि। आप्नोति स्वाराज्यम्॥ (तै० उ० १। ६। २) ५० धियो यो नः प्रचोदयात्।
५१ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः॥ (श्रुतियोंका शान्ति-पाठ) ५२ श्वे० उ० २। १-४।

५३ छा० उ०, प्रपाठक ३, खण्ड ११ से २१, विशेषतः २१ बृ० उ० अध्याय ५, ब्राह्मण ४-५।
५४ छा० उ०, प्र० ८ ख० १। ५५ छां० उ०, प्र० ३, ख० १+१२, बृ० उ० अध्याय २, ब्राह्मण ५।

५६ बृ० उ०, अ० ६, ब्रा० ३। ५७ छा० उ०, प्र० ४, ख० १०। १५। ५८ बृ० उ०, अ० ६, ब्रा० २।
५९ छां० उ०, प्र० १, ख० ५। ६० छां० उ०, प्र० २, ख० ९। ६१ कौषीतकि ब्राह्मण उप० २। ५;
बृ० उ०, अ० ५, ब्रा० १४। ६२ छां० उ० ३, ख० ८।
एह्येहीति तमाहुतयः सुवर्चसः सूर्यस्य रश्मिभिर्यजमानं वहन्ति। प्रियां वाचमभिवदन्त्योऽर्चयन्त्य एष वः पुण्यः सुकृतो ब्रह्मलोकः॥
(मुण्डक उ० १। २। ६)

६३ सोऽहमर्कः परं ज्योतिरर्कज्योतिरहं शिवः॥ (महावाक्य उ०)
योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि॥ (ईशावास्य० १६)
तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदुः॥ (मुण्डक उ० २। २। ९)
६४ ब्रह्म वै पलाशः॥ (श० ब्रा० ५। ३। ५। १५)

करना । आशय यह कि सूर्यपथसे उत्क्रमण करनेवाले व्यक्तिका संसारमें पुनरागमन नहीं होता।[६५] पूषा (सूर्य) ही जगत्‌में सत्यपर पड़े आवरणको हटाकर सत्य-धर्मकी दृष्टि प्रदान करते हैं। सूर्यका यह तेज कल्याणतम है।[६६] यह ब्रह्म है, आत्मा है, आदित्य है। अन्य देवता इसके अङ्ग हैं। आदित्यसे सारे लोक महिमान्वित हैं, ब्रह्मसे सारे वेद।[६७]

नारायण श्रुतिका वचन है कि आदित्यमण्डलका जो ताप है, वह ऋचाओंका है। अतः यह ऋचाओंका लोक है। आदित्यमण्डलकी अर्चि सामोंकी है अतः वह सामोंका लोक है, इन अर्चियोंमें जो पुरुष है, वह यजुष् है और यह यजुर्गणका लोक है। इस प्रकार आदित्य मण्डलमें जो हिरण्मय पुरुष है, वह यह त्रयी विद्या ही तप रही है। आदित्य ही तेज, ओज, बल, यश, चक्षु, श्रोत्र, आत्मा, मन, मन्यु, मनु, मृत्यु, सत्य, मित्र, वायु, आकाश, प्राण और लोकपाल आदि हैं। आदित्यके अन्तर्गत भूताधिपति स्वयंभू ब्रह्मकी उपासनासे सायुज्य और सार्ष्टि मुक्ति मिलती है।[६८]

उपर्युक्त विद्याओं और उपासनाओंका वर्णन पृथक् लेखकी अपेक्षा रखता है। अतः अब हम यहीं लेखनको विश्राम देते हैं। उपनिषदोंमें प्रतिष्ठित हमारे सूर्यदेव विश्वका मङ्गल करें।

सूर्यमण्डलसे ऊपर जानेवाले

द्वाविमौ पुरुषव्याघ्र सूर्यमण्डलभेदिनौ।
परिव्राड् योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखो हतः॥

'हे पुरुषव्याघ्र! सूर्यमण्डलको पारकर ब्रह्मलोकको जानेवाले केवल दो ही पुरुष हैं—एक तो योगयुक्त संन्यासी और दूसरा युद्धमें लड़कर सम्मुख मर जानेवाला वीर।' (—उद्योग० ३२। ६५)

६५—यदेतत् सत्यमसौ स आदित्यो य एष एतस्मिन् मण्डले पुरुषो यश्चायं दक्षिणेऽक्षन् पुरुषस्तावेतावन्योन्यस्मिन् प्रतिष्ठितौ रश्मिभिरेषोऽस्मिन् प्रतिष्ठितः प्राणैरयममुष्मिन्। स यदोत्क्रमिष्यन् भवति शुद्धमेवैतन्मण्डलं पश्यति नैनमेते प्रत्यायन्ति॥ (—बृ० उ० ५। ५। २)

६६—हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्। तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये। पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन् समूह। तेजो यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि॥(—ईशावास्य० १५-१६)

६७—मह इति। तद् ब्रह्म। स आत्मा। अङ्गान्यन्या देवताः॥ ॥१॥ मह इत्यादित्यः। आदित्येन वाव सर्वे लोका महीयन्ते॥ ॥२॥ मह इति ब्रह्म। ब्रह्मणा वाव सर्वे वेदा महीयन्ते॥ (—तै० उ० १। ५। १-३)

६८—आदित्यो वा एष एतन्मण्डलं तपति तत्र ता ऋचस्तदृचा मण्डलं स ऋचां लोकोऽथ य एष एतस्मिन् मण्डलेऽर्चिर्दीप्यते तानि सामानि स साम्नां लोकोऽथ य एष एतस्मिन् मण्डलेऽर्चिषि पुरुषस्तानि यजूंषि स यजुषा मण्डलं स यजुषां लोकः। सैषा त्रय्येव विद्या तपति य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषः॥

आदित्यो वै तेज ओजो बलं यशश्चक्षुः श्रोत्रमात्मा मनो मन्युर्मनुर्मृत्युः सत्यो मित्रो वायुराकाशः प्राणो लोकपालः कः किं कं तत्सत्यमन्नममृतो जीवो विश्वः कतमः स्वयम्भु ब्रह्मैतदमृत एष पुरुष एष भूतानामधिपतिर्ब्रह्मणः सायुज्यं सलोकतामाप्नोत्येतासामेव देवतानां सायुज्यं सार्ष्टितां समानलोकतामाप्नोति य एवं वेदेत्युपनिषत्॥

(—नारायण उप० १। १४-१५)

तैत्तिरीय आरण्यकमें असंख्य सूर्योंके अस्तित्वका वर्णन

(लेखक—श्रीसुभाषचन्द्रजी भट्ट)

आकाशमें हमें एक ही सूर्य दीख पड़ते हैं, किंतु वास्तवमें सूर्य असंख्य—अनन्त हैं। वे एक-दूसरेके समीप नहीं हैं। दूर—बहुत दूर हैं। इस कारण हम केवल आँखोंसे उनको देख नहीं पाते। अनुसंधानकर्ता वैज्ञानिक लोगोंने दूरदर्शक यन्त्रोंकी सहायतासे उन असंख्य सूर्योंको देख लिया है और अब भी देख रहे हैं। परंतु हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियोंने वेददर्शन कालमें दूरदर्शक यन्त्रोंके बिना केवल अपने तप-तेजके प्रभावसे अनेकानेक असंख्य सूर्योंके दर्शन प्राप्त कर लिये थे। इसका विवरण कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीय आरण्यक (१ । ७ । ७) में विस्तृतरूपसे विद्यमान है—

अपश्यमहमेतान् सप्तसूर्यानिति । पञ्चकर्णो वात्स्यायन । सप्तकर्णश्च प्लाक्षि । आनुश्राविक एव नौ कश्यप इति । उभौ वेदयिते । नहि शेकुमिव महामेरुं गन्तुम् ॥

वत्स ऋषिका पुत्र पञ्चकर्ण और प्लक्ष ऋषिका पुत्र सप्तकर्ण—इन दोनों ऋषियोंकी उक्ति है कि हमने सात सूर्योंको प्रत्यक्ष देख लिया है, किंतु आठवाँ जो कश्यप नामक सूर्य है, उसे हम देख नहीं सके हैं। इससे जान पड़ता है कि कश्यप सूर्य मेरुमण्डलमें ही परिभ्रमण करते रहते हैं। हम वहाँतक जा न सके।

अपश्यमहमेतत्सूर्यमण्डलं परिवर्तमानम् । गार्ग्यः प्राणत्रातः । गच्छन्तमहामेरुम् । एकं चाजहतम् ।

गर्गके पुत्र प्राणत्रात नामक महर्षिका कथन है—'हे पञ्चकर्ण और सप्तकर्ण! कश्यप नामक अष्टम सूर्यको मैंने प्रत्यक्ष देख लिया है। ये सूर्य मेरुमण्डलमें ही भ्रमण करते हैं। वहाँ जाकर उन्हें कोई भी देख सकता है। तुम वहाँ योग-मार्गसे जाकर देख लो।'

ये आठवें सूर्य कश्यप भूत, भविष्य और वर्तमान घटनाओंको अतिसूक्ष्मरूपसे जानते हैं। यह इनका वैशिष्ट्य है। इसलिये कश्यप सूर्यको 'पश्यक' नामसे भी पुकारते हैं। **'कश्यपः पश्यको भवति । तत्सर्वं परिपश्यतीति सौक्ष्म्यात् ।'** यह श्रुति ही इसका प्रमाण है।

पञ्चकर्णादि ऋषियोंसे देखे हुए सूर्याष्टक नामक आरण्यकमें इस प्रकार वर्णित हैं—

आरोगो भ्राजः पटरः पतङ्गः । स्वर्णरो ज्योतिषीमान् विभासः । ते अस्मै सर्वे दिवमातपन्ति । ऊर्जं दुहाना अनपस्फुरन्त इति । कश्यपोऽष्टमः ॥

आरोग, भ्राज, पटर, पतङ्ग, स्वर्णर, ज्योतिषीमान्, विभास और कश्यप—ये आठ सूर्योंके नाम हैं। हम नित्यप्रति आँखोंसे जिन सूर्यको देखते हैं, उनका नाम 'आरोग' है और शेष सभी सूर्य अतिशय दूर हैं। अथवा आदृश्य हैं, अतएव हम इन आँखोंसे उन्हें नहीं देख सकते।

इस सूर्याष्टकमें कश्यप प्रधान हैं। आरोगप्रभृति अन्य सूर्य कश्यपसे अपनी प्रकाशक-शक्ति भी प्राप्त करते हैं। आरोग सूर्यके परिभ्रमणको हम जानते हैं। अन्य भ्राज, पटर और पतङ्ग—ये तीन सूर्य अधोमुख होकर मेरुमार्गके नीचे परिभ्रमण करते हैं और वहाँके प्राणिसमूहोंको प्रकाश वितरण करते हैं। स्वर्णर, ज्योतिषीमान् और विभास—ये तीन सूर्य ऊर्ध्वमुखी होकर मेरुमार्गके ऊपर परिभ्रमण करते और वहाँके चराचर वस्तुओंको प्रकाश देते हैं।

आठ दिशाओंमें, हमारी दृष्टिसे पूर्व दिक् सूर्य हैं। इसी प्रकार आग्नेय आदि दिशाएँ भी एक-एक सूर्यसे युक्त हैं। सूर्यसे ही वसन्त आदि ऋतुओंका निर्माण होता है। बिना सूर्यके ऋतुओंका निर्माण और परिवर्तन [illegible] है। आग्नेय आदि सभी दिशाओंमें वसन्त

ऋतुओंका क्रमशः आविर्भाव और परिवर्तन होना रहता है। अतएव सभी दिशाओंमें भिन्न-भिन्न सूर्योंका अस्तित्व निश्चित है।

'एतयैवाऽऽवृताऽऽसहस्रसूर्यताया इति वैशम्पायनः।'

वैशम्पायनाचार्यजी कहते हैं कि 'जहाँ-जहाँ वसन्तादि ऋतुओंका और तत्तद्धर्मोंका आविर्भाव है, वहाँ-वहाँ तत्सम्पादक सूर्यका अस्तित्व रहता ही है। इस न्यायके अनुसार सहस्र—असंख्य अनन्त सूर्योंका अस्तित्व आवश्यक है। पञ्चकर्ण, सप्तकर्ण और प्राणत्रात ऋषियोंको सात एवं आठ सूर्योंको देखकर तद्विषयक ज्ञान प्राप्त हो गया—इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है।

'नानालिङ्गत्वादृतूनां नानासूर्यत्वम्।'

यदि एक ही सूर्य रहते तो वसन्तादि ऋतुओंमें होनेवाले औष्ण्य, शैत्य एवं साम्यादि विभिन्न सुख, असह्य सुख-दुःखोंका अनुभव न होता। तब पूरे वर्षभर एक ही ऋतु और उसके प्रभावका अनुभव प्राप्त होता रहता। कारण भेदके बिना कार्य-भेदका अनुभव सम्भव नहीं है। ऋतु धर्म-वैलक्षण्यसे ही उसके कारणरूप असंख्य सूर्योंका अस्तित्व सिद्ध होता है। यह हमारा ही अभिमत नहीं, अपितु भगवती श्रुतिका भी मत है—

यद्द्याव इन्द्र ते शतꣳशतं भूमीः। उत स्युः। न त्वा वज्रिन्सहस्रꣳसूर्याः। अनु न जातमष्ट रोदसी इति। (१।७।६)

'हे इन्द्र! यद्यपि तुमसे शत-शत स्वर्गलोकोंका निर्माण सम्भव है, और सैकड़ों भूलोकोंका सृजन सम्भव है, तथापि आकाशमें स्थित सहस्रों सूर्योंके प्रकाशको पूर्णतया तुम और तुमसे निर्मित स्वर्ग एवं सब मिलकर भी नहीं ले सकते।' इस मन्त्रमें सहस्र सूर्योंका स्पष्ट उल्लेख है।

चित्रं देवानामुदगादनीकं
चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आप्राद्यावापृथिवी अन्तरिक्षꣳ
सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च॥
(यजु० वे० ७।४२)

भगवान् सूर्य अनन्त दयामय हैं। निःस्वार्थ बुद्धिसे प्रजारक्षण करना ही उनका ध्येय है। रश्मि ही उनकी सेना है, जो सर्वदा अन्धकाररूप वृत्रासुरका नाश करती रहती है। सूर्य केवल हमारे ही नहीं, प्राणिमात्रके—यहाँतक कि वृक्ष, लता, गुल्म और वनस्पति आदिके भी मित्र हैं। सूर्य जब उदय होते हैं तब चराचर प्राणियोंका मन प्रफुल्लित हो उठता है। उनके प्रकाशसे आरोग्यकी वृद्धि होती है। सम्पूर्ण सूर्य अपनी रश्मिरूपी सेनाको विभक्त करके त्रैलोक्यमें प्रत्येक स्थानपर भेजते हैं। इस रश्मि-सेनाके सम्पर्कमात्रसे चराचर समस्त प्राणियोंका संरक्षण होता है। इन रश्मियोंके सान्निध्यसे सत्यप्रियता, निर्भयता, नीरोगता, आह्लाद, उत्साह, भोगादिकी वृद्धि और धन-धान्यकी समृद्धि प्राप्त होती है। भगवान् सूर्य स्थावर और जङ्गम जगत्के आत्मा हैं। समस्त मानवयोनिके प्राणधारियोंके प्रेरक और कल्याणके प्रदाता हैं। हमें उन भास्वान् ज्योतिःस्वरूप भगवान् सूर्यनारायणका सदा ध्यान करना चाहिये।

स जयति

स जयत्युदयेनैव चतसृष्वपि दिक्षु निवसतां नृणाम्।
यो प्रतिदिनं प्रथयत्याशाः दिक्पालिनि यः प्राचाम्॥
(— कार्या० गुच्छ सू० भा० मङ्गला० में सू० कथा राय)

जो सूर्य चारों दिशाओंमें रहनेवाले मनुष्योंके लिये अन्यान्य दिशाओंमें प्राची (पूर्व) दिशा निर्दिष्ट करते हैं, वे सर्वत्र विजय प्राप्त करें—सर्वोत्कृष्ट रूपमें रहें।

तैत्तिरीय आरण्यकके अनुसार आदित्यका जन्म

(लेखक—श्रीसुब्रह्मण्यजी शर्मा, गोकर्ण)

सृष्टिके पहले सर्वत्र जल-ही-जल भरा था। देव-मानव, पशु-पक्षी तथा तरु-लता कहीं कुछ भी न था। इस पानीके साम्राज्यमें सर्वप्रथम केवल जगदीश्वर, प्रजापति ब्रह्माका आविर्भाव हुआ। तभी उन्हें एक कमलपत्र दिखलायी पड़ा। तब वे उस कमलपत्रपर जा बैठे। कुछ काल व्यतीत होनेके बाद उनके मनमें जगत्की सृष्टि करनेकी इच्छा उत्पन्न हुई। अब सृष्टि करनेके लिये प्रजापति तपस्या करने लगे। तपस्याके पश्चात् अब यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि वे किस प्रकार 'प्रजा'का सृजन करें? प्रश्न उठते ही तुरत प्रजापतिका शरीर काँपने लगा। उसके कम्पनसे अरुण, केतु एवं वातरशन—इन तीन प्रकारके ऋषियोंका आविर्भाव हुआ। नखके कम्पनसे वैखानस ऋषियोंका जन्म हुआ। केशके कम्पनसे वालखिल्योंका निर्माण हुआ। उसी समय प्रजापतिके शरीरके सार-सर्वस्वसे एक कूर्मका आकार स्वयं बन गया। वह कूर्म पानीमें सचरण करने लगा। आगे-पीछे सचरण करनेवाले उस कूर्मको देखकर प्रजापति ब्रह्मदेवको आश्चर्य हुआ। वे सोचने लगे कि यह कहाँसे आया? उन्होंने उस कूर्मसे पूछा—'तुम मेरे त्वक् (त्वचा) और मांससे पैदा हुए हो?' तब कूर्मने उत्तर दिया—'तुम्हारे मांस आदिसे मेरा जन्म नहीं हुआ है। मेरा जन्म तो तुमसे भी पहलेका है। मैं तो सर्वगत, नित्य चैतन्य, सनातन—शाश्वतस्वरूप हूँ और पहलेसे ही मैं यहाँ सर्वत्र और तुम्हारे हृदयमें भी विद्यमान हूँ। कुछ विचारकर देखो!' इस प्रकार कहकर कूर्मशरीरधारी नित्य चेतनस्वरूप परमात्माने सहस्रशीर्ष, सहस्रबाहु और सहस्रों पादोंसे युक्त अपने विश्वरूपको प्रकट करके प्रजापतिको दर्शन दिया। तब प्रजापतिने साष्टाङ्ग प्रणाम करके प्रार्थना की—'हे भगवन्! आप मुझसे पहले ही विद्यमान हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है। हे पुराणपुरुष! आप ही इस जगत्का सृजन कीजिये। यह कार्य मुझसे पूर्ण न हो सकेगा।' तब, 'तथास्तु' कहकर कूर्मरूपी भगवान्ने अपनी अञ्जलिमें जल लेकर और **'ओवाहयेच'** इस मन्त्रसे पूर्वदिशामें जलका उपधान किया। उसी उपधान-क्रमसे—भगवान् 'आदित्य'का जन्म हुआ। (तै० आ० १।२३।२५)। उसी समय विश्व प्रकाशमय हो गया। हे प्रकाशपूर्ण आदित्य! हमारे अन्धकारपूर्ण हृदयोंमें भी पूर्ण प्रकाशके उदय होनेका अनुग्रह प्रदान करें।

प्रकाशमान् सूर्यको नमस्कार

यो देवेभ्य आतपति यो देवाना पुरोहित।
पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये॥

(यजु० ३१।२०)

जो सूर्य पृथिव्यादि लोकोंके लिये तपते हैं, जो सब देवोंमें पुरोहित हैं—उनके प्रवर्तकके समान प्रकाशक हैं, जो उन सभी देवोंसे पहले उत्पन्न हुए, ब्रह्मस्वरूप परमेश्वरके समान प्रकाशमान् उन सूर्यनारायणको नमस्कार है।

ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें सूर्य-तत्त्व

(लेखक—अनन्तश्रीविभूषित स्वामी श्रीधराचार्यजी महाराज)

अथर्ववेदके कौशिक गृह्यसूत्रके 'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेद नामधेयम्' सूत्रके आधारसे वेद मन्त्र और ब्राह्मण-भेदसे दो प्रकारके हैं। इनमें मन्त्र मूलवेद है और ब्राह्मण व्याख्यावेद। ब्राह्मण-भागके विधि, आरण्यक और उपनिषद्-भेदसे तीन पर्व हैं और एक पर्व मन्त्र-भाग है। कुल मिलकर वेदके मन्त्र, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद्— ये चार पर्व हो जाते हैं। वेदके इन चारों पर्वोंमें सूर्य तत्त्वका विश्लेषण किया गया है, परंतु ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें उसका विश्लेषण विशेषरूपसे हुआ है। मन्त्रभागमें बीजरूपसे जिस तत्त्वका उल्लेख है, उसका ही व्याख्यारूपसे ब्राह्मण ग्रन्थोंमें विश्लेषण हुआ है। यह मन्त्र-ब्राह्मण वेदवाङ्मय पुरातन-कालमें विस्तृत था, किंतु आज यह अत्यल्प संख्यामें ही उपलब्ध होता है।

विश्वका मूल—ब्राह्मण ग्रन्थोंके आधारपर विश्वके मूलमें सम्मिलित दो तत्त्व हैं—अग्नि और सोम। इनसे उत्पन्न विश्वके पदार्थ भी दो रूपोंमें उपलब्ध होते हैं— शुष्क और आर्द्र। जो शुष्क है, वह आग्नेय और जो आर्द्र है वह सौम्य। सूर्य शुष्क हैं तो चन्द्रमा सौम्य हैं। जैमिनीय ब्राह्मणके अनुसार अग्नि सोमके सम्पर्कसे अवान्तर प्रकारोंमें परिणत हो जाती है। इसी प्रकार सोम भी अग्निके सम्पर्कसे अवान्तर प्रकारोंमें परिणत हो जाता है। अग्नि और सोमके अनन्तानन्त प्रकारोंमेंसे क्रमशः ये तीन प्रकार मुख्य हैं—पार्थिव-अग्नि, अन्तरिक्ष-अग्नि और दिव्याग्नि। सोमके भी तीन प्रकार मुख्य हैं—आप, वायु और सोम। ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें तीन अग्नियोंके ये विशेष नाम हैं— पावक, पवमान और शुचि।

[illegible] ऋषियोंने इन तीन अग्नियोंके तीन विशेष [illegible] ज्वाला और प्रकाश। इनमें ताप पार्थिव-अग्निका, ज्वाला आन्तरिक्ष्य अग्निका [illegible] प्रकाश दिव्याग्निका विशेष धर्म है। [illegible] ये तीनों अग्नियाँ अव्यक्त हैं, अर्थात् [illegible] रूपसे उपलब्ध नहीं होतीं। इनका जो रूप [illegible] उपलब्ध होता है, वह इन तीन अग्नियोंकी [illegible] है। जिसको वैश्वानर कहते हैं, वह तापधर्मा है। [illegible] पार्थिव-अग्निका धर्म है। उसमें उपलब्ध ज्वाला [illegible] प्रकाश क्रमशः आन्तरिक्ष्य और सूर्य-अग्निका [illegible] है। ज्वाला आन्तरिक्ष्य अग्निका असाधारण धर्म है। ताप और प्रकाश आगन्तुक धर्म हैं, जो पार्थिव और दिव्याग्निसे आते हैं। प्रकाश दिव्याग्नि [illegible] असाधारण धर्म है। ताप और ज्वाला—ये दोनों पार्थिव और आन्तरिक्ष्य अग्निके धर्म हैं।

सोमके भी अनन्तानन्त रूपोंमेंसे आप, वायु और सोम—ये तीन रूप मुख्य हैं। इनमेंसे आप (जल) सोमका घनरूप है। वायु तरलरूप है। सोम विरल [illegible] है। वेदोंमें अग्नि और सोमको सत्य तथा ऋत—[illegible] रूप माने गये हैं। सहृदयरूप सत्य और हृदयविहीन [illegible] 'ऋत' माना गया है। अग्निका सत्य-रूप सूर्यमण्डल और ऋत-रूप दिक् अग्नि है, जो सर्वत्र व्याप्त है। सोमका सत्य-रूप चन्द्रमण्डल और ऋत-रूप [illegible] है, जो सर्वत्र व्याप्त है। ऋत-अग्नि और ऋत-सोम— ये दोनों रूप ऋतुओंके प्रवर्तक हैं।

सूर्यका विश्लेषण—ब्राह्मण-ग्रन्थोंने सूर्यका विश्लेषण श्रुति, प्रत्यक्ष, ऐतिह्य और अनुमान—इन प्रमाणोंके आधारसे किया है—

[illegible] सर्वस्य विधाम्यसे।' इन प्रमाणोंके आधारसे (ब्राह्मणग्रन्थोंने) सूर्यकी उत्पत्ति उनका [illegible]

उसकी सात प्रकारकी सात किरणें, भूमण्डलपर उनका प्रभाव तथा व्यापक प्रभा (प्रकाश) आदि अनेक विधियोंका विश्लेषण किया है।

सूर्यकी उत्पत्ति—सूर्य एक अग्निपिण्ड है अर्थात् पार्थिव, आन्तरिक्ष्य एवं दिव्य (सूर्य)—इन तीनों अग्नियोंका समष्टि रूप पिण्ड है। पिण्डकी उत्पत्ति और स्थिति—ये दोनों ही बिना सोमके नहीं हो सकतीं। अग्नि स्वभावसे ही विशकलनधर्मा है। वह सोमसे सम्मन्वित हुए बिना पकड़में नहीं आती। संसारके पदार्थोंमें घनता उत्पन्न करना सोमका काम है। अतः सूर्यपिण्डकी उत्पत्ति भी इसी सोमहुतिसे होती है और हुई है। ध्रुव, धर्म, धरुण एवं धर्म-भेदसे सोम चार प्रकारके हैं। इस सोममात्राकी न्यूनता अथवा आधिक्यके कारण अग्नि भी ध्रुव, धर्म, धरुण एवं धर्मरूपोंमें परिणत हो जाती है। ये ही अवस्थाएँ निबिड, तरल, विरल एवं गुण कहलाती हैं। सूर्य पिण्ड है। पिण्डका निर्माण सोमके बिना नहीं हो सकता। ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें प्रतिपादित विज्ञानके आधारसे सोमका आहुतिसे ही सूर्यका उदय हुआ है, जैसा कि शतपथश्रुतिका विज्ञान है—'आहुते' (सोमाहुते) उदैत् (सूर्य)' अर्थात् सूर्यपिण्ड अग्नि और सोम—दोनोंकी समष्टि है।

सूर्यकी स्थिति—सूर्य एक पिण्ड है, जो सदा प्रज्वलित रहता है। अग्निमें जबतक सोमाहुति होती है, तभीतक वह प्रज्वलित रहती है। आहुतिके बंद होते ही अग्नि उच्छिन्न हो जाती है अर्थात् बुझ जाती है। अतः सदा प्रज्वलित दिखायी पड़नेवाले सूर्य पिण्डमें भी अवश्य किसीकी आहुति माननी पड़ेगी, अन्यथा किसी भी स्थितिमें पिण्ड स्थिर एवं प्रज्वलित नहीं रह सकता। इस प्रकार ब्राह्मणोक्त विज्ञानके आधारसे सूर्यमें निरन्तर ब्रह्मणस्पति सोमकी आहुति होती रहता है, जिससे सूर्यका स्वरूप बना हुआ है। इस आहुतिके प्रभावसे ही वह अरबों वर्षोंसे एक-सा स्थिर बना हुआ है और आगे भी एक-सा स्थिर बना रहेगा।

सूर्यका प्रकाश—ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें सूर्यप्रकाशके विषयमें गहन चर्चा है। उनका कहना है कि सूर्य एक अग्नि-पिण्ड है। अग्निका स्वरूप काला है। वेद स्वयं सूर्यपिण्डके लिये **'आकृष्णेन रजसा वर्तमान'** (यजु०) कह रहा है। उस काले पिण्डसे जो ऋक्, यजु सोमात्मक प्राण निकलते हैं, वे सर्वथा रूप-रस आदिसे रहित हैं। पृथ्वीके ४८ कोसके ऊपरतक एक भूवायुका स्तर है, जो वेदोंमें **'एमूषवराह'** नामसे प्रसिद्ध है। वह वायुस्तर सोमात्मक है। यह सोम वाह्य पदार्थ है। जब धाता (सूर्य) सौर-प्राण इस सोममें मिलता है, उस समय प्राणसंयोगसे वह सोम जलने लगता है। उसके जलते ही पृथ्वी-मण्डलमें प्रकाश (प्रभा) हो जाता है, जो हमको दिखायी पड़ता है। ४८ कोसके ऊपर ऐसा भास्वर प्रकाश नहीं है—यह सिद्धान्त समझना चाहिये। उस प्रकाशके पर्देमें ही हम उस काले पिण्डको सफेद देखने लगते हैं।

विज्ञानान्तर—सूर्य एक अग्निपिण्ड है। अग्निपिण्ड काला होता है—यह भी निश्चित है। इस कृष्ण अग्निमय सूर्य पिण्डमें ज्योति-प्रकाश सोमकी आहुतिसे उत्पन्न होता है, अर्थात् प्रकाश अग्नि और सोम—इन दोनोंके परस्पर सम्मिश्रणका फल है। इससे सिद्ध होता है कि केवल अग्निमें भी प्रकाश नहीं है और न केवल सोममें ही प्रकाश है। प्रकाश दोनोंके यज्ञात्मक सम्मिश्रणमें है। सूर्य किरणोंमें उपलब्ध ताप भी पार्थिव अग्निके सम्मिश्रणका ही फल है। भगवान् सूर्यकी अनन्त रश्मियोंमें सात रश्मियाँ मुख्य हैं। सात रस, सात रूप, सात धातु आदि सभी सात रश्मियोंके आधारपर ही प्रतिष्ठित हैं।

त्रयीमय सूर्य—ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें सूर्यमण्डलको त्रयीमय (वेदत्रयीमय) माना गया है, अर्थात्—ऋक्, यजु एवं साममय माना है। इसका निरूपण शतपथ-श्रुति इस प्रकार कर रही है—'यदेतन्मण्डलं तपति तन्महदुक्थम्। ता

ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें सूर्य-तत्त्व

(लेखक—अनन्तश्रीविभूषित स्वामी श्रीधराचार्यजी महाराज)

अथर्ववेदके कौशिक गृह्यसूत्रके 'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेद नामधेयम्' सूत्रके आधारसे वेद मन्त्र और ब्राह्मण-भेदसे दो प्रकारके हैं। इनमें मन्त्र मूलवेद है और ब्राह्मण तद्वेद। ब्राह्मण-भागके विधि, आरण्यक और उपनिषद्-भेदसे तीन पर्व हैं और एक पर्व मन्त्र-भाग है। कुल मिलकर वेदके मन्त्र, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद्—ये चार पर्व हो जाते हैं। वेदके इन चारों पर्वोंमें सूर्य-तत्त्वका विश्लेषण किया गया है, परंतु ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें उसका विश्लेषण विशेषरूपसे हुआ है। मन्त्रभागमें बीजरूपसे जिस तत्त्वका उल्लेख है, उसका ही वृक्षरूपसे ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें विश्लेषण हुआ है। यह मन्त्र-ब्राह्मण वेदवाङ्मय पुरातन-कालमें विस्तृत था, किंतु आज वह अत्यन्त अल्पमें ही उपलब्ध होता है।

विश्वका मूल—ब्राह्मण-ग्रन्थोंके आधारपर विश्वके मूलमें सम्मिलित दो तत्त्व हैं—अग्नि और सोम। इनसे उत्पन्न विश्वके पदार्थ भी दो रूपोंमें उपलब्ध होते हैं—शुष्क और आर्द्र। जो शुष्क है, वह आग्नेय और जो आर्द्र है वह सौम्य। सूर्य शुष्क हैं तो चन्द्रमा सौम्य हैं। जैमिनीय ब्राह्मणके अनुसार अग्नि सोमके सम्पर्कसे अर्बों-खर्बों प्रकारोंमें परिणत हो जाता है। इसी प्रकार सोम भी अग्निके सम्पर्कसे अर्बों-खर्बों प्रकारोंमें परिणत हो जाता है। अग्नि और सोमके अनन्तानन्त प्रकारोंमेंसे क्रमशः ये तीन प्रकार मुख्य हैं—पार्थिव-अग्नि, अन्तरिक्ष-अग्नि और दिव्याग्नि। सोमके भी तीन प्रकार मुख्य हैं—आप, वायु और सोम। ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें तीन अग्नियोंके ये विशेष नाम हैं—पावक, पवमान और शुचि।

प्राचीन ऋषियोंने इन तीन अग्नियोंके तीन विशेष धर्म माने हैं—ताप, ज्वाला और प्रकाश। इनमें ताप पार्थिव-अग्निका, ज्वाला आन्तरिक्ष्य अग्निका और प्रकाश दिव्याग्निका विशेष धर्म है। [illegible] ये तीनों अग्नियाँ अव्यक्त हैं, अर्थात् [illegible] रूपसे उपलब्ध नहीं होतीं। इनका जो रूप [illegible] उपलब्ध होता है, वह इन तीन अग्नियोंका [illegible] है। जिसको वैश्वानर कहते हैं, वह तापधर्मा है। पार्थिव-अग्निका धर्म है। उसमें उपलब्ध ज्वाला प्रकाश क्रमशः आन्तरिक्ष्य और सूर्य-अग्निका है। ज्वाला आन्तरिक्ष्य अग्निका असाधारण धर्म है। ताप और प्रकाश आगन्तुक धर्म हैं, जो [illegible] और दिव्याग्निसे आते हैं। प्रकाश [illegible] असाधारण धर्म है। ताप और ज्वाला—ये दोनों [illegible] और आन्तरिक्ष्य अग्निके धर्म हैं।

सोमके भी अनन्तानन्त रूपोंमेंसे आप, वायु और सोम—ये तीन रूप मुख्य हैं। इनमेंसे आप ([illegible] सोमका घनरूप है। वायु तरलरूप है। सोम [illegible] है। वेदोंमें अग्नि और सोमके सत्य तथा ऋत—रूप माने गये हैं। सहृदयरूप सत्य और हृदय[illegible] 'ऋत' माना गया है। अग्निका सत्य-रूप [illegible] और ऋत-रूप दिक्-अग्नि है, जो सर्वत्र व्याप्त है। सोमका सत्य-रूप चन्द्रमण्डल और ऋत-रूप दिक् है, जो सर्वत्र व्याप्त है। ऋत-अग्नि और ऋत-सोम ये दोनों रूप ऋतुओंके प्रवर्तक हैं।

सूर्यका विश्लेषण—ब्राह्मण-ग्रन्थोंने [illegible] विश्लेषण श्रुति, प्रत्यक्ष, ऐतिह्य और अनुमान—इन प्रमाणोंके आधारसे किया है— [illegible] सर्वैरेव विधास्यते।' इन प्रमाणोंके आधारसे उन्होंने (ब्राह्मणग्रन्थोंने) सूर्यकी उत्पत्ति, उनका ताप प्रका[illegible]

उसकी सात प्रकारकी सात किरणें, भूमण्डलपर उनका प्रभाव तथा व्यापक प्रभा (प्रकाश) आदि अनेक विधियोंका विश्लेषण किया है।

सूर्यकी उत्पत्ति—सूर्य एक अग्निपिण्ड है अर्थात् पार्थिव, आन्तरिक्ष्य एवं दिव्य (सूर्य)—इन तीनों अग्नियोंका समष्टि रूप पिण्ड है। पिण्डकी उत्पत्ति और स्थिति—ये दोनों ही बिना सोमके नहीं हो सकतीं। अग्नि स्वभावसे ही विशकलनधर्मा है। यह सोमसे सम्बन्धित हुए बिना पकड़में नहीं आती। संसारके पदार्थोंमें घनता उत्पन्न करना सोमका काम है। अतः सूर्यपिण्डकी उत्पत्ति भी इसी सोमाहुतिसे होती रही और हुई है। ध्रुव, धर्म, धरुण एवं धर्म-भेदसे सोम चार प्रकारके हैं। इस सोममात्राकी न्यूनता अथवा आधिक्यके कारण अग्नि भी ध्रुव, धर्म, धरुण एवं धर्मरूपोंमें परिणत हो जाती है। ये ही अवस्थाएँ निबिड, तरल, विरल एवं गुण कहलाती हैं। सूर्य पिण्ड है। पिण्डका निर्माण सोमके बिना नहीं हो सकता। ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें प्रतिपादित विज्ञानके आधारसे सोमकी आहुतिसे ही सूर्यका उदय हुआ है, जैसा कि शतपथश्रुतिका विज्ञान है—'आहुते (सोमाहुतेः) उदैत् (सूर्य)' अर्थात् सूर्यपिण्ड अग्नि और सोम—दोनोंकी समष्टि है।

सूर्यकी स्थिति—सूर्य एक पिण्ड है, जो सदा प्रज्वलित रहता है। अग्निमें जबतक सोमाहुति होती है, तभीतक वह प्रज्वलित रहती है। आहुतिके बंद होते ही अग्नि उच्छिन्न हो जाती है अर्थात् बुझ जाती है। अतः सदा प्रज्वलित दिखायी पड़नेवाले सूर्य-पिण्डमें भी अवश्य किसीकी आहुति माननी पड़ेगी, अन्यथा किसी भी स्थितिमें पिण्ड स्थिर एवं प्रज्वलित नहीं रह सकता। इस प्रकार ब्राह्मणोक्त विज्ञानके आधारसे सूर्यमें निरन्तर परमेष्ठ्यात्मक सोमकी आहुति होती रहती है, जिससे सूर्यका स्वरूप बना हुआ है। इस आहुतिके प्रभावसे ही यह अरबों वर्षोंसे एक-सा स्थिर बना हुआ है और आगे भी एक-सा स्थिर बना रहेगा।

सूर्यका प्रकाश—ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें सूर्यप्रकाशके विषयमें गहन चर्चा है। उनका कहना है कि सूर्य एक अग्नि पिण्ड है। अग्निका स्वरूप काला है। वेद स्वयं सूर्यपिण्डके लिये 'आकृष्णेन रजसा वर्तमान' (यजु०) कह रहा है। उस काले पिण्डसे जो ऋक्, यजु सोमात्मक प्राण निकलते हैं, वे सर्वथा रूप-रस आदिसे रहित हैं। पृथ्वीके ४८ कोसके ऊपरतक एक भूवायुका स्तर है, जो वेदोंमें 'एमूषवराह' नामसे प्रसिद्ध है। वह वायुस्तर सोमात्मक है। यह सोम बाह्य पदार्थ है। जब धाता (सूर्य) सौर-प्राण इस सोममें मिलता है, उस समय प्राणसंयोगसे वह सोम जलने लगता है। उसके जलते ही पृथ्वी-मण्डलमें प्रकाश (प्रभा) हो जाता है, जो हमको दिखायी पड़ता है। ४८ कोसके ऊपर ऐसा भास्वर प्रकाश नहीं है—यह सिद्धान्त समझना चाहिये। उस प्रकाशके पर्देमें ही हम उस काले पिण्डको सफेद देखने लगते हैं।

विज्ञानान्तर—सूर्य एक अग्निपिण्ड है। अग्निपिण्ड काला होता है—यह भी निश्चित है। इस कृष्ण अग्निमय सूर्य पिण्डमें ज्योति-प्रकाश सोमकी आहुतिसे उत्पन्न होता है, अर्थात् प्रकाश अग्नि और सोम—इन दोनोंके परस्पर सम्मिश्रणका फल है। इससे सिद्ध होता है कि केवल अग्निमें भी प्रकाश नहीं है और न केवल सोममें ही प्रकाश है। प्रकाश दोनोंके यज्ञात्मक सम्मिश्रणमें है। सूर्य किरणोंमें उपलब्ध ताप भी पार्थिव अग्निके सम्मिश्रणका ही फल है। भगवान् सूर्यकी अनन्त रश्मियोंमें सात रश्मियाँ मुख्य हैं। सात रस, सात रूप, सात धातु आदि सभी सात रश्मियोंके आधारपर ही प्रतिष्ठित हैं।

त्रयीमय सूर्य—ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें सूर्यमण्डलको त्रयीमय (वेदत्रयीमय) माना गया है, अर्थात्—ऋक्, यजु सामपय माना है। इसका निरूपण शतपथ
मत तपति

ऋच स ऋचा लोक । अथ यदर्चिर्दीप्यते तन्म हाम्रतम् । तानि सामानि स साम्ना लोक । अथ य एनस्मिन् मण्डले पुरुष सोऽग्नि । तानि यजूंषि, स यजुषा लोक । सैषा त्रय्येव विद्या तपति—

अर्थात् सूर्यमण्डल त्रयीविद्यामय है, अर्थात् सूर्यमण्डलमें तीन पर्व हैं—भूतपर्व, प्रकाशपर्व और प्राणपर्व । इनमेंसे भूतभाग ऋग्वेद है, प्रकाशभाग सामवेद है एव प्राणभाग यजुर्वेद है । इस प्रकार त्रयी-विद्या ही सूर्यरूपमें तप रही है । ब्राह्मण-ग्रन्थोंके मतमें न केवल सूर्य ही, अपितु पदार्थमात्र त्रयीमय—वेदमय है । पदार्थमें उपलब्ध नियमन-भाग ऋग्वेद है, प्रकाश भाग सामवेद है और पुरुषभाग यजुर्वेद है, किं बहुना, ऋक्, यजु, साम—इन तीनोंकी समष्टि ही पदार्थ है ।

विश्वका जीवन सूर्य—विश्वका जीवन सूर्य है । प्राणन, अपानन क्रिया (श्वास-प्रश्वास) जीवन है । इसका मूल सूर्य है, जैसा कि श्रुतिका उद्बोधन है—'अय गौ पृश्निरक्रमीत्, असदन्मातर पुर । पितर च प्रयन्त्स्व । व्यरूप महिषो दिवम्

'प्रात काल माता (पृथिवी) की ओर खड़े हुए तथा पिता (द्युलोक) की ओर जाते हुए नाना रूपवाले इन सूर्यने सारे विश्वपर आक्रमण किया है ।'

सूर्यकी किरणें समस्त प्राणियोंके अन्त करणमें प्राणन, अपानन क्रियाएँ करती रहती हैं । ऐसे ये सूर्य उदित होते ही सारे भूमण्डलमें व्याप्त हो जाते हैं । प्राणन-अपाननकी क्रिया ही जीवन है ।

निद्रा और उद्बोध—रात्रिमें प्राणिगण निद्रासे अभिभूत हो जाते और प्रात काल उद्बुद्ध हो जाते हैं, यह प्रत्यक्ष है । इन दोनोंके कारण भगवान् सूर्य ही हैं । इसका कारण शतपथ-ब्राह्मण इस प्रकार बतलाता है—'अथ यद् अस्तमेति, तदग्नावेव योनौ गर्भो भूत्वा प्रविशति, त गर्भ भवन्तमिमा सर्वा प्रजा अनुगर्भा भवन्ति । अर्थात् रात्रिके समय सूर्य पार्थिव अग्निमें गर्भस्वरूपसे प्रविष्ट हो जाता है । इसमें प्रबल यहां है कि रात्रि होते ही पार्थिव प्राणरूपी [illegible] नाडीमें हमारा आत्मा गर्भरत रूपमें परिणत हो जाता है । रात्रिके समय पार्थिव अग्निकी योनिमें प्रविष्ट हुए सूर्यके साथ ही उनकी रश्मियोंसे बद्ध हमारी [illegible] इनका धक्का पाकर स्वय भी पृथ्वीकी ओर गर्भित जाता है । ब्राह्मण विज्ञानके अनुसार रात्रिमें भी सू[र्य का] अभाव नहीं होता । केवल प्रकाशके प्रवर्तक [illegible] सूर्यका ही अभाव रहता है । दूसरे ग्यारह सूर्य रहते [हैं ।] दिनभर सूर्य प्राणोंका हरण किया करते हैं एव सायं होते ही सारे प्राणोंको उन पदार्थोंमें छोड़ जाते हैं । जबतक हमारे प्रातिस्विक (निजी) आत्मीय प्राण [पर] किसी अन्य बलिष्ठ प्राणका आक्रमण नहीं होता, तब हम आनन्दसे विचरण करते रहते हैं । परतु जहाँ [कि] बलिष्ठ प्राणने हमपर आक्रमण किया कि हम अ[भिभूत] हो जाते हैं । सायकाल होते ही विश्वदेव हमपर आक्र[मण] करते हैं, अत हमारी आत्मा अभिभूत हो जाती है [और] हम अचेत होकर सो जाते हैं, फिर प्रात काल होते [ही] सूर्य अपने प्राणोंको, जो रात्रिमें आये थे, खींचने [लगते] हैं । अत हमारा आत्मीय प्राण उद्बुद्ध हो जाता है ।

एका मूर्तिस्त्रयो देवा—ब्राह्मणोंके आधारसे सूर्यमण्डल ब्रह्मा, विष्णु और महेश है । उत्पा[दक] होनेसे वह ब्रह्मा, सबका आश्रय (अधिष्ठाता) होने[से] इन्द्र और यज्ञमय होनेसे विष्णु कहलाता है । इसी[से] 'एका मूर्तिस्त्रयो देवा —ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा' कहा जाता है । आज-कल जो महेश्वर नामसे प्रसि[द्ध] हैं, वेदभाषामें वे इन्द्र हैं, अर्थात् इन्द्रका एक [नाम] महेश्वर है । एक ही सूर्यनारायण गुण-भेदसे ब्रह्मा, वि[ष्णु] और महेश्वर हैं । अत एकका उपासक तीनों[का] उपासक है । इस रहस्यसे आजकलके वैष्णव और शै[व] दोनों विद्वान् अपरिचित हैं । इसका पुनर्मूल्याङ्कन कि[या] जाय, यह अनुरोध है । 'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'—सूर्यदेव सचराचर जगत्के आत्मरूप हैं ।

वैष्णवागममें सूर्य

(लेखक—डॉ० श्रीसियारामजी सक्सेना 'प्रवर')

(१)

ध्येय सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती
नारायण सरसिजासनसंनिविष्टः ।
केयूरवान् मकरकुण्डलवान् किरीटी
हारी हिरण्मयवपुर्धृतशङ्खचक्रः ॥

(तन्त्रसार)

निरुक्तमें आदित्यका एक नाम 'भरत' है । अत भारतका अर्थ हुआ—आदित्यकी ज्योति, इस ज्योतिकी उपासना करनेवाला । लेशक सम्बन्धमें अर्थ यह हुआ कि सूर्यकी उपासना करनेवाला देश अर्थात्—भारत । भारतीयोंमें गायत्रीकी उपासना आरम्भसे ही प्रचलित है । गायत्री वेद-माता है । फलितार्थ यह हुआ कि सूर्योपासना मुख्य वैदिक-विधि है और अन्य देवोंकी उपासनासे प्रवर्त्ती तथा उनकी आधारभूता है । 'तन्त्रसार'में विष्णु, नारायण, नरसिंह, हयग्रीव, गोपाल, श्रीराम, शिव, गणेश, दक्षिणामूर्ति, सूर्य, काम, शक्ति, त्वरिता, बाला, छिन्नमस्ता, कालिका, तारा और गरुड़की गायत्रियाँ दी गई हैं ।[२] 'बृहद्ब्रह्म-संहिता' आदि अन्य तन्त्रों, उपनिषदों तथा पुराणोंमें गणेश आदि अन्यान्य अनेक देवताओंकी गायत्रियाँ मिलती हैं । इससे स्पष्ट है कि भारतमें प्रचलित सभी मत सूर्यको सर्वदेवाधार मानते हैं । 'तन्त्रसार' का निर्देश है कि 'अपने इष्टदेवताको सूर्यमण्डलमें स्थित समझकर सूर्यको अर्घ्य दे और फिर उस देवताकी गायत्री जपे' ।[३] 'नन्दिकेश्वरसंहिता'में तो यहाँतक कह दिया है कि सूर्यको अर्घ्य दिये बिना विष्णु, शङ्कर या देवोंकी पूजा करनी ही नहीं चाहिये[४] । आशय यह है कि देवताओंकी शक्तियोंका अवस्थान सूर्यमण्डलमें है ।

सब देवोंके परमदेव नारायण हैं । नारायणमें सब देवता हैं और नारायण सूर्यमण्डलके अधिवासी हैं । 'बृहद्ब्रह्मसंहिता'में अनेक बार यह बात कही गयी है, यथा—

सूर्यमण्डलमध्यस्थं श्रीमन्नारायणं हरिम् ।
अर्घ्यं दत्त्वा तु गायत्र्या ॥[५]
सन्ध्यां कृत्वा हरिं ध्यात्वा सूर्यमण्डलमध्यगम् ॥[६]
सूर्यमण्डलमध्यस्थं अच्युतम् ॥[७]
आदित्ये पुरुषो योऽसौ ॥[८]
सन्ध्यां कृत्वा विधानेन मुनयो विष्णुदेवताम् ।
सूर्यमण्डलमध्यस्थामर्घ्यं दद्यात् समाहितः ॥[९]

'तन्त्रसार'में भी यही बात कही गयी है । सूर्यका ध्यान भी सवितृमण्डलमध्यवर्ती नारायणका ही ध्यान है । वैष्णव-तन्त्रोंकी इस विचारणाके आधार उपनिषदोंमें हैं[१०] । श्रुति-वचन है कि आदित्यकी 'शुक्लाभा' को ही 'नील परः कृष्णम्' जानना चाहिये ।

सूर्यमण्डलवर्ती देवके त्रयीरूपकी व्याख्या 'लक्ष्मीतन्त्र'के उन्तालीसवें अध्यायमें हुई है । व्यापक परब्रह्मकी नारायणी शक्ति परिणामद्वारा प्रणवाकृति हो जाती है । प्रणवके अग्नि और सोम अथवा क्रिया और भूति— ये दो विभाग हैं । निर्गुण षाड्गुण्य चिन्मय भाव परम उन्मेष ही शक्ति है, जो जगतकी रक्षाके लिये दो प्रकारसे प्रवर्तित होती है—

---

१ निरुक्त २ । २ । ८ । २ तन्त्रसार, पृष्ठ ६८से ७० । ३ (क) ततः ॐ सूर्यमण्डलस्थायै अमुकदेवतायै नमः इत्यनेन तत्तद्गायत्र्या त्रिवारं जलं निक्षिप्य तत्तद्गायत्रीं जपेत् । पृ० ६५ ।

(ख) सूर्यमण्डलवासिन्यै देवतायै ततः परम् । अर्घ्यमञ्जलिमादाय गायत्र्या वा त्रिरुत्क्षिपेत् ॥ पृ० ६८

४ नं० सं०, तन्त्रसार पृ० ६६में उद्धृत । ५ बृ० ब्र० सं० १ । १२ । ५४ । ६ बृ० ब्र० सं० ३ । ७ । १८ ७ बृ० ब्र० सं० ३ । ७ । १८३ । ८ बृ० ब्र० सं० ३ । ७ । १०१ । ९ बृ० ब्र० सं० ३ । १० । १ । १० 'य एष आदित्ये पुरुषो दृश्यते' बृ० उप० ४ । ११ । १

ऐश्वर्य सम्मुख होकर और तेजोमुख होकर । ऐश्वर्य सम्मुखरूप षाड्गुण्य है । इसे 'भूति-लक्ष्मी' भी कहा जाता है । ऐश्वर्य भूयिष्ठ इस भूत-शक्तिका तनु सोममय है । 'भूति' जगत्का आप्यायन करती है, इससे उसे 'सोम' कहा जाता है ।

षाड्गुण्य विग्रहा परमेश्वरी व्यूहिनी हैं । उनके तीन व्यूह हैं—इच्छामय, ज्ञानमय और क्रियामय । इनमें क्रियामय व्यूह ही शक्तिका तेजोमय रूप है । यह उज्ज्वल तेज और षाड्गुण्यमयी है । इसके भी तीन व्यूह हैं—सूर्यशक्ति, सोमशक्ति और अग्निशक्ति । इनमें सूर्यशक्ति उज्ज्वल, परा और दिव्या है, जो निरन्तर जगतका निर्वहण कर रही है । इसके अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत—तीन रूप हैं । अध्यात्मस्था सूर्यशक्ति पिङ्गला नाड़ीके मार्ग-पर चलती है[1] । अधिभूतस्था सूर्यशक्ति विश्वमें आलोक-का प्रवर्तन करती है । अधिदैविकी सूर्यशक्ति सूर्यमण्डलमें सस्थित है । सूर्यमण्डलमें जो तपनात्मिका तप्त अर्चियाँ हैं, वे ऋचाएँ हैं[2] । जो उसकी अन्तःस्थ दीप्तियाँ हैं, वे साम हैं और जो पराशक्ति पुरुषरूपमें सूर्यमण्डलके अन्तःस्थ है, वह रमणीय दिव्य पुरुष यजुर्मय है । 'क्रिया-व्यूह'की सोममयी और अग्निमयी शक्तियोंका [illegible] इस लेखकी सामासे बाहरका विषय है । अतः हम केवल सूर्यशक्तिका वर्णन कर रहे हैं ।

सूर्यमण्डलका अन्तर्वर्ती यह पुरुष शङ्खचक्रधारी, श्रीश, पीनोदर, चतुर्भुज, प्रसन्नवदन, कमलासन और कमलनेत्र है । इस अन्तःस्थ पुरुषकी मूर्धा 'दशहोता' है, स्तनादिक 'षड्होता' है, शीर्षण्य सप्तप्राण 'सप्तहोता' है, शोभा 'दक्षिणा' है, सन्धियाँ 'सभाएँ' [illegible] नाड़ियाँ देवाग्नियाँ हैं, मन होताओंका हृदय [illegible] चेतन 'पुरुषसूक्त' है, शक्ति 'श्रीसूक्त' है, गुह्य नाम 'ॐकार-प्रणव-तार' है और स्थूल नाम 'रुद्रि[illegible]' तथा 'शुक्रिय' है[3] । इस दिव्य यजुर्मय तनुका अभ्या[illegible] करनेसे मनुष्य अभिचार और पापोंसे मुक्त हो जाता है यह लक्ष्मीतन्त्रका निर्देश है ।

वैदिक विचारणामें प्रत्येक देवताका परम रूप 'ब्र[illegible]' ही है । वेद सूर्यको जगत्का कारण, चराचरकी आ[illegible] और ब्रह्म बताते हैं[4] । उपनिषदोंमें भी यही कहा ग[illegible] है ।[5] वैष्णवागमों और तन्त्रोंमें सूर्यमण्डलमध्य[illegible] नारायणकी मान्यता वेदोंकी इसी प्रतिपत्तिके अनुस[illegible] है । 'विष्णुसहस्रनाम'में सूर्य और उसके पर्यायों[illegible] विष्णुके नामोंमें गिनाया गया है ।[6] 'नारदपञ्चरात्र'में [illegible] विष्णु-नामोंमें सूर्यके नामोंकी गणना करायी गया है [illegible] आदित्य बारह हैं और विष्णु भी द्वादश स्वरूप [illegible] हैं ।[7] ज्योतिर्मयतामें भी सूर्य और विष्णुका अभेद है[8] सूर्य तेजोमय हैं,[9] विष्णु भी ज्योति स्वरूप हैं ।[10] 'भग[illegible]

[1] इसीलिये पिङ्गला नाड़ीको सूर्यनाड़ी कहा जाता है । यह पुरुषा है । [2] मिलाइये—(क) आदित्यो वा [illegible] एतन्मण्डलं तपति । तत्र ता ऋचस्तदृचां मण्डलम् ॥ (—नारायणोपनिषद् ३ । १४) (ख) विष्णुपुराण । [3] इनकी विस्तृत जानकारीके लिये द्रष्टव्य है—तैत्तिरीय आरण्यकका तृतीय प्रपाठक । रुद्रिय, शुक्रिय नामोंके लिये द्रष्टव्य है—अहिर्बुध्न्य-संहिता, अ० ८ और ५९ । [4] यथा—ऋ० १ । ११५ । १ । [5] यथा—(१) आदित्यो ब्रह्मेत्यादेशस्तस्योपव्याख्यानम् । छा० उ० ३ । १९ । १ (२) तैत्ति० उ० ३ । १ । १ । [6] वि० स० ना० । ना० पं० रा० श्लोक १ । १ । ७० । [7] ना० पं० रा० ४ । ८ । ४८ । [8] वही ४ । ८ । ४८ । [9] यथा—तेजस्विनां सूर्य । ना० पं० रा० १ । १ । ७० । रवेर्ज्योति स्वरूपस्य (पुराणसंहिता ८ । २९) तथा पु० स० १ । ३२ । [10] ब्रह्मज्योति ना० पं० रा० १ । १ । ६२, १ । ६ । १० । १ । ७ । ८४ । परंज्योति ना० पं० रा० ४ । ३ । १० । ज्योतिरूपम् ना० पं० रा० १ । १२ । २७ । ब्रह्म तेजोमय ब्रह्म० ना० पं० रा० ४ । ३ । ७८ । एक ज्योति स्वरूप [illegible] सच्चिदानन्दस्वरूपम्—सनत्कुमारसंहिता ३४ । २ । १ ।

ष्णुमाया सनातनी' ही भास्करमें प्रभारूपा परिलक्षित ती हैं।[2]

किंतु वास्तवमें सूर्यकी आधिभौतिकी प्रभा ही 'ज्योति रूप ब्रह्म' नहीं है। ब्रह्मज्योति तो निर्गुण, र्लिप्त, परम शुद्ध, प्रकृतिसे परे, कृष्ण-रूप, सनातन और [?]म है[3]। वह नित्य और सत्य है तथा भक्तानुग्रह तर है[4]। वह आदित्यकी ज्योतिके भी भीतर हनेवाली आधारभूता परमा, शाश्वती 'ज्योति' है। इसीसे से ब्रह्मज्योति कहा गया है। यह ब्रह्मज्योति ही ष्णवोंके अतुल रूपधारी 'श्यामसुन्दर' हैं।[5]

यत ब्रह्मज्योति सूर्य-ज्योतिका आधार है और हेतु । अत ब्रह्मज्योति अधिभूत सूर्यकी ज्योतिसे करोड़ों ना अधिक है।[6]

'नरसिंह' रूपकी व्याख्यामें आगमका कथन है कि जो हंसरूप जनार्दन आकाशमें सूर्यके साथ जाते हैं, उन विहगम भगवान्का वर्णन सूर्यके वर्णसे किया जाता है।[7] तात्पर्य यह कि अनन्त आकाश-व्यापी विष्णुकी आभाका एक रूप सूर्य हैं। नृसिंहमन्त्रके 'भद्र' पदकी व्याख्यामें कहा गया है कि सूर्यमें प्रकाश भरने, सज्जनोंमें भद्रभाव जागरित करने और घोर संसार-ताप रूप भयको भगा देनेके कारण नृसिंह 'भद्र' कहे गये हैं।[8] परमात्मा परात्पर श्रीकृष्णकी सतत उपासना सूर्यादिक सभी देव करते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण सूर्य, इन्द्र, रुद्र आदि सभीके द्वारा वन्दित हैं[9]। सूर्य उन्हींके प्रसादसे तपते हैं।[10]

१—ना० प० रा० २। ६। १८　२ प्रभारूपे भास्करे सा (—ना० प० रा० २। ६। २४)

३ अनन्त परमं शुद्ध ब्रह्मज्योति सनातनम्। निर्लिप्त निर्गुण कृष्णं परम प्रकृते परम्॥
(—ना० प० रा० १। १२। ४८)

४ नित्य सत्य निर्गुण च ज्योतिरूप सनातनम्। प्रकृते परमीशान भक्तानुग्रहकातरम्॥
(—ना० प० रा० १। १२। २७)

५ ध्यायन्ते सतत सन्तो योगिनो वैष्णवा सदा। ज्योतिरभ्यन्तरे रूपमतुल श्यामसुन्दरम्॥
(—ना० प० रा० १। १। ३)

६ गोपगोपीश्वरो योगी सूर्यकोटिसमप्रभ। (—ना० प० रा० ४। १। २४) सूर्यकोटिप्रतीकाश॥
(—ना० प० रा० ४। ३। ३०)

सूर्यकोटिप्रतीकाश पूर्णेन्दुयुतसंनिभ। यस्मिन् परे विराजन्ते मुक्ता संसारबन्धनैः॥
(—लक्ष्मीतन्त्र १७। १)

तत्रेश्वर कोटिदिवाकरद्युतिम्॥ (—पुराणसंहिता ११। २३। १२)

७ सूर्येण य सहायाति हंसरूपी जनार्दन। विहगम स देवश सूर्यवर्णेन वर्ण्यत॥
(—अहिर्बुध्न्यसंहिता ५६। २६)

८ भा ददाति रवौ भद्रा भाव द्रावयते सताम्। भव द्रावयते घोर संसारतापसन्ततम्॥
(—अहि० स० ५४। २३ ३४)

९ गणेशशेषब्रह्मेशदिनेशप्रमुखा सुरा। कुमाराद्यश्च मुनय सिद्धाश्च कपिलादय॥
लक्ष्मीसरस्वतीदुर्गासावित्रीराधिकापरा। भक्त्या नमन्ति य शश्वत् त नमामि परात्परम्॥
(—ना० प० रा०, प्रा० वन्दना)

स्तुवन्ति वेदा सावित्री यद्मातृका॥　(—ना० प० रा० १। ३। ४१)

ब्रह्मसूर्येन्द्ररुद्रादिवन्द्य॥　(—ना० प० रा० ४। ३। १११)

१० यत्प्रसादेन " " तपत्यर्क।　(—पुराणसंहिता १८। ३०

ऐश्वर्य सम्मुख होकर और तेजोमुख होकर। ऐश्वर्य सम्मुखरूप षाड्गुण्य है। इसे 'भूति-लक्ष्मी' भी कहा जाता है। ऐश्वर्य भूयिष्ठ इस भूत शक्तिका तनु सोममय है। 'भूति' जगतका आप्यायन करती है, इससे उसे 'सोम' कहा जाता है।

षाड्गुण्य विग्रहा परमेश्वरी व्यूहिनी हैं। उनके तीन व्यूह हैं—इच्छामय, ज्ञानमय और क्रियामय। इनमें क्रियामय व्यूह ही शक्तिका तेजोमय रूप है। यह उज्ज्वल तेज और षाड्गुण्यमयी है। इसके भी तीन व्यूह हैं—सूर्यशक्ति, सोमशक्ति और अग्निशक्ति। इनमें सूर्यशक्ति उज्ज्वल, परा और दिव्या है, जो निरन्तर जगत्‌का निर्वहण कर रही है। इसके अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत—तीन रूप हैं। अध्यात्मस्था सूर्यशक्ति पिङ्गला नाड़ीके मार्ग-पर चलती है[1]। अधिभूतस्था सूर्यशक्ति विश्वमें आलोकका प्रवर्तन करती है। आधिदैविकी सूर्यशक्ति सूर्यमण्डलमें संस्थित है। सूर्यमण्डलमें जो तपनात्मिका तप्त अर्चियाँ हैं, वे ऋचाएँ हैं[2]। जो उसका अन्तःस्थ दीप्तियाँ हैं, वे साम हैं और जो पराशक्ति पुरुषरूपमें सूर्यमण्डलके अन्तःस्थ है, वह स्वर्गीय दिव्य पुरुष यजुर्मय है। 'क्रिया-व्यूह'की सोममयी और अग्निमयी शक्तियोंका वर्णन इस लेखकी सामाके बाहरका विषय है। अतः हम केवल सूर्यशक्तिका वर्णन कर रहे हैं।

सूर्यमण्डलका अन्तर्वर्ती यह पुरुष शङ्खचक्रधारी, श्रीश, पीनोदर, चतुर्भुज, प्रसन्नवदन, कमलासन और कमलनेत्र है। इस अन्तःस्थ पुरुषकी मूर्धा 'दशहोता' है, स्तनादिक 'षड्होता' हैं, शीर्षण्य सप्तप्राण 'सप्तहोता' हैं, शोभा 'दक्षिणा' है, सन्धियाँ 'सम्भार' हैं, नाड़ियाँ देवपत्नियाँ हैं, मन होताओंका हृदय है, चेतन 'पुरुषसूक्त' है, शक्ति 'श्रीसूक्त' है, गुह्यनाम 'ओङ्कार-प्रणव-तार' है और स्थूल नाम 'रुद्रिय तथा 'शुक्रिय' हैं[3]। इस दिव्य यजुर्मय तनुका अध्ययन करनेसे मनुष्य अभिचार और पापोंसे मुक्त हो जाता है। यह लक्ष्मीतन्त्रका निर्देश है।

वैदिक विचारणामें प्रत्येक देवताका परम रूप 'ब्रह्म' ही है। वेद सूर्यको जगत्‌का कारण, चराचरकी आत्मा और ब्रह्म बताते हैं[4]। उपनिषदोंमें भी यही कहा गया है।[5] वैष्णवागमों और तन्त्रोंमें सूर्यमण्डलमध्यस्थ नारायणकी मान्यता वेदोंकी इसी प्रतिपत्तिके अनुसार है। 'विष्णुसहस्रनाम'में सूर्य और उसके पर्यायोंको विष्णुके नामोंमें गिनाया गया है।[6] 'नारदपञ्चरात्र'में भी विष्णु-नामोंमें सूर्यके नामोंकी गणना करायी गयी है। आदित्य बारह हैं और विष्णु भी द्वादश स्वरूप हैं।[7] ज्योतिर्मयतामें भी सूर्य और विष्णुका अभेद है—सूर्य तेजोमय हैं,[8] विष्णु भी ज्योतिःस्वरूप हैं।[9] 'भागवती

१ इसीलिये पिङ्गला नाड़ीको सूर्यनाड़ी कहा जाता है। यह पुरुषा है। २ मिलाइये—(क) आदित्यो वा एष एतन्मण्डलं तपति। तत्र ता ऋचस्तदृचां मण्डलम्॥ (—नारायणोपनिषद् ३। १४) (ख) विष्णुपुराण। ३ इनकी विस्तृत जानकारीके लिये द्रष्टव्य है—तैत्तिरीय आरण्यकका तृतीय प्रपाठक। रुद्रिय, शुक्रिय नामोंके लिये द्रष्टव्य है—अहिर्बुध्न्यसंहिता, अ०—५८ और ५९। ४ यथा—ऋ० १। ११५। १। ५ यथा—(१) आदित्यो ब्रह्मेत्यादेशस्तस्योपव्याख्यानम्। छा० उ० ३। १९। १। (२) तैत्ति० उ० ३। १। १। ६ वि० स० ना०। ना० प० रा० स्तोत्र १। ७०। ७ ना० प० रा० ४। ८। ४८। ८ वही ४। ८। ४८। ९ यथा—तेजस्विना सुय। ना० प० रा० १। १। ७०। स्वयंज्योति स्वरूपस्य (पुराणसंहिता ८। २९) तथा—पु० स० १५। ३२। १० ब्रह्मज्योति ना० पं० रा० १। १। ६२ १। ६। १० १। ७। ८४। परज्योति ना० प० रा० ४। ३। १०। ज्योतिरूपम् ना० प० रा० १। १२। २७। ब्रह्म तेजोमयं ब्रह्म० ना० प० रा० ४। ३। ७८। एक ज्योति स्वरूप सच्चिदानन्दरूपम्—सनत्कुमारसंहिता १४। २। १।

'युगाया सनातनी'[1] ही भास्करमें प्रभारूपा परिलक्षित होती हैं।[2]

किंतु वास्तवमें सूर्यकी आधिभौतिकी प्रभा ही 'ज्योति-रूप ब्रह्म' नहीं है। ब्रह्मज्योति तो निर्गुण, निर्लिप्त, परम शुद्ध, प्रकृतिसे परे, कृष्ण-रूप, सनातन और परम है[3]। वह नित्य और सत्य है तथा भक्तानुग्रह-कातर है[4]। वह आदित्यकी ज्योतिके भी भीतर रहनेवाली आधारभूता परमा, शाश्वती 'ज्योति' है। इसीसे उसे ब्रह्मज्योति कहा गया है। यह ब्रह्मज्योति ही वैष्णवोंके अतुल रूपधारी 'श्यामसुन्दर' हैं।[5]

अतः ब्रह्मज्योति सूर्य-ज्योतिका आधार है और हेतु है। अतः ब्रह्मज्योति अधिभूत सूर्यकी ज्योतिसे करोड़ों गुनी अधिक है।[6]

'नरसिंह' रूपकी व्याख्यामें आगमका कथन है कि जो हंसरूप जनार्दन आकाशमें सूर्यके साथ जाते हैं, उन विहगम भगवान्का वर्णन सूर्यके वर्णसे किया जाता है।[7] तात्पर्य यह कि अनन्त आकाश-व्यापी विष्णुकी आभाके एक रूप सूर्य हैं। नृसिंहमन्त्रके 'भद्र' पदकी व्याख्यामें कहा गया है कि सूर्यमें प्रकाश भरने, सज्जनोंमें भद्रभाव जागरित करने और घोर संसार-ताप रूप भयको भगा देनेके कारण नृसिंह 'भद्र' कहे गये हैं।[8] परमात्मा परात्पर श्रीकृष्णकी सतत उपासना सूर्यादिक सभी देव करते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण सूर्य, इन्द्र, रुद्र आदि सभीके द्वारा वन्दित हैं[9]। सूर्य उन्हींके प्रसादसे तपते हैं।[10]

१—ना० प० रा० २। ६। १८ २ प्रभारूपे भास्करे सा (—ना० प० रा० २। ६। २४)

३ अनन्त परमं शुद्धं ब्रह्मज्योतिः सनातनम्। निर्लिप्तं निर्गुणं कृष्णं परमं प्रकृतेः परम्॥ (—ना० प० रा० १। १२। ४८)

४ नित्यं सत्यं निर्गुणं च ज्योतिरूपं सनातनम्। प्रकृतेः परमीशानं भक्तानुग्रहकातरम्॥ (—ना० प० रा० १। १२। २७)

५ ध्यायन्ते सततं सन्तो योगिनो वैष्णवा सदा। ज्योतिरभ्यन्तरे रूपमतुलं श्यामसुन्दरम्॥ (—ना० प० रा० १। १। ३)

६ गोपगोपीश्वरो योगी सूर्यकोटिसमप्रभः। (—ना० प० रा० ४। १। २४) सूर्यकोटिप्रतीकाश॥ (—ना० प० रा० ४। ३। ३०)

सूर्यकोटिप्रतीकाश पूर्णेन्दुयुतसंनिभ। यस्मिन् परे विराजन्ते मुक्ताः संसारबन्धनैः॥ (—लक्ष्मीतन्त्र १७। १)

तमीश्वरं कोटिदिवाकरद्युतिम्॥ (—पुराणसंहिता ११। २३। ११)

७ सूर्येण यः सहायाति हंसरूपी जनार्दनः। विहंगमः स देवेशः सूर्यवर्णेन वर्ण्यते॥ (—अहिर्बुध्न्यसंहिता ५६। २६)

८ भां ददाति रवौ भद्रां भावं द्रावयते सताम्। भवं द्रावयते घोरं संसारतापसंततम्॥ (—अहि० सं० ५४। २३ २४)

९ गणेशशेषब्रह्मेशदिनेशप्रमुखाः सुराः। कुमाराद्याश्च मुनयः सिद्धाश्च कपिलादयः॥ लक्ष्मीसरस्वतीदुर्गासावित्रीराधिकापराः। भक्त्या नमन्ति यं शश्वत् तं नमामि परात्परम्॥ (—ना० प० रा०, प्रा० धारणा)

'स्तुवन्ति वेदाः सावित्री वेदमातृका॥ (—ना० प० रा० १। ३। ४१)

ब्रह्मसूर्येन्द्ररुद्रादिवन्द्य॥ (—ना० प० रा० ४। ३। ११)

१० यत्प्रसादेन ... तपत्यर्क। (—पुराणसंहिता १५। ३२)

वैष्णवागमोंका लक्ष्य भगवान् विष्णुकी परब्रह्मता दिखाना है। अतः वे सूर्यको एक देवताके रूपमें ही प्रदर्शित करते हैं। फिर भी सूर्यको विष्णुसे सर्वथा पृथक् नहीं दिखाया गया है। उनके स्वरूपको समझनेके लिये सूर्य-सारूप्यका संकेत हुआ है।

सूर्य विष्णुके निवास हैं, यह हम देख चुके हैं। इसीको यों भी कहा गया है कि सूर्यमण्डल क्षेत्र है और विष्णु क्षेत्रज्ञ हैं। क्षेत्रका अर्थ 'पीठ या भद्रपीठ' भी है।[1] 'बृहद्ब्रह्मसंहिता'का कथन है कि श्रुतिने गायत्रीमें जिस पुरुषको रहना कहा है, आदित्य उसका शरीर है। तात्पर्य यह कि सविता नामके विष्णुकी सवितामें स्थित होनेकी धारणा करे।[3] अतः बुधजनोंने सविताको गायत्रीका देवता कहा है। सविता देवता गायत्रीसे स्वतन्त्र या पृथक् नहीं हैं, क्योंकि जैसा कि श्रुतिने कहा है—सब कुछ नारायणसे ही उत्पन्न हुआ है। इसलिये जो कुछ दृश्यमान जगत् है, उसके स्वामी नारायण हैं और ज्ञान-कर्म-तप-श्रुति सब नारायण परायण हैं—

आदित्ये पुरुषो योऽसावहमेवेति निश्चितम्।
आदित्यस्य शरीरत्वादिदमद् श्रुतिरब्रवीत्॥
सवितृनामका विष्णुः सवितृस्थो विचार्यताम्।
सविता देवता तेन गायत्र्या ख्यायते बुधैः॥
न स्वतन्त्रतया देवो गायत्र्याः सविता मतः।
नारायणादेव सर्वमुत्पन्नं श्रुतिरब्रवीत्॥[4]

इस प्रकार विष्णवागम प्रस्थानत्रयमें कहा जाता है कि सूर्य वासुदेवकी आठ विभूतियोंमेंसे एक हैं, जो आठों हरिको भद्रपीठरूपमें स्थित हैं। अतः मुमुक्षुओंको इनका अभेदरूपमें उपासना करनी चाहिये—

सूर्याग्नीन्द्र विधि सोम रुद्र वायु क्षिति ब्रह्म।
वासुदेवात्मकान्याहु क्षेत्र क्षेत्रज्ञ एव च।
विभूतयो हरेरेता भद्रपीठतया स्थिताः।
तदभेदतयोपास्या मुमुक्षुभिरहर्निशम्।

किंतु यह स्मरण रखना आवश्यक है कि भ[illegible] वासुदेव ही सर्वत्र व्याप्त हैं और उनसे अतिरिक्त [illegible] भी नहीं है। ब्रह्मा, इन्द्र, शिव, गणेश और सूर्य-ये [illegible] वासुदेवकी शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी तनुभूत विभूतियाँ [illegible] अतः मुक्तिकी इच्छा रखनेवाले हरिके भक्त शि[illegible] देवताकी उपासना उसे विष्णुका 'शरीर', 'पीठ', '[illegible]' या 'नेत्र' (अंश) माननेके अतिरिक्त अन्य [illegible] भावसे कैसे कर सकते हैं?

व्यापको भगवानेव व्याप्य सर्वं चराचरम्
न तदस्ति विना यत् स्याद् वासुदेवेन किंचन
ब्रह्मा शक्रश्च रुद्रश्च गणेशो भास्करस्तथा
विचिन्त्या वासुदेवस्य तनुभूता विभूतय[illegible]
चतुर्भुजाः शङ्खचक्रगदाजलजधारिण[illegible]
नान्य देव नमस्कुर्यात् तच्छरीरतया विना
पृथक्त्वभावयन्ना वा मामकास्ते प्रकीर्तिता[illegible]
हरेः पीठा हरेर्दासा हरिशेषा [illegible]
पृथग्भूता न चाभूता उपास्या मुक्तिमिच्छता

सूर्य और चन्द्रमा विराट् पुरुषके नेत्र हैं। [illegible] पञ्चरात्रान्तर्गत विष्णुसहस्रनाममें विष्णुका नाम '[illegible] सोमभग'[illegible] है और अन्यत्र इन्हें 'रविलोचन' कहा है। 'माहेश्वर-तन्त्र'का कथन है कि सूर्य भग[illegible] नयन हैं।

वैष्णवागममें सूर्यकी उपासना देवरूपमें ही प्र[illegible] है। नवग्रह पूजा, सूर्यार्घ्य, सूर्यपूजा, पञ्चदेवो[illegible] और पञ्चायतन-पूजामें सूर्यकी धारणा एक देवत[illegible]

---

१ बृ० ब्र० सं० ३। ७। १। २ (क) बृ० ब्र० सं० ३। ७। १६। (ख) इति पी[illegible] विष्णवाग्निय प्रतिपाद्यते॥ (—बृ० ब्र० सं० ३। ७। १०)। ३ विष्वक्सेन-संहिता उ० ३। १। १। ४ ब्र० सं० ३। ७। १०१-१०३। बृ० ब्र० सं० ३। ७। १ —१०६। ६ बृ० ब्र० सं० ३। ७। २०६–२१०। ७ ना[illegible] ना० ८। ३। ३०। ८ ना० पं० ना० ८। ८। ४८। ९ ब्र० सं० ३। १०। ७०। १० सूर्योऽस्य चक्षुरिति गत (—माहे० तं० १।[illegible]

है । भगवान् विष्णु इनके अन्तर्वर्ती परम प्रभु हैं, परात्पर हैं । वे रवि हैं, रवितनु हैं, रविरूप हैं और रविके अंश हैं[1] । नारायणगायत्रीके अनुसार वे हंस ही नहीं— महाहंस हैं[2] । 'नारदपञ्चरात्र'में परमात्मा श्रीकृष्णके एक सौ आठ नामोंमें एक नाम 'सर्वग्रहरूपी'[3] भी है । सर्वग्रहरूप होना प्रत्येक ग्रहसे परम-श्रेष्ठ होना है। अतः आगमका वचन है कि एक श्रीकृष्णमन्त्रके जपसे सभी ग्रहोंका अनुग्रह प्राप्त हो जाता है[4] ।

सूर्यदेव हेमवर्णके हैं[5] । भगवान् सूर्य अपने एक चक्र (संवत्सर) वाले बहुयोजन विस्तृत रथमें आसीन होकर अपने स्निग्ध अंशुओंसे जगत्को प्रकाशित करते हैं । उस महान् रथके वाहक सात अश्व हैं, जिनका परिचालक सारथि अरुण स्वयं है—

रथमास्थाय भगवान् बहुयोजनविस्तृतम् ।
वामपार्श्वे स्थितं त्वेकचक्रं दिव्यं प्रतिष्ठितम् ॥
वहन्ति सततं सप्तच्छन्दांसि स्यन्दनं महत् ।
सारथिश्चारुणः सर्वानश्वान् वाहयति स्वयम् ॥[6]

सूर्यके बारह रूप हैं । ये बारह आदित्य बारह महीनोंसे सम्बद्ध हैं । इनके नाम हैं—इन्द्र, धाता, भग, पूषा, मित्र, वरुण, अर्यमा, अंशु, विवस्वान्, त्वष्टा, सविता और विष्णु[7] । वैष्णवागमके अनुसार समस्त विश्व चतुर्व्यूहात्मक है । अष्ट वसु वासुदेवकी, एकादश रुद्र संकर्षणकी, द्वादश आदित्य अनिरुद्धकी और विश्व पितर प्रद्युम्न (विष्णु)की विभूतियाँ हैं[8] । सभी प्राणियोंमें विष्णुका अन्तर्यामित्व है ।

सूर्यकी द्वादश कलाएँ हैं । इनके नाम हैं— तपिनी, तापिनी, धूम्रा, मरीचि, ज्वालिनी, रुचि, सुधूम्रा, भोगदा, विश्वा, बोधिनी, धारिणी और क्षमा[9] । (कहीं-कहीं[10] सुधूम्राके स्थानपर सुषुम्णा नाम मिलता है ।)

(२)

सूर्योपासनाके प्रमुख रूप हैं—गायत्री-उपासना, सन्ध्या, सूर्यमन्त्र जप, सूर्यपूजा और पञ्चदेव-पूजा । किसी भी प्रकारकी पूजासे पूर्व इष्टदेवका आवाहन किया जाता है और अर्घ्य दिया जाता है । षोडशोपचार हो तो उत्तम है । जपसे पूर्व मालाका संस्कार किया जाता है । अब इनपर संक्षेपमें विचार किया जायगा ।

पूजासे पहले देवताका आवाहन किया जाता है । सूर्यका आवाहन इनके ध्यानके साथ किया जाता है, क्योंकि वे आकाशके मणि, ग्रहोंके स्वामी,[11] समाक्ष, द्विभुज, दिनेश और सिन्दूरवर्णी हैं तथा उनके भजनसे कुलकी

१ रविरंशभागी (—ना० प० रा० ४ । ८ । ४८)
२ (क) हंसो हंसी हंसगुर्हंसरूपी कृपामयः । (—ना० प० रा० ४ । ८ । ८८)
(ख) नारायणाय पुरुषोत्तमाय च महात्मने । विशुद्धसत्त्वाधिष्ठाय महाहंसाय धीमहि ॥
(ना० प० रा० ४ । ३ । ७)
३ सर्वग्रहरूपी परात्परः (ना० प० रा० ४ । ? । ३६)
४ इमं मन्त्रं महादेवि जपन्नेव दिवानिशम् । सर्वग्रहानुग्रहभाक् सर्वप्रियतमो भवेत् ॥
(ना० प० रा० ४ । ? । ४४)
५ (तन्त्रसार, पृ० सं० ६२) । ६ (बृ० ब्र० सं० २ । ७ । १३-१४)
७ इन्द्रो धाता भगः पूषा मित्रोऽथ वरुणोऽर्यमा । अंशुर्विवस्वांस्त्वष्टा च सविता विष्णुरेव च ॥
(बृ० ब्र० सं० ३ । १० । २२)
८ बृ० ब्र० सं० ३ । १० । २३ । ९ बृ० ब्र० सं० ३ । १० । ४८ । १० शारदातिलकतन्त्र — ६ । २
११ देखिये, पुराणसंहिता १० । ६० की पादटिप्पणी । १२ भवाव्ययं त द्युमणिं महेशं मताम्बराद्‌ द्विभुजं ...

वृद्धि होती है। 'ॐ घृणि सूर्य आदित्योम्' इस मन्त्रसे सूर्यको अर्घ्य दिया जाता है[1]। 'सम्मोहन-तन्त्र'में 'ह्रीं हंसः' मन्त्रसे अर्घ्य देनेका निर्देश है[2]। इस प्रकार तन्त्रोंमें सूर्यका आवाहन-मन्त्र यह हो जाता है— 'ह्रीं हंस ॐ घृणि सूर्य आदित्य'। इसके पश्चात् इष्ट देवताकी सम्प्रदायानुसार गायत्रीसे अथवा 'ॐ सूर्यमण्डलस्थायै नित्यचैतन्योदितायै अमुकदेवतायै नमः' इस मन्त्रसे तीन बार जलाञ्जलि दी जाती है। 'अमुक'के स्थानपर अपने इष्टदेवताका नाम जोड़ा जाता है। अर्घ्य देनेके अनन्तर गायत्रीका जप करना चाहिये[3]। सूर्यको अर्घ्य देनेके पश्चात् ही हर, हरि या देवीकी पूजा की जाती है[4]।

किसी भी जपसे पहले मालाका संस्कार किया जाता है। 'आगमकल्पद्रुम'के अनुसार माला-संस्कार विधि यह है कि आसन-शुद्धि और भूतशुद्धिके पश्चात् पञ्चदेवोंका आवाहन किया जाय। पञ्चदेवोंमें सूर्यदेव भी हैं। साधक मालाको थोड़ी देर पञ्चगव्यमें रखकर फिर स्वर्णपात्रमें रखे हुए पञ्चामृतमें स्थापित करे। फिर शीतल जलसे धोकर धूप दे और चन्दन, कस्तूरी, कुंकुम आदिका लेप करे। फिर १०८ बार ॐका जप करे और नवग्रह, दिक्पाल तथा गुरुकी पूजा करे। तत्पश्चात् मालाको ग्रहण करे[5]।

सूर्यके द्वादशनाम, अष्टोत्तरशतनाम, सहस्रनाम तथा मन्त्रोंका जप होता है। इनके बहुत अच्छे फल शास्त्रोंमें बताये गये हैं। मयूर कविकृत सूर्यशतक अन्य अनेक स्तोत्र हैं, जिनका भक्तगण यही गान करते हैं।

मन्त्र सोम, सूर्य और अग्निरूप होते हैं। जिज्ञासु इनका ज्ञान 'तन्त्रसार' आदि ग्रन्थोंसे प्राप्त कर सकते हैं। मन्त्रका फल प्राप्त करनेके लिये पहले मन्त्रको सिद्ध करना पड़ता है। सभी प्रकारके तन्त्रोंमें इसकी विधि बतायी गयी है। मन्त्र सिद्ध करनेके लिये मन्त्रको चैतन्य किया जाता है। इसकी एक विधि सूर्यमण्डलके माध्यम बतायी गयी है। बहिः स्थित अथवा अन्तः स्थित ध्यान कल्पनात्मक सूर्यमें साधक अपने सनातन गुरु शिव और ब्रह्मरूपा उनकी शक्ति तथा अपने मन्त्रका ध्यान करके उस मन्त्रका १०८ बार जप करे। इससे उसका मन्त्र चैतन्य हो जाता है। गायत्री-मन्त्र सूर्यसे सम्बद्ध है। 'ॐ घृणि सूर्य आदित्योम्' यह सूर्यका अष्टाक्षर मन्त्र है।

परमेश्वर-संहिताके अनुसार 'सूर्य' भगवान्‌के विमान आवरण भूतके देवताओंमेंसे एक हैं[6]। सूर्य और चन्द्र सौदर्शन महामन्त्रके दाहिने और बायें भागमें पूज्य हैं[7]।

गायत्री वेद-माता है और इसका जप करना प्रत्येक द्विजका अनिवार्य कर्तव्य है। जो यह त्रयी पराशक्ति

सिन्दूरवर्णं प्रतिमावभासं भजामि सूर्यं कुलवृद्धिहेतोः ॥ (कल्याण साधनाङ्क पृष्ठ ४८में उद्धृत)
ॐ आकृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च। हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥
(यजुर्वेद ३३।४३)

१ तन्त्रसार, पृ०–६५। २ वही। ३ ज्ञानार्णवतन्त्र
४ यावत्र दीयते चार्घ्यं भास्कराय महात्मने। तावन्न पूजयेद् विष्णुं शङ्करं वा महेश्वरीम् ॥
(नन्दिकेश्वरसंहिता)
आ० क० तन्त्रसार पृ० — पर उद्धृत। ६ तन्त्रसार पृ० ६२। ७ पार० सं० ११।२०६। ८ पार० सं० २१।२७

आकाशमें सूर्यनामसे तप रही है, वह (ऋक्-यजु-साममयी) तीन प्रकारकी है। वह वेद जननी सावित्री है। त्रिवर्ण प्रणव उसका आगार है। वह प्रकाशानन्द विग्रहा है, वर्णोंकी परामाता है और ब्रह्मसे उदित होकर उसीमें प्रतिष्ठित होती है। वह दिव्य सूर्य-वपु सावित्री अनुलोम-विलोमसे साम्य और आग्नेयी है। गानेवालेका त्राण करती है, अत वह गायत्री है। अपनी किरणोंके द्वारा पृथ्वी एव सरिताओं आदिसे जीवन (जल) लेकर वह पुन पौधोंमें छोड़ देती है। उसे सूर्यमयी शक्ति कहते हैं[1]।

परदेवता महादेवी गायत्री गुणभेदसे त्रिरूपा है। वह प्रात कालमें ब्रह्मशक्ति, मध्याह्नमें वैष्णवी शक्ति और सायकालमें वरदा शैवा शक्ति है। '**आद्यायै विद्महे परमेश्वर्यै धीमहि, तन्न काली प्रचोदयात्**'—यह तान्त्रिक गायत्री-मन्त्र है[2]। ब्रह्मके उपासकोंको गायत्री जप करते समय ब्रह्मको गायत्रीका प्रतिपाद्य समझना चाहिये। किंतु अन्य सब आराधक वैदिकी सध्या करते समय सूर्योपस्थान-पूर्वक सूर्यको अर्घ्य दें[3]। ब्रह्म-सावित्री (गायत्री) वैदिक भी है और तान्त्रिक भी। दोनों प्रकारसे यह प्रशस्त है। प्रबल कलिकालमें गायत्रीमें द्विजोंका ही अधिकार है, अन्य मन्त्रोंमें नहीं। गायत्रीके आरम्भमें ब्राह्मणोंको 'ॐ', क्षत्रियोंको 'श्री' और वैश्योंको 'ऐं' मिलाना चाहिये[4]।

सध्यामें मुख्यत दस क्रियाएँ होती हैं—आसन शुद्धि, मार्जन, आचमन, प्राणायाम, अघमर्षण (भूतशुद्धि), अर्घ्यदान, सूर्योपस्थान, न्यास, ध्यान और जप। अर्घ्यदान और सूर्योपस्थान दोनों सूर्यदेवकी उपासना हैं। गायत्रीका जप करते समय सूर्यमण्डलमें अपने इष्टदेवका ध्यान करना चाहिये। स्नान-विधिमें कथित नियमसे तर्पण भी करना आवश्यक है। योगियोंके लिये सध्या, तर्पण और ध्यान आभ्यन्तर भी होते हैं। कुण्डलिनी शक्तिको जागरित करके उसे षट्चक्रक्रमसे सहस्रारमें ले जाकर परमशिव (परात्पर श्रीकृष्ण)के साथ एक कर देना आभ्यन्तर सध्या है। चन्द्र-सूर्याग्निस्वरूपिणी कुण्डलिनीको परम बिन्दुमें सन्निविष्ट करके आज्ञाचक्रमें निहित चन्द्र मण्डलमय पात्रको अमृतसारसे परिपूर्ण कर उससे इष्टदेवता का तर्पण करना आभ्यन्तर तर्पण है। रवि शशि वह्निकी ज्योतिको एकत्र केन्द्रित कर महाशून्यमें विलीन करके निरालम्ब पूर्णतामें स्थित हो जाना ही योगियोंका ध्यान है। वैष्णवागममें भी ऐसा ध्यान प्रशस्त है[5]।

भगवान् सूर्यकी पृथक्-पृथक् षोडशोपचार विधिसे पूजा करनेके भी विधान हैं। 'महानिर्वाण-तन्त्र'में यह विधान है कि 'क भ' आदि 'ठ ड' 'वर्ण-बीज'द्वारा सूर्यकी द्वादश कलाओंको पूजकर[6] फिर मन्त्रशोधित अर्घ्य-पात्रमें '**ॐ सूर्यमण्डलाय द्वादशकलात्मने नम**' मन्त्रसे सूर्यकी पूजा करनी चाहिये[7]। रामाराधक वैष्णवोंमें सूर्यका महत्त्व इसलिये भी है कि भगवान् रामने सूर्यवशमें अवतार लिया था[8]। सूर्य-पूजा वश-वृद्धिके लिये है। सूर्यशक्ति गायत्रीकी उपासना बुद्धि-वर्धन और सुमति-प्राप्तिके लिये है। सूर्य तेजोदेव हैं और उपासकोंको तेजस्वी बनाते हैं। श्रीमद्भागवतकी मान्यता है कि अदितिपुत्रों अर्थात् आदित्यों या देवोंकी उपासनाका फल स्वर्ग-प्राप्ति है[9]।

---

१ लक्ष्मीतन्त्र २९। २६—३२। २ महानिर्वाणतन्त्र ५। ५५—६ । ३ म० नि० त० ८। ७१७८। ४ म० नि० त० ८। ८५-८६। ५ हृत्पद्मे पद्मनाभं च परमात्मानमीश्वरम्। प्रदीपकलिकाकार ब्रह्मज्योति सनातनम्॥ (—ना० प रा० १। ६। १०) ६ सूर्यकलाओंकी पूजाके मन्त्र ये हैं—क भ तपिन्यै नम। ख ब तापिन्यै नम। ग फ धूम्रायै नम। घ प मरीच्यै नम। ङ० न० ज्वालिन्यै नम। च ध रुच्यै नम। छ द सुधूम्रायै नम। ज थ भोगदायै नम। झ त विश्वायै नम। ञ ण बोधिन्यै नम। ट ढ धारिण्यै नम। ठ ड क्षमायै नम। ७ म० नि० त० ६। २७ ३०। ८ सूर्यवशध्वजो राम॥ (—ना० प रा० ४। ३। ७) ९ (क)—स्वर्गकामोऽदिते सुतान्॥ (—भाग० २। ३।

पञ्चदेवोपासनामें भी सूर्य-पूजा होती है । सूर्य, गणेश, देवी, रुद्र और विष्णु—ये पाँच देव हैं, जिनकी पूजा वैष्णवजन सब कार्योंके आरम्भमें करते हैं । इनकी पूजा करनेवाले कभी भी सङ्कट या कष्टोंमें नहीं पड़ते ।[1] इन पञ्चदेवोंकी उपासनाके लिये शैव, गाणपत्य, शाक्त, सौर और वैष्णव-सम्प्रदाय पृथक्-पृथक् भी हैं[2], किंतु सामान्य वैष्णव-पूजामें पञ्चदेवोपासनाको महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है 'कपिलतन्त्र'के अनुसार । कारण यह है कि पञ्चदेव पञ्चभूतके अधिष्ठाता हैं । आकाशके विष्णु, वायुके सूर्य, अग्निकी शक्ति, जलके गणेश और पृथ्वीके शिव अधिपति हैं[3] । पञ्चभूत ब्रह्मके स्वरूप हैं । अतः पञ्चदेवोपासना ब्रह्मकी ही उपासना है । पञ्चदेवोंके व्युत्पत्तिपरक अर्थ भी उनकी ब्रह्मरूपता प्रदर्शित करते हैं । जैसे विष्णुका 'सर्वव्यापक,' सूर्यका 'सर्वगत', शक्तिका 'सामर्थ्य', गणेशका 'विश्वके सब गणोंका स्वामी' और शिवका अर्थ 'कल्याणकारी' है । ब्रह्म तो चिन्मय, अप्रमेय, निष्कल और अशरीरी है । उसकी कोई भी रूप-कल्पना केवल साधकोंके हितके हेतु है[5] । (पञ्चदेवोपासना-विधि कल्याणके साधनाङ्कसे जानी जा सकती है[4] ।)

पञ्चदेवोपासनामें पाँच देव पूज्य हैं । अपने इष्टदेवको मध्यमें स्थापित करके साधक इनकी पूजा करते हैं । अन्य चार देव चार दिशाओंमें स्थापित किये जाते हैं । इसे पञ्चायतनविधि कहते हैं । 'यामलतन्त्र'का उद्धरण देकर इसको स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि यदि देवोंको अपने स्थानपर न रखकर स्थापित कर दिया जाता है, तो वह साधकके दुःख, शोक और भयका कारण बन जाता है[7] । [illegible] रामार्चन चन्द्रिका, गौतमीयतन्त्र आदिमें भी पञ्चायतन विधि निर्दिष्ट की गयी है । यदि सूर्यको इष्टदेवके रूपमें मध्यमें स्थापित किया जाय, तो ईशान दिशामें शङ्कर, अग्निकोणमें गणेश, नैर्ऋत्यमें केशव और वायव्य दिशामें अम्बिकाकी स्थापना होनी चाहिये[8] । अन्य इष्टदेवोंके मध्यमें स्थापित करनेपर सूर्य आदि देवोंकी स्थिति इस प्रकार रहेगी । जब भवानी मध्यमें हों तो ईशानमें अच्युत, आग्नेयमें शिव, नैर्ऋत्यमें गणेश और वायव्यमें सूर्य रहेंगे । जब मध्यमें विष्णु हों तो ईशानमें शिव, आग्नेयमें गणेश, नैर्ऋत्यमें सूर्य और वायव्यमें शक्तिकी स्थापना होगी । जब मध्यमें शङ्कर हों तो ईशानमें अच्युत, आग्नेयमें सूर्य, नैर्ऋत्यमें गणेश और वायव्यमें पार्वतीका स्थान होगा । जब मध्यमें गणेशकी स्थापना होगी तो ईशानमें केशव, आग्नेयमें शिव, नैर्ऋत्यमें सूर्य और वायव्यमें पार्वतीकी पूजा होगी[9] ।

(ग) महाभारतमें भी सूर्यको सन्तानदाता तथा स्वर्गद्वार और स्वर्गरूप कहा गया है । (—३ । ३ । २६)

१ आदित्यं च गणेशं च देवीं रुद्रं च केशवम् । पञ्चदैवतमित्युक्तं सर्वकर्मसु पूजयेत् ॥
एवं यो भजते विष्णुं रुद्रं दुर्गां गणाधिपम् । भास्करं च धिया नित्यं स कदाचिन्न सीदति ॥
(—उपा० तत्त्व० परिच्छेद १)

२ शैवानि गाणपत्यानि शाक्तानि वैष्णवानि च । साधनानि च सौराणि चान्यानि यानि कानि च ॥ (—तन्त्रसार)

३ आकाशस्याधिपो विष्णुरग्नेश्चैव महेश्वरी । वायोः सूर्यः क्षितेरीशो जीवनस्य गणाधिपः ॥ (—कपिलतन्त्र)

४ द्रष्टव्य—साधनाङ्क पृ० ४ ४५ 'पञ्चदेवोपासना' लेख ।

५ चिन्मयस्याप्रमेयस्य निष्कलस्याशरीरिणः । साधकानां हितार्थाय ब्रह्मणो रूपकल्पना ॥ (—तन्त्रसार)

६, साधनाङ्क पृ० ४ ४४६७, ७ स्वस्थानवर्जिता देवा दुःखशोकभयप्रदा ॥ (—तन्त्रसार पृ० ८…)

८ आदित्ये च यदा मध्ये ईशान्यां शङ्करं यजेत् ॥
आग्नेय्यां गणनाथं च नैर्ऋत्यां केशवं यजेत् । वायव्यामम्बिकां देवीं स्वगृहायनभूमिकाम् ॥ (—तन्त्रसार पृ० …)

९ तन्त्रसार पृ० ५७–५८ ।

नवग्रह-पूजनमें सूर्य पूजा भी सम्मिलित है । सूर्य ग्रहके अधिपति हैं । नवग्रहोंमें शनि सूर्यके पुत्र हैं[1] । बृहद्ब्रह्मसंहितामें नवग्रहकी विधिका विस्तृत वर्णन है[2] । मेश्वरसंहितामें नवग्रह भगवान्के मन्दिरके विमान-नाओंमें हैं । सर्वग्रह पीड़ा शान्तिके लिये नवग्रह न किया जाता है । हिंदुओंमें प्रायः सभी कार्योंमें र यागादिकके आरम्भमें नवग्रहपूजन भी होता है । के अपने-अपने मन्त्र और ध्यान हैं । ग्रहपीड़ा निवारणके ये रत्न-धारण करनेका विधान है ।

श्रुति, गीता, इतिहास, पुराण और आगममें सूर्य र चन्द्रको स्वर्गपथ कहा गया है । 'बृहद्ब्रह्मसंहितामें हा है कि सूर्य-पथ योगियोंका परम पथ है, जो वक्लेशोंका शमन करता है, और मोक्ष चाहनेवाले स पथपर चलकर विष्णुके परमपदको प्राप्त करते हैं[3] । सनत्कुमारसंहिता' कहती है कि जीव रुद्र, सूर्य, ग्नि आदिमें भ्रमण करते हैं । तात्पर्य यह कि कर्म त जीव, जो रुद्रादिक देव-भावनामें ही सीमित रह ाले हैं, वे बारम्बार जन्म-मरणके चक्रमें पड़ते हैं[4] । मुक्त ोनेके लिये तो ज्योति स्वरूप परब्रह्म श्रीकृष्णकी ही रण लेनी चाहिये । उसके लिये सूर्य एक मार्ग हैं । तत्त्वत्रय'में कहा है कि सूर्यमेंसे होकर जानेवाले जीव अपने सूक्ष्मशरीरसे मुक्त हो जाते हैं । ऐसे मुक्त जीव चिन्मय और अणुमात्र हो जाते हैं[6] । अणुमात्र होनेका अर्थ है—कार्मज शरीरसे मुक्ति । 'नारदपञ्चरात्र'में जीवका सूर्यमें लीन होना बताया गया है[7] । 'लक्ष्मीतन्त्र' का कथन है कि 'श्री' श्रीहरिकी प्रकाशमान स्वरूपा पूर्णाहन्ता है । वह मन्त्रमाता है । सारे मन्त्र उसीसे उदित होते हैं और उसीमें अस्त होते हैं । सूर्य इस मन्त्रमय मार्गका जाग्रत् पद है, अग्नि स्वप्नपद है और उसीमें अस्त होते हैं । सोम सुषुप्ति पद है[8] ।

श्रीसूक्तमें 'सूर्यसोमाग्निखण्डोत्थनादवत्'—मन्त्र-बीज है । उनमें जो लक्ष्मीनारायण-सम्बन्धी परमबीज है, वह सर्वकामफलप्रद है । वह पुत्रद, राज्यद, भूतिद और मोक्षद है । वह शत्रु-विध्वंसक है और वाञ्छित-की आकर्षक 'चिन्तामणि' है । बीजोंसे जो मन्त्र बनते हैं, वे सब श्रीकी शक्तिसे अधिष्ठित होते हैं और वे श्रीत्वको प्राप्त होकर शीघ्र फलदायी होते हैं[9] । यही मन्त्र-मार्ग है । इसका जाग्रत् पद सूर्य है—इसका आशय यह है कि सूर्य मन्त्रोंकी फलवत्ताके प्रमुख आधार हैं और मन्त्रका चरम फल है—श्री (शक्ति) की और इस प्रकार नारायण-(शक्तिमान्) की प्राप्ति । इस दृष्टिसे भी सूर्य स्वर्गद्वार हैं ।

आगम-प्राधान्यवाले सम्प्रदायोंमें सौर-सम्प्रदाय भी है[10] । आनन्दगिरिने 'शङ्करविजय' नामक काव्यके तेरहवें

---

१ बृ० ब्र० सं० २ । ७ । १०६ । २ बृ० ब्र० सं० २ । ७ । १०२ से ११५ ।

३ योगिनां परमः पन्थाः स्मृतः क्लेशपरिक्षयः । मोक्ष्यमाणाः पथा येन यान्ति विष्णोः परं पदम् ॥
(—बृ० ब्र० सं० २ । ७ । ९६)

मिलाइये—'स्वर्गद्वारं प्रजाद्वारं मोक्षद्वारं त्रिविष्टपम्' (—महाभारत ३ । ३ । २६ सूर्यके नामोंसे ।)

४ यश्चिद् रुद्रे रवौ वह्नौ चैन्द्रे शक्रौ तथापरे । अन्ये कर्मरता जीवा भ्रमन्ति च मुहुर्मुहुः ॥
(—स० सं० ३१ । ७८)

५ तत्त्वत्रय, पृष्ठ १२ । ६ स्वरूपं ह्यणुमात्रं स्याज्ज्ञानानन्दैकलक्षणम् ॥ (—विष्वक्सेनसंहिता)
त्रसरेणुप्रमाणास्ते रश्मिकोटिविभूषिताः ॥ (—अहि० सं० ६ । २७)

७ पुनः प्रगायत सूर्ये गच्छन्तु न गच्छन्तु च ॥ (—ना० प० रा० २ । १ । ३३) । ८ ल० त० । ५२ । १२

९ लक्ष्मीतन्त्र ५२ । २०–२५

१० ब्राह्मं शैवं वैष्णवं च सौरं शाक्तं तथार्हतम् ॥ (—पुराणसंहिता १ । १६)

प्रकरणमें बताया है कि सूर्योपासनार्थ उस समय छ सम्प्रदाय प्रचलित थे। 'पुराणसंहिता'में बताया गया है कि सौरदर्शन चौबीस तत्त्वोंको मान्यता देता है। ये चौबीस तत्त्व हैं—पञ्चभूत, पञ्चतन्मात्रा, दस इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, ज्ञान और प्रकृति[1]। सौर-सम्प्रदायका वर्णन इस लेखसे बाह्य विषय है। यहाँ हम इतना ही कहेंगे कि सौर-मत एक वैदिक उद्भव है। भारतसे इसका प्रसार ईरान आदि विदेशोंमें हुआ और कालान्तरमें वहाँ विकसित हुई पूजा विधियों और मूर्तिनिर्मितियोंका कुछ समयके लिये भारतस्थ सौरमतपर भी पड़ा। सौरमत पूर्णतया भारतीय है। उसमें विदेशी तत्त्व भी नहीं है। हमारी इस विचारणाकी पुष्टि गोपाल भण्डारकरके कथनसे भी होती है, कि कहा है कि 'मन्दिरोंमें प्राप्त अभिलेखोंमें सूर्यके प्रति भक्ति प्रदर्शित की गयी है, उसमें लेश भी विदेशीपन नहीं है'।

उच्छीर्षक-दर्शनोंमें सूर्य

[तात्त्विक चर्चा]

(लेखक—विद्यावाचस्पति पं० श्रीकण्ठजी शर्मा, चक्रपाणि, शास्त्री)

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥ (—यजु० ७। ४२, ऋ० १। ८। ७। १)

जिस साधनसे कुछ भी देखा जा सके, वह दर्शन है। विधि या निषेधके रूपमें शासन अथवा वस्तु-तत्त्वको बोधन करनेकी शक्तिवाला साधन दर्शनशास्त्र कहलाता है एवं जिसके द्वारा इस दृश्य जगत्का सम्यक्स्वरूप तथा जीवनकी सर्वसुखमयता विधि-निषेध बोधक-रूपसे अवगत हो, वह दर्शनशास्त्र है। उक्त सभी प्रमेय ज्ञेय किसी देश और कालके अन्तर्गत ही ज्ञान विषयीभूत हो सकते हैं। देश और कालकी व्यवस्था एकमात्र भगवान् भास्कर सूर्यदेवके ही अधीन है। वेद कहता है—'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'। वे दृश्यमान स्थावर जङ्गममात्रमें अपनी सहस्र रश्मियोंद्वारा प्रणियकरूपमें अमृत भर देते हैं। इसी परतत्त्वको वैदिकलोग आदि-कारण ईश्वरके अनेक रूपोंमें परिगणित करता है—

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्। एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति। (ऋ० १। १६४। ४६) वैदिक रहस्योंका स्पष्टीकरण भाग करता है तथा उनके तत्त्व विवेचनकी कला दर्शनशास्त्रमें झलकती है। छहों दर्शन एक ही उस परमतत्त्वके विवेचनके लिये विश्लेषणात्मक मार्ग अपनाते एक ही तत्त्वको लक्ष्य रखनेमें उनका संश्लेषणात्मक है। षड्दर्शनोंमें पूर्वोत्तर दृष्टिद्वारा सांख्ययोगदर्शनमें वैशेषिकके विवेचनात्मक सिद्धान्तोंका सङ्केत मिलता आधारपर न्यायवैशेषिक, सांख्ययोग, पूर्वमीमांसा उत्तरमीमांसाकी व्यवस्थाका क्रम आता है। तदनुसार प्रस्तुत लेखमें सूर्यका जीवनतत्त्वसे ऐहिक एवं आमुष्मिक सम्बन्ध है—इसके निर्देशका प्रयत्न किया जाता है।

पारमार्थिक सत्ताकी 'सत्य सत्ताके समान ही व्यवहार दशामें व्यावहारिक सत्ताको मिथ्या होते हुए भी सत्य मानना ही पड़ता है। ज्ञानेन्द्रियनिधान देहमें आत्मा देहीको किसी भी भौतिक प्रत्यक्षके लिये इन्द्रिय और विषयका सन्निकर्ष सापेक्ष है। अन्धकारमें निर्दोषचक्षु भी भौतिक पदार्थको तबतक प्रत्यक्ष नहीं कर सकता ... प्रकाश सहायक न हो, (न्या० द० ... उपलब्धि विषयोपलब्धे ...

[1] पुराणसंहिता १। १६०, पाद ...

... पृष्ठ १३८।

चरनभिव्यक्तितोऽनुपलब्धिः" उक्त सूत्रमें बाह्य प्रकाशकी व्याख्या आन्ति-नामसे की गयी है तथा मूलसूत्रमें तो और भी स्पष्ट है कि "आदित्यरश्मेः स्फटिकान्तरितेऽपि दाह्येऽविघातात्" (न्या० सू० ३।१।४७)। यही प्रधान तत्त्व अध्यात्म है, चक्षु आदि करणाभिमानी जीवरूपसे अधिदैव भी है तथा रश्मिके आश्रय नेत्रगोलकरूपेण एवं बाह्य प्रकाश सहयोगसे रश्मिसंयोगानुगृहीत विषयके रूपमें अधिभूत भी यही है—

योऽध्यात्मिकोऽयं पुरुषः सोऽसावेवाधिदैविकः।
यस्तत्रोभयविच्छेदः पुरुषो ह्याधिभौतिकः॥
(श्रीमद्भा० २।१०।८)

इसी प्रकार—

"इमपमार्कंच पुरुष ... परस्पर सिध्यति यः स्वतः खे" कहा है—

इसी आदित्य-तत्त्वका पुरुष नामसे ब्राह्मणभाग स्तवन करता है—

"यदेतन्मण्डलं तपति एष एतस्मिन्मण्डले पुरुषः यदेतदर्चिर्दीप्यते', पुरुषो 'यश्चैष हिरण्मयः' उक्त ब्राह्मण-भागमें स्पष्टतया अध्यात्म, अधिदैव एवं अधिभूत (अग्निरूप) स्वरूपसे भगवान् सूर्यका निर्देश प्राप्त होता है।

इसके अनन्तर वैशेषिकदर्शनका स्थान है। इसमें उक्त सूर्य विभूतिका महत्त्व 'तेजोरूपस्पर्शवत्' (वै० द० २।१।३)से जीवात्माकी स्थितिको तेजके चतुर्विध रूपका विभाग दिखाकर समानधर्मितया प्रस्तुत किया गया है। रूप और स्पर्शमें उद्भूत और अनुद्भूतकी विशिष्टतासे जीवात्माका देखा जाना और न देखा जा सकना शल्य किया है। शाङ्कर उपस्कारमें इन शब्दोंको सरल किया है—'उद्भूतरूपस्पर्शो यथा सौराग्नि' (२।१।३)। गीतामें स्पष्ट कहा है—

उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुञ्जानं वा गुणान्वितम्।
विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः॥
(१५।१०)

जिस प्रकार जीवात्मा नहीं दीखता, परंतु देहके जड होनेसे किसी भी क्रियाकी सम्भवता चैतन्यके सम्पर्क बिना समाधेय नहीं है तो 'हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति' (गीता १८। ६१) के अनुसार हृदय-दहरमें स्थित उस चैतन्यकी शक्ति ही जड देहको क्रियाश्रय बनाकर उसकी सत्ताको सिद्ध कर देती है, उसी प्रकार सूर्यका तेज कहीं रूपके द्वारा और कहीं स्पर्शद्वारा उद्भूत (प्रत्यक्ष) एवं अनुद्भूत (अप्रत्यक्ष) रूपमें जीवात्मवादका चित्रपट प्रस्तुत करता है।

इससे आगे चलकर दर्शनने जगत्की आयुके अधिक एवं न्यूनके लिये सूर्यके द्वारा बननेवाले वर्ष, मास, दिन होरात्मक, कालके आश्रयसे तथा पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर, ऊर्ध्व आदि अनेक प्रकारके व्यवहारकी सिद्धि-हेतु सूर्यके द्वारा अनुप्राणित दिशारूपी द्रव्यके व्याजसे दिखाकर इस जगत्की वस्तुस्थितिको सुन्दररूपमें चित्रित किया है।

'इत इदमिति यतस्तद्दिश्यं लिङ्गम्' (वै० सू० २।२। १०) 'उपस्कारकालात् संयोगाय नायिका दिक् सन्निधानं तु सूर्यसंयुक्ते संयोगा लीयस्त्वं ते च सूर्यसंयोगा अल्पीयांसो भूयांसो वा।'

वैशेषिक सिद्धान्तवादी प्रशस्तपाद उक्त जगद् व्यवहारकी साधनामें सूर्यको ही भगवान्‌के रूपमें आधार मानते हैं। दिक्प्रकरणमें—"लोकसंव्यवहारार्थं मेरु प्रदक्षिणमावर्तमानस्य भगवतः सवितुर्ये संयोग विशेषा लोकपालपरिगृहीतदिक्प्रदेशानामन्वर्थाः प्राच्यादिभेदेन दशविधाः संज्ञा कृता।"

इसके अनन्तर सांख्ययोगकी कोटि है। महर्षि कपिलने अपने सिद्धान्त सांख्यदर्शनमें बड़े ही रहस्यमय रूपसे दृष्ट एवं श्रुत जगत्में सूर्यका अध्यात्म, अधिदैव तथा अधिभूत रूपताका एकांश उद्धरण किया है, "नाप्राप्तप्रकाशकत्वमिन्द्रियाणामप्राप्तेः सर्वप्राप्तेर्वा" (५।१०४)। विज्ञानभिक्षुने विवरण करते हुए सूर्यसत्ताको स्वीकार किया है—"अतो ...

(सूत्र १०५) न तेजोऽपसर्पणात्तैजस चक्षुर्वृत्तित स्तत्सिद्धे" (वि० भि० भा०) इतीत्येव दूरस्थ सूर्यादिक प्रत्यपसरेदिति ।

तदनन्तर उक्त दर्शनद्वयीका परिपूरक योगदर्शन तो सूर्यकी सत्ताको पिण्ड और ब्रह्माण्डमें व्यापक विभूतिके रूपमें प्रस्तुत करता है—

'भुवनज्ञान सूर्ये सयमात्' (यो० ३ । २६)

भू भुव स्व आदि सात लोक ऊपरके तथा अतल, वितल एव सुतल आदि सात नीचेके सभी चौदह भुवनवर्ती पदार्थोंका ज्ञान भगवान् सूर्यदेवमें मनोवृत्तिके सयमसे सुखसाध्य है । इसके लिये कहीं भी जानेकी आवश्यकता नहीं होती । श्रीमद्भागवतकी परमसहितामें भगवान् श्रीकृष्णने चौरासी लाख योनियोंमें पुरुषशरीरको अपना तनु बताया है । यही उदाहरण उक्त सत्यमें पर्याप्त है । हम जीव साधारण पुरुष-नामसे प्रस्तुत किये गये और हमारे जगन्नियन्ता महापुरुष नामसे पुकारे गये । श्रीमद्भा० ७ । ८ । ५३ में कहा है—'यत्र किंपुरुषास्त्य तु महापुरुष ईश्वर' । इसी तथ्यको महर्षि पतञ्जलि योग दर्शनमें विश्लेषण करते हुए कहते हैं—'क्लेशकर्मविपा काशयैरपरामृष्ट पुरुषविशेष ईश्वर'। आदि महापुरुषके शरीरमें अङ्गविभागके आधारपर 'नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौ '(यजुर्वेद ३१ । १३)को कृष्णद्वैपायन व्यासजी श्रीमद्भा० २ । ५ । ३६ से ४२तकमें विशदतासे और भी सरल कर देते हैं—'कट्यादिभिरध सप्त सप्तोर्ध्वं जघनादिभि '—इसी साधा यतासे अखिल ब्रह्माण्डकी स्थिति व्यक्तिरूपसे हमारे शरीरमें भी वैसे ही कल्पित है । अत 'यद् ब्रह्माण्डे तत् पिण्डे' यह जनोक्ति है ।

साधना-मार्गमें मूलाधारसे कुण्डलिनीका उत्थान सम्भित कर इडा, पिङ्गला एव सुषुम्णा–(गङ्गा, यमुना, सरस्वती) द्वारा प्राणापानके सयोगसे षट्चक्रभेदन करके सहस्रारमें हृदयवन्दना या परानन्दा आदि उत्कृष्ट सम्पत्ति दर्शनीय है । हृदयान्तर्वर्ती-अष्टदल कमलसे होकर जाती हुई सुषुम्णा ही अनिर्वचनीय शोकादिरहित प्रकाशकी भूमि है प्रकाश या सत्त्व प्रसादभूमि है । अन्धकार या शोकस्थान है । सुषुम्णाको ज्योतिष्मान् सूर्यका . है । अत इसकी साधना सूर्यकी उपासना है । अन्त करणस्थितिको निस्तरङ्ग महोदधिके समान स्थिर निश्चल बना देती है । (यो० द० १ । ३६)। 'विशोका या ज्योतिष्मती' ही ज्योतिष्मान् सूर्य स्थिति है । अत इस रीतमें भी विशोका और ज्योतिष्मतीकी स्थिति स्वाभाविक है । यजु० ३३ । ३६ मैत्रसूक्तके—'तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य । विश्वमाभासि रोचनम् ।' को योगदर्शनप्रदीपिकाकी टिप्पणीमें और भी [illegible] किया गया है—'तया खलु बाह्यान्यपि सूर्यादि मण्डलानि प्रोतानि सा हि चित्तस्थानम्' । ब्रह्माण्ड और पिण्ड—ये दोनों समान जातिके हैं । ब्रह्माण्डमें देखा जाता, वह सभी पिण्डमें भी पाया जाता है । इसकी मात्राभिव्यक्ति इस श्लोकसे परिपुष्ट है—

> एष हृदयपद्म तद्धृष्यते हृदयम्बरे ।
> सोमाग्निरिव नक्षत्र विद्युत्तेऽसौ शुभम् ॥

सरस्वतीस्वरूप सुषुम्णा नाडी हृदयपुण्डरीकसे होकर जाती है । उसमें उक्त श्लोक-निर्दिष्ट सभी सूर्यादिज्योति परिवद्ध हैं । जहाँ बाह्य मण्डलमें सूर्य आभा है, वहीं भीतर भी सूर्यमण्डलका अस्तित्व है । इस प्रकार दार्शनिक दृष्टिमें सूर्य व्यापक सत्ताका साक्षी है—(पूर्व कथित है—) 'भुवनज्ञान सूर्ये सयमात्' ।

इसके अनन्तर पू० मी० (कर्मकाण्ड), उ० मी० (ज्ञानकाण्ड) दर्शनद्वयी चरम विश्रामभूमि है । उत्तर मीमांसा ब्रह्मसूत्र नामसे सन्निहित है । ब्रह्मशब्द एव वेदका वाचक है । वेद ईश्वरज्ञान है । पूर्वभाग कर्मकाण्ड द्वारा ईश्वर-अर्चना कहता है, किंतु कामनाओंपर आश्रित होनेसे शाश्वत सुखरूप नहीं है । किंतु उत्तर मीमांसा (ज्ञानकाण्ड) कर्मफलकी अनिच्छापूर्वक परमात्मामें समर्पण कर सभी उत्तरदायित्वों (जिम्मेदारियों)से मुक्त होनेके कारण शाश्वत सुखस्थान है—

मयि सर्वाणि कर्माणि सन्न्यस्याध्यात्मचेतसा।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः॥
(गीता ३। ३०)

इस सिद्धान्तका निष्कर्ष है—'सर्वं कर्माखिल पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते' (गी० ४। ३३)।

इसी कारण ब्रह्मसूत्र उत्तर मीमांसा नामसे कहा गया है। सभी कर्म या कर्मफलका समर्पण परमब्रह्ममें सिद्धान्ततया कहा गया है। पहले पूर्वमीमांसामें दर्शनका क्षेत्र देखें—जहाँ वेद-मन्त्रोंद्वारा सूर्यका वैभव अध्यात्म-अधिदैव अधिभूत (द्युलोक, अन्तरिक्षलोक और भूलोक) रूपसे अपरिच्छिन्न सत्तामें स्पष्ट किया है। इतना ही नहीं, बल्कि साक्षात् विष्णुरूपसे सूर्यकी विभूति गायी गई है। निरुक्त दैवतकाण्डमें विष्णुपदकी अन्वर्थता स्थावर जङ्गममें सूर्यरश्मि-जालकी व्यापकताके आधारपर है, क्योंकि सूर्य ही रश्मियोंद्वारा सर्वत्र व्याप्त है। इसलिये यही विष्णु है—'यद्विषितो भवति तद्विष्णुर्भवति' तथा 'इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा' (ऋ० वे० १। २। ७। २) गीतामें इसी तथ्यको और भी स्पष्ट कर दिया है—'आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान्' (१०। २१)। मीमांसाका पूर्व भाग यज्ञपरक है। इसमें सूर्य (आदित्य) से 'इमा गिर आदित्येभ्यो घृतस्नूः सनाद्राजभ्यो जुह्वा जुहोमि' (यजु० ३४। ५४)—इस मन्त्रमें चिरजीवनकी कामनाएँ आभिकाङ्क्षित हैं। इसी प्रकार कर्म-प्रधान शास्त्र (पू० मी०) में सूर्यकी रश्मियोंद्वारा भौतिक वस्तुओंकी प्राप्तिका स्रोत दिखाते हुए पाण्डुरोग (पीलिया) की पूर्ण चिकित्साव्यवस्था पूर्वमीमांसादर्शनकी अपनायी सरणीमें वेद मन्त्रोंसे ही करता है—'शुकेषु मे हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि। अथो हारिद्रवेषु मे हरिमाणं नि दध्मसि' (ऋ० १। ५०। १२)। इस प्रकार यह पञ्चम कोटिका पूर्वमीमांसा-दर्शन भी ब्रह्माण्डपिण्डमें सूर्यके तात्त्विक स्वरूपको दर्शनसिद्धान्तकी दृष्टिसे व्यवस्थापित करता है।

परिशेषमें स्थान आता है 'ब्रह्मसूत्रका (उ० मी० द० का)। इसमें 'ज्योतिश्चरणाभिधानात्' (अ० १, पा० १, सू० २४) एवं 'ज्योतिर्दर्शनात्' (१। ३। ४०) इन दोनों सूत्रोंके द्वारा सूर्यकी ज्योतिस्वरूपा सत्ताको स्पष्टतासे निर्देशित किया है। ४०वें सू० के भाष्यमें भगवान् शंकर लिखते हैं—'अथ यत्रैतदस्माच्छरीरादुत्क्रामत्यथैतैरेव रश्मिभिरूर्ध्वमाक्रमते'। छा० उ० के अनुसार यही एकमात्र सूर्यतेज जो भौतिक-दैविक विधिसे नेत्रगोलक एवं तेजोवृत्तिरूपसे पिण्डमें विद्यमान है, द्युलोकमें प्रकाशमान ब्रह्माण्डव्यापी भास्वरतेज ब्रह्मरूपसे उपासित मुक्तिका आश्रय है। भाष्यकार और भी स्पष्ट कर देते हैं—'एवं प्राप्ते ब्रूमः परमेव ब्रह्मज्योतिः शब्दम्' 'ब्रह्मज्ञानाद्धि अमृतत्वप्राप्तिः', (—यजु० नारायणसूक्त)। इस तथ्यको स्पष्ट करता है—'तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।' योगदर्शनने इसीके बल्पर कहा है—'विशोका वा ज्योतिष्मती' (सू० १। ३६) उपनिषद्भाग इस दार्शनिक दृष्टिको प्रकाश देता है—'तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः' (ई० उ० ७)।

ब्रह्मसूत्र (१। ३। ३१) में 'मध्वादिष्वसम्भवादनधिकारं जैमिनिः' पर भाष्यकार छां० उ० का उद्धरण देकर सूर्यको मधु (अमृत) रूप स्वीकार करते हैं—'असौ वा आदित्यो मधुः'। वेदा० द० १। २। २६ सूत्रके भाष्यमें ऋग्वेदका उद्धरण भाष्यकारने यह दिया है—'यो भानुना पृथिवीं द्यामुतेमामाततान रोदसी अन्तरिक्षम्'—जो एक परमतत्त्व सूर्यकी ब्रह्माण्ड पिण्ड मध्यवर्ती सत्ताका विशुद्ध उदाहरण है।

इस प्रकार उक्त विचार-परम्परासे भगवान् सूर्यका दार्शनिक अस्तित्व या सूर्यतत्त्वकी विवेचनात्मक सत्यता निश्चित रूपसे स्पष्ट हो जाती है कि यही विशुद्धतत्त्व छहों दर्शनोंद्वारा विभिन्न विचारधाराओंमें प्रतिपादित स्थावर-जङ्गमात्मक दृष्ट-श्रुत विश्वमें अनुस्यूत विभूति है।

श्रीवैखानस भगवच्छास्त्र तथा आदित्य (सूर्य)

(लेखक—चलपति भास्कर श्रीरामकृष्णमाचार्युलुजी एम्० ए०, बी० एड्)

श्रौतस्मार्तादिकं कर्म निखिलं येन सूत्रितम्।
तस्मै समस्तवेदार्थविदे विखनसे नमः॥
येन वेदार्थविज्ञेन लोकानुग्रहकाम्यया।
प्रणीतं सूत्रमौखेयं तस्मै विखनसे नमः॥

'श्रौत तथा स्मार्तरूप समस्त क्रिया-कलाप जिनके द्वारा सूत्रित है, उन समस्त वेदार्थोंके ज्ञाता विखनसजीको नमस्कार है। वेदार्थके ज्ञाता जिन विखना मुनिने लोकानुग्रहकी इच्छासे औखेय नामक कल्पसूत्रकी रचना की, उन्हें नमस्कार है।'

वैखानस सम्प्रदाय विष्णाराधक-सम्प्रदायोंमें अत्यन्त प्राचीन तथा वैदिक कहलाता है। वैष्णवार्चन सम्प्रदायमें वैखानस, सात्वत और पाञ्चरात्र नामसे प्रसिद्ध तीन विभाग हैं। पक्षान्तरमें पहले और दूसरे सम्प्रदायोंको एक ही विभागके अन्तर्गत माना जाय तो दो विभाग सिद्ध होते हैं। इनमें पहला वैखानस-सम्प्रदाय श्रीविष्णुके अवतारस्वरूप भगवान् विखनामुनिके द्वारा प्रवर्तित है तथा दूसरा उनके अनेक शिष्योंमें भृगु, अत्रि, कश्यप एवं मरीचि नामक ऋषिचतुष्टयद्वारा अनुवर्तित है। ये विखना मुनिवर अष्टादश कल्पसूत्र-कर्ताओंमें एक हैं। इनकी विशेषता तो यह है कि इन्होंने श्रौत-स्मार्त धर्मसूत्रयुक्त बत्तीस प्रश्नात्मक परिपूर्ण कल्पसूत्रोंकी रचना की है और इनके अतिरिक्त सूत्रोंमें मानव-कल्याण-प्राप्तिके लिये भगवदाराधना करनेके सम्पूर्ण विधि-विधानोंका निर्देश करते हुए भगवदाराधना केवल स्वार्थके लिये ही नहीं परार्थके लिये भी करनेका विधान निरूपित किया है—

गृहे देवायतने वा भक्त्या भगवन्तं नारायणमर्चयेत्।
(—वैखानस स्मार्तसूत्र प्र० ४। १२। १०)

इस सूत्रमें उपरसे उक्त 'देवायतने वा' वाक्यका तथा उन (विखनसजी)के द्वारा उपदिष्ट सार्धकोटि-प्रमाण दैविक (कर्षणा या भू-संस्कारसे लेकर उपरान्त बेर-प्रतिष्ठापर्यन्त) शास्त्रको ... शिष्योंने संक्षिप्त करके चातुर्लक्ष-प्रमाण शास्त्र ... किया है। उक्त भगवान् विखनसजी तथा शि... उनके ग्रन्थोंमें भगवान् आदित्य (सूर्य)के ... पाये जानेवाले कुछ विशेष अंश यहाँ संक्षेपमें ... जाते हैं।

१—सार्व-सूत्र (विखनस-रचित)—

इसमें भगवान् सूर्यका 'आदित्य' शब्दसे ही ... प्रधानतया पा सकते हैं। वेदस्वरूप श्रीमद्रा... अन्तर्गत 'आदित्यहृदयस्तोत्र'में भी इनको 'प्र... सविता, सूर्य, भग, पूषा और गभस्तिमान्' ... सन्दर्भमें आदित्य शब्द प्रधानतया योजित है। (कल्पसूत्रमें) आदित्यकी आराधना 'ग्रहमख' ग्रह-यज्ञ निरूपणके समय कही गयी है। ग्रह-मख... आवश्यकताका निरूपण करते हुए कहा है कि—

ग्रहायत्ता लोकयात्रा॥

(प्र० स्म० सू० ४। ११। १)

तस्मादात्मविरुद्धे प्राप्ते ग्रहान् सम्यक् पूजयति।
(४। ११। १)

'लौकिक जीवन ग्रहोंके अधीन होता है। ... उनके विरुद्ध होनेपर ग्रहोंका सम्यक्रूपसे पू... करनेका विधान है। आदित्यके चतुरस्र-मण्डल... पीठका निर्माण करके वहाँ रक्तवर्ण तथा ... अधिदेवताको रखकर मध्य स्थानमें उनकी आरा... करनी चाहिये। इनके प्रत्यधिदेवता ईश्वरका निरू... व्याख्याओंमें श्रेष्ठ श्रीनिवासाभिराम तात्पर्य-चिन्ता... नामक व्याख्यामें पाया जाता है। इसका वर्ण...

दि रक्तवर्णवाले पुष्पोंसे अर्चना करके[1] शुद्धोदन वेदन किया जाता है। ४। १४। ८९ ले मन्त्र-वाक्योंसे इनको त्रिमधुयुक्त अर्ककी समिधाओंसे 'भासत्येन' मन्त्र पढ़कर १०८ आहुति या २७ आहुति दी जाती है। इनका हवन वैदिकरीतिसे अग्नि-प्रतिष्ठापन करके 'सभ्य'[2] नामक अग्नि-कुण्डमें किया जाता है। इनके अधिदेवताके लिये 'अग्निर्दूतम्' मन्त्रसे आहुति दी जाती है। आहुति भी ग्रह देवताओंके उक्त संख्याके अनुसार १०८ या २७ दे। सामर्थ्य न हो तो एक ही बार करे, यथा—गृह्य—

ग्रहदेवाधिदेवाना होमं पूर्वोक्तसंख्यया ॥
अशक्तमेकवार वा होतव्य ग्रहदैवकम् ।
(श्रीनिवास दीक्षितीय पृ० ६६६)

आदित्यके लिये 'रक्तधेनुमादित्याय'[3] के अनुसार लाल रंगवाली गायका दान दिया जाता है। इस प्रकार नवग्रह-पूजा करनेसे ग्रहदोषसे उत्पन्न सभी दुःख तथा व्याधियाँ शान्त हो जाती हैं—

'एतेन नवग्रहजा दुःखव्याधयः शान्ति यान्ति।'
(४। १४। ७)

इसमें ध्यान देनेकी बात यह है कि अन्य सभी सूत्रकार सूर्यका वृत्ताकार मण्डल सिद्ध करते हैं, पर केवल विखनसजीने ही सूर्यका चतुरस्र मण्डल कहा है। इसका कारण यह हो सकता है कि उस समय—विखना मुनिका समय स्वायम्भुव मन्वन्तरमें सूर्यका चतुरस्र मण्डल स्वरूप हो। बादमें सावर्णिक मन्वन्तरके कालसे लेकर सूर्यका मण्डल वृत्ताकार हुआ हो।[4]

अब उनके शिष्य भृगु आदि मुनियोंद्वारा निर्मित 'भगवदाराधना शास्त्रमें विष्ण्वाराधनाके अङ्गरूप आराध्य श्रीआदित्य (सूर्य) के सम्बन्धमें उक्त कुछ विशेष अंश यहाँ द्रष्टव्य हैं। ये अंश अधिकतया उपलब्ध पुराणों इतिहासप्रसिद्ध श्लोकोंसे मेल नहीं खाते। इनके अतिरिक्त प्रसिद्ध भगवदवतारोंके सम्बन्धमें उक्त अंश भी नहीं मेल खाते। इसका कारण मन्वन्तर भेद ही हो सकता है। अस्तु,

१–विमानार्चनकल्प (मरीचिकृत)में है—द्वितीयावरणे प्राग्द्वारादुत्तरे पश्चिमाभिमुखो (कृष्णश्वेताभो) रक्तवर्णः शुक्लाम्बरधरो द्विभुजः पद्महस्तः सप्ताश्ववाहनो हयध्वजो रेणुकासुवर्चलापतिः 'ए' कारबीजोऽधिकोपरत्य महस्रकिरणो मण्डलावृतमौलिः श्रावणे मासि हस्तजः आदित्यः 'आदित्य भास्कर मार्तण्ड विवस्वन्तमिति'। (पृ० १०२, विंश पटले)

---

१ तण्डुले केवले पक्वं शुद्धान्नम्, यह विमानार्चन कल्पमरीचिकृत निर्वचारित्र पटलमें है। मानवकल्पमें तो 'गुडौदन रक्तदद्यात्' कहा गया है।

२ सभ्य नामक अग्निकुण्डका स्वरूप चतुरस्र कहा गया है। यथा—ब्रह्माग्नि पञ्चधा सृष्ट्वा पञ्चलोकेष्वकल्पयत्।

चतुरस्रा जनोलोकः कुण्डं सभ्यस्य तादृशं। (—श्रीनिवासदीक्षित संकलित—भृगु वचन)
ब्रह्माजीने अग्निका पाँच प्रकारसे सृजन करके पाँच लोकोंमें स्थापना की है। जनलोकके आकारके समान 'सभ्य' कुण्ड चतुरस्र होता है। यही अंश अन्य भगवच्छास्त्रसंहिताओंमें भी कहा गया है।

३ दानके बारेमें मानवकल्पमें 'सूर्याय कपिलां धेनुम्' कहा गया है।

४ सूर्यपुराण, विष्णुपुराण आदि पुराणोंमें भी पहले सूर्यका चतुरस्र स्वरूप कहा गया है। बादमें गोल बताया गया है।
(यह कथन उक्त श्रीनिवासदीक्षितविरचित सूत्र-व्याख्याके उपोद्घात भाग 'दशविधहेतुनिरूपण' में 'सर्वेषां सूत्राणामादिमत्वात्' हेतु निरूपणके अवसरमें है।)

(आल्यकमें) द्वितीयावरणमें प्राग्द्वार (पूरब दिशाके द्वार) के उत्तर भागमें पश्चिमाभिमुख हुए, रक्त (लाल) वर्णमाला, शुक्र (श्वेत) वस्त्र धारण किये, दो भुजावाले, पद्मसहित हस्तवाले सप्ताश्ववाहन तथा हय (अश्व) ध्वजवाले रेणुका तथा सुवर्चला देवियोंके पति 'खकार बीज तथा अग्निवोस-तुल्य रववाले, सहस्र किरणोंवाले, जिनके सिरके स्थानमें मण्डल (वृत्ताकार) होता है, तथा श्रावण मासमें हस्त नक्षत्रमें जन्म लिये हुए 'आदित्यका आवाहन 'आदित्य, भास्कर, सूर्य, मार्तण्ड, विवस्वन्त' नामोंसे करना चाहिये।

२–क्रियाधिकार (भृगुप्रोक्त)—

मार्तण्डः पद्महस्तश्च पृष्ठे मण्डलसंयुतः।
चतुष्पादो द्विपादो वा पलाशः कुसुमप्रभ।
श्रावणे हस्तजो देव्यो रेणुका च सुवर्चला॥
सप्तसप्तिसमायुक्तो रथो वाहनमुच्यते।
अनूरुसारथिः सर्पो ध्वजस्तुरग एव वा॥
(पृष्ठ ४९)

इनमें उक्त अंश अधिकतया उपर्युक्त विमानार्चन कल्पोक्त लक्षणसे ही मेल खाते हैं। अधिकांश तो ये हैं कि द्विपाद या चतुष्पाद होनेका तथा सारथि, अनूरु और ध्वजको सर्प या तुरग कहा गया है।

३–खिलाधिकार (भृगुप्रोक्त अध्याय १७।३१-४४) के अनुसार लक्षण देखें— त्रिणत्र मुकुटी तथा।'

बिम्बं मार्तण्डस्य पूर्यातपृष्ठे मण्डलसंयुतम्॥
चतुष्पादं कारयेच्च द्विपादमथवा रविम्।
दोर्भिर्द्वादशभिर्युक्तं व्याघ्रचर्माम्बरं तथा॥
शुक्लाम्बरधरं चापि देवेशं पद्मलोचनम्॥
पत्नी सुवर्चला नाम रेणुकेति च या विदुः।
मुनि स्वर्णमाली स्याद्वलिजिते च विचक्षण।
वैखानसो मुनिर्धीमान् स्वर्णमाली प्रकीर्तित॥
वलिजित् वालखिल्यश्च तावुभौ च सितासितौ।
अरुण वाहनस्थाने कपिल पद्मकेशकम्॥

उपर्युक्त क्रियाधिकार-ग्रन्थोक्त लक्षणोंके अतिरिक्त उक्त अधिक लक्षणोंका संग्रह इस प्रकार किया सकते हैं—आदित्यकी बाहु-संख्या द्वादश हैं। व्याघ्रचर्मका धारणके अतिरिक्त इनके समीपमें दो मुनियोंकी उपस्थिति कही गयी है। वे हैं स्वर्णमाली तथा वलिजित्। इनमें स्वर्णमाली वैखानस मुनि तथा वलिजित् वालखिल्य कहलाते हैं। उनका शरीर क्रमशः सित (सफेद) और असित (काले) वर्णसे युक्त होता है। ग्रहण सौलभ्यके लिये उपर्युक्त लक्षणोंको अग्रलिखित कोष्ठकमें अङ्कित करके दिखलाते हैं।

१ रेणुका तथा सुवर्चलाके नामोंका उल्लेख 'क्रियाधिकार' में—

सुवर्चलामुषां चातिश्यामलां सुप्रियामिति। अर्चयेद्दक्षिणे देवीं रेणुकां रक्तवर्णिनीम्॥
प्रत्यूषां रक्तवस्त्रां तामिति वामे समर्चयेत्। × × ×

सुवर्चला, उषा, अतिश्यामला, सुप्रभा और रेणुका रक्तवर्णिनी, प्रत्यूषा, रक्तवस्त्रा नामोंसे अर्चना करें।

२ वैखानस—अर्थात् विखनस मुनिके सूत्रानुयायी अथवा वानप्रस्थाश्रमी। ३ वालखिल्य—सपत्नीक वानप्रस्थका एक भेद है। वालखिल्यका निरूपण इस प्रकार पाया जाता है—वानप्रस्था सपत्नीका अपत्नीकाश्चेति॥ १॥

सपत्नीकाश्चतुर्विधा औदुम्बरा वैरिञ्चा वालखिल्या फेनपाश्चेति॥ २॥

वालखिल्या जटाधराः चीरवल्कलवसना अग्नीन् कार्तिक्यां पौर्णमास्यां पुष्कलं भक्ष्यमुत्सृज्य अन्यमासगान् मासानुपक्रम्य तपः कुर्यात्॥ ६॥ (वैखानस-स्मार्त-सूत्र, प्रश्न २—७)

वालखिल्य जटाधारण करके चीर तथा वल्कलका वस्त्ररूपमें धारण करते हुए सूर्यका ही अग्निके रूपमें ध्यान करके, कार्तिक-पूर्णिमाके दिन अर्जित समस्त भक्ष्योंका दान देकर बाकी महीनोंका किसी तरह (उञ्छवृत्ति आदि) से जीवन चलाते हुए तपस्या करे।

मरीचि प्रोक्त विमानार्चन	वर्ण	वस्त्र	भुज	हस्त	शिर	जन्म काल	नक्षत्र	बीज	रथ	पाद संख्या	पत्नी	वाहन	ध्वज	सारथि	मुनि
कल्पके अनुसार	रक्त (लाल)	शुक्ल (श्वेत)	दो	पद्म हस्त	मण्डलावृत मौलि	श्रावण मास	हस्त	'ख' कार	अधिचोपरथ	--	रेणुका तथा सुवर्चला	सप्ताश्व वाहन	हय (घोड़ा)		
क्रियाधिकारके अनुसार	पलाश कुसुम का (लाल)		--	पद्म हस्त	पृष्ठ भागमें मण्डल	श्रावण मास	हस्त	--	--	दो या चार	रेणुका तथा सुवर्चला	सप्तसप्ति युक्तरथ	तुरग (घोड़ा)	अनूरु कनकमाली बलिजित्	--
भृगु प्रोक्त खिलाधिकारके अनुसार		शुक्लाम्बर तथा श्यामाम्बर	बारह		पृष्ठ भागमें मण्डल	-- --	--	--		दो या चार --	रेणुका तथा सुवर्चला	-- --	--	अरुण	कनकमाली बलिजित्

अबतक वैखानस शास्त्रमें आदित्यके स्वरूपका निरूपण किया गया है। आदित्यके प्रतिष्ठा विधान तथा आराधना-विधानका सविवरण वर्णन भृगुप्रोक्त 'क्रियाधिकार' तथा 'खिलाधिकार' आदि ग्रन्थोंमें दिया गया है। उनका परिचय स्थानाभावके कारण यहाँ नहीं दिया जाता है। जिज्ञासु पाठक उक्त ग्रन्थोंमें उनका अनुशीलन करनेके लिये प्रार्थित हैं।

इस लेखका उद्देश्य केवल यही है कि वैखानस *सम्प्रदायमें उक्त आदित्यसम्बन्धी विशेषांशोंका परिचय* दे दिया जाय। ये विशेषांश अन्य किसी शास्त्र तथा पुराणोंमें भी पाये जाते हैं कि नहीं, हम निर्धारण नहीं कर सकते। कोई भी अध्ययनशील जिज्ञासु पाठक इन विशेषताओं (अर्थात् पत्नी, हस्त-संख्या, वस्त्र, मुनि, जन्म-काल आदि) को किसी अन्य ग्रन्थोंमें भी पाये हों तो कृपया इस रचयिताको सूचना दें।

सूर्यकी उदीच्य प्रतिमा

रथस्थं कारयेद्देवं पद्महस्तं सुलोचनम्। सप्ताश्वं चैकचक्रं च रथं तस्य प्रकल्पयेत्॥
मुकुटेन विचित्रेण पद्मगर्भसमप्रभम्। नानाभरणभूषाभ्यां भुजाभ्यां धृतपुष्करम्॥
स्कन्धस्थे पुष्करे ते तु लीलयैव धृते सदा।
चोलकच्छन्नवपुषं क्वचिच्चित्रेषु दर्शयेत्। वस्त्रयुग्मसमोपेतं चरणौ तेजसा वृतौ॥

उन सूर्यदेवको सुन्दर नेत्रोंसे सुशोभित, हाथमें कमल धारण किये हुए, रथपर विराजमान बनाना चाहिये। उस रथमें सात अश्व हों, एक चक्का हो। सूर्यदेव विचित्र मुकुट धारण किये हों, उनकी कान्ति कमलके मध्यवर्ती भागके समान हो, विविध प्रकारके आभूषणोंसे आभूषित दोनों भुजाओंमें वे कमल धारण किये हुए हों, वे कमल उनके स्कन्ध देशपर लीलापूर्वक सदैव धारण किये गये बनाने चाहिये। उनका शरीर पैरतक फैले हुए वस्त्रमें छिपा हुआ हो। कहींपर चित्रोंमें भी उनकी प्रतिमा प्रदर्शित की जानी चाहिये। उस समय उनकी मूर्ति दो वस्त्रोंमें ढँकी हुई हो। दोनों चरण तेजोमय हों। (प्रायः ऐसा ही वर्णन पु० सं० ५७। ४६–४८ में है।)

(—मत्स्य० २६१। १-४)

वेदाङ्ग—शिक्षा-ग्रन्थोंमें सूर्य देवता

(लेखक—प्रो० पं० श्रीगोपालचन्द्रजी मिश्र)

वेदके छः अङ्गोंमें शिक्षा-नामक प्रथम अङ्ग है। इसके साहित्यमें सूर्यनारायणकी जो चर्चा आयी है, उसको यहाँ प्रस्तुत किया जाता है।

१—वेदके तीन प्रमुख पाठ—हैं संहितापाठ, पदपाठ और क्रमपाठ। संहितापाठ ही अपौरुषेय एवं ऋषियोंद्वारा निर्दिष्ट है। इस पाठका अभ्यास रखने और करनेवाला व्यक्ति 'सूर्यलोक'की प्राप्ति करता है।

'संहिता नयते सूर्यम्'

(याज्ञवल्क्य-शिक्षा, पृ० ६, श्लोक २१)

२—सर्वत्र वाणीका वैभव स्वरात्मक तथा व्यञ्जनात्मक वर्णोंपर आधारित है। संस्कृत वाङ्मयमें व्यवहृत समस्त वर्ण किसी देवतासे अधिष्ठित हैं। संस्कृतका प्रत्येक वर्ण देवाधिष्ठित है। इसलिये भी संस्कृत देवभाषा कहलाती है। वर्णसमुदायमें सूर्य देवतासे अधिष्ठित अरुणवर्ण निम्नलिखित हैं—

(क) चार ऊष्मा (श ष स ह)—

चत्वार ऊष्माण' (श ष स ह) अरुणवर्णा आदित्यदैवत्या। (पृ० ३२, श्लोक ७०)

(ख) यद्यपि विभिन्न वर्ण हैं और उनके देवता भिन्न-भिन्न हैं फिर भी भगवान् सूर्य समष्टि रूपसे समस्त वर्णोंके देवता हैं—

आदित्यो मुनिभिः प्रोक्तः सर्ववर्णस्य च।

(या० शि०, पृ० ७५, श्लोक ९१)

इस शिक्षाकी उक्तिका वैज्ञानिक अध्ययन यह है कि विश्वके समस्त प्राणियोंमें वर्णोंका उच्चारण सूर्यनारायणके तापमान और शीतमानके प्रभावसे होता है। अतः विश्वके विभिन्न देशोंकी उच्चारणशैलीमें जो विभिन्नता एवं स्वरूप है तथा उन देशोंमें उनकी भाषामें अनेक वर्णोंका ह्रास-वृद्धि और रूपान्तर है वह सूर्यके तेजकी न्यून अथवा अधिक उपलब्धिसे सम्बद्ध है। हमारा यह भारतवर्ष अनेक राज्योंमें विभक्त एक बड़ा देश है। प्रत्येक राज्यमें तापमान और शीतमान एक रूपमें नहीं है। इस शीत-तापकी विषमताके कारण प्रत्येक राज्य एवं उसके खण्डोंमें बसनेवाले व्यक्तियोंकी वर्णोच्चारणशैली तथा स्वरमें अन्तर पाया जाता है, फिर वेदाध्ययनके विषयमें गुरुमुखसे सुने हुए शब्दोंके अनुकूल उच्चारणके अभ्यासकी परम्परा सार्वदेशिक रूपसे एक हो जाती है। खेदके साथ लिखना पड़ता है कि आजकल वेदके अध्येता रटने और रटानेकी प्रक्रियासे भागते हैं और अपनेको समझदार कहनेवाले सब भारतीय भी रटने-रटानेकी प्रक्रियाको अनुपयोगी समझते हैं। इसका फल यह हो रहा है कि वेदमन्त्रोंके उच्चारणमें एकरूपता कुछ गिने हुए विद्वानोंको छोड़कर अन्योंमें नष्टप्राय हो रही है। यह भारतकी शिक्षा-मर्यादा एवं गौरवपर कुठाराघात है। वेदोच्चारणकी प्रक्रिया एकरूप है, फिर भी विभिन्न स्थानोंमें शीत-तापसे प्रभावित क्षेत्रीय भाषासे ऊपर उठकर राष्ट्रिय एक भाषा एवं उच्चारणकी अन्तर्जागृति की जा सकती है। भारतमें भाषा विवाद पुरातन इतिहासमें लेशमात्र भी नहीं मिलता है। आज भी यह भाषा विवाद वेद एवं संस्कृत शिक्षाके माध्यमसे दूर किया जा सकता है।

३—पाणिनीय शिक्षामें भगवान् सूर्यको देवताओंमें विश्वात्मा बताया है—

'यथा देवेषु विश्वात्मा' (पृ० ५२, श्लोक १)

दैनन्दिन सूर्योपस्थानके मन्त्रमें भी 'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च' कहकर हम सूर्यको समस्त जगत्की आत्मा मानते हैं। अतः भगवान् सूर्य विश्वात्मा हैं।

४—नारदीय शिक्षामें सामवेद तथा लौकिक संगीतके निषाद स्वरके देवता सूर्य बताये गये हैं।

समस्त स्वरोंकी अन्तिमता निषाद स्वरमें होती है, क्योंकि समस्त जगतका अन्तिम और व्यापी तत्त्व सूर्य इस स्वरके देवता हैं—

निषीदन्ति स्वरा यस्मान्निषादस्तेन हेतुना।
सर्वांश्चाभिभवत्येव यदादित्योऽस्य दैवतम्॥
(पृ० ४१३, श्लोक १०)

५—सूर्यकी किरणोंमें अगल-बगल धूपमें आड़ लगाकर बीचके रखे गये छिद्रसे जो 'धूलिकण' दिखायी पड़ते हैं, उनकी चञ्चल गतिसे 'अणुमात्रा'का समय एवं उनके गुरुत्वसे 'त्रसरेणु'का तौल बताया गया है। चार अणुमात्रा कालका सामान्य एकमात्रा काल होता है। एक मात्रिक वर्णको ह्रस्व कहते हैं। मनमें यदि त्वरित गतिसे शब्दोच्चारणकी भावना रहती है तो उस उच्चारणका प्रत्येक स्वर-वर्ण एक अणुमात्रा कालका माना जाता है—

सूर्यरश्मिप्रतीकाशात् कणिका यत्र दृश्यते।
अणुत्वस्य तु सा मात्रा मात्रा च चतुराणवा॥
(या० शि० ११)
मानसे चाणवं विद्यात्। (या० शि० १२)
जालान्तरगते भानौ यत् सूक्ष्मं दृश्यते रजः।
त्रसरेणु स विज्ञेय।

६—सूर्यकी गतिसे प्राप्त शरद् ऋतुका विषुवान् मध्यदिन जब बीत जाय, तब उप:कालमें उठकर वेदाध्ययन करना चाहिये। इस उप:कालका वेदाध्ययन वसन्त ऋतुकी रात्रि मध्यमानकी हो तबतक चालू रखना चाहिये—

शरद्विषुवतोऽतीतादुपस्युत्थानमिष्यते।
यावद्वासन्तिकी रात्रिर्मध्यमा पर्युपस्थिता॥
(नारदीय शि०, पृ० ४४२, श्लोक २)

७—वेदका स्वाध्याय आरम्भ करते समय पाँच देवताओंका नमस्कार विहित है। उनमें भगवान् सूर्यका नमस्कार समस्त वेदोंके स्वाध्यायारम्भमें आवश्यक है—

गणनाथसरस्वतीरविशुक्रबृहस्पतीन्।
पञ्चैतान् संस्मरन्नित्य वेदवाणीं प्रवर्तयेत्॥
(सम्प्रदाय प्रबोधिनी-शिक्षा, श्लोक २३)

अतएव वेदाध्यायी एवं वेदप्रेमी तथा उच्चारणकी स्पष्टता चाहनेवालोंको भगवान् श्रीसूर्यनारायणकी आराधना अवश्य करनी चाहिये। सूर्याराधनासे मति निर्मल होती है और वेदोंके स्वाध्यायमें प्रगति होती है। वेदाङ्गोंमें सूर्यकी महिमा इसी ओर इङ्गित करती है।

वेदाध्ययनमें सूर्य-सावित्री

प्रणवं प्राक् प्रयुञ्जीत व्याहृतीस्तदनन्तरम्। सावित्रीं चानुपूर्व्येण ततो वेदान् समारभेत्॥

याज्ञवल्क्य शिक्षा (२।२२) के अनुसार वेदपाठके प्रारम्भमें 'हरि ॐ' उच्चारणके अनन्तर तीन व्याहृतियों[1]—भू:, भुव:, स्व:—के सहित सावित्री अर्थात् सविता देवतावाली गायत्री—'तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्'—का उच्चारण कर लेना चाहिये। ॐकारका उच्चारण मनु० २।७४ में प्रतिपादित है, क्योंकि वेदाध्ययनके आदि और अन्तमें उच्चारण न करनेसे वह व्यर्थ हो जाता है—

ब्राह्मणः प्रणवं कुर्यादादावन्ते च सर्वदा। स्रवत्यनोङ्कृतं पूर्वं परस्ताच्च विशीर्यति॥

'वेद, रामायण, पुराण और महाभारतके आदि, मध्य और अन्तमें सर्वत्र 'हरि'का उच्चारण किया जाता है—

वेदे रामायणे चैव पुराणेषु च भारते। आदिमध्यावसानेषु हरिः सर्वत्र गीयते॥'

---

[1] वाजसनेयी-संहिताके ३३ वें अध्यायकी तृतीय कण्डिकामें तीन ही व्याहृतियोंका व्यवहार है। पाँच या सात व्याहृतियोंका जो स्मृ० १ का विधान भी शाखान्तरीय मान्य विधि है। २ म० भा० स्वर्गा० ६।९३

(खण्ड) हैं, जो नौ-नौ हजार वर्ग-योजन विस्तारवाले हैं (नीलगिरि) मेरुके साथ लगा है । नीलगिरिके उत्तरमें रमणक है। पद्मपुराणमें इसे रम्यक कहा गया है । श्वेतगिरिके उत्तरमें हिरण्मय है ।) और दक्षिण भागमें तीन पर्वत—निषध, हेमकूट, हिमशैल हैं । ये दो-दो हजार वर्ग-योजन विस्तारवाले हैं । (लवाक उत्तरमें पूर्वसागरतक विस्तृत हिमगिरि है । हिमगिरिके उत्तरमें हेमकूट है । यह भी समुद्रतक फैला हुआ है । हेमकूटके उत्तरमें निषध पर्वत है। यह जनपद सम्भवतः विन्ध्याचल-पर अवस्थित था । दमयन्ती-पति नल निषधके राजा थे) । इनके बीचके अवकाशमें नौ-नौ हजार वर्ग-योजन विस्तारवाले तीन वर्ष—(खण्ड) हरिवर्ष, किंपुरुष और भारत विद्यमान हैं । [सम्भवतः हिमालयके इलावृत प्रदेश और निषध पर्वतके बीचके प्रदेशको 'भारत' कहा गया हो । हरिवर्ष सम्भवतः वह प्रदेश हो जो कि हरि अर्थात् वानर-जातिके राजा सुग्रीवद्वारा कभी शासित होता था ।] सुमेरुकी पूर्वदिशामें सुमेरुसे संयुक्त माल्यवान् पर्वत है । [माल्यवान् पर्वतसे समुद्रपर्यन्त प्रदेश भद्राश्व नामक है । आजकल बर्माके नीचे एक मध्य प्रदेश है । सम्भवतः यह प्रदेश और इसके ऊपरका बर्मा प्रदेश माल्यवान् हो ।] माल्यवान्से लेकर पर्वकी ओर समुद्रपर्यन्त भद्राश्व नामक प्रदेश है । [बर्मा और मलयके पूर्वका और श्याम और अनाम (इण्डो चाइनाके प्रदेश सम्भवतः) भद्राश्व नामक हैं ।] सुमेरुके पश्चिम केतुमाल और गन्धमादन देश हैं । केतुमाल तथा भद्राश्वके बीचके वर्षका नाम इलावृत है । [सुमेरुके दक्षिणमें जो उपत्यका (पर्वतपादकी ऊँची भूमि) है, उसे यहाँ इलावृत कहा गया है ।]

पचास हजार वर्गयोजन विस्तारवाले देशमें सुमेरु विद्यमान है और सुमेरुके चारों ओर पचास हजार वर्गयोजन विस्तारवाला देश है । इस प्रकार सम्पूर्ण जम्बूद्वीपका परिमाण सौ हजार वर्गयोजन है । इस परिमाणवाला जम्बूद्वीप अपनेसे दुगुने परिमाणवाले वलयाकार (कङ्कणके सदृश गोल आकारवाले) क्षार समुद्रसे वेष्टित (घिरा हुआ) है । जम्बूद्वीपसे दुगुने परिमाणवाला शाक-द्वीप है, जो अपनेसे दुगुने परिमाणवाले वलयाकार इक्षुरस (एक प्रकारके जल)के समुद्रसे वेष्टित है । [भारतमें शाक-जातिने आक्रमण किया था । कास्पीयन सागरके पर्वकी ओर शाकी नामकी एक जातिका निवास है । यूरोपीय पुराविदोंने स्थिर किया है कि वर्तमान तातार, एशियाटिक रूस, साइबेरिया, क्रिमिया, पोलैंड, हङ्गरीका कुछ भाग, लिथुयनिया, जर्मनीका उत्तरांश, स्वीडन, नारवे आदिको शाकद्वीप कहा गया है ।] इससे आगे इससे दुगुने परिमाणवाला कुशद्वीप है जो अपनेसे दुगुने परिमाणवाले वलयाकार मदिरा (एक प्रकारके जल) के समुद्रसे वेष्टित है । इससे आगे दुगुने विस्तारवाला क्रौञ्च-द्वीप है, जो अपनेसे दुगुने परिमाणवाले वलयाकार घृत (एक प्रकारके जल) के समुद्रसे वेष्टित है । फिर आगे इससे दुगुने परिमाणवाला शाल्मलि-द्वीप है, जो अपनेसे दुगुने परिमाणवाले वलयाकार दधि (एक प्रकारके जल) के समुद्रसे वेष्टित है । इससे आगे दुगुने परिमाणवाला गोमेद-द्वीप है, जो अपनेसे दुगुने परिमाणवाले वलयाकार क्षीर (एक प्रकारके जल) के समुद्रसे वेष्टित है । इससे आगे दुगुने विस्तारवाला पुष्करद्वीप है, जो अपनेसे दुगुने विस्तारवाले वलयाकार मिष्ट जलके समुद्रसे वेष्टित है । इन सातों द्वीपोंसे आगे लोकालोक पर्वत है । इस लोकालोक पर्वतसे परिवृत जो सात समुद्रसहित सात द्वीप हैं, वे सब मिलकर पचास कोटि वर्ग-योजन विस्तारवाले हैं (वर्तमान समयमें पृथिवीका क्षेत्रफल १९,६५,००,००० वर्ग मील तथा घनफल २,५९,८८,००,००,००० घनमील माना जाता है । साथ ही वर्तमान समयमें योजन चार कोसोंका तथा कोस दो मीलके लगभग माना जाता है) । यह

जो लोकालोक पर्वतसे परिवृत विश्वम्भरा (पृथिवी)-मण्डल है, वह सब ब्रह्माण्डके अन्तर्गत संक्षिप्तरूपसे वर्तमान है और यह ब्रह्माण्डप्रधानका एक सूक्ष्म अवयव है, क्योंकि जैसे आकाशके एक अति अल्प देशमें खद्योत विराजमान होता है, वैसे ही प्रधानके अति अल्प देशमें यह सारा ब्रह्माण्ड विराजमान है ।

इन सब पाताल, समुद्र और पर्वतोंमें असुर, गन्धर्व, किंनर, किंपुरुष, यक्ष, राक्षस, भूत, प्रेत, पिशाच, अपस्मारक, अप्सराएँ, ब्रह्मराक्षस, कूष्माण्ड, विनायक नामवाले देवयोनि विशेष (मनुष्योंकी अपेक्षा निकृष्ट अर्थात् राजसी-तामसी प्रकृतिवाले प्राणधारी) निवास करते हैं। और सब द्वीपोंमें पुण्यात्मा देव-मनुष्य निवास करते हैं। सुमेरु पर्वत देवताओंकी उद्यान भूमि है । वहाँपर मिश्र वन, नन्दन-वन, चैत्ररथ-वन, सुमानस-वन—ये चार वन हैं । सुमेरुके ऊपर सुधर्मा नामक देव-सभा है । सुदर्शन नामक पुर है और वैजयन्त नामक प्रासाद (देवमहल) है । यह सब पूर्वोक्त भूलोक कहा जाता है । इसके ऊपर अन्तरिक्षलोक है, जिसमें ग्रह (बुध, शुक्र आदि जो कि सूर्यके चारों ओर घूमते हैं), नक्षत्र (अश्विनी आदि जिसमें कि चन्द्रमा गति करते हैं), तारक (ग्रहों और नक्षत्रोंसे भिन्न अन्य तारे तथा तारा-मण्डल) भ्रमण करते हैं ।

यह सब ग्रह, नक्षत्र आदि, ध्रुव नामक ज्योति (Pole Star पोल स्टार) के साथ, वायुरूप रज्जुसे बँधे हुए (वायु-मण्डलमें स्थित) वायुके नियत संचारसे लब्ध संचारवाले होकर, ध्रुवके चारों ओर भ्रमण करते हैं।

ध्रुवसञ्ज्ञक-ज्योति-मेढिकाष्ठ (एक काष्ठका स्तम्भ जो कि खलिहानके मध्यमें खड़ा होता है, जिसके चारों ओर बैल घूमते हैं) के सदृश निश्चल है । इसके ऊपर स्वर्गलोक है, जिसको माहेन्द्रलोक कहते हैं । माहेन्द्र-लोकमें त्रिदश, अग्निष्वात्त, याम्य, तुषित, अपरिनिर्मित-वशवर्ती, परिनिर्मित-वशवर्ती—ये छः देवयोनि विशेष निवास करते हैं । ये सब देवता संकल्पसिद्ध, अणिमादि ऐश्वर्य-सम्पन्न और कल्पायुवाले तथा वृन्दारक (पूजनेयोग्य), कामभोगी और औपपादिक देहवाले (बिना माता पिताके दिव्य शरीरवाले) हैं और उत्तम अनुकूल अप्सराएँ इनकी स्त्रियाँ हैं ।

इस स्वर्गलोकसे आगे महान् नामक स्वर्ग-विशेष है, जिसको महालोक तथा प्राजापत्यलोक कहते हैं । इसमें कुमुद, ऋभु प्रतर्दन, अञ्जनाभ, प्रचिताभ—ये पाँच प्रकारके देवयोनि विशेष काम करते हैं । ये सब देवविशेष महाभूतवशी (जिनकी इच्छामात्रसे महाभूत कार्यरूपमें परिणत होते हैं) और ध्यानाहार (बिना अन्नादिके सेवन किये ध्यानमात्रसे तृप्त और पुष्ट होनेवाले) तथा सहस्र कल्प आयुवाले हैं । महर्लोकसे आगे जन लोक है, जिसको प्रथम ब्रह्मलोक कहते हैं । जन लोकमें ब्रह्मपुरोहित, ब्रह्मकायिक, ब्रह्ममहाकायिक और अमर—ये चार प्रकारके देवयोनि विशेष निवास करते हैं । ये भूत तथा इन्द्रियोंको स्वाधीनकरणशील हैं । जन लोकसे आगे तपोलोक है, जिसको द्वितीय ब्रह्मलोक कहते हैं । तपोलोकमें अभास्वर, महाभास्वर, सत्यमहाभास्वर—ये तीन प्रकारके देवयोनि विशेष निवास करते हैं, जो भूत, इन्द्रिय, प्रकृति (अन्तःकरण)—इन तीनोंको स्वाधीनकरणशील हैं और पूर्वसे उत्तर-उत्तर दुगुनी-दुगुनी आयुवाले हैं । ये सभी ध्यानाहार ऊर्ध्वरेतस (जिनका वीर्यपात कभी नहीं होता) हैं । ये ऊर्ध्व—सत्यादि लोकमें अप्रतिहत ज्ञानवाले और अधर, अवीचि आदि लोकमें अनावृत ज्ञान वाले अर्थात् सब लोकोंको यथार्थरूपसे जाननेवाले हैं । तपोलोकसे आगे सत्यलोक है, जिसको तृतीय ब्रह्मलोक कहते हैं । इस मुख्य ब्रह्मलोकमें अच्युत, शुद्ध निवास, सत्याभ, सञ्ज्ञासञ्ज्ञी—ये चार प्रकारके देवता विशेष निवास

अन्य पाँच सूक्ष्म और दिव्य लोक हैं, जिनकी सम्मिलित संज्ञा द्यौलोक है। यह सारे भू-भुव अर्थात् पृथिवी और अन्तरिक्षलोकके अंदर हैं। इनकी सूक्ष्मता और सात्त्विकताका क्रमानुसार तारतम्य चला गया है अर्थात् भू और भुव के अंदर स्व, स्व के अंदर मह, मह के अंदर जन, जन के अंदर तप और तप के अंदर सत्यलोक है।

इनके सूक्ष्मता और सात्त्विकताके तारतम्यसे और बहुत-से अवान्तर भेद भी हो सकते हैं। इनमेंसे स्व, मह स्वर्गलोक और जन, तप और सत्यलोक ब्रह्मलोक कहलाते हैं। इनमें वे योगी स्थूल शरीरको छोड़नेके पश्चात् निवास करते हैं, जो वितर्कानुगत भूमिकी परिपक्व अवस्था, विचारानुगत भूमि तथा आनन्दानुगत और अस्मितानुगत भूमिकी आरम्भिक अवस्थामें संतुष्ट हो गये हैं और जिन्होंने विवेक-ख्यातिद्वारा सारे क्लेशोंको दग्धबीज करके असम्प्रज्ञातसमाधिद्वारा स्वरूपावस्थितिके लिये यत्न नहीं किया है। आनन्दानुगत और अस्मितानुगत भूमिकी परिपक्व अवस्थावाले उच्चतर और उच्चतम कोटिके विदेह और प्रकृतिलय योगी सूक्ष्म शरीरों, सूक्ष्म इन्द्रियों और सूक्ष्म विषयोंको अतिक्रमण कर गये हैं। इसलिये वे इन सब सूक्ष्म लोकोंसे परे कैवल्यपद-जैसी स्थितिको प्राप्त किये हुए हैं।

सूर्यके भौतिक स्वरूपमें संयमद्वारा योगीको भूलोक अर्थात् पृथिवी-लोक और भुव लोक अर्थात् अन्तरिक्षलोकके अन्तर्गत सारे स्थूल लोकोंका सामान्य ज्ञान प्राप्त होता है और इसी संयममें पृथिवीका आलम्बन करके अथवा केवल पृथिवीके आलम्बनसहित संयमद्वारा पृथिवीके ऊपरके द्वीपों, सागरों, पर्वतों आदि तथा उसके अधोलोकोंका विशेष ज्ञान प्राप्त होता है।

ध्यानकी अधिक सूक्ष्म अवस्थामें इसी उपर्युक्त संयमके सूक्ष्म हो जानेपर अथवा सूर्यके अध्यात्म सूक्ष्म स्वरूपमें संयमद्वारा सूक्ष्म लोकों अर्थात् स्व, मह, जन, तप और सत्यलोकका ज्ञान प्राप्त होता है।

वाचस्पति मिश्रने सूर्यद्वारको सुषुम्णा नाड़ी मानकर सुषुम्णा नाड़ीमें संयम करके भुवन विन्यासके ज्ञानको सम्पादन करना बतलाया है। वास्तवमें कुण्डलिनी जाग्रत् होनेपर सुषुम्णा नाड़ीमें जब सारे स्थूल प्राणादि प्रवेश कर जाते हैं, तभी इस प्रकारके अनुभव होते हैं।

उस समय संयमकी भी आवश्यकता नहीं रहती, किंतु जिधर वृत्ति जाती है अथवा जिसका पहलेसे ही संकल्प कर लिया है, उसीका साक्षात्कार होने लगता है।

सूर्य संयमन यौगिक सिद्धि है, अतः इसकी प्रक्रिया योगि-सद्गुरुसे ही समझनी चाहिये।

'दिशि दिशतु शिवम्'

व्यस्तव्यस्तत्वशून्यो निजरुचिरनिशानश्वरः कर्तुमीशो
विश्वं वेश्मेव दीपः प्रतिहततिमिरं यः प्रदेशस्थितोऽपि।
दिक्कालापेक्षयासौ त्रिभुवनमटतस्तिग्मभानोर्नवाख्यां
यातः शातक्रतव्यां दिशि दिशतु शिवं सोऽर्चिषामुद्गमो नः॥

(सूर्यशतकम् १८)

जिस प्रकार एकदेशमें स्थित दीपक गृहको अन्धकार-शून्य करता हुआ उसे प्रकाशमय कर देता है, उसी प्रकार एकदेशमें स्थित होते हुए भी विश्वको अन्धकाररहित एवं आलोकमय करनेमें समर्थ विनाश-व्यसनरहित तथा अपने तेजसे निशाको नष्ट करनेवाली और दिक् तथा कालकी व्यवस्था करनेकी अपेक्षासे इन्द्र-दिशा (पूर्व) में (प्रतिदिन) उदित होनेके कारण नवीन कही जानेवाली, तीन लोकोंमें पर्यटन करनेवाले सूर्यकी किरणें हम सब लोगोंका कल्याण करें। [सूर्यमें संयम करनेवाले योगियोंको भुवनोंका ज्ञान इन्हीं कल्याणकारिणी किरणोंके माध्यमसे होता है।]

करते हैं। ये अचल-भवनन्यास (किसी एक नियत गृहके अभाव होनेसे अपने शरीररूप गृहमें ही स्थित) होनेसे स्वप्रतिष्ठित हैं और यथाक्रमसे ऊँची-ऊँची स्थितिवाले हैं। ये प्रधान (अन्तःकरण) को स्वाधीन करणशील और पूरी सर्ग आयुवाले हैं। अच्युत नामक देव-विशेष सवितर्क-ध्यानजन्य सुख भोगनेवाले हैं, शुद्ध निवास सविचार ध्यानसे तृप्त हैं। इस प्रकार ये सभी सम्प्रज्ञात निष्ठ हैं। (समाधिपाद सूत्र १७) ये सब मुक्त नहीं हैं, किंतु त्रिलोकीके मध्यमें ही प्रतिष्ठित हैं। इन पूर्वोक्त सातों लोकोंको ही परमार्थसे ब्रह्मलोक जानना चाहिये। (क्योंकि हिरण्यगर्भके लिङ्गदेहसे ये सब लोक व्याप्त हैं।)

विदेह और प्रकृतिलय नामक योगी (समाधिपाद सूत्र १९) मोक्षपद (कैवल्यपाद) के तुल्य स्थितिमें हैं, इसलिये वे किसी लोकमें निवास करनेवालोंके साथ नहीं उपन्यस्त किये गये।

सूर्यद्वार (सुषुम्णा नाड़ी) में संयम करके योगी इस भुवन विन्यासके ज्ञानको सम्पादन करे। किंतु यह नियम नहीं है कि सूर्यद्वारमें संयम करनेसे ही भुवन-ज्ञान होता हो, अन्य स्थानमें संयम करनेसे भी भुवन-ज्ञान हो सकता है, परंतु जबतक भुवनका साक्षात्कार न हो जाय, तबतक दृढचित्तसे संयमका अभ्यास करता रहे और बीच-बीचमें उद्वेगसे उपराम न हो जाय।

[उपर्युक्त व्यासभाष्यमें बहुत-सी बातोंका हमने स्पष्टीकरण कर दिया है। कुछ एक बातें जो पौराणिक विचारोंसे सम्बन्ध रखती हैं, उनको हमने वैसा ही छोड़ दिया है।]

भूलोक अर्थात् पृथिवीलोकका विशेषरूपसे वर्णन किया गया है। उसके ऊपरी भागको जो सात द्वीपों और सात महासागरोंमें विभक्त किया गया है, उनका इस समय ठीक-ठीक पता चलना कठिन है, क्योंकि उस प्राचीन समयसे अबतक भूलोकसम्बन्धी बहुत कुछ परिवर्तन हो गया होगा। योजन चार ... हैं। यहाँ कोसका क्या पैमाना है? यह भाष्यकारने नहीं बतलाया है। यह वही हो सकता है जिसके अनुसार भाष्यकारका परिमाण पूरा हो सके। वर्तमान समयके अनुसार सात द्वीप और सात सागर निम्न प्रकार हो सकते हैं। सात द्वीप—१—एशियाका दक्षिणी भाग अर्थात् हिमालय-पर्वतके दक्षिणमें जो अफगानिस्तान, भारतवर्ष, बर्मा और स्याम आदि देश हैं। २—एशियाका उत्तरी भाग अर्थात् हिमालय-पर्वतके उत्तरमें तिब्बत, चीन तथा तुर्किस्तान इत्यादि। ३—यूरोप, ४—अफ्रीका, ५—उत्तरी अमेरिका, ६—दक्षिणी अमेरिका, ७—भारतवर्षके दक्षिण-पूर्वमें जो जावा, सुमात्रा और आस्ट्रेलिया आदिका द्वीपसमूह है।

सात महासागर

१—हिंद महासागर, २—प्रशान्त महासागर, ३—अटलांटिक महासागर, ४—उत्तर हिममहासागर, ५—दक्षिण हिममहासागर, ६—अरबसागर और ७—भूमध्यसागर।

सुमेरु अर्थात् हिमालय-पर्वत उस समय भी ऊँची कोटिके योगियोंके तपका स्थान था। स्थूल भूतोंकी स्थूलता और तमस्के तारतम्यके क्रमानुसार पृथिवीके नीचेके भागको सात अधोलोकोंमें नरक-लोकोंके नामसे विभक्त किया गया है। इनके साथ जो जलके भाग हैं, उनको सात पातालोंके नामसे दर्शाया गया है तथा इन तामसी स्थानोंमें रहनेवाले मनुष्यसे नीची राजसी और तामसी योनियोंका असुर-राक्षस आदि नामोंसे वर्णन किया गया है।

भुवःलोक अन्तरिक्ष-लोक है, जिसके अन्तर्गत पृथिवीके अतिरिक्त इस सूर्य-मण्डलके ध्रुवपर्यन्त सारे ग्रह, नक्षत्र और तारका आदि तारागण हैं। यह सब भूलोक अर्थात् हमारी पृथिवीके सदृश स्थूल भूतोंवाले हैं। इनमें किसीमें पृथिवी, किसीमें जल, किसीमें अग्नि और किसीमें वायु-तत्त्वकी प्रधानता है।

अन्य पाँच सूक्ष्म और दिव्य लोक हैं, जिनकी सम्मिलित संज्ञा द्यौलोक है। यह सारे भू-भुव अर्थात् पृथिवी और अन्तरिक्षलोकके अंदर हैं। इनकी सूक्ष्मता और सात्त्विकताका क्रमानुसार तारतम्य चला गया है अर्थात् भू और भुव के अंदर स्व, स्व के अंदर मह, मह के अंदर जन, जन के अंदर तप और तप के अंदर सत्यलोक है।

इनके सूक्ष्मता और सात्त्विकताके तारतम्यसे और बहुत-से अवान्तर भेद भी हो सकते हैं। इनमेंसे स्व, मह स्वर्गलोक और जन, तप और सत्यलोक ब्रह्मलोक कहलाते हैं। इनमें वे योगी स्थूल शरीरको छोड़नेके पश्चात् निवास करते हैं, जो वितर्कानुगत भूमिकी परिपक्व अवस्था, विचारानुगत भूमि तथा आनन्दानुगत और अस्मितानुगत भूमिकी आरम्भिक अवस्थामें सतुष्ट हो गये हैं और जिन्होंने विवेक-ख्यातिद्वारा सारे क्लेशोंको दग्धबीज करके असम्प्रज्ञातसमाधिद्वारा स्वरूपा वस्थितिके लिये यत्न नहीं किया है। आनन्दानुगत और अस्मितानुगत भूमिकी परिपक्व अवस्थावाले उत्तर और उच्चतम कोटिके विदेह और प्रकृतिलय योगी सूक्ष्म शरीरों, सूक्ष्म इन्द्रियों और सूक्ष्म विषयोंको अतिक्रमण कर गये हैं। इसलिये वे इन सब सूक्ष्म लोकोंसे परे कैवल्यपद-जैसी स्थितिको प्राप्त किये हुए हैं।

सूर्यके भौतिक स्वरूपमें संयमद्वारा योगीको भूलोक अर्थात् पृथिवी-लोक और भुव लोक अर्थात् अन्तरिक्षलोकके अन्तर्गत सारे स्थूल लोकोंका सामान्य ज्ञान प्राप्त होता है और इसी संयममें पृथिवीका आलम्बन करके अथवा केवल पृथिवीके आलम्बनसहित संयमद्वारा पृथिवीके ऊपरके द्वीपों, सागरों, पर्वतों आदि तथा उसके अधोलोकोंका विशेष ज्ञान प्राप्त होता है।

ध्यानकी अधिक सूक्ष्म अवस्थामें इसी उपर्युक्त संयमके सूक्ष्म हो जानेपर अथवा सूर्यके अध्यात्म सूक्ष्म स्वरूपमें संयमद्वारा सूक्ष्म लोकों अर्थात् स्व, मह, जन, तप और सत्यलोकका ज्ञान प्राप्त होता है।

वाचस्पति मिश्रने सूर्यद्वारको सुषुम्णा नाड़ी मानकर सुषुम्णा नाड़ीमें संयम करके भुवन विन्यासके ज्ञानको सम्पादन करना बतलाया है। वास्तवमें कुण्डलिनी जाग्रत् होनेपर सुषुम्णा नाड़ीमें जब सारे स्थूल प्राणादि प्रवेश कर जाते हैं, तभी इस प्रकारके अनुभव होते हैं।

उस समय संयमकी भी आवश्यकता नहीं रहती, किंतु जिधर वृत्ति जाती है अथवा जिसका पहलेसे ही संकल्प कर लिया है, उसीका साक्षात्कार होने लगता है।

सूर्य संयमन यौगिक सिद्धि है, अत इसकी प्रक्रिया योगि-सद्गुरुसे ही समझनी चाहिये।

'दिशि दिशतु शिवम्'

अस्तव्यस्तत्वशून्यो निजरुचिरनिशानश्वर कर्तुमीशो
विश्व वेश्मेव दीप प्रतिहततिमिर य प्रदेशस्थितोऽपि।
दिक्कालापेक्षयासौ त्रिभुवनमटतस्तिग्मभानोर्नवाख्यां
यात शातक्रतव्या दिशि दिशतु शिव सोऽर्चिषामुद्गमो न ॥
(सूर्यशतकम् १८)

जिस प्रकार एकदेशमें स्थित दीपक गृहको अन्धकार-शून्य करता हुआ उसे प्रकाशमय कर देता है, उसी प्रकार एकदेशमें स्थित होते हुए भी विश्वको अन्धकाररहित एव आलोकमय करनेमें समर्थ विनाश-व्यसनरहित तथा अपने तेजसे निशाको नष्ट करनेवाला और दिक् तथा कालकी व्यवस्था करनेकी अपेक्षासे इन्द्र-दिशा (पूर्व) में (प्रतिदिन) उदित होनेके कारण नवीन कही जानेवाली, तीन लोकोंमें पर्यटन करनेवाले सूर्यकी किरणें हम सब लोगोंका कल्याण करें। [सूर्यमें संयम करनेवाले योगियोंको भुवनोंका ज्ञान इन्हीं कल्याण कारिणी किरणोंके माध्यमसे होता है।]

नाडीचक्र और सूर्य

(लेखक—श्रीरामनारायणजी त्रिपाठी)

'नाडीचक्र और सूर्य' इस निबन्धमें सर्वप्रथम नाडीचक्र और सूर्यका परिचय देना अत्यन्त अपेक्षित है। तदनन्तर इनके पारस्परिक सम्बन्ध, प्रभाव तथा फल विचारणीय हैं।

मानव शरीरमें पत्तोंकी अति सूक्ष्म शिराओंकी भाँति नाड़ियोंकी संख्या बहत्तर हजार बतायी गयी है।[1] ये नाड़ियाँ लिङ्गके ऊपर और नाभिके नीचे स्थित कन्दसे—जिसे मूलाधार कहते हैं—निकलकर सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त हैं। इनमें बहत्तर नाड़ियाँ मुख्य हैं।[2] मूलाधारमें स्थित कुण्डलिनीचक्रके ऊपर तथा नीचे दस-दस नाड़ियाँ और तिरछी दो-दो नाड़ियाँ हैं। ये सभी नाड़ियाँ चक्रके समान शरीरमें स्थित होकर शरीर तथा वायुकी आधार हैं। इनमें दस नाड़ियाँ प्रधान हैं तथा अन्य दस नाड़ियाँ वायु-वहन करनेवाली हैं।[3] प्रधान दस नाड़ियोंके नाम—इडा, पिङ्गला, सुषुम्णा, गान्धारी, हस्तिजिह्वा, पूषा, यशस्विनी, अलम्बुषा, कुहू और शङ्खिनी हैं।[4] इनमें प्रथम तीन—इडा, पिङ्गला और सुषुम्णा सर्वोत्तम नाड़ियाँ हैं जो प्राणमार्गमें स्थित हैं। मेरुदण्ड या शरीरके वाम भागमें अथवा वाम नासारन्ध्रमें इडा और दाहिने ओर पिङ्गला और बीचमें सुषुम्णा रहती है। इसके अतिरिक्त आँखमें गान्धारी, दाहिनीमें हस्तिजिह्वा, दक्षिण कर्णमें पूषा, बायें कानमें यशस्विनी, मुखमें अलम्बुषा, लिङ्गमें कुहू, गुदामें शङ्खिनी स्थित है। शरीरके दस द्वारोंमें ये दस नाड़ियाँ हैं।[5]

इन नाड़ियोंमें इडा नाडीमें चन्द्र, पिङ्गलामें सूर्य, सुषुम्णामें शम्भु या अग्नि स्थित हैं अथवा क्रमसे इन तीनों नाड़ियोंके चन्द्र, सूर्य और अग्नि या शम्भु देवता हैं।[6] बायी (इडा) नाडीका परिचायक चन्द्र शक्तिरूपसे तथा दाहिनी पिङ्गला नाडीका प्रवाहक सूर्य शङ्कररूपमें रहते हैं। जो लोग चन्द्र-सूर्य नाडीका सर्वदा अभ्यास करते हैं, उन्हें त्रैकालिक ज्ञान स्वाभाविक होता है। इन नाड़ियोंके स्वरसे शुभाशुभ, सिद्धि-असिद्धिका ज्ञान किया जाता है। जैसे यात्रामें इडा तथा प्रवेशमें पिङ्गला शुभ है। चन्द्रनाडी श्वेत, सम, शीत, स्त्री तथा सूर्यनाडी असित, विषम, उष्ण पुरुष है। शुभ कर्ममें चन्द्रनाडी तथा रौद्रकर्ममें सूर्यनाडी प्रशस्त है। इनका उल्लेख यों है—

---

१ द्वासप्ततिसहस्राणि नाडीद्वाराणि पञ्जरे। ([illegible] ६ । २८)

२ ऊर्ध्वं मेढ्रादधो नाभेः कन्दोऽस्ति [illegible] । तत्र नाड्यः समुत्पन्नाः सहस्राणि द्विसप्ततिः ॥
तासु नाडीसहस्रेषु द्विसप्ततिरुदाहृता। (यो॰ चू॰ उ॰ १४।१५)
[illegible] निर्गता । [illegible] ॥ ([illegible] ३२)

३ प्रधाना [illegible] वायुप्रवाहका । ([illegible] ३८)

४ द्रष्टव्य—यो॰ चू॰ उ॰ १६।२१ श्लोक।
इडाया [illegible] भास्करः । सुषुम्णा [illegible] ॥ ([illegible] ४०)

५ [illegible] ॥
(यो॰ चू॰ उ॰ २१)

[illegible] दक्षिणा नाडी पिङ्गला नाम [illegible] । वामा इडाख्या [illegible] । [illegible] सुषुम्णा [illegible] । ([illegible] नाडीप्रकरण)

शुक्लपक्षमें प्रथम तीन दिनतक चन्द्र नाडी चलती है, इसके अनन्तर तीन दिन सूर्य नाडी चलता है। इस क्रमसे शुक्लपक्षमें नाडी-सञ्चालन होता है और कृष्णपक्षमें पहले तीन दिन सूर्य-स्वर अर्थात् दाहिनी नाडीका उदय होता है, अनन्तर चन्द्र नाडीका। इस प्रकार प्रत्येक दिनमें भी इन दोनों नाडियोंका प्रवाह होता रहता है।

वास्तवमें नाडी चक्र तबतक नहीं समझा जा सकता है, जबतक उसको सञ्चालित करनेवाली चित्-शक्तिका स्वरूप न समझ लिया जाय। यह चित्-शक्ति कुण्डलिनी है, जिसे आधारशक्ति कहते हैं। उसके बोधके बिना योगके सब उपाय व्यर्थ हो जाते हैं। कहा गया है कि सोयी हुई कुण्डलिनी जब गुरु-कृपासे जग जाती है, तब सारे चक्र खिल जाते हैं और ब्रह्म-ग्रन्थि, विष्णु-ग्रन्थि तथा रुद्र-ग्रन्थि—ये तीनों ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं—

सुप्ता गुरुप्रसादेन यदा जागर्ति कुण्डली।
तदा सर्वाणि पद्मानि भिद्यन्ते ग्रन्थयोऽपि च॥
(ह० यो० प्र० ३। [illegible])

जब गुरु-कृपासे जागृत कुण्डलिनी ऊपरकी ओर उठती है तो वह शून्य पदवी अर्थात् सुषुम्ना नाडी प्राण-वायुके लिये राजपथ बन जाती है। जैसे राजा राजमार्गसे सुखसे निकलता है, वैसे प्राण-वायु सुषुम्ना नाडीमें सुखसे चली जाती है। उस समय चित्त निरालम्ब हो जाता है और योगीको मृत्युभय नहीं होता है। सुषुम्ना नाडीकी तन्त्रशास्त्रमें बहुत ही महिमा गायी गयी है। शून्य पदवी, ब्रह्मरन्ध्र, महापथ, श्मशान, शाम्भवी, मध्यमार्ग—ये सब सुषुम्नाके पर्याय वाची शब्द हैं।

हठयोग-प्रदीपिकामें कहा गया है कि दण्डसे ताडन करनेपर जैसे सर्प अपनी कुण्डलिना छोड़ देता है, वैसे 'जालन्धर-बन्ध' लगाकर वायुको सुषुम्ना नाडीमें धारण करनेपर कुण्डलिनी भी सीधी हो जाती है। उसी समय इडा और पिङ्गलाका आश्रय करनेवाली मरण-अवस्था प्राप्त हो जाती है अर्थात् कुण्डलिनीके बोध हो जानेपर सुषुम्ना नाडीमें प्राणोंका प्रवेश हो जाता है और इडा एवं पिङ्गला नाडीसे प्राणोंका वियोग हो जाता है। इसीको योगी लोग मरण-अवस्था कहते हैं। कुण्डलिनीके सम्पीडनके लिये महामुद्राका विधान है। इस महामुद्राको आदिनाथ आदि महासिद्धोंने प्रकट किया है। इससे पाँच महाक्लेश—अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश आदि शोक-मोह नष्ट हो जाते हैं।

इस महामुद्रामें इडा और पिङ्गला अर्थात् सूर्य और चन्द्र नाडीकी प्रमुख भूमिका होती है। शरीरके दक्षिण भागमें पिङ्गला और वामभागमें इडा रहती है। पिङ्गला दाहिनी फेरेसे और इडा बायें फेरेसे रहती है।

इडा वामे च विज्ञेया पिङ्गला दक्षिणे स्मृता।
(शि० स० ४९)

शरीरमें बायीं ओर रहनेवाली इडा नाडी अमृतरूप होनेके कारण संसारको पुष्ट करनेवाली होती है और पिङ्गला अर्थात् सूर्य नाडी जो दक्षिण भागमें रहती है, सदा संसारको उत्पन्न करती है—विशेषरूपसे उत्पत्तिका कार्य सूर्य नाडीका है।

हठयोग-प्रदीपिकामें सुषुम्ना नाडीकी तुलना मेरुसे की गयी है। उसमें सोमकलारस प्रवाहित होता है। मेरुके तुल्य सुषुम्ना नाडीके मध्यमें स्थित सोमकलाके रसको तालु-विवरमें रखकर रजोगुण, तमोगुणसे अनभिभूत सत्त्वगुणमें वृत्तिको रखनेवाला जो विद्वान् पुरुष आत्मतत्त्वको कहता है, वह नदियोंका अर्थात् इडा, पिङ्गला, सुषुम्ना तीनों नाडीस्वरूप गङ्गा, यमुना, सरस्वतीका मुख है। उसमें चन्द्रसे शरीरका सार झरता है। गोरखनाथजीने कहा है कि 'नाभिदेशमें अग्निरूप सूर्य स्थित है और तालुके मूलमें अमृतरूप चन्द्रमा

१ महामुद्राका विधान हठयोग प्रदीपिकाके तीसरे उपदेश　　श्लोकतक है।

स्थित है। जब चन्द्रमा नीचेकी ओर मुख करके अमृत बरसाता है, तब सूर्य उसको ग्रस लेता है।' इसलिये हठयोग-प्रदीपिकामें कहा गया है कि योगीको ऐसी मुद्रा करनी चाहिये, जिससे अमृत व्यर्थ न जाय। विपरीत करणी[1] मुद्रामें ऊपर नाभिवाले तथा नीचे तालुवाले योगीके ऊपर सूर्य और नीचे चन्द्रमा रहते हैं—

ऊर्ध्वनाभेरधस्तालोरूर्ध्वं भानुरधः शशी।[2]
(ह० यो० ३। ७९)

लिङ्ग-शरीरस्थ मेरुदण्डके भीतर ब्रह्मनाडीमें अनेक चक्रोंकी कल्पना की जाती है। कोई ३२ चक्रोंको तथा दूसरे ९ चक्रों 'नवचक्रमयो देहः' (भा० उ०) को अन्य छः चक्रोंको मानते हैं। इन छः चक्रोंका नाम मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा है तथा स्थान योनि, लिङ्ग, नाभि, हृदय, कण्ठ और भ्रूमध्य है। इन्हें षट्कमल भी कहते हैं, जिनमें क्रमशः ४, ६, १०, १२, १६ और २ दल होते हैं। ये दल विविध वर्णोंके होते हैं तथा प्रत्येक दलपर मातृकाके एक-एक वर्ण विद्यमान हैं। प्रत्येक चक्रपर चतुष्कोण, अर्धचन्द्राकार, त्रिकोण, षट्कोण, पूर्णचन्द्राकार, लिङ्गाकार यन्त्र है, जो पाँच महातत्त्व पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश और महत्तत्त्वके द्योतक हैं। इन चक्रोंके विविध वर्णोंके आकारसे भिन्न भिन्न कई अभिमान और देवशक्ति हैं। ये चक्र प्राण-पुञ्ज ही हैं, अन्य कोई वस्तु नहीं है—ऐसा विद्वानोंका मत है। इस दृष्टिसे वायुतत्त्वाधिष्ठित होनेके कारण तथा नाडी-पुञ्जके कारण इन चक्रोंसे भी सूर्यका आन्तरिक और बाह्य सम्बन्ध सुनिश्चित है। इसी आशयकी उक्तियाँ भी प्राप्त होती हैं—

पुरुषय च चक्रस्य स्थानसूर्यानलात्मकम्।
त्रिखण्डमादुरानन्द सोमसूर्याग्न्यात्मकम्॥

याज्ञवल्क्य-संहितामें सूर्य-ज्योतिको ही चौ... हृदयाकाशका प्रकाशक माना गया है। सूर्य... बाह्याभ्यन्तरकी प्रकाशयित्री है।

इसके अतिरिक्त आठ प्रकारके कुम्भक... सर्वप्रथम सूर्यभेदन प्राणायाम है। सूर्यभेदन प्रा... सूर्यनाडीसे अर्थात् पिङ्गलासे बाहर वायुको ... विधान है। इस प्रकारसे प्रतिदिन पाँच-पाँच ... प्राणायामोंको बढ़ाते हुए अस्सी दिनतक करने... अन्य कुम्भकोंका अधिकारी होता है।

प्राणतोषिणीतन्त्र और योगशिखोपनिषद्‌... हठयोगको सूर्य और चन्द्रका अर्थात् प्राण और अ... ऐक्य कहा गया है। सूर्यनाडी प्राण तथा च... अपान बताया गया है। प्राण-अपानकी ए... प्राणायाम ही हठयोग है—

हकारेण तु सूर्यः स्यात् ठकारेणेन्दुरुच्यते।
सूर्यचन्द्रमसोरैक्यं हठ इत्यभिधीयते॥

कुण्डलिनी जब उद्बुद्ध होती है तो कमले... और प्रकाश होता है। प्रकाशरूप ही ... बिन्दु है। नादसे जायमान बिन्दु तीन प्रकारका है— इच्छा, ज्ञान और क्रिया—जिसको योगी लोग ... रूपमें सूर्य, चन्द्र और अग्नि कहते हैं तथा ... ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी कहते हैं। ... शरीरके आधे भागको सूर्य और आधे भागको चन्द्र... कहते हैं। इन दोनोंको मिलाकर सुषुम्नामें ... करना योगका लक्ष्य मानते हैं।

उपर्युक्त बातोंसे सूर्य और नाडीतन्त्रका सम्बन्ध निश्चित हो गया। अब यह विचारणीय है कि ... नाडीतन्त्रसे आभ्यन्तर क्षेम-सूर्यका सम्बन्ध है या ...

---

१ विपरीतकरणीमुद्राका विवरण हठयोगप्रदीपिकाके ३। ७९–८१ श्लोकोंमें वर्णित है।

२ ऊर्ध्वनाभेरधस्तालोः ... करणी ... विपरीतकरणी ... हठये ... ॥

लोम-सूर्यका। यह विचार इसलिये उपस्थित है कि योगशास्त्रोंमें कहा गया है—'यत् पिण्डे तद् ब्रह्माण्डे'—जो पिण्ड (शरीर) में है, वही ब्रह्माण्डमें है। यथार्थत यह शरीर ही ब्रह्माण्ड है। दूसरे शब्दोंमें शरीरको ब्रह्माण्डकी प्रतिमूर्ति कह सकते हैं। ईश्वरने विश्वकी रचना करके मनुष्य-शरीरको ब्रह्माण्डकी प्रतिमूर्ति बनाकर उसमें अपने ज्ञानका समावेश किया, ताकि मनुष्य अपनेमें ही विश्वस्थित पदार्थके ज्ञानको सहजमें जान सके और भोग सके—उसको एतदर्थ अयत्र जाना न पड़े।

इस शरीरमें चतुर्दश भुवन, सप्तद्वीप, सप्तसागर, अष्ट पर्वत, सर्वतीर्थ, सब देवता, सूर्यादि ग्रह और सब नदिया आदि पदार्थ भिन्न भिन्न स्थानोंपर विद्यमान हैं। इसका विस्तृत विवरण शिवसंहिता द्वितीय पटल, शाक्तानन्द-तरङ्गिणी, निर्वाणतन्त्र, तत्त्वसार, प्राणतोषिणीतन्त्र आदि ग्रन्थोंमें दिया गया है। उद्धरणके रूपमें कुछ वाक्य नीचे लिखे जा रहे हैं—

> देहेऽस्मिन् वर्तते मेरु सप्तद्वीपसमन्वित ।
> सरित सागरा शैला क्षेत्राणि क्षेत्रपालका ॥
> ऋषयो मुनयः सर्वे नक्षत्राणि ग्रहास्तथा ।
> पुण्यतीर्थानि पीठानि वर्तन्ते पीठदेवता ॥
> सृष्टिसंहारकर्तारौ भ्रमन्तौ शशिभास्करौ ।
> नभो वायुश्च वह्निश्च जल पृथिवी तथैव च ॥
> त्रैलोक्ये यानि भूतानि तानि सर्वाणि देहत ।
> (शि० सं० २ । १-४)

> पिण्डब्रह्माण्डयोरैक्य श्रुतिविदानीं प्रयत्नत ।
> पाताल्भूधरा लोकास्तथान्ये द्वीपसागरा ॥
> आदित्यादिग्रहाः सर्वे पिण्डमध्ये व्यवस्थिताः ।
> पिण्डमध्ये तु तान् ज्ञात्वा सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ॥
> (शाक्तानन्दतरङ्गिणी)

इसके अतिरिक्त शरीरान्तर्गत सुषुम्ना विवरस्थ पञ्च व्योमोंमें पाँचवाँ सूर्यव्योम भी है, जिसकी चर्चा मण्डलब्राह्मणोपनिषद् आदि ग्रन्थोंमें सफल और सविधि की गयी है। अत यह सिद्ध है कि शरीरस्थ सूर्य है और उसका नाडी चक्रोंसे निश्चित सम्बन्ध है।

बाह्य सूर्य प्रत्यक्ष एव विदित हैं, उनका परिचय देना अनावश्यक है। वे अपने रश्मिरूपी करोंसे पूरे ब्रह्माण्डसे सम्बन्धित हैं। उनसे असम्बद्ध चराचर जगत्‌का कोई भी पदार्थ नहीं है। शरीर और शरीरस्थ नाड़ियोंसे उनका आधिदैविक सम्बन्ध है। जिस प्रकार सासारिक सम्पूर्ण पदार्थोंके अधिष्ठातृदेव भिन्न भिन्न होते हैं, उसी प्रकार शरीरावयवों तथा शारीरिक सकल पदार्थोंके भी भिन्न भिन्न अधिष्ठान-देव हैं। इस दृष्टिसे विचार करनेपर बाह्य सूर्यसे भी शरीरका सम्बन्ध निश्चित है तथा उसके अनुसार उपास्य-उपासकभाव भी सिद्ध है। पार्थिव वनस्पतियों, औषधों, अन्नों और जीवोंके जीवनसे सूर्य और चन्द्रका विशेष सम्बन्ध है। इन्हींके द्वारा उनकी प्राणन, विकसन, वर्धन और विपरिणमन आदि क्रियाएँ होती हैं। वास्तवमें सूर्य स्थावर-जङ्गम सम्पूर्ण जगत्‌के आत्मा हैं।

'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च' (ऋ० १ । ११५ । १)

सूर्यतापिनी-उपनिषद्‌में सूर्यको सर्वदेवमय कहा गया है—

> एष ब्रह्मा च विष्णुश्च रुद्र एष हि भास्करः ।
> त्रिमूर्त्यात्मा त्रिवेदात्मा सर्वदेवमयो रवि ॥
> (१ । ६)

अधिष्ठान-सम्बन्ध तथा उपास्य-उपासक-भावके द्वारा शरीरका सूर्यके साथ सर्वात्मना सम्बन्ध होनेपर भी नाडीचक्रसे उनका क्या सम्बन्ध है—इस परिप्रेक्ष्यमें विचारणीय यह है कि वैदिककालसे चली आ रही उपासना-पद्धतिमें विष्णु, शिव, शक्ति, सूर्य और गणेश—इन पञ्चदेवोंकी उपासना प्रधान है, क्योंकि ये पञ्च देव पञ्चतत्त्वोंके अधिपति हैं। आकाशके विष्णु, (अग्निके) शक्ति, वायुके सूर्य, पृथ्वीके शम्भु और (जलके) अधिपति हैं।

आकाशस्याधिपो विष्णुरग्नेश्चैव महेश्वरी।
वायोः सूर्यः क्षितेरीशो जीवनस्य गणाधिपः॥

वायु-तत्त्वके अधिपति सूर्य बाह्य वायु तथा शरीरान्तर सञ्चारी प्राण, अपान, उदान, समान, व्यान आदि वायुओंके अधिपति हैं। इन प्राण आदि वायुओंका सचरण तथा बाह्य वायुका ग्रहण एवं दूषित वायुका त्याग शरीरमें नाडियोंके द्वारा ही होता है। अतः नाडियोंसे सूर्यका सम्बन्ध निर्विवाद सिद्ध है। सूर्य वायुद्वारा सबका प्राणन करते हैं। अतः वे जगत्के आत्मा माने गये हैं और पञ्चदेवोंमें एक विशिष्ट देव भी कहे गये हैं। पूर्वोक्त विचारोंसे यह निष्कर्ष निकलता है कि नाडीचक्रसे सूर्यका आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक—इन तीनों प्रकारका सम्बन्ध है, इसलिये सूर्यकी उपासना आवश्यक है। विशेषतः नेत्ररोगी, चर्मरोगी, वातरोगी तथा शत्रुपीडितके लिये यह लाभकारी है।

यौगिक क्रियाओंके लिये तो सूर्य-समाश्रय अत्यन्त अपेक्षित है; क्योंकि जबतक चन्द्र-सूर्यकी शम्भु-नाडियोंकी गति-शक्तिका नियमन नहीं होता, तबतक मुक्तिरूपा कुण्डलिनीका प्रबोधन करना असम्भव है। उक्त तीनों नाडियों तथा कुण्डलिनीका वेत्ता ही योगवित् एवं योगशास्त्रवित् है। योगशास्त्रियोंकी दृष्टिमें इस कुण्डलिनीके प्रबोधके पूर्व मानव एवं पशुमें कोई तात्त्विक भेद नहीं रहता।

'यावत् सा निद्रिता देहे तावज्जीवः पशुर्यथा।'
(घेरण्डसंहिता ३।५०)

नाडीचक्रसे सूर्यका सम्बन्ध होनेके कारण सूर्योपासनाकी भाँति आन्तरोपासना परमावश्यक है।

योगमें शरीरस्थ शक्ति-केन्द्र सूर्यचक्रका महत्त्व

(लेखक—पं० श्रीमधुसूदनजी मिश्र)

इस विश्व-ब्रह्माण्डमें व्यापक अनन्त शक्तिका स्रोत सूर्य ही है। यजुर्वेदके एक मन्त्र 'आ प्रा द्यावा पृथिवी अन्तरिक्षꣳ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च' तथा छान्दोग्य उपनिषद्के मन्त्र ३। १९। १ 'आदित्यो ब्रह्मेत्यादेशस्तस्योपव्याख्यानम् सदेवेदमग्र आसीत्' के अनुसार भूलोकसे द्युलोकतक तीनों लोकोंको अपनी प्रकाश पुञ्ज किरणोंद्वारा जीवन देनेवाले सूर्य ही सबके जीवन-प्राण आत्मा हैं। समस्त जीवधारियों, वृक्षों एवं वनस्पतियोंके जीवन-विकासके लिये सूर्यकी महत्ता सर्वविदित है। सूर्य केवल प्रकाश-पुञ्ज ही न होकर विश्वमें ऊर्जा तथा शक्तिके भी स्रोत हैं। सूर्य समष्टि जगत्‌के प्राण सिद्ध होकर समस्त जीवधारियोंके भीतर व्यष्टिरूपमें प्राण एवं अपान आदि पञ्च प्राणों एवं उपप्राणोंके रूपमें सदैव कर्मशील बने रहते हैं। देहमें स्थित नाभि-केन्द्र, मणिपूरकचक्र अथवा सूर्यचक्र ही इस प्राण-शक्तिका मूलाधार केन्द्र माना गया है।

मानव-शरीरमें अन्तर्निहित शक्तिके जागरण एवं सञ्चालनके आठ केन्द्र हैं, जिन्हें योगीभाषामें 'चक्र' नामसे सम्बोधित किया गया है। योग-साधनामें आठों चक्रोंके ध्यान तथा जागरणका अलग-अलग महत्त्व वर्णित है—१-मूलाधार २-स्वाधिष्ठान, ३-मणिपूरक (सूर्यचक्र), ४-अनाहतचक्र, ५-विशुद्धिचक्र, ६-आज्ञाचक्र, ७-बिन्दुचक्र एवं ८-सहस्रार। इनमेंसे मणिपूरक (सूर्यचक्र), अनाहतचक्र, आज्ञाचक्र तथा सहस्रार—इन चार चक्रोंका ध्यान हमारे आध्यात्मिक शक्तिके जागरणके लिये विशेष महत्त्व रखते हैं। प्रस्तुत लेखमें केवल मणिपूरक अथवा सूर्यचक्र, जो हमारी शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक शक्तिके जागरणका प्रमुख केन्द्र है, उसपर संक्षेपमें विचार किया जायगा।

मानव-शरीर-रचनामें स्नायु-प्रणाली अत्यन्त वैज्ञानिक ढंगसे व्यवस्थित तथा कार्यान्वित होती है जिसपर केवल योग-साधना करनेवाले योगियोंने ही ध्यान दिया है और उसका उन्होंने गहन अध्ययन भी किया है। यहाँ

प्रथम मानवीय प्राण नाभि-केन्द्र (सूर्य चक्र) से स्पन्दित हो हृदेशमें जाकर टकराता है । हृदय तथा फेफड़ोंका रक्त-शोधन एवं सारे शरीरमें संचार करनेमें सहायता करता है । यह तो प्राणकी सामान्य स्वाभाविक क्रियामात्र है, किंतु जब उसके साथ मानसिक संकल्प एवं अन्तश्चेतनाको संयुक्त कर दिया जाता है, तो वह चैतन्य एवं अधिक सक्षम होकर विशेष शक्तिसम्पन्न हो जाता है । नित्यप्रति शनैः-शनैः अभ्यास-पूर्वक प्राण एवं मनको अधिक शक्तिशाली बनाया जाता है । इन्द्रियोंके स्वभावों (विषयों) का अनुगामी मन तो बहिर्मुखी होकर प्राणशक्तिका ह्रास ही करता है और समस्त शारीरिक एवं बौद्धिक दुर्बलताएँ उत्पन्न करता है । साथ ही दुर्लभ मानव जीवनको पतनके गर्तमें डाल देता है । इसके विपरीत आध्यात्मिक साधना द्वारा जब मनका सम्बन्ध शब्द-स्पर्शादि विषयोंसे मोड़कर उसको अन्तर्मुखी कर दिया जाता है, तब वही मन प्राण शक्ति-सम्पन्न बनकर बड़े-बड़े अलौकिक कार्य करनेमें समर्थ हो जाता है । जिस प्रकार सामान्यरूपसे प्रवहमान वायुमें अधिक शक्ति नहीं होती है, किंतु जब उसको किसी गुब्बारेमें बन्द करके छोड़ दिया जाता है, तो वह ऊर्ध्वगामी होकर अधिक शक्तिसम्पन्न हो जाता है, उसी प्रकार मनको शुभ संकल्पयुक्त चेतनासे भरकर जब प्राणके साथ संयुक्त कर दिया जाता है, तब उसका स्वरूप आध्यात्मिक शक्तिमें परिवर्तित हो जाता है । इसका प्रभाव साधकके आन्तरिक तथा व्यावहारिक जीवनमें स्पष्ट देखनेमें आता है ।

हमारा नाभिकेन्द्र (सूर्यचक्र) प्राणका उद्गम-स्थान ही नहीं, अपितु अचेतन मनके संस्कारों तथा चेतनाका सम्प्रेषण केन्द्र भी है, किंतु साधारण मनुष्योंका यह महत्त्वपूर्ण केन्द्र प्रायः सुप्तावस्थामें पड़ा रहता है । अतः इसकी शक्तिका न तो उन्हें कुछ ज्ञान ही होता है और न वे इससे कुछ लाभ ही उठा पाते हैं । प्रत्येक चक्र किसी तत्त्वविशेषसे सम्बन्धित एवं प्रभावित रहता है और उसको सक्रिय करनेके लिये किसी विशेष रंगका ध्यान करना होता है, जैसे मणिपूरक (सूर्य चक्र) अग्नि तत्त्व-प्रधान है और उसको जाग्रत् करनेके लिये चमकीले पीतवर्ण कमलका ध्यान किया जाता है । वास्तवमें लाल, पीले, नीले, हरे, बैंगनी एवं श्वेतादि रंगोंका सूर्यज्योतिकी सप्त किरणोंसे सम्बन्ध है और चक्रोंमें उनके मानसिक ध्यानमात्रसे सम्बन्धित तत्त्वमें विशेष आन्दोलन होकर हमारे ज्ञान-तन्तुओं एवं मस्तिष्कको प्रभावित करता हुआ शरीरस्थ व्यष्टि प्राण एवं चेतनाको समष्टि-प्राण तथा चेतनासे जोड़ देता है । जिस प्रकार किसी विद्युत्-बैट्रीकी शक्ति-(पावर)के समाप्त हो जानेपर उसको जनरेटरसे चार्ज कर शक्तिसम्पन्न कर लिया जाता है, अथवा किसी छोटे स्टोरमें संगृहीत भंडार व्यय (खर्च) हो जानेपर, समीपस्थ किसी बड़े स्टोरसे उसकी पूर्ति कर ली जाती है, उसी प्रकार विश्वमें अनन्त शक्तियोंके भंडार, समष्टि प्राणसे व्यष्टि प्राणके केन्द्र मणिपूरक (सूर्य चक्र) में वाञ्छित शक्तिको आकर्षित करके संचित किया जाना तथा आवश्यकतानुसार उसका उपयोग भी होना सम्भव है ।

भारतीय योग-साधनामें कुछ विशेष ध्वनियुक्त मन्त्रोंके एकाग्रतापूर्वक उच्चारण या जप करनेसे भी चक्रोंमें शक्तिको जागृत करनेका बहुत प्राचीन विधान है । किंतु आधुनिक युगके साधकोंका मन्त्रोंके उच्चारण एवं उनके अर्थकी ओर ध्यान न रहनेसे प्रायः उन्हें बहुत कम सफलता प्राप्त हो पाती है । योग-साधनामें सफलताके लिये विधिपूर्वक श्रद्धा एवं विश्वासके साथ नित्य निरन्तर अभ्यास करना आवश्यक माना गया है । ऊपरकी पंक्तियोंमें चक्रोंमें शक्ति जागृत करनेके सामान्य नियमोंका वर्णन किया गया है । प्रस्तुत लेखमें केवल मणिपूरक (सूर्यचक्र)को जागृत करनेके सम्बन्धमें प्रकाश डाला जा रहा है । सुयोग्य साधकबन्धु इसको ध्यानपूर्वक दो चार बार पढ़कर इसके आशयको समझनेका प्रयास करनेका कष्ट करेंगे ।

प्रातःकाल सूर्योदयसे पूर्व एवं सायंकाल सूर्यास्तसे पूर्व सूर्यचक्रको जागृत करनेकी साधना करनेका

है। अस्तु, किसी पवित्र एवं एकान्त स्थानमें अथवा अपने दैनिक साधना-कक्षमें पद्मासन या सिद्धासनसे बिल्कुल सीधे बैठकर १०-२० बार दीर्घ श्वासोच्छ्वास करें या नाड़ी-शोधन-प्राणायाम तीन मिनटतक करें, जिससे प्राणका सुषुम्णा नाड़ीमें संचार होने लगे। तत्पश्चात् मेरुदण्ड (रीढ़की हड्डी) को बिल्कुल सीधा रखते हुए प्रणव (ॐकार) अथवा 'सोऽहम्' मन्त्रका श्वासके साथ पाँच मिनटतक मौन जप करें। तत्पश्चात् अपने नाभि-कन्द्रके पृष्ठभागमें मेरुदण्डस्थित सूर्यचक्रमें पाँचे चमकीले रंगवाले कमलपुष्पका मानसिक ध्यान करें। इसके साथ 'जागृत रहो, जागृत रहो, सदैव जागृत रहो' शब्दों-द्वारा अपने सूर्यचक्रको आटोसजेशन देते हुए अपनी चेतनाको सूर्यचक्रमें केन्द्रित करें। तत्पश्चात् निम्नलिखित भावनाको मनमें दुहराते हुए अपने श्वासको बहुत धीरे-धीरे हृदयमें तथा फेफड़ोंमें ले जाते हुए पेटमें भर दें—

'ॐ मैं आरोग्यता, सुख, शान्ति, प्राणशक्ति, स्फूर्ति, सफलता एवं सिद्धिके परमाणुओंको समष्टि प्रकृतिके भण्डारसे अपने भीतर आकर्षित कर रहा हूँ तथा सूर्यचक्रमें उनका संचय एवं संग्रह हो रहा है।' दस-पाँच सेकंडके लिये श्वासको सूर्यचक्रमें ही रहने दें। तत्पश्चात् 'मेरा प्राण ऊर्ध्वगामी होकर शरीरके समस्त अङ्ग-प्रत्यङ्गोंमें (व्याप्त हो गया है और उसका) प्रकाश पहुँच रहा है।' इस ऑटोसजेशन (भावना) के साथ श्वासको बिल्कुल धीरे-धीरे बाहर छोड़ दें और सूर्यचक्रसे प्राणका स्पन्दन मेरुदण्डमें ऊपरकी ओर गति करता हुआ अनुभव करें। एक-दो मिनटके विश्रामके पश्चात् इसी प्रकारकी क्रिया पुनः करें। इस क्रियाको पाँच बारसे दस बारतक करें। श्वास अन्दर भरने तथा छोड़नेका क्रम इतने धीरे-धीरे हो कि उसकी ध्वनि न हो। पूर्णरूपेण विश्रान्तिके साथ उपर्युक्त क्रियाको बार-बार दुहरायें। आप इन आत्मनिर्देश (ऑटोसजेशन) पूर्ण श्रद्धा एवं विश्वासके साथ दुहराना आवश्यक है। एक मासतक नियमित साधना करनेके पश्चात् आपके शरीर, मन एवं मस्तिष्कमें बहुत परिवर्तन होता हुआ प्रतीत होगा। आप अनुभव करेंगे कि आपकी भावनाओंके अनुसार आपके मन एवं बुद्धिका विकास हो रहा है। उपर्युक्त साधना कर्मयोगके द्वारकी प्रथम सीढ़ी है। इस साधनाद्वारा सूर्यचक्रके जागरणके साथ-साथ आपकी कुण्डलिनी शक्ति भी शनैः-शनैः जागृत होने लगेगी।

किसी भी साधनमें मनकी एकाग्रता, सातत्य... लिये आवश्यक है। साधनाके लिये निर्धारित समय तक मनमें अन्य कोई विचार नहीं आना चाहिये। योग-साधनाके जिज्ञासुओंके लिये, ध्यानयोगके अभ्यासियोंके लिये सूर्य चक्र जागरणके प्रथम सोपानपर पैर धरनेके पश्चात् प्रभु-कृपा एवं सद्गुरुके मार्गदर्शनसे आगेका मार्ग सुलभ हो जाता है। इसकी दीर्घकालीन साधनाके द्वारा आप अपने भीतर सन्निहित गुणों एवं शक्तियोंका विकास सहजमें ही कर सकेंगे। इस संकल्पपूर्वक चेतनाका प्राणके साथ संयोग हो जानेसे साधकके मन एवं मस्तिष्कमें चुम्बकीय विद्युत्-तरंगोंका निर्बाध प्रवाह जारी हो जाता है, जो साधकके आस-पास एवं उससे सम्बन्धित समाजमें उच्चतम आध्यात्मिक वातावरण उत्पन्न करनेमें समर्थ होता है। इस प्रकारके आकर्षक वातावरणका प्रभाव एवं उसकी अनुभूति हम उच्चकोटिके साधक, सन्त, महात्माओंके सान्निध्यमें सहजमें ही कर सकते हैं। उपर्युक्त साधनासे सूर्यचक्र (मणिपूरक) एवं अनाहत-चक्रमें एक सुनिश्चित सीधा सम्बन्ध स्थापित होकर साधककी सर्वतोमुखी उन्नतिमें जो दैविक सहयोग मिलता है, वह शीघ्र ही अपने लक्ष्यतक पहुँचानेका मार्ग प्रशस्त कर देता है। अन्तमें हम परमेश्वरसे उस मन्त्रका स्मरण करते हुए उनका ध्यान करते हैं, जिसमें हमें जाग्रत् होकर उत्तम महापुरुषोंसे प्रेरणा प्राप्त करनेका निर्देश किया गया है—

उत्तिष्ठत ! जाग्रत !! प्राप्य वरान्निबोधत !!! ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः !!!!

मार्कण्डेयपुराणका सूर्य-सदर्भ

[मार्कण्डेयपुराणके इस सदर्भमें सूर्यतत्त्वका विवेचन एवं वेदोंका प्रादुर्भाव और ब्रह्माजीद्वारा सूर्यदेवकी ति तथा सृष्टि-रचना-क्रमका वर्णन तो है ही, साथ ही अदितिके गर्भसे भगवान् सूर्यदेवके अवतार धारण नका वर्णन तथा सूर्य महिमाके प्रसगमें राज्यवर्द्धनकी कथा भी पौराणिक रोचकताके साथ उपनिबद्ध है ।]

सूर्यका तत्त्व, वेदोंका प्राकट्य, ब्रह्माजीद्वारा सूर्यदेवकी स्तुति और सृष्टि-रचनाका आरम्भ

क्रौष्टुकि बोले—द्विजश्रेष्ठ ! आपने मन्वन्तरोंकी निका विस्तारपूर्वक वर्णन किया और मैंने क्रमश े भलीभाँति सुना । अब राजाओंका सम्पूर्ण वश, सके आदि ब्रह्माजी हैं, मैं सुनना चाहता हूँ, आप उका यथावत् वर्णन कीजिये ।

मार्कण्डेयजीने कहा—वत्स ! प्रजापति ब्रह्माजीको दि बनाकर जिसकी प्रवृत्ति हुई है तथा जो सम्पूर्ण ात्का मूल कारण है, उस राजवशका तथा उसमें ट हुए राजाओंके चरित्रोंका वर्णन सुनो—जिस ामें मनु, इक्ष्वाकु, अनरण्य, भगीरथ तथा अन्य ड़ों राजा, जिन्होंने पृथ्वीका पालन किया था, पन्न हुए थे, वे सभी धर्मज्ञ, यज्ञकर्ता, शूरवीर ा परम तत्त्वके ज्ञाता थे। ऐसे वशका वर्णन नकर मनुष्य समस्त पापोंसे छूट जाता है । पूर्वकालमें जापति ब्रह्माने नाना प्रकारकी प्रजाको उत्पन्न रनेकी इच्छा लेकर दाहिने अँगूठेसे दक्षको उत्पन्न या और बायें अँगूठेसे उनकी पत्नीको प्रकट किया । क्षके अदिति नामकी एक सुन्दरी कन्या उत्पन्न हुई, सके गर्भसे कश्यपने भगवान् सूर्यको जन्म दिया ।

क्रौष्टुकिने पूछा—भगवन् ! मैं भगवान् सूर्यके ार्थ स्वरूपका वर्णन सुनना चाहता हूँ । वे किस कार कश्यपजीके पुत्र हुए ? कश्यप और अदितिने से उनकी आराधना की ? उनके यहाँ अवतीर्ण र भगवान् सूर्यका कैसा प्रभाव है ? ये सब बातें ार्थरूपसे बताइये ।

मार्कण्डेयजी बोले—ब्रह्मन् ! पहले यह सम्पूर्ण लोक प्रभा और प्रकाशसे रहित था । चारों ओर घोर अन्धकार घेरा डाले हुए था । उस समय परम कारण स्वरूप एक अविनाशी एव बृहत् अण्ड प्रकट हुआ । उसके भीतर सबके प्रपितामह, जगत्के स्वामी, लोक-स्रष्टा कमलयोनि साक्षात् ब्रह्माजी विराजमान थे । उन्होंने उस अण्डका भेदन किया । महामुने ! उन ब्रह्माजीके मुखसे 'ॐ' यह महान् शब्द प्रकट हुआ । उससे पहले भू, फिर भुव, तदनन्तर स्व—ये तीन व्याहृतियाँ उत्पन्न हुईं, जो भगवान् सूर्यका स्वरूप हैं । 'ॐ' इस स्वरूपसे सूर्यदेवका अत्यन्त सूक्ष्म रूप प्रकट हुआ । उससे 'मह' यह स्थूल रूप हुआ । फिर उससे 'जन' यह स्थूलतर रूप उत्पन्न हुआ । उससे 'तप' और तपसे 'सत्यम्' प्रकट हुआ । इस प्रकार ये सूर्यके सात स्वरूप स्थित हैं, जो कभी प्रकाशित होते हैं और कभी अप्रकाशित रहते हैं । ब्रह्मन् ! मैंने 'ॐ' यह रूप बताया है, वह सृष्टिका आदि-अन्त, अत्यन्त सूक्ष्म एव निराकार है । वही परब्रह्म है तथा वही ब्रह्मका स्वरूप है ।

उक्त अण्डका भेदन होनेपर अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजीके प्रथम मुखसे ऋचाएँ प्रकट हुईं । उनका वर्ण जपा कुसुमके समान था । वे सब तेजोमयी, एक दूसरीसे पृथक् तथा रजोमय रूप धारण करनेवाली थीं । तत्पश्चात् ब्रह्माजीके दक्षिण मुखसे यजुर्वेदके मन्त्र अबाधरूपसे प्रकट हुए । जैसा सुवर्णका रग होता है वैसा ही उनका भी था । वे भी एक दूसरेसे पृथक्-पृथक् थे । फिर परमेष्ठी ब्रह्माके पश्चिम मुखसे

छन्द प्रकट हुए। सम्पूर्ण अथर्ववेद, जिसका रंग भ्रमर और कज्जलराशिके समान काला है तथा जिसमें अभिचार एवं शान्तिकर्मके प्रयोग हैं, ब्रह्माजीके उत्तरमुखसे प्रकट हुआ। उसमें सुखमय सत्त्वगुण तथा तमोगुणकी प्रधानता है। वह घोर और सौम्यरूप है। ऋग्वेदमें रजोगुणकी, यजुर्वेदमें सत्त्वगुणकी, सामवेदमें तमोगुणकी तथा अथर्ववेदमें तमोगुण एवं सत्त्वगुणकी प्रधानता है। ये चारों वेद अनुपम तेजसे देदीप्यमान होकर पहलेकी ही भाँति पृथक्-पृथक् स्थित हुए। तत्पश्चात् वह प्रथम तेज, जो 'ॐ' के नामसे पुकारा जाता है, अपने स्वभावसे प्रकट हुए ऋग्वेदमय तेजको व्याप्त करके स्थित हुआ। महामुने! इसी प्रकार उस प्रणवरूप तेजने यजुर्वेद एवं सामवेदमय तेजको भी आवृत किया। इस प्रकार उस अधिष्ठान स्वरूप परम तेज ॐकारमें चारों वेदमय तेज एकत्वको प्राप्त हुए। ब्रह्मन्! तदनन्तर वह पुञ्जीभूत उत्तम वैदिक तेज परम तेज प्रणवके साथ मिलकर जब एकत्वको प्राप्त होता है तब सबके आदिमें प्रकट होनेके कारण उसका नाम आदित्य होता है। महाभाग! यह आदित्य ही इस विश्वका अविनाशी कारण है। प्रातःकाल, मध्याह्न तथा अपराह्णकालमें आदित्यकी अङ्गभूत वेदत्रयी ही, जिसे क्रमशः ऋक्, यजु और साम कहते हैं, तपती है। पूर्वाह्णमें ऋग्वेद, मध्याह्नमें यजुर्वेद तथा अपराह्णमें सामवेद तपता है। इसलिये ऋग्वेदोक्त शान्तिकर्म पूर्वाह्णमें, यजुर्वेदोक्त पौष्टिककर्म मध्याह्नमें तथा सामवेदोक्त आभिचारिक कर्म अपराह्ण कालमें निश्चित किये गये हैं। आभिचारिक ... मध्याह्न और अपराह्ण—दोनों कालोंमें ... है, किंतु पितरोंके श्राद्ध आदि ... सामात्मक मन्त्रोंसे करने ... ऋग्वेदमय, मध्याह्नमें विष्णु ... कालमें रुद्र सामवेदमय ...

ध्वनि अपवित्र मानी गयी है। इस प्रकार ... सूर्य वेदात्मा, वेदमें स्थित, वेदविद्यास्वरूप एवं ... पुरुष कहलाते हैं। वे सनातन देवता सूर्य ही रजोगुण और सत्त्वगुण आदिका आश्रय लेकर क्रमशः ... पालन और संहारके हेतु बनते हैं और ... अनुसार ब्रह्मा, विष्णु आदि नाम धारण करते ... वे देवताओंद्वारा सदा स्तवन करने योग्य ... हैं। उनका कोई पृथक् रूप नहीं है। वे ... आदि हैं। सम्पूर्ण मनुष्य उन्हींके स्वरूप हैं। ... आधारभूता ज्योति वे ही हैं। उनके ... सत्यका ठीक-ठीक ज्ञान नहीं होता। वे वेदान्त ब्रह्म एवं परसे भी पर (परमात्मा) हैं।

तदनन्तर आदित्यका आविर्भाव हो ... आदित्यरूप भगवान् सूर्यके तेजसे नीचे तथा ऊपरके सभी लोक संतप्त होने लगे। यह देख सृष्टिकी इच्छा करनेवाले कमलयोनि ब्रह्माजीने सोचा—सृष्टि, पालन और संहारके कारणभूत भगवान् सूर्यके सब ओर फैले हुए तेजसे मेरी रची हुई सृष्टि भी नाशको प्राप्त हो जायगी। जल ही समस्त प्राणियोंका जीवन है, वह जल सूर्यके तेजसे सूखा जा रहा है। जलके बिना इस विश्वकी सृष्टि हो ही नहीं सकती—ऐसा विचार कर लोकपितामह भगवान् ब्रह्माने एकाग्रचित्त होकर भगवान् सूर्यकी स्तुति आरम्भ की।

ब्रह्माजी बोले—यह सब कुछ जिनका स्वरूप है, जो सर्वमय हैं, सम्पूर्ण विश्व जिनका शरीर है, जो परम ज्योतिःस्वरूप तथा योगीजन जिनका ध्यान करते हैं, ... करता हूँ। जो ... देवों... आ...

सबके कारण, परमज्ञेय, आदिपुरुष, परमज्योति, ज्ञानातीतस्वरूप, देवनारूपसे स्थूल तथा परसे भी परे हैं। सबके आदि एव प्रभाका विस्तार करनेवाले हैं, मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आपकी जो आद्याशक्ति है, उसीकी प्रेरणासे मैं पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, उनके देवता तथा प्रणव आदिसे युक्त समस्त सृष्टिकी रचना करता हूँ। इसी प्रकार पालन और सहार भी मैं उस आद्याशक्तिकी प्रेरणासे ही करता हूँ, अपनी इच्छासे नहीं। भगवन्! आप ही अग्निस्वरूप हैं। आप जब जल सोख लेते हैं, तब मैं पृथ्वी तथा जगत्की सृष्टि करता हूँ। आप ही सर्वव्यापी एव आकाशस्वरूप हैं तथा आप ही इस पाञ्चभौतिक जगत्का पूर्णरूपसे पालन करते हैं। सूर्यदेव! परमात्म-तत्त्वके ज्ञाता विद्वान् पुरुष सर्वयज्ञमय विष्णुस्वरूप आपका ही यज्ञोंद्वारा यजन करते हैं तथा अपनी मुक्तिकी इच्छा रखनेवाले जितेन्द्रिय यति आप सर्वेश्वर परमात्माका ही ध्यान करते हैं। देवस्वरूप आपको नमस्कार है। यज्ञरूप आपको प्रणाम है। योगियोंके ध्येय परब्रह्मस्वरूप आपको नमस्कार है। प्रभो! मैं सृष्टि करनेके लिये उद्यत हूँ और आपका यह तेज पुञ्ज सृष्टिका विनाशक हो रहा है। अत आप अपने इस तेजको समेट लीजिये।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान् सूर्यने अपने महान् तेजको समेटकर स्वल्प तेजको ही धारण किया। तब ब्रह्माजीने पूर्वकल्पान्तरोंके अनुसार जगत्की सृष्टि आरम्भ की। महामुने! ब्रह्माजीने पहलेकी ही भाँति देवताओं, असुरों, मनुष्यों, पशु-पक्षियों, वृक्ष-लताओं तथा नरक आदिकी भी सृष्टि की।

अदितिके गर्भसे भगवान् सूर्यका अवतार

मार्कण्डेयजी कहते हैं—मुने! इस जगत्की सृष्टि करके ब्रह्माजीने पूर्वकल्पोंके अनुसार वर्ण, आश्रम, समुद्र, पर्वत और द्वीपोंका विभाग किया। देवता, दैत्य तथा सर्प आदिके रूप और स्थान भी पहलेकी ही भाँति बनाये। ब्रह्माजीके मरीचि नामसे विख्यात जो पुत्र थे, उनके पुत्र कश्यप हुए। उनकी तेरह पत्नियाँ हुईं। वे सब-की-सब प्रजापति दक्षकी कन्याएँ थीं। उनसे देवता, दैत्य और नाग आदि बहुत-से पुत्र उत्पन्न हुए। अदितिने त्रिभुवनके स्वामी देवताओंको जन्म दिया। दितिने दैत्योंको तथा दनुने महापराक्रमी एव भयानक दानवोंको उत्पन्न किया। विनतासे गरुड और अरुण*—ये दो पुत्र हुए। खसाके पुत्र यक्ष और राक्षस हुए। कद्रूने नागोंको और मुनिने गन्धर्वोंको जन्म दिया। क्रोधासे कुल्याएँ तथा अरिष्टासे अप्सराएँ उत्पन्न हुईं। इराने ऐरावत आदि हाथियोंको उत्पन्न किया। ताम्राके गर्भसे श्येना आदि कन्याएँ उत्पन्न हुईं। उन्हींके पुत्र श्येनबाज, भास और शुक आदि पक्षी हुए। कश्यप मुनिकी अदितिके गर्भसे जो सन्तानें हुईं, उनके पुत्र-पौत्र, दौहित्र तथा उनके भी पुत्रों आदिसे यह सारा ससार व्याप्त है। कश्यपके पुत्रोंमें देवता प्रधान हैं। इनमें कुछ तो सात्त्विक हैं, कुछ राजस हैं और कुछ तामस हैं। ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ परमेष्ठी प्रजापति ब्रह्माजीने देवताओंको यज्ञभागका भोक्ता तथा त्रिभुवनका स्वामी बनाया, परन्तु उनके सौतेले भाई दैत्यों, दानवों और राक्षसोंने एक साथ मिलकर उन्हें कष्ट पहुँचाना आरम्भ कर दिया। इस कारण एक हजार दिव्य वर्षोंतक उनमें बड़ा भयङ्कर युद्ध हुआ। अन्तमें देवता पराजित हुए और बलवान् दैत्यों तथा दानवोंको विजय प्राप्त हुई। अपने पुत्रोंको दैत्यों और दानवोंके द्वारा पराजित एव त्रिभुवनके राज्याधिकारसे वञ्चित तथा उनका यज्ञभाग छिन गया देख माता अदिति शोकसे अत्यन्त पीड़ित हो गयीं। उन्होंने भगवान् सूर्यकी आराधनाके लिये महान् यत्न आरम्भ किया। वे नियमित आहार करती हुई कठोर नियमोंका पालन और आकाशमें स्थित तेजोराशि भगवान् सूर्यका स्तवन करने लगीं।

* ये ही अरुण भगवान् श्रीसूर्यके रथके सारथि हैं जो ऊरु-विहीन हैं।

छन्द प्रकट हुए। सम्पूर्ण अथर्ववेद, जिसका रंग भ्रमर और कज्जलराशिके समान काला है तथा जिसमें अभिचार एवं शान्तिकर्मके प्रयोग हैं, ब्रह्माजीके उत्तरमुखसे प्रकट हुआ। उसमें सुखमय सत्त्वगुण तथा तमोगुणकी प्रधानता है। वह घोर और सौम्यरूप है। ऋग्वेदमें रजोगुणकी, यजुर्वेदमें सत्त्वगुणकी, सामवेदमें तमोगुणकी तथा अथर्ववेदमें तमोगुण एवं सत्त्वगुणकी प्रधानता है। ये चारों वेद अनुपम तेजसे देदीप्यमान होकर पहलेकी ही भाँति पृथक्-पृथक् स्थित हुए। तत्पश्चात् वह प्रथम तेज, जो 'ॐ'के नामसे पुकारा जाता है, अपने स्वभावसे प्रकट हुए ऋग्वेदमय तेजको व्याप्त करके स्थित हुआ। महामुने! इसी प्रकार उस प्रणवरूप तेजने यजुर्वेद एवं सामवेदमय तेजको भी आवृत किया। इस प्रकार उस अधिष्ठान स्वरूप परम तेज ॐकारमें चारों वेदमय तेज एकत्वको प्राप्त हुए। ब्रह्मन्! तदनन्तर वह पुञ्जीभूत उत्तम वैदिक तेज परम तेज प्रणवके साथ मिलकर जब एकत्वको प्राप्त होता है तब सबके आदिमें प्रकट होनेके कारण उसका नाम आदित्य होता है। महाभाग! यह आदित्य ही इस विश्वका अविनाशी कारण है। प्रातःकाल, मध्याह्न तथा अपराह्णकालमें आदित्यकी अङ्गभूत वेदत्रयी ही, जिसे क्रमशः ऋक्, यजु और साम कहते हैं, तपती है। पूर्वाह्णमें ऋग्वेद, मध्याह्नमें यजुर्वेद तथा अपराह्णमें सामवेद तपता है। इसलिये ऋग्वेदोक्त शान्तिकर्म पूर्वाह्णमें, यजुर्वेदोक्त पौष्टिककर्म मध्याह्नमें तथा सामवेदोक्त आभिचारिक कर्म अपराह्ण-कालमें निश्चित किये गये हैं। आभिचारिक कर्म मध्याह्न और अपराह्ण—दोनों कालोंमें किये जा सकते हैं, किंतु पितरोंके श्राद्ध आदि कार्य अपराह्णकालमें ही सामवेदके मन्त्रोंसे करने चाहिये। सृष्टिकालमें ब्रह्मा ऋग्वेदमय, पालनकालमें विष्णु यजुर्वेदमय तथा संहार कालमें रुद्र सामवेदमय कहे गये हैं। अतएव सामवेदकी ध्वनि अपवित्र मानी गयी है। इस प्रकार [illegible] सूर्य वेदात्मा, वेदमें स्थित, वेदविद्यास्वरूप तथा पुरुष कहलाते हैं। वे सनातन देवता सूर्य ही [illegible] और सत्त्वगुण आदिका आश्रय लेकर क्रमशः सृष्टि पालन और संहारके हेतु बनते हैं और इन कर्मोंके अनुसार ब्रह्मा, विष्णु आदि नाम धारण करते हैं। वे देवताओंद्वारा सदा स्तवन करने योग्य एवं वेदस्वरूप हैं। उनका कोई पृथक् रूप नहीं है। वे सबके आदि हैं। सम्पूर्ण मनुष्य उन्हींके स्वरूप हैं। विश्वकी आधारभूता ज्योति वे ही हैं। उनके धर्म अथवा सत्त्वका ठीक-ठीक ज्ञान नहीं होता। वे वेदान्तगम्य एवं परसे भी पर (परमात्मा) हैं।

तदनन्तर आदित्यका आविर्भाव हो जाने आदित्यरूप भगवान् सूर्यके तेजसे नीचे तथा ऊपरके सभी लोक संतप्त होने लगे। यह देख सृष्टिकी इच्छा करनेवाले कमलयोनि ब्रह्माजीने सोचा—सृष्टि, पालन और संहारके कारणभूत भगवान् सूर्यके सब ओर फैले हुए तेजसे मेरी रची हुई सृष्टि भी नाशको प्राप्त हो जायगी। जल ही समस्त प्राणियोंका जीवन है, वह जल सूर्यके तेजसे सूखा जा रहा है। जलके बिना इस विश्वकी सृष्टि हो ही नहीं सकती—ऐसा विचारकर लोकपितामह भगवान् ब्रह्माने एकाग्रचित्त होकर भगवान् सूर्यकी स्तुति आरम्भ की।

ब्रह्माजी बोले—यह सब कुछ जिनका स्वरूप है, जो सर्वमय हैं, सम्पूर्ण विश्व जिनका शरीर है, जो परम ज्योतिःस्वरूप हैं तथा योगिजन जिनका ध्यान करते हैं, उन भगवान् सूर्यको मैं नमस्कार करता हूँ। जो ऋग्वेदमय हैं, यजुर्वेदका अधिष्ठान हैं, सामवेदकी योनि हैं, जिनकी शक्तिका चिन्तन नहीं हो सकता, जो स्थूलरूपमें तीन वेदमय हैं और सूक्ष्मरूपमें प्रणवकी अर्धमात्रा हैं तथा जो गुणोंसे परे एवं परब्रह्म स्वरूप हैं, उन भगवान् सूर्यको मेरा नमस्कार है। भगवन्! आप

सबके कारण, परमज्ञेय, आदिपुरुष, परमज्योति, ज्ञानातीतस्वरूप, देवतारूपसे स्थूल तथा परसे भी परे हैं। सबके आदि एवं प्रभाका विस्तार करनेवाले हैं, मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आपकी जो आद्याशक्ति है, उसीकी प्रेरणासे मैं पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, उनके देवता तथा प्रणव आदिसे युक्त समस्त सृष्टिकी रचना करता हूँ। इसी प्रकार पालन और संहार भी मैं उस आद्याशक्तिकी प्रेरणासे ही करता हूँ, अपनी इच्छासे नहीं। भगवन्! आप ही अग्निस्वरूप हैं। आप जब जल सोख लेते हैं, तब मैं पृथ्वी तथा जगत्‌की सृष्टि करता हूँ। आप ही सर्वव्यापी एवं आकाशस्वरूप हैं तथा आप ही इस पाञ्चभौतिक जगत्‌का पूर्णरूपसे पालन करते हैं। सूर्यदेव! परमात्म-तत्त्वके ज्ञाता विद्वान् पुरुष सर्वयज्ञमय विष्णुस्वरूप आपका ही यज्ञोंद्वारा यजन करते हैं तथा अपनी मुक्तिकी इच्छा रखनेवाले जितेन्द्रिय यति आप सर्वेश्वर परमात्माका ही ध्यान करते हैं। देवस्वरूप आपको नमस्कार है। यज्ञरूप आपको प्रणाम है। योगियोंके ध्येय परब्रह्मस्वरूप आपको नमस्कार है। प्रभो! मैं सृष्टि करनेके लिये उद्यत हूँ और आपका यह तेज पुञ्ज सृष्टिका विनाशक हो रहा है। अतः आप अपने इस तेजको समेट लीजिये।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान् सूर्यने अपने महान् तेजको समेटकर स्वल्प तेजको ही धारण किया। तब ब्रह्माजीने पूर्वकल्पानुसार जगत्‌की सृष्टि आरम्भ की। महामुने! ब्रह्माजीने पहलेकी ही भाँति देवताओं, असुरों, मनुष्यों, पशु-पक्षियों, वृक्ष-लताओं तथा नरक आदिकी भी सृष्टि की।

अदितिके गर्भसे भगवान् सूर्यका अवतार

मार्कण्डेयजी कहते हैं—मुने! इस जगत्‌की सृष्टि करके ब्रह्माजीने पूर्वकल्पोंके अनुसार वर्ण, आश्रम, समुद्र, पर्वत और द्वीपोंका विभाग किया। देवता, दैत्य तथा सर्प आदिके रूप और स्थान भी पहलेकी ही भाँति बनाये। ब्रह्माजीके मरीचि नामसे विख्यात जो पुत्र थे, उनके पुत्र कश्यप हुए। उनकी तेरह पत्नियाँ हुईं। वे सब-की-सब प्रजापति दक्षकी कन्याएँ थीं। उनसे देवता, दैत्य और नाग आदि बहुत-से पुत्र उत्पन्न हुए। अदितिने त्रिभुवनके स्वामी देवताओंको जन्म दिया। दितिने दैत्योंको तथा दनुने महापराक्रमी एवं भयानक दानवोंको उत्पन्न किया। विनतासे गरुड और अरुण*—ये दो पुत्र हुए। खसाके पुत्र यक्ष और राक्षस हुए। कद्रूने नागोंको और मुनिने गन्धर्वोंको जन्म दिया। क्रोधासे कुल्याएँ तथा अरिष्टासे अप्सराएँ उत्पन्न हुईं। इराने ऐरावत आदि हाथियोंको उत्पन्न किया। ताम्राके गर्भसे श्येनी आदि कन्याएँ उत्पन्न हुईं। उन्हींके पुत्र श्येन-बाज, भास और शुक आदि पक्षी हुए। कश्यप मुनिकी अदितिके गर्भसे जो संतानें हुईं, उनके पुत्र-पौत्र, दौहित्र तथा उनके भी पुत्रों आदिसे यह सारा संसार व्याप्त है। कश्यपके पुत्रोंमें देवता प्रधान हैं। इनमें कुछ तो सात्त्विक हैं, कुछ राजस हैं और कुछ तामस हैं। ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ परमेष्ठी प्रजापति ब्रह्माजीने देवताओंको यज्ञभागका भोक्ता तथा त्रिभुवनका स्वामी बनाया, परंतु उनके सौतेले भाई दैत्यों, दानवों और राक्षसोंने एक साथ मिलकर उन्हें कष्ट पहुँचाना आरम्भ कर दिया। इस कारण एक हजार दिव्य वर्षोंतक उनमें बड़ा भयङ्कर युद्ध हुआ। अन्तमें देवता पराजित हुए और बलवान् दैत्यों तथा दानवोंको विजय प्राप्त हुई। अपने पुत्रोंको दैत्यों और दानवोंके द्वारा पराजित एवं त्रिभुवनके राज्याधिकारसे वञ्चित तथा उनका यज्ञभाग छिन गया देख माता अदिति शोकसे अत्यन्त पीड़ित हो गयीं। उन्होंने भगवान् सूर्यकी आराधनाके लिये महान् यत्न आरम्भ किया। वे नियमित आहार करती हुई कठोर नियमोंका पालन और आकाशमें स्थित तेजोराशि भगवान् सूर्यका स्तवन करने लगीं।

* ये ही अरुण भगवान् श्रीसूर्यके रथके सारथि हैं जो जङ्घाहीन हैं।

छन्द प्रकट हुए। सम्पूर्ण अथर्ववेद, जिसका रंग भ्रमर और कज्जलराशिके समान काला है तथा जिसमें अभिचार एवं शान्तिकर्मके प्रयोग हैं, ब्रह्माजीके उत्तरमुखसे प्रकट हुआ। उसमें सुखमय सत्त्वगुण तथा तमोगुणकी प्रधानता है। वह घोर और सौम्यरूप है। ऋग्वेदमें रजोगुणकी, यजुर्वेदमें सत्त्वगुणकी, सामवेदमें तमोगुणकी तथा अथर्ववेदमें तमोगुण एवं सत्त्वगुणकी प्रधानता है। ये चारों वेद अनुपम तेजसे देदीप्यमान होकर पहलेकी ही भाँति पृथक्-पृथक् स्थित हुए। तत्पश्चात् वह प्रथम तेज, जो 'ॐ'के नामसे पुकारा जाता है, अपने स्वभावसे प्रकट हुए ऋग्वेदमय तेजको व्याप्त करके स्थित हुआ। महामुने! इसी प्रकार उस प्रणवरूप तेजने यजुर्वेद एवं सामवेदमय तेजको भी आवृत किया। इस प्रकार उस अधिष्ठान स्वरूप परम तेज ॐकारमें चारों वेदमय तेज एकत्वको प्राप्त हुए। ब्रह्मन्! तदनन्तर वह पुञ्जीभूत उत्तम वैदिक तेज परम तेज प्रणवके साथ मिलकर जब एकत्वको प्राप्त होता है तब सबके आदिमें प्रकट होनेके कारण उसका नाम आदित्य होता है। महाभाग! यह आदित्य ही इस विश्वका अविनाशी कारण है। प्रातःकाल, मध्याह्न तथा अपराह्णकालमें आदित्यकी अङ्गभूत वेदत्रयी ही, जिसे क्रमशः ऋक्, यजु और साम कहते हैं, तपती है। पूर्वाह्णमें ऋग्वेद, मध्याह्नमें यजुर्वेद तथा अपराह्णमें सामवेद तपता है। इसलिये ऋग्वेदोक्त शान्तिकर्म पूर्वाह्णमें, यजुर्वेदोक्त पौष्टिककर्म मध्याह्नमें तथा सामवेदोक्त आभिचारिक कर्म अपराह्ण-कालमें निश्चित किये गये हैं। आभिचारिक कर्म मध्याह्न और अपराह्ण—दोनों कालोंमें किये जा सकते हैं, किंतु पितरोंके श्राद्ध आदि कार्य अपराह्णकालमें ही सामवेदके मन्त्रोंसे करने चाहिये। सृष्टिकालमें ब्रह्मा ऋग्वेदमय, पालनकालमें विष्णु यजुर्वेदमय तथा संहार कालमें रुद्र सामवेदमय कहे गये हैं। अतएव सामवेदकी ध्वनि अपवित्र मानी गयी है। इस [illegible] सूर्य वेदात्मा, वेदमें स्थित, वेदविद्यास्वरूप तथा [illegible] पुरुष कहलाते हैं। वे सनातन देवता सूर्य ही रजो[illegible] और सत्त्वगुण आदिका आश्रय लेकर क्रमशः [illegible] पालन और संहारके हेतु बनते हैं [illegible] अनुसार ब्रह्मा, विष्णु आदि नाम धारण करते हैं। वे देवताओंद्वारा सदा स्तवन करने योग्य एवं वेदस्वरू[illegible] हैं। उनका कोई पृथक् रूप नहीं है। वे स[illegible] आदि हैं। सम्पूर्ण मनुष्य उन्हींके स्वरूप हैं। त्रि[illegible] आधारभूता ज्योति वे ही हैं। उनके धर्म [illegible] तत्त्वका ठीक-ठीक ज्ञान नहीं होता। वे वेदान्त[illegible] ब्रह्म एवं परसे भी पर (परमात्मा) हैं।

तदनन्तर आदित्यका आविर्भाव हो जा[illegible] आदित्यरूप भगवान् सूर्यके तेजसे नीचे तथा ऊपरके सभी लोक सतप्त होने लगे। यह देख सृष्टिकी इच्छा करनेवाले कमलयोनि ब्रह्माजीने सोचा—सृष्टि, पालन और संहारके कारणभूत भगवान् सूर्यके सब ओर फैले हुए तेजसे मेरी रची हुई सृष्टि भी नाशको प्राप्त हो जायगी। जल ही समस्त प्राणियोंका जीवन है, वह जल सूर्यके तेजसे सूखा जा रहा है। जलके बिना इस विश्वकी सृष्टि हो ही नहीं सकती—ऐसा विचारकर लोकपितामह भगवान् ब्रह्माने एकाग्रचित्त होकर भगवान् सूर्यकी स्तुति आरम्भ की।

ब्रह्माजी बोले—यह सब कुछ जिनका स्वरूप है, जो सर्वमय हैं, सम्पूर्ण विश्व जिनका शरीर है, जो परम ज्योतिःस्वरूप हैं तथा योगिजन जिनका ध्यान करते हैं, उन भगवान् सूर्यको मैं नमस्कार करता हूँ। जो ऋग्वेदमय हैं, यजुर्वेदका अधिष्ठान हैं, सामवेदकी योनि हैं, जिनकी शक्तिका चिन्तन नहीं हो सकता, जो स्थूलरूपमें तीन वेदमय हैं और सूक्ष्मरूपमें प्रणवकी अर्धमात्रा हैं तथा जो गुणोंसे परे एवं परब्रह्म स्वरूप हैं, उन भगवान् सूर्यको मेरा नमस्कार है। भगवन्! आप

त्वके कारण, परमज्ञेय, आदिपुरुष, परमज्योति, ज्ञाना तिस्वरूप, देवतारूपसे स्थूल तथा परसे भी परे हैं। विके आदि एवं प्रभाका विस्तार करनेवाले हैं, मैं आपको मस्कार करता हूँ। आपकी जो आद्याशक्ति है, उसीकी रणासे मैं पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, उनके देवता तथा णव आदिसे युक्त समस्त सृष्टिकी रचना करता हूँ। सी प्रकार पालन और संहार भी मैं उस आद्याशक्तिकी रणासे ही करता हूँ, अपनी इच्छासे नहीं। भगवन्! आप ही अग्निस्वरूप हैं। आप जब जल सोख लेते हैं, तब मैं पृथ्वी तथा जगत्‌की सृष्टि करता हूँ। आप ही सर्वव्यापी एवं आकाशस्वरूप हैं तथा आप ही इस पाञ्चभौतिक जगत्‌का पूर्णरूपसे पालन करते हैं। सूर्यदेव! परमात्म-तत्त्वके ज्ञाता विद्वान् पुरुष सर्वयज्ञमय विष्णु स्वरूप आपका ही यज्ञोंद्वारा यजन करते हैं तथा अपनी मुक्तिकी इच्छा रखनेवाले जितेन्द्रिय यति आप सर्वेश्वर परमात्माका ही ध्यान करते हैं। देवस्वरूप आपको नमस्कार है। यज्ञरूप आपको प्रणाम है। योगियोंके ध्येय परब्रह्मस्वरूप आपको नमस्कार है। प्रभो! मैं सृष्टि करनेके लिये उद्यत हूँ और आपका यह तेज पुञ्ज सृष्टिका विनाशक हो रहा है। अतः आप अपने इस तेजको समेट लीजिये।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान् सूर्यने अपने महान् तेजको समेटकर स्वल्प तेजको ही धारण किया। तब ब्रह्माजीने पूर्वकल्पान्तरोंके अनुसार जगत्‌की सृष्टि आरम्भ की। महामुने! ब्रह्माजीने पहलेकी ही भाँति देवताओं, असुरों, मनुष्यों, पशु-पक्षियों, वृक्ष-लताओं तथा नरक आदिकी भी सृष्टि की।

अदितिके गर्भसे भगवान् सूर्यका अवतार

मार्कण्डेयजी कहते हैं—मुने! इस जगत्‌की सृष्टि करके ब्रह्माजीने पूर्वकल्पोंके अनुसार वर्ण, आश्रम, समुद्र, पर्वत और द्वीपोंका विभाग किया। देवता, दैत्य तथा सर्प आदिके रूप और स्थान भी पहलेकी ही भाँति बनाये। ब्रह्माजीके मरीचि नामसे विख्यात जो पुत्र थे, उनके पुत्र कश्यप हुए। उनकी तेरह पत्नियाँ हुईं। वे सब-का-सब प्रजापति दक्षकी कन्याएँ थीं। उनसे देवता, दैत्य और नाग आदि बहुत-से पुत्र उत्पन्न हुए। अदितिने त्रिभुवनके स्वामी देवताओंको जन्म दिया। दितिने दैत्योंको तथा दनुने महापराक्रमी एवं भयानक दानवोंको उत्पन्न किया। विनतासे गरुड और अरुण*—ये दो पुत्र हुए। खसाके पुत्र यक्ष और राक्षस हुए। कद्रूने नागोंको और मुनिने गन्धर्वोंको जन्म दिया। क्रोधासे कुल्याएँ तथा अरिष्टासे अप्सराएँ उत्पन्न हुईं। इराने ऐरावत आदि हाथियोंको उत्पन्न किया। ताम्राके गर्भसे श्येना आदि कन्याएँ उत्पन्न हुईं। उन्हींके पुत्र श्येन, बाज, भास और शुक आदि पक्षी हुए। कश्यप मुनिकी अदितिके गर्भसे जो संतानें हुईं, उनके पुत्र-पौत्र, दौहित्र तथा उनके भी पुत्रों आदिसे यह सारा संसार व्याप्त है। कश्यपके पुत्रोंमें देवता प्रधान हैं। इनमें कुछ तो सात्त्विक हैं, कुछ राजस हैं और कुछ तामस हैं। ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ परमेष्ठी प्रजापति ब्रह्माजीने देवताओंको यज्ञभागका भोक्ता तथा त्रिभुवनका स्वामी बनाया, परंतु उनके सौतेले भाई दैत्यों, दानवों और राक्षसोंने एक साथ मिलकर उन्हें कष्ट पहुँचाना आरम्भ कर दिया। इस कारण एक हजार दिव्य वर्षोंतक उनमें बड़ा भयङ्कर युद्ध हुआ। अन्तमें देवता पराजित हुए और बलवान् दैत्यों तथा दानवोंको विजय प्राप्त हुई। अपने पुत्रोंको दैत्यों और दानवोंके द्वारा पराजित एवं त्रिभुवनके राज्याधिकारसे वञ्चित तथा उनका यज्ञभाग छिन गया देख माता अदिति शोकसे अत्यन्त पीड़ित हो गयीं। उन्होंने भगवान् सूर्यकी आराधनाके लिये महान् यत्न आरम्भ किया। वे नियमित आहार करती हुई कठोर नियमोंका पालन और आकाशमें स्थित तेजोराशि भगवान् सूर्यका स्तवन करने लगीं।

* ये ही अरुण भगवान् श्रीसूर्यके रथके सारथि हैं जो ऊरु-विहीन हैं।

अदिति बोलीं—भगवन्! आप अत्यन्त सूक्ष्म सुनहरी आभासे युक्त दिव्य शरीर धारण करते हैं, आपको नमस्कार है। आप तेज स्वरूप, तेजस्वियोंके ईश्वर, तेजके आधार एवं सनातन पुरुष हैं, आपको प्रणाम है। गोपते! आप जगत्का उपकार करनेके लिये जिस समय अपनी किरणोंसे पृथ्वीका जल ग्रहण करते हैं, उस समय आपका जो तीव्र रूप प्रकट होता है, उसे मैं नमस्कार करती हूँ। आठ महीनोंतक सोममय रसको ग्रहण करनेके लिये आप जो अत्यन्त तीव्ररूप धारण करते हैं, उसे मैं प्रणाम करती हूँ। भास्कर! उसी सम्पूर्ण रसको बरसानेके लिये जब आप उसे छोड़नेको उद्यत होते हैं, तब आपका जो तृप्तिकारक मेघरूप प्रकट होता है, उसको मेरा नमस्कार है। इस प्रकार जलकी वर्षासे उत्पन्न हुए सब प्रकारके अन्नोंको पकानेके लिये आप जो भास्कररूप धारण करते हैं, उसे मैं प्रणाम करती हूँ। तरणे! जड़हन धानकी वृद्धिके लिये जो आप ठण्ड गिराने आदिके लिये अत्यन्त शीतल रूप धारण करते हैं, उसको मेरा नमस्कार है। सूर्यदेव! वसन्त ऋतुमें आपका जो सौम्य रूप प्रकट होता है, जो समशीतोष्ण होता है, जिसमें न अधिक गर्मी होती है न अधिक सर्दी, उसे मेरा बारम्बार नमस्कार है। जो सम्पूर्ण देवताओं तथा पितरोंको तृप्त करनेवाला और अनाजको पकानेवाला है, आपके उस रूपको नमस्कार है। जो रूप लताओं और वृक्षोंका एकमात्र जीवनदाता तथा अमृतमय है, जिसे देवता और पितर पान करते हैं, आपके उस सोम रूपको नमस्कार है। आपका यह विश्वमय स्वरूप ताप एवं तृप्ति प्रदान करनेवाले अग्नि और सोमके द्वारा व्याप्त है, उसको नमस्कार है। विभावसो! आपका जो रूप ऋक्, यजु और सामम्य तेजोंकी एकतासे इस विश्वको तपाता है तथा जो वेदत्रयी स्वरूप है, उसको मेरा नमस्कार है, और, जो उससे भी उत्कृष्ट रूप है, जिसे 'ॐ' कहकर पुकारा जाता है, जो अस्थूल, अनन्त और निर्मल है, उस रूपको नमस्कार है।

इस प्रकार देवी अदिति नियमपूर्वक रहकर दिन-रात सूर्यदेवकी स्तुति करने लगीं। उनकी आराधनाकी इच्छासे वे प्रतिदिन निराहार ही रहती थीं। तदनन्तर बहुत समय व्यतीत होनेपर भगवान् सूर्यने दक्षकन्या अदितिको आकाशमें प्रत्यक्ष दर्शन दिया। अदितिने देखा, आकाशसे पृथ्वीतक तेजका एक महान् पुञ्ज स्थित है। उद्दीप्त ज्वालाओंके कारण उसकी ओर देखना कठिन हो रहा है। उन्हें देखकर देवी अदितिको बड़ा भय हुआ। वे बोलीं—गोपते! आप मुझपर प्रसन्न हों। मैं पहले आकाशमें आपको जिस प्रकार देखती थी, वैसे आज नहीं देख पाती हूँ। इस समय यहाँ भूतलपर मुझे केवल तेजका समुदाय ही दिखायी दे रहा है। दिवाकर! मुझपर कृपा कीजिये, जिससे आपके रूपका दर्शन कर सकूँ। भक्तवत्सल प्रभो! मैं आपकी भक्त हूँ, आप मेरे पुत्रोंकी रक्षा कीजिये। आप ही ब्रह्मा होकर इस विश्वकी सृष्टि करते हैं, आप ही पालन करनेके लिये उद्यत होकर इसकी रक्षा करते हैं तथा अन्तमें यह सब कुछ आपमें ही लीन होता है। सम्पूर्ण लोकोंमें आपके सिवा दूसरी कोई गति नहीं है। आप ही ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, कुबेर, यम, वरुण, वायु, चन्द्रमा, अग्नि, आकाश, पर्वत और समुद्र हैं। आपका तेज सबकी आत्मा है। आपकी क्या स्तुति की जाय। यज्ञेश्वर! प्रतिदिन अपने कर्मोंमें लगे हुए ब्राह्मण भाँति-भाँतिके पदोंसे आपकी स्तुति करते हुए यजन करते हैं। जिन्होंने अपने चित्तको वशमें कर लिया है, वे योगनिष्ठ पुरुष योगमार्गसे आपका ही ध्यान करते हुए परमपदको प्राप्त होते हैं। आप विश्वको ताप देते, उसे पकाते, उसकी रक्षा करते और उसे भस्म कर डालते हैं; फिर आप ही जलगर्भित शीतल किरणोंद्वारा इस विश्वको प्रकट करते और आनन्द देते हैं। कमलयोनि ब्रह्माके

रूपमें आप ही सृष्टि करते हैं । अच्युत (विष्णु) नामसे आप ही पालन करते हैं तथा कल्पान्तमें रुद्ररूप धारण करके आप ही सम्पूर्ण जगत्का संहार करते हैं ।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—तदनन्तर भगवान् सूर्य अपने उस तेजसे प्रकट हुए, जिससे वे तपाये हुए ताँबेके समान कान्तिमान् दिखायी देते थे । देवी अदिति उनका दर्शन करके चरणोंमें गिर पड़ीं । तब भगवान् सूर्यने कहा—'देवि ! तुम्हारी जिस वस्तुकी इच्छा हो, उसे मुझसे माँग लो ।' तब देवी अदिति घुटनेके बलसे पृथ्वीपर बैठ गयीं और मस्तक नवाकर प्रणाम करके वरदायक भगवान् सूर्यसे बोलीं—'देव ! आप प्रसन्न होइये । अधिक बलवान् दैत्यों और दानवोंने मेरे पुत्रोंके हाथसे त्रिभुवनका राज्य और यज्ञभाग छीन लिये हैं । गोपते ! उन्हें प्राप्त करानेके लिये आप मुझपर कृपा करें । आप अपने अंशसे देवताओंके बन्धु होकर उनके शत्रुओंका नाश करें । प्रभो ! आप ऐसी कृपा करें, जिससे मेरे पुत्र पुन यज्ञभागके भोक्ता तथा त्रिभुवनके स्वामी हो जायँ ।'

तब भगवान् सूर्यने अदितिसे प्रसन्न होकर कहा—'देवि ! मैं अपने सहस्र अंशोंसहित तुम्हारे गर्भसे अवतीर्ण होकर तुम्हारे पुत्रोंके शत्रुओंका नाश करूँगा ।' इतना कहकर भगवान् सूर्य तिरोहित हो गये और अदिति भी सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध हो जानेके कारण तपस्यासे निवृत्त हो गयीं । तदनन्तर सूर्यकी सुषुम्ना नामवाली किरण, जो सहस्र किरणोंका समुदाय थी, देवमाता अदितिके गर्भमें अवतीर्ण हुई । देवमाता अदिति एकाग्रचित्त हो कृच्छ्र और चान्द्रायण आदि व्रतोंका पालन करने लगीं और अत्यन्त पवित्रतापूर्वक उस गर्भको धारण किये रहीं । यह देख महर्षि कश्यपने कुछ कुपित होकर कहा—'तुम नित्य उपवास करके अपने गर्भके बच्चेको क्यों मारे डालती हो ?' यह सुनकर उन्होंने कहा—'देखिये, यह रहा गर्भका बच्चा, मैंने इसे मारा नहीं है, यह स्वयं ही अपने शत्रुओंको मारनेवाला होगा ।'

यह कहकर देवी अदितिने उस गर्भको उदरसे बाहर कर दिया । वह अपने तेजसे प्रज्वलित हो रहा था । उदयकालीन सूर्यके समान तेजस्वी उस गर्भको देखकर कश्यपने प्रणाम किया और आदि ऋचाओंके द्वारा आदरपूर्वक उसकी स्तुति की । उनके स्तुति करनेपर शिशुरूपधारी सूर्य उस अण्डाकार गर्भसे प्रकट हो गये । उनके शरीरकी कान्ति कमलपत्रके समान श्याम थी । वे अपने तेजसे सम्पूर्ण दिशाओंका मुख उज्ज्वल कर रहे थे । तदनन्तर मुनिश्रेष्ठ कश्यपको सम्बोधित करके मेघके समान गम्भीर वाणीमें आकाशवाणी हुई—'मुने ! तुमने अदितिसे कहा था कि इस अण्डेको क्यों मार रही है ? उस समय तुमने 'मारितं-अण्डम्' का उच्चारण किया था इसलिये तुम्हारा यह पुत्र 'मार्तण्ड'के नामसे विख्यात होगा और शक्तिशाली होकर सूर्यके अधिकारका पालन करेगा, इतना ही नहीं, यह यज्ञभागका अपहरण करनेवाले देवशत्रु असुरोंका संहार भी करेगा ।'

यह आकाशवाणी सुनकर देवताओंको बड़ा हर्ष हुआ और दानव बलहीन हो गये । तब इन्द्रने दैत्योंको युद्धके लिये ललकारा । दानव भी उनका सामना करनेके लिये आ पहुँचे । फिर तो असुरोंके साथ देवताओंका घोर संग्राम हुआ । उनके अस्त्र-शस्त्रोंकी चमकसे तीनों लोकोंमें प्रकाश छा गया । उस युद्धमें भगवान् सूर्यकी उग्र दृष्टि पड़ने तथा उनके तेजसे दग्ध होनेके कारण सब असुर जलकर भस्म हो गये । अब तो देवताओंके हर्षकी सीमा न रही । उन्होंने तेजके उत्पत्तिस्थान भगवान् सूर्य और अदितिका स्तवन किया । उन्हें पूर्ववत् अपने अधिकार और यज्ञके भाग प्राप्त हो गये । भगवान् सूर्य भी अपने निजी अधिकारका पालन करने लगे । वे नीचे और ऊपर फैली हुई किरणोंके कारण कदम्बपुष्पके समान सुशोभित हो रहे थे । उनका मण्डल गोलाकार अग्निपिण्डके समान था ।

तदनन्तर भगवान् सूर्यको प्रसन्न करके प्रजापति

विश्वकर्माने विनयपूर्वक अपनी संज्ञा नामकी कन्या उनको ब्याह दी। विवस्वान्से संज्ञाके गर्भसे वैवस्वत मनुका जन्म हुआ।

सूर्यकी महिमाके प्रसङ्गमें राजा राज्यवर्धनकी कथा

क्रौष्टुकि बोले—भगवन्! आपने आदिदेव भगवान् सूर्यके माहात्म्य और स्वरूपका विस्तारपूर्वक वर्णन किया। अब मैं उनकी महिमाका वर्णन सुनना चाहता हूँ। आप प्रसन्न होकर बतानेकी कृपा करें।'

मार्कण्डेयजीने कहा—ब्रह्मन्! मैं तुम्हें आदिदेव सूर्यकी महिमा बताता हूँ, सुनो। पूर्वकालमें दमके पुत्र राज्यवर्धन बड़े विख्यात राजा हो गये हैं। वे अपने राज्यका धर्मपूर्वक पालन करते थे, इसलिये वहाँके धन जनकी दिनोंदिन वृद्धि होने लगी। उस राजाके शासन कालमें समस्त राष्ट्र तथा नगरों और गाँवोंके लोग अत्यन्त स्वस्थ एवं प्रसन्न रहते थे। वहाँ कभी कोई उत्पात नहीं होता था तथा रोग भी नहीं सताता था। साँपोंके काटनेका तथा अनावृष्टिका भय भी नहीं था। राजाने बड़े-बड़े यज्ञ किये। याचकोंको दान दिये और धर्मके अनुकूल रहकर विषयोंका उपभोग किया। इस प्रकार राज्य करते तथा प्रजाका भलीभाँति पालन करते हुए उस राजाके सात हजार वर्ष ऐसे बीत गये, मानो एक ही दिन व्यतीत हुआ हो। दक्षिण देशके राजा विदूरथकी पुत्री मानिनी राज्यवर्धनकी पत्नी थी। एक दिन वह सुन्दरी राजाके मस्तकमें तेल लगा रही थी। उस समय वह राजपरिवारके देखते-देखते आँसू बहाने लगी। रानीके आँसुओंकी बूँदें जब राजाके शरीरपर पड़ीं तो उसे मुखपर आँसू बहाती देख उन्होंने मानिनीसे पूछा—'देवि! यह क्या?' स्वामीके इस प्रकार पूछने पर उस मनस्विनीने कहा—'कुछ नहीं।' जब राजाने बार-बार पूछा, तब उस सुन्दरीने राजाकी केशराशिमेंसे एक पका बाल दिखाया और कहा—'राजन्! यह देखिये, क्या यह मुझ अभागिनीके लिये खेदका नहीं है?' यह सुनकर राजा हँसने लगे। उन्होंने एकत्र हुए समस्त राजाओंके सामने अपनी [illegible] हँसकर कहा—'शुभे! शोककी क्या बात है! रोना नहीं चाहिये। जन्म, वृद्धि और परिणाम [illegible] विकार सभी जीवधारियोंके होते हैं। मैंने तो सम्पूर्ण वेदोंका अध्ययन किया, हजारों यज्ञ किये, ब्राह्मणोंको दान दिया और मेरे कई पुत्र भी हुए। अन्य मनुष्योंके लिये जो अत्यन्त दुर्लभ हैं, ऐसे उत्तम भोग भी तुम्हारे साथ भोग लिये। पृथ्वीका भलीभाँति पालन किया और युद्धमें सम्यक् प्रकारसे अपने धर्मको निभा दिया। और कौन-सा ऐसा शुभ कर्म है, जिसे मैंने न किया। फिर इन पके बालोंसे तुम क्यों डरती हो शुभे! मेरे बाल पक जायँ, शरीरमें झुर्रियाँ पड़ें तथा यह देह भी शिथिल हो जाय तो कोई चिन्ता नहीं है। मैं अपने कर्तव्यका पालन कर चुका हूँ। कल्याणि! तुमने मेरे मस्तकपर जो पका बाल दिखाया है, वनवास लेकर उसकी भी दवा करता हूँ। पहले बाल्यावस्था और कुमारावस्थामें तत्कालोचित कार्य किये जाते हैं, फिर युवावस्थामें यौवनोचित कार्य होते हैं तथा बुढ़ापेमें वनका आश्रय लेना उचित है। मेरे पूर्वजों तथा उनके भी पूर्वजोंने ऐसा ही किया है। अब मैं तुम्हारे आँसू बहानेका कोई कारण नहीं देखता। पके बालका दिखायी देना तो मेरे लिये महान् अभ्युदयका कारण है।'

महाराजकी यह बात सुनकर वहाँ उपस्थित हुए अन्य राजा, पुरवासी तथा पार्श्ववर्ती मनुष्य उनसे शान्तिपूर्वक बोले—'राजन्! आपकी इन महारानीको रोनेकी आवश्यकता नहीं है। रोना तो हमलोगोंको अथवा समस्त प्राणियोंको चाहिये, क्योंकि आप हमें छोड़कर वनवास लेनेकी बात मुँहसे निकाल रहे हैं। महाराज! आपने हमारा लालन-पालन किया है। आपके वनमें

जानेकी बात सुनकर हमारे प्राण निकले जाते हैं। आपने सात हजार वर्षोंतक इस पृथ्वीका पालन किया है। अब आप वनमें रहकर जो तपस्या करेंगे, वह इस पृथ्वी-पालनजनित पुण्यकी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं हो सकती।'

राजाने कहा—'मैंने सात हजार वर्षोंतक इस पृथ्वीका पालन किया, अब मेरे लिये यह वनवासका समय आ गया। मेरे कई पुत्र हो गये। मेरी संतानोंको देखकर थोड़े ही दिनोंमें यमराज मेरा यहाँ रहना नहीं सह सकेंगे। नागरिको! मेरे मस्तकपर जो यह सफेद बाल दिखायी देता है, इसे अत्यन्त भयानक वर्ग करनेवाली मृत्युका दूत समझो, अतः मैं राज्यपर अपने पुत्रका अभिषेक करके सब भोगोंको त्याग दूँगा और वनमें रहकर तपस्या करूँगा। जबतक यमराजके सैनिक नहीं आते, तभीतक यह सब कुछ मुझे कर लेना है।'

तदनन्तर वनमें जानेकी इच्छासे महाराजने ज्योतिषियोंको बुलाया और पुत्रके राज्याभिषेकके लिये शुभ दिन एवं लग्न पूछे। राजाकी बात सुनकर वे शास्त्रदर्शी ज्योतिषी व्याकुल हो गये। उन्हें दिन, लग्न और होरा आदिका ठीक ज्ञान न हो सका। फिर तो अन्य नगरों, अधीनस्थ राज्यों तथा उस नगरसे भी बहुत से श्रेष्ठ ब्राह्मण आये और वनमें जानेके लिये उत्सुक राजा राज्यवर्धनसे मिले। उस समय उनका माथा काँप उठा। वे बोले—'राजन्! हमपर प्रसन्न होइये और पहलेकी भाँति अब भी हमारा पालन कीजिये। आपके वन चले जानेपर समस्त जगत् संकटमें पड़ जायगा, अतः आप ऐसा यत्न करें, जिससे जगत्को कष्ट न हो।'

इसके बाद मन्त्रियों, सेवकों, वृद्ध नागरिकों और ब्राह्मणोंने मिलकर सलाह की—'अब यहाँ क्या करना चाहिये?' राजा राज्यवर्धन अत्यन्त धार्मिक थे। उनके प्रति सब लोगोंका अनुराग था, इसलिये सलाह करने-वाले लोगोंमें यह निश्चय हुआ कि हम सब लोग एकाग्रचित्त एवं भलीभाँति ध्यानपरायण होकर तपस्याद्वारा भगवान् सूर्यकी आराधना करके इन महाराजकी आयुके लिये प्रार्थना करें। इस प्रकार एक निश्चय करके कुछ लोग अपने घरोंपर विधिपूर्वक अर्घ्य, उपचार आदि उपहारोंसे भगवान् भास्करकी पूजा करने लगे। दूसरे लोग मौन रहकर ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदके जपसे सूर्यदेवको संतुष्ट करने लगे। अन्य लोग निराहार रहकर नदीके तटपर निवास करते हुए तपस्याके द्वारा भगवान् सूर्यकी आराधनामें लग गये। कुछ लोग अग्निहोत्र करते, कुछ दिन-रात सूर्यसूक्तका पाठ करते और कुछ लोग सूर्यकी ओर दृष्टि लगाकर खड़े रहते थे।

सूर्यकी आराधनाके लिये इस प्रकार यत्न करनेवाले उन लोगोंके समीप आकर सुदामा नामक गन्धर्वने कहा—'द्विजवरो! यदि आपलोगोंको सूर्यदेवकी आराधना अभीष्ट है तो ऐसा कीजिये, जिससे भगवान् भास्कर प्रसन्न हो सकें। आपलोग यहाँसे शीघ्र ही कामरूप पर्वतपर जाइये। वहाँ गुरुविशाल नामक वन है, जिसमें सिद्ध पुरुष निवास करते हैं। वहाँपर एकाग्रचित्त होकर आपलोग सूर्यकी आराधना करें। वह परम हितकारी सिद्ध क्षेत्र है। वहाँ आपलोगोंकी सब कामनाएँ पूर्ण होंगी।'

सुदामाकी यह बात सुनकर वे समस्त द्विजगुरु विशाल वनमें गये। वहाँ उन्होंने सूर्यदेवका पवित्र एवं सुन्दर मन्दिर देखा। उस स्थानपर ब्राह्मण आदि तीनों वर्णोंके लोग मिताहारी एवं एकाग्रचित्त हो पुष्प, चन्दन, धूप, गन्ध, जप, होम, अन्न और दान आदिके द्वारा भगवान् सूर्यकी पूजा एवं स्तुति करने लगे।

ब्राह्मण बोले—देवता, दानव, यक्ष, ग्रह और नक्षत्रोंमें भी जो सबसे अधिक तेजस्वी हैं, उन भगवान सूर्यकी हम शरण लेते हैं। जो देवेश्वर

आकाशमें स्थित होकर चारों ओर प्रकाश फैलाते तथा अपनी किरणोंसे पृथ्वी और आकाशको व्याप्त किये रहते हैं, उनकी हम शरण लेते हैं। आदित्य, भास्कर, भानु, सविता, दिवाकर, पूषा, अर्यमा, स्वर्भानु तथा दीप्तदीधिति—ये जिनके नाम हैं, जो चारों युगोंका अन्त करनेवाले कालाग्नि हैं, जिनकी ओर देखना कठिन है, जिनकी प्रलयके अन्तमें भी गति है, जो योगीश्वर, अनन्त, रक्त, पीत, सित और असित हैं, ऋषियोंके अग्निहोत्रों तथा यज्ञके दत्ताओंमें जिनकी स्थिति है, जो अक्षर, परम गुह्य तथा मोक्षके उत्तम द्वार हैं, जिनके उदयास्तमनरूप रथमें छन्दोमय अश्व जुते हुए हैं तथा जो उस रथपर बैठकर मेरुगिरिकी प्रदक्षिणा करते हुए आकाशमें विचरण करते हैं, अमृत और अनृत दोनों ही जिनके स्वरूप हैं, जो भिन्न भिन्न पुण्यतीर्थोंके रूपमें विराजमान हैं, एकमात्र जिनपर इस विश्वकी रक्षा निर्भर है, जो कभी चिन्तनमें नहीं आ सकते, उन भगवान् भास्करकी हम शरण लेते हैं। जो ब्रह्मा, महादेव, विष्णु, प्रजापति, वायु, आकाश, जल, पृथ्वी, पर्वत, समुद्र, ग्रह, नक्षत्र और चन्द्रमा आदि हैं, वनस्पति, वृक्ष और ओषधियाँ जिनके स्वरूप हैं, जो व्यक्त और अव्यक्त प्राणियोंमें स्थित हैं उन भगवान् सूर्यकी हम शरण लेते हैं। ब्रह्मा, शिव तथा विष्णुके जो रूप हैं, वे आपके ही हैं। जिनके तीन स्वरूप हैं, वे भगवान् भास्कर हमपर प्रसन्न हों। जिन अजन्मा जगदीश्वरके अङ्गमें यह सम्पूर्ण जगत् स्थित है तथा जो जगत्के जीवन हैं, वे भगवान् सूर्य हमपर प्रसन्न हों। जिनका एक परम प्रकाशमान रूप ऐसा है, जिसकी ओर प्रभापुञ्जकी अधिकताके कारण देखना कठिन हो जाता है तथा जिनका दूसरा रूप चन्द्रमा है, जो अत्यन्त सौम्य है, वे भगवान् भास्कर हमपर प्रसन्न हों।

इस प्रकार भक्तिपूर्वक स्तवन और पूजन करनेवाले उन द्विजोंपर तीन महीनोंमें भगवान् सूर्य प्रसन्न हुए और अपने मण्डलसे निकलकर उसीके समान [illegible] धारण किये वे नीचे उतरे और दुर्दर्श होते हुए भी सबके समक्ष प्रकट हो गये। तब उन लोगोंने सूर्यदेवका स्पष्ट रूपका दर्शन करके उन्हें भक्तिसे [illegible] होकर प्रणाम किया। उस समय उनके शरीरमें रोमाञ्च और कम्प हो रहा था। वे बोले—'सहस्र किरणों[illegible] सूर्यदेव! आपको बारबार नमस्कार है। आप [illegible] हेतु तथा सम्पूर्ण जगत्के विजयकेतु हैं, आप ही [illegible] रक्षक, सबके पूज्य, सम्पूर्ण यज्ञोंके आधार तथा [illegible] वेत्ताओंके ध्येय हैं, आप हमपर प्रसन्न हों।'

मार्कण्डेयजी कहते हैं—तब भगवान् सूर्यने प्र[illegible] होकर सब लोगोंसे कहा—'द्विजगण! आपको [illegible] वस्तुकी इच्छा हो, वह मुझसे माँगें।' यह सुनकर [illegible] आदि वर्णोंके लोगोंने उन्हें प्रणाम करके कहा—'अन्धकारका नाश करनेवाले भगवान् सूर्यदेव! [illegible] आप हमारी भक्तिसे प्रसन्न हैं तो हमारे राजा [illegible] नीरोग, शत्रुविजयी, सुन्दर केशोंसे युक्त तथा [illegible] यौवनवाले होकर दस हजार वर्षोंतक जीवित रहें।'

'तथास्तु' कहकर भगवान् सूर्य अन्तर्हित हो गये। वे सब लोग भी मनोवाञ्छित वर पाकर प्रसन्नतापूर्वक महाराजके पास लौट आये। वहाँ उन्होंने सूर्यसे [illegible] पाने आदिकी सब बातें यथावत् कह सुनायीं। [illegible] सुनकर रानी मानिनीको बड़ा हर्ष हुआ, परन्तु राजा बहुत देरतक चिन्तामें पड़े रहे। वे उन लोगोंसे कुछ [illegible] बोले। मानिनीका हृदय हर्षसे भरा हुआ था। [illegible] बोली—'महाराज! बड़े भाग्यसे आयुकी वृद्धि हुई है। आपका अभ्युदय हो। राजन्! इतने बड़े अभ्युदयके समय आपको प्रसन्नता क्यों नहीं होती? दस हजार वर्षोंतक आप नीरोग रहेंगे, आपकी जवानी स्थिर रहेगी, फिर भी आपको खुशी क्यों नहीं होती?'

राजा बोले—कल्याणि! मेरा अभ्युदय कैसे हुआ! तुम मेरा अभिनन्दन क्यों करती हो? जब हजार-हजार

दुःख प्राप्त हो रहे हैं, उस समय किसीको बधाई देना क्या उचित माना जाता है? मैं अकेला ही तो दस हजार वर्षोंतक जीवित रहूँगा। मेरे साथ तुम तो नहीं रहोगी। क्या तुम्हारे मरनेपर मुझे दुःख नहीं होगा? पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, इष्ट, बन्धु-बान्धव, भक्त, सेवक तथा मित्रवर्ग—ये सब मेरी आँखोंके सामने मरेंगे। उस समय मुझे अपार दुःखका सामना करना पड़ेगा। जिन लोगोंने अत्यन्त दुर्बल होकर शरीरकी नाडियाँ सुखा-सुखाकर मेरे लिये तपस्या की, वे सब तो मरेंगे और मैं भोग भोगते हुए जीवित रहूँगा। ऐसी दशामें क्या मैं धिक्कार देनेयोग्य नहीं हूँ? सुन्दरि! इस प्रकार मुझपर यह आपत्ति आ गयी। मेरा अभ्युदय नहीं हुआ है। क्या तुम इस बातको नहीं समझती? फिर क्यों मेरा अभिनन्दन कर रही हो?

मानिनी बोली—महाराज! आप जो कहते हैं, वह सब ठीक है। मैंने तथा पुरवासियोंने आपके प्रेमवश इस दोषकी ओर नहीं देखा है। नरनाथ! ऐसी अवस्थामें क्या करना चाहिये, यह आप ही सोचें, क्योंकि भगवान् सूर्यने प्रसन्न होकर जो कुछ कहा है, वह अन्यथा नहीं हो सकता।

राजाने कहा—देवि! पुरवासियों और सेवकोंने प्रेमवश मेरे ऊपर जो उपकार किया है, उसका बदला चुकाये बिना मैं किस प्रकार भोग भोगूँगा। यदि भगवान् सूर्यकी ऐसी कृपा हो कि समस्त प्रजा भृत्यवर्ग, तुम, अपने पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र और मित्र भी जीवित रह सकें तो मैं राज्यसिंहासनपर बैठकर प्रसन्नतापूर्वक भोगोंका उपभोग कर सकूँगा। यदि वे ऐसी कृपा नहीं करेंगे तो मैं उसी कामरूप पर्वतपर निराहार रहकर तबतक तपस्या करूँगा, जबतक कि इस जीवनका अन्त न हो जाय।

राजाके यों कहनेपर रानी मानिनीने कहा—ऐसा ही हो। फिर तो वे भी महाराजके साथ कामरूप पर्वतपर चली गयीं। वहाँ पहुँचकर राजाने पत्नीके साथ सूर्यमन्दिरमें जाकर सेवापरायण हो भगवान् भानुकी आराधना आरम्भ की। दोनों दम्पति उपवास करते-करते दुर्बल हो गये। सर्दी, गर्मी और वायुका कष्ट सहन करते हुए दोनोंने घोर तपस्या की। सूर्यकी पूजा और भारी तपस्या करते-करते जब एक वर्षसे अधिक समय व्यतीत हो गया, तब भगवान् भास्कर प्रसन्न हुए। उन्होंने राजाको समस्त सेवकों, पुरवासियों और पुत्रों आदिके लिये इच्छानुसार वरदान दिया। वर पाकर राजा अपने नगरको लौट आये और धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करते हुए बड़ी प्रसन्नताके साथ राज्य करने लगे। धर्मज्ञ राजाने बहुत-से यज्ञ किये और उन्होंने दिन-रात खुले हाथ दान किया। वे यौवनको स्थिर रखते हुए अपने पुत्र, पौत्र और भृत्य आदिके साथ दस हजार वर्षोंतक जीवित रहे। उनका यह चरित्र देखकर भृगुवंशी प्रमतिने विस्मित होकर यह गाथा गायी—'अहो! भगवान् सूर्यकी भक्तिकी कैसी शक्ति है, जिससे राजा राज्यवर्धन अपने तथा स्वजनोंके लिये आयुर्वर्धन बन गये।'

जो मनुष्य ब्राह्मणोंके मुखसे भगवान् सूर्यके इस उत्तम माहात्म्यका श्रवण तथा पाठ करता है, वह सात रातके किये हुए पापोंसे मुक्त हो जाता है। मुनिश्रेष्ठ! इस प्रसङ्गमें सूर्यदेवके जो मन्त्र आये हैं, उनमेंसे एक-एकका भी यदि तीनों सन्ध्याओंके समय जप किया जाय तो वह समस्त पातकोंका नाश करनेवाला होता है। सूर्यके जिस मन्दिरमें इस समूचे माहात्म्यका पाठ किया जाता है, वहाँ भगवान् सूर्य विराजमान रहते हैं। अतः ब्रह्मन्! यदि तुम्हें महान् पुण्यकी प्राप्ति अभीष्ट हो तो सूर्यके इस उत्तम माहात्म्यको मन-ही-मन धारण एवं जप करते रहो। द्विजश्रेष्ठ! जो सोनेके सींगसे युक्त सुन्दर काली दुधारू गाय दान करता है तथा जो अपने मनको संयममें रखकर तीन दिनोंतक इस माहात्म्यका श्रवण करता है, उन दोनोंको पुण्यफलकी प्राप्ति समान ही होती है।

ब्रह्मपुराणमें सूर्य-प्रसङ्ग

[ब्रह्मपुराणके प्रस्तुत सदर्भमें कोणादित्य एवं भगवान् सूर्यकी महिमा, सूर्य-महत्त्वके साथ अदितिके गर्भसे उनके सम्भवका वर्णन और श्रीसूर्यदेवकी स्तुति तथा उनके अष्टोत्तर शतनामोंके वर्णनवाले वस्तु विषय सङ्कलित हैं]

कोणादित्यकी महिमा

ब्रह्माजी कहते हैं—भारतवर्षमें दक्षिण समुद्रके किनारे ओण्ड्रदेशके नामसे विख्यात एक प्रदेश है, जो स्वर्ग एवं मोक्ष देनेवाला है। समुद्रसे उत्तर विरज मण्डलतकका प्रदेश पुण्यात्माओंके सम्पूर्ण गुणोंद्वारा सुशोभित है। उस देशमें उत्पन्न जो जितेन्द्रिय ब्राह्मण तपस्या एवं स्वाध्यायमें संलग्न रहते हैं, वे सदा ही वन्दनीय एवं पूजनीय हैं। उस देशके ब्राह्मण श्राद्ध, दान, विवाह, यज्ञ अथवा आचार्यकर्म—सभी कार्योंके लिये उत्तम हैं। वे षट्कर्मपरायण, वेदोंके पारङ्गत विद्वान्, इतिहासवेत्ता, पुराणार्थविशारद, सर्वशास्त्रार्थकुशल, यज्ञशील और राग-द्वेषरहित होते हैं। कोई वैदिक अग्निहोत्रमें लगे रहते और कोई स्मार्त-अग्निकी उपासना करते हैं। वे स्त्री, पुत्र और धनसे सम्पन्न, दानी और सत्यवादी होते हैं तथा यज्ञोत्सवसे विभूषित पवित्र उत्कलदेशमें निवास करते हैं। वहाँ क्षत्रिय आदि अन्य तीन वर्णोंके लोग भी परम संयमी, स्वकर्मपरायण, शान्त और धार्मिक होते हैं। उक्त प्रदेशमें भगवान् सूर्य कोणादित्यके नामसे विख्यात होकर रहते हैं। उनका दर्शन करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

मुनियोंने कहा—सुरश्रेष्ठ! पूर्वोक्त ओण्ड्रदेशमें जो सूर्यका क्षेत्र है तथा जहाँ भगवान् भास्कर निवास करते हैं, उसका वर्णन कीजिये। अब हम उसे ही सुनना चाहते हैं।

ब्रह्माजी बोले—मुनिवरो! लवणसमुद्रका उत्तरी तट अत्यन्त मनोहर और पवित्र है। वह सब ओर बालुका राशिसे आच्छन्न है। उस सर्वगुणसम्पन्न प्रदेशमें चम्पा, अशोक, मौलसिरी, करवीर (कनेर), गुलर नागकेसर, ताड़, सुपारी, नारियल, कैथ और अन्य नाना प्रकारके वृक्ष चारों ओर शोभा पाते हैं। वहाँ भगवान् सूर्यका पुण्यक्षेत्र है, जो सम्पूर्ण जगत्में विख्यात है। उसका विस्तार सब ओरसे एक योजनसे अधिक है। वहाँ सहस्र किरणोंसे सुशोभित साक्षात् भगवान् सूर्यका निवास है। वे 'कोणादित्य'*के नामसे विख्यात एवं भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं। वहाँ माघमासके शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिको इन्द्रियसंयमपूर्वक उपवास करना चाहिये। फिर प्रातः शौच आदिसे निवृत्त एवं विशुद्धचित्त हो सूर्यदेवका स्मरण करते हुए विधिपूर्वक समुद्रमें स्नान करे। स्नानोपरान्त देवता, ऋषि और मनुष्योंका तर्पण करनेकी विधि है। तदनन्तर जलसे बाहर आकर दो स्वच्छ वस्त्र धारण करे। फिर आचमन करके पवित्रतापूर्वक सूर्योदयके समय समुद्रके तटपर पूर्वाभिमुख होकर बैठ जाय। लाल चन्दन और जलसे ताँबेके पात्रमें एक अष्टदल कमलकी ऐसी आकृति बनाये जो केसरयुक्त और गोलाकार हो। उसकी कर्णिका ऊपरकी ओर उठी हो। फिर तिल, चावल, जल, लाल चन्दन, लाल फूल और कुशा उस पात्रमें रख दे। ताँबेका बर्तन न मिले तो मदारके पत्तेका दोना बनाकर उसीमें तिल आदि रखे। उस पात्रको एक दूसरे पात्रसे ढक देना चाहिये। इसके बाद हृदय आदि अङ्गोंके क्रमसे अङ्गन्यास और करन्यास करके पूर्ण श्रद्धाके साथ अपने आत्मस्वरूप भगवान् सूर्यका ध्यान करे।

इसके बाद पूर्वोक्त अष्टदल कमलके मध्यभागमें तथा अग्नि, नैर्ऋत्य, वायव्य और ईशान कोणोंके दलोंमें

* कोणादित्यकी समग्रसम्बद्ध स्थितिके सम्बन्धमें आगे निबन्ध दिये गये हैं।

...र पुनः मध्यभागमें क्रमशः प्रभूत, विमल, सार, आराध्य, परम और सुखस्वरूप सूर्यदेवका पूजन करे। तदनन्तर वहाँ आकाशसे सूर्यदेवका आवाहन करके कर्णिकाके ऊपर उनकी स्थापना करे। तत्पश्चात् हाथोंसे सुमुख और सम्पुट आदि मुद्राएँ दिखाये। फिर देवताको स्नान आदि कराकर एकाग्रचित्त हो इस प्रकार ध्यान करे—'भगवान् सूर्य श्वेत कमलके आसनपर तेजोमण्डलमें विराजमान हैं। उनकी आँखें पीली और शरीरका रंग लाल है। उनके दो भुजाएँ हैं। उनका मुख रक्त कमलके समान लाल है। वे सब प्रकारके शुभ लक्षणोंसे युक्त और सभी तरहके आभूषणोंसे विभूषित हैं। उनका रूप सुन्दर है। वे वर देनेवाले तथा शान्त एवं प्रभापुञ्जसे देदीप्यमान हैं।' तदनन्तर उदयकालमें स्निग्ध सिंदूरके समान अरुण वर्णवाले भगवान् सूर्यका दर्शन करके अर्घ्यपात्र ले। उसे सिरसे पास लगावे और पृथ्वीपर घुटने टेककर मौन हो एकाग्रचित्तसे अक्षर मन्त्रका उच्चारण करते हुए भगवान् सूर्यको अर्घ्य दे। जिस पुरुषको दीक्षा नहीं दी गयी है, वह भक्तियुक्त श्रद्धाके साथ सूर्यका नाम लेकर ही अर्घ्य दे, क्योंकि भगवान् सूर्य भक्तिके द्वारा ही वशमें होते हैं।

अग्नि, नैर्ऋत्य, वायव्य एवं ईशानकोण, मध्यभाग तथा पूर्व आदि दिशाओंमें क्रमशः हृदय, सिर, शिखा, कवच, नेत्र और अस्त्रकी पूजा करे।* फिर अर्घ्य देना चाहिये। गन्ध, धूप, दीप और नैवेद्य निवेदनकर जप, स्तुति, नमस्कार तथा मुद्रा करके देवताका विसर्जन करे। जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री और शूद्र अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखते हुए सदा संयमपूर्वक भक्तिभाव और विशुद्ध चित्तसे भगवान् सूर्यको अर्घ्य देते हैं, वे मनोवाञ्छित भोगोंका उपभोग करके परम गतिको प्राप्त होते हैं।† जो मनुष्य तीनों लोकोंको प्रकाशित करनेवाले आकाश विहारी भगवान् सूर्यकी शरण लेते हैं, वे सुखके भागी होते हैं। जबतक भगवान् सूर्यको विधिपूर्वक अर्घ्य न दे दिया जाय, तबतक श्रीविष्णु, शङ्कर अथवा इन्द्रका पूजन नहीं करना चाहिये। अतः प्रतिदिन पवित्र हो प्रयत्न करके मनोहर फूलों और चन्दन आदिके द्वारा सूर्यदेवको अर्घ्य देना आवश्यक है। इस प्रकार जो सप्तमी तिथिको स्नान करके शुद्ध एवं एकाग्रचित्त हो सूर्यको अर्घ्य देता है, उसे मनोवाञ्छित फल प्राप्त होता है। रोगी पुरुष रोगसे मुक्त हो जाता है, धनकी इच्छा रखनेवालेको धन मिलता है, विद्यार्थीको विद्या प्राप्त होती है और पुत्रकी कामना रखनेवाला मनुष्य पुत्रवान् होता है।

इस प्रकार समुद्रमें स्नान करके सूर्यको अर्घ्य दे, उन्हें प्रणाम करे, फिर हाथमें फूल लेकर मौन हो सूर्यके मन्दिरमें जाय। मन्दिरके भीतर प्रवेश करके भगवान् कोणादित्यकी तीन बार प्रदक्षिणा करे और अत्यन्त भक्तिके साथ गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, साष्टाङ्ग प्रणाम, जय-जयकार तथा स्तोत्रोंद्वारा उनकी पूजा करे। इस प्रकार सहस्र किरणोंद्वारा मण्डित जगदीश्वर सूर्यदेवका पूजन करके मनुष्य दस अश्वमेध यज्ञोंका फल पाता है। इतना ही नहीं, वह सब पापोंसे मुक्त हो दिव्य शरीर धारण करता है और अपने आगे-पीछेकी सात-सात पीढ़ियोंका उद्धार करके सूर्यके समान तेजस्वी एवं इच्छानुसार गमन करनेवाले विमानपर

---

* पूजनके वाक्य इस प्रकार हैं—ह्रां हृदयाय नमः, अग्निकोणे। ह्रीं शिरसे नमः, नैर्ऋत्ये। ह्रूं शिखायै नमः, वायव्ये। ह्रैं कवचाय नमः, ऐशाने। ह्रौं नेत्रत्रयाय नमः, मध्यभागे। ह्रः अस्त्राय नमः, चतुर्दिक्षु इति।

† ये चार्घ्यं सम्प्रयच्छन्ति सूर्याय नियतेन्द्रियाः। ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्राश्च संयताः॥
भक्तिभावेन सततं विशुद्धेनान्तरात्मना। ते भुक्त्वाभिमतान् कामान् प्राप्नुवन्ति परां गतिम्॥

बैठकर सूर्यके लोकमें जाता है। उस समय गन्धर्वगण उसका यशोगान करते हैं। वहाँ एक कल्पतक श्रेष्ठ भोगोंका उपभोग करके पुण्य क्षीण होनेपर वह पुनः इस संसारमें आता और योगियोंके उत्तम कुलमें जन्म ले चारों वेदोंका विद्वान्, स्वधर्मपरायण तथा पवित्र ब्राह्मण होता है। तदनन्तर भगवान् सूर्यसे ही योगकी शिक्षा प्राप्त करके मोक्ष पा लेता है। चैत्र मासके शुक्लपक्षमें भगवान् कोणादित्यकी यात्रा होती है। यह यात्रा दमनभञ्जिकाके नामसे विख्यात है। जो मनुष्य यह यात्रा करता है, उसे भी पूर्वोक्त फलकी प्राप्ति होती है। भगवान् सूर्यके शयन और जागरणके समय, संक्रान्तिके दिन, विषुवयोगमें उत्तरायण या दक्षिणायन आरम्भ होनेपर, रविवारको सप्तमी तिथिको अथवा पर्वके समय जो जितेन्द्रिय पुरुष वहाँकी श्रद्धापूर्वक यात्रा करते हैं, वे सूर्यकी भाँति तेजस्वी विमानके द्वारा उनके लोकमें जाते हैं। वहाँ (पूर्वोक्त क्षेत्रमें) समुद्रके तटपर रामेश्वर नामसे विख्यात भगवान् महादेवजी विराजमान हैं, जो समस्त अभिलषित फलोंके देनेवाले हैं। जो समुद्रमें स्नान करके वहाँ श्रीरामेश्वरका दर्शन करते और गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य नमस्कार, स्तोत्र गान और मनोहर वाद्योंद्वारा उनकी पूजा करते हैं, वे महात्मा पुरुष राजसूय तथा अश्वमेध यज्ञोंका फल पाते और परम सिद्धिको प्राप्त होते हैं।

भगवान् सूर्यकी महिमा

मुनियोंने कहा—सुरश्रेष्ठ ! आपने भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले भगवान् भास्करके उत्तम क्षेत्रका जो वर्णन किया है, वह सब हमलोगोंने सुना। अब यह बताइये कि उनकी भक्ति कैसे की जाती है और वे किस प्रकार प्रसन्न होते हैं? इस समय यही सब सुननेकी हमारी इच्छा है।

ब्रह्माजी बोले—मनके द्वारा इष्टदेवके प्रति भावना होती है, उसे ही भक्ति और श्रद्धा कहते हैं। जो इष्टदेवकी कथा सुनता, उनके भक्तोंकी पूजा तथा अग्निकी उपासनामें संलग्न रहता है वह सनातन भक्त है। जो इष्टदेवका चिन्तन करता उन्हींमें मन लगाता, उन्हींकी पूजामें रत रहता तथा उन्हींके लिये काम करता है, वह निश्चय ही सनातन भक्त है। जो इष्टदेवके लिये किये जानेवाले कर्मोंका अनुमोदन करता, उनके भक्तोंमें दोष नहीं देखता, अन्य देवताओंकी निन्दा नहीं करता, सूर्यके व्रत रखता तथा चलते, फिरते, ठहरते, सोते, सूँघते और आँख खोलते-मीचते समय भगवान् भास्करका स्मरण करता है, वह मनुष्य भक्त माना गया है। विज्ञ पुरुषको सदा ऐसी ही भक्ति करनी चाहिये। भक्ति, समाधि, स्तुति और मनसे जो नियम लिया जाता है और ब्राह्मणको दान दिया जाता है, उसे देवता, मनुष्य और पितर—सभी ग्रहण करते हैं। पत्र, पुष्प, फल और जल—जो कुछ भी भक्तिपूर्वक अर्पण किया जाता है, उसे देवता ग्रहण करते हैं, परंतु वे नास्तिकोंकी दी हुई वस्तु नहीं लेते करते। नियम और आचारके साथ भावशुद्धिका उपयोग करना चाहिये। हृदयके भावको शुद्ध रखकर जो कुछ किया जाता है, वह सब सफल होता है। भगवान् सूर्यके स्तवन, जप, उपहार-समर्पण, पूजन, उपवास (व्रत) और भजनसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो पृथ्वीपर मस्तक रखकर भगवान् सूर्यको नमस्कार करता है, वह तत्काल सब पापोंसे छूट जाता है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक सूर्यदेवकी प्रदक्षिणा करता है, उसके द्वारा सातों द्वीपोंसहित पृथ्वीकी परिक्रमा हो जाती है। जो सूर्यदेवको अपने हृदयमें धारण करके केवल आकाशकी प्रदक्षिणा करता है, उसके द्वारा निश्चय ही सम्पूर्ण

देवताओंकी परिक्रमा हो जाती है ।* जो षष्ठी या सप्तमीको एक समय भोजन करके नियम और व्रतका पालन करते हुए सूर्यदेवका भक्तिपूर्वक पूजन करता है, उसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है । जो षष्ठी अथवा सप्तमीको दिन-रात उपवास करके भगवान् भास्करका पूजन करता है, वह परमगतिको प्राप्त होता है ।

जब शुक्लपक्षकी सप्तमीको रविवार हो, उस दिन विजयासप्तमी होती है । उसमें दिया हुआ दान महान् फल देनेवाला है । विजयासप्तमीको किया हुआ स्नान, दान, तप, होम और उपवास—सब कुछ बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला है । जो मनुष्य रविवारके दिन श्राद्ध करते और महातेजस्वी सूर्यका यजन करते हैं, उन्हें अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है । जिनके समस्त धार्मिक कार्य सदा भगवान् सूर्यके उद्देश्यसे होते हैं, उनके कुलमें कोई दरिद्र अथवा रोगी नहीं होता । जो सफेद, लाल अथवा पीली मिट्टीसे भगवान् सूर्यके मन्दिरको लीपता है, उसे मनोवाञ्छित फलकी प्राप्ति होती है । जो निराहार रहकर भाँति-भाँतिके सुगन्धित पुष्पोंद्वारा सूर्यदेवका पूजन करता है उसे अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है । जो तिलके तेलसे दीपक जलाकर भगवान् सूर्यकी पूजा करता है, वह कभी अंधा नहीं होता । दीप-दान करनेवाला मनुष्य सदा ज्ञानके प्रकाशसे प्रकाशित रहता है । जो सदा देव-मन्दिरों, चौराहों और सड़कोंपर दीप-दान करता है, वह रूपवान् तथा सौभाग्यशाली होता है । दीपकी शिखा सदा ऊपरकी ही ओर उठती है, उसकी गति कभी नीचेकी ओर नहीं होती । इसी प्रकार दीप-दान करनेवाला पुरुष भी दिव्य तेजसे प्रकाशित होता है । वह कभी तिर्यग्योनिमें नहीं पड़ता । जलते हुए दीपकको न कभी चुराये, न नष्ट करे । दीपहर्ता मनुष्य बन्धन, नाश, क्रोध एवं तमोमय नरकको प्राप्त होता है । उदयकालमें प्रतिदिन सूर्यको अर्घ्य देनेसे एक ही वर्षमें सिद्धि प्राप्त होती है । सूर्यके उदयसे लेकर अस्ततक उनकी ओर मुँह करके खड़ा हो किसी मन्त्र अथवा स्तोत्रका जप करना आदित्यव्रत कहलाता है । यह बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला है । सूर्योदयके समय श्रद्धापूर्वक अर्घ्य देकर सब कुछ साङ्गोपाङ्ग दान करे । इससे सब पापोंसे छुटकारा मिल जाता है† । अग्नि, जल, आकाश पवित्र भूमि, प्रतिमा तथा पिण्डी (प्रतिमाकी वेदी)में यत्नपूर्वक सूर्यदेवको अर्घ्य देना चाहिये ।‡ उत्तरायण अथवा दक्षिणायनमें सूर्यदेवका विशेषरूपसे पूजन करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है । इस प्रकार जो मानव प्रत्येक वेलामें अथवा कुवेलामें भी भक्तिपूर्वक श्रीसूर्यदेवका पूजन करता है, वह उन्हींके लोकमें प्रतिष्ठित होता है । जो तीर्थोंमें पवित्र हो भगवान् सूर्यको स्नान करानेके लिये एकाग्रतापूर्वक जल भरकर लाता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है ।

* भावशुद्धि प्रयाक्तव्या नियमाचारसंयुता । भावशुद्धया क्रियते यत्तत्सर्वं सफलं भवेत् ॥
स्तुतिजप्योपहारेण पूजयापि विवस्वतः । उपवासेन भक्त्या वै सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥
प्रणिधाय शिरो भूम्यां नमस्कारं करोति यः । तत्क्षणात् सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥
भक्तियुक्तो नरो योऽसौ रवेः कुर्यात् प्रदक्षिणाम् । प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुंधरा ॥
सूर्यं मनसि यः कृत्वा कुर्याद् व्योमप्रदक्षिणाम् । प्रदक्षिणीकृतास्तेन सर्वे देवा भवन्ति हि ॥
(२० । १७—२१)

† अर्घ्येण सहितं चैव सर्वं साङ्गं प्रदापयेत् । उदये श्रद्धया युक्तः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥
(२९ । ४८)

‡ अग्नौ तोयेऽन्तरिक्षे च शुचौ भूम्यां तथैव च । प्रतिमायां तथा पिण्ड्यां देयमर्घ्यं प्रयत्नतः ॥

छत्र, ध्वजा, चँदोवा, पताका और चँवर आदि वस्तुएँ सूर्यदेवको श्रद्धापूर्वक समर्पित करके मनुष्य अभीष्ट गतिको प्राप्त होता है। मनुष्य जो-जो पदार्थ भगवान् सूर्यको भक्तिपूर्वक अर्पित करता है, उसे वे लाखगुना करके उस पुरुषको देते हैं। भगवान् सूर्यकी कृपासे मानसिक, वाचिक तथा शारीरिक समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। सूर्यदेवके एक दिनके पूजनसे भी जो फल प्राप्त होता है, वह शास्त्रोक्त दक्षिणासे युक्त सैकड़ों यज्ञोंके अनुष्ठानसे भी नहीं मिलता।

मुनियोंने कहा—जगत्पते! भगवान् सूर्यका यह अद्भुत माहात्म्य हमने सुन लिया। अब पुनः हम जो कुछ पूछते हैं, उसे बताइये। गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और सन्यासी—जो भी मोक्ष प्राप्त करना चाहे, उसे किस देवताका पूजन करना चाहिये? कैसे उसे अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति होगी? किस उपायसे वह उत्तम मोक्षका भागी होगा? तथा वह किस साधनका अनुष्ठान करे, जिससे स्वर्गमें जानेपर उसे पुनः नीचे न गिरना पड़े?

ब्रह्माजी बोले—द्विजवरो! भगवान् सूर्य उदित होते ही अपनी किरणोंसे संसारका अन्धकार दूर कर देते हैं। अतः उनसे बढ़कर दूसरा कोई देवता नहीं है। वे आदि-अन्तसे रहित, सनातन पुरुष एवं अविनाशी हैं तथा अपनी किरणोंसे प्रचण्ड रूप धारणकर तीनों लोकोंको ताप देते हैं। सम्पूर्ण देवता इन्हींके स्वरूप हैं। ये तपनेवालोंमें श्रेष्ठ, सम्पूर्ण जगत्के स्वामी, साक्षी और पालक हैं। ये ही बारंबार जीवोंकी सृष्टि और संहार करते हैं तथा अपनी किरणोंसे प्रकाशित होते, तपते और वर्षा करते हैं। ये धाता, विधाता, सम्पूर्ण भूतोंके आदिकारण और सब जीवोंको उत्पन्न करनेवाले हैं। ये कभी क्षीण नहीं होते। इनका मण्डल सदा अक्षय बना रहता है। ये पितरोंके भी पिता और देवताओंके भी देवता हैं। इनका स्थान ध्रुव माना गया है, जहाँसे फिर नीचे नहीं गिरना पड़ता। सृष्टिके समय सम्पूर्ण जगत् सूर्यसे ही उत्पन्न होता है और प्रलयके समय अत्यन्त तेजस्वी भगवान् भास्करमें ही उसका लय होता है। असंख्य योगिजन अपने कलेवरका परित्याग करके वायुस्वरूप हो तेजोराशि भगवान् सूर्यमें ही प्रवेश करते हैं। राजा जनक आदि गृहस्थ योगी, वालखिल्य आदि ब्रह्मवादी महर्षि, व्यास आदि वानप्रस्थ ऋषि तथा कितने ही सन्यासी योगका आश्रय ले सूर्यमण्डलमें प्रवेश कर चुके हैं। व्यासपुत्र श्रीमान् शुकदेवजी भी योगधर्म प्राप्त करनेके अनन्तर सूर्यकी किरणोंमें पहुँचकर ही मोक्षपदमें स्थित हुए। इसलिये आप सब लोग सदा भगवान् सूर्यकी आराधना करें, क्योंकि वे सम्पूर्ण जगत्के माता पिता और गुरु हैं।

अव्यक्त परमात्मा समस्त प्रजापतियों और नाना प्रकारकी प्रजाओंकी सृष्टि करके स्वयं बारह रूपोंमें विभक्त हो आदित्यरूपसे प्रकट होते हैं। इन्द्र, धाता, पर्जन्य, त्वष्टा, पूषा, अर्यमा, भग, विवस्वान्, विष्णु, अंशुमान्, वरुण और मित्र—इन बारह मूर्तियोंद्वारा परमात्मा सूर्यने सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त कर रक्खा है। भगवान् आदित्यकी जो प्रथम मूर्ति है, उसका नाम इन्द्र है। वह देवराजके पदपर प्रतिष्ठित है। वह देवशत्रुओंका नाश करनेवाली मूर्ति है। भगवान्‌के दूसरे विग्रहका नाम धाता है, जो प्रजापतिके पदपर स्थित हो नाना प्रकारके प्रजावर्गकी सृष्टि करते हैं। सूर्यदेवकी तीसरी मूर्ति पर्जन्यके नामसे विख्यात है जो बादलोंमें स्थित हो अपनी किरणोंद्वारा वर्षा करती है। उनके चतुर्थ विग्रहको त्वष्टा कहते हैं। त्वष्टा सम्पूर्ण वनस्पतियों और ओषधियोंमें स्थित रहते हैं। उनकी पाँचवीं मूर्ति पूषाके नामसे प्रसिद्ध है, जो अन्नमें स्थित हो सर्वदा प्रजाजनोंकी पुष्टि करता है।

सूर्यकी जो छठी मूर्ति है, उसका नाम अर्यमा बताया गया है। वह वायुके सहारे सम्पूर्ण देवताओंमें स्थित रहती है। भानुका सातवाँ विग्रह भगके नामसे विख्यात है। वह ऐश्वर्य तथा देहधारियोंके शरीरोंमें स्थित होता है। सूर्यदेवकी आठवीं मूर्ति विवस्वान् कहलाती है, वह अग्निमें स्थित हो जीवोंके खाये हुए अन्नको पचाती है। उनकी नवीं मूर्ति विष्णुके नामसे विख्यात है, जो सदा देवशत्रुओंका नाश करनेके लिये अवतार लेती है। सूर्यकी दसवीं मूर्तिका नाम अंशुमान् है, जो वायुमें प्रतिष्ठित होकर समस्त प्रजाको आनन्द प्रदान करती है। सूर्यका ग्यारहवाँ स्वरूप वरुणके नामसे प्रसिद्ध है, जो सदा जलमें स्थित होकर प्रजाका पोषण करता है। भानुके बारहवें विग्रहका नाम मित्र है, जिसने सम्पूर्ण लोकोंका हित करनेके लिये चन्द्र नदीके तटपर स्थित होकर तपस्या की। परमात्मा सूर्यदेवने इन बारह मूर्तियोंके द्वारा सम्पूर्ण जगत्‌को व्याप्त कर रक्खा है। इसलिये भक्त पुरुषोंको उचित है कि वे भगवान् सूर्यमें मन लगाकर पूर्वोक्त बारह मूर्तियोंमें उनका ध्यान और नमस्कार करें। इस प्रकार मनुष्य बारह आदित्योंको नमस्कार करके उनके नामोंका प्रतिदिन पाठ और श्रवण करनेसे सूर्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

मुनियोंने पूछा—यदि ये सूर्य सनातन आदिदेव हैं, तो इन्होंने वर पानेकी इच्छासे प्राकृत मनुष्योंकी भाँति तपस्या क्यों की?

ब्रह्माजी बोले—यह सूर्यका परम गोपनीय रहस्य है। पूर्वकालमें मित्र देवताने महात्मा नारदको जो बात बतलायी थी, वही मैं तुम लोगोंसे कहता हूँ। एक समयकी बात है, अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले महायोगी नारदजी मेरुगिरिके शिखरसे गन्धमादन नामक पर्वतपर उतरे और सम्पूर्ण लोकोंमें विचरते हुए उस स्थानपर आये, जहाँ मित्र देवता तपस्या करते थे। उन्हें तपस्यामें संलग्न देखकर नारदजीके मनमें कौतूहल हुआ। वे सोचने लगे, 'जो अक्षय, अविकारी, व्यक्ताव्यक्तस्वरूप और सनातन पुरुष हैं, जिन महात्माने तीनों लोकोंको धारण कर रक्खा है, जो सब देवताओंके पिता एवं परसे भी परे हैं, वे किन देवताओं अथवा पितरोंका यजन करते हैं और करेंगे?' इस प्रकार मन-ही-मन विचार करके नारदजी मित्र देवतासे बोले—'भगवन्! अङ्गोपाङ्गोंसहित सम्पूर्ण वेदों एवं पुराणोंमें आपकी महिमाका गान किया जाता है। आप अजन्मा, सनातन, धाता तथा उत्तम अधिष्ठान हैं। भूत, भविष्य और वर्तमान—सब कुछ आपमें ही प्रतिष्ठित हैं। गृहस्थ आदि चारों आश्रम प्रतिदिन आपका ही यजन करते हैं। आप ही सबके पिता, माता और सनातन देवता हैं। फिर आप किस देवता अथवा पितरकी आराधना करते हैं, यह हमारी समझमें नहीं आता।'

मित्रने कहा—ब्रह्मन्! यह परम गोपनीय सनातन रहस्य कहने योग्य तो नहीं है, परंतु आप भक्त हैं, इसलिये आपके सामने मैं उसका यथावत् वर्णन करता हूँ। यह जो सूक्ष्म, अविज्ञेय, अव्यक्त, अचल, ध्रुव, इन्द्रियरहित, इन्द्रियोंके विषयोंसे परे तथा सम्पूर्ण भूतोंसे पृथक् है, वही समस्त जीवोंकी अन्तरात्मा है, उसीको क्षेत्रज्ञ भी कहते हैं। वह तीनों गुणोंसे भिन्न पुरुष कहा गया है। उसीका नाम भगवान् हिरण्यगर्भ है। वह सम्पूर्ण विश्वका आत्मा, शर्व (संहारकारी) और अक्षर (अविनाशी) माना गया है। उसने इस एकात्मक त्रिलोकीको अपने आत्माके द्वारा धारण कर रक्खा है। वह स्वयं शरीरसे रहित है, किंतु समस्त शरीरोंमें निवास करता है। शरीरमें रहते हुए भी वह उसके कर्मोंसे लिप्त नहीं होता है। वह मेरा, तुम्हारा तथा अन्य जितने भी देहधारी हैं, उनकी भी आत्मा है। सबका साक्षी है, कोई भी उसका ग्रहण नहीं कर सकता। वह सगुण, निर्गुण, विश्वरूप तथा ज्ञानगम्य

माना गया है। उसके सब ओर हाथ-पैर हैं, सब ओर नेत्र, सिर और मुख हैं तथा सब ओर कान हैं। वह संसारमें सबको व्याप्त करके स्थित है।* सम्पूर्ण मस्तक उसके मस्तक, सम्पूर्ण भुजाएँ उसकी भुजा, सम्पूर्ण पैर उसके पैर, सम्पूर्ण नेत्र उसके नेत्र एवं सम्पूर्ण नासिकाएँ उसकी नासिका हैं। वह स्वेच्छाचारी है और अकेला ही सम्पूर्ण क्षेत्रमें सुखपूर्वक विचरता है। यहाँ जितने शरीर हैं, वे सभी क्षेत्र कहलाते हैं। उन सबको वह योगात्मा जानता है, इसलिये क्षेत्रज्ञ कहलाता है। अव्यक्त पुरमें शयन करता है अतः उसे पुरुष कहते हैं। विश्वका अर्थ है बहुविध, वह परमात्मा सर्वत्र बतलाया जाता है, इसीलिये बहुविधरूप होनेके कारण वह विश्वरूप माना गया है। एकमात्र वही महान् है और एकमात्र वही पुरुष कहलाता है। अतः वह एकमात्र सनातन परमात्मा ही महापुरुष नाम धारण करता है। वह परमात्मा स्वयं ही अपने आपको सौ हजार, लाख और करोड़ों रूपोंमें प्रकट कर लेता है। जैसे आकाशसे गिरा हुआ जल भूमिके रसविशेषसे दूसरे स्वादका हो जाता है, उसी प्रकार गुणमय रसके सम्पर्कसे वह परमात्मा अनेकरूप प्रतीत होने लगता है। जैसे एक ही वायु समस्त शरीरोंमें पाँच रूपोंमें स्थित है, उसी प्रकार आत्माकी भी एकता और अनेकता मानी गयी है। जैसे अग्नि दूसरे स्थानकी विशेषतासे अन्य नाम धारण करती है, उसी प्रकार वह परमात्मा ब्रह्मा आदिके रूपोंमें भिन्न-भिन्न नाम धारण करता है। जैसे एक दीप हजारों दीपोंको प्रकट करता है, वैसे ही वह एक ही परमात्मा हजारों रूपोंको उत्पन्न करता है। संसारमें जो चराचर भूत हैं वे नित्य नहीं हैं, परंतु वह परमात्मा अक्षय, अप्रमेय तथा सर्वव्यापी कहा जाता है। वह ब्रह्म सदसत्स्वरूप है। लोकमें देवकार्य तथा पितृकार्यके अवसरपर उसीकी पूजा होती है। उससे बढ़कर दूसरा कोई देवता या पितर नहीं है। उसका ज्ञान अपने आत्माके द्वारा होता है। अतः मैं उसी सर्वात्माका पूजन करता हूँ। देवर्षे! स्वर्गमें भी जो जीव उस परमेश्वरको नमस्कार करते हैं, वे उसीके द्वारा दी हुई अभीष्ट गतिको प्राप्त होते हैं। देवता और अपने-अपने आश्रमोंमें स्थित मनुष्य भक्तिपूर्वक सबके आदिभूत उस परमात्माका पूजन करते हैं और वे उन्हें सद्गति प्रदान करते हैं। वे सर्वात्मा, सर्वगत और निर्गुण कहलाते हैं। मैं भगवान् सूर्यको ऐसा मानकर अपने ज्ञानके अनुसार उनका पूजन करता हूँ। नारदजी! यह गोपनीय उपदेश मैंने अपनी भक्तिके कारण आपको बतलाया है। आपने भी इस उत्तम रहस्यको भलीभाँति समझ लिया। देवता, मुनि और पुराण—सभी उस परमात्माको वरदायक मानते हैं और इसी भावसे सब लोग भगवान् दिवाकरका पूजन करते हैं।

ब्रह्माजी कहते हैं—इस प्रकार मित्रदेवताने पूर्वकालमें नारदजीको यह उपदेश दिया था। भानुके उपदेशको मैंने भी आपलोगोंसे कह सुनाया। जो सूर्यका भक्त न हो, उसे इसका उपदेश नहीं देना चाहिये। जो मनुष्य प्रतिदिन इस प्रसङ्गको सुनाता और सुनता है, वह निःसन्देह भगवान् सूर्यमें प्रवेश करता है। आरम्भसे ही इस कथाको सुनकर रोगी मनुष्य रोगसे मुक्त हो जाता है और जिज्ञासुको उत्तम ज्ञान एवं अभीष्ट गतिकी प्राप्ति होती है। मुनियो!

* वसन्नपि शरीरेषु न स लिप्येत कर्मभिः। ममान्तरात्मा तव च ये चान्ये देहसंस्थिताः॥
सर्वेषां साक्षिभूतोऽसौ न ग्राह्यः केनचित् क्वचित्। सगुणो निर्गुणो विश्वो ज्ञानगम्यो ह्यसौ स्मृतः॥
सर्वतः पाणिपादान्तः सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः। सर्वतः श्रुतिमाँल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥
(२०। ६२-६४)

जो इसका पाठ करता है, वह जिस जिस वस्तुकी कामना करता है, उसे निश्चय ही प्राप्त कर लेता है।

सूर्यकी महिमा तथा अदितिके गर्भसे उनके अवतारका वर्णन

ब्रह्माजी कहते हैं—भगवान् सूर्य सबके आत्मा, सम्पूर्ण लोकोंके ईश्वर, देवताओंके भी देवता और प्रजापति हैं। वे ही तीनों लोकोंकी जड़ हैं, परम देवता हैं। अग्निमें विधिपूर्वक डाली हुई आहुति सूर्यके पास ही पहुँचती है। सूर्यसे वृष्टि होती है, वृष्टिसे अन्न पैदा होता है और अन्नसे प्रजा जीवन-निर्वाह करती है। क्षण, मुहूर्त, दिन, रात, पक्ष, मास, संवत्सर, ऋतु और युग—इनकी काल-संख्या सूर्यके बिना नहीं हो सकती। कालका ज्ञान हुए बिना न कोई नियम चल सकता है और न अग्निहोत्र आदि ही हो सकते हैं। सूर्यके बिना ऋतुओंका विभाग भी नहीं होगा और उसके बिना वृक्षोंमें फल और फूल कैसे लग सकते हैं, खेती कैसे पक सकती है और नाना प्रकारके अन्न कैसे उत्पन्न हो सकते हैं। उस दशामें स्वर्गलोक तथा भूलोकमें जीवोंके व्यवहारका भी लोप हो जायगा। आदित्य, सविता, सूर्य, मिहिर, अर्क, प्रभाकर, मार्तण्ड, भास्कर, भानु, चित्रभानु, दिवाकर तथा रवि—इन बारह सामान्य नामोंके द्वारा भगवान् सूर्यका ही बोध होता है। विष्णु, धाता, भग, पूषा, मित्र इन्द्र वरुण, अर्यमा, विवस्वान्, अंशुमान्, त्वष्टा तथा पर्जन्य—ये बारह सूर्य पृथक्-पृथक् माने गये हैं। चैत्र मासमें विष्णु, वैशाखमें अर्यमा, ज्येष्ठमें विवस्वान्, आषाढ़में अंशुमान्, श्रावणमें पर्जन्य, भादोंमें वरुण, आश्विनमें इन्द्र, कार्तिकमें धाता, अगहनमें मित्र, पौषमें पूषा, माघमें भग और फाल्गुनमें त्वष्टा नामक सूर्य तपते हैं। इस प्रकार यहाँ एक ही सूर्यके चौबीस नाम बताये गये हैं। इनके अतिरिक्त और भी हजारों नाम विस्तारपूर्वक कहे गये हैं।

मुनियोंने पूछा—प्रजापते! जो एक हजार नामोंके द्वारा भगवान् सूर्यकी स्तुति करते हैं, उन्हें क्या पुण्य होता है तथा उनकी कैसी गति होती है?

ब्रह्माजी बोले—मुनिवरो! मैं भगवान् सूर्यका कल्याणमय सनातन स्तोत्र कहता हूँ, जो सब स्तुतियोंका सारभूत है। इसका पाठ करनेवालोंको सहस्र नामोंकी आवश्यकता नहीं रह जाती। भगवान् भास्करके जो पवित्र, शुभ एवं गोपनीय नाम हैं, उन्हींका वर्णन करता हूँ, सुनो। विकर्तन, विवस्वान्, मार्तण्ड, भास्कर, रवि, लोकप्रकाशक, श्रीमान्, लोकचक्षु, महेश्वर, लोकसाक्षी, त्रिलोकेश, कर्ता, हर्ता, तमिस्रहा, तपन, तापन, शुचि, सप्ताश्ववाहन, गभस्तिहस्त, ब्रह्मा और सर्वदेवनमस्कृत—इस प्रकार इक्कीस नामोंका यह स्तोत्र भगवान् सूर्यको सदा प्रिय है।* यह शरीरको नीरोग बनानेवाला, धनकी वृद्धि करनेवाला और यश फैलानेवाला स्तोत्रराज है। इसकी तीनों लोकोंमें प्रसिद्धि है। द्विजवरो! जो सूर्यके उदय और अस्तकालमें दोनों संध्याओंके समय इस स्तोत्रके द्वारा भगवान् सूर्यकी स्तुति करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। भगवान् सूर्यके समीप एक बार भी इसका जप करनेसे मानसिक, वाचिक, शारीरिक तथा कर्मजनित सब पाप नष्ट हो जाते हैं। अतः ब्राह्मणो! आपलोग यत्नपूर्वक सम्पूर्ण अभिलषित फलोंके देनेवाले भगवान् सूर्यका इस स्तोत्रके द्वारा स्तवन करें।

मुनियोंने पूछा—भगवन्! आपने भगवान् सूर्यको निर्गुण एवं सनातन देवता बतलाया है, फिर आपके ही

---

* विकर्तनो विवस्वांश्च मार्तण्डो भास्करो रविः। लोकप्रकाशकः श्रीमाँल्लोकचक्षुर्महेश्वरः॥
लोकसाक्षी त्रिलोकेशः कर्ता हर्ता तमिस्रहा। तपनस्तापनश्चैव शुचिः सप्ताश्ववाहनः॥
गभस्तिहस्तो ब्रह्मा च सर्वदेवनमस्कृतः। एकविंशतिरित्येष स्तव इष्टः सदा रवेः॥
(३१। ३१—३३)

मुँहसे हमने यह भी सुना है कि वे सारे स्वरूपोंमें प्रकट हुए। वे तेजकी राशि और महान् तेजस्वी होकर किसी स्त्रीके गर्भसे कैसे प्रकट हुए, इस विषयमें हमें बड़ा संदेह है।

ब्रह्माजी बोले—प्रजापति दक्षके साठ कन्याएँ हुईं, जो श्रेष्ठ और सुन्दरी थीं। उनके नाम अदिति, दिति, दनु और विनता आदि थे। उनमेंसे तेरह कन्याओंका विवाह दक्षने कश्यपजीसे किया था। अदितिने तीनों लोकोंके स्वामी देवताओंको जन्म दिया। दितिसे दैत्य और दनुसे बलाभिमानी भयङ्कर दानव उत्पन्न हुए। विनता आदि अन्य स्त्रियोंने भी स्थावर-जङ्गम भूतोंको जन्म दिया। इन दक्ष-सुताओंके पुत्र, पौत्र और दौहित्र आदिके द्वारा यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त हो गया। कश्यपके पुत्रोंमें देवता प्रधान हैं। वे सात्त्विक हैं। इनके अतिरिक्त दैत्य आदि राजस और तामस हैं। देवताओंको यज्ञका भागी बनाया गया है। परंतु दैत्य और दानव उनसे शत्रुता रखते थे। अतः वे मिलकर उन्हें कष्ट पहुँचाने लगे। माता अदितिने देखा, दैत्यों और दानवोंने मेरे पुत्रों को अपने स्थानसे हटा दिया और सारी त्रिलोकी नष्टप्राय कर दी। तब उन्होंने भगवान् सूर्यकी आराधनाके लिये महान् प्रयत्न किया। वे नियमित आहार करके कठोर नियमका पालन करती हुई एकाग्रचित्त हो आकाशमें स्थित तेजोराशि भगवान् भास्करका स्तवन करने लगीं।

अदिति बोलीं—भगवन्! आप अत्यन्त सूक्ष्म, परम पवित्र और अनुपम तेज धारण करते हैं। तेजस्वियोंके ईश्वर, तेजके आधार तथा सनातन देवता हैं। आपको नमस्कार है। गोपते! जगत्का उपकार करनेके लिये मैं आपकी स्तुति—आपसे प्रार्थना करती हूँ। प्रचण्ड रूप धारण करते समय आपकी जैसी आकृति होती है, उसको मैं प्रणाम करती हूँ। क्रमशः आठ मासतक पृथ्वीके जलरूप रसको ग्रहण करनेके लिये आप जिस अत्यन्त तीव्र रूपको धारण करते हैं, उसे मैं प्रणाम करती हूँ। आपका वह स्वरूप अग्नि और सोमसे संयुक्त होता है। आप गुणात्माको नमस्कार है। विभावसो! आपका जो रूप ऋक्, यजु और सामकी एकतासे त्रयीसंज्ञक इस विश्वके रूपमें तपता है, उसको नमस्कार है। सनातन! उससे भी परे जो ॐ नामसे प्रतिपादित स्थूल एवं सूक्ष्मरूप निर्मल स्वरूप है, उसको मेरा प्रणाम है।*

ब्रह्माजी कहते हैं—इस प्रकार बहुत दिनोंतक आराधना करनेपर भगवान् सूर्यने दक्षकन्या अदितिको अपने तेजोमय स्वरूपका प्रत्यक्ष दर्शन कराया।

अदिति बोलीं—जगत्के आदिकारण भगवान् सूर्य! आप मुझपर प्रसन्न हों। गोपते! मैं आपको भलीभाँति देख नहीं पाती। दिवाकर! आप ऐसी कृपा करें, जिससे मुझे आपके रूपका भलीभाँति दर्शन हो सके। भक्तोंपर दया करनेवाले प्रभो! मेरे पुत्र आपके भक्त हैं। आप उनपर कृपा करें।

तब भगवान् भास्करने अपने सामने पड़ी हुई देवीको स्पष्ट दर्शन देकर कहा—'देवि! आपकी जो इच्छा हो उसके अनुसार मुझसे कोई एक वर माँग लें।'

---

* नमस्तुभ्यं परं सूक्ष्मं सुपुण्यं बिभ्रतेऽतुलम्। धाम धामवतामीश धामाधारं च शाश्वतम्॥
जगतामुपकाराय त्वामहं स्तौमि गोपते। आददानस्य यद्रूपं तीव्रं तस्मै नमाम्यहम्॥
ग्रहीतुमष्टमासेन कालेनाम्बुमयं रसम्। बिभ्रतस्तव यद्रूपमतितीव्रं नतास्मि तम्॥
समेतमग्नीषोमाभ्यां नमस्तस्मै गुणात्मने। यद्रूपमृग्यजुःसाम्नामैक्येन तपते तव॥
विश्वमेतत् त्रयीसंज्ञं नमस्तस्मै विभावसो।
यत्तु तस्मात् परं रूपमोमित्युक्त्वाभिसंहितम्। अस्थूलं स्थूलममलं नमस्तस्मै सनातन॥
(३२। १२—१६)

अदिति बोलीं—देव ! आप प्रसन्न हों। अधिक बलवान् दैत्यों और दानवोंने मेरे पुत्रोंके हाथसे त्रिलोकीका राज्य और यज्ञभाग छीन लिया है। गोपते ! उन्हींके लिये आप मेरे ऊपर कृपा करें। अपने अंशसे मेरे पुत्रोंके भाई होकर आप उनके शत्रुओंका नाश करें।

भगवान् सूर्यने कहा—देवि ! मैं अपने हजारवें अंशसे तुम्हारे गर्भका बालक होकर प्रकट होऊँगा और तुम्हारे पुत्रोंके शत्रुओंका नाश करूँगा।

यों कहकर भगवान् भास्कर अन्तर्हित हो गये और देवी अदिति भी अपना समस्त मनोरथ सिद्ध हो जानेके कारण तपस्यासे निवृत्त हो गयीं। तत्पश्चात् वर्षके अन्तमें देवमाता अदितिकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये भगवान् सविताने उनके गर्भमें निवास किया। उस समय देवी अदिति यह सोचकर कि मैं पवित्रतापूर्वक ही इस दिव्य गर्भको धारण करूँगी, एकाग्रचित्त होकर कृच्छ्र, चान्द्रायण आदि व्रतोंका पालन करने लगीं। उनका यह कठोर नियम देखकर कश्यपजीने कुछ कुपित होकर कहा—'तू नित्य उपवास करके गर्भके बच्चेको क्यों मारे डालती है?' तब वे भी रुष्ट होकर बोलीं—'देखिये, यह रहा गर्भका बच्चा। मैंने इसे मारा नहीं है, यह अपने शत्रुओंका मारनेवाला होगा।' यों कहकर देवमाताने उसी समय उस गर्भका प्रसव किया। वह उदयकालीन सूर्यके समान तेजस्वी अण्डाकार गर्भ सहसा प्रकाशित हो उठा। उसे देखकर कश्यपजीने वैदिक वाणीके द्वारा आदरपूर्वक उसका स्तवन किया। स्तुति करनेपर उस गर्भसे बालक प्रकट हो गया। उसके श्रीअङ्गोंकी आभा पद्मपत्रके समान श्याम थी। उसका तेज सम्पूर्ण दिशाओंमें व्याप्त हो गया। इसी समय अन्तरिक्षसे कश्यप मुनिको सम्बोधित करके मेघके समान गम्भीर स्वरमें आकाशवाणी हुई—'मुने ! तुमने अदितिसे कहा था—"त्वया मारितमण्डम्" (तूने गर्भके बच्चेको मार डाला), इसलिये तुम्हारा यह पुत्र मार्तण्डके नामसे विख्यात होगा और यज्ञभागका अपहरण करनेवाले, अपने शत्रुभूत असुरोंका संहार करेगा।' यह आकाशवाणी सुनकर देवताओंको बड़ा हर्ष हुआ और दानव हतोत्साह हो गये। तत्पश्चात् देवताओंसहित इन्द्रने दैत्योंको युद्धके लिये ललकारा। दानवोंने भी आकर उनका सामना किया। उस समय देवताओं और असुरोंमें बड़ा भयानक युद्ध हुआ। उस युद्धमें भगवान् मार्तण्डने दैत्योंकी ओर देखा, अतः वे सभी महान् असुर उनके तेजसे जलकर भस्म हो गये। फिर तो देवताओंके हर्षकी सीमा नहीं रही। उन्होंने अदिति और मार्तण्डका स्तवन किया। तदनन्तर देवताओंको पूर्ववत् अपने-अपने अधिकार और यज्ञभाग प्राप्त हो गये। भगवान् मार्तण्ड भी अपने अधिकारका पालन करने लगे। ऊपर और नीचे सब ओर किरणें फैली होनेसे भगवान् सूर्य कदम्बपुष्पकी भाँति शोभा पाते थे। वे आगमें तपाये हुए गोलेके सदृश दिखायी देते थे। उनका विग्रह अधिक स्पष्ट नहीं जान पड़ता था।

श्रीसूर्यदेवकी स्तुति तथा उनके अष्टोत्तरशत नामोंका वर्णन

मुनियोंने कहा—भगवन् ! आप पुनः हमें सूर्यदेवसे सम्बन्ध रखनेवाली कथा सुनाइये।

ब्रह्माजी बोले—स्थावर-जङ्गम समस्त प्राणियोंके नष्ट हो जानेपर जिस समय सम्पूर्ण लोक अन्धकारमें विलीन हो गये थे, उस समय सबसे पहले प्रकृतिसे गुणोंकी हेतुभूत समष्टि बुद्धि (महत्तत्त्व) का आविर्भाव हुआ। उस बुद्धिसे पञ्चमहाभूतोंका प्रवर्तक अहंकार प्रकट हुआ। आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी—ये पाँच महाभूत हुए। तदनन्तर एक अण्ड उत्पन्न हुआ। उसमें ये सातों लोक प्रतिष्ठित थे। सातों द्वीपों और समुद्रोंसहित पृथ्वी भी थी। उसमें मैं, विष्णु और महादेवजी भी थे। यहाँ सब लोग तमोगुणसे अभिभूत एवं विमूढ़ थे और परमेश्वरका ध्यान करते थे। तदनन्तर अन्धकारको

दूर करनेवाले एक महातेजस्वी देवता प्रकट हुए । उस समय हमलोगोंने ध्यानके द्वारा जाना कि ये भगवान् सूर्य हैं । उन परमात्माको जानकर हमने दिव्य स्तुतियोंके द्वारा उनका स्तवन आरम्भ किया—'भगवन् ! तुम आदिदेव हो । ऐश्वर्यसे सम्पन्न होनेके कारण तुम देवताओंके ईश्वर हो । सम्पूर्ण भूतोंके आदिकर्ता भी तुम्हीं हो । तुम्हीं देवाधिदेव दिवाकर हो । सम्पूर्ण भूतों, देवताओं, गन्धर्वों, राक्षसों, मुनियों, किन्नरों, सिद्धों, नागों तथा पक्षियोंका जीवन तुमसे ही है । तुम्हीं ब्रह्मा, तुम्हीं महादेव, तुम्हीं विष्णु, तुम्हीं प्रजापति तथा तुम्हीं वायु, इन्द्र, सोम, विवस्वान् एवं वरुण हो । तुम्हीं काल हो, सृष्टिके कर्ता, धर्ता, संहर्ता और प्रभु भी तुम्हीं हो । नदी, समुद्र, पर्वत, बिजली, इन्द्रधनुष, प्रलय, सृष्टि, व्यक्त, अव्यक्त एवं सनातन पुरुष तुम्हीं हो । साक्षात् परमेश्वर तुम्हीं हो । तुम्हारे हाथ और पैर सब ओर हैं । नेत्र, मस्तक और मुख भी सब ओर हैं । तुम्हारे सहस्रों किरणें, सहस्रों मुख, सहस्रों चरण और सहस्रों नेत्र हैं । तुम सम्पूर्ण भूतोंके आदिकारण हो । भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः और सत्यम्—ये सब तुम्हारे ही स्वरूप हैं । तुम्हारा जो स्वरूप अत्यन्त तेजस्वी, सबका प्रकाशक, दिव्य, सम्पूर्ण लोकोंमें प्रकाश बिखेरनेवाला और देवेश्वरोंके द्वारा भी कठिनतासे देखे जाने योग्य है, उसको हमारा नमस्कार है । देवता और सिद्ध जिसका सेवन करते हैं, भृगु, अत्रि और पुलह आदि महर्षि जिसकी स्तुतिमें संलग्न रहते हैं तथा जो अत्यन्त अव्यक्त है, उस तुम्हारे स्वरूपको हमारा प्रणाम है । सम्पूर्ण देवताओंमें उत्कृष्ट तुम्हारा जो रूप वेदवेत्ता पुरुषोंके द्वारा जानने योग्य, नित्य और सर्वज्ञानसम्पन्न है, उसको हमारा नमस्कार है । तुम्हारा जो स्वरूप इस विश्वकी सृष्टि करनेवाला, विश्वमय, अग्नि एवं देवताओंद्वारा पूजित, सम्पूर्ण विश्वमें व्यापक और अचिन्त्य है, उसे हमारा प्रणाम है । तुम्हारा जो रूप यज्ञ, वेद, लोक तथा द्युलोकसे भी परे परमात्मा नामसे विख्यात है, उसको हमारा नमस्कार है । जो अविज्ञेय, अलक्ष्य, अचिन्त्य, अव्यय, अनादि और अनन्त है, आपके उस स्वरूपको हमारा प्रणाम है । प्रभो ! तुम कारणके भी कारण हो, तुमको बारंबार नमस्कार है । पापोंसे मुक्त करनेवाले तुम्हें प्रणाम है, प्रणाम है । तुम दैत्योंको पीड़ा देनेवाले और रोगोंसे छुटकारा दिलानेवाले हो । तुम्हें अनेकानेक नमस्कार है । तुम सबको वर, सुख, धन और उत्तम बुद्धि प्रदान करनेवाले हो । तुम्हें बारंबार नमस्कार है* ।

* आदिदेवोऽसि देवानामैश्वर्याच्च त्वमीश्वर । आदिकर्तासि भूतानां देवदेवो दिवाकर ॥
जीवन सर्वभूतानां देवगन्धर्वरक्षसाम् । मुनिकिंनरसिद्धानां तथैवोरगपक्षिणाम् ॥
त्व ब्रह्मा त्वं महादेवस्त्व विष्णुस्त्व प्रजापति । वायुरिन्द्रश्च सोमश्च विवस्वान् वरुणस्तथा ॥
त्व काल सृष्टिकर्ता च हर्ता भर्ता तथा प्रभु । सरित सागरा शैला विद्युदिन्द्रधनूंषि च ॥
प्रलय प्रभवश्चैव व्यक्ताव्यक्त सनातन । ईश्वरात्परतो विद्या विद्याया परत शिव ॥
शिवात्परतरो देवस्त्वमेव परमेश्वर । सर्वत पाणिपादान्त सर्वतोऽक्षिशिरोमुख ॥
सहस्रांशु सहस्रास्य सहस्रचरणेक्षण । भूतादिर्भूर्भुव स्वश्च मह सत्य तपो जनः ॥
प्रदीप्त दीपन दिव्य सर्वलोकप्रकाशकम् । दुर्निरीक्ष्य सुरेन्द्राणा यद्रूप तस्य ते नम ॥
सुरसिद्धगणैर्जुष्ट भृग्वत्रिपुलहादिभि । स्तुत परममव्यक्त यद्रूप तस्य ते नमः ॥
वेद्य वेदविदा नित्यं सर्वज्ञानसमन्वितम् । सर्वदेवादिदेवस्य यद्रूप तस्य ते नम ॥
विश्वकृद्विश्वभूत च वैश्वानरसुरार्चितम् । विश्वस्थितमचिन्त्य च यद्रूप तस्य ते नम ॥
परं यज्ञात्परं वेदात्परं लोकात्पर दिव । परमात्मेत्यभिख्यात यद्रूप तस्य ते नम ॥
अविज्ञेयमनालक्ष्यमध्यानगतमव्ययम् । अनादिनिधनं चैव यद्रूपं तस्य ते नमः ॥
नमो नम कारणकारणाय नमो नम पापविमोचनाय । नमो नमस्ते दितिजार्दनाय नमो नमो रोगविमोचनाय ॥
नमो नम सर्ववरप्रदाय नमो नम सर्वसुखप्रदाय । नमो नम सर्वधनप्रदाय नमो नम सर्वमतिप्रदाय ॥

इस प्रकार स्तुति करनेपर तेजोमय रूप धारण करनेवाले भगवान् भास्करने कल्याणमयी वाणीमें कहा—'आपलोगोंको कौन-सा वर प्रदान किया जाय ?'

देवताओंने कहा—प्रभो ! आपका रूप अत्यन्त तेजोमय है, इसके तापको कोई सह नहीं सकता। अतः जगत्के हितके लिये यह सबके सहने योग्य हो जाय।

तब 'एवमस्तु' कहकर आदिकर्ता भगवान् सूर्य सम्पूर्ण लोकोंके कार्य सिद्ध करनेके लिये समय समयपर गर्मी, सर्दी और वर्षा करने लगे। तदनन्तर ज्ञानी, योगी, ध्यानी तथा अन्यान्य मोक्षाभिलाषी पुरुष अपने हृदय-मन्दिरमें स्थित भगवान् सूर्यका ध्यान करने लगे। समस्त शुभ लक्षणोंसे हीन अथवा सम्पूर्ण पातकोंसे युक्त ही क्यों न हो, भगवान् सूर्यकी शरण लेनेसे मनुष्य सब पापोंसे तर जाता है। अग्निहोत्र, वेद तथा अधिक दक्षिणावाले यज्ञ, भगवान् सूर्यकी भक्ति एवं नमस्कारकी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं हो सकते। भगवान् सूर्य तीर्थोंमें सर्वोत्तम तीर्थ, मङ्गलोंमें परम मङ्गलमय और पवित्रोंमें परम पवित्र हैं। अतः विद्वान् पुरुष उनकी शरण लेते हैं। जो इन्द्र आदिके द्वारा प्रशंसित सूर्यदेवको नमस्कार करते हैं, वे सब पापोंसे मुक्त हो अन्तमें सूर्यलोकमें चले जाते हैं।

मुनियोंने कहा—ब्रह्मन् ! हमारे मनमें चिरकालसे यह इच्छा हो रही है कि भगवान् सूर्यके एक सौ आठ नामोंका वर्णन सुनें। आप उन्हें बतानेकी कृपा करें।

ब्रह्माजी बोले—ब्राह्मणो ! भगवान् भास्करके परम गोपनीय एक सौ आठ नाम, जो स्वर्ग और मोक्ष देनेवाले हैं, बतलाता हूँ, सुनो। ॐ सूर्य, अर्यमा, भग, त्वष्टा, पूषा (पोषक), अर्क, सविता, रवि, गभस्तिमान् (किरणोंवाले) अज (अजन्मा), काल, मृत्यु धाता (धारण करनेवाले), प्रभाकर (प्रकाशका खजाना), पृथ्वी, आप् (जल), तेज, ख (आकाश), वायु, परायण (शरण देनेवाले), सोम, बृहस्पति, शुक्र, बुध, अङ्गारक (मङ्गल), इन्द्र, विवस्वान् दीप्तांशु (प्रज्वलित किरणोंवाले), शुचि (पवित्र), सौरि (सूर्यपुत्र मनु), शनैश्चर ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, स्कन्द (कार्तिकेय), वैश्रवण (कुबेर), यम, वैद्युत (बिजलीमें रहनेवाले), अग्नि, जाठराग्नि, ऐन्धन (ईंधनमें रहनेवाले), अग्नि, तेजःपति, धर्मध्वज, वेदकर्ता, वेदाङ्ग, वेदवाहन कृत (सत्ययुग) त्रेता, द्वापर, कलि, सर्वामराश्रय कला, काष्ठा, मुहूर्त, क्षपा (रात्रि), याम (प्रहर), क्षण, संवत्सरकर अश्वत्थ, कालचक्र, विभावसु (अग्नि), पुरुष शाश्वत, योगी व्यक्ताव्यक्त, सनातन, कालाध्यक्ष, प्रजाध्यक्ष, विश्वकर्मा, तमोनुद (अन्धकारको भगानेवाले), वरुण, सागर, अंश, जीमूत (मेघ), जीवन, अरिहा (शत्रुओंका नाश करनेवाले), भूताश्रय, भूतपति, सर्वलोकनमस्कृत, स्रष्टा, संवर्तक (प्रलयकालीन), अग्नि, सर्वादि, अलोलुप (निर्लोभ), अनन्त, कपिल, भानु, कामद (कामनाओंको पूर्ण करनेवाले), सर्वतोमुख (सब ओर मुखवाले), जय, विशाल वरद, सर्वभूतनिषेवित, मन, सुपर्ण (गरुड़) भूतादि, शीघ्रग (शीघ्र चलनेवाले), प्राणधारण, धन्वन्तरि, धूमकेतु, आदिदेव, अदितिपुत्र, द्वादशात्मा (बारह स्वरूपोंवाले), रवि, दक्ष, पिता माता, पितामह, स्वर्गद्वार, प्रजाद्वार, मोक्षद्वार, त्रिविष्टप (स्वर्ग), देहकर्ता, प्रशान्तात्मा, विश्वात्मा, विश्वतोमुख, चराचरात्मा, सूक्ष्मात्मा, मैत्रेय तथा करुणान्वित (दयालु)*—ये

* ॐ सूर्योऽर्यमा भगस्त्वष्टा पूषार्कः सविता रविः। गभस्तिमानजः कालो मृत्युर्धाता प्रभाकरः ॥
पृथिव्यापश्च तेजश्च खं वायुश्च परायणम्। सोमो बृहस्पतिः शुक्रो बुधोऽङ्गारक एव च ॥
इन्द्रो विवस्वान् दीप्तांशुः शुचिः सौरिः शनैश्चरः। ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च स्कन्दो वैश्रवणो यमः ॥

अमित तेजस्वी एवं कीर्तन करने योग्य भगवान् सूर्यके एक सौ आठ सुन्दर नाम मैंने बताये हैं। जो मनुष्य देवश्रेष्ठ भगवान् सूर्यके इस स्तोत्रका शुद्ध एवं एकाग्र चित्तसे कीर्तन करता है, वह शोकरूपी समुद्रसे मुक्त हो जाता और मनोवाञ्छित भोगोंको प्राप्त कर लेता है।

भागवतीय सौर-सन्दर्भ

[इस भागवतीय सन्दर्भमें सूर्यके रथ और उसकी गति, भिन्न भिन्न ग्रहोंकी स्थिति और गतियाँ, शिशुमारचक्र तथा राहु आदिकी स्थिति एवं नीचेके लोकोंका पौराणिक पद्धतिमें रोचक और कौतूहलपूर्ण वर्णन है।]

सूर्यके रथ और उसकी गति

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन्! परिमाण और लक्षणोंके सहित इस भूमण्डलका कुल इतना ही विस्तार है, जो हमने तुम्हें सुना दिया। इसीके अनुसार विद्वान् लोग द्युलोकका भी परिमाण बताते हैं। जिस प्रकार चना, मटर आदिके दो दलोंमेंसे एकका स्वरूप जान लेनेसे दूसरेका भी जाना जा सकता है, उसी प्रकार भूलोकके परिमाणसे ही द्युलोकका भी परिमाण जान लेना चाहिये। इन दोनोंके बीचमें अन्तरिक्षलोक है। यह इन दोनोंका सन्धिस्थान है। इसके मध्यभागमें स्थित ग्रह और नक्षत्रोंके अधिपति भगवान् सूर्य अपने ताप और प्रकाशसे तीनों लोकोंको तपाते और प्रकाशित करते रहते हैं। वे उत्तरायण, दक्षिणायन और विषुवत् (मध्यम) मार्गोंसे क्रमशः मन्द, शीघ्र और समान गतियोंसे चलते हुए समयानुसार मकरादि राशियोंमें ऊँचे-नीचे और समान स्थानोंमें जाकर दिन-रातको बड़ा-छोटा या समान करते हैं। जब भगवान् सूर्य मेष या तुलाराशिपर आते हैं, तो दिन-रात समान हो जाते हैं, जब वृष आदि पाँच राशियोंमें चलते हैं तो प्रतिमास रात्रियोंमें एक-एक घड़ी कम होती जाती है और उसी हिसाबसे दिन बढ़ते जाते हैं। जब वृश्चिक आदि पाँच राशियोंमें चलते हैं तब दिन और रात्रियोंमें इसके विपरीत परिवर्तन होता है अर्थात् दिन प्रतिमास एक-एक घड़ी घटते जाते और रात्रियाँ बढ़ती जाती हैं। इस प्रकार दक्षिणायन आरम्भ होनेतक दिन बढ़ते रहते हैं और उत्तरायण लगनेतक रात्रियाँ। (उत्तरायणमें दिन बड़ा, रात छोटी होती है।)

इस प्रकार पण्डितजन मानसोत्तर पर्वतपर सूर्यकी परिक्रमाका मार्ग नौ करोड़ इक्यावन लाख योजन बताते हैं। उस पर्वतपर मेरुके पूर्वकी ओर इन्द्रकी देवधानी नामकी पुरी है, दक्षिणकी ओर यमराजकी संयमनीपुरी

वैद्युतो जाठरश्चाग्निरैन्धनस्तेजसां पतिः। धर्मध्वजो वेदकर्ता वेदाङ्गो वेदवाहनः॥
कृतं त्रेता द्वापरश्च कलिः सर्वामराश्रयः। कला काष्ठा मुहूर्ताश्च क्षपा यामास्तथा क्षणाः॥
संवत्सरकरोऽश्वत्थः कालचक्रो विभावसुः। पुरुषः शाश्वतो योगी व्यक्ताव्यक्तः सनातनः॥
कालाध्यक्षः प्रजाध्यक्षो विश्वकर्मा तमोनुदः। वरुणः सागरोंऽशश्च जीमूतो जीवनोऽरिहा॥
भूताश्रयो भूतपतिः सर्वलोकनमस्कृतः। स्रष्टा संवर्तको वह्निः सर्वस्यादिरलोलुपः॥
अनन्तः कपिलो भानुः कामदः सर्वतोमुखः। जयो विशालो वरदः सर्वभूतनिषेवितः॥
मनः सुपर्णो भूतादिः शीघ्रगः प्राणधारणः। धन्वन्तरिर्धूमकेतुरादिदेवो दितेः सुतः॥
द्वादशात्मा रविर्दक्षः पिता माता पितामहः। स्वर्गद्वारं प्रजाद्वारं मोक्षद्वारं त्रिविष्टपम्॥
देहकर्ता प्रशान्तात्मा विश्वात्मा विश्वतोमुखः। चराचरात्मा सूक्ष्मात्मा मैत्रेय करुणान्वितः॥
(—३।१४-४९)

तथा पश्चिममें वरुणकी निम्लोचनी नामकी पुरी और उत्तरमें चन्द्रमाकी विभावरीपुरी है। इन पुरियोंमें मेरुके चारों ओर समय-समयपर सूर्योदय, मध्याह्न, सायंकाल और अर्धरात्रि होते रहते हैं। इन्हींके कारण सम्पूर्ण जीवोंकी प्रवृत्ति या निवृत्ति होती है। राजन्! जो लोग सुमेरुपर रहते हैं, उन्हें तो सूर्यदेव सदा मध्याह्नकालीन रहकर ही तपाते रहते हैं। वे अपनी गतिके अनुसार अश्विनी आदि नक्षत्रोंकी ओर जाते हुए यद्यपि मेरुको बायीं ओर रखकर चलते हैं तथापि सारे ज्योतिर्मण्डलको घुमानेवाली निरन्तर दायीं ओर बहती हुई प्रवह वायुद्वारा घुमा दिये जानेसे वे उसे दायीं ओर रखकर चलते जान पड़ते हैं। जिस पुरीमें भगवान् सूर्यका उदय होता है, उसके ठीक दूसरी ओरकी पुरीमें वे अस्त मालूम होते होंगे और वे जहाँ लोगोंको पसीने-पसीने करके तपा रहे होंगे, उसके ठीक सामनेकी ओर आधीरात होनेके कारण वे उन्हें निद्रावश किये होंगे। जिन लोगोंको मध्याह्नके समय वे स्पष्ट दीख रहे होंगे, वे ही यदि किसी प्रकार पृथ्वीके दूसरी ओर पहुँच जायँ तो उनका दर्शन नहीं कर सकेंगे।

सूर्यदेव जब इन्द्रकी पुरीसे यमराजकी पुरीको चलते हैं, तो पन्द्रह घड़ीमें वे सवा दो करोड़ और साढ़े बारह लाख योजनसे कुछ—प्रायः पचीस हजार अधिक—चलते हैं। फिर इसी क्रमसे वे वरुण और चन्द्रमाकी पुरियोंको पार करके पुनः इन्द्रकी पुरीमें पहुँचते हैं। इसी प्रकार चन्द्रमा आदि अन्य ग्रह भी ज्योतिश्चक्रमें अन्य नक्षत्रोंके साथ-साथ उदित और अस्त होते रहते हैं। इस प्रकार भगवान् सूर्यका वेदमय रथ एक मुहूर्तमें चौंतीस लाख आठ सौ योजनके हिसाबसे चलता हुआ इन चारों पुरियोंमें घूमता रहता है। इसका संवत्सर नामका एक चक्र (पहिया) बतलाया जाता है। उसमें मासरूप बारह अरे हैं, ऋतुरूप छः नेमियाँ (हाल) हैं, चौमासेरूप तीन नाभियाँ (आँवन) हैं। इस रथकी धुरीका एक सिरा मेरु पर्वतकी चोटीपर है और दूसरा मानसोत्तर पर्वतपर। इसमें लगा हुआ यह पहिया कोल्हूके पहियेके समान घूमता हुआ मानसोत्तर पर्वतके ऊपर चक्कर लगाता है। इस धुरीमें—जिसका मूल भाग जुड़ा हुआ है, ऐसी एक धुरी और है, वह लंबाईमें इससे चौथाई है। उसका ऊपरी भाग तैलयन्त्रके धुरेके समान ध्रुवलोकसे लगा हुआ है।

इस रथमें बैठनेका स्थान छत्तीस लाख योजन लंबा और नौ लाख योजन चौड़ा है। इसका जुआ भी छत्तीस लाख योजन ही लम्बा है। उसमें अरुण नामक सारथिने गायत्री आदि छन्दोंके-से नामवाले सात घोड़े जोत रक्खे हैं। वे ही इस रथपर बैठे हुए भगवान् सूर्यको ले चलते हैं। सूर्यदेवके आगे उन्हींकी ओर मुँह करके बैठे हुए अरुण उनके सारथिका कार्य करते हैं। उस रथके आगे अँगूठेके पोरुएके बराबर आकारवाले वालखिल्यादि साठ हजार ऋषि स्वस्तिवाचनके लिये नियुक्त हैं। वे उनकी स्तुति करते रहते हैं। इनके सिवा ऋषि, गन्धर्व, अप्सरा, नाग, यक्ष, राक्षस और देवता भी—जो कुल मिलाकर चौदह हैं, किंतु जोड़ेसे रहनेके कारण सात गण कहे जाते हैं—प्रत्येक मासमें भिन्न-भिन्न नामोंवाले होकर अपने भिन्न-भिन्न कर्मोंसे प्रत्येक मासमें भिन्न-भिन्न नाम धारण करनेवाले आत्मस्वरूप भगवान् सूर्यकी दो-दो मिलकर उपासना करते हैं। इस प्रकार भगवान् सूर्य भूमण्डलके नौ करोड़ इक्यावन लाख योजन लंबे घेरेमेंसे प्रत्येक क्षणमें दो हजार दो योजनकी दूरी पार कर लेते हैं।

भिन्न-भिन्न ग्रहोंकी स्थिति और गति

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन्! आपने जो कहा कि यद्यपि 'भगवान् सूर्य राशियोंकी ओर जाते समय मेरु और ध्रुवको दायीं ओर रखकर चलते मालूम होते हैं, किंतु वस्तुतः उनकी गति दक्षिणावर्त नहीं होती'—इस विषयको हम किस प्रकार समझें?

श्रीशुकदेवजी कहते हैं— राजन् ! जैसे कुम्हारके घूमते हुए चाकपर दूसरी ओर चलनेवाली चींटीकी गति भी चाककी गतिके अनुसार विपरीत दिशामें जान पड़ती है, क्योंकि वह भिन्न-भिन्न समयमें उस चक्रके भिन्न-भिन्न स्थानोंमें देखी जाती है—उसी प्रकार नक्षत्र और राशियोंसे उपलक्षित कालचक्रमें पड़कर ध्रुव और मेरुको दायें रखकर घूमनेवाले सूर्य आदि ग्रहोंकी गति वास्तवमें उससे विपरीत ही है, क्योंकि वे कालभेदसे भिन्न-भिन्न राशि और नक्षत्रोंमें देखे पड़ते हैं। वेद और विद्वान् लोग भी जिनकी गतिको जाननेके लिये उत्सुक रहते हैं, वे साक्षात् आदिपुरुष भगवान् नारायण ही लोकोंके कल्याण और कर्मोंकी शुद्धिके लिये अपने वेदमय विग्रह कालको बारह मासोंमें विभक्तकर वसन्त आदि छः ऋतुओंमें उनके यथायोग्य गुणोंका विधान करते हैं। इस लोकमें वर्णाश्रमधर्मका अनुसरण करनेवाले पुरुष वेदत्रयीद्वारा प्रतिपादित छोटे-बड़े कर्मोंसे इन्द्रादि देवताओंके रूपमें और योगके साधनोंसे अन्तर्यामिरूपमें उनकी श्रद्धापूर्वक आराधना करके सुगमतासे ही परमपद प्राप्त कर सकते हैं।

भगवान् सूर्य सम्पूर्ण लोकोंकी आत्मा हैं। वे पृथ्वी और द्युलोकके मध्यमें स्थित आकाशमण्डलके भीतर कालचक्रमें स्थित होकर बारह मासोंको भोगते हैं, जो संवत्सरके अवयव हैं और मेष आदि राशियोंके नामसे प्रसिद्ध हैं। इनमेंसे प्रत्येक मास चान्द्रमानसे शुक्ल और कृष्ण—दो पक्षका, पितृमानसे एक रात और एक दिनका तथा सौरमानसे सवा दो नक्षत्रका बताया जाता है। जितने कालमें सूर्यदेव इस संवत्सरका छठा भाग भोगते हैं, उसका वह अवयव 'ऋतु' कहा जाता है। आकाशमें भगवान् सूर्यका जितना मार्ग है, उसका आधा वे जितने समयमें पार कर लेते हैं, उसे एक 'अयन' कहते हैं तथा जितने समयमें वे अपनी मन्द, तीव्र और समान गतिसे स्वर्ग और पृथ्वीमण्डलके सहित पूरे आकाशका चक्कर लगा जाते हैं, उसे अवान्तर भेदसे संवत्सर, परिवत्सर, इडावत्सर, अनुवत्सर अथवा वत्सर कहते हैं।

इसी प्रकार सूर्यकी किरणोंसे एक लाख योजन ऊपर चन्द्रमा हैं। उनकी चाल बहुत तेज है, इसलिये ये सब नक्षत्रोंसे आगे रहते हैं। ये सूर्यके एक वर्षके मार्गको एक मासमें, एक मासके मार्गको सवा दो दिनोंमें और एक पक्षके मार्गको एक ही दिनमें तै कर लेते हैं। ये कृष्णपक्षमें क्षीण होती हुई कलाओंसे पितृगणके और शुक्लपक्षमें बढ़ती हुई कलाओंसे देवताओंके दिन-रातका विभाग करते हैं तथा तीस-तीस मुहूर्तोंमें एक-एक नक्षत्रको पार करते हैं। अन्नमय और अमृतमय होनेके कारण ये ही समस्त जीवोंके प्राण और जीवन हैं। ये जो सोलह कलाओंसे युक्त मनोमय, अन्नमय, अमृतमय पुरुषस्वरूप भगवान् चन्द्रमा हैं—ये ही देवता, पितर, मनुष्य, भूत, पशु, पक्षी, सरीसृप और वृक्षादि समस्त प्राणियोंके प्राणोंका पोषण करते हैं, इसलिये इन्हें 'सर्वमय' कहते हैं।

चन्द्रमासे तीन लाख योजन ऊपर अभिजित्के सहित अट्ठाईस नक्षत्र हैं। भगवान्ने इन्हें कालचक्रमें नियुक्त कर रखा है। अतः ये मेरुको दायीं ओर रखकर घूमते रहते हैं। इनसे दो लाख योजन ऊपर शुक्र दिखायी देते हैं। ये सूर्यकी शीघ्र, मन्द और समान गतियोंके अनुसार उन्हींके समान कभी आगे, कभी पीछे और कभी साथ-साथ रहकर चलते हैं। ये वर्षा करनेवाले ग्रह हैं। इसलिये लोकोंके प्रायः सर्वदा ही अनुकूल रहते हैं। इनकी गतिसे ऐसा अनुमान होता है कि ये वर्षा रोकनेवाले ग्रहोंको शान्त कर देते हैं।

शुक्रकी व्याख्याके अनुसार ही बुधकी गति भी समझ लेनी चाहिये। ये चन्द्रमाके पुत्र शुक्रसे दो लाख योजन ऊपर हैं। ये प्रायः मङ्गलकारी ही हैं,

किंतु जब सूर्यकी गतिका उल्लङ्घन करके चलते हैं तब बहुत अधिक आँधी, बादल और सूखाके भयकी सूचना देते हैं। इनसे दो लाख योजन ऊपर मङ्गल हैं। वे यदि वक्रगतिसे न चलें तो, एक-एक राशिको तीन-तीन पक्षमें भोगते हुए बारहों राशियोंको पार करते हैं। ये अशुभ ग्रह हैं और प्रायः अमङ्गलके सूचक हैं। इनके ऊपर दो लाख योजनकी दूरीपर भगवान् बृहस्पति हैं। ये यदि वक्रगतिसे न चलें, तो एक-एक राशिको एक-एक वर्षमें भोगते हैं। ये प्रायः ब्राह्मणकुलके लिये अनुकूल रहते हैं।

बृहस्पतिसे दो लाख योजन ऊपर शनैश्चर दिखायी देते हैं। ये तीस-तीस महीनेतक एक-एक राशिमें रहते हैं। अतः इन्हें सब राशियोंको पार करनेमें तीस वर्ष लग जाते हैं। ये प्रायः सबके लिये अशान्तिकारक हैं। इनके ऊपर ग्यारह लाख योजनकी दूरीपर कश्यप आदि सप्तर्षि दिखायी देते हैं। ये सब लोकोंकी मङ्गल-कामना करते हुए ध्रुवलोककी—जो भगवान् विष्णुका परमपद है—प्रदक्षिणा किया करते हैं।

शिशुमारचक्रका वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन्! सप्तर्षियोंसे तेरह लाख योजन ऊपर ध्रुवलोक है। इसे भगवान् विष्णुका परमपद कहते हैं। यहाँ उत्तानपादके पुत्र परम भगवद्भक्त ध्रुवजी विराजमान हैं। इनके साथ ही अग्नि, इन्द्र, प्रजापति, कश्यप और धर्मको भी नक्षत्ररूपसे नियुक्त किया गया था। ये सब एक साथ अत्यन्त आदरपूर्वक ध्रुवकी प्रदक्षिणा करते रहते हैं। अब भी कल्पान्तपर्यन्त रहनेवाले लोक इन्हींके आधारपर स्थित हैं। इनके इस लोकका पराक्रम हम पहले (चौथे स्कन्धमें) वर्णन कर चुके हैं। सदा जागते रहनेवाले अव्यक्तगति भगवान् कालकी प्रेरणासे जो ग्रह-नक्षत्रादि ज्योतिर्गण निरन्तर घूमते रहते हैं, भगवान्ने उन सबके आधारस्तम्भरूपसे ध्रुवलोकको ही नियुक्त किया है। अतः यह एक ही स्थानमें रहकर सदा प्रकाशित होता है। जिस प्रकार दायँ चलानेके समय अनाजको खूँदनेवाले पशु छोटी, बड़ी और मध्यम रस्सीमें बँधकर क्रमशः निकट, दूर और मध्यमें रहते हुए खंभेके चारों ओर मण्डल बाँधकर घूमते रहते हैं, उसी प्रकार सारे नक्षत्र और ग्रहगण बाहर-भीतरके क्रमसे इस कालचक्रमें नियुक्त होकर ध्रुवलोकका ही आश्रय लेकर वायुकी प्रेरणासे कल्पके अन्ततक घूमते रहते हैं। जिस प्रकार मेघ और बाज आदि पक्षी अपने कर्मोंकी सहायतासे वायुके अधीन रहकर आकाशमें उड़ते रहते हैं, उसी प्रकार ये ज्योतिर्गण भी प्रकृति और पुरुषके संयोगवश अपने-अपने कर्मोंके अनुसार चक्कर काटते रहते हैं, पृथ्वीपर नहीं गिरते।

कोई-कोई पुरुष भगवान्की योगमायाके आधार स्थित इस ज्योतिश्चक्रका शिशुमार (जलजन्तु विशेष) के रूपमें वर्णन करते हैं। यह शिशुमार कुण्डली मारे हुए है और इसका मुख नीचेकी ओर है। इसकी पूँछके सिरेपर ध्रुव स्थित हैं। पूँछके मध्यभागमें प्रजापति, अग्नि, इन्द्र और धर्म हैं। पूँछकी जड़में धाता और विधाता हैं। इसके कटिप्रदेशमें सप्तर्षि हैं। यह शिशुमार दाहिनी ओर सिकुड़कर कुण्डली मारे हुए है। ऐसी स्थितिमें अभिजित्से लेकर पुनर्वसुपर्यन्त जो उत्तरायणके चौदह नक्षत्र हैं, वे इसके दाहिने भागमें हैं और पुष्यसे लेकर उत्तराषाढ़पर्यन्त जो दक्षिणायनके चौदह नक्षत्र हैं, ये बायें भागमें हैं। लोकमें भी जब शिशुमार कुण्डलाकार होता है, तो उसकी दोनों ओरके अङ्गोंकी संख्या समान रहती है उसी प्रकार यहाँ नक्षत्र-संख्यामें भी समानता है। इसकी पीठमें अजवीथी (मूल, पूर्वाषाढ़ और उत्तराषाढ़ नामक तीन नक्षत्रोंका समूह) है और उदरमें आकाशगङ्गा है। राजन्! इसके दाहिने और बायें कटितटोंमें पुनर्वसु और पुष्य नक्षत्र

हैं, पीछेके दाहिने और बायें चरणोंमें आर्द्रा और आश्लेषा नक्षत्र हैं तथा दाहिने और बायें नथुनोंमें क्रमशः अभिजित् और उत्तराषाढ़ हैं। इसी प्रकार दाहिने और बायें नेत्रोंमें श्रवण और पूर्वाषाढ़ एवं दाहिने और बायें कानोंमें धनिष्ठा और मूल नक्षत्र हैं। मघा आदि दक्षिणायनके आठ नक्षत्र बायीं पसलियोंमें और विपरीत-क्रमसे मृगशिरा आदि उत्तरायणके आठ नक्षत्र दाहिनी पसलियोंमें हैं। शतभिषा और ज्येष्ठा—ये दो नक्षत्र क्रमशः दाहिने और बायें कंधोंकी जगह हैं। इसकी ऊपरकी थूथनीमें अगस्त्य, नीचेकी ठोड़ीमें नक्षत्ररूप यम, मुखोंमें मङ्गल, लिङ्गप्रदेशमें शनि, कुकुदमें बृहस्पति, छातीमें सूर्य, हृदयमें नारायण, मनमें चन्द्रमा, नाभिमें शुक्र, स्तनोंमें अश्विनीकुमार, प्राण और अपानमें बुध, गलेमें राहु, समस्त अङ्गोंमें केतु और रोमोंमें सम्पूर्ण तारागण स्थित हैं।

राजन्! यह भगवान् विष्णुका सर्वदेवमय स्वरूप है। इसका नित्यप्रति सायंकालके समय पवित्र और मौन होकर चिन्तन करना चाहिये तथा इस मन्त्रका जप करते हुए भगवान्‌की स्तुति करनी चाहिये—'ॐ नमो ज्योतिर्लोकाय कालायनायानिमिषां पतये महापुरुषायाभिधीमहि।' (सम्पूर्ण ज्योतिर्गणोंके आश्रय, कालचक्रस्वरूप, सर्वदेवाधिपति परमपुरुष परमात्माका नमस्कारपूर्वक हम ध्यान करते हैं।) तीनों काल इस मन्त्रका जप करनेवाले पुरुषके पापोंको भगवान् नष्ट कर देते हैं। ग्रह, नक्षत्र और तारोंके रूपमें भी वे ही प्रकाशित हो रहे हैं, ऐसा समझकर जो पुरुष प्रातः, मध्याह्न और सायं—तीनों समय उनके आधिदैविक स्वरूपका नित्यप्रति चिन्तन और वन्दन करता है, उसके उस समय किये हुए पाप तुरंत नष्ट हो जाते हैं।

राहु आदिकी स्थिति और नीचेके अतल आदि लोकोंका वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! कुछ लोगोंका कथन है कि सूर्यसे दस हजार योजन नीचे राहु नक्षत्रोंके समान घूमता है। इसने भगवान्‌की कृपासे ही देवत्व और ग्रहत्व प्राप्त किया है, स्वयं यह सिंहिका-पुत्र असुराधम होनेके कारण किसी प्रकार इस पदके योग्य नहीं है। इसके जन्म और कर्मोंका हम आगे वर्णन करेंगे। सूर्यका जो यह अत्यन्त तपता हुआ मण्डल है, उसका विस्तार दस हजार योजन बतलाया जाता है। इसी प्रकार चन्द्रमण्डलका विस्तार बारह हजार योजन है और राहुका तेरह हजार योजन। अमृतपानके समय राहु देवताके वेषमें सूर्य और चन्द्रमाके बीचमें आकर बैठ गया था। उस समय सूर्य और चन्द्रमाने इसका भेद खोल दिया था। उस वैरको याद करके यह अमावस्या और पूर्णिमाके दिन उनपर आक्रमण करता है। यह देखकर भगवान्‌ने सूर्य और चन्द्रमाकी रक्षाके लिये उन दोनोंके पास अपने उस प्रिय आयुध सुदर्शनचक्रको नियुक्त कर दिया जो निरन्तर साथ घूमता रहता है, इसलिये राहु उसके असह्य तेजसे उद्विग्न और चकितचित्त होकर मुहूर्तमात्र उनके सामने टिककर फिर सहसा लौट आता है। उसके उतनी देर उनके सामने ठहरनेको ही लोग 'ग्रहण' कहते हैं।

राहुसे दस हजार योजन नीचे सिद्ध, चारण और विद्याधर आदिके स्थान हैं। उनके नीचे जहाँतक वायुकी गति है और बादल दिखायी देते हैं, वहाँतक अन्तरिक्षलोक है। यह यक्ष, राक्षस, पिशाच, प्रेत और भूतोंका विहारस्थल है। उससे नीचे सौ योजनकी दूरीपर यह पृथ्वी है। जहाँ तक हंस, गीध, बाज और गरुड़ आदि प्रधान-प्रधान पक्षी उड़ सकते हैं, वहींतक इसकी सीमा है। पृथ्वीके विस्तार और स्थिति आदिका वर्णन तो हो ही चुका है। इसके भी नीचे अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल और पाताल नामके सात भू-विवर (भूगर्भस्थित बिल या लोक) हैं। ये एकके नीचे एक दस-दस हजार योजनकी दूरीपर स्थित हैं और इनमेंसे प्रत्येककी लंबाई

चौड़ाई भी दस-दस हजार योजन ही है। ये भूमिबिल भी एक प्रकारके स्वर्ग ही हैं। इनमें स्वर्गसे भी अधिक विषय-भोग, ऐश्वर्य, आनन्द, सन्तान-सुख और धन सम्पत्ति है। यहाँके वैभवपूर्ण भवन, उद्यान और क्रीडास्थलोंमें दैत्य, दानव और नाग तरह-तरहकी माया मयी क्रीड़ाएँ करते हुए निवास करते हैं। वे सब गार्हस्थ्य-धर्मका पालन करनेवाले हैं। उनके स्त्री, पुत्र, बन्धु, बान्धव और सेवकलोग उनसे बड़ा प्रेम रखते हैं और सदा प्रसन्नचित्त रहते हैं। उनके भोगोंमें बाधा डालनेकी इन्द्र आदिमें भी सामर्थ्य नहीं है।

श्रीमद्भागवतके हिरण्यमय पुरुष

(लेखक—श्रीरतनलालजी गुप्त)

शुक्लयजुर्वेदके विराटसूक्तके ऋषि भगवान् आदित्यको 'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'के रूपमें स्तवन करते हुए भाव-विभोर हो उठते हैं। उनकी ऋषि-चेतनामें ये देवताओंके महान् अधिदेवता द्यौ, पृथ्वी एवं अन्तरिक्षको अपने विविध विचित्र वर्णोंके रश्मि-जालसे आहत करके स्थावर-जङ्गम समस्त देव एवं जीव-जगत्का पालन-पोषण करते हुए उनमें जीवनका आधान करते हैं। भगवान् विष्णुकी इस लोक-पालनी शक्तिका लोक-लोचनके समक्ष प्रतिनिधित्व करनेके कारण ही वेदोंमें यत्र-तत्र सर्वत्र सूर्यदेवको 'विष्णु' के नामसे अभिहित किया गया है। श्रीमद्भागवतमें महर्षि कृष्णद्वैपायनने भगवान् आदित्यको इसी रूपमें प्रस्तुत किया है—

'स एष भगवानादिपुरुष एव साक्षान्नारायणो लोकानां स्वस्तय आत्मानं त्रयीमयं कर्मविशुद्धिनिमित्तं कविभिरपि च वेदेन विजिज्ञास्यमानो द्वादशधा विभज्य षट्सु वसन्तादिष्वृतुषु यथोपजोषमृतुगुणान् विदधाति ॥

(५ । २२ । ३)

वेद और क्रान्तदर्शी ऋषिजन जिनकी गतिको जाननेके लिये उत्सुक रहते हैं, वे साक्षात् आदिपुरुष भगवान् नारायण ही लोकोंके कल्याण एवं कर्मोंकी शुद्धिके लिये अपने वेदमय विग्रह-कालको बारह मासोंमें विभक्तकर वसन्त आदि छः ऋतुओंमें उनके अनुरूप गुणोंका विधान करते हैं।

अतएव जीव-जगत्के अन्तर्यामी नारायणरूपसे भगवान् सूर्यकी श्रद्धापूर्वक उपासना अनायास ही परम पदकी प्राप्ति करानेवाली है। इसके प्रमाणरूपमें प्रस्तुत किया गया है—राजर्षि भरतको, जो भगवान् नारायणकी उपासनाका व्रत लेकर उद्दीयमान सूर्यमण्डलमें सूर्य सम्बन्धिनी ऋचाओंके द्वारा हिरण्यमय पुरुष भगवान् नारायणकी आराधना करते हुए कहते हैं—भगवान् सूर्यनारायणका कर्मफलदायक तेज प्रकृतिसे परे है। उसीने स्वसङ्कल्पद्वारा इस जगत्की उत्पत्ति की है। फिर वही अन्तर्यामीरूपसे इसमें प्रविष्ट होकर अपनी चित्-शक्तिके द्वारा विषयलोलुप जीवोंकी रक्षा करता है, हम उसी बुद्धि-प्रवर्तक तेजकी शरण लेते हैं—

परोरजः सवितुर्जातवेदो
देवस्य भर्गो मनसेदं जजान।
सुरेतसादः पुनराविश्य चष्टे
हंसं गृध्राणं नृषद्रिङ्गिरामिमः ॥

(५ । ७ । १४)

इस प्रकार सृष्टि, स्थिति और प्रलय आदिकी सामर्थ्योंसे युक्त ये आदित्यदेव भगवान् नारायणके समान वेदमय भी हैं। जिस प्रकार सृष्टिके आदिकालमें श्रीभगवान् लोकपिता महाब्रह्माके हृदयमें वेदज्ञानको उदित करते हैं, ठीक उसी प्रकार महर्षि याज्ञवल्क्यकी आराधनासे संतुष्ट होकर आदित्यदेवने उनको यजुर्वेदका वह मन्त्र प्रदान किया, जो अबतक किसी और ऋषिकी चेतनामें स्फुरित नहीं

हुआ था। इस प्रसङ्गमें महर्षि याज्ञवल्क्यने भगवान् आदित्यका जो उपस्थान किया है, उसमें वैदिक वाङ्मय एवं श्रीमद्भागवतपुराणकी सूर्य-सम्बन्धिनी मान्यताका समन्वय दृष्टिगोचर होता है।

ऋषि याज्ञवल्क्य कहते हैं—'मैं ॐकारस्वरूप भगवान् सूर्यको नमस्कार करता हूँ। भगवन्! आप सम्पूर्ण जगत्के आत्मा और कालस्वरूप हैं। ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त जितने भी जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज—चार प्रकारके प्राणी हैं, उन सबके हृदय देशमें और बाहर आकाशके समान व्याप्त रहकर भी आप उपाधिके धर्मोंसे असङ्ग रहनेवाले अद्वितीय भगवान् ही हैं। आप ही क्षण, लव, निमेष आदि अवयवोंसे सघटित संवत्सरोंके द्वारा जलके आकर्षण-विकर्षणके (आदान प्रदानके) द्वारा समस्त लोकोंकी जीवनयात्रा चलाते हैं। प्रभो! आप समस्त देवताओंमें श्रेष्ठ हैं। जो लोग तीनों समय वेदविधिसे आपकी उपासना करते हैं, उनके सारे पाप और दुःखोंके बीजको आप भस्म कर देते हैं। सूर्यदेव! आप सारी सृष्टिके मूल कारण एवं समस्त ऐश्वर्योंके स्वामी हैं। इसलिये हम आपके इस तेजोमय मण्डलका पूरी एकाग्रताके साथ ध्यान करते हैं। आप सबके आत्मा और अन्तर्यामी हैं। जगत्में जितने चराचर प्राणी हैं, सब आपके ही आश्रित हैं। आप ही उनके अचेतन मन, इन्द्रिय और प्राणोंके प्रेरक हैं।' (श्रीमद्भा० १२। ६। ६७—६९)

इसके अतिरिक्त भगवान् नारायणकी सूर्यदेवके रूपमें अभिव्यक्तिको प्रतिपादित करनेवाले अन्य साक्ष्य भी श्रीमद्भागवतमें वर्णित हुए हैं। गजेन्द्रमोक्षके समय भगवान् श्रीहरि 'छन्दोमयेन गरुडेन' अर्थात् वेदमय वाहनसे जैसे वहाँ पहुँचते हैं, उसी प्रकार भगवान् सूर्यके रथको भी वहन गायत्री आदि नामवाले वेदमय अश्व करते हैं—

यत्र हयाश्छन्दोनामानः सप्तारुणयोजिता वहन्ति देवमादित्यम्।

(श्रीमद्भा० ५। २१। १५)

सत्राजितके द्वारा भगवान् सूर्यकी उपासना करनेके फलस्वरूप उसकी पुत्री सत्यभामाको अपनी राजमहिषीके रूपमें अङ्गीकृत करके भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने आदित्यदेवसे अपना अभेद प्रदर्शित किया है।

इस प्रकार श्रीमद्भागवतमें भगवान् नारायणसे आदित्यदेवका अद्वैत सिद्ध हुआ है। इसी प्रकार महर्षि वेदव्यासने 'योऽसावादित्ये पुरुषः' तथा 'यमेतमादित्ये पुरुषं वेदयन्ते स इन्द्रः, प्रजापतिस्तद्ब्रह्म' इत्यादि श्रुति-वाक्योंकी परम्पराको अपनी विशिष्ट शैलीमें प्रस्तुत करके श्रीमद्भागवतकी वेदात्मकताको अक्षुण्ण रखा है।

भागवतकारने भगवान् आदित्यको निर्गुण-निराकार परब्रह्म परमात्माकी सगुण-साकार-अभिव्यक्ति बतलाया है। इनके दृश्यमान प्राकृत सौरमण्डलको भगवान् विष्णुकी अनादि अविद्यासे निर्मित बतलाया है। यही समस्त लोक-लोकान्तरोंमें भ्रमण करता है। वास्तवमें तो समस्त लोकोंके आत्मा भगवान् श्रीहरि ही अन्तर्यामीरूपसे सूर्य बने हुए हैं। वे ही समस्त वैदिक क्रियाओंके मूल हैं। वे यद्यपि एक ही हैं तथापि ऋषियोंने उनका अनेक रूपोंमें वर्णन किया है।

भगवान् सूर्यकी द्वादश मासकी विभूतियोंके वर्णनके प्रसङ्गमें व्यासदेव इस बातका हमें पुनः स्मरण करा देते हैं कि ये आदित्यरूप भगवान् विष्णुकी विभूतियाँ हैं। जो लोग इनका प्रातःकाल और सायंकाल स्मरण करते हैं, उनके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं—

एता भगवतो विष्णोरादित्यस्य विभूतयः।
स्मरतां सन्ध्ययोर्नॄणां हरन्त्यंहो दिने दिने॥

(श्रीमद्भा० १२। ११। ४५)

श्रीविष्णुपुराणमें सूर्य-सदर्भ

(द्वितीय अंश, आठवें अध्यायसे बारहवें अध्यायतक)

[श्रीविष्णुपुराणके मूलवक्ता मुनिसत्तम श्रीपराशरजी हैं। इसमें सूर्य-सम्बन्धी खगोलीय विवरण विशेष द्रष्टव्य हैं। श्रीपराशरजीके ब्रह्माण्डकी स्थितिका वर्णन कर चुकनेपर श्रीसूतजीने सूर्यादिके सस्थान और प्रमाण—'सूर्यादीना च सस्थानं प्रमाण मुनिसत्तम'- के सम्बन्धमें प्रश्न किया है। उस प्रश्नके उत्तरमें प्रकृत पुराणमें सूर्य, नक्षत्र एव राशियोंकी व्यवस्था, कालचक्र, लोकपाल, ज्योतिश्चक्र, शिशुमार-चक्र, द्वादश सूर्यों एव अधिकारियोंके नाम, सूर्यशक्ति, वैष्णवी-शक्ति तथा नवग्रहोंका वर्णन और लोकान्तरसम्बन्धी व्याख्यानका उपसहार किया गया है। यह वर्णन रोचक एव वैज्ञानिक जिज्ञासाका शास्त्रीय समाधान प्रस्तुत करता है।]

आठवाँ अध्याय

सूर्य, नक्षत्र एव राशियोंकी व्यवस्था तथा कालचक्र और लोकपाल आदिका वर्णन

श्रीपराशरजी बोले—हे सुव्रत! मैंने तुमसे यह ब्रह्माण्डकी स्थिति कही, अब सूर्य आदि ग्रहोंकी स्थिति और उनके परिमाण सुनो। 'मुनिश्रेष्ठ! सूर्यदेवके रथका विस्तार नौ हजार योजन है तथा इससे दूना उसका ईषा-दण्ड (जूआ और रथके बीचका भाग) है। उसका धुरा डेढ़ करोड़ सात लाख योजन लबा है, जिसमें उसका पहिया लगा हुआ है। (पूर्वाह्न, मध्याह्न और पराह्नरूप) तीन नाभि, (परिवत्सरादि) पाँच अर और (षड्ऋतुरूप) छ नेमिवाले उस अक्षयस्वरूप सवत्सरात्मक चक्रमें सम्पूर्ण कालचक्र स्थित है। सात छन्द ही उसके घोड़े हैं। उनके नाम सुनो, गायत्री, बृहती, उष्णिक्, जगती, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप् और पक्ति—ये छन्द ही सूर्यके सात घोड़े कहे गये हैं। महामते! भगवान् सूर्यके रथका दूसरा धुरा साढ़े पैंतालीस हजार योजन लबा है। दोनों धुरोंके परिमाणके तुल्य ही उसके युगार्द्धों (जूओं) का परिमाण है। इनमेंसे छोटा धुरा उस रथके एक युगार्द्ध (जूए) के सहित ध्रुवके आधारपर स्थित है और दूसरे धुरेका चक्र मानसोत्तरपर्वतपर स्थित है।

इस मानसोत्तर पर्वतके पूर्वमें इन्द्रकी, दक्षिणमें यमकी, पश्चिममें वरुणकी और उत्तरमें चन्द्रमाकी पुरी है। उन पुरियोंके नाम सुनो। इन्द्रकी पुरी वस्वौकसारा है, यमकी संयमनी है, वरुणकी सुखा है तथा चन्द्रमाकी विभावरी है। मैत्रेय! ज्योतिश्चक्रके सहित भगवान् भानु दक्षिणदिशामें प्रवेशकर छोड़े हुए बाणके समान तीव्र वेगसे चलते हैं।

भगवान् सूर्यदेव दिन और रात्रिकी व्यवस्थाके कारण हैं और रागादि क्लेशोंके क्षीण हो जानेपर वे ही क्रममुक्तिभागी योगीजनोंके देवयान नामक श्रेष्ठ मार्ग हैं। मैत्रेय! सभी द्वीपोंमें सर्वदा मध्याह्न तथा मध्यरात्रिके समय सूर्यदेव मध्य आकाशमें सामनेकी ओर रहते हैं*। इसी प्रकार उदय और अस्त भी सदा एक दूसरेके सम्मुख ही होते हैं। ब्रह्मन्! समस्त दिशा और विदिशाओंमें जहाँके लोग (रात्रिका अन्त होनेपर) सूर्यको जिस स्थानपर देखते हैं, उनके लिये वहाँ उसका उदय होना है और जहाँ दिनके अन्तमें सूर्यका तिरोभाव होता है, वहीं

* अर्थात् जिस द्वीप या खण्डमें सूर्यदेव मध्याह्नके समय सम्मुख पड़ते हैं, उसकी समान रेखापर दूसरी ओर स्थित द्वीपान्तरमें वे उसी प्रकार मध्यरात्रिके समय रहते हैं।

उसका अस्त कहा जाता है। सर्वदा एक रूपसे स्थित सूर्यदेवका वास्तवमें न उदय होता है और न अस्त। केवल उनका दीखना और न दीखना ही उनके उदय और अस्त हैं। मध्याह्नकालमें इन्द्रादिमेंसे किसीकी (पुरियोंके सहित) तीन पुरियों और दो कोणों (विदिशाओं) को प्रकाशित करते हैं, इसी प्रकार अग्नि आदि कोणोंमेंसे किसी एक कोणमें प्रकाशित होते हुए वे (पार्श्ववर्ती दो कोणोंके सहित) तीन कोण और दो पुरियोंको प्रकाशित करते हैं। सूर्यदेव उदय होनेके अनन्तर मध्याह्नपर्यन्त अपनी बढ़ती हुई किरणोंसे तपते हैं। फिर क्षीण होती हुई किरणोंसे अस्त हो जाते हैं*।

सूर्यके उदय और अस्तसे ही पूर्व तथा पश्चिम दिशाओंकी व्यवस्था हुई है। वास्तवमें तो वे जिस प्रकार पूर्वसे प्रकाश करते हैं, उसी प्रकार पश्चिम तथा पार्श्ववर्तिनी (उत्तर और दक्षिण) दिशाओंमें भी करते हैं। सूर्यदेव देवपर्वत सुमेरुके ऊपर स्थित ब्रह्माजीकी सभासे अतिरिक्त और सभी स्थानोंको प्रकाशित करते हैं। उनकी जो किरणें ब्रह्माजीकी सभामें जाती हैं, वे उसके तेजसे निरस्त होकर उल्टी लौट आती हैं। सुमेरु पर्वत समस्त द्वीप और वर्षोंके उत्तरमें है, इसलिये उत्तर दिशामें (मेरुपर्वतपर) सदा (एक ओर) दिन और दूसरी ओर रात रहती है। रात्रिके समय सूर्यके अस्त हो जानेपर उनका तेज अग्निमें प्रविष्ट हो जाता है। इसलिये उस समय अग्नि दूरसे ही प्रकाशित होने लगती है। इसी प्रकार हे द्विज! दिनके समय अग्निका तेज सूर्यमें प्रविष्ट हो जाता है, अतः अग्निके संयोगसे ही सूर्य अत्यन्त प्रखरतासे प्रकाशित होते हैं। इस प्रकार सूर्य और अग्निके प्रकाश तथा उष्णतामय तेज परस्पर मिलकर दिन-रातमें वृद्धिको प्राप्त होते रहते हैं।

मेरुके दक्षिणी और उत्तरी भूम्यर्द्धमें सूर्यके प्रकाशित होते समय अन्धकारमयी रात्रि और प्रकाशमय दिन क्रमशः जलमें प्रवेश कर जाते हैं। दिनके समय रात्रिके प्रवेश करनेसे ही जल कुछ ताम्रवर्ण दिखायी देता है, किंतु सूर्यके अस्त हो जानेपर उसमें दिनका प्रवेश हो जाता है। इसलिये दिनके प्रवेशके कारण ही रात्रिके समय वह शुक्लवर्ण हो जाता है।

इस प्रकार जब सूर्य पुष्करद्वीपके मध्यमें पहुँचकर पृथ्वीका तीसवाँ भाग पार कर लेते हैं तो उनकी वह गति एक मुहूर्तकी होती है। (अर्थात् उतने भागके अतिक्रमण करनेमें उन्हें जितना समय लगता है, वही मुहूर्त कहलाता है।) द्विजवर! कुलाल-चक्र (कुम्हारके चाक) के सिरेपर घूमते हुए जीवके समान भ्रमण करते हुए ये सूर्य पृथ्वीके तीसों भागोंका अतिक्रमण करनेपर एक दिन-रात्रि करते हैं। द्विज! उत्तरायणके आरम्भमें सूर्य सबसे पहले मकर राशिमें जाते हैं। उसके पश्चात् वे कुम्भ और मीनराशियोंमें एक राशिसे दूसरी राशिमें जाते हैं। इन तीनों राशियोंको भोग चुकनेपर सूर्य रात्रि और दिनको समान करते हुए वैषुवती गतिका अवलम्बन करते हैं। (अर्थात् वे भूमध्य रेखाके बीचमें ही चलते हैं।) उसके अनन्तर नित्यप्रति रात्रि क्षीण होने लगती है और दिन बढ़ने लगता है। फिर (मेष तथा वृषराशिका अतिक्रमण कर) मिथुनराशिसे निकलकर उत्तरायणकी अन्तिम सीमापर उपस्थित हो वह कर्क-राशिमें पहुँचकर दक्षिणायनका आरम्भ करते हैं। जिस प्रकार कुलालचक्रके सिरेपर स्थित जीव अति शीघ्रतासे घूमता है, उसी प्रकार सूर्य भी दक्षिणायनको पार करनेमें अतिशीघ्रतासे चलते हैं। अतः वह अतिशीघ्रतापूर्वक वायुवेगसे चलते

* किरणोंकी वृद्धि, ह्रास एवं तीव्रता, मन्दता आदि सूर्यके समीप और दूर होनेसे मनुष्यके अनुभवके अनुसार कही गयी हैं। (वस्तुतः वे स्वरूपतः सदा समान हैं।)

हुए अपने उत्कृष्ट मार्गको थोड़े समयमें ही पार कर लेते हैं। हे द्विज! दक्षिणायनमें दिनके समय शीघ्रता पूर्वक चलनेसे उस समयके साढ़े तेरह नक्षत्रोंको सूर्य बारह मुहूर्तोंमें पार कर लेते हैं। किंतु रात्रिके समय (मन्दगामी होनेसे) उतने ही नक्षत्रोंको अठारह मुहूर्तोंमें पार करते हैं। कुलाल-चक्रके मध्यमें स्थित जीव जिस प्रकार धीरे-धीरे चलता है, उसी प्रकार उत्तरायणके समय सूर्य मन्दगतिसे चलते हैं, इसलिये उस समय वह थोड़ी-सी भूमि भी अतिदीर्घकालमें पार करते हैं। अतः उत्तरायणका अन्तिम दिन अठारह मुहूर्तका होता है, उस दिन भी सूर्य अति मन्द गतिसे चलते हैं। और ज्योतिश्चक्रार्धके साढ़े तेरह नक्षत्रोंको एक दिनमें पार करते हैं, किंतु रात्रिके समय वह उतने ही (साढ़े तेरह) नक्षत्रोंको बारह मुहूर्तोंमें ही पार कर लेते हैं। अतः जिस प्रकार नाभिदेशमें चक्रके मन्द-मन्द घूमनेसे वहाँका मृत्पिण्ड भी मन्दगतिसे घूमता है, उसी प्रकार ज्योतिश्चक्रके मध्यमें स्थित ध्रुव अति मन्द गतिसे घूमता है। मैत्रेय! जिस प्रकार कुलाल-चक्रकी नाभि अपने स्थानपर ही घूमती रहती है, उसी प्रकार ध्रुव भी अपने स्थानपर ही घूमता रहता है।

इस प्रकार उत्तर तथा दक्षिण सीमाओंके मध्यमें मण्डलाकार घूमते रहनेसे सूर्यकी गति दिन अथवा रात्रिके समय मन्द अथवा शीघ्र हो जाती है। जिस अयनमें सूर्यकी गति दिनके समय मन्द होती है, उसमें रात्रिके समय शीघ्र होता है तथा जिस समय रात्रि कालमें शीघ्र होती है, उस समय दिनमें मन्द हो जाती है। हे द्विज! सूर्यको सदा एक बराबर मार्ग ही पार करना पड़ता है। एक दिन-रात्रिमें ये समस्त राशियोंका भोग कर लेते हैं। सूर्य छः राशियोंको रात्रिके समय भोगते हैं और छः को दिनके समय। दिनका बढ़ना घटना राशियोंके परिमाणानुसार ही होता है तथा रात्रिकी लघुता-दीर्घता भी राशियोंके परिमाणसे ही होती है। राशियोंके भोगानुसार ही दिन अथवा रात्रिकी लघुता एवं दीर्घता होती है। उत्तरायणमें सूर्यकी गति रात्रिकालमें शीघ्र होती है तथा दिनमें मन्द। दक्षिणायनमें उनकी गति इसके विपरीत होती है।

रात्रि उषा कहलाती है तथा दिन व्युष्टि (प्रभात) कहा जाता है। इन उषा तथा व्युष्टिके बीचके समयको सन्ध्या कहते हैं। इस अति दारुण और भयानक सन्ध्याकालके उपस्थित होनेपर मंदेह नामक भयंकर राक्षसगण सूर्यको खाना चाहते हैं। मैत्रेय! उन राक्षसोंको प्रजापतिका यह शाप है कि उनका शरीर अक्षय रहकर भी मरण नित्यप्रति हो। अतः सन्ध्याकालमें उनका सूर्यसे अति भीषण युद्ध होता है। महामुने! उस समय द्विजोत्तमगण जो ब्रह्मस्वरूप ॐकार तथा गायत्रीसे अभिमन्त्रित जल छोड़ते हैं, उन वज्रस्वरूप जलसे वे दुष्ट राक्षस दग्ध हो जाते हैं। अग्निहोत्रमें जो 'सूर्यो ज्योतिः' इत्यादि मन्त्रसे प्रथम आहुति दी जाती है, उससे सहस्रांशु दिननाथ देदीप्यमान हो जाते हैं। ॐकार जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्तिरूप तीन धामोंसे युक्त भगवान् विष्णु हैं तथा सम्पूर्ण वाणियों (वेदों)के अधिपति हैं। उसके उच्चारणमात्रसे ही वे राक्षसगण नष्ट हो जाते हैं। सूर्य भगवान् विष्णुका अतिश्रेष्ठ अंश एवं विकाररहित अन्तर्ज्योति स्वरूप हैं। ॐकार उनका वाचक है और वे उसे उन राक्षसोंके वधमें अत्यन्त प्रेरित करनेवाले हैं। उस ॐकारकी प्रेरणासे अतिप्रदीप्त होकर वह ज्योति मंदेह नामक सम्पूर्ण पापी राक्षसोंको दग्ध कर देती है। इसलिये सन्ध्योपासनकर्मका उल्लङ्घन कभी नहीं करना चाहिये। जो पुरुष सन्ध्योपासन नहीं करता, वह भगवान् सूर्यका घात करता है। तदनन्तर (उन राक्षसोंका वध करनेके पश्चात्) भगवान् सूर्य संसारके पालनमें प्रवृत्त हो वालखिल्यादि ब्राह्मणोंसे सुरक्षित होकर गमन करते हैं।

पन्द्रह निमेष मिलकर एक काष्ठा होती है और तीस काष्ठाकी एक कला गिनी जाती है। तीस कलाओंका एक मुहूर्त होता है और तीस मुहूर्तके सम्पूर्ण रात्रि-दिन होते हैं। दिनोंका ह्रास अथवा वृद्धि क्रमशः प्रातःकाल, मध्याह्नकाल आदि दिवसांशोंके ह्रास-वृद्धिके कारण होते हैं, किंतु दिनोंके घटते-बढ़ते रहनेपर भी संध्या सर्वदा समान भावसे एक मुहूर्तकी ही होती है। उदयसे लेकर सूर्यकी तीन मुहूर्तकी गतिके कालको 'प्रातःकाल' कहते हैं। यह सम्पूर्ण दिनका पाँचवाँ भाग होता है। इस प्रातःकालके अनन्तर तीन मुहूर्तका समय 'सङ्गव' कहलाता है तथा सङ्गवकालके पश्चात् तीन मुहूर्तका 'मध्याह्न' होता है। मध्याह्नकालसे पीछेका समय 'अपराह्न' कहलाता है। इस काल भागको भी बुधजन तीन मुहूर्तका ही बताते हैं। अपराह्नके बीतनेपर 'सायाह्न' आता है। इस प्रकार (सम्पूर्ण दिनमें) पन्द्रह मुहूर्त और (प्रत्येक दिवसांशमें) तीन मुहूर्त होते हैं।

वैषुवत् दिवस पन्द्रह मुहूर्तका होता है, किंतु उत्तरायण और दक्षिणायनमें क्रमशः उसके वृद्धि और ह्रास होने लगते हैं। इस प्रकार उत्तरायणमें दिन रात्रिका ग्रास करने लगता है और दक्षिणायनमें रात्रि दिनका ग्रास करती रहती है। शरद् और वसन्त ऋतुके मध्यमें सूर्यके तुला अथवा मेष राशिमें जानेपर 'विषुव' होता है। उस समय दिन और रात्रि समान होते हैं। सूर्यके कर्कराशिमें उपस्थित होनेपर दक्षिणायन कहा जाता है और उसके मकरराशिपर आनेसे उत्तरायण कहलाता है।

ब्रह्मन्! मैंने जो तीस मुहूर्तके एक रात्रि-दिन कहे हैं, ऐसे पंद्रह रात्रि-दिवसका एक पक्ष कहा जाता है। दो पक्षका एक मास होता है, दो सौर मासकी एक ऋतु और तीन ऋतुका एक अयन होता है तथा दो अयन ही (मिलकर) एक वर्ष कहे जाते हैं। सौर, सावन, चान्द्र तथा नाक्षत्र—इन चार प्रकारके मासोंके अनुसार विविध रूपसे कल्पित संवत्सरादि पाँच प्रकारके वर्ष कल्पित किये गये हैं। यह युग ही (मलमासादि) सब प्रकारके कालनिर्णयका कारण कहा जाता है। उनमें पहला संवत्सर, दूसरा परिवत्सर, तीसरा इद्वत्सर, चौथा अनुवत्सर और पाँचवाँ वत्सर है। यह काल 'युग' नामसे विख्यात है।

श्वेतवर्षके उत्तरमें जो शृङ्गवान् नामसे विख्यात पर्वत है, उसके तीन शृङ्ग हैं, जिनके कारण यह शृङ्गवान् कहा जाता है। उनमेंसे एक शृङ्ग उत्तरमें, एक दक्षिणमें तथा एक मध्यमें है। मध्यशृङ्ग ही वैषुवत है। शरद्-वसन्त ऋतुके मध्यमें सूर्य इस वैषुवत् शृङ्गपर आते हैं। अतः मैत्रेय! मेष अथवा तुलाराशिके आरम्भमें तिमिरापहारी सूर्यदेव विषुवत् पर स्थित होकर दिन और रात्रिको समान-परिमाण कर देते हैं। उस समय ये दोनों पन्द्रह-पन्द्रह मुहूर्तके होते हैं। मुने! जिस समय सूर्य कृत्तिका नक्षत्रके प्रथम भाग अर्थात् मेषराशिके अन्तमें तथा चन्द्रमा निश्चय ही विशाखाके चतुर्थांश (अर्थात् वृश्चिकके आरम्भ) में हों अथवा जिस समय सूर्य विशाखाके तृतीय भाग अर्थात् तुलाके अन्तिमांशका भोग करते हों और चन्द्रमा कृत्तिकाके प्रथम भाग अर्थात् मेषान्तमें स्थित जान पड़ें तभी यह विषुव नामक अति पवित्र काल कहा जाता है। इस समय देवता, ब्राह्मण और पितृगणके उद्देश्यसे संयतचित्त होकर दानादि देने चाहिये। यह समय दान-ग्रहणके लिये मानो देवताओंके खुले हुए मुखके समान है। अतः 'विषुव' कालमें दान करनेवाला मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। यागादिके काल-निर्णयके लिये दिन, रात्रि, पक्ष, कला, काष्ठा और क्षण आदिका विषय भलीभाँति जानना चाहिये।

राका और अनुमति—दो प्रकारकी पूर्णमासी* तथा सिनीवाली और कुहू—ये दो प्रकारकी अमावास्या† होती हैं। माघ-फाल्गुन, चैत्र-वैशाख तथा ज्येष्ठ-आषाढ़—ये छ मास उत्तरायण होते हैं और श्रावण-भाद्रपद, आश्विन कार्तिक तथा अगहन-पौष—ये छ मास दक्षिणायन कहलाते हैं।

मैंने पहले तुमसे जिस लोकालोकपर्वतका वर्णन किया है, उसीपर चार व्रतशील लोकपाल निवास करते हैं। द्विजवर! सुधामा, कर्दमके पुत्र शङ्खपाद, हिरण्यरोमा तथा केतुमान्—ये चारों निर्द्वन्द्व, निरभिमान, निरालस्य और निष्परिग्रह लोकपालगण लोकालोकपर्वतके चारों दिशाओंमें स्थित हैं।

जो अगस्त्यके उत्तर तथा अजवीथिके दक्षिणमें वैश्वानरमार्गसे भिन्न (मृगवीथि नामक) मार्ग है, वही पितृयानपथ है। उस पितृयानमार्गमें महात्मा मुनिजन रहते हैं। जो लोग अग्निहोत्री होकर प्राणियोंकी उत्पत्तिके आरम्भक ब्रह्म (वेद)की स्तुति करते हुए यज्ञानुष्ठानके लिये उद्यत हो कर्मका आरम्भ करते हैं, उनका वह (पितृयान) दक्षिणमार्ग है। वे युग युगान्तरमें विच्छिन्न हुए वैदिक धर्मकी सतान, तपस्या, वर्णाश्रमकी मर्यादा और विविध शास्त्रोंके द्वारा पुन स्थापना करते हैं। पूर्वतन धर्मप्रवर्तक ही अपनी उत्तरकालीन सन्तानके यहाँ उत्पन्न होते हैं और फिर उत्तरकालीन धर्मप्रचारकगण अपने यहाँ सन्तानरूपसे उत्पन्न हुए पितृगणके कुलोंमें जन्म लेते हैं। इस प्रकार वे व्रतशील महर्षिगण चन्द्रमा और तारागणकी स्थितिपर्यन्त सूर्यके दक्षिणमार्गमें बार-बार आते-जाते रहते हैं।

नागवीथिके उत्तर और सप्तर्षियोंके दक्षिणमें जो सूर्यका उत्तरीय मार्ग है, उसे देवयानमार्ग कहते हैं। उसमें जो प्रसिद्ध निर्मलस्वभाव और जितेन्द्रिय ब्रह्मचारिगण निवास करते हैं, वे सतानकी इच्छा नहीं करते। अत उन्होंने मृत्युको जीत लिया है। सूर्यके उत्तर-मार्गमें अठासी हजार ऊर्ध्वरेता मुनिगण प्रलयकालपर्यन्त निवास करते हैं। उन्होंने लोभके असयोग, मैथुनके त्याग, इच्छा-द्वेषकी अप्रवृत्ति, कर्मानुष्ठानके त्याग, काम-वासनाके असयोग और शब्दादि विषयोंके दोषदर्शन इत्यादि कारणोंसे शुद्धचित्त होकर अमरता प्राप्त कर ली है। भूतोंके प्रलयपर्यन्त स्थिर रहनेको ही अमरता कहते हैं। त्रिलोकीकी स्थितितकके इस कालको वे अपुनर्मार (पुनर्मृत्युरहित) कहा जाता है। द्विज! ब्रह्महत्या और अश्वमेध-यज्ञसे जो पाप और पुण्य होते हैं, उनका फल प्रलयपर्यन्त कहा गया है।

मैत्रेय! जितने प्रदेशमें ध्रुव स्थित है, पृथ्वीसे लेकर उस प्रदेशपर्यन्त सम्पूर्ण देश प्रलयकालमें नष्ट हो जाता है। सप्तर्षियोंसे उत्तर दिशामें ऊपरकी ओर जहाँ ध्रुव स्थित हैं, वह अति तेजोमय स्थान ही आकाशमें भगवान् विष्णुका तीसरा दिव्य धाम है। विप्रवर! पुण्य पापके क्षीण हो जानेपर दोष-पङ्कशून्य सयतात्मा मुनिजनोंका यही परम स्थान है। पाप पुण्यके निवृत्त हो जाने तथा देह प्राप्तिके सम्पूर्ण कारणोंके नष्ट हो जानेपर प्राणिगण जिस स्थानपर जाकर फिर शोक नहीं करते, वही भगवान् विष्णुका परम पद है। जहाँ भगवान्के समान ऐश्वर्यसे प्राप्त हुए योगद्वारा सतेज होकर धर्म और ध्रुव आदि लोकसाक्षिगण निवास करते हैं, वही भगवान् विष्णुका परम पद है। मैत्रेय! जिसमें यह भूत,

* जिस पूर्णिमामें पूर्णचन्द्र विराजमान होते हैं, वह 'राका' कहलाती है तथा जिसमें एक कला हीन होता है वह 'अनुमति' कही जाती है।

† दृष्टचन्द्रा अमावास्याका नाम 'सिनीवाली' है और नष्टचन्द्राका नाम 'कुहू' है।

भविष्यत् और वर्तमान चराचर जगत् ओतप्रोत हो रहा है, वही भगवान् विष्णुका परमपद है। जो तल्लीन योगिजनोंको आकाशमण्डलमें देदीप्यमान सूर्यके समान सबके प्रकाशक रूपसे प्रतीत होता है तथा जिसका विवेक-ज्ञानसे ही प्रत्यक्ष होता है, वही भगवान् विष्णुका परमपद है। द्विजवर! उस विष्णुपदमें ही सबके आधारभूत परम तेजस्वी ध्रुव स्थित हैं तथा ध्रुवजीमें समस्त नक्षत्र, नक्षत्रोंमें मेघ और मेघोंमें वृष्टि आश्रित है। महामुने! उस वृष्टिसे ही समस्त सृष्टिका पोषण और सम्पूर्ण देव-मनुष्यादि प्राणियोंकी पुष्टि होती है। तदनन्तर गौ आदि प्राणियोंसे उत्पन्न दुग्ध और घृत आदिकी आहुतियोंसे परिपुष्ट अग्निदेव ही प्राणियोंकी स्थितिके लिये पुनः वृष्टिके कारण होते हैं। इस प्रकार भगवान् विष्णुका यह निर्मल तृतीय लोक (ध्रुव) ही त्रिलोकीका आधारभूत और वृष्टिका आदि कारण है।

नवाँ अध्याय

ज्योतिश्चक्र और शिशुमारचक्र

श्रीपराशरजी बोले—आकाशमें भगवान् विष्णुका जो शिशुमार (गिरगिट अथवा गोधा) के समान आकारवाला तारामय स्वरूप देखा जाता है, उसके पुच्छभागमें ध्रुव अवस्थित है। यह ध्रुव स्वयं घूमता हुआ चन्द्रमा और सूर्य आदि ग्रहोंको घुमाता है। उस भ्रमणशील ध्रुवके साथ नक्षत्रगण भी चक्रके समान घूमते रहते हैं। सूर्य, चन्द्रमा, तारे, नक्षत्र और अन्यान्य समस्त ग्रहगण वायुमण्डलमयी डोरीसे ध्रुवके साथ बँधे हुए हैं।

मैंने तुमसे आकाशमें ग्रहगणके जिस शिशुमार स्वरूपका वर्णन किया है, अनन्त तेजके आश्रय स्वयं भगवान् नारायण ही उसके हृदयस्थित आधार हैं। उत्तानपादके पुत्र ध्रुवने उन जगत्पतिकी आराधना करके तारामय शिशुमारके पुच्छस्थानमें स्थिति प्राप्त की है। शिशुमारके आधार सर्वेश्वर श्रीनारायण हैं, शिशुमार ध्रुवका आश्रय है और ध्रुवमें सूर्यदेव स्थित हैं तथा हे विप्र! जिस प्रकार देव, असुर और मनुष्यादिके सहित यह सम्पूर्ण जगत् सूर्यके आश्रित है, वह तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो।

सूर्य आठ मासतक अपनी किरणोंसे रसस्वरूप जलको ग्रहण करके उसे चार महीनोंमें बरसा देता है। उससे अन्नकी उत्पत्ति होती है और अन्नहीसे सम्पूर्ण जगत् पोषित होता है। सूर्य अपनी तीक्ष्ण रश्मियोंसे संसारका जल खींचकर उससे चन्द्रमाका पोषण करते हैं और चन्द्रमा आकाशमें वायुमयी नाड़ियोंके मार्गसे उसे धूम, अग्नि और वायुमय मेघोंमें पहुँचा देते हैं। यह चन्द्रमाद्वारा प्राप्त जल मेघोंसे तुरत ही भ्रष्ट नहीं होता, इसलिये वे 'अभ्र' कहलाते हैं। हे मैत्रेय! कालजनित संस्कारके प्राप्त होनेपर यह अभ्रस्थ जल निर्मल होकर वायुकी प्रेरणासे पृथ्वीपर बरसने लगता है।

हे मुने! भगवान् सूर्यदेव नदी, समुद्र, पृथ्वी तथा प्राणियोंसे उत्पन्न—इन चार प्रकारके जलोंका आकर्षण करते हैं। वे अंशुमाली आकाशगङ्गाके जलको ग्रहण करके उसे बिना मेघादिके अपनी किरणोंसे ही तुरत पृथ्वीपर बरसा देते हैं। हे द्विजोत्तम! उसके स्पर्शमात्रसे पापपङ्कके धुल जानेसे मनुष्य नरकमें नहीं जाता। अतः वह दिव्य स्नान कहलाता है। सूर्यके दिखलायी देते हुए बिना मेघोंके ही जो जल बरसता है, वह सूर्यकी किरणोंद्वारा बरसाया हुआ आकाशगङ्गाका ही जल होता है। कृत्तिका आदि विषम (अयुग्म) नक्षत्रोंमें जो जल सूर्यके प्रकाशित होते हुए बरसता है, उसे दिग्गजोंद्वारा बरसाया हुआ आकाशगङ्गाका जल समझना चाहिये। (रोहिणी और आर्द्रा आदि) सम संख्यावाले नक्षत्रोंमें जिस जलको सूर्य बरसाते हैं, वह सूर्यरश्मियों द्वारा (आकाशगङ्गा) से ग्रहण करके ही बरसाया जाता है। हे महामुने! आकाशगङ्गाके ये (सम

तथा विषम नक्षत्रोंमें बरसनेवाले) दोनों प्रकारके जलमय दिव्य स्नान अत्यन्त पवित्र और मनुष्योंके पापभयको दूर करनेवाले हैं।

हे द्विज ! जो जल मेघोंद्वारा बरसाया जाता है, वह प्राणियोंके जीवनके लिये अमृतरूप होता है और ओषधियोंका पोषण करता है। हे विप्र ! उस वृष्टिके जलसे परम वृद्धिको प्राप्त होकर समस्त ओषधियाँ और फल पकनेपर सूख जानेवाले (गोधूम एवं यव आदि अन्न) प्रजावर्गके (शरीरकी उत्पत्ति एवं पोषण आदिके) साधक होते हैं। उनके द्वारा शास्त्रविद् मनीषिगण नित्यप्रति यथाविधि यज्ञानुष्ठान करके देवताओंको सन्तुष्ट करते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण यज्ञ, वेद, ब्राह्मण आदि वर्ण, समस्त देवसमूह और प्राणिगण वृष्टिके ही आश्रित हैं। हे मुनिश्रेष्ठ ! अन्नको उत्पन्न करनेवाली वृष्टि ही इन सबको धारण करती है तथा उस वृष्टिकी उत्पत्ति सूर्यसे होती है।

हे मुनिवरोत्तम ! सूर्यका आधार ध्रुव है, ध्रुवका शिशुमार है तथा शिशुमारके आश्रय भगवान् श्रीनारायण हैं। उस शिशुमारके हृदयमें श्रीनारायण स्थित हैं, जिन्हें समस्त प्राणियोंके पालनकर्ता तथा आदिभूत सनातन पुरुष कहा जाता है।

दसवाँ अध्याय

द्वादश सूर्योंके नाम एवं अधिकारियोंका वर्णन

श्रीपराशरजी बोले—आरोह और अवरोहके द्वारा सूर्यकी एक वर्षमें जितनी गति है, उस सम्पूर्ण मार्गकी दोनों काष्ठाओंका अन्तर एक सौ अस्सी मण्डल है। सूर्यका रथ (प्रतिमास) भिन्न-भिन्न आदित्य, ऋषि, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, सर्प और राक्षसगण गणोंसे अधिष्ठित होता है। हे मैत्रेय ! मधुमास अर्थात् चैत्रमें सूर्यके रथमें सर्वदा धाता नामक आदित्य, क्रतुस्थला अप्सरा, पुलस्त्य ऋषि, वासुकि सर्प, रथभृत यक्ष, हेति राक्षस और तुम्बुरु गन्धर्व—ये सात मासाधिकारी रहते हैं। ऐसे ही अर्यमा नामक आदित्य, पुलह ऋषि, रथौजा यक्ष, पुञ्जिकस्थला अप्सरा, प्रहेति राक्षस, कच्छनीर सर्प और नारद नामक गन्धर्व—ये वैशाख मासमें सूर्यके रथपर निवास करते हैं। हे मैत्रेय ! अब ज्येष्ठ मासमें निवास करनेवालोंके नाम सुनो। उस समय मित्र नामक आदित्य, अत्रि ऋषि, तक्षक सर्प, पौरुषेय राक्षस, मेनका अप्सरा, हाहा गन्धर्व और रथस्वन नामक यक्ष—ये उस रथमें वास करते हैं। आषाढ़ मासमें वरुण नामक आदित्य, वसिष्ठ ऋषि, नाग सर्प, सहजन्या अप्सरा, हूहू गन्धर्व, रथ राक्षस और रथचित्र नामक यक्ष उसमें रहते हैं। श्रावण मासमें इन्द्र नामक आदित्य, विश्वावसु गन्धर्व, स्रोत यक्ष, एलापत्र सर्प, अङ्गिरा ऋषि, प्रम्लोचा अप्सरा और सर्पि नामक राक्षस सूर्यके रथमें बसते हैं। भाद्रपदमें विवस्वान् नामक आदित्य, उग्रसेन गन्धर्व, भृगु ऋषि, आपूरण यक्ष, अनुम्लोचा अप्सरा, शंखपाल सर्प और व्याघ्र नामक राक्षसका उसमें निवास होता है। आश्विन मासमें पूषा नामक आदित्य, वसुरुचि गन्धर्व, वात राक्षस, गौतम ऋषि, धनञ्जय सर्प, सुषेण गन्धर्व और घृताची नामक अप्सराका उसमें वास होता है। कार्तिक मासमें पर्जन्य आदित्य, विश्वावसु नामक गन्धर्व, भरद्वाज ऋषि, ऐरावत सर्प, विश्वाची अप्सरा, सेनजित् यक्ष तथा आप नामक राक्षस रहते हैं

मार्गशीर्षमासके अधिकारी अंश नामक आदित्य, काश्यप ऋषि, तार्क्ष्य यक्ष, महापद्म सर्प, उर्वशी अप्सरा, चित्रसेन गन्धर्व और विद्युत् नामक राक्षस हैं। हे विप्रवर ! क्रतु ऋषि, भग आदित्य ऊर्णायु गन्धर्व, स्फूर्ज राक्षस, कर्कोटक सर्प, अरिष्टनेमि यक्ष तथा पूर्वचिति अप्सरा—ये अधिकारिगण पौषमासमें जगत्को प्रकाशित करनेके लिये सूर्यमण्डलमें रहते हैं।

हे मैत्रेय! त्वष्टा नामक आदित्य, जमदग्नि ऋषि, कम्बल सर्प, तिलोत्तमा अप्सरा, ब्रह्मोपेत राक्षस, ऋतजित् यक्ष और धृतराष्ट्र गन्धर्व—ये सात माघ मासमें भास्करमण्डलमें रहते हैं। अब जो फाल्गुन मासमें सूर्यके रथमें रहते हैं उनके नाम सुनो। हे महामुने! वे विष्णु नामक आदित्य, अश्वतर सर्प, रम्भा अप्सरा, सूर्यवर्चा गन्धर्व, सत्यजित् यक्ष, विश्वामित्र ऋषि और यज्ञोपेत नामक राक्षस हैं।

हे ब्रह्मन्! इस प्रकार भगवान् विष्णुकी शक्तिसे तेजोमय हुए ये सात-सात गण एक-एक मासतक सूर्यमण्डलमें रहते हैं। मुनि लोग सूर्यकी स्तुति करते हैं, गन्धर्व सम्मुख रहकर उनका यशोगान करते हैं, अप्सराएँ नृत्य करती हैं, राक्षस रथके पीछे चलते हैं, सर्प वहन करनेके अनुकूल रथको सुसज्जित करते हैं, यक्षगण रथकी बागडोर सँभालते हैं तथा (नित्यसेवक) बालखिल्यादि इसे सब ओरसे घेरे रहते हैं। हे मुनिसत्तम! सूर्यमण्डलके ये सात-सात गण ही अपने-अपने समयपर उपस्थित होकर शीत, ग्रीष्म और वर्षा आदिके कारण होते हैं।

ग्यारहवाँ अध्याय

सूर्यशक्ति एवं वैष्णवी शक्तिका वर्णन

श्रीमैत्रेयजी बोले—भगवन्! आपने जो कहा कि सूर्यमण्डलमें स्थित सातों गण शीत-ग्रीष्म आदिके कारण होते हैं, यह मैं सुन चुका। हे गुरो! आपने सूर्यके रथमें स्थित और विष्णु-शक्तिसे प्रभावित गन्धर्व, सर्प, राक्षस, ऋषि, बालखिल्यादि, अप्सरा तथा यक्षोंके तो पृथक्-पृथक् व्यापार बतलाये, किंतु यह नहीं बतलाया कि सूर्यका कार्य क्या है? यदि सातों गण ही शीत, ग्रीष्म और वर्षाके करनेवाले हैं तो फिर सूर्यका क्या प्रयोजन है? और यह कैसे कहा जाता है कि वृष्टि सूर्यसे होती है? यदि सातों गणोंका यह वृष्टि आदि कार्य समान ही है तो 'सूर्य उदय हुआ, अब मध्यमें है, अब अस्त होता है' ऐसा लोग क्यों कहते हैं?

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय! तुमने जो कुछ पूछा है, उसका उत्तर सुनो। सूर्य सात गणोंमेंसे ही एक हैं तथापि उनमें प्रधान होनेसे उनकी विशेषता है। भगवान् विष्णुकी सर्वशक्तिमयी ऋक्, यजु और साम नामकी पराशक्ति है। वह वेदत्रयी ही सूर्यको ताप प्रदान करती है और (उपासना किये जानेपर) संसारके समस्त पापोंको नष्ट कर देती है। हे द्विज! जगत्‌की स्थिति और पालनके लिये वे ऋक्, यजु और सामरूप विष्णु सूर्यके भीतर निवास करते हैं। प्रत्येक मासमें जो सूर्य होते हैं, उन्हींमें वह वेदत्रयीरूपिणी विष्णुकी पराशक्ति निवास करती है। पूर्वाह्णमें ऋक्, मध्याह्नमें यजु तथा सायंकालमें बृहद्रथन्तरादि सामश्रुतियाँ सूर्यकी स्तुति करती हैं*। यह ऋक्-यजु-सामस्वरूपिणी वेदत्रयी भगवान् विष्णुका ही अङ्ग है। यह विष्णु-शक्ति सर्वदा आदित्यमें रहती है।

यह त्रयीमयी वैष्णवी शक्ति केवल सूर्यकी ही अधिष्ठात्री हो, यही नहीं, बल्कि ब्रह्मा, विष्णु और महादेव भी त्रयीमय ही हैं। सर्गके आदिमें ब्रह्मा ऋङ्मय हैं, उसकी स्थितिके समय विष्णु यजुर्मय हैं तथा अन्तकालमें रुद्र साममय हैं।

* इस विषयमें यह श्रुति भी है—

ऋचः पूर्वाह्णे दिवि देव ईयते, यजुर्वेदे तिष्ठति मध्ये अह्नः सामवेदेनास्तमये महीयते।

इसी भावका प्रकृत श्लोक भी द्रष्टव्य है—

ऋचः स्तुवन्ति पूर्वाह्णे मध्याह्नेऽथ यजूंषि वै।
बृहद्रथन्तरादीनि सामान्यह्नः क्षये रविम्॥ (वि० पु० २। ११। १०)

इस प्रकार वह त्रयीमयी सात्त्विकी वैष्णवी शक्ति अपने समयगणोंमें स्थित आदित्यमें ही (अतिशयरूपसे) अवस्थित होती है। उससे अधिष्ठित सूर्यदेव भी अपनी प्रखर रश्मियोंसे अत्यन्त प्रज्वलित होकर ससारके सम्पूर्ण अन्धकारको नष्ट कर देते हैं।

उन सूर्यदेवकी मुनिगण स्तुति करते हैं और गन्धर्वगण उनके सम्मुख यशोगान करते हैं। अप्सराएँ नृत्य करती हुई चलती हैं, राक्षस रथके पीछे रहते हैं, सर्पगण रथका साज सजाते हैं, यक्ष घोड़ोंकी बागडोर सँभालते हैं तथा बालखिल्यादि रथको सब ओरसे घेरे रहते हैं। त्रयीशक्तिरूप भगवान् (सूर्यस्वरूप) विष्णुका न कभी उदय होता है और न अस्त (अर्थात् वे स्थायीरूपसे सदा विद्यमान रहते हैं।) ये सात प्रकारके गण तो उनसे पृथक् हैं। स्तम्भमें लगे हुए दर्पणके समान जो कोई उनके निकट जाता है, उसीको अपनी छाया दिखायी देने लगती है। हे द्विज! इसी प्रकार वह वैष्णवीशक्ति सूर्यके रथसे कभी चलायमान नहीं होती और प्रत्येक मासमें पृथक्-पृथक् सूर्यके (परिवर्तित होकर) उसमें स्थित होनेपर वह उसकी अधिष्ठात्री होती है।

हे द्विज! दिन और रात्रिके कारणस्वरूप भगवान् सूर्य पितृगण, देवगण और मनुष्यादिको सदा तृप्त करते हुए घूमते रहते हैं। सूर्यकी जो सुषुम्ना नामकी किरण है, उससे शुक्लपक्षमें चन्द्रमाका पोषण होता है और फिर कृष्णपक्षमें उस अमृतमय चन्द्रमाकी एक-एक कलाका देवगण निरन्तर पान करते हैं। हे द्विज! कृष्णपक्षके क्षय होनेपर (चतुर्दशीके अनन्तर) दो कला युक्त चन्द्रमाका पितृगण पान करते हैं। इस प्रकार सूर्यद्वारा पितृगणका तर्पण होता है।

सूर्य अपनी किरणोंसे पृथिवीसे जितना जल खींचते हैं, उतनेको प्राणियोंकी पुष्टि और अन्नकी वृद्धिके लिये बरसा देते हैं। उससे भगवान् सूर्य समस्त प्राणियोंको आनन्दित कर देते हैं और इस प्रकार देव, मनुष्य और पितृगण आदि सभीका पोषण करते हैं। हे मैत्रेय! इस रीतिसे सूर्यदेव देवताओंकी पाक्षिक, पितृगणकी मासिक तथा मनुष्योंकी नित्यप्रति तृप्ति करते रहते हैं।

बारहवाँ अध्याय

नवग्रहोंका वर्णन तथा लोकान्तरसम्बन्धी व्याख्या

पराशरजी बोले—चन्द्रमाका रथ तीन पहियोंवाला है। उसके वाम तथा दक्षिण ओर कुन्द-कुसुमके समान श्वेतवर्ण दस घोड़े जुते हुए हैं। ध्रुवके आधारपर स्थित उस वेगशाली रथसे चन्द्रदेव भ्रमण करते हैं और नागवीथिपर आश्रित अश्विनी आदि नक्षत्रोंका भोग करते हैं। सूर्यके समान इनकी किरणोंके भी घटने-बढ़नेका निश्चित क्रम है। हे मुनिश्रेष्ठ! सूर्यके समान समुद्रगर्भसे उत्पन्न हुए उनके घोड़े भी एक बार जोत दिये जानेपर एक कल्पपर्यन्त रथ खींचते रहते हैं। हे मैत्रेय! सुरगणके पान करते रहनेसे क्षीण हुए कलामात्र चन्द्रमाका प्रकाशमय सूर्यदेव अपनी एक किरणसे पुन पोषण करते हैं। जिस क्रमसे देवगण चन्द्रमाका पान करते हैं, उसी क्रमसे जलापहारी सूर्यदेव उन्हें शुक्ल प्रतिपत्से प्रतिदिन पुष्ट करते हैं। हे मैत्रेय! इस प्रकार आधे महीनेमें एकत्र हुए चन्द्रमाके अमृतको देवगण फिर पीने लगते हैं, क्योंकि देवताओंका आहार तो अमृत है। तैंतीस हजार तीन सौ तैंतीस (३३३३३) देवगण चन्द्रस्थ अमृतका पान करते हैं। जिस समय दो कलामात्रसे अवस्थित चन्द्रमा सूर्यमण्डलमें प्रवेश करके उसकी 'अमा' नामक किरणमें रहते हैं, वह तिथि 'अमावस्या' कहलाती है। उस दिन रात्रिमें वे पहले तो जलमें प्रवेश करते हैं फिर वृक्ष-लता आदिमें निवास करते हैं और तदनन्तर क्रमसे सूर्यमें चले जाते हैं। वृक्ष और लता आदिमें

चन्द्रमाकी स्थितिके समय (अमावस्याको) जो उन्हें काटता है अथवा उनका एक पत्ता भी तोड़ता है, उसे ब्रह्महत्याका पाप लगता है। केवल पन्द्रहवीं कलारूप यत्किंचित् भागके शेष रहनेपर उस क्षीण चन्द्रमाको पितृगण मध्याह्नोत्तर कालमें चारों ओरसे घेर लेते हैं। हे मुने! उस समय उस द्विकलाधर चन्द्रमाकी बची हुई अमृतमयी एक कलाका वे पितृगण पान करते हैं। अमावस्याके दिन चन्द्ररश्मिसे निकले हुए उस सुधामृतका पान करके अत्यन्त तृप्त हुए सौम्य, बर्हिषद् और अग्निष्वात्त—तीन प्रकारके पितृगण एक मासपर्यन्त सन्तुष्ट रहते हैं। इस प्रकार चन्द्रदेव शुक्लपक्षमें देवताओंकी और कृष्णपक्षमें पितृगणकी पुष्टि करते हैं तथा अमृतमय शीतल जलकणोंसे लता-वृक्ष, ओषधि आदिको उत्पन्न कर अपनी चन्द्रिकाद्वारा आह्लादित करके वे मनुष्य, पशु एवं कीट-पतंगादि सभी प्राणियोंका पोषण करते हैं।

चन्द्रमाके पुत्र बुधका रथ वायु और अग्निमय द्रव्यका बना हुआ है और उसमें वायुके समान वेगशाली आठ पिशंग वर्णवाले घोड़े जुते हैं। वरूथ[1], अनुकर्ष[2], उपासंग[3] और पताका तथा पृथ्वीसे उत्पन्न हुए घोड़ोंके सहित शुक्रका रथ भी अति महान् है। मंगलका अति शोभायमान सुवर्णनिर्मित महान् रथ भी अग्निसे उत्पन्न हुए, पद्मरागमणिके समान, अरुणवर्ण आठ घोड़ोंसे युक्त है। जो आठ पाण्डुरवर्णवाले घोड़ोंसे युक्त स्वर्णका रथ है, उसमें वर्षके अन्तमें प्रत्येक राशिमें बृहस्पतिजी विराजमान होते हैं। आकाशसे उत्पन्न हुए विचित्रवर्णके घोड़ोंसे युक्त रथमें आरूढ होकर मन्दगामी शनैश्चर धीरे-धीरे चलते हैं।

राहुका रथ धूसर (मटियाले) वर्णका है। उसमें भ्रमरके समान कृष्णवर्णके आठ घोड़े जुते हुए हैं। हे मैत्रेय! एक बार जोत दिये जानेपर वे घोड़े निरन्तर चलते रहते हैं। चन्द्रपर्वों (पूर्णिमा) पर यह राहु सूर्यसे निकलकर चन्द्रमाके पास आता है तथा सौरपर्वोंमें (अमावस्या)पर यह चन्द्रमासे निकलकर सूर्यके निकट जाता है। इसी प्रकार केतुके रथके वायुवेगशाली आठ घोड़े भी पुआलके धुएँकी-सी आभावाले तथा लाखके समान लाल रंगके हैं।

हे महाभाग! मैंने तुमसे नवग्रहोंके रथोंका यह वर्णन किया। ये सभी वायुमयी डोरीसे ध्रुवके साथ बँधे हुए हैं। हे मैत्रेय! समस्त ग्रह, नक्षत्र और तारा-मण्डल वायुमयी रज्जुसे ध्रुवके साथ बँधे हुए यथोचित प्रकारसे घूमते रहते हैं। जितने तारागण हैं, उतनी ही वायुमयी डोरियाँ हैं। उनसे बँधकर वे स्वयं घूमते तथा ध्रुवको घुमाते रहते हैं। जिस प्रकार तेली लोग स्वयं घूमते हुए कोल्हूको भी घुमाते रहते हैं, उसी प्रकार समस्त ग्रहगण वायुसे बँधकर घूमते रहते हैं। क्योंकि इस वायु चक्रसे प्रेरित होकर समस्त ग्रहगण अलातचक्र (बनैती)के समान घूमा करते हैं, इसलिये यह 'प्रवह' कहलाता है।

हे मुनिश्रेष्ठ! जिस शिशुमारचक्रका पहले वर्णन कर चुका हूँ, तथा जहाँ ध्रुव स्थित है, अब तुम उसकी स्थितिका वर्णन सुनो। रात्रिके समय उनका दर्शन करनेसे मनुष्य दिनमें जो कुछ पापकर्म करता है, उससे मुक्त हो जाता है तथा आकाशमण्डलमें जितने तारे इसके आश्रित हैं, उतने ही अधिक वर्ष वह जीवित रहता है। उत्तानपाद उसकी ऊपरकी हनु (ठोड़ी) है और यज्ञ नीचेकी तथा धर्मने उसके मस्तकपर

१ रथकी रक्षाके लिये बना हुआ लोहेका आवरण। २ रथके नीचेका भाग।
३ शस्त्र रखनेका स्थान।

अधिकार कर रक्खा है, उसके हृदय-देशमें नारायण हैं, पूर्वके दोनों चरणोंमें अश्विनीकुमार हैं तथा जघाओंमें वरुण और अर्यमा हैं। संवत्सर उसका शिश्न है, मित्रने उसके अपान-देशको आश्रित कर रक्खा है, अग्नि, महेन्द्र, कश्यप और ध्रुव पुच्छभागमें स्थित हैं। शिशुमारके पुच्छभागमें स्थित ये अग्नि आदि चार तारे कभी अस्त नहीं होते। इस प्रकार मैंने तुमसे पृथ्वी, ग्रहगण, द्वीप, समुद्र, पर्वत, वर्ष और नदियोंका तथा जो-जो उनमें बसते हैं, उन सभीके स्वरूपका वर्णन कर दिया।

अग्निपुराणमे सूर्य-प्रकरण

[अग्निपुराणसे सकलित इस परिच्छेदमें १९वें, ५१वें, ७३वें, ९९वें और १४८वें अध्यायोंसे सूर्यसम्बन्धी सामग्रियोंका यथावत् सचयन-सकलन किया गया है; जिसमें ये विषय हैं— कश्यप आदिके वंश, सूर्यादि ग्रहों तथा दिक्पाल आदि देवताओंकी प्रतिमाओंके लक्षण, सूर्यदेवकी पूजा स्थापनाकी विधियाँ, सग्राम-विजय-दायक सूर्यपूजा-विधान।]

उन्नीसवाँ अध्याय

कश्यप आदिके वंशका वर्णन

अग्निदेव बोले—हे मुने! अब मैं अदिति आदि दक्ष-कन्याओंसे उत्पन्न हुई कश्यपजीकी सृष्टिका वर्णन करता हूँ—चाक्षुष मन्वन्तरमें जो तुषित नामक बारह देवता थे, वे ही पुन इस वैवस्वत मन्वन्तरमें कश्यपके अंशसे अदितिके गर्भसे आये थे। वे विष्णु, शक्र (इन्द्र), त्वष्टा, धाता, अर्यमा, पूषा, विवस्वान्, सविता, मित्र, वरुण, भग और अंशुनामक बारह आदित्य* हुए। अरिष्टनेमिकी चार पत्नियोंसे सोलह सतानें उत्पन्न हुईं। विद्वान् बहुपुत्रके (उनकी दो पत्नियोंसे कपिला, लोहिता आदिके भेदसे) चार प्रकारकी विद्युत्स्वरूपा कन्याएँ उत्पन्न हुईं। अङ्गिरामुनिसे (उनकी दो पत्नियोंद्वारा) श्रेष्ठ ऋचाएँ हुईं तथा कृशाश्वके भी (उनकी दो पत्नियोंसे) देवताओंके दिव्य आयुध† उत्पन्न हुए।

जैसे आकाशमें सूर्यके उदय और अस्तभाव बारबार होते रहते हैं, उसी प्रकार देवतालोग युग-युगमें (कल्प-कल्पमें) उत्पन्न (एव विनष्ट) होते रहते हैं ‡।

---

* यहाँ दी हुई आदित्योंकी नामावली हरिवंशके हरिवंशपर्वगत तीसरे अध्यायमें श्लोक-स० ६०-६१में कथित नामावलीसे ठीक-ठीक मिलती है।

† प्रत्यङ्गिरसजा श्रेष्ठा कृशाश्वस्य सुरायुधा।

इस वाक्यमें पूरे एक श्लोकका भाव सनिविष्ट है। अत उस सम्पूर्ण श्लोकपर दृष्टि न रक्खी जाय तो अर्थके समझनेमें भ्रम होता है। हरिवंशके निम्नाङ्कित (हरि० ३। ६८) श्लोकसे उपर्युक्त पङ्क्तियोंका भाव पूर्णत स्पष्ट होता है—

प्रत्यङ्गिरसजा श्रेष्ठा ऋचो ब्रह्मर्षिसत्कृता। कृशाश्वस्य तु राजर्षेर्देवप्रहरणानि च॥

सम्पूर्ण दिव्यास्त्र कृशाश्वके पुत्र हैं, इस विषयमें वा० रामायण बाल० सर्ग २१के श्लोक १३ १४ तथा मत्स्यपुराण ६। ६ द्रष्टव्य है।

‡ इसको समझनेके लिये भी हरिवंशके निम्नाङ्कित श्लोकपर दृष्टिपात करना आवश्यक है—

एते युगसहस्रान्ते जायन्ते पुनरेव हि। सर्वदेवगणास्तात त्रयस्त्रिंशत्तु कामजा॥

—यही भाव मत्स्यपुराण ६। ७ में भी आया है।

कश्यपजीसे उनकी पत्नी दितिके गर्भसे हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्षनामक पुत्र उत्पन्न हुए । फिर सिंहिका नामवाली एक कन्या भी हुई, जो विप्रचित्तिनामक दानवकी पत्नी हुई । उसके गर्भसे राहु आदिकी उत्पत्ति हुई, जो 'सैंहिकेय'नामसे विख्यात हुए । हिरण्यकशिपुके चार पुत्र हुए, जो अपने बल-पराक्रमके कारण विख्यात थे । इनमें पहला ह्राद, दूसरा अनुह्राद और तीसरे प्रह्लाद हुए, जो महान् विष्णुभक्त थे और चौथा संह्राद था । ह्रादका पुत्र ह्रद हुआ । संह्रादके पुत्र आयुष्मान्, शिवि और बाष्कल थे । प्रह्लादका पुत्र विरोचन हुआ और विरोचनसे बलिका जन्म हुआ । हे महामुने ! बलिके सौ पुत्र हुए, जिनमें बाणासुर ज्येष्ठ था । पूर्वकल्पमें इस बाणासुरने भगवान् उमापतिको (भक्तिभावसे) प्रसन्न कर उन परमेश्वरसे यह वरदान प्राप्त किया था कि 'मैं आपके पास ही विचरता रहूँगा ।' हिरण्याक्षके पाँच पुत्र थे—शम्बर, शकुनि, द्विमूर्धा, शङ्कु और आर्य । कश्यपजीकी दूसरी पत्नी दनुके गर्भसे सौ दानव पुत्र उत्पन्न हुए ।

इनमें स्वर्भानुकी कन्या सुप्रभा थी और पुलोमा दानवकी पुत्री थी शची । उपदानवकी कन्या हयशिरा थी और वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठा । पुलोमा और कालका—ये दो वैश्वानरकी कन्याएँ थीं । ये दोनों कश्यपजीकी पत्नी हुईं । इन दोनोंके करोड़ों पुत्र थे । प्रह्लादके वंशमें चार करोड़ 'निवातकवच'नामक दैत्य हुए । कश्यपजीकी ताम्रा नामवाली पत्नीसे छः पुत्र हुए । इनके अतिरिक्त काकी, श्येनी, भासी, गृध्रिका और शुचिग्रीवा आदि भी कश्यपजीकी भार्याएँ थीं । उनसे काक आदि पक्षी उत्पन्न हुए । ताम्राके पुत्र घोड़े और ऊँट थे । विनताके अरुण और गरुड़नामक दो पुत्र हुए । सुरसासे हजारों साँप उत्पन्न हुए और कद्रूके गर्भसे भी शेष, वासुकि और तक्षक आदि सहस्रों नाग हुए । क्रोधवशाके गर्भसे दशनशील दाँतवाले सर्प उत्पन्न हुए । धरासे जल-पक्षी उत्पन्न हुए । सुरभिसे गाय-भैंस आदि पशुओंकी उत्पत्ति हुई । इराके गर्भसे तृण आदि उत्पन्न हुए । यक्ष-राक्षस और मुनिके गर्भसे अप्सराएँ प्रकट हुईं । इसी प्रकार अरिष्टाके गर्भसे गन्धर्व उत्पन्न हुए । इस प्रकार कश्यपजीसे स्थावर-जङ्गम जगत्की उत्पत्ति हुई ।

इन सबके असंख्य पुत्र हुए । देवताओंने दैत्योंको युद्धमें जीत लिया । अपने पुत्रोंके मारे जानेपर दितिने कश्यपजीको सेवासे संतुष्ट किया । वह इन्द्रका वध करनेवाले पुत्रको पाना चाहती थी । उसने कश्यपजीसे अपना यह अभिमत वर प्राप्त कर लिया । जब वह गर्भवती और व्रतपालनमें तत्पर थी, उस समय एक दिन भोजनके बाद बिना पैर धोये ही सो गयी । तब इन्द्रने यह छिद्र (त्रुटि या दोष) ढूँढ़कर उसके गर्भमें प्रवेश किया और वज्रसे उस गर्भके टुकड़े-टुकड़े कर दिये, (किंतु व्रतके प्रभावसे उनकी मृत्यु नहीं हुई ।) वे सभी अत्यन्त तेजस्वी और इन्द्रके सहायक उनचास मरुत्-नामक देवता हुए । मुने ! यह सारा वृत्तान्त मैंने सुना दिया । श्रीहरिस्वरूप ब्रह्माजीने पृथुको नरलोकके राजपदपर अभिषिक्त करके क्रमशः दूसरोंको भी राज्य दिये—उन्हें विभिन्न समूहोंका राजा बनाया । अन्य सबके अधिपति (तथा परिगणित अधिपतियोंके भी अधिपति) साक्षात् श्रीहरि ही हैं ।

ब्राह्मणों और ओषधियोंके राजा चन्द्रमा हुए । जलके स्वामी वरुण हुए । राजाओंके राजा कुबेर हुए । द्वादश सूर्यों (आदित्यों) के अधीश्वर भगवान् विष्णु थे । वसुओंके राजा पावक और मरुद्गणोंके स्वामी इन्द्र हुए । प्रजापतियोंके स्वामी दक्ष और दानवोंके अधिपति प्रह्लाद हुए । पितरोंके यमराज और भूत आदिके स्वामी सर्वसमर्थ भगवान् शिव हुए तथा शैलों (पर्वतों) के राजा हिमवान् हुए और नदियोंका स्वामी सागर हुआ । गन्धर्वोंके चित्ररथ, नागोंके वासुकि, सर्पोंके तक्षक और पक्षियोंके गरुड़ राजा हुए । श्रेष्ठ हाथियोंका स्वामी

ऐरावत हुआ और गौओंका अधिपति साँड़। वनचर जीवोंका स्वामी शेर हुआ और वनस्पतियोंका प्लक्ष (पकड़ी)। घोड़ोंका स्वामी उच्चैःश्रवा हुआ। सुधन्वा पूर्व दिशाका रक्षक हुआ। दक्षिण दिशामें शङ्खपद और पश्चिममें केतुमान् रक्षक नियुक्त हुए। इसी प्रकार उत्तर दिशामें हिरण्यरोमक नामका राजा हुआ।

इक्यानवाँ अध्याय

सूर्यादि ग्रहों तथा दिक्पाल आदि देवताओंकी प्रतिमाओंके लक्षणोंका वर्णन

भगवान् श्रीहयग्रीव कहते हैं—ब्रह्मन्! सात अश्वोंसे जुते हुए एक पहियेवाले रथपर विराजमान सूर्यदेवकी प्रतिमाको स्थापित करना चाहिये। भगवान् सूर्य अपने दोनों हाथोंमें दो कमल धारण किये हुए हों। उनके दाहिने भागमें दावात और कलम लिये दण्डी खड़े हों और वामभागमें पिङ्गल हाथमें दण्ड लिये द्वार पर विद्यमान हों। ये दोनों सूर्यदेवके पार्षद हैं। भगवान् सूर्यदेवके उभय पार्श्वमें बाल-व्यजन (चँवर) लिये 'राज्ञी' तथा 'निष्प्रभा'* खड़ी हों अथवा घोड़ेपर चढ़े हुए एकमात्र सूर्यकी ही प्रतिमा बनानी चाहिये। समस्त दिक्पाल हाथोंमें वरद मुद्रा, दो-दो कमल तथा शस्त्र लिये क्रमशः पूर्वादि दिशाओंमें स्थित दिखाये जाने चाहिये।

बारह दलोंका एक कमल-चक्र बनावे। उसमें सूर्य, अर्यमा † आदि नामवाले बारह आदित्योंका क्रमशः बारह दलोंमें स्थापन करे। यह स्थापना वरुण-दिशा एवं वायव्य कोणसे आरम्भ करके नैर्ऋत्यकोणके अन्ततकके दलोंमें होनी चाहिये। उक्त आदित्यगण चार-चार हाथवाले हों और उन हाथोंमें मुद्गर, शूल, चक्र एवं कमल धारण किये हों। अग्निकोणसे लेकर नैर्ऋत्यतक, नैर्ऋत्यसे वायव्य तक, वायव्यसे ईशानतक और वहाँसे अग्निकोणतकके दलोंमें उक्त आदित्योंकी स्थिति जाननी चाहिये।

बारह आदित्योंके नाम इस प्रकार हैं—वरुण, सूर्य, सहस्रांशु, धाता, तपन, सविता, गभस्तिक, रवि, पर्जन्य, त्वष्टा, मित्र और विष्णु। ये मेष आदि बारह राशियोंमें स्थित होकर जगत्‌को ताप एवं प्रकाश देते हैं। ये वरुण आदि आदित्य क्रमशः मार्गशीर्ष मास (या वृश्चिकराशि) से लेकर कार्तिक मास (या तुलाराशि) तकके मासों (एवं राशियों) में स्थित होकर अपना कार्य सम्पन्न करते हैं। इनकी अङ्गकान्ति क्रमशः काली, लाल, कुछ-कुछ लाल, पीली, पाण्डुवर्ण, श्वेत, कपिलवर्ण, पीतवर्ण, तोतेके समान हरी, धवलवर्ण, धूम्रवर्ण और नीली है। इनकी शक्तियाँ द्वादशदल कमलके केसरोंके अग्रभागमें स्थित होती हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—इडा, सुषुम्ना, विश्वार्चि, इन्दु, प्रमर्दिनी (प्रधर्षिणी), प्रहर्षिणी, महाकाली, कपिला, प्रबोधिनी, नीलाम्बरा, घनान्तस्था (वनान्तस्था) और अमृताख्या। वरुण आदिकी जो अङ्गकान्ति है, वही इन शक्तियोंकी भी है। केसरोंके अग्रभागोंमें इनकी स्थापना करे। सूर्यदेवका तेज प्रचण्ड और मुख विशाल है। उनके दो भुजाएँ हैं। वे अपने हाथोंमें कमल और खड्ग धारण करते हैं।

---

* 'राज्ञी' और 'निष्प्रभा'—ये चँवर डुलानेवाली स्त्रियोंके नाम हैं, अथवा इन नामोंद्वारा सूर्यदेवकी दोनों पत्नियोंकी ओर संकेत किया गया है। 'राज्ञी' शब्दसे उनकी रानी 'संज्ञा' गृहीत होती है और 'निष्प्रभा' शब्दसे 'छाया'—ये दोनों देवियाँ चँवर डुलाकर पतिकी सेवा करती रहती हैं।

† वरुण आदि द्वादश आदित्योंके नाम अन्यत्र गिनाये गये हैं और अर्यमा आदि द्वादश आदित्योंके नाम ५१वें अध्यायमें देखने चाहिये। ये नाम वैवस्वत मन्वन्तरके आदित्योंके हैं। चाक्षुष मन्वन्तरमें ये ही 'तुषित' नामसे विख्यात थे। अन्य पुराणोंमें भी आदित्योंकी नामावली तथा उनके मासक्रममें यहाँकी अपेक्षा कुछ अन्तर मिलता है। इसकी संगति कल्पभेदके अनुसार माननी चाहिये।

चन्द्रमा कुण्डिका तथा जपमाला धारण करते हैं। मङ्गलके हाथोंमें शक्ति और अक्षमाला शोभित होती हैं। बुधके हाथोंमें धनुष और अक्षमाला शोभा पाती हैं। बृहस्पति कुण्डिका और अक्षमालाधारी हैं। शुक्रका भी ऐसा ही स्वरूप है अर्थात् उनके हाथोंमें भी कुण्डिका और अक्षमाला शोभित होती हैं। शनि किङ्किणी-सूत्र धारण करते हैं। राहु अर्द्धचन्द्रधारी हैं तथा केतुके हाथोंमें खड्ग और दीपक शोभा पाते हैं।

समस्त लोकपाल द्विभुज हैं। विश्वकर्मा अक्षसूत्र धारण करते हैं। हनुमान्‌जीके हाथमें वज्र है। उन्होंने अपने दोनों पैरोंसे एक असुरको दबा रक्खा है। किंनर-मूर्तियाँ हाथमें वीणा लिये हों और विद्याधर माला धारण किये आकाशमें स्थित दिखाये जायँ। पिशाचोंके शरीर दुर्बल कङ्कालमात्र हों। वेतालोंके मुख विकराल हों। क्षेत्रपाल शूलधारी बनाये जायँ। प्रेतोंके पेट लंबे और शरीर कृश हों।

तिहत्तरवाँ अध्याय

सूर्यदेवकी पूजा-विधिका वर्णन

महादेवजी कहते हैं—स्कन्द! अब मैं करन्यास और अङ्गन्यासपूर्वक सूर्यदेवताके पूजनकी विधि बताऊँगा। 'मैं तेजोमय सूर्य हूँ'—ऐसा चिन्तन करके अर्घ्य-पूजन करे। लाल रंगके चन्दन या रोलीसे मिश्रित जलको ललाटके निकटतक ले जाकर उसके द्वारा अर्घ्यपात्रको पूर्ण करे। उसका गन्धादिसे पूजन करके सूर्यके अङ्गोंद्वारा रक्षावगुण्ठन करे। तत्पश्चात् जलसे पूजा सामग्रीका प्रोक्षण करके पूर्वाभिमुख हो सूर्यदेवकी पूजा करे। 'ॐ आं हृदयाय नमः' इस प्रकार आदिमें स्वर बीज लगाकर सिर आदि अन्य सब अङ्गोंमें भी न्यास करे। पूजा-गृहके द्वारदेशमें दक्षिणकी ओर 'दण्डी'का और वामभागमें 'पिङ्गल'का पूजन करे। ईशानकोणमें 'ॐ गं गणपतये नमः'—इस मन्त्रसे गणेशकी और अग्निकोणमें गुरुकी पूजा करे। पीठके मध्यभागमें कमलाकार आसनका चिन्तन एवं पूजन करे। पीठके अग्नि आदि चारों कोणोंमें क्रमशः विमल, सार, आराध्य तथा परम सुखकी और मध्यभागमें प्रभूतासनकी पूजा करे। उपर्युक्त प्रभूत आदि चारोंके वर्ण क्रमशः श्वेत, लाल, पीले और नीले हैं तथा उनकी आकृति सिंहके समान है। इन सबकी पूजा करनी चाहिये।

पीठस्थ कमलके भीतर 'रां दीप्तायै नमः'—इस मन्त्रद्वारा दीप्ताकी, 'रीं सूक्ष्मायै नमः'—इस मन्त्रसे सूक्ष्माकी, 'रूं जयायै नमः'—इससे जयाकी, 'रें भद्रायै नमः'—इससे भद्राकी, 'रैं विभूतये नमः' इससे विभूतिकी, 'रों विमलायै नमः'—इससे विमलाकी, 'रौं अमोघायै नमः'—इससे अमोघाकी तथा 'रं विद्युतायै नमः'—इससे विद्युताकी पूर्व आदि आठों दिशाओंमें पूजा करे और मध्यभागमें 'रः सर्वतोमुख्यै नमः'—इस मन्त्रसे नवीं पीठशक्ति सर्वतोमुखीकी आराधना करे। तत्पश्चात् 'ॐ ब्रह्मविष्णुशिवात्मकाय सौराय योगपीठात्मने नमः'—इस मन्त्रके द्वारा सूर्यदेवके आसन (पीठ) का पूजन करे। तदनन्तर 'खखोल्काय नमः' इस षडक्षर मन्त्रके आरम्भमें 'ॐ हं खं' जोड़कर नौ अक्षरोंसे युक्त 'ॐ हं खं खखोल्काय नमः'—इस मन्त्रद्वारा सूर्यदेवके विग्रहका आवाहन करे। इस प्रकार आवाहन करके भगवान् सूर्यकी पूजा करनी चाहिये।

अञ्जलिमें लिये हुए जलको ललाटके निकटतक ले जाकर रक्त वर्णवाले सूर्यदेवका ध्यान करके उन्हें भावनाद्वारा अपने सामने स्थापित करे[1]। फिर 'ह्रां ह्रीं सः सूर्याय नमः'—ऐसा कहकर उक्त जलसे सूर्यदेवको अर्घ्य दे। इसके बाद 'बिम्बमुद्रा' दिखाते हुए आवाहन आदि उपचार अर्पित करे। तदनन्तर

१ पद्माकारौ करौ कृत्वा प्रतिलिप्तौ तु मध्यमे। अङ्गुष्ठौ धारयेदस्मिन् बिम्बमुद्रेति कथ्यते॥

सूर्यदेवकी प्रीतिके लिये गन्ध (चन्दन-रोली) आदि समर्पित करे । तत्पश्चात् 'पद्ममुद्रा' और 'बिम्बमुद्रा' दिखाकर अग्नि आदि कोणोंमें हृदय आदि अङ्गोंकी पूजा करे । अग्निकोणमें 'ॐ आं हृदयाय नमः'—इस मन्त्रसे हृदयकी, नैर्ऋत्यकोणमें 'ॐ भूः अर्काय शिरसे स्वाहा'—इससे सिरकी, वायव्यकोणमें 'ॐ भुवः सुरेशाय शिखायै वषट्'—इससे शिखाकी, ईशानकोणमें 'ॐ स्वः कवचाय हुम्'—इससे कवचकी, इष्टदेव और उपासकके बीचमें 'ॐ ह्रां नेत्रत्रयाय वौषट्'—से नेत्रकी तथा देवताके पश्चिमभागमें 'वः अस्त्राय फट्'—इस मन्त्रसे अस्त्रकी पूजा करे[1] । इसके बाद पूर्वादि दिशाओंमें मुद्राओंका प्रदर्शन करे ।

हृदय, सिर, शिखा और कवच—इनके लिये पूर्वादि दिशाओंमें धेनुमुद्राका प्रदर्शन करे । नेत्रोंके लिये गोशृङ्गकी मुद्रा दिखाये । अस्त्रके लिये त्रासनी मुद्राकी योजना करे । तत्पश्चात् ग्रहोंको नमस्कार और उनका पूजन करे । 'ॐ सों सोमाय नमः'—इस मन्त्रसे पूर्वमें चन्द्रमाकी, 'ॐ बुं बुधाय नमः'—इस मन्त्रसे दक्षिणमें बुधकी, 'ॐ बृं बृहस्पतये नमः'—इस मन्त्रसे पश्चिममें बृहस्पतिकी और 'ॐ भं भार्गवाय नमः'—इस मन्त्रसे उत्तरमें शुक्रकी पूजा करे । इस तरह पूर्वादि दिशाओंमें चन्द्रमा आदि ग्रहोंकी पूजा करके, अग्नि आदि कोणोंमें शेष ग्रहोंका पूजन करे । यथा—'ॐ भौं भौमाय नमः'—इस मन्त्रसे अग्निकोणमें मङ्गलकी, 'ॐ शं शनैश्चराय नमः'—इस मन्त्रसे नैर्ऋत्यकोणमें शनैश्चरकी, 'ॐ रां राहवे नमः'—इस मन्त्रसे वायव्यकोणमें राहुकी तथा 'ॐ कें केतवे नमः'—इस मन्त्रसे ईशानकोणमें केतुकी गन्ध आदि उपचारोंसे पूजा करे । खखोल्की (भगवान् सूर्य)के साथ इन सब ग्रहोंका पूजन करना चाहिये ।

मूलमन्त्र[3]का जप करके अर्घ्यपात्रमें जल लेकर सूर्यको समर्पित करनेके पश्चात् उनकी स्तुति करे । इस तरह स्तुतिके पश्चात् सामने मुँह किये खड़े होकर सूर्यदेवको नमस्कार करके कहे—'प्रभो ! आप मेरे अपराधों और त्रुटियोंको क्षमा करें ।' इसके बाद 'अस्त्राय फट्'—इस मन्त्रसे अणुसंहारका समाहरण करके 'शिव ! सूर्य ! (कल्याणमय सूर्यदेव !)'—ऐसा कहते हुए संहारिणी-शक्ति या मुद्राके द्वारा सूर्यदेवके उपसंहृत तेजको अपने हृदय-कमलमें स्थापित कर दे तथा सूर्यदेवका निर्माल्य उनके पार्षद चण्डको अर्पित करे । इस प्रकार जगदीश्वर सूर्यका पूजन करके उनका ध्यान, जप और होम करनेसे साधकका सारा मनोरथ सिद्ध होता है ।

१ हस्तौ तु सम्मुखौ कृत्वा सनतप्रोन्नताङ्गुलौ । तलान्तर्मिलिताङ्गुष्ठौ मुद्रैषा पद्मसंज्ञिता ॥

२ मन्त्रमहार्णवमें हृदयादि अङ्गोंके पूजनका क्रम इस प्रकार दिया गया है—

अग्निकोणे—ॐ सत्यतेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा हृदयाय नमः, हृदयश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः । निर्ऋतिकोणे—ॐ ब्रह्मतेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा शिरसे स्वाहा शिरःश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः । वायव्ये—ॐ विष्णुतेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा शिखायै वषट् शिखाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः । ऐशान्ये—ॐ रुद्रतेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा कवचाय हुं कवचश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः । पूज्यपूजकयोर्मध्ये—ॐ अग्नितेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा नेत्रत्रयाय वौषट् नेत्रश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः । देवतापश्चिमे—ॐ सर्वतेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा अस्त्राय फट् अस्त्रश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।

३ शारदातिलकके अनुसार सूर्यका दशाक्षर मूल मन्त्र इस प्रकार है—'ॐ ह्रीं घृणि सूर्य आदित्य श्रीं ।' किंतु यहाँ 'ॐ हं खं' इन बीजोंके साथ 'खखोल्काय नमः ।' इस पन्द्रह अक्षरवाले मन्त्रका उल्लेख है । अतः इसीको यहाँ मूल मन्त्र समझना चाहिये ।

निन्यानबेवाँ अध्याय

सूर्यदेवकी स्थापनाकी विधि

भगवान् शिव बोले—स्कन्द ! अब मैं सूर्यदेवकी प्रतिष्ठाका वर्णन करूँगा । पूर्ववत् मण्डप-निर्माण और स्नान आदि कार्यका सम्पादन करके, पूर्वोक्तविधिसे विधा तथा साङ्ग सूर्यदेवका आसन-शय्यामें न्यास करके त्रितत्त्वका, ईश्वरका तथा आकाशादि पाँच भूतोंका न्यास करे ।

पूर्ववत् शुद्धि आदि करके पिण्डीका शोधन करे । फिर 'सदेशपद'-पर्यन्त तत्त्वपञ्चकका न्यास करे । तदनन्तर सर्वतोमुखी शक्तिके साथ विधिवत् स्थापना करके, गुरु एवं सूर्य-सम्बन्धी मन्त्र बोलते हुए शक्त्यन्त सूर्यका विधिवत् स्थापन करे ।

श्रीसूर्यदेवका स्वाम्यन्त अथवा पादान्त नाम रक्खे । (यथा विक्रमादित्य-स्वामी अथवा रामादित्यपाद इत्यादि) सूर्यके मन्त्र पहले बताये गये हैं, उन्हींका स्थापन कालमें भी साक्षात्कार (प्रयोग) करना चाहिये ।

एक सौ अड़तालीसवाँ अध्याय

संग्राम-विजयदायक सूर्य-पूजाका वर्णन

भगवान् महेश्वर कहते हैं—स्कन्द ! अब मैं संग्राममें विजय देनेवाले सूर्यदेवके पूजनकी विधि बताता हूँ । ॐ डे ख ख्या खुयाय संग्रामविजयाय नमः—ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः यह मन्त्र है । ये संग्राममें विजय देनेवाले सूर्यदेवके छः अङ्ग हैं—ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः अर्थात् इनके द्वारा षडङ्गन्यास करना चाहिये । यथा—'ह्रां हृदयाय नमः । ह्रीं शिरसे स्वाहा । ह्रूं शिखायै वषट् । ह्रैं कवचाय हुम् । ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट् । ह्रः अस्त्राय फट् ।

'ॐ ह ख खखोल्काय स्वाहा'—यह पूजाके लिये मन्त्र है । 'स्फूं ह्रूं हुं क्रूं ॐ ह्रीं क्रेम्'—ये छः अङ्ग-न्यासके बीज-मन्त्र हैं । पीठस्थानमें प्रभूत, विमल, सार, आराध्य एवं परम सुखका पूजन करे । पीठके पायों तथा बीचकी चार दिशाओंमें क्रमशः धर्म ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य तथा अनैश्वर्य—इन आठोंकी पूजा करे ।

तदनन्तर अनन्तासन, सिंहासन एवं पद्मासनकी पूजा करे । इसके बाद कमलकी कर्णिका एवं केसरोंकी, वहीं सूर्यमण्डल, सोममण्डल तथा अग्निमण्डलकी पूजा करे । फिर दीप्ता, सूक्ष्मा, जया, भद्रा, विभूति, विमला, अमोघा, विद्युता तथा सर्वतोमुखी—इन नौ शक्तियोंका पूजन करे ।

तत्पश्चात् सत्त्व, रज और तमका, प्रकृति और पुरुषका, आत्मा, अन्तरात्मा और परमात्माका पूजन करे । ये सभी अनुस्वारयुक्त आदि अक्षरसे युक्त होकर अन्तमें 'नमः' के साथ चतुर्थ्यन्त होनेपर पूजाके मन्त्र हो जाते हैं, यथा—'सं सत्त्वाय नमः', 'अं अन्तरात्मने नमः' इत्यादि । इसी तरह उषा, प्रभा, सन्ध्या, साया, माया, बला, बिन्दु, विष्णु तथा आठ द्वारपालोंकी पूजा करे । इसके बाद गन्ध आदिसे सूर्य, चण्ड और प्रचण्डका पूजन करे । इस प्रकार पूजा तथा जप, होम आदि करनेसे युद्ध आदिमें विजय प्राप्त होती है ।*

---

* संग्राममें विजय देनेवाले अनेकानेक बहुतोंद्वारा अनुभूत 'आदित्यहृदय' नामक (आगे प्रकाश्य) दो स्तोत्र भी उपलब्ध हैं—(१) वाल्मीकीय रामायणमें श्रीरामको श्रीअगस्त्यजी द्वारा उपदिष्ट और भविष्य किंवा भविष्योत्तरमें शतानीकके प्रश्नोत्तरमें सुमंत ऋषिद्वारा श्रीकृष्ण और अर्जुनके प्रश्नोत्तरके रूपमें कथित । पहलेकी सफलता प्रत्यक्षप्रमाण है और दूसरेके सम्बन्धमें यह माहात्म्य (भी) द्रष्टव्य है—

अमित्रदहनं पार्थ संग्रामे जयवर्द्धनम् । धर्दनं धनपुत्राणामादित्यहृदयं शृणु ॥

(भगवान् कहते हैं—) 'पार्थ ! शत्रुओंको समाप्त करनेवाला, समरमें जयप्रद एवं धन और पुत्र देनेवाले 'आदित्यहृदय' (कहता हूँ,) सुनो ।'

*

लिङ्गपुराणमें सूर्योपासनाकी विधि

(लेखक—अनन्तश्रीविभूषित पूज्य श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी)

लिङ्गपुराणके उत्तरभागके २२वें अध्यायमें सूर्योपासनाका बहुत ही सुन्दर वर्णन किया गया है । इसलिये हम उस अध्यायको अर्थके सहित ज्यों-का-त्यों उद्धृत कर रहे हैं । सूर्यमें और ब्रह्म परमात्मामें कोई भेद नहीं है । ब्रह्मका भर्ग—तेजका रूप ही सूर्यनारायण हैं । जो तीनों काल भगवती गायत्रीका जप करते हैं, वे सूर्यनारायणकी ही उपासना करते हैं । लिङ्गपुराणद्वारा बतायी विधिसे जो सूर्योपासना करेंगे, उनकी मनःकामना तत्काल पूर्ण होगी—ऐसा पुराणका मत है ।

स्नानयागादिकर्माणि कृत्वा वै भास्करस्य च ।
शिवस्नानं ततः कुर्याद् भस्मस्नानं शिवार्चनम् ॥

'भगवान् सूर्यका स्नान-पूजन आदि कर्म करके शिवस्नान, भस्मस्नान तथा शिवार्चन करे ।'

षष्ठेन मृदमादाय भक्त्या भूमौ न्यसेन्मृदम् ।
द्वितीयेन तथाभ्युक्ष्य तृतीयेन च शोधयेत् ॥

'छठे महाव्याहृति अर्थात् ॐ तपः इस मन्त्रसे मिट्टी लेकर भक्तिपूर्वक उसे पृथ्वीपर स्थापित करे । दूसरे (ॐ भुवः) से सींचकर, तीसरे (ॐ स्वः) से अभिमन्त्रित करे ।'

चतुर्थेन विभज्येनामभ्येन शोधयेत् ।
स्नात्वा षष्ठेन तच्छेषं मृदं हस्तगतां पुनः ॥

'चौथे (ॐ महः) से मिट्टीका विभाग करे । प्रथम (ॐ भूः) से उसको शुद्ध करे अर्थात् स्नान करे । फिर छठे (ॐ तपः) से शेष मिट्टीको सात बार अभिमन्त्रित करे ।'

त्रिधा विभज्य सर्वं च चतुर्थेनाभ्यमन्त्र्य पुनः ।
षष्ठेन सप्तवाराणि वामं सूत्रेण चालभेत् ॥
दशवारं च षष्ठेन दिशोबन्धः प्रकीर्तितः ॥

'मिट्टीका तीन विभाग करके 'ॐ महः' से अभिमन्त्रित करे । फिर छठे (ॐ तपः) से बायें हाथको मल-मन्त्रसे स्पर्श करे । सात बार अभिमन्त्रित करके फिर उसी मन्त्रसे दस बार दिग्बन्धन करे ।'

वामेन तीर्थं सव्येन शरीरमनुलिप्य च ।
स्नात्वा सर्वैः स्मरन् भानुमभिषेकं समाचरेत् ॥

'बायें हाथपर तीर्थकी (पवित्र) मिट्टी रखकर दायें हाथसे शरीरमें लेप करे । फिर सम्पूर्ण मन्त्रोंसे सूर्यका स्मरण करता हुआ तीर्थ-जलसे अभिषेक करे ।'

शृङ्गेण पर्णपुटकैः पालाशेन दलेन वा ।
सौरैरेभिश्च विविधैः सर्वसिद्धिकरैः शुभैः ॥

'शृङ्गसे, पत्तेके दोनेसे अथवा पलाशपत्रसे सर्वसिद्धिकारी सूर्यमन्त्रोंको पढ़े ।'

सौराणि च प्रवक्ष्यामि वाष्कलाद्यानि सुव्रत ।
अङ्गानि सर्वदेवेषु सारभूतानि सर्वतः ॥

'अब सूर्यके बाष्कल आदि मन्त्रोंको, जो सब देवोंमें सारभूत हैं, कहता हूँ—'

ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यम् ॐ ऋतम् ॐ ब्रह्म ।

नवाक्षरमयं मन्त्रं वाष्कलं परिकीर्तितम् ॥
न क्षरन्तीति लोकानि ऋतमक्षरमुच्यते ।
सत्यमक्षरमित्युक्तं प्रणवादिनमोऽन्तकम् ॥

''ॐ भूः' आदि नवाक्षर वाष्कल-मन्त्र कहे जाते हैं । 'ॐ भूः' आदि सात लोक नष्ट नहीं होते हैं । अतः इनको अक्षर कहते हैं । प्रणव (ॐ) आदिमें और 'नमः' अन्तमें हो ऐसे ॐनमः को सत्याक्षर कहा गया है ।'

ॐ भूर्भुवः स्वस्तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॐ नमः सूर्याय खखोल्काय नमः ॥

यह भगवान् सूर्यका मूलमन्त्र है ।

मूलमन्त्रमिदं प्रोक्तं भास्करस्य महात्मनः ।
नवाक्षरेण दीप्ताद्यं मूलमन्त्रेण भास्करम् ॥

पूजयेदङ्गमन्त्राणि कथयामि यथाक्रमम्।
वेदादिभिः प्रभूताद्य प्रणवेन च मध्यमम्॥

'नवाक्षरसे प्रकाशित सूर्य भगवान्की मूल मन्त्रसे पूजा करे। प्रत्येक अङ्गोंके पूजनके मन्त्र क्रमसे कहता हूँ, जो वेदोंसे उत्पन्न हैं'—

'ॐ भूः ब्रह्महृदयाय नमः।' 'ॐ भुवः ब्रह्मशिरसे।' 'ॐ स्वः रुद्र शिखायै।' 'ॐ भूर्भुवः स्वः ज्वालामालिनी शिखायै॥' 'ॐ महः महेश्वराय कवचाय।' 'ॐ जनः शिवाय नेत्रेभ्यः।' 'ॐ तपः तापकाय अस्त्राय फट्।'

मन्त्राणि कथितान्येव सौराणि विविधानि च।
एतैः शृङ्गादिभिः पात्रैः स्वात्मानमभिषेचयेत्॥
ताम्रकुम्भेन वा विप्र क्षत्रियो वैश्य एव च।
सकुशेन सपुष्पेण मन्त्रैः सर्वैः समाहितः॥

'इस प्रकार सूर्यके विविध मन्त्र कहे गये हैं। इन मन्त्रोंसे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य शृङ्गादि पात्रोंके द्वारा अथवा ताम्रकुम्भके जलसे कुशसे अपने ऊपर सींचे'—

रक्तवस्त्रपरीधानः स्वाचमेद् विधिपूर्वकम्।
सूर्यश्चेति दिवा रात्रौ चाग्निश्चेति द्विजोत्तम॥
आपः पुनन्तु मध्याह्ने मन्त्राचमनमुच्यते।
एतेन शुद्धिं कृत्वैव जपेदाद्यमनुत्तमम्॥
वौषडन्तं तथा मूलं नवाक्षरमनुत्तमम्।

'लाल वस्त्र पहनकर विधिवत् आचमन करे। (प्रातःकाल) 'सूर्यश्च' आदि मन्त्रसे, मध्याह्नमें 'आपः पुनन्तु' आदिसे तथा सायंकालमें 'अग्निश्च' आदि मन्त्रसे आचमन करे। 'ॐ तपः' से इस प्रकार शुद्धि करके 'वौषट्पर्यन्त' मूल मन्त्र तथा सर्वश्रेष्ठ नवाक्षर मन्त्र जपे।'

करशाखासु तथाङ्गुष्ठमध्यमानामिका न्यसेत्॥
तले च तर्जन्यङ्गुष्ठ मुष्टिभागानि विन्यसेत्।
नवाक्षरमयं देहं कृत्वाङ्गैरपि पावितम्॥

'तत्पश्चात् अङ्गुलियों—अङ्गुष्ठादिका न्यास करे। फिर देहको नवाक्षरमय बनाकर पवित्र करे।'

सूर्योऽहमिति सञ्चिन्त्य मन्त्रैरेतैर्यथाक्रमम्।
वामहस्तगतैरद्भिः गन्धसिद्धार्थकान्वितैः॥

कुशपुञ्जेन चाभ्युक्ष्य मूलाग्रैरेणवासिनैः।
आपोहिष्ठादिभिश्चैव शेषमाघ्राय वै जलम्॥
वामनासापुटेनैव देहे सम्भावयेत् शिवम्।

'मैं सूर्य हूँ' ऐसा विचार करके इन मन्त्रोंसे क्रमसे बायें हाथमें जल, चन्दन, सरसों रखकर कुशसमूहसे अपने देहका प्रोक्षण करे। शेष जलको बायें नासिकासे सूँघकर अपने देहमें भगवान् शङ्करका चिन्तन करे।

अर्घ्यमादाय देहस्थं सव्यनासापुटेन च॥
कृष्णवर्णेन बाह्यस्थं भावयेच्च शिलागतम्।
तर्पयेत् सर्वदेवेभ्य ऋषिभ्यश्च विशेषतः॥

अर्घ्य अर्थात् नासिकामें लगाये हुए जलको लेकर अपने देहमें स्थित अज्ञानको पापपुरुषरूप काला दाहिने नासिकासे निकालकर शिलापर रखनेकी भावना करे। पश्चात् सब देवताओं—विशेषतः ऋषियोंका तर्पण करे।

भूतेभ्यश्च पितृभ्यश्च विधिनार्घ्यं च दापयेत्।
व्यापिनीश्च परां ज्योत्स्नां सन्ध्यां सम्यगुपासयेत्॥
प्रातर्मध्याह्नसायाह्ने अर्घ्यं चैव निवेदयेत्।
रक्तचन्दनतोयेन हस्तमात्रेण मण्डलम्॥

'फिर प्राणियों एवं पितरोंको अर्घ्य दे। प्रातः, मध्याह्न एवं सायव्यापिनी अत्यन्त प्रकाशित सन्ध्याकी अच्छी तरह उपासना करे। तब एक हाथका मण्डल बनाकर उसे रक्त चन्दनयुक्त करे। फिर रक्त चन्दनयुक्त जलसे मण्डल बनाये।'

सुवृत्तं कल्पयेद् भूमौ प्रार्थयेत द्विजोत्तम।
प्राङ्मुखस्ताम्रपात्रञ्च सगन्धं प्रस्थपूरितम्॥
पूरयेद् गन्धतोयेन रक्तचन्दनकेन च।
रक्तपुष्पैस्तिलैश्चैव कुशाक्षतसमन्वितैः॥
दूर्वापामार्गगव्येन केवलेन घृतेन च।
आपूर्य मूलमन्त्रेण नवाक्षरमयेन च॥
जानुभ्यां धरणीं गत्वा देवदेवं नमस्य च॥
कृत्वा शिरसि तत्पात्रमर्घ्यं मूलेन दापयेत्।
अश्वमेधायुतं कृत्वा यत्फलं परिकीर्तितम्॥
तत्फलं लभते दत्त्वा सौरार्घ्यं सर्वसम्मतम्।

'सुन्दर ताम्रपात्रको गन्ध, जल, लाल चन्दन, रक्त पुष्प, तिल, कुश, अक्षत, दूर्वा, अपामार्ग, पञ्चगव्य अथवा गोदुग्धसे पूर्ण करके मूलमन्त्र (नवाक्षर मन्त्र) से दोनों जानुके बल पृथ्वीपर बैठकर देवदेव भगवान् सूर्यको नमस्कारपूर्वक अर्घ्य दे। इससे दस हजार अश्वमेध यज्ञोंका सर्वसम्मत फल उसे प्राप्त होता है।'

दत्त्वैवार्घ्यं यजेद् भक्त्या देवदेवं त्रियम्बकम्॥
अथवा भास्करं चेष्ट्वा आग्नेयं स्नानमाचरेत्।
पूर्ववद् वै शिवस्नानं मन्त्रमात्रेण वेदितम्॥

'इस प्रकार सूर्यको अर्घ्य देकर भगवान् शङ्करका पूजन करे। अथवा सूर्यका पूजन करके शिवके लिये भस्मस्नान करे। तत्पश्चात् 'सद्योजात' आदि मन्त्रोंसे भगवान् शङ्करको स्नान कराये।'

दन्तधावनपूर्वं च स्नानं सौरं च शाङ्करम्।
विघ्नेशं वरुणञ्चैव गुरुं तीर्थं समर्चयेत्॥

दन्तधावन करके सौर-स्नान, शाङ्कर-स्नान करनेके पश्चात् गणेश, वरुण तथा गुरुतीर्थका पूजन करे।

बद्ध्वा पद्मासनं तीर्थे तथा तीर्थं समर्चयेत्।
तीर्थं सम्पूज्य विधिना पूजास्थानं प्रविश्य च॥
मार्गेणार्घ्यपवित्रेण तदावर्त्य च पादुकम्।
पूर्ववत् करविन्यासं देहविन्यासमाचरेत्॥

'पद्मासन बाँधकर तीर्थका पूजन करे। विधिवत् पूजन करके पूजास्थानमें जाय और पादुका उतार करके पूर्ववत् करविन्यास और देहन्यास करे।'

अर्घ्यस्य साधनञ्चैव समासात् परिकीर्तितम्।
बद्ध्वा पद्मासनं योगी प्राणायामं समभ्यसेत्॥
रक्तपुष्पाणि संगृह्य कमलाख्यानि भावयेत्।
आत्मनो दक्षिणे स्थाप्य जलभाण्डं च वामतः॥
ताम्रपात्राणि सौराणि सर्वकामार्थसिद्धये।
अर्घ्यपात्रं समादाय प्रक्षाल्य च यथाविधि॥
पूर्वोक्तेनाम्बुना सार्धं जलभाण्डं तथैव च।
अर्घोदकेन संवार्घ्यगन्धद्रव्यसमन्वितम्॥
संहितामन्त्रितं कृत्वा सम्पूज्य प्रथमेन च।
तुरीयेणावगुण्ठ्यैव स्थापयेदात्मनोपरि॥
पाद्यमाचमनीयञ्च गन्धपुष्पसमन्वितम्।
अम्भसा शोधिते पात्रे स्थापयेत् पूर्ववत् पृथक्॥
संहिताञ्चैव विन्यस्य कवचेनावगुण्ठ्य च॥
अर्घ्याम्बुना समभ्युक्ष्य द्रव्याणि च विशेषतः।
आदित्यञ्च जपेद् देवं सर्वदेवनमस्कृतम्॥

'ताम्रपात्र सूर्य-पूजामें सब कामनाओंकी सिद्धि करनेवाले होते हैं। अर्घ्यपात्र लेकर उसे यथाविधि शुद्ध करके पूर्वोक्त जल जलपात्रमें रखकर अर्घ्यद्रव्यसे युक्त करे। तदनन्तर संहितामन्त्रोंको पढ़कर प्रथमसे पूजन करके, चतुर्थसे मिलाकर अपने पास रखे। पाद्य, आचमनीय, गन्ध-पुष्पसे युक्त करके जलसे शुद्ध किये पात्रमें पहलेकी तरह रखे। मन्त्रोंसे तथा कवचसे अभिमन्त्रित करे। अर्घ्यके जलसे द्रव्योंका प्रोक्षण कर फिर सर्वदेवोंसे नमस्कृत भगवान् सूर्यकी उपासना करे।'

आदित्यो वै तेज ऊर्जो बलं यशो विवर्धति।
इत्यादिना नमस्कृत्य कल्पयेदासनं प्रभोः॥
प्रभूतं विमलं सारमाराध्यं परमं सुखम्।
आग्नेय्यादिषु कोणेषु मध्यमान्तं दृशा न्यसेत्॥

'आदित्यो वै तेज' आदि यजुर्वेदकी श्रुतियोंद्वारा सूर्य भगवान्को नमस्कार करके सूर्यके आसनकी कल्पना करे। परमैश्वर्ययुक्त, परमसुख भगवान् सूर्यकी आराधना करे। अग्निकोण आदि उपदिशाओंमें ॐ भूः, ॐ भुवः, ॐ स्वः, ॐ महः आदि मध्यम व्याहृतियोंका न्यास करे।'

अङ्गं प्रविन्यसेच्चैव बीजाङ्कुरमेव च।
नालं सुषिरसंयुक्तं सूत्रकण्टकसंयुतम्॥
दलं दलाग्रं सुश्वेतं हेमाभं रक्तमेव च।
कर्णिकाकेसरोपेतं दीप्ताद्यैः शक्तिभिर्वृतम्॥
दीप्ता सूक्ष्मा जया भद्रा विभूतिर्विमलामलान्।
अघोरा विद्युता चैव दीप्ताद्याश्चाष्ट शक्तयः॥
भास्कराभिमुखाः सर्वाः कृताञ्जलिपुटाः शुभाः।
अथवा पद्महस्ता वा सर्वाभरणभूषिताः॥
मध्यतो वरदा न्यस्य स्थापयेत् सर्वतोमुखीम्।
आवाहयेत् ततो देवं भास्करं परमेश्वरम्॥

'इस प्रकार अङ्गन्यास करके धर्मस्वरूप छिद्रयुक्त नालसे युक्त सुन्दर सफेद, सुवर्णके समान और

दास आदि शक्तियोंसे युक्त, कर्णिकाके केसरसे पूर्ण कमलकी भावना करे। और दीप्ता, सूक्ष्मा, जया, भद्रा, विभूति, विमला आदि अष्टशक्तियोंको सूर्यके सामने हाथ जोड़े हुए अथवा हाथमें कमल लिये हुए, सब आभरणोंसे विभूषित करके मध्यमें वरदा देवीकी स्थापना करे। उसके बाद वरदा देवी तथा भगवान् सूर्यका आवाहन करे।'

नवाक्षरेण मन्त्रेण बाष्कलोक्तेन भास्करम्।
आवाहने च सांनिध्यमनेनैव विधीयते॥
मुद्रा च पद्ममुद्राख्या भास्करस्य महात्मनः।
मूलेनार्घ्यं ततो दद्यात् पाद्यमाचमनं पृथक्॥
पुनरर्घ्यप्रदानेन बाष्कलेन यथाविधि।
रक्तपद्मानि पुष्पाणि रक्तचन्दनमेव च॥
दीपधूपादिनैवेद्य मुखवासादिकेन च।
ताम्बूलवर्तिदीपाद्य बाष्कलेन विधीयते॥
आग्नेय्यां च सर्वेशान्या नैर्ऋत्यां वायुगोचरे।
पूर्वस्यां पश्चिमे चैव षडङ्गानि विधीयते॥

'नवाक्षर बाष्कलोक्त मन्त्रसे भगवान् सूर्यका आवाहन करे। पद्ममुद्रासे मूलमन्त्रद्वारा अर्घ्य देकर आचमन करे। पुनः बाष्कल-मन्त्रसे यथाविधि अर्घ्य देकर लाल कमल, लाल चन्दन, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल आदि भी बाष्कल-मन्त्रसे अर्पित करे। अग्नि, ईशान, नैर्ऋत्य, वायव्य, पूर्व और पश्चिम आदिमें छः प्रकार करे।'

नेत्रान्तं विधिनाभ्यर्च्य प्रणवादिनमोऽन्तकम्।
कर्णिकायां प्रविन्यस्य रूपकध्यानमाचरेत्॥

'प्रणवसे लेकर नमःतक कहकर यथाविधि उन-उन अवयवोंसे नेत्रतक पूजन करके अपने हृदय-कमलमें प्रतिबिम्बका ध्यान करे।'

सर्वे विद्युत्प्रभाः शान्ता रौद्रमत्र प्रकीर्तितम्।
दंष्ट्राकरालवदनं दशमूर्ति भयङ्करम्॥
वरदं दक्षिणं हस्तं वामं पद्मविभूषितम्।
सर्वाभरणसम्पन्ना रक्तस्रगनुलेपना॥
रक्ताम्बरधराः सर्वा मूर्तयस्तस्य सम्मिताः।
समण्डलो महादेवः सिन्दूरारुणविग्रहः॥
पद्महस्तोऽमृतास्यश्च द्विहस्तनयनः प्रभुः।
रक्ताभरणसंयुक्तो रक्तस्रगनुलेपनः॥

इत्थं रूपधरं ध्यायेद् भास्करं भुवनेश्वरम्।
पद्मयागे शुभं चात्र मण्डलेषु समन्ततः॥

'सभीकी आभा विद्युत्कान्तिके समान एवं रूप भी शान्त हैं। अत्र रौद्र कहा गया है। भयानक दाँतोंसे अष्टमूर्ति भयंकर है। दाहिना हाथ वरदाता है, बायाँ हाथ कमलयुक्त है। सब आभरणोंसे सुशोभित, लाल माला एवं लाल चन्दनसे चर्चित, लाल वस्त्र धारण किये हुए, भगवान् सूर्यकी सब मूर्तियाँ सुशोभित करें। मण्डलके सहित लाल रूप (विग्रह) वाले भगवान् सूर्य, हाथमें कमल लिये हुए, अमृतमय मुखवाले, दोनों हाथों तथा नेत्रोंवाले, लाल आभरण, लाल माला, लाल चन्दनसे युक्त हैं ऐसे रूपवाले भुवनेश्वर भगवान् भास्करका ध्यान करे।'

सोममङ्गारकञ्चैव बुधं बुधिमतां वरम्।
बृहस्पतिं महाबुद्धिं रुद्रपुत्रञ्च भार्गवम्॥
शनैश्चरं तथा राहुं केतुं धूम्रं प्रकीर्तितम्।
सर्वे द्विनेत्रा द्विभुजा राहुश्चार्धशरीरकः॥
विवृतास्याञ्जलिं कृत्वा भ्रुकुटीकुटिलेक्षणः।
शनैश्चरश्च दंष्ट्राग्रो वरदाभयहस्तकः॥
स्वैः स्वैः भावैः स्वनाम्ना प्रणवादिनमोऽन्तकम्।
पूजनीया प्रयत्नेन धर्मकामार्थसिद्धये॥
सप्त सप्त गणाश्चैव यद्दिवस्य पूजयेत्।
ऋषयो देवगन्धर्वाः पन्नगाप्सरसां गणाः॥
ग्रामण्यो यातुधानाश्च तथा यक्षाश्च मुख्यतः।
सप्ताश्वान् पूजयेच्चैव सप्तच्छन्दोमयान् विभोः॥

'धर्म, अर्थ और काम आदिकी सिद्धिके लिये प्रयत्नपूर्वक दो नेत्र तथा दो भुजावाले—इन चन्द्रमा, भौम बुध, गुरु, शुक्र, शनैश्चर, राहु, केतु, धूम्र, ऊर्ध्वशरीर एवं अधोमुख राहुका और भ्रुकुटि बाँधे वराभय हस्त धारण करनेवाले शनैश्चरकी पूजा करे तथा सात सात गणों—ऋषियों, देवों, गन्धर्वों, पन्नगों, अप्सराओं, ग्रामणियों, मुख्यरूपसे यातुधानोंकी अर्चना कर सप्त छन्दरूपमें सूर्यके सात अश्वोंका भी पूजन करे।'

वालखिल्य गणञ्चैव निर्माल्यग्रहणं विभोः।
पूजयेदासनं मूर्तेर्बलामपि पूजयेत्॥
अर्घ्यञ्च दापयेत् तेषां पृथगेव विधानतः।
आवाहने च पूजान्ते तेषामुद्वासने तथा॥
सहस्रं वा तदर्द्धं वा शतमष्टोत्तरं तु वा।
वाष्कलञ्च जपेद्रमे दशांशेन च योजयेत्॥

'वालखिल्य आदि ऋषियोंका पूजन करे। निर्माल्य ग्रहण करे। पृथक्-पृथक् विधानसे अर्घ्य दे। आवाहन आदि पूजाके अन्तमें उनके उद्वासनमें एक हजार अथवा पाँच सौ या एक सौ आठ वाष्कल मन्त्र जपे। फिर दशांश हवन आदिकी विधि करे।'

कुण्डं च पश्चिमे कुर्याद् वर्तुलञ्चैव मेखलम्।
चतुरङ्गुलमानेन चोत्सेधाद् विस्तरादपि॥

'मण्डलके पश्चिम भागमें मेखलासहित गोला कुण्ड बनाये।'

एकहस्तप्रमाणेन नित्ये नैमित्तिके तथा।
कृत्वाश्वत्थदलाकारं नाभिं कुण्डे दशाङ्गुलम्॥

'नित्य-नैमित्तिक कार्यमें एक हाथका कुण्ड बनावे। पीपलके पत्तेके समान बनाकर कुण्डमें दस अङ्गुलकी नाभि बनाये।'

तदर्धेन पुरस्तात्तु गजोष्ठसदृशं स्मृतम्।
गर्तमेकाङ्गुलञ्चैव शेषं द्विगुणविस्तरम्॥
तत्प्रमाणेन कुण्डस्य त्यक्त्वा कुर्वीत मेखलाम्।
यत्नेन साधयित्वैव पश्चाद्धोमञ्च कारयेत्॥

'उसी प्रमाणसे मेखला बनाकर यत्नपूर्वक सिद्ध करके हवन करे।'

पश्चेनोल्लेखनं कुर्यात् प्रोक्षयेद् वारिणा पुनः।
आसनं कल्पयेन्मध्ये प्रथमेन समाहितः॥
प्रभावतीं ततः शक्तिमाद्येनैव तु विन्यसेत्।
वाष्कलेनैव सम्पूज्य गन्धपुष्पादिभिः क्रमात्॥
वाष्कलेनैव मन्त्रेण क्रिया प्रतियजेत् पृथक्।
मूलमन्त्रेण विधिना पश्चात् पूर्णाहुतिर्भवेत्॥
क्रमादेव विधानेन सूर्याग्निर्जनितो भवेत्।
पूर्वोक्तेन विधानेन प्रागुक्तं कमलं न्यसेत्॥

'पद्म अर्थात् 'ओं तप'से उल्लेखन करके जलसे प्रोक्षण करे। तदनन्तर आसन रखे। इसके बाद 'ॐ भू'से समाहित हो प्रभावती आदि शक्तिका न्यास करे। तदनन्तर वाष्कल-मन्त्रसे गन्ध पुष्पादिके द्वारा पूजन करे। फिर वाष्कल-मन्त्रसे हवन करके मूलमन्त्रसे पूर्णाहुति करे। क्रमशः इस विधानसे सूर्याग्नि प्रकट करे। पूर्वोक्त विधिसे कथित कमलको स्थापित करे।'

मुखोपरि समभ्यर्च्य पूर्ववद् भास्करं प्रभुम्।
दशैवाहुतयो देया वाष्कलेन महामुने॥

'कमलके मुखके ऊपर पूजन करके पूर्वकी भाँति भगवान् सूर्यको वाष्कल-मन्त्रसे दस आहुति दे।'

अङ्गानाञ्च तथैवैकं संहिताभिः पृथक् पुनः।
जयादिस्विष्टपर्यन्तमिध्मप्रक्षेपमेव च॥
सामान्यं सर्वमार्गेषु पारम्पर्यक्रमेण च।
निवेद्य देवदेवाय भास्करायामितात्मने॥
पूजाहोमादिकं सर्वं दत्त्वार्घ्यञ्च प्रदक्षिणम्।
अङ्गं सम्पूज्य संक्षिप्य हृद्गतस्य नमस्य च॥

'तथा संहितामन्त्रोंसे एक-एक अङ्गकी पूजा करके क्रमसे अमित तेजस्वी भगवान् सूर्यको सब कुछ निवेदित करे। पूजा-हवन आदि देकर प्रदक्षिणा करके नमस्कार करे।'

शिवपूजां ततः कुर्याद् धर्मकामार्थसिद्धये।
एवं संक्षेपतः प्रोक्तं यजनं भास्करस्य च॥

'उसके बाद भगवान् शिवका पूजन करे। इस प्रकार संक्षेपमें भगवान् सूर्यकी पूजाका विधान कहा गया है।'

यः सकृद् वा यजेद् देवं देवदेवं जगद्गुरुम्।
भास्करं परमात्मानं स याति परमां गतिम्॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वपापविवर्जितः।
सर्वैश्वर्यसमोपेत तेजसा प्रतिमश्च सः॥
पुत्रपौत्रादिमित्रैश्च बान्धवैश्च समन्ततः।
भुक्त्वैव सकलान् भोगान् इहैव धनधान्यवान्॥
यानवाहनसम्पन्नो भूषणैर्विविधैरपि।
काल गतोऽपि सूर्येण मोदते ...

पुनस्तस्मादिहागत्य राजा भवति धार्मिकः ।
वेदवेदाङ्गसम्पन्नो ब्राह्मणो वाथ जायते ॥
पुनः प्राग्वासनायोगाद् धार्मिको वेदपारगः ।
सूर्यमेव समभ्यर्च्य सूर्यसायुज्यमाप्नुयात् ॥

जो एक बार भी देवदेव भगवान् सूर्यका पूजन कर लेता है, वह परमगतिको प्राप्त हो जाता है। सब पापोंसे छूट जाता है। समस्त ऐश्वर्योंसे युक्त हो जाता है। तेजमें अप्रतिम हो जाता है। पुत्र-पौत्रादिसे युक्त हो जाता है। यहींपर सब प्रकारके धन धान्य प्राप्त कर लेता है। वाहन आदिसे युक्त हो जाता है। फिर देह त्यागनेके बाद सूर्यके साथ अक्षयकालतक आनन्द प्राप्त करता है। और फिर इस लोकमें आकर धार्मिक राजा अथवा वेदवेदाङ्ग-सम्पन्न ब्राह्मण होता है और पहली वासनाओंके योगसे धार्मिक वेदपारगामी होकर सूर्यका ही पूजन करके सूर्यके सायुज्यको प्राप्त कर लेता है।

मत्स्यपुराणमें सूर्य-सदर्भ

[इस सदर्भमें सूर्यकी गति, अवस्थिति और ज्योतिष्पुञ्जोंके साथ सम्बन्धादिके स्वरूपका वर्णन है—]

सूतने कहा—ऋषिवृन्द ! अब इसके बाद मैं चन्द्रमा और सूर्यकी गतियाँ बतला रहा हूँ। ये चन्द्रमा तथा सूर्य सातों समुद्रों तथा सातों द्वीपोंसमेत समग्र पृथ्वीतलके अर्धभाग तथा पृथ्वीके बहिर्भूत अन्य अनेक लोकोंको प्रकाशित करते हैं। सूर्य और चन्द्रमा विश्वकी अन्तिम सीमातक प्रकाश करते हैं, पण्डितलोग इस अन्तिमतक ही आकाशगोलकी तुल्यता स्मरण करते हैं। सूर्य अपनी अविलम्बित गतिद्वारा साधारणतया तीनों लोकोंमें पहुँचते हैं। अतिशीघ्र प्रकाशदानद्वारा सभी लोकोंकी रक्षा करनेके कारण उनका 'रवि' नामसे स्मरण किया जाता है। इस भारतवर्षके विष्कम्भ (विस्तार)के समान ही परिमाणमें सूर्यका मण्डल माना गया है। वह विष्कम्भ कितने योजनोंमें है, इसे बता रहा हूँ, सुनिये। सूर्यके बिम्बका व्यास नौ सहस्र योजन है। इस विष्कम्भ-परिधिका विस्तार इससे अपेक्षा तिगुना है। इस विष्कम्भ एवं मण्डलसे चन्द्रमा सूर्यसे द्विगुणित बड़ा[2] है।

आकाशमें तारागणोंकी अवस्थिति जितने मण्डलमें है, उतना ही सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डलका विस्तार माना गया है। फलस्वरूप भूमिके समान ही स्वर्गका मण्डल माना गया है। मेरुपर्वतकी पूर्व दिशामें मानसोत्तर पर्वतकी चोटीपर महेन्द्रकी वस्वेकसारा नामक सुवर्णसे सजायी गयी एक पुण्य नगरी है और उसी मेरुपर्वतकी दक्षिण दिशाकी ओर मानसकी पीठपर अवस्थित संयमनीपुरीमें सूर्यका पुत्र यम निवास करता है। मेरुपर्वतकी पश्चिम दिशाकी ओर मानस नामक पर्वतकी चोटीपर अवस्थित बुद्धिमान् वरुणकी सुखा नामक परम रमणीय नगरी है। मेरुकी उत्तर दिशामें मानसगिरिकी चोटीपर महेन्द्रकी (वस्वेकसारा) नगरीके समान परम रमणीय चन्द्रमाकी विभावरी नामक नगरी है। उसी मानसोत्तरके शिखरपर चारों दिशाओंमें लोकपालगण धर्मकी व्यवस्था एवं लोकोंके संरक्षणके लिये अवस्थित हैं। दक्षिणायनके समय सूर्य उक्त लोकपालोंके ऊपर भ्रमण करते हैं। उनकी गति सुनिये। दक्षिणायनमें सूर्य धनुषसे छूटे हुए बाणकी तरह शीघ्रगतिसे चलते हैं और अपने ज्योतिश्चक्रोंको साथ लेकर सर्वदा गतिशील रहते हैं। जिस समय

१ सूर्यसिद्धान्तका भूगोलाध्याय, ब्रह्माण्ड-सम्पुट- परिभ्रमण—'समन्तादम्बरे दिनकरस्य कक्ष्याम्बरम्।'

२ किंतु ज्योतिषमें चन्द्रमाका विस्तार सूर्यसे बहुत कम माना गया है। देखिये—सूर्यसिद्धान्तका प्रथम भाग चन्द्रग्रहणाधिकारका प्रथम श्लोक। (उपर्युक्त उल्लेखका तात्पर्य अन्वेष्य है।)

अमरावती (वस्वेकसारा)पुरीमें सूर्य मध्यमें आते हैं। उस समय वैवस्वतके सयमनीपुरीमें वे उदित होते हुए दिखायी पड़ते हैं, सुखा नामक नगरीमें उस समय आधी रात होती है और विभावरीनगरीमें सायकाल होता है। इसी प्रकार जिस समय वैवस्वत (यमराज) की सयमनी-पुरीमें सूर्य मध्याह्नके होते हैं, उस समय वरुणकी सुखा नगरीमें वे उदित होते दिखायी पड़ते हैं। विभावरीपुरीमें आधी रात रहती है और महेन्द्रकी अमरावतीपुरीमें सायकाल होता है। जिस समय वरुणकी सुखानगरीमें सूर्य मध्याह्नके होते हैं, उस समय चन्द्रमाकी विभावरी नगरीमें वे ऊँचाइपर प्रस्थान करते हैं अर्थात उदित होते हैं। इसी प्रकार महेन्द्रकी अमरावतीपुरीमें जब भानु उदित होते हैं, तब सयमनीपुरीमें आधी रात रहती है और वरुणकी सुखानगरीमें वे अस्ताचलको चले जाते हैं। इस प्रकार सूर्य अलातचक्र (जलते हुए लुकको घुमानेसे बननेवाला मण्डल)की भाँति शीघ्र गतिसे चलते हैं और स्वय भ्रमण करते हुए नक्षत्रोंको भ्रमण कराते हैं। इस प्रकार चारों पार्श्वोंमें सूर्य प्रदक्षिणा करते हुए गमन करते हैं तथा अपने उदय एव अस्तकालके स्थानोंपर बारबार उदित और अस्त होते रहते हैं। दिनके पहले तथा पिछले भागोंमें दो-दो देवताओंके निवास-स्थानोंपर वे पहुँचते हैं। इस प्रकार वे एक पुरीमें प्रातःकाल उदित हो बढ़नेवाली किरणों और कान्तियोंसे युक्त होकर मध्याह्नकालमें तपते हैं और मध्याह्नके अनन्तर तेजोविहीन होती हुई उन्हीं किरणोंके साथ अस्त होते हैं। सूर्यके इस प्रकारके उदय और अस्तसे पूर्व तथा पश्चिमकी दिशाओंकी सृष्टि स्मरण की जाती है। वे सूर्य जिस प्रकार पूर्वभागमें तपते हैं, उसी प्रकार दोनों पार्श्वों तथा पृष्ठ (पश्चिम)-भागमें भी तपते हैं। जिस स्थानपर उनका प्रथम उदय दिखायी पड़ता है, उसे उनका उदय-स्थान और जिस स्थानपर लय होता है उसे इनका अस्तस्थान कहते हैं।

सुमेरुपर्वत सभी पर्वतोंके उत्तरमें और लोकालोक पर्वतके दक्षिण ओर अवस्थित है। सूर्यके दूर हो जानेके कारण भूमिपर आती हुई उनकी किरणें अन्य पदार्थोंपर पड़ जाती हैं, अतः यहाँ आनेसे वे रुक जाती हैं। इसी कारण रातमें वे नहीं दिखलायी पड़ते। इस प्रकार जिस समय पुष्करके मध्यभागमें सूर्य होते हैं, उस समय ऊपर स्थित दिखलायी पड़ते हैं। एक मुहूर्त-(दो घड़ी) में सूर्य इस पृथ्वीके तीसवें भागतक जाते हैं। इस गतिकी सख्या योजनोंमें सुनिये। इसकी पूर्ण सख्या इकतीस लाख पचास हजार योजनसे भी अधिक स्मरण की जाती है। सूर्यकी इतनी गति एक मुहूर्तकी है। इस क्रमसे वे जब दक्षिण दिशामें भ्रमण करते हैं तो एक मासमें उत्तर दिशामें चले जाते हैं। दक्षिणायनमें सूर्य पुष्करद्वीपके मध्यभागमें होकर भ्रमण करते हैं। मानसोत्तर और मेरुके मध्यमें इनका तीन गुना अतर है—ऐसा सुना जाता है। सूर्यकी विशेष गति दक्षिण दिशामें जानिये। नौ करोड़ पैंतालीस लाख योजनका यह मण्डल कहा गया है और सूर्यकी यह गति एक दिन तथा एक रात की है। जब दक्षिणायनसे निवृत्त होकर सूर्य विषुवे स्थानपर हो जाते हैं, उस समय क्षीरसागरकी उत्तर दिशाकी ओर भ्रमण करने लगते हैं। उस विषुव मण्डलको भी योजनोंमें सुनिये।

सम्पूर्ण विषुवमण्डल तीन करोड़ एक लाख इकीस योजनोंमें विस्तृत है। जब श्रावण मासमें विवस्वान् उत्तर दिशामें सूर्य हो जाते हैं, तब गोमेद द्वीपके अन्तरवाले प्रदेशमें उत्तर दिशामें वे विचरण करते हैं। उत्तर दिशाके प्रमाण, दक्षिण दिशाके प्रमाण तथा

१ यह स्थान या रेखा जिसपर सूर्यके पहुँचनेके समय दिन और रात बराबर होते हैं, विषुवरेखा कहा जाता है।

दोनों मध्यमण्डलके प्रमाणको क्रमपूर्वक एक समान जानना चाहिये। इसके मध्यमें जरद्गव, उत्तरमें ऐरावत तथा दक्षिणमें वैश्वानर नामक स्थान सिद्धान्ततया निर्दिष्ट किये गये हैं। उत्तरावीथी नागवीथी और दक्षिणावीथी अजवीथी मानी गयी है। दोनों आषाढ़ (पूर्वाषाढ़ और उत्तराषाढ़) तथा मूल—ये तीन-तीन नक्षत्र अजावीथी—आदि तीन वीथियोंके कहे जाते हैं, अर्थात् मूल, पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़, अभिजित्, पूर्वाभाद्रपद, स्वाती और उत्तराभाद्रपद—ये नागवीथी कहे जाते हैं। अश्विनी, भरणी और कृत्तिका—ये तीन नक्षत्र नागवीथीके नामसे स्मरण किये जाते हैं। रोहिणी, आर्द्रा और मृगशिरा—ये भी नागवीथीके ही नामसे स्मरण किये जाते हैं। पुष्य, आश्लेषा और पुनर्वसु—इन तीनोंकी ऐरावती नामक वीथी स्मरण की जाती है। ये तीन वीथियाँ हैं। इनका मार्ग उत्तर कहा जाता है। पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी और मघा—इनकी संज्ञा आर्षभीवीथी है। पूर्वभाद्रपद, उत्तरभाद्रपद और रेवती—ये गोवीथीके नामसे स्मरण किये जाते हैं। श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा—ये जरद्गव नामक वीथीमें हैं। इन तीन वीथियोंका मार्ग मध्यम कहा जाता है। हस्त चित्रा तथा स्वाती—ये अजवीथीके नामसे स्मरण किये जाते हैं। ज्येष्ठा, विशाखा तथा अनुराधा—ये मृगवीथी कहे जाते हैं। मूल, पूर्वाषाढ़ और उत्तराषाढ़—ये वैश्वानरीवीथीके नामसे विख्यात हैं। इन तीन वीथियोंका मार्ग दक्षिण दिशामें है। अब इनमेंसे दोका अन्तर योजनोंद्वारा बतलाता हूँ। यह अन्तर इकतीस लाख तैंतीस सौ योजनोंका है। यहाँ इतना अन्तर बतलाया गया है। अब विषुवस्थानसे दक्षिणायन और उत्तरायण-पथोंका परिमाण योजनोंमें बतला रहा हूँ, ध्यानपूर्वक सुनिये। मध्यभागमें स्थित एक रेखा दूसरीसे पचास हजार अस्सी योजन अन्तरपर है। बाहर और भीतरकी इन दिशाओं तथा रेखाओंके मध्यमें चलते हुए सूर्य सर्वत्र उत्तरायणमें भीतरसे मण्डलोंको पार करते हैं और दक्षिणायनमें सूर्यमण्डल बाहर रह जाता है। इस प्रकार बहिर्भागमें विचरण करते हुए सूर्य उत्तरायणमें एक सौ अस्सी योजन भीतर प्रवेश करते हैं। अब मण्डलका परिमाण सुनिये। यह मण्डल अठारह हजार अट्ठावन योजनका गुना जाता है। उस मण्डलका यह परिमाण तिरछा जानना चाहिये। इस प्रकार एक दिनमें सूर्य मकरके मण्डलको इस प्रकार प्राप्त होते हैं, जैसे कुम्हारकी चाक नाभिके क्रमपर चलती है। उसी भाँति चन्द्रमा भी नाभिके क्रमसे मण्डलको प्राप्त होते हैं। दक्षिणायनमें सूर्य चक्रके समान शीघ्रतासे अपनी गति समाप्तकर निवृत्त हो जाते हैं। इसी कारण प्रायः अधिक भूमिको वह थोड़े ही समयमें चलकर समाप्त कर देते हैं। दक्षिणायनके सूर्य केवल बारह मुहूर्तोंमें नक्षत्रोंकी कुल संख्याके आधे अर्थात् साढ़े तेरह नक्षत्रों मण्डलमें भ्रमण करते हैं और रातके शेष अठारह मुहूर्तोंमें उतने ही अर्थात साढ़े तेरह नक्षत्रोंके मण्डलमें भ्रमण करते हैं। कुम्हारकी चाकके मध्यभागमें स्थित वस्तु जिस प्रकार मन्द गतिसे भ्रमण करती है, उसी प्रकार उत्तरायणके मन्द पराक्रम-शील सूर्य मन्दगतिसे भ्रमण करते हैं। यही कारण है कि वे बहुत अधिक कालमें भी अपेक्षाकृत थोड़े मण्डलका भ्रमण कर पाते हैं। उत्तरायणके सूर्य अठारह मुहूर्तोंमें केवल तेरह नक्षत्रोंके मध्यमें विचरण करते हैं और उतने ही नक्षत्रोंके मण्डलोंमें रातके बारह मुहूर्तोंमें भ्रमण करते हैं। सूर्य और चन्द्रमाकी गतिसे मन्द गतिसे चाकपर रखे हुए मिट्टीके पिंडकी भाँति चक्राकार घूमता हुआ ध्रुव भी नक्षत्र-मण्डलोंमें निरन्तर भ्रमण करता रहता है। ध्रुव तीस मुहूर्तोंमें अर्थात् पूरे दिन-रातभरमें भ्रमण करता हुआ दोनों सीमाओंके मध्यमें स्थित उन मण्डलोंकी परिक्रमा करता है। उत्तरायणमें सूर्यकी गति दिनमें मन्द कही गयी है और रातमें तीव्र

सुनी जाता है। इसी प्रकार दक्षिणायनमें सूर्य दिनमें शीघ्र गतिसे चलते हैं और रातमें उनकी मन्द गति हो जाती है। इस प्रकार अपने गमनके तारतम्यसे दिन और रातका विभाग करते हुए वे दक्षिणकी अजावीथी एवं लोकालोककी उत्तर दिशाकी ओर प्रवृत्त होते हैं। लोकसन्तान पर्वत और वश्वानरके मार्गसे बाहरकी ओर वे जब आते हैं, तब पुष्कर नामक द्वीपसे उनकी कान्ति अधिक प्रखर हो जाती है। पथकी पार्श्वभूमियोंसे बाहरकी ओर वहाँ लोकालोक नामक पर्वत है, जिसकी ऊँचाई दस हजार योजन है और अवस्थिति मण्डलाकार है। उक्त पर्वतका मण्डल प्रकाश एवं अन्धकार दोनोंसे युक्त रहता है। सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, ग्रह एवं तारागण सभी ज्योतिपुञ्ज इस लोकालोकके भीतरी भागमें प्रकाशित होते हैं। जितने स्थानपर प्रकाश होता है, उतना ही लोक माना गया है। उसके बादका सञ्ज्ञा निरालोक (अन्धकारमय) मानी गयी है। 'लोक' धातु आलोकन अर्थात् दिखायी देनेके अर्थमें प्रयुक्त होता है और न दिखायी पड़नेका नाम अलोक है। भ्रमण करते हुए सूर्य जब लोक (प्रकाश) और अलोक (प्रकाशरहित)-की सन्धिपर पहुँचते हैं अर्थात् दोनोंका संयोग कराते हैं तो उस समयको लोग संध्याके नामसे पुकारते हैं।

उषा और व्युष्टिमें परस्पर अन्तर माना गया है, अर्थात् प्रातःकाल उषा एवं संध्याका निशामुख दोनों सन्धिकालोंमें कुछ अन्तर है। ऋषिगण उषाको रात्रिमें और व्युष्टिको दिनके भीतर स्मरण करते हैं। एक मुहूर्त तीस कलाका और एक दिन पंद्रह मुहूर्तका होता है। दिनके प्रमाणमें ह्रास और वृद्धि होती है। उसका कारण संध्या-कालमें एक मुहूर्तकी ह्रास-वृद्धि है, जो सदा बढ़ा-घटा करती है। सूर्य विषुव प्रभृति विभिन्न पर्वोंसे गमन करते हुए तीन मुहूर्तोंका व्यतिक्रम करते हैं। सम्पूर्ण दिनके पाँच भाग कहे गये हैं। दिनके प्रथम तीन मुहूर्तोंको प्रातःकाल कहते हैं। उस प्रातःकालके व्यतीत हो जानेपर तीन मुहूर्ततक सङ्गवनामक काल रहता है। उसके अनन्तर तीन मुहूर्ततक मध्याह्नकाल रहता है। उस मध्याह्न कालके बाद अपराह्न कालका स्मरण किया जाता है। पण्डितोंने इसको भी तीन ही मुहूर्तोंका बतलाया है। अपराह्नके बीत जानेपर जो काल प्रारम्भ होता है, उसे सायंकाल कहते हैं। इस प्रकार पंद्रह मुहूर्तवाले एक दिनमें ये तीन-तीन मुहूर्तोंके पाँच काल होते हैं। विषुव-स्थानमें सूर्यके जानेपर दिनका प्रमाण पंद्रह मुहूर्तोंका स्मरण किया जाता है। दक्षिणायनमें दिनका प्रमाण घट जाता है और इसके बाद उत्तरायणमें आनेपर बढ़ जाता है। इस प्रकार दिन बढ़कर रातको घटाता है और रात बढ़कर दिनको कम करती है। विषुव शरद् और वसन्त ऋतुको माना गया है। जहाँतक सूर्यके आलोकका अन्त होता है, वहाँतककी सञ्ज्ञा लोक है और उस लोकके पश्चात् अलोककी स्थिति कही जाती है।

× × ×

ऋषिगण! इस प्रकार सूर्य, चन्द्रमा एवं ग्रहगणोंके भ्रमणकी दिव्य कथाको सुनकर ऋषियोंने लोमहर्षणके पुत्र सूतजीसे पुनः पूछा।

ऋषियोंने कहा—सौम्य! ये ज्योतिर्गण ग्रह नक्षत्र आदि किस प्रकार सूर्यके मण्डलमें भ्रमण करते हैं? सभी एक समूहमें मिलकर या अलग-अलग? कोई इन्हें भ्रमण कराता है अथवा ये स्वयमेव भ्रमण करते हैं? इस रहस्यको जाननेकी हमें बड़ी इच्छा है, कृपया कहिये।

सूतजी बोले—ऋषिगण! यह विषय प्राणियोंको मोहमें डालनेवाला है। क्योंकि प्रत्यक्ष दिखायी देता हुआ भी यह व्यापार लोगोंको आश्चर्य एवं अज्ञानमें डाल देता है। मैं यह कह रहा हूँ सुनिये। चौदह नक्षत्रोंमें शिशुमार नामक एक ज्योतिश्चक्र अवस्थित है वहाँ

आकाशमें उत्तानपादका पुत्र ध्रुव मेढ़ (म्ढि) के समान एक स्थानमें अवस्थित है। यह ध्रुव भ्रमण करता हुआ नक्षत्रगणोंको सूर्य और चन्द्रमाके साथ घुमाता है और स्वयं भ्रमण करता है। चक्रके समान भ्रमण करते हुए इसीके पीछे-पीछे सब नक्षत्रगण भ्रमण करते हैं। वायुमय बन्धनोंसे ध्रुवमें बँधे हुए वे ज्योतिर्गण ध्रुवके मनसे ही भ्रमण करते हैं। उन ज्योतिश्चक्रोंके भेद, योग, कालके निर्णय, अस्त, उदय, उत्पात, दक्षिणायन एवं उत्तरायणमें स्थित, विषुव-रेखापर गमन आदि कार्य सभी ध्रुवकी प्रेरणापर ही निर्भर करते हैं। इस लोकके जीवोंकी जिनसे उत्पत्ति होती है, वे जीमूत नामक मेघ कहे जाते हैं। उन्हींकी वृष्टिसे सृष्टि होती है।

सूर्य ही सब प्रकारकी वृष्टिके कर्ता कहे जाते हैं। इस लोकमें होनेवाली वृष्टि, धूप, तुषार, रात दिन, दोनों सन्ध्याएँ शुभ एवं अशुभ फल—सभी ध्रुवसे प्रवर्तित होते हैं। ध्रुवमें स्थित जलको सूर्य ग्रहण करते हैं। सभी प्रकारके जीवोंके शरीरमें जल परमाणुरूपमें आश्रित रहता है। स्थावर-जङ्गम जीवोंके भस्म होते समय वह धुएँके रूपमें परिणत होकर सभी ओरसे निकलता है। उसी धूमसे मेघगण उत्पन्न होते हैं। आकाशमण्डल अभ्रमय स्थान कहा जाता है।

अपनी तेजोमयी किरणोंसे सूर्य सभी लोकोंसे जलको ग्रहण करते हैं। वे ही किरणें वायुके संयोगद्वारा समुद्रसे भी जलको खींचती हैं। तदनन्तर सूर्य ग्रीष्म आदि ऋतुके प्रभावसे समय-समयपर परिवर्तनकर जलको अपनी श्वेत किरणोंद्वारा उन मेघोंको जल देते हैं। वायुद्वारा प्रताडित होनेपर उन्हीं मेघोंकी जलराशि बादमें पृथ्वीतलपर गिरती है और तदनन्तर छः महीनेतक सभी प्रकारके जीवोंकी संतुष्टि एवं अभिवृद्धिके लिये सूर्य पृथ्वीतलपर वृष्टि करते हैं। वायुके वेगसे उन मेघोंके शब्द होते हैं। बिजलियाँ अग्निसे उत्पन्न कही जाती हैं। 'मिह सेचने' धातुसे मेघ शब्द जल छोड़ने अथवा सिंचन करनेके अर्थमें निष्पन्न होता है। जिससे जल न गिरे, उसे अभ्र कहते हैं—(न भ्रश्यते आपः यस्मादसावभ्रः)। इस प्रकार वृष्टिकी उत्पत्ति करनेवाले सूर्य ध्रुवके संरक्षणमें रहते हैं। उसी ध्रुवके सहारे अवस्थित वायु उस वृष्टिका उपसंहार करती है। नक्षत्र-मण्डल सूर्यमण्डलसे बहिर्गत होकर विचरण करता है। जब संचार समाप्त हो जाता है, तब ध्रुवद्वारा प्रेरित सूर्यमण्डलमें वे सभी प्रवेश करते हैं। अब इसके बाद मैं सूर्यके रथका प्रमाण बतला रहा हूँ।

एक चक्र, पाँच अरे, तीन[2] नाभि तथा सुवर्णकी छोटी आठ पुट्टियोंद्वारा बनी हुई नेमि-(जिसपर हाल[1] चढ़ाई जाती है)-से बने हुए तेजोमय शीघ्रगामी रथद्वारा सूर्य गमन करते हैं। उनके रथकी लंबाई एक लाख योजन कही जाती है। जुआ-दण्ड उससे दुगुना कहा गया है। यह सुन्दर रथ ब्रह्माने मुख्य प्रयोजनके लिये बनाया है। संसारभरमें यह रथ अनुपम सुन्दर है। सुवर्णद्वारा इसकी रचना हुई है। यह सचमुच परम तेजोमय है। पवनके समान वेगवाले चक्रोंकी स्थितिके अनुकूल चलनेवाले अश्वरूपी छन्दोंसे यह संयुक्त है। वरुणके रथके चिह्नोंसे यह मिलता-जुलता है। उसी अनुपम रथपर चढ़कर भगवान् भास्कर प्रतिदिन आकाशमार्गमें विचरण करते हैं।

सूर्यके अङ्ग तथा उनके रथके प्रत्यङ्ग अब्द-वर्षके अवयवोंके रूपमें कल्पित किये गये हैं। दिन इस एकचक्र सूर्यरथकी नाभि है और अरे उनके [illegible] हैं, छहों ऋतुएँ नेमि कही जाती हैं। रात्रि रथके वरूथ तथा धर्म (घाम) ऊर्ध्वध्वजाके रूपमें कल्पित हैं।

---

१ लोहेका चद्दर या मोटाईका बना हुआ [illegible] या हाल, जो [illegible] आघातसे रथको सुरक्षित रखनेके लिये उसके ऊपर डाला जाता है, 'हाल' कहा जाता है।

२ कई पुस्तकोंमें 'पञ्च' पाठ पाया जाता है। परंतु 'त्रय' पाठ अधिक प्राचीन है।

चारों युग उस रथके पहियेकी छोर तथा कलाएँ जुएके अग्रभाग हैं। दसों दिशाएँ अश्वोंकी नासिका तथा क्षण उनके दाँतोंकी पंक्तियाँ हैं। निमेष रथका अनुकर्ष* तथा कला जुएका दण्ड है। अर्थ तथा काम—दस (रथ) के जुएके अक्षके अवयव हैं। गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पङ्क्ति, त्रिष्टुप् तथा जगती—ये सात छन्द अश्वरूप धारणकर वायुवेगसे उस रथको वहन करते हैं। इस रथका चक्र अक्षमें बँधा हुआ है। अक्ष ध्रुवसे संलग्न चक्रके समेत भ्रमण करता है। इस प्रकार किसी विशेष प्रयोजनके वश होकर उस रथका निर्माण ब्रह्माने किया है। उक्त साधनोंसे संयुक्त भगवान् सूर्यका यह रथ आकाशमण्डलमें भ्रमण करता है। इसके दक्षिण भागकी ओर जुआ और अक्षका शिरोभाग है। चक्र और जुएमें रश्मिका संयोग है। चक्के और जुएके भ्रमण करते समय दोनों रश्मियाँ भी मण्डलाकार भ्रमण करती हैं। यह जुआ और अक्षका शिरोभाग कुम्हारके चक्केकी भाँति ध्रुवके चारों ओर परिभ्रमण करता है। उत्तरायणमें इसका भ्रमण-मण्डल ध्रुव-मण्डलमें प्रविष्ट हो जाता है और दक्षिणायनमें ध्रुव-मण्डलसे बाहर निकल आता है। इसका कारण यह है कि उत्तरायणमें ध्रुवके आकर्षणसे दोनों रश्मियाँ संक्षिप्त हो जाती हैं और दक्षिणायनमें ध्रुवके रश्मियोंके परित्याग कर देनेसे बढ़ जाती हैं। ध्रुव जिस समय रश्मियोंको आकृष्ट कर लेता है, उस समय सूर्य दोनों दिशाओंकी ओर अस्सी सौ मण्डलोंके व्यवधानपर विचरण करते हैं और जिस समय ध्रुव दोनों रश्मियोंको त्याग देता है, उस समय भी उतने ही परिमाणमें वेगपूर्वक बाहरी ओरसे मण्डलोंको वेष्टित करते हुए भ्रमण करते हैं।

सूतजी बोले—ऋषिवृन्द! भगवान् भास्करका वह रथ महीने-महीनेके क्रमानुसार देवताओंद्वारा अधिरोहित होता है, अर्थात् प्रत्येक महीनेमें देवादिगण इसपर आरूढ़ होते हैं। इस प्रकार बहुतसे ऋषि, गन्धर्व, अप्सरा, सर्प, सारथि तथा राक्षसके समूहोंके समेत वह सूर्यका वहन करता है।

ये देवादिके समूह क्रमसे सूर्यमण्डलमें दो-दो मासतक निवास करते हैं। धाता, अर्यमा—दो देव, पुलस्त्य तथा पुलह नामक दो ऋषि प्रजापति, वासुकि तथा संकीर्ण नामक दो सर्प, गानविद्यामें विशारद तुम्बुरु तथा नारद नामक दो गन्धर्व, कृतस्थला तथा पुञ्जिकस्थली नामक दो अप्सराएँ, रथकृत तथा रथौजा नामक दो सारथि, हेति तथा प्रहेति नामक दो राक्षस—ये सब सम्मिलितरूपसे चैत्र तथा वैशाखके महीनोंमें सूर्य-मण्डलमें निवास करते हैं। ग्रीष्म ऋतुके ज्येष्ठ तथा आषाढ़—दो महीनोंमें मित्र तथा वरुण नामक दो देव, अत्रि तथा वसिष्ठ नामक दो ऋषि, तक्षक तथा रम्भक नामक दो सर्पराज, मेनका तथा धन्या नामक दो अप्सराएँ, हाहा तथा हूहू नामक दो गन्धर्व, रथन्तर तथा रथकृत नामक दो सारथि, पुरुषाद और वध नामक दो राक्षस सूर्यमण्डलमें निवास करते हैं। तदुपरान्त सूर्यमण्डलमें अन्य देवादिगण निवास करते हैं। उनमें इन्द्र तथा विवस्वान्—ये दो देव, अंगिरा तथा भृगु—ये दो ऋषि, एलापत्र तथा शङ्खपाल नामक दो नागराज, विश्वावसु तथा सुषेण नामक दो गन्धर्व, प्रात और रथि नामक दो सारथि, प्रम्लोचा तथा निम्लोचन्ती नामकी दो अप्सराएँ, हेति तथा व्याघ्र नामक दो राक्षस रहते हैं। ये सब श्रावण तथा भाद्रपदके महीनोंमें सूर्यमण्डलमें निवास करते हैं। इसी प्रकार शरद् ऋतुके दो महीनोंमें अन्य देवगण निवास करते हैं। पर्जन्य और पूषा नामक दो देव, भरद्वाज और गौतम नामक दो महर्षि, चित्रसेन और सुरुचि नामक दो गन्धर्व, विश्वाची तथा घृताची नामकी दो शुभ लक्षणसम्पन्न अप्सराएँ, सुप्रसिद्ध ऐरावत तथा धनञ्जय नामक दो नागराज, सेनजित् तथा सुषेण नामक दो सारथि तथा वापक चार और वात

* रथके नीचे लगी हुई लकड़ी, जिससे रथ टूटने-फूटनेसे बचता है। (रथके नीचे पहियेके ऊपर बँधी हुई लकड़ी।)

आकाशमें उत्तानपादका पुत्र ध्रुव मेढ़ (खिल्ह) के समान एक स्थानमें अवस्थित है। यह ध्रुव भ्रमण करता हुआ नक्षत्रगणोंको सूर्य और चन्द्रमाके साथ भ्रमाता है और स्वयं भ्रमण करता है। चक्रके समान भ्रमण करते हुए इसीके पीछे-पीछे सब नक्षत्रगण भ्रमण करते हैं। वायुमय बन्धनोंसे ध्रुवमें बँधे हुए वे ज्योतिर्गण ध्रुवके मनसे ही भ्रमण करते हैं। उन ज्योतिश्चक्रोंके मेल, योग, कालका निर्णय, अस्त, उदय, उत्पात, दक्षिणायन एवं उत्तरायणमें स्थित, विषुव रेखापर गमन आदि कार्य सभी ध्रुवकी प्रेरणापर ही निर्भर करते हैं। इस लोकके जीवोंकी जिनसे उत्पत्ति होती है, वे जीमूत नामक मेघ कहे जाते हैं। उन्हींकी वृष्टिसे सृष्टि होती है।

सूर्य ही सब प्रकारकी वृष्टिके कर्ता कहे जाते हैं। इस लोकमें होनेवाली वृष्टि, धूप, तुषार, रात दिन, दोनों सन्ध्याएँ, शुभ एवं अशुभ फल—सभी ध्रुवसे प्रवर्तित होते हैं। ध्रुवमें स्थित जलको सूर्य ग्रहण करते हैं। सभी प्रकारके जीवोंके शरीरमें जल परमाणुरूपमें आश्रित रहता है। स्थावर-जङ्गम जीवोंके भस्म होने समय वह धुएँके रूपमें परिणत होकर सभी ओरसे निकलता है। उसी धूमसे मेघगण उत्पन्न होते हैं। आकाशमण्डल अभ्रमय स्थान कहा जाता है।

अपनी तेजोमयी किरणोंसे सूर्य सभी लोकोंसे जलको ग्रहण करते हैं। वे ही किरणें वायुके संयोगद्वारा समुद्रसे भी जलको खींचती हैं। तदनन्तर सूर्य ग्रीष्म आदि ऋतुके प्रभावसे समय-समयपर परिवर्तनकर जलको अपनी श्वेत किरणोंद्वारा उन मेघोंको जल देते हैं। वायुद्वारा प्रताड़ित होनेपर उन्हीं मेघोंकी जलराशि बादलमें पृथ्वीतलपर गिरती है और तदनन्तर छः महीनोंतक सभी प्रकारके जीवोंकी संतुष्टि एवं अभिवृद्धिके लिये सूर्य पृथ्वीतलपर वृष्टि करते हैं। वायुके वेगसे उन मेघोंसे शब्द होते हैं। बिजलियाँ अग्निसे उत्पन्न बतलायी गयी हैं। 'मिह सेचने' धातुसे मेघ शब्द जल छोड़ने अथवा सिंचन करनेके अर्थमें निष्पन्न होता है। जिससे जल न गिरे, उसे अभ्र कहते हैं—(न भ्रश्यते यस्मादसावभ्रः)। इस प्रकार वृष्टिकी उत्पत्ति करनेवाले सूर्य ध्रुवके संरक्षणमें रहते हैं। उसी ध्रुवके सहारे अवस्थित वायु उस वृष्टिका उपसंहार करती है। नक्षत्रमण्डल सूर्यमण्डलसे बहिर्गत होकर विचरण करता है। जब संचार समाप्त हो जाता है, तब ध्रुवद्वारा अधिष्ठित सूर्यमण्डलमें वे सभी प्रवेश करते हैं। अब इसके बाद मैं सूर्यके रथका प्रमाण बतला रहा हूँ।

एक चक्र, पाँच अरे, तीन नाभि तथा सुवर्णकी छोटी आठ पुट्ठियोंद्वारा बनी हुई नेमि (जिसपर हाल चढ़ाई जाती है)-से बने हुए तेजोमय शीघ्रगामी रथद्वारा सूर्य गमन करते हैं। उनके रथकी लम्बाई दस हजार योजन कही जाती है। दुगुना उसका ईषादण्ड कहा गया है। वह सुन्दर रथ ब्रह्माने मुख्य प्रयोजनके लिये बनाया है। संसारभरमें यह रथ अनुपम सुन्दर है। सुवर्णद्वारा उसकी रचना हुई है। वह सचमुच परम तेजोमय है। पवनके समान वेगशाली चक्रकी स्थितिके अनुकूल चलनेवाले अश्वरूपधारी छन्दोंसे यह संयुक्त है। वरुणके रथके विशेष चिह्नसे मिलता-जुलता है। उसी अनुपम रथपर चढ़कर भगवान् भास्कर प्रतिदिन आकाशमार्गमें विचरण करते हैं।

सूर्यके अङ्ग तथा उनके रथके प्रत्येक अङ्ग-प्रत्यङ्ग वर्षके अवयवोंके रूपमें कल्पित किये गये हैं। दिन उस रथका एक चक्र सूर्यरथकी नाभि है और अरे उनके संवत्सर हैं, छहों ऋतुएँ नेमि कही जाती हैं। रात्रि उनके रथका वरूथ[1] तथा धर्म[2] (घाम) ऊर्ध्वध्वजाके रूपमें कल्पित है।

---

[1] रूईका गद्दर या सीकचोंका बना हुआ आवरण या झूल, जो शत्रुपक्षके आघातसे रथको सुरक्षित रखनेके लिये उसके ऊपर डाला जाता है, 'वरूथ' कहा जाता है।

[2] कई पुस्तकोंमें 'धम' पाठ पाया जाता है। परंतु 'धर्म' पाठ अधिक समीचीन है।

चारों युग उस रथके पहियेकी छोर तथा कलाएँ जुएके अग्रभाग हैं। दसों दिशाएँ अश्वोंकी नासिका तथा क्षण उनके दाँतोंकी पंक्तियाँ हैं। निमेष रथका अनुकर्ष* तथा कला जुएका दण्ड है। अर्थ तथा काम—इस (रथ) के जुएके अक्षके अवयव हैं। गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पङ्क्ति, त्रिष्टुप् तथा जगती—ये सात छन्द अश्वरूप धारणकर वायुवेगसे उस रथको वहन करते हैं। इस रथका चक्र अक्षमें बँधा हुआ है। अक्ष ध्रुवसे संलग्न चक्रके समेत भ्रमण करता है। इस प्रकार किसी विशेष प्रयोजनके वश होकर उस रथका निर्माण ब्रह्मान किया है। उक्त साधनोंसे संयुक्त भगवान् सूर्यका यह रथ आकाशमण्डलमें भ्रमण करता है। इसके दक्षिण भागका ओर जुआ और अक्षका शिरोभाग है। चक्राग्र और जुएमें रश्मिका संयोग है। चक्के और जुएके भ्रमण करते समय दोनों रश्मियाँ भी मण्डलाकार भ्रमण करती हैं। यह जुआ और अक्षका शिरोभाग कुम्हारके चक्केकी भाँति ध्रुवके चारों ओर परिभ्रमण करता है। उत्तरायणमें इसका भ्रमण-मण्डल ध्रुव-मण्डलमें प्रविष्ट हो जाता है और दक्षिणायनमें ध्रुव-मण्डलसे बाहर निकल आता है। इसका कारण यह है कि उत्तरायणमें ध्रुवके आकर्षणसे दोनों रश्मियाँ संक्षिप्त हो जाती हैं और दक्षिणायनमें ध्रुवके रश्मियोंके परित्याग कर देनेसे बढ़ जाती हैं। ध्रुव जिस समय रश्मियोंको आकृष्ट कर लेता है, उस समय सूर्य दोनों दिशाओंकी ओर अस्सी सौ मण्डलोंके व्यवधानपर विचरण करते हैं और जिस समय ध्रुव दोनों रश्मियोंको त्याग देता है, उस समय भी उतने ही परिमाणमें वेग पूर्वक बाहरी ओरसे मण्डलोंको वेष्टित करते हुए भ्रमण करते हैं।

सूतजी बोले—ऋषिवृन्द! भगवान् भास्करका वह रथ महीने-महीनेके क्रमानुसार देवताओंद्वारा अधिष्ठित होता है अर्थात् प्रत्येक महीनेमें देवादिगण इसपर आरूढ़ होते हैं। इस प्रकार बहुतसे ऋषि, गन्धर्व, अप्सरा, सर्प, सारथि तथा राक्षसके समूहोंके समेत वह सूर्यका वहन करता है।

ये देवादिके समूह क्रमसे सूर्यमण्डलमें दो-दो मासतक निवास करते हैं। धाता, अर्यमा—दो देव, पुलस्त्य तथा पुलह नामक दो ऋषि-प्रजापति, वासुकि तथा संकीर्ण नामक दो सर्प, गानविद्यामें विशारद तुम्बुरु तथा नारद नामक दो गन्धर्व, कृतस्थला तथा पुञ्जिकस्थली नामक दो अप्सराएँ, रथकृत तथा रथौजा नामक दो सारथि, हेति तथा प्रहेति नामक दो राक्षस—ये सब सम्मिलितरूपसे चैत्र तथा वैशाखके महीनोंमें सूर्य-मण्डलमें निवास करते हैं। ग्रीष्म ऋतुके ज्येष्ठ तथा आषाढ़—दो महीनोंमें मित्र तथा वरुण नामक दो देव, अत्रि तथा वसिष्ठ नामक दो ऋषि, तक्षक तथा रम्भक नामक दो सर्पराज, मेनका तथा धन्या नामक दो अप्सराएँ, हाहा तथा हूहू नामक दो गन्धर्व, रथन्तर तथा रथकृत नामक दो सारथि, पुरुषाद और वध नामक दो राक्षस सूर्य मण्डलमें निवास करते हैं। तदुपरान्त सूर्यमण्डलमें अन्य देवादिगण निवास करते हैं। उनमें इन्द्र तथा विवस्वान्—ये दो देव, अंगिरा तथा भृगु—ये दो ऋषि, एलापत्र तथा शङ्खपाल नामक दो नागराज, विश्वावसु तथा सुषेण नामक दो गन्धर्व, प्रात और रथि नामक दो सारथि, प्रम्लोचा तथा निम्लोचन्ती नामकी दो अप्सराएँ, हेति तथा व्याघ्र नामक दो राक्षस रहते हैं। ये सब श्रावण तथा भाद्रपदके महीनोंमें सूर्य मण्डलमें निवास करते हैं। इसी प्रकार शरद् ऋतुके दो महीनोंमें अन्य देवगण निवास करते हैं। पर्जन्य और पूषा नामक दो देव, भरद्वाज और गौतम नामक दो महर्षि, चित्रसेन और सुरुचि नामक दो गन्धर्व, विश्वाची तथा घृताची नामक दो शुभ लक्षणसम्पन्न अप्सराएँ, सुप्रसिद्ध ऐरावत तथा धनञ्जय नामक दो नागराज, सेनजित् तथा सुषेण नामक दो सारथि तथा नायक वात और वात

---

* रथके नीचे लगनेवाली पहियेके ऊपर बँधी हुई लकड़ी।

नामक दो राक्षस—ये सब आश्विन तथा कार्तिक मासमें सूर्यमण्डलमें निवास करते हैं। हेमन्त ऋतुके दो महीनोंमें जो देवादिगण सूर्यमें निवास करते हैं, वे ये हैं—अंश और भग—ये दो देव, कश्यप और क्रतु—ये दो ऋषि, महापद्म तथा कर्कोटक नामक दो सर्पराज, चित्रसेन और पूर्णायु नामक गायक दो गन्धर्व, पूर्वचित्ति तथा उर्वशी—ये दो अप्सराएँ, तथा तार्क्ष्य अरिष्टनेमि नामक दो सारथि एवं वायक विद्युत् तथा सूर्य नामक दो उग्र राक्षस—ये सब मार्गशीर्ष और पौषके महीनोंमें सूर्यमण्डलमें निवास करते हैं। तदनन्तर शिशिर ऋतुके दो महीनोंमें त्वष्टा तथा विष्णु—ये दो देव, जमदग्नि तथा विश्वामित्र—ये दो ऋषि, काद्रवेय तथा कम्बलाश्वतर—ये दो नागराज, सूर्यवर्चा तथा धृतराष्ट्र—ये दो गन्धर्व, सुन्दरतासे मनको हर लेनेवाली तिलोत्तमा तथा रम्भा नामक दो अप्सराएँ, ऋतजित् तथा सत्यजित् नामक दो महाबलवान् सारथि, ब्रह्मोपेत तथा यज्ञोपेत नामक दो राक्षस निवास करते हैं।

ये उपर्युक्त देव आदि गण क्रमसे दो-दो महीनेतक सूर्यमण्डलमें निवास करते हैं। ये बारह सप्तकों (देव, ऋषि, राक्षस, गन्धर्व, सारथि, नाग और अप्सरा)के जोड़े इन स्थानोंके अभिमानी कहे जाते हैं और ये सब बारह सप्तक देवादिगण भी अपने अतिशय तेजसे सूर्यको उत्तम तेजोराशि बनाते हैं। ऋषिगण अपने बनाये हुए वेद वाक्योंसे सूर्यकी स्तुति करते हैं। गन्धर्व एवं अप्सराएँ अपने-अपने नृत्यों तथा गीतोंसे सूर्यकी उपासना करती हैं। विद्यामें परम प्रवीण सारथि यक्षगण सूर्यके अश्वोंकी डोरियाँ पकड़ते हैं। सर्पगण सूर्यमण्डलमें इधर-उधर दौड़ते तथा राक्षसगण पीछे-पीछे चलते हैं। इनके अतिरिक्त बालखिल्य ऋषि उदयकालसे सूर्यके समीप अवस्थित रह कर उन्हें अस्ताचलको प्राप्त कराते हैं। इन उपर्युक्त देवताओंमें जिस प्रकारका पराक्रम, तपोबल, योगबल, धर्म, तत्त्व तथा शारीरिक बल रहता है, उसी उनके तेजरूप ईंधनसे समृद्ध होकर सूर्य अतिशय तेजस्वी रूपमें तपते हैं। ये सूर्य अपने तेजोबलसे सम्पूर्ण जीवोंके अकल्याणका प्रशमन करते हैं, मनुष्योंकी आपत्तिको इन्हीं मङ्गलमय उपादानोंसे दूर करते हैं और कहीं-कहींपर शुभाचरण करनेवालोंके अकल्याणको हरते हैं। ये उपर्युक्त सप्तक सूर्यके साथ ही अपने अनुचरों समेत आकाशमण्डलमें भ्रमण करते हैं। ये देव ध्यानवश प्रजावर्गसे तपस्या तथा जप कराते हुए उनकी रक्षा करते हैं तथा उनके हृदयको प्रसन्नतासे पूर्ण देते हैं। अतीतकाल, भविष्यत्काल तथा वर्तमान कालके स्थानाभिमानियोंके ये स्थान विभिन्न मन्वन्तरोंमें भी वर्तमान रहते हैं। इस प्रकार निगमपूर्वक चौदह संख्यामें जोड़ रूपमें वे सप्तक देवादिगण सूर्यमण्डलमें निवास करते हैं और चौदह मन्वन्तरोंतक क्रमशः विद्यमान रहते हैं।

इस प्रकार सूर्य ग्रीष्म शिशिर तथा वर्षा ऋतुमें अपनी किरणोंका क्रमशः परिवर्तन कर घाम, हिम तथा वृष्टि करते हुए प्रतिदिन देवता, पितर तथा मनुष्योंको तृप्त करते हैं और प्रतिक्षण भ्रमण करते हैं। देवगण निज निज क्रमसे शुक्ल एवं कृष्णपक्षमें महीने भर कालक्षयके अनुसार उस मीठे अमृतका पान करते हैं, जो सुवृष्टिके लिये सूर्यकी किरणोंद्वारा रक्षित रहता है। सभी देवता, सौम्य तथा कव्यादि पितरगण सूर्यके उस अमृत-रसका पान करते हैं और कालान्तरमें सुवृष्टि करते हुए संसारको तृप्त करते हैं। मानवगण सूर्यकी किरणोंद्वारा बढ़ाया गया तथा जलद्वारा परिवर्धित और वृष्टिद्वारा प्रवर्धित ओषधियोंसे एवं अन्नसे क्षुधाको अपने वशमें करते हैं। सूर्यकी उस संचित अमृतराशिसे देवताओंकी तृप्ति पन्द्रह दिनोंतक तथा स्वधामय पितरोंकी तृप्ति एक महीनेतक होती है। वृष्टिजनित अन्नादिसे

मनुष्यगण सर्वदा अपना जीवन धारण करते हैं। इस प्रकार सूर्य अपनी किरणोंद्वारा सबका पालन करते हैं।

सूर्य अपने उस एकचक्र रथद्वारा शीघ्र गमन करते हैं और दिनके व्यतीत हो जानेपर उन्हीं विषमसंख्यक (सात) अश्वोंद्वारा अपने स्थानको पुनः प्राप्त करते हैं। हरे रंगवाले अपने अश्वोंसे वे वहन किये जाते हैं और अपनी सहस्र किरणोंसे जलका हरण करते हैं एवं तृप्त होनेपर हरित वर्णवाले अपने अश्वोंसे संयुक्त रथपर चढ़कर उसी जलको पुनः छोड़ते हैं। इस प्रकार अपने एक चक्रवाले रथद्वारा दिन-रात चलते हुए सूर्य सातों द्वीपों तथा सातों समुद्रोंसमेत निखिल पृथ्वीमण्डलका भ्रमण करते हैं। उनका यह अनुपम रथ अश्वरूपधारी छन्दोंसे युक्त है, उसीपर वे समासीन होते हैं। वे अश्व इच्छानुकूल रूप धारण करनेवाले, एक बार जोते गये, इच्छानुकूल चलनेवाले तथा मनके वेगके समान शीघ्रगामी हैं। उनके रंग हरे हैं, उन्हें थकावट नहीं लगती। वे दिव्य तेजोमय शक्तिशाली तथा ब्रह्मवेत्ता हैं। ये प्रतिदिन अपने निर्धारित परिधि-मण्डलकी परिक्रमा बाहर तथा भीतरसे करते हैं। युगके आदिकालमें जोते गये वे अश्व महाप्रलयपर्यन्त सूर्यका भार वहन करते हैं। वालखिल्य आदि ऋषिगण चारों ओरसे परिभ्रमणके समय सूर्यको रात-दिन घेरे रहते हैं। महर्षिगण स्वरचित स्तोत्रोंद्वारा उनकी स्तुति करते हैं। गन्धर्व तथा अप्सराओंके समूह संगीत तथा नृत्योंसे उनका सत्कार करते हैं। इस प्रकार वे दिनमणि भास्कर पक्षियोंके समान वेगशाली अश्वोंद्वारा भ्रमण कराये जाते हुए नक्षत्रोंकी वीथियोंमें विचरण करते हैं। उन्हींकी भाँति चन्द्रमा भी भ्रमण करते हैं।

ऋषियोंके ज्योतिष्पुञ्जके सम्बन्धमें प्रश्नमें सूतजीने कहा—आदिम कालमें यह समस्त जगत् रात्रिकालमें अन्धकारसे आच्छन्न एवं आलोकहीन था। अव्यक्तयोनि ब्रह्माजीने जगत्का किसी भी वस्तुमें प्रकाश नहीं किया था। इस प्रकार (युगादिमें) चार पदार्थोंके शेष रह जानेपर यह जगत् ब्रह्मद्वारा अधिष्ठित हुआ। पश्चात् स्वयं उत्पन्न होनेवाले लोकके परमार्थसाधक भगवान्‌ने खद्योतरूप धारणकर इस जगत्‌को व्यक्तरूपमें प्रकट करनेकी चिन्ता की और कल्पके आदिमें अग्निको जल और पृथ्वीमें मिली हुई जानकर प्रकाश करनेके लिये तीनोंको एकत्र किया। इस प्रकार तीन प्रकारसे अग्नि उत्पन्न हुई।

इस लोकमें जो अग्नि भोजन आदि सामग्रियोंको पकानेवाली है, वह पार्थिव (पृथ्वीके अंशसे उत्पन्न) अग्नि है। जो यह सूर्यमें अधिष्ठित होकर तपती है, वह 'शुचि' नामक अग्नि है। उदरस्थ पदार्थोंको पकानेवाली अग्नि 'विद्युत्'की अग्नि कही जाती है। उसे 'सौम्य' नामसे भी जानते हैं। इस विद्युत् अग्निका उपकारक ईंधन जल है। कोई अग्नि अपने तेजोंसे बढ़ती है और कोई बिना किसी ईंधनके ही बढ़ती है। काष्ठके ईंधनसे प्रज्वलित होनेवाली अग्निका निर्मन्थ्य नाम है। यह अग्नि जलसे शान्त हो जाती है। भोजनादिको पकानेवाली जठराग्नि ज्वालाओंसे युक्त, देखनेमें सौम्य एवं कान्तिविहीन है। यह अग्नि श्वेत मण्डलमें आकाररहित एवं प्रकाशविहीन है। सूर्यकी प्रभा सूर्यके अस्त हो जानेपर रात्रिकालमें अपने चतुर्थ अंशसे अग्निमें प्रवेश करती है। इसी कारण रात्रिमें अग्नि प्रकाशयुक्त हो जाती है। प्रातःकाल सूर्यके उदित होनेपर अग्निकी उष्णता अपने तेजके चतुर्थ अंशसे सूर्यमें प्रवेश कर लेती है, इसी कारण दिनमें सूर्य तपता है। सूर्य और अग्निके प्रकाश उष्णता और तेज—इन सबोंके परस्पर प्रविष्ट होनेके कारण दिन और रात्रिकी शोभा-वृद्धि होती है।

पृथ्वीके उत्तरवर्ती अर्धभाग तथा दक्षिणभागमें सूर्यके उदित होनेपर रात्रि जलमें प्रवेश करती है, इसीलिये दिन और रात—दोनोंके प्रवेश करनेके कारण जल दिनमें लाल वर्णका दिखायी देता है। पुनः सूर्यके अस्त

हो जानेपर दिन जलमें प्रवेश करता है, इसीलिये रातके समय जल चमकविशिष्ट तथा श्वेत रंगका दिखायी पड़ता है। इस क्रमसे पृथ्वीके अर्ध दक्षिणी तथा उत्तरी भागमें सूर्यके उदय तथा अस्तके अवसरोंपर दिन-रात्रि जलमें प्रवेश करती हैं।

यह सूर्य, जो तप रहा है, अपनी किरणोंसे जलका पान करता है। इस सूर्यमें निवास करनेवाली अग्नि सहस्र किरणोंवाली तथा रक्त कुम्भके समान लाल वर्णकी है। यह चारों ओरसे अपनी सहस्र नाड़ियोंसे नदी, समुद्र, तालाब, कुँआ आदिके जलोंको ग्रहण करती है। उस सूर्यकी सहस्र किरणोंसे शीत, वर्षा एवं उष्णताका निःसरण होता है। उसकी एक सहस्र किरणोंमें चार सौ नाड़ियाँ विचित्र आकृतिवाली तथा वृष्टि करनेवाली स्थित हैं। चन्दना, मेध्या, केतना, चेतना, अमृता तथा जीवना—सूर्यकी ये किरणें वृष्टि करनेवाली हैं। हिमसे उत्पन्न होनेवाली सूर्यकी तीन सौ किरणें कही जाती हैं, जो चन्द्रमा, ताराओं एवं ग्रहोंद्वारा पी जाती जाती हैं। ये मध्यकी नाड़ियाँ हैं। अन्य ह्रादिनी नामक किरणें हैं, जो नामसे शुक्ला कही जाती हैं। उनकी संख्या भी तीन सौ हैं। वे सभी समग्र सृष्टि करनेवाली हैं। वे शुक्ला नामक किरणें मनुष्य, देवता एवं पितरोंका पालन करती हैं। ये किरणें मनुष्योंको ओषधियोंद्वारा, पितरोंको स्वधाद्वारा एवं समस्त देवताओंको अमृतद्वारा संतुष्ट करती हैं।

सूर्य वसन्त और ग्रीष्म ऋतुओंमें तीन सौ किरणोंद्वारा शनैः-शनैः तपते हैं। इसी प्रकार वर्षा और शरद् ऋतुओंमें चार सौ किरणोंसे वृष्टि करते हैं तथा हेमन्त और शिशिर ऋतुओंमें तीन सौ किरणोंसे वर्फ गिराते हैं। ये ही सूर्य ओषधियोंमें तेज धारण कराते हैं, स्वधामें सुधाको धारण कराते हैं एवं अमृतमें अमरत्वकी वृद्धि करते हैं। इस प्रकार सूर्यकी ये सहस्र किरणें तीनों लोकोंके तीन मुख्य प्रयोजनोंका साधिका होती हैं।

ऋतुको प्राप्त होकर सूर्यका मण्डल सहस्रों भागोंमें पुनः प्रसृत हो जाता है। इस प्रकार यह मण्डल शुक्ल-तेजोमय एवं लोकमङ्गलकारक कहा जाता है।

नक्षत्र, ग्रह और चन्द्रमा आदिकी प्रतिष्ठा एवं उत्पत्ति-स्थान सभी सूर्य हैं। चन्द्रमा, तारागण एवं ग्रहगणोंको सूर्यसे उत्पन्न जानना चाहिये। सूर्यकी सुषुम्ना नामक जो रश्मि है, वही क्षीण चन्द्रमाको बढ़ाती है। पूर्व दिशामें हरिकेश नामक जो रश्मि है, वह नक्षत्रोंको उत्पन्न करनेवाली है। दक्षिण दिशामें विश्वकर्मा नामक जो किरण है, वह बुधको संतुष्ट करती है। पश्चिम दिशामें जो विश्वव्यचा नामक किरण है, वह शुक्रकी उत्पत्तिस्थली कही गयी है। संवर्धन नामक जो रश्मि है, वह मङ्गलकी उत्पत्तिस्थली है। छठी अश्वभू नामक जो रश्मि है, वह बृहस्पतिकी उत्पत्तिस्थली है। सुराट्‌नामक सूर्यकी रश्मि शनैश्चरकी वृद्धि करती है। अतः ये ग्रह कभी नष्ट नहीं होते और नक्षत्र नामसे स्मरण किये जाते हैं। इन उपर्युक्त नक्षत्रोंके क्षेत्र अपनी किरणोंद्वारा सूर्यपर आकर गिरते हैं और सूर्य उनका क्षेत्र ग्रहण करता है, इसीसे उनकी नक्षत्रता सिद्ध होती है। इस मर्त्यलोकसे उस लोकको पार करनेवाले (जानेवाले) सत्कर्मपरायण पुरुषोंके तारण करनेसे इनका नाम तारा पड़ा और श्वेत वर्णके होनेके कारण ही इनका शुक्लि नाम है। दिव्य तथा पार्थिव सभी प्रकारके पदार्थोंके तथा एवं तेजके योगसे 'आदित्य' यह नाम कहा जाता है। 'स्रवति' धातु स्रव क्षरण (झरने) अर्थमें प्रयुक्त कहा गया है, तेजके झरनेसे ही यह सविताके नामसे स्मरण किया जाता है। ये विवस्वान् नामक सूर्य अदितिके आठवें पुत्र कहे गये हैं।

सहस्र किरणोंवाले भास्करका स्थान शुक्ल वर्ण एवं अग्निके समान तेजस्वी तथा दिव्य तेजोमय है। सूर्यका विष्कम्भ-मण्डल नव सहस्र योजनोंमें विस्तृत कहा है और इस प्रकार भास्करका पूर्ण मण्डल विष्कम्भ-मण्डलसे तिगुना कहा जाता है।

पद्मपुराणीय सूर्य-सन्दर्भ

['पद्मपुराण'के इस छोटे-से सङ्कलित परिच्छेदमें भगवान् सूर्यकी महिमा एवं उनकी संक्रान्तिमें दानका माहात्म्य, उपासना और उसके फल-वर्णनके साथ ही भद्रेश्वरकथा भी दी जा रही है ।]

भगवान् सूर्यका तथा संक्रान्तिमें दानका माहात्म्य

वैशम्पायनजीने पूछा—विप्रवर ! आकाशमें प्रतिदिन जिसका उदय होता है, यह कौन है ? इसका क्या प्रभाव है ? तथा किरणोंके इन स्वामीका प्रादुर्भाव कहाँसे हुआ है ? मैं देखता हूँ—देवता, बड़े-बड़े मुनि, सिद्ध, चारण, दैत्य, राक्षस तथा ब्राह्मण आदि समस्त मानव इनकी ही सदा आराधना किया करते हैं ।

व्यासजी बोले—वैशम्पायन ! यह ब्रह्मके स्वरूपसे प्रकट हुआ ब्रह्मका ही उत्कृष्ट तेज है । इसे साक्षात् ब्रह्ममय समझो । यह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंको देनेवाला है । निर्मल किरणोंसे सुशोभित यह तेजका पुञ्ज पहले अत्यन्त प्रचण्ड और दुःसह था । इसे देखकर इसकी प्रखर रश्मियोंसे पीड़ित हो सब लोग इधर-उधर भागकर छिपने लगे । चारों ओरके समुद्र, समस्त बड़ी-बड़ी नदियाँ और नद आदि सूखने लगे । उनमें रहनेवाले प्राणी मृत्युके ग्रास बनने लगे । मानव समुदाय भी शोकसे आतुर हो उठा । यह देख इन्द्र आदि देवता ब्रह्माजीके पास गये और उनसे यह सारा हाल कह सुनाया । तब ब्रह्माजीने देवताओंसे कहा—'देवगण ! यह तेज आदिब्रह्मके प्रभावसे उन्हींसे प्रकट हुआ है । यह तेजोमय पुरुष उस ब्रह्मके ही समान है । इसमें और आदिब्रह्ममें तुम अन्तर न समझना । ब्रह्मासे लेकर कीटपर्यन्त चराचर प्राणियोंसहित सम्पूर्ण त्रिलोकीमें इसीकी सत्ता है । ये सूर्यदेव सत्त्वमय हैं । इनके द्वारा चराचर जगत्‌का पालन होता है । देवता, जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज आदि जितने भी प्राणी हैं—सबकी रक्षा सूर्यसे ही होती है । इन सूर्यदेवके प्रभावका हम पूरा-पूरा वर्णन नहीं कर सकते । इन्होंने ही लोकोंका उत्पादन और पालन किया है । सबके रक्षक होनेके कारण इनकी समानता करनेवाला दूसरा कोई नहीं है । पौ फटनेपर इनका दर्शन करनेसे राशि-राशि पाप विलीन हो जाते हैं । द्विज आदि सभी मनुष्य इन सूर्यदेवकी आराधना करके मोक्ष पा लेते हैं । संध्योपासनके समय ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण अपनी भुजाएँ ऊपर उठाये इन्हीं सूर्यदेवका उपस्थान करते हैं और उसके फलस्वरूप समस्त देवताओंद्वारा पूजित होते हैं । सूर्यदेवके ही मण्डलमें रहनेवाली संध्यारूपिणी देवीकी उपासना करके सम्पूर्ण द्विज स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त करते हैं । इस भूतलपर जो पतित और जूठन खानेवाले मनुष्य हैं, वे भी भगवान् सूर्यकी किरणोंके स्पर्शसे पवित्र हो जाते हैं । संध्याकालमें सूर्यकी उपासना करनेमात्रसे द्विज सारे पापोंसे शुद्ध हो जाते हैं ।* जो मनुष्य चाण्डाल, गोघाती (कसाई), पतित, कोढ़ी, महापातकी और उपपातकीके दीख जानेपर भगवान् सूर्यका दर्शन करते हैं, वे भारी-से-भारी पापसे भी मुक्त हो पवित्र हो जाते हैं । सूर्यकी उपासना करनेमात्रसे मनुष्यको सब रोगोंसे छुटकारा मिल जाता है । जो सूर्यकी उपासना करते हैं, वे इहलोक और परलोकमें भी अंधे, दरिद्र, दुःखी और शोकग्रस्त नहीं होते । श्रीविष्णु और शिव आदि देवताओंके दर्शन सब लोगोंको नहीं होते, ध्यानमें ही उनके स्वरूपका साक्षात्कार किया जाता है, किंतु भगवान् सूर्य प्रत्यक्ष देवता माने गये हैं ।

* सन्ध्योपासनमात्रेण कल्मषात् पूततां व्रजेत् । (७५ । १९)

देवता बोले—ब्रह्मन् ! सूर्यदेवताको प्रसन्न करनेके लिये आराधना, उपासना करनेकी बात तो दूर है, इनका दर्शन ही प्रलयकालकी आगके समान प्रतीत होता है जिससे सभी भूतलके सम्पूर्ण प्राणी इनके तेजके प्रभावसे मृत्युको प्राप्त हो गये। समुद्र आदि जलाशय नष्ट हो गये। हमलोगोंसे भी इनका तेज सहन नहीं होता, फिर दूसरे लोग कैसे सह सकते हैं। इसलिये आप ही ऐसी कृपा करें, जिससे हमलोग भगवान् सूर्यका पूजन कर सकें। सब मनुष्य भक्तिपूर्वक सूर्यदेवका आराधना कर सकें—इसके लिये आप ही कोई उपाय करें।

व्यासजी कहते हैं—देवताओंके वचन सुनकर ब्रह्माजी ग्रहोंके स्वामी भगवान् सूर्यके पास गये और सम्पूर्ण जगत्का हित करनेके लिये उनकी स्तुति करने लगे।

ब्रह्माजी बोले—देव ! तुम सम्पूर्ण संसारके नेत्रस्वरूप और निरामय हो। तुम साक्षात् ब्रह्मरूप हो। तुम्हारी ओर देखना कठिन है। तुम प्रलयकालकी अग्निके समान तेजस्वी हो। सम्पूर्ण देवताओंके भीतर तुम्हारी स्थिति है। तुम्हारे श्रीविग्रहमें वायुके सखा अग्नि निरन्तर विराजमान रहते हैं। तुम्हींसे अन्न आदिका पाचन तथा जीवनकी रक्षा होती है। देव ! तुम्हीं सम्पूर्ण भुवनोंके स्वामी हो। तुम्हारे बिना समस्त संसारका जीवन एक दिन भी नहीं रह सकता। तुम्हीं सम्पूर्ण लोकोंके प्रभु तथा चराचर प्राणियोंके रक्षक, पिता और माता हो। तुम्हारी ही कृपासे यह जगत् टिका हुआ है। भगवन् ! सम्पूर्ण देवताओंमें तुम्हारी समानता करनेवाला कोई नहीं है। शरीरके भीतर, बाहर तथा समस्त विश्वमें—सर्वत्र तुम्हारी सत्ता है। तुमने ही इस जगत्को धारण कर रखा है। तुम्हीं रूप और गन्ध आदि उत्पन्न करनेवाले हो। रसोंमें जो स्वाद है वह तुम्हींसे आया है। इस प्रकार तुम्हीं सम्पूर्ण जगत्के ईश्वर और सबकी रक्षा करनेवाले सूर्य हो। प्रभो ! तीर्थों, पुण्यक्षेत्रों, यज्ञों और जगत्के एकमात्र कारण तुम्हीं हो। तुम परम पवित्र, सबके साक्षी और गुणोंके धाम हो। सर्वज्ञ, सबके कर्ता, संहारक, रक्षक, अन्धकार कीचड़ और रोगोंका नाश करनेवाले तथा दरिद्रताके दुःखका निवारण करनेवाले भी तुम्हीं हो। इस लोक और परलोकमें सबके श्रेष्ठ बन्धु एवं सब कुछ जानने और देखनेवाले तुम्हीं हो। तुम्हारे सिवा दूसरा कोई नहीं है, जो सब लोकोंका उपकारक हो।

आदित्यने कहा—महाप्राज्ञ पितामह ! आप विश्वके स्वामी तथा स्रष्टा हैं, शीघ्र अपना कार्य बताइये। मैं उसे पूर्ण करूँगा।

ब्रह्माजी बोले—सुरेश्वर ! तुम्हारी किरणें अति प्रखर हैं। लोगोंके लिये वे अत्यन्त दुःसह हो गयी हैं। अतः जिस प्रकार उनमें कुछ मृदुता आ सके, वही उपाय करो।

आदित्यने कहा—प्रभो ! वास्तवमें मेरी कोटि-कोटि किरणें संसारका विनाश करनेवाली ही हैं, अतः आप किसी युक्तिद्वारा इन्हें खरादकर कम कर दें।

तब ब्रह्माजीने सूर्यके कहनेसे विश्वकर्माको बुलाया और वज्रकी सान बनवाकर उसीके ऊपर प्रलयकालके समान तेजस्वी सूर्यको आरोपित करके उनके प्रचण्ड तेजको छाँट दिया। उस छँटे हुए तेजसे ही भगवान् श्रीविष्णुका सुदर्शनचक्र बन गया। अमोघ यमदण्ड, शंकरजीका त्रिशूल, कालका खड्ग, कार्तिकेयको आनन्द प्रदान करनेवाली शक्ति तथा भगवती दुर्गाके विचित्र शूलका भी उसी तेजसे निर्माण हुआ। ब्रह्माजीकी आज्ञासे विश्वकर्माने उन सब अस्त्रोंको पुनः तैयार किया था। सूर्यदेवकी एक हजार किरणें शेष रह गयीं, बाकी सब छाँट दी गयीं। ब्रह्माजीके बताये हुए उपायके अनुसार ही ऐसा किया गया।

कश्यपमुनिके अंश और अदितिके गर्भसे उत्पन्न होनेके कारण सूर्य आदित्यके नामसे प्रसिद्ध हुए।

भगवान् सूर्य विश्वकी अन्तिम सीमातक विचरते और मेरु गिरिके शिखरोंपर भ्रमण करते रहते हैं। ये दिन-रात इस पृथ्वीसे लाख योजन ऊपर रहते हैं। विधाताकी प्रेरणासे चन्द्रमा आदि ग्रह भी यहीं विचरण करते हैं। सूर्य बारह स्वरूप धारण करके बारह महीनोंमें बारह राशियोंमें संक्रमण करते रहते हैं। उनके संक्रमणसे ही संक्रान्ति होती है, जिसको प्राय सभी लोग जानते हैं।

मुने! संक्रान्तियोंमें पुण्यकर्म करनेसे लोगोंको जो फल मिलता है, वह सब हम बतलाते हैं। धन, मिथुन, मीन और कन्या राशिकी संक्रान्तिको षडशीति कहते हैं तथा वृष, वृश्चिक, कुम्भ और सिंह राशिपर जो सूर्यकी संक्रान्ति होती है, उसका नाम विष्णुपदी है। षडशीति नामकी संक्रान्तिमें किये हुए पुण्यकर्मका फल छियासी हजारगुना, विष्णुपदीमें लाखगुना और उत्तरायण या दक्षिणायन आरम्भ होनेके दिन कोटि-कोटिगुना अधिक होता है। दोनों अयनोंके दिन जो कर्म किया जाता है, वह अक्षय होता है। मकरसंक्रान्तिमें सूर्योदयके पहले स्नान करना चाहिये। इससे दस हजार गोदानका फल प्राप्त होता है। उस समय किया हुआ तर्पण, दान और देवपूजन अक्षय होता है। विष्णुपदीनामक संक्रान्तिमें किये हुए दानको भी अक्षय बताया गया है। दाताको प्रत्येक जन्ममें उत्तम निधिकी प्राप्ति होती है। शीतकालमें रूईदार वस्त्र दान करनेसे शरीरमें कभी दुःख नहीं होता। तुला-दान और शय्या-दान दोनोंका ही फल अक्षय होता है। माघमासके कृष्णपक्षकी अमावास्याको सूर्योदयके पहले जो तिल और जलसे पितरोंका तर्पण करता है, वह स्वर्गमें अक्षय सुख भोगता है। जो अमावास्याके दिन सुवर्णजटित सींग और मणिके समान कान्तिवाली शुभलक्षणा गौको, उसके खुरोंमें चाँदी मढ़ाकर काँसेके बने हुए दुग्धपात्रसहित श्रेष्ठ ब्राह्मणके लिये दान करता है, वह चक्रवर्ती राजा होता है। जो उक्त तिथियोंको तिलकी गौ बनाकर उसे सब सामग्रियों सहित दान करता है, वह सात जन्मके पापोंसे मुक्त हो स्वर्गलोकमें अक्षय सुखका भागी होता है। ब्राह्मणको भोजनके योग्य अन्न देनेसे भी अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति होती है। जो उत्तम ब्राह्मणको अनाज, वस्त्र, घर आदि दान करता है, उसे लक्ष्मी कभी नहीं छोड़ती। माघमासके शुक्लपक्षकी तृतीयाको मन्वन्तर तिथि कहते हैं। उस दिन जो कुछ दान किया जाता है, वह सब अक्षय बताया गया है। अतः दान और सत्पुरुषोंका पूजन—ये परलोकमें अनन्त फल देनेवाले हैं।

भगवान् सूर्यकी उपासना और उसका फल तथा भद्रेश्वरकी कथा

व्यासजी कहते हैं—कैलासके रमणीय शिखरपर भगवान् महेश्वर सुखपूर्वक बैठे थे। इसी समय स्कन्दने उनके पास जाकर पृथ्वीपर मस्तक टेक उन्हें प्रणाम किया और कहा—'नाथ! मैं आपसे रविवार आदिका यथार्थ फल सुनना चाहता हूँ।'

महादेवजीने कहा—बेटा! रविवारके दिन मनुष्य व्रत रहकर सूर्यको लाल फूलोंसे अर्घ्य दे और रातको हविष्यान्न भोजन करे। ऐसा करनेसे वह कभी स्वर्गसे भ्रष्ट नहीं होता। रविवारका व्रत परम पवित्र और हितकर है। वह समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला, पुण्यप्रद, ऐश्वर्यदायक, रोगनाशक और स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला है। यदि रविवारके दिन सूर्यकी संक्रान्ति तथा शुक्लपक्षकी सप्तमी हो तो उस दिनका किया हुआ व्रत, पूजा और जप—ये सभी अक्षय होते हैं। शुक्लपक्षके रविवारको प्रयत्नपूर्वक सूर्यकी पूजा करनी चाहिये। हाथमें फूल लेकर लाल कमलपर विराजमान, सुन्दर ग्रीवासे सुशोभित, रक्तवस्त्रधारी और लाल रंगके आभूषणोंसे विभूषित भगवान् सूर्यका ध्यान करे और

देवता बोले—ब्रह्मन्! सूर्यदेवताको प्रसन्न करनेके लिये आराधना, उपासना करनेकी बात तो दूर है, इनका दर्शन ही प्रलयकालकी आगके समान प्रतीत होता है जिससे कभी भूलकके सम्पूर्ण प्राणी इनके तेजके प्रभावसे मृत्युको प्राप्त हो गये। समुद्र आदि जलाशय नष्ट हो गये। हमलोगोंसे भी इनका तेज सहन नहीं होता, फिर दूसरे लोग कैसे सह सकते हैं। इसलिये आप ही ऐसी कृपा करें, जिससे हमलोग भगवान् सूर्यका पूजन कर सकें। सब मनुष्य भक्तिपूर्वक सूर्यदेवकी आराधना कर सकें—इसके लिये आप ही कोई उपाय करें।

व्यासजी कहते हैं—देवताओंके वचन सुनकर ब्रह्माजी ग्रहोंके स्वामी भगवान् सूर्यके पास गये और सम्पूर्ण जगत्का हित करनेके लिये उनकी स्तुति करने लगे।

ब्रह्माजी बोले—देव! तुम सम्पूर्ण संसारके नेत्रस्वरूप और निरामय हो। तुम साक्षात् ब्रह्मरूप हो। तुम्हारी ओर देखना कठिन है। तुम प्रलयकालकी अग्निके समान तेजस्वी हो। सम्पूर्ण देवताओंके भीतर तुम्हारी स्थिति है। तुम्हारे श्रीविग्रहमें वायुके सखा अग्नि निरन्तर विराजमान रहते हैं। तुम्हींसे अन्न आदिका पाचन तथा जीवनकी रक्षा होता है। देव! तुम्हीं सम्पूर्ण भुवनोंके स्वामी हो। तुम्हारे बिना समस्त संसारका जीवन एक दिन भी नहीं रह सकता। तुम्हीं सम्पूर्ण लोकोंके प्रभु तथा चराचर प्राणियोंके रक्षक, पिता और माता हो। तुम्हारी ही कृपासे यह जगत् टिका हुआ है। भगवन्! सम्पूर्ण देवताओंमें तुम्हारी समानता करनेवाला कोई नहीं है। शरीरके भीतर, बाहर तथा समस्त विश्वमें—सर्वत्र तुम्हारी सत्ता है। तुमने ही इस जगत्को धारण कर रखा है। तुम्हीं रूप और गन्ध आदि उत्पन्न करनेवाले हो। रसोंमें जो स्वाद है वह तुम्हींसे आया है। इस प्रकार तुम्हीं सम्पूर्ण जगत्के ईश्वर और सबकी रक्षा करनेवाले सूर्य हो। प्रभो! तीर्थों, पुण्यक्षेत्रों, यज्ञों और जगत्के एकमात्र कारण तुम्हीं हो। तुम परम पवित्र, सबके साक्षी और गुणोंके धाम हो। सर्वज्ञ, सबके कर्ता, संहारक, रक्षक, अन्धकार कीचड़ और रोगोंका नाश करनेवाले तथा दरिद्रताके दुःखका निवारण करनेवाले भी तुम्हीं हो। इस लोक और परलोकमें सबके श्रेष्ठ बन्धु एवं सब कुछ जानने और देखनेवाले तुम्हीं हो। तुम्हारे सिवा दूसरा कोई ऐसा नहीं है, जो सब लोकोंका उपकारक हो।

आदित्यने कहा—महाप्राज्ञ पितामह! आप विश्वके स्वामी तथा स्रष्टा हैं, शीघ्र अपना कार्य बताइये। मैं उसे पूर्ण करूँगा।

ब्रह्माजी बोले—सुरेश्वर! तुम्हारी किरणें अत्यन्त प्रखर हैं। लोगोंके लिये वे अत्यन्त दुःसह हो गयी हैं, अतः जिस प्रकार उनमें कुछ मृदुता आ सके, वही उपाय करो।

आदित्यने कहा—प्रभो! वास्तवमें मेरी कोटि-कोटि किरणें संसारका विनाश करनेवाली ही हैं, अतः आप किसी युक्तिद्वारा इन्हें खरादकर कम कर दें।

तब ब्रह्माजीने सूर्यके कहनेसे विश्वकर्माको बुलाया और वज्रकी सान बनवाकर उसके ऊपर प्रलयकालके समान तेजस्वी सूर्यको आरोपित करके उनके प्रचण्ड तेजको छाँट दिया। उस छँटे हुए तेजसे ही भगवान् श्रीविष्णुका सुदर्शनचक्र बन गया। अमोघ यमदण्ड, शंकरजीका त्रिशूल, कालका खड्ग, कार्तिकेयको आनन्द प्रदान करनेवाली शक्ति तथा भगवती दुर्गाके विचित्र शूलका भी उसी तेजसे निर्माण हुआ। ब्रह्माजीकी आज्ञासे विश्वकर्माने उन सब अस्त्रोंको पुनः तैयार किया था। सूर्यदेवकी एक हजार किरणें शेष रह गयीं, बाकी सब छाँट दी गयीं। ब्रह्माजीके बताये हुए उपायके अनुसार ही ऐसा किया गया।

कश्यपमुनिके अंश और अदितिके गर्भसे उत्पन्न होनेके कारण सूर्य आदित्यके नामसे प्रसिद्ध हुए।

*

भगवान् सूर्य विश्वकी अन्तिम सीमातक विचरते और मेरु-गिरिके शिखरोंपर भ्रमण करते रहते हैं । ये दिन-रात इस पृथ्वीसे लाख योजन ऊपर रहते हैं । विधाताकी प्रेरणासे चन्द्रमा आदि ग्रह भी यहीं विचरण करते हैं । सूर्य बारह स्वरूप धारण करके बारह महीनोंमें बारह राशियोंमें संक्रमण करते रहते हैं । उनके संक्रमणसे ही संक्रान्ति होती है, जिसको प्रायः सभी लोग जानते हैं ।

मुने ! संक्रान्तियोंमें पुण्यकर्म करनेसे लोगोंको जो फल मिलता है, वह सब हम बतलाते हैं । धन, मिथुन, मीन और कन्या राशिकी संक्रान्तिको षडशीति कहते हैं तथा वृष, वृश्चिक, कुम्भ और सिंह राशिपर जो सूर्यकी संक्रान्ति होती है, उसका नाम विष्णुपदी है । षडशीति नामकी संक्रान्तिमें किये हुए पुण्यकर्मका फल छियासी हजारगुना, विष्णुपदीमें लाखगुना और उत्तरायण या दक्षिणायन आरम्भ होनेके दिन कोटि-कोटिगुना अधिक होता है । दोनों अयनोंके दिन जो कर्म किया जाता है, वह अक्षय होता है । मकरसंक्रान्तिमें सूर्योदयके पहले स्नान करना चाहिये । इससे दस हजार गोदानका फल प्राप्त होता है । उस समय किया हुआ तर्पण, दान और देवपूजन अक्षय होता है । विष्णुपदीनामक संक्रान्तिमें किये हुए दानको भी अक्षय बताया गया है । दाताको प्रत्येक जन्ममें उत्तम निधिकी प्राप्ति होती है । शीतकाल-में रूईदार वस्त्र दान करनेसे शरीरमें कभी दुःख नहीं होता । तुला-दान और शय्या-दान दोनोंका ही फल अक्षय होता है । माघमासके कृष्णपक्षकी अमावास्याको सूर्योदयके पहले जो तिल और जलसे पितरोंका तर्पण करता है, वह स्वर्गमें अक्षय सुख भोगता है । जो अमावास्याके दिन सुवर्णजटित सींग और मणिके समान कान्तिवाली शुभलक्षणा गौको, उसके खुरोंमें चाँदी मढ़ाकर काँसेके बने हुए दुग्धपात्रसहित श्रेष्ठ ब्राह्मणके लिये दान करता है, वह चक्रवर्ती राजा होता है । जो उक्त तिथियोंको तिलकी गौ बनाकर उसे सब सामग्रियों सहित दान करता है, वह सात जन्मके पापोंसे मुक्त हो स्वर्गलोकमें अक्षय सुखका भागी होता है । ब्राह्मणको भोजनके योग्य अन्न देनेसे भी अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति होती है । जो उत्तम ब्राह्मणको अनाज, वस्त्र, घर आदि दान करता है, उसे लक्ष्मी कभी नहीं छोड़ती । माघमासके शुक्लपक्षकी तृतीयाको मन्वन्तर तिथि कहते हैं । उस दिन जो कुछ दान किया जाता है, वह सब अक्षय बताया गया है । अतः दान और सत्पुरुषोंका पूजन—ये परलोकमें अनन्त फल देनेवाले हैं ।

भगवान् सूर्यकी उपासना और उसका फल तथा भद्रेश्वरकी कथा

व्यासजी कहते हैं—कैलासके रमणीय शिखरपर भगवान् महेश्वर सुखपूर्वक बैठे थे । इसी समय स्कन्दने उनके पास जाकर पृथ्वीपर मस्तक टेककर उन्हें प्रणाम किया और कहा—'नाथ ! मैं आपसे रविवार आदिका यथार्थ फल सुनना चाहता हूँ ।'

महादेवजीने कहा—बेटा ! रविवारके दिन मनुष्य व्रत रहकर सूर्यको लाल फूलोंसे अर्घ्य दे और रातको हविष्यान्न भोजन करे । ऐसा करनेसे वह कभी स्वर्गसे भ्रष्ट नहीं होता । रविवारका व्रत परम पवित्र और हितकर है । वह समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला, पुण्यप्रद, ऐश्वर्यदायक, रोगनाशक और स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला है । यदि रविवारके दिन सूर्यकी संक्रान्ति तथा शुक्लपक्षकी सप्तमी हो तो उस दिनका किया हुआ व्रत, पूजा और जप—ये सभी अक्षय होते हैं । शुक्लपक्षके रविवारको गृहपति सूर्यकी पूजा करनी चाहिये । हाथमें फूल लेकर लाल कमलपर विराजमान, सुन्दर नासिकासे सुशोभित, रक्तवस्त्रधारी और लाल रंगके आभूषणोंसे विभूषित भगवान् सूर्यका ध्यान करे और

फूलोंको सूँघकर ईशान कोणकी ओर फेंक दे। इसके बाद 'आदित्याय विद्महे भास्कराय धीमहि तन्नो भानुः प्रचोदयात्'—इस सूर्य-गायत्रीका जप करे। तदनन्तर गुरुके उपदेशके अनुसार विधिपूर्वक सूर्यकी पूजा करे। भक्तिके साथ पुष्प और केले आदिके सुन्दर फल अर्पण करके जल चढ़ाना चाहिये। जलके बाद चन्दन, चन्दनके बाद धूप, धूपके बाद दीप, दीपके पश्चात् नैवेद्य तथा उसके बाद जल निवेदन करना चाहिये। तत्पश्चात् जप, स्तुति, मुद्रा और नमस्कार करना उचित है। पहली मुद्राका नाम 'अञ्जलि' और दूसरीका नाम 'धेनु' है। इस प्रकार जो सूर्यका पूजन करता है, वह उन्हींका सायुज्य प्राप्त करता है।

भगवान् सूर्य एक होते हुए भी कालभेदसे नाना रूप धारण करके प्रत्येक मासमें तपते रहते हैं। एक ही सूर्य बारह रूपोंमें प्रकट होते हैं। मार्गशीर्षमें मित्र, पौषमें सनातन विष्णु, माघमें वरुण, फाल्गुनमें सूर्य, चैत्रमासमें भानु, वैशाखमें तापन, ज्येष्ठमें इन्द्र, आषाढ़में रवि, श्रावणमें गभस्ति, भाद्रपदमें यम, आश्विनमें हिरण्यरेता और कार्तिकमें दिवाकर तपते हैं। इस प्रकार बारह महीनोंमें भगवान् सूर्य बारह नामोंसे पुकारे जाते हैं। इनका रूप अत्यन्त विशाल, महान् तेजस्वी और प्रलयकालीन अग्निके समान देदीप्यमान है। जो इस प्रसङ्गका नित्य पाठ करता है, उसके शरीरमें पाप नहीं रहता। उसे रोग, दरिद्रता और अपमानका कष्ट भी कभी नहीं उठाना पड़ता। वह क्रमशः यश, राज्य, सुख तथा अक्षय स्वर्ग प्राप्त करता है।

अब मैं सबको प्रसन्नता प्रदान करनेवाले सूर्यके उत्तम महामन्त्रका वर्णन करूँगा। उसका भाव इस प्रकार है—'सहस्र भुजाओं (किरणों)से सुशोभित भगवान् आदित्यको नमस्कार है। अन्धकारका नाश करनेवाले श्रीसूर्यदेवको अनेक बार नमस्कार है। रश्मिमयी सहस्रों जिह्वाएँ धारण करनेवाले भानुको नमस्कार है। भगवन्! तुम्हीं ब्रह्मा, तुम्हीं विष्णु और तुम्हीं रुद्र हो, तुम्हें नमस्कार है। तुम्हीं सम्पूर्ण प्राणियोंके भीतर अग्नि और वायुरूपसे विराजमान हो, तुम्हें बारबार प्रणाम है।

तुम्हारी सर्वत्र गति और सब भूतोंमें स्थिति है, तुम्हारे बिना किसी भी वस्तुकी सत्ता नहीं है। तुम इस चराचर जगत्में समस्त देहधारियोंके भीतर स्थित हो।' * इस मन्त्रका जप करके मनुष्य अपने सम्पूर्ण अभिलषित पदार्थों तथा स्वर्ग आदिके भोगोंको प्राप्त करता है। आदित्य, भास्कर, सूर्य, अर्क, भानु, दिवाकर, सुवर्णरेता, मित्र, पूषा, त्वष्टा, स्वयम्भू और तिमिराशि—ये सूर्यके बारह नाम बताये गये हैं। जो मनुष्य पवित्र होकर सूर्यके इन बारह नामोंका पाठ करता है, वह सब पापों और रोगोंसे मुक्त हो परम गतिको प्राप्त होता है।

षडानन! अब मैं महात्मा भास्करके जो दूसरे-दूसरे प्रधान नाम हैं, उनका वर्णन करूँगा। उनके नाम हैं—तपन, तापन, कर्ता, हर्ता, महेश्वर, लोकसाक्षी, त्रिलोकेश, व्योमाधिप, दिवाकर, अग्निगर्भ, महाविप्र, खग, सप्ताश्ववाहन, पद्महस्त, तमोभेदी, ऋग्वेद, यजुः, साम,

* ॐ नमः सहस्रबाहवे आदित्याय नमो नमः। नमस्ते पद्महस्ताय वरुणाय नमो नमः॥
नमस्तिमिरनाशाय श्रीसूर्याय नमो नमः। नमः सहस्रजिह्वाय भानवे च नमो नमः॥
त्वं च ब्रह्मा त्वं च विष्णू रुद्रस्त्वं च नमो नमः। त्वमग्निः सर्वभूतेषु वायुस्त्वं च नमो नमः॥
सर्वगः सर्वभूतेषु न हि किंचित्त्वया विना। चराचरे जगत्यस्मिन् सर्वदेहे व्यवस्थितः॥
(—७६। ११-१४)

कालप्रिय, पुण्डरीक, मूलस्थान और भावित। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इन नामोंका सदा स्मरण करता है, उसे रोगका भय कैसे हो सकता है। कार्तिकेय! तुम यत्नपूर्वक सुनो। सूर्यका नामस्मरण सब पापोंको हरनेवाला और शुभद है। महामते! आदित्यकी महिमाके विषयमें तनिक भी संदेह नहीं करना चाहिये। 'ॐ इन्द्राय नमः स्वाहा', 'ॐ विष्णवे नमः'—इन मन्त्रोंका जप, होम और सन्ध्योपासन करना चाहिये। ये मन्त्र सब प्रकारसे शान्ति देनेवाले और सम्पूर्ण विघ्नोंके विनाशक हैं। ये सब रोगोंका नाश कर डालते हैं।

अब भगवान् भास्करके मूलमन्त्रका वर्णन करूँगा जो सम्पूर्ण कामनाओं एवं प्रयोजनोंको सिद्ध करनेवाला तथा भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला है। वह मन्त्र इस प्रकार है—'ॐ ह्रां ह्रीं सः सूर्याय नमः।' इस मन्त्रसे सदा सब प्रकारकी सिद्धि प्राप्त होती है, यह निश्चित बात है। इसके जपसे रोग नहीं सताते तथा किसी प्रकारके अनिष्टका भय नहीं होता। यह मन्त्र न किसीको देना चाहिये और न किसीसे इसकी चर्चा करनी चाहिये, अपितु प्रयत्नपूर्वक इसका निरन्तर जप करते रहना चाहिये। जो लोग अभक्त, संतानहीन, पाखंडी और लौकिक व्यवहारोंमें आसक्त हों, उनसे तो इस मन्त्रकी कदापि चर्चा नहीं करनी चाहिये। सन्ध्या और होमकर्ममें मूलमन्त्रका जप करना चाहिये। उसके जपसे रोग और क्रूर ग्रहोंका प्रभाव नष्ट हो जाता है। वत्स! दूसरे-दूसरे अनेक शास्त्रों और बहुतेरे विस्तृत मन्त्रोंकी क्या आवश्यकता है, इस मूलमन्त्रका जप ही सब प्रकारकी शान्ति तथा सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धि करनेवाला है।

देवता और ब्राह्मणोंकी निन्दा करनेवाले नास्तिक पुरुषको इसका उपदेश नहीं देना चाहिये। जो प्रतिदिन एक, दो या तीन समय भगवान् सूर्यके समीप इसका पाठ करता है उसे अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है। पुत्रकी कामनावालेको पुत्र, कन्या चाहनेवालेको कन्या, विद्याकी अभिलाषा रखनेवालेको विद्या और धनार्थीको धन मिलता है। जो शुद्ध आचार-विचारसे युक्त होकर संयम तथा भक्तिपूर्वक इस प्रसङ्गका श्रवण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा सूर्यलोकको प्राप्त करता है। सूर्य देवताके व्रतके दिन तथा अन्यान्य व्रत, अनुष्ठान, यज्ञ, पुण्यस्थान और तीर्थोंमें जो इसका पाठ करता है, उसे कोटिगुना फल मिलता है।

व्यासजी कहते हैं—मध्यदेशमें भद्रेश्वर नामसे प्रसिद्ध एक चक्रवर्ती राजा थे। वे बहुत-सी तपस्याओं तथा नाना प्रकारके व्रतोंसे पवित्र हो गये थे। प्रतिदिन देवता, ब्राह्मण, अतिथि और गुरुजनोंका पूजन करते थे। उनका बर्ताव न्यायके अनुकूल होता था। वे स्वभावके सुशील और शास्त्रोंके तात्पर्य तथा विधानके पारगामी विद्वान् थे। सदा सद्भावपूर्वक प्रजाजनोंका पालन करते थे। एक समयकी बात है, उनके बायें हाथमें श्वेत कुष्ठ हो गया। वैद्योंने बहुत कुछ उपचार किया, किंतु उससे कोढ़का चिह्न और भी स्पष्ट दिखायी देने लगा। तब राजाने प्रधान-प्रधान ब्राह्मणों और मन्त्रियोंको बुलाकर कहा—'विप्रगण! मेरे हाथमें एक ऐसा पापका चिह्न प्रकट हो गया है, जो लोकमें निन्दित होनेके कारण मेरे लिये दुःसह हो रहा है। अब मैं किसी महान् पुण्यक्षेत्रमें जाकर अपने शरीरका परित्याग करना चाहता हूँ।'

ब्राह्मण बोले—महाराज! आप धर्मशील और बुद्धिमान् हैं। यदि आप अपने राज्यका परित्याग कर देंगे तो यह सारी प्रजा नष्ट हो जायगी। इसलिये आपको ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये। प्रभो! हमलोग इस रोगको दबानेका उपाय जानते हैं, वह यह है कि आप यत्नपूर्वक महान् देवता भगवान् सूर्यकी आराधना कीजिये।

राजाने पूछा—विप्रवरो! किस उपायसे मैं भगवान् भास्करको संतुष्ट कर सकूँगा?

ब्राह्मण बोले—राजन्! आप अपने राज्यमें ही रहकर सूर्यदेवकी उपासना कीजिये। ऐसा करनेसे आप भयङ्कर पापसे मुक्त होकर स्वर्ग और मोक्ष दोनों प्राप्त कर सकेंगे।

यह सुनकर सम्राट्ने उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको प्रणाम किया और सूर्यकी उत्तम आराधना आरम्भ की। वे प्रतिदिन मन्त्रपाठ, नैवेद्य, नाना प्रकारके फल, अर्घ्य, अक्षत, जपापुष्प, मदारके पत्ते, लाल चन्दन, कुङ्कुम, सिन्दूर, कदलीपत्र तथा उसके मनोहर फल आदिके द्वारा भगवान् सूर्यकी पूजा करते थे। राजा गूलरके पात्रमें अर्घ्य सजाकर सदा सूर्य देवताको निवेदन किया करते थे। अर्घ्य देते समय वे मन्त्री और पुरोहितोंके साथ सदा सूर्यके सामने खड़े रहते थे। उनके साथ आचार्य, रानियाँ, अन्तःपुरमें रहनेवाले रक्षक तथा उनकी पत्नियाँ, दासवर्ग एवं अन्य लोग भी रहा करते थे। वे सब लोग प्रतिदिन साथ-ही-साथ अर्घ्य देते थे।

सूर्यदेवताके अङ्गभूत जितने व्रत थे, उनका भी उन्होंने एकाग्रचित्त होकर अनुष्ठान किया। क्रमशः एक वर्ष व्यतीत होनेपर राजाका रोग दूर हो गया। इस प्रकार उस भयङ्कर रोगके नष्ट हो जानेपर राजाने सम्पूर्ण जगत्को अपने वशमें करके सबके द्वारा प्रभातकालमें सूर्यदेवताका पूजन और व्रत कराना आरम्भ किया। सब लोग कभी हविष्यान्न खाकर और कभी निराहार रहकर सूर्यदेवताका पूजन करते थे। इस प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—इन तीन वर्णोंके द्वारा पूजित होकर भगवान् सूर्य बहुत संतुष्ट हुए और कृपापूर्वक उनके पास आकर बोले—'राजन्! तुम्हारे मनमें जिस वस्तुकी इच्छा हो, उसे वरदानके रूपमें माँग लो। सेवकों और पुरवासियोंसहित तुम सब लोगोंका हित करनेके लिये मैं उपस्थित हूँ।'

राजाने कहा—सबको नेत्र प्रदान करनेवाले भगवन्! यदि आप मुझे अभीष्ट वरदान देना चाहते हैं, तो ऐसी कृपा कीजिये कि हम सब लोग आपके पास रहकर ही सुखी हों।

सूर्य बोले—राजन्! तुम्हारे मन्त्री, पुरोहित, ब्राह्मण, स्त्रियाँ तथा अन्य परिवारके लोग—सभी मुक्त होकर कल्पपर्यन्त मेरे दिव्य धाममें निवास करें।

व्यासजी कहते हैं—यों कहकर संसारको नेत्र प्रदान करनेवाले भगवान् सूर्य वहीं अन्तर्हित हो गये। तदनन्तर राजा भद्रेश्वर अपने पुरवासियोंसहित दिव्यलोकमें आनन्दका अनुभव करने लगे। वहाँ जो कीड़े-मकोड़े आदि थे, वे भी अपने पुत्र आदिके साथ प्रसन्नतापूर्वक स्वर्गको सिधारे। इसी प्रकार राजा, ब्राह्मण, कठोर व्रतका पालन करनेवाले मुनि तथा क्षत्रिय आदि अन्य वर्ण सूर्यदेवताके धाममें चले गये। जो मनुष्य पवित्रतापूर्वक इस प्रसङ्गका पाठ करता है, उसके सब पापोंका नाश हो जाता है तथा वह रुद्रकी भाँति इस पृथ्वीपर पूजित होता है। जो मानव संयमपूर्वक इसका श्रवण करता है, उसे अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है। इस अत्यन्त गोपनीय रहस्यका भगवान् सूर्यने यमराजको उपदेश दिया था। भूमण्डलपर तो व्यासके द्वारा ही इसका प्रचार हुआ है।

सूर्य-पूजाका फल

त्रिसन्ध्यमर्चयेद् सूर्यं स्मरेद् भक्त्या तु यो नरः। न स पश्यति दारिद्र्यं जन्मजन्मनि चार्जुन॥

(भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—) हे अर्जुन! जो मनुष्य प्रातः, मध्याह्न और सायंकालमें सूर्यकी अर्घ्यादिसे पूजा और स्मरण करता है, वह जन्म-जन्मान्तरमें कभी दरिद्र नहीं होता—सदा धन-धान्यसे समृद्ध रहता है। (—आदित्यहृदय)

भविष्यपुराणमें* सूर्य-सदर्भ

[भविष्यपुराणके चार पर्व हैं—(१) ब्राह्मपर्व, (२) मध्यमपर्व, (३) प्रतिसर्गपर्व और (४) उत्तर पर्व। परन्तु ब्राह्मपर्वके ही ४२वें अध्यायसे सूर्य-सदर्भ प्रारम्भ होता है और १५० अध्यायतक चलता जाता है। इस अन्तरालमें सूर्य-सम्बन्धी विविध ज्ञातव्य विषय हैं, जिनमें मुख्यत ये हैं—श्रीसूर्यनारायणके नित्यार्चन, नैमित्तिकार्चन और व्रतोद्यापन-विधान, व्रतका फल, माघादि, ज्येष्ठादि, आश्विनादि चार-चार महीनोंमें सूर्य-पूजनका विधान और रथसप्तमीका फल, सूर्यरथका वर्णन, रथके साथके देवताओंका कथन, गमन वर्णन, उदय अस्तका भेद, सूर्यके गुण, ऋतुओंमें उनका पृथक् पृथक् वर्णन, अभिषेकका वर्णन, रथयात्राके प्रथम दिनका कृत्य, रथके अश्व, सारथि, छत्र, ध्वजा आदिका वर्णन तथा नगरके चार द्वारोंपर रथके ले आनेका विधान, रथाङ्गके भङ्गभङ्ग होनेपर शान्त्यर्थ ग्रह शान्ति, सर्वदेवोंके बलिद्रव्यका कथन, रथ यात्राका फल, रथसप्तमी-व्रतका विधान और उद्यापन विधि, राजा शतानीककी सूर्य स्तुति, सम्बीको सूर्यका उपदेश, उपवास-विधि, पूजन-फलके कथनपूर्वक फलसप्तमीका विधान, सूर्य भगवान्का परब्रह्म रूपमें वर्णन, फल चढ़ाने, मन्दिर मार्जन करने आदि तथा सिद्धार्थ-सप्तमीका विधान, सूर्यनारायणका स्तोत्र और उसके पाठका फल, जम्बूद्वीपमें सूर्यनारायणके प्रधान स्थानोंका कथन, साम्बके प्रति दुर्वासा मुनिका शाप, अपनी रानियों और अपने पुत्र साम्बको श्रीकृष्णका शाप, सूर्यनारायणकी द्वादश मूर्तियोंका वर्णन, श्रीनारदजीसे साम्बके पूछनेपर उनके द्वारा सूर्यनारायणका प्रभाव-वर्णन, सूर्यकी उत्पत्ति, किरणोंका वर्णन, उनकी व्यापकताका कथन, सूर्यनारायणकी दो भार्याओं और सन्तानोंका वर्णन, सूर्यको प्रणाम और उनकी प्रदक्षिणा करनेका फल, आदित्यवारका कल्प, बारह प्रकारके आदित्यवारोंका कथन, नन्दनामक आदित्यवारका विधान और फल, आदित्याभिमुख वारका विधान, सूर्यके उपचार और अर्पणका फल, सूर्य मन्दिरमें पुराण-वाचनेका महत्त्व, सूर्यके स्नानादि करानेका फल, जया सप्तमी, जयन्ती सप्तमी आदिका विधान और फल-कथन, सूर्योपासनाकी आवश्यकता, सप्तमी व्रतोद्यापनकी विधि और फल, मार्तण्डसप्तमी आदिका विधान, मन्दिर बनवानेका फल, सूर्यभक्तोंका प्रभाव, घृत दुग्धसे सूर्याभिषेकका फल, मन्दिरमें दीपदानका माहात्म्य, वैवस्वतके लक्षण और सूर्यनारायणकी महिमा, सूर्यनारायणके उत्तम रूप बनानेकी कथा और उनकी स्तुति, पुन स्तुति और उनके परिवारका वर्णन, सूर्यायुध एवं व्योमका लक्षण, ग्रह और लोकोंका वर्णन, साम्बकृत सूर्यके आराधन और स्तुति, सूर्यनारायणका एकविंशति नामात्मक स्तोत्र, चन्द्रभागा नदीसे साम्बको सूर्यनारायणकी प्रतिमा प्राप्त होनेका वृत्तान्त, प्रतिमाविधान एवं सूर्यनारायणका सर्वदेवमयत्व प्रतिपादन, प्रतिष्ठा-मुहूर्त, मण्डप-विधान, सूर्य प्रतिष्ठा करनेका विधान एवं फल, सूर्य नारायणका अर्घ्य और धूप देनेका विधान, उनके मन्त्र और फल, सूर्य-मण्डलका वर्णन और १७७ श्लोकोंका प्रसिद्ध आदित्यहृदय अनुस्यूत है।

भविष्य किंवा भविष्योत्तरपुराणमें सूर्य-सम्बन्धी निर्दिष्ट विषयोंका विशेषतः व्रतादि-माहात्म्यका प्राचुर्य है, किंतु यहाँ स्थानाभावके कारण कुछ मुख्य विषय ही सचयित किये गये हैं, यथा—सप्तमीकल्प वर्णनके प्रसङ्गमें कृष्ण-साम्ब-संवाद, आदित्यके नित्याराधनकी विधि तथा रथसप्तमी माहात्म्यका वर्णन, सूर्य-योग माहात्म्यका वर्णन, सूर्यके विराट्रूपका वर्णन, आदित्यवारका माहात्म्य, सौरधर्मकी महिमाका वर्णन और ब्रह्मकृत सूर्य-स्तुतिका सक्षिप्त सकलन है।]

*उपलब्ध भविष्यपुराण मिश्रित श्लोकोंसे भरा पूरक-काव्य है जिसकी नारदीय (१।१००) मत्स्य (५३।३ ३१) और अग्नि (२७२।१२) में दी हुई अनुक्रमणी पूर्णत सगत नहीं होती। फिर भी आपस्तम्बने इसके उद्धरणसे इसकी प्राचीनता निर्विवाद है। वायुपुराण (१।२६७) और वाराहपुराणमें भी भविष्यके अनेक उल्लेख मिलते हैं। परन्तु पुराणके उल्लेखोंसे साम्बद्वारा इसके प्रति संस्कार और इसमें मगोंकी स्थापनाकी बात अनुमानित होती है।

राजाने पूछा—विप्रवरो ! किस उपायसे मैं भगवान् भास्करको संतुष्ट कर सकूँगा ?

ब्राह्मण बोले—राजन् ! आप अपने राज्यमें ही रहकर सूर्यदेवकी उपासना कीजिये । ऐसा करनेसे आप भयङ्कर पापसे मुक्त होकर स्वर्ग और मोक्ष दोनों प्राप्त कर सकेंगे ।

यह सुनकर सम्राट्ने उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको प्रणाम किया और सूर्यकी उत्तम आराधना आरम्भ की । वे प्रतिदिन मन्त्रपाठ, नैवेद्य, नाना प्रकारके फल, अर्घ्य, अक्षत, जपापुष्प, मदारके पत्ते, लाल चन्दन, कुङ्कुम, सिंदूर, कदलीपत्र तथा उसके मनोहर फल आदिके द्वारा भगवान् सूर्यकी पूजा करते थे । राजा गूलरके पात्रमें अर्घ्य सजाकर सदा सूर्य देवताको निवेदन किया करते थे । अर्घ्य देते समय वे मन्त्री और पुरोहितोंके साथ सदा सूर्यके सामने खड़े रहते थे । उनके साथ आचार्य, रानियाँ, अन्तःपुरमें रहनेवाले रक्षक तथा उनकी पत्नियाँ, दासवर्ग एवं अन्य लोग भी रहा करते थे । वे सब लोग प्रतिदिन साथ-ही-साथ अर्घ्य देते थे ।

सूर्यदेवताके अङ्गभूत जितने व्रत थे, उनका भी उन्होंने एकाग्रचित्त होकर अनुष्ठान किया । क्रमशः एक वर्ष व्यतीत होनेपर राजाका रोग दूर हो गया । इस प्रकार उस भयङ्कर रोगके नष्ट हो जानेपर राजाने सम्पूर्ण जगत्को अपने वशमें करके सबके द्वारा प्रभातकालमें सूर्यदेवताका पूजन और व्रत कराना आरम्भ किया । सब लोग कभी हविष्यान्न खाकर और कभी निराहार रहकर सूर्यदेवताका पूजन करते थे । इस प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—इन तीन वर्गोंके द्वारा पूजित होकर भगवान् सूर्य बहुत संतुष्ट हुए और कृपापूर्वक रा[जाके] पास आकर बोले—'राजन् ! तुम्हारे मनमें जि[स] वस्तुकी इच्छा हो, उसे वरदानके रूपमें माँग [लो।] सेवकों और पुरवासियोंसहित तुम सब लोगोंका [हित] करनेके लिये मैं उपस्थित हूँ ।'

राजाने कहा—सबको नेत्र प्रदान करनेवाले भगवन् ! यदि आप मुझे अभीष्ट वरदान देना चाहते [हैं] तो ऐसी कृपा कीजिये कि हम सब लोग आपके [समीप] रहकर ही सुखी हों ।

सूर्य बोले—राजन् ! तुम्हारे मन्त्री, पुरो[हित,] ब्राह्मण, स्त्रियाँ तथा अन्य परिवारके लोग—सभी [मुक्त] होकर कल्पपर्यन्त मेरे दिव्य धाममें निवास करें ।

व्यासजी कहते हैं—यों कहकर संसारको [नेत्र] प्रदान करनेवाले भगवान् सूर्य वहीं अन्तर्हित हो ग[ये ।] तदनन्तर राजा भद्रेश्वर अपने पुरवासियोंसहित दिव्यलो[कमें] आनन्दका अनुभव करने लगे । वहाँ जो कीड़े-मकोड़े आदि थे, वे भी अपने पुत्र आदिके साथ प्रसन्नतापूर्वक स्वर्गको सिधारे । इसी प्रकार राजा, ब्राह्मण, कठोर व्रत[ों]का पालन करनेवाले मुनि तथा क्षत्रिय आदि अन्य वर्ण सूर्यदेवताके धाममें चले गये । जो मनुष्य पवित्रतापूर्वक इस प्रसङ्गका पाठ करता है, उसके सब पापोंका नाश हो जाता है तथा वह रुद्रकी भाँति इस पृथ्वीपर पूजित होता है । जो मानव संयमपूर्वक इसका श्रवण करता है, उसे अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है । [य]ह अत्यन्त गोपनीय रहस्यका भगवान् सूर्यने यमराजको उपदेश दिया था । भूमण्डलपर तो व्यासके द्वारा ही इसका प्रचार हुआ है ।

सूर्य-पूजाका फल

त्रिसंध्यमर्चयेद् सूर्यं स्मरेद् भक्त्या तु यो नरः । न स पश्यति दारिद्र्यं जन्मजन्मनि चार्जुन ॥

(भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—) हे अर्जुन ! जो मनुष्य प्रातः, मध्याह्न और सायंकालमें सूर्यकी अर्घ्यादिसे पूजा और स्मरण करता है, वह जन्म-जन्मान्तरमें कभी दरिद्र नहीं होता—सदा धन-धान्यसे समृद्ध रहता है । (—आदित्यहृदय)

स्नानकालमें हृदयपूत मन्त्रसे उठकर आचमन करे और वस्त्रोंका परिधान करे तथा पुनः दो बार आचमन करके सम्प्रोक्षण करे। फिर उठकर आचमन करके उसी मन्त्रसे सूर्यको अर्घ्य दे। अर्घ्य देकर उनका जप करे और अपने हृदयमें आत्मस्वरूप उनका ध्यान करे और शुभ आर्क-आयतनमें पहुँचकर आवर्तितुका यजन करे। फिर अति समाहित होकर पूरक, कुम्भक और रेचक—इन तीनों प्राणायामोंकी क्रियाओंको करे। तत्पश्चात् ओंकारद्वारा कायादि सम्भूत समस्त दोषोंका परिहार करे।

इसके बाद आत्माकी शुद्धिके लिये वायव्य, आग्नेय, माहेन्द्र (पूर्व) और वारुणी (उत्तर) दिशाओंमें यथाक्रम वारुण जलसे अपने किल्बिष (पाप) का नाश करे। वायु, अग्नि, इन्द्र और जल नामवाली धारणाओंके द्वारा यथाक्रम शोषण, दहन, स्तम्भन और प्लावन करनेपर विशुद्ध आत्माका ध्यान करके भगवान् अर्क (सूर्य) को प्रणाम करे और उसीके द्वारा पञ्चभूतमय इस परदेहका सचिन्तन करे। सूक्ष्म तथा स्थूलको एवं अङ्गोंको अपने स्थानोंपर प्रकल्पित करके हृदय आदिमें समभक अङ्गोंका विन्यास करे। जैसे—'ॐ ख स्वाहा हृदये,' 'ॐ अघाय शिरसि,' ॐ उल्कायै स्वाहा शिखायाम्,' 'ॐ ये कवचाय हुम्,' 'ॐ रा भक्षाय फट्।' इसके अनन्तर मन्त्र-कर्मोंकी सिद्धिके लिये तीन बार जल-मन्त्रका जप करे और उस मन्त्रसे स्नानके द्रव्योंका सम्प्रोक्षण करके शुभ गन्ध, अक्षत, पुष्प आदिके द्वारा भगवान् सूर्यका पूजन करना चाहिये।

रथ-सप्तमी-माहात्म्यका वर्णन

इस प्रकरणमें आदित्यके नैमित्तिक आराधनका तथा रथ-सप्तमीके माहात्म्यका वर्णन किया जाता है। भगवान् वासुदेवने कहा—इसके पश्चात् मैं नैमित्तिक आराधनका विषय बतलाता हूँ।

माघ मासमें सप्तमी तिथिके दिन वरुणका यजन करे। अपनी शक्तिके अनुसार विप्रोंके लिये लड्डुओंका दान तथा यथाशक्ति दक्षिणा भी दे तो वह जो भी फल चाहे, उसे प्राप्त कर सकता है। इसी प्रकार फाल्गुन तथा चैत्र और वैशाखके महीनोंमें सूर्यके यजनका विधान है। वैशाख मासमें धाता इन्द्रका तथा ज्येष्ठमें रविका, आषाढ़ और श्रावण मासमें नभका, भाद्रपदमें यमका, मार्गशीर्षमें मित्र तथा पौषमें विष्णुका, आश्विनमें पर्जन्य और कार्तिकमें त्वष्टाका यजन करे। इस प्रकार एक वर्षतक यजन-अर्चन करनेसे मनो अभीष्ट फल प्राप्त कर लेता है। आगे माघ शुक्ल सप्तमीमें महा सप्तमी-व्रतके माहात्म्यका वर्णन किया जाता है।

भगवान् वासुदेवने कहा—हे कुलनायक! माघ मासके शुक्लपक्षकी पञ्चमी और षष्ठीकी रात्रिमें एक-भुक्त रहना कहा गया है। हे सुव्रत! कुछ लोग सप्तमीमें उपवास चाहते हैं और कुछ विद्वान् षष्ठी और सप्तमी तिथियोंमें उपवासका विधान कहते हैं (इस विषयमें विविध मत हैं)। षष्ठी या सप्तमीमें जिसने उपवास किया है, उसे भास्कर भगवान्की पूजा इस प्रकार करनी चाहिये। हे सुव्रत! भास्करका अर्चन रक्त चन्दन तथा करवीरके पुष्पोंसे करना चाहिये। हे महान् बाहुओं-वाले! गुग्गुल और सर्जरससे देवदेवेश भास्कर—रविका पूजन करे। इसी प्रकार माघ आदि चार मासोंमें रविका पूजन करना चाहिये। अपनी आत्माकी शुद्धिके लिये पञ्चगव्य भी प्राशन करे। आत्माकी शुद्धिके लिये गोमय-(गोबर) से स्नान करनेका ही विधान है। ब्राह्मणोंको अपनी शक्तिके अनुसार भोजन भी कराना चाहिये।

ज्येष्ठ आदि मासोंमें श्वेत चन्दन शास्त्रविहित है। उत्तम गन्धवाले पुष्प भी श्वेत होने चाहिये। कृष्ण अगुरुका धूप तथा नैवेद्य .... पायस हो। हे महामते! इसी

सप्तमीकल्पवर्णन प्रसङ्गमें कृष्ण-साम्ब-संवाद

वासुदेवने कहा—साम्ब! समस्त देवता कहीं भी प्रत्यक्ष प्रमाणके द्वारा उपलब्ध नहीं हुआ करते। अनुमान और आगमोंके द्वारा अन्य सहस्रों देवताओंका अस्तित्व सिद्ध होता है। साम्बने कहा—जो देवता नेत्रोंके दृष्टिगत और विशिष्ट अभीष्टका प्रदान करनेवाला हो, उसी देवताके विषयमें पहले मुझे बताइये। इसके बाद अन्य देवताओंके विषयमें आप वर्णन करनेकी कृपा करें।

भगवान् श्रीवासुदेवने कहा—प्रत्यक्ष देवता तो भगवान् सूर्य हैं, जो इस समस्त जगत्के नेत्र और दिनकी सृष्टि करनेवाले हैं। इससे भी अधिक निरन्तर रहनेवाला कोई भी देवता नहीं है। इन्हींसे यह जगत् उत्पन्न होता और अन्त-समयमें इन्हींमें यह विलीन हो जाता है। कृतादि लक्षणवाला यह काल भी साक्षात् दिवाकर ही कहा गया है। जितने भी ग्रह, नक्षत्र, योग, राशियाँ, करण, आदित्य, वसु, रुद्र, अश्विनीकुमार, वायु, अनल, शक्र, प्रजापति, समस्त भू-भुव-स्वर्लोक, समस्त नग, नाग, नदियाँ, समुद्र और अखिल भूतोंका समुदाय है, इन सभीका हेतु स्वयं एक सविता ही हैं। इन्हींकी इच्छासे सचराचर यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ है। इन्हींकी इच्छासे यह जगत् स्थिर रहता तथा अपने अर्थमें प्रवृत्त भी हुआ करता है। इनके प्रसादसे ही यह लोक सचेष्ट होता है। इनके उदय होनेपर सभी उदीयमान तथा अस्त होनेपर अस्त होते हैं, **क्योंकि जब ये अदृश्य होते हैं तो** कुछ भी यहाँ दिखायी नहीं देता। तात्पर्य यह है कि ये प्रत्यक्षसे सिद्ध ही हैं। इतिहास और पुराणोंमें इन्हें 'अन्तरात्मा' नामसे कहा गया है।

अब ये असाधकको चले जाते हैं तो अदृष्ट होते हैं। इससे यह सिद्ध है कि इनसे परे कोई देवता न है, न हुआ है और न आगे कभी भविष्यमें होगा। जो कोई भी इनकी उपासना प्रातःकाल, मध्याह्न सायंकालमें करता है, वह परम गतिको प्राप्त हो जाता।

जो विद्वान् व्यक्ति मण्डलमें स्थित इन देवको [illegible] बुद्धिके द्वारा अपने देहमें व्यवस्थित देखता है, वह [illegible] देखता है। जो मनुष्य इस प्रकार सम्यक्‌रूपसे ए[illegible] ध्यान करके पूजा, जप और हवन करता है, वह [illegible] अभीष्ट कामनाओंकी प्राप्ति कर लेता है और धर्म[illegible] सांनिध्यको प्राप्त कर लेता है। अतः तुम यदि [illegible] दुःखोंका अन्त करना चाहते हो और [illegible] सुखोपभोग करनेके अभिलाषी हो तथा परलोकमें [illegible] मुक्ति अर्थात् संसारके जन्म-मरणके आवागमनसे [illegible] पाना चाहते हो तो अर्कमण्डलमें स्थित अर्क [illegible] सूर्य भगवान्‌की आराधना करो। इनकी आराधना[illegible] तुमको आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक दुःख कदापि नहीं होंगे। जो पुरुष भगवान् दिवाकरकी शरणमें प्राप्त हो गये हैं, उनको कोई भी भय नहीं होता है। [illegible] सूर्यदेवके उपासक भक्तोंको इस लोकमें और परलोकमें—दोनों जगह निर्बाध सुख प्राप्त होता है। शरीरधारियोंके लिये इससे उत्तम अन्य कोई भी हित प्रदान करनेवाला उपाय नहीं है।

आदित्यके नित्याराधन विधिका वर्णन

इस प्रकरणमें आदित्यकी नित्याराधन-विधि तथा माहात्म्यका वर्णन किया जाता है। भगवान् वासुदेवने कहा—'साम्ब! अब हम तुम्हें धर्मप्रेरक उत्तम अर्चनकी विधि बतलाते हैं। यह विधान सम्पूर्ण कामनाओंकी पूर्ति करनेवाला, पुण्यप्रद एवं विघ्नों तथा पापोंका अपहरण करनेवाला है। सबसे पहले सूर्यके मन्त्रोंद्वारा स्नान करके फिर उन्हीं मन्त्रों* द्वारा भगवान् भास्करका यजन एवं अर्चन करना चाहिये।

* भगवान् सूर्यके अनेक मन्त्र हैं, परन्तु यहाँ नाम-मन्त्र 'ॐ सूर्याय नमः' अथवा 'ॐ घृणिः सूर्याय नमः' का प्रयोग करना चाहिये।

करो और चलते हुए भी उन गोपतिका ही चिन्तन आवश्यक है। भोजन करते हुए और शयन करते हुए भी उन भास्करका चिन्तन करो। इस प्रकार तुम एकाग्रचित्त होकर निरन्तर रविका आश्रय ग्रहण करो। रविका समाश्रय ग्रहण करके जन्म और मृत्यु जिसमें महान् ग्राह हैं, ऐसे इस संसाररूपी सागरको तुम पार कर जाओगे। जो ग्रहोंके स्वामी, वर देनेवाले, पुराणपुरुष, जगत्के विधाता, अजन्मा एवं इशिता रवि हैं, उनका जिन्होंने समाश्रय ग्रहण किया है, उन विमुक्तिके सेवन करनेवालोंके लिये यह संसार कुछ भी नहीं है अर्थात् उन्हें इस संसारसे छुटकारा मिल जाना अत्यन्त साधारण-सी बात है।

सूर्यके विराट्रूपका वर्णन

अब यहाँ सूर्यके विराट्रूपका वर्णन किया जाता है। श्रीनारद ऋषिने कहा—अब सूक्ष्मरूपसे भगवान् विवस्वान्का रूप बतलाऊँगा। सुनो।

विवस्वान् देव अव्यक्त कारण, नित्य, सत् एवं असत्-स्वरूप हैं। जो तत्त्व-चिन्तक पुरुष हैं, वे उनको प्रधान और प्रकृति कहा करते हैं। आदित्य आदिदेव और अजात होनेसे 'अज' नामसे कहे गये हैं। देवोंमें वे सबसे बड़े देव हैं, इसीलिये 'महादेव' नामसे कहे गये हैं। समस्त लोकोंके ईश होनेसे 'सर्वेश' और अधीश होनेके कारणसे उन्हें 'ईश्वर' कहा गया है। महत् होनेसे उनको 'ब्रह्मा' और भवत्व होनेके कारण 'भव' कहा गया है तथा वे समस्त प्रजाओंकी रक्षा और पालन करते हैं, इसी कारण वे 'प्रजापति' कहे गये हैं।

उत्पाद्य न होने और अपूर्व होनेसे 'स्वयम्भू' नामसे प्रसिद्ध हैं। ये हिरण्याण्डमें रहनेवाले और दिवस्पति ग्रहोंके स्वामी हैं। अतः 'हिरण्यगर्भ' तथा देवोंके भी देव 'दिवाकर' कहे गये हैं। तत्त्वद्रष्टा महर्षियोंने भगवान् सूर्यको विविध नामोंसे स्मरण किया है।

आदित्यवारका माहात्म्य

इस प्रकरणमें आदित्यवारके माहात्म्य तथा नन्दाख्य आदित्यवारके व्रत-कल्पके माहात्म्यका वर्णन किया जाता है।

विष्णुजीने कहा—हे ब्रह्मन्! जो मनुष्य आदित्यवारके दिन दिवाकरका पूजन किया करते हैं और स्नान तथा दान आदिक कर्म करते हैं, उनका क्या फल होता है! आप कृपाकर यह मुझे बतलाइये।

ब्रह्माजीने कहा—हे ब्रह्मन्! जो मानव रविवारके दिन श्राद्ध करते हैं, वे सात जन्मोंतक रोगोंसे रहित होते हैं—नीरोग रहते हैं। जो मानव उस दिन स्थिरताका आश्रय लेकर रात्रिके समयमें दान आदि किया करते तथा परम जाप्य आदित्यहृदयका जप करते हैं, वे इस लोकमें पूर्ण आरोग्य प्राप्त करके अन्तमें सूर्यलोकको चले जाते हैं। जो आदित्यके दिन सदा उपवास किया करते हैं, वे भी सूर्यलोककी प्राप्ति करते हैं।

इस संसारमें महात्मा आदित्यके द्वादश वार कहे गये हैं, वे ये हैं—नन्द, भद्र, सौम्य, कामद, पुत्रद, जय, जयन्त, विजय, आदित्याभिमुख, हृदय, रोगहा, महाश्वेतप्रिय। हे गणाधिप! माघ मासमें शुक्ल पक्षकी षष्ठी तिथिमें रात्रिके समय घृतसे रविका स्नपन (स्नान) कराना परमपुण्य बताया गया है। जो ऐसा करता है, वह समस्त पापोंके भयका अपहरण करनेवाला राजा होता है। इसमें आदित्यदेवको अगस्त्य वृक्षके पुष्प, श्वेत चन्दन, गुग्गुल धूपका धूप, नैवेद्यके स्थानमें पूप (पुआ) ही विशेष प्रिय हैं। पूप (पुआ) एक प्रस्थ प्रमाणमें उत्तम गेहूँके (गेहूँके) चूर्णका होना चाहिये। यदि गेहूँका अभाव हो तो तिलहमें और चूर्णमें ही गुड़ और घृतसे पूप बना लेने चाहिये। इतिहासके वेत्ता ब्राह्मणोंको सुवर्णकी दक्षिणाके सहित पूर्वोक्त दान करना चाहिये अथवा

देवसमर्पित नैवेद्यकी वस्तुओंमें जो पायस है, उससे ब्राह्मणोंको पूर्ण तुष्ट करते हुए भोजन कराना चाहिये । हे पुत्र ! पञ्चगव्यका प्राशन और उसीसे स्नान भी कराना चाहिये। कार्तिक आदि मासोंमें अगस्त्यके पुष्प तथा अपराजित धूपके द्वारा पूजन करना चाहिये। नैवेद्यके स्थानमें गुड़के बनाये हुए पूए तथा ईखका रस कहा गया है । हे तात! उसी समर्पित नैवेद्यद्वारा अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये । कुशोदकका प्राशन करे और शुद्धिके लिये स्नान भी कुशोदकसे ही करे । हे महान् मतिवाले ! तृतीय पारणके अन्तमें माघ मासमें भोजन और दान दुगुना कहा गया है । विद्वान् पुरुषोंके द्वारा शक्तिके अनुसार देवदेवकी पूजा करनी चाहिये । हे सुव्रत ! रथका दान और रथयात्रा भी करनी चाहिये । हे पुत्र ! रथाह्वा अर्थात् रथके नाम वाली सप्तमीका यह वर्णन किया गया है । यह महासप्तमी विख्यात है । यह महान् अभ्युदय प्रदान करनेवाली है । इस दिन मनुष्य उपवास करके धन, पुत्र, कीर्ति और विद्याकी प्राप्ति कर समस्त भूमण्डलको प्राप्त कर लेता है और चन्द्रमाके समान अर्चि (कान्ति)-वाला हो जाता है ।

सूर्ययोग-माहात्म्यका वर्णन

इस प्रकरणमें सूर्ययोगके माहात्म्यका वर्णन किया गया है । महर्षि सुमन्तुने कहा—हे नृप ! उस एक अक्षर, सत् और असत्में महामदक स्वरूपमें स्थित परम धाम रविको प्रणिधान करना चाहिये । महात्मा विरञ्चिने पहले ऋषियोंसे इसका वर्णन किया था । हे नराधिप ! सविताकी आराधना करनेके लिये महात्मा आत्मा पद्मसम्भव (ब्रह्मा) प्रभुने महर्षियोंको जैसा कर्मयोग कहा था, यह समस्त वृत्तियोंके सरोधसे कल्याणका प्रतिपादक योग है । ऋषियोंने कहा—हे स्वामिन् ! आपने जो वृत्ति-निरोधसे होनेवाला योग बताया है, यह तो अनेक जन्म बात जानेपर भी अत्यन्त दुर्लभ है, क्यों कि ये मनुष्यों इन्द्रियोंको हठात् आकृष्ट कर लेती हैं । वृत्तियें म चित्तसे भी अधिक कठिन हैं । ये राग आदि स सैकड़ों वर्षोंमें भी किस प्रकार जीती जा सकती हैं!

इन अजेय वृत्तियोंद्वारा मन इस योगके योग्य नहीं हो है । हे ब्रह्मन् ! इस कृतयुगमें भी ये पुरुष क होते हैं । त्रेता, द्वापर तथा कलियुगमें तो मनु विषयमें कहनेकी बात ही क्या है । हे भगवन् आप प्रसन्न होकर उपासना करनेवालोंको वे कोई योग बतानेकी कृपा करें, जिससे वह अनायास ही इस ससाररूपी महान् सागरसे पार जायँ । बेचारे मनुष्य सासारिक दु खरूपी जलमें डूब हैं, आपके द्वारा बताये हुए महान् प्लव (नाव)का आश्र कर लेनेपर ये पार हो सकते हैं । इस प्रकार ब्रह्माजीसे कहा गया तो उन्होंने मानवोंके हितकी कामनासे कहा—'इस समस्त विश्वके स्वामी दिवाकरकी तन्द्रा-रहित होकर आराधना करो, क्योंकि इन भगवन् भास्करका माहात्म्य अपरिच्छेद्य है—असीम है । '

तन्निष्ठ होकर सूर्यकी आराधना करे । उन्हींमें अपनी बुद्धिको लगाकर तथा भगवान् भास्करका आश्रय ग्रहण करके उनके ही कर्मोंसे एकमात्र उनकी ही इन्द्रिय और मनवाले होकर अपने समस्त कर्मोंको सबकी आत्मा उन सूर्यमें ही त्याग कर दे, अर्थात् उन्हें ही समर्पित कर दे ।

सूर्यके अनुष्ठानमें तत्पर रहनेवाले श्रेष्ठ पुरुष उन जगत्पति सर्वेश सर्वभावन मार्त्तण्डकी आराधना करते हैं। अब हे कुरुनन्दन ! इस परम रहस्यका श्रवण करो । जो इस संसाररूपी समुद्रमें निमग्न हैं और जिनके मन सांसारिक विषयोंसे आक्रान्त हो रहे हैं, उनके लिये यह सर्वोत्तम साधन है । खद्योत (सूर्य)के अतिरिक्त अन्य कोई भी शरणदाता नहीं है । अतः खड़े होकर इन रविका चिन्तन

मिलाया है, उन्हें सूर्यकी भक्ति करनी चाहिये। त तुम सूर्यकी भक्ति अवश्य ही करो। समस्त वगणोंके द्वारा समर्चित सूर्यदेवका भक्तिपूर्वक जन करना चाहिये। भगवान् सूर्यका भक्तिपूर्वक जन-अर्चन महान् दुर्लभ है। उनके लिये दान देना, ोम करना, उनका विज्ञान प्राप्त करना और फिर सका अभ्यास करना—उनके उत्तम आराधनका विधान ान लेना बहुत कठिन है, हो नहीं पाता। इसका ाभ उन्हीं मनुष्योंको होता है, जिन्होंने भगवान् विदेवकी शरण ग्रहण कर ली है। इस लोकमें जिसका न शाश्वत भानुदेव (सूर्य) में नित्य लीन हो गया और जिसने दो अक्षरवाले रविको नमस्कार किया, उस ुरुषका जीवन सार्थक है—सफल है।

जो इस प्रकार परम श्रद्धा-भावसे युक्त होकर भगवान् भानुदेवकी पूजा करता है, वह निःसंदेह समस्त पापोंसे मुक्ति पा जाता है। विविध आकारवाली डाकिनियाँ, पिशाच और राक्षस अथवा कोई भी उसको कुछ भी पीड़ा नहीं दे सकता। इनके अतिरिक्त कोई भी जीव उसे नहीं सता सकते। सूर्यकी उपासना करनेवाले मनुष्यके शत्रुगण नष्ट हो जाते हैं और उन्हें संग्राममें विजय प्राप्त होती है। हे वीर! वह नीरोग होता है और आपत्तियाँ उसका स्पर्शतक नहीं कर पातीं। सूर्योपासक मनुष्य धन, आयु, यश, विद्या, अतुल प्रभाव और शुभमें उपचय (वृद्धि) प्राप्त करते हैं तथा सदा उनके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं।

ब्रह्मकृत सूर्य-स्तुति

इस प्रकरणमें ब्रह्माके द्वारा की हुई सूर्यकी स्तुतिका वर्णन किया जाता है। अरुणने कहा—'ब्रह्माजीने जिस ब्रह्मत्वकी प्राप्ति की थी, वह भक्तिके साथ रविदेवकी पूजा करके ही की थी। देवोंके ईश भगवान् विष्णुने विष्णुत्व-पदको सूर्यके अर्चनसे ही प्राप्त किया है। भगवान् शंकर भी दिवाकरकी पूजा-अर्चासे ही जगन्नाथ कहे जाते हैं तथा सूर्यदेवके प्रसादसे ही उन्हें महादेवत्व-पद प्राप्त हुआ है। एक सहस्र नेत्रोंवाले इन्द्रने इन्द्रत्वको प्राप्त किया है।' मातृवर्ग, देवगण, गन्धर्व, पिशाच, उरग, राक्षस और सभी सुरोंके नायक ईशान भानुकी सदा पूजा किया करते हैं। यह समस्त जगत् भगवान् भानुदेवमें ही नित्य प्रतिष्ठित है। इसलिये यदि स्वर्गके अक्षय निवासकी इच्छा रखते हो तो भानुकी भलीभाँति पूजा करो। जो मनुष्य तमोहन्ता भगवान् भास्कर सूर्यकी पूजा नहीं करता, वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका अधिकारी नहीं है। इससे आजीवन सूर्यका ध्यान करना चाहिये। हे खग! आपत्तिग्रस्त होनेपर भी भानुका अर्चन सदा करणीय है। जो मनुष्य सूर्यकी बिना पूजा किये रहता है, उसका जीवन व्यर्थ समझना चाहिये। वस्तुतः प्रत्येक व्यक्तिको देवोंके स्वामी दिवाकर सूर्यकी पूजा करके भोजन करना चाहिये। सूर्यदेवकी अर्चनासे अधिक कोई भी पुण्य नहीं है, सूर्यार्चन धर्मसे सयत एवं सम्यक् है। जो सूर्यभक्त हैं वे समस्त द्वन्द्वोंके सहन करनेवाले, धीर, नीतिकी विधिसे युक्त चित्तवाले, परोपकारपरायण, तथा गुरुकी सेवामें अनुराग रखनेवाले होते हैं। वे अमानी, बुद्धिमान्, असक्त, अस्पर्धावाले, गतस्पृह, शान्त, स्वात्मानन्द, भद्र और नित्य स्वागतवादी होते हैं। सूर्यभक्त अल्पभाषी, शूर, शास्त्रमर्मज्ञ, प्रसन्नमनस्क, शौचाचारसम्पन्न और दाक्षिण्यसे सम्पन्न होते हैं।

सूर्यके भक्त दम्भ, मत्सरता, तृष्णा एवं लोभसे वर्जित हुआ करते हैं। वे शठ और कुत्सित नहीं होते। जिस प्रकार पद्मिनीका पत्र जलमें निर्लिप्त होते हैं, उसी प्रकार सूर्यभक्त मनुष्य विषयोंमें कभी लिप्त नहीं होते।

ऐसे ही अन्य दिव्य पकान्न श्रीसूर्यको अर्पित करके देना चाहिये । इस विधानमें मण्डक भी ग्राह्य है । पुष्प-निवेदनके समय भक्तिपूर्वक आदित्यको नमस्कार करके आदित्यके समक्ष कहे—'प्रभो ! आप मेरा कल्याण करनेके लिये इन पुष्पोंको ग्रहण करें । मण्डक देनेके समय इस प्रकार कहे—भगवन् ! आप कामनाएँ प्रदान करनेवाले, सुख देनेवाले, धर्मसे समन्वित, धनके दाता और पुत्र प्रदान करते हैं । हे भास्कर देव ! आप इसे ग्रहण करें । भगवन् ! मैं आपको प्रिय मण्डक दे रहा हूँ । हे गणश्रेष्ठ ! ये वस्तुएँ तथा प्रार्थनाएँ आप आदित्यदेवको अत्यन्त प्रिय हैं ।' उपासकके लिये ये कल्याणकारी हैं, इसमें कुछ भी संशय नहीं है । अतः इन्हें निवेदित करना चाहिये । इसके पश्चात् मौनव्रती होकर पुष्पोंसे ब्राह्मणको भोजन कराये ।

जो भक्त मनुष्य इस विधानसे रविका पूजन करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्ति पाकर सूर्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है । उस महान् आत्मावाले पुरुषको न कभी दरिद्रता होती है और न उसके कुलमें कभी कोई रोग ही होता है । जो इस रीतिसे भानुका पूजन करता है, उसकी सन्तति कभी क्षय नहीं होता । यदि कभी सूर्यलोकसे भूमण्डलमें आता है तो वह फिर यहाँ राजा होता है और बहुत-से रत्नोंसे संयुक्त होकर तेजस्वी विप्रके तुल्य होता है । त्रिपुरान्तक देव इस विधानको पढ़ने एवं सुननेवालोंको दिव्य और अचल लक्ष्मी देते हैं ।

सौर-धर्मकी महिमाका वर्णन

इस प्रकरणमें सौर-धर्ममें वर्णित गरुड और अरुणके संवादका तथा सौर-धर्मके माहात्म्यका वर्णन किया जाता है । राजा शतानीकने कहा—'हे विप्रेन्द्र ! आप जो परमोत्तम सौर-धर्म है, उसे कृपया पुनः बतलाइये ।' सुमन्तु मुनिने कहा—'हे महाबाहो ! बहुत अच्छा । हे भारत ! इस लोकमें तुम्हारे समान अन्य कोई भी राजा सौर-धर्ममें अनुराग रखनेवाला नहीं है । आज मैं ... पापनाशक संवादको तुमसे कहता हूँ, सुनो । यह गरुड और अरुणका संवाद है । प्राचीन कालमें गरुडने ... किया—हे निष्पाप खगश्रेष्ठ ! धर्मोंमें सबसे उत्तम ... और समस्त पापनाशक सौरधर्मको आप मुझे ... बतानेकी कृपा करें । अरुणने कहा—हे वत्स ! ... तुम महान् आत्मावाले हो और परम धन्य तथा ... हो । हे भाई ! तुम जो इस परम श्रेष्ठ ... सुननेकी इच्छा कर रहे हो, यह इच्छा ही ... धन्यता और निष्पापता प्रकट कर रही है । मैं ... उपायस्वरूप महान् फल देनेवाले अनुत्तम ... बतलाता हूँ । अब तुम श्रवण करो ।

यह सौरधर्म अज्ञानके सागरमें निमग्न ... प्राणियोंको दूसरे तटपर लगा देनेवाला तथा ... उद्धार कर देनेवाला है । हे खग ! जो लोग भक्ति... रविका स्मरण, कीर्तन और भजन किया करते हैं, ... परम पदको चले जाते हैं । हे खगाधिप ! जिसने ... लोकमें जन्मग्रहण करके इन देवेशका अर्चन नहीं किया, वह संसारमें पड़ा हुआ चक्कर काटने ... महान् दुःख भोगनेमें लगा है । यह मनुष्य-जन्म परम दुर्लभ है, ऐसे मनुष्य-जीवनको पाकर जिसने भगवान् दिवाकरका पूजन किया, उसीका जन्म ... सफल है । जो लोग भगवान् सूर्यदेवका भक्तिपूर्वक स्मरण किया करते हैं, वे कभी किसी प्रकारके दुःख... भागी नहीं होते । अनेक प्रकारके सुन्दर पदार्थों... विविध आभूषणोंसे भूषित स्त्रियोंकी तथा अटूट धन... प्राप्ति—ये सभी भगवान् सूर्यदेवकी पूजाके फल हैं ।

जिन्हें महान् भोगोंकी सुख-प्राप्तिकी कामना है ... जो राज्यमात्र पाना चाहते हैं अथवा सर्वदा सौभाग्य... इच्छुक हैं एवं जिन्हें अतुल शक्ति, भोग, त्याग, ... श्री, सौन्दर्य, जगत्‌की ख्याति, कीर्ति और धर्म ...

सूर्य एक देवविशेष हैं—देवताओंमें सूर्यका एक विशिष्ट स्थान है। उनका 'व्यक्ताव्यक्त' नाम यह दिखाता है कि वे शरीर धारण करके प्रकट हो जाते हैं और तदनुरूप कार्य करते हैं। वे मनुष्योंसे भी सम्बन्ध स्थापित करते हैं। सूर्यका वंश भी इस पृथ्वीपर चला, जिसे इक्ष्वाकुवंश कहते हैं। भगवान्‌ने सूर्यको और सूर्यने मनुको, मनुने इक्ष्वाकु आदिको कर्मयोग-धर्मका उपदेश भी दिया है, ऐसा गीतामें उल्लेख है[1]। इसीलिये अष्टोत्तरशत सूर्यनामोंमें उनके नाम धर्मध्वज, वेदकर्ता, वेदाङ्ग, वेदवाहन, योगी आदि हैं। सूर्यके 'कामद', 'करुणान्वित' नाम भी उनका देवत्व व्यक्त करते हैं—यह युक्ति-युक्त ही है।

प्रभावती सूर्यकी पत्नी हैं।[2] प्रभा अर्थात् सूर्यकी ज्योति। आगम-शास्त्रमें प्रभाको सूर्यकी शक्ति कहा गया है। पुरुषकी शक्ति पत्नी होती है। अतः प्रभा सूर्यकी पत्नी है।

मरीचिके पुत्र कश्यपके द्वारा अदितिके बारह पुत्र सूर्यके ही अंश माने जाते हैं। इनके नाम इस प्रकार हैं[3]—धाता, मित्र, अर्यमा, इन्द्र, वरुण, अंश, भग, विवस्वान्, पूषा, सविता, त्वष्टा और विष्णु। इनमें विष्णु छोटे होनेपर भी गुणोंमें सबसे बढ़कर हैं। सावित्री[4] और तपती ये दो सूर्यकी कन्याएँ हैं। यम सूर्यके पुत्र हैं[5]। सूर्य-पुत्र होनेके कारण यमका तेज सूर्यके समान ही था।

देवरूपमें सूर्यका मनुष्योंसे सम्बन्ध बतानेवाली कुछ पुराण-कथाओंके उल्लेख भी महाभारतमें मिलते हैं। इनमें एक कथा यह है कि त्वष्टादेवताकी पुत्री संज्ञाका विवाह सूर्यसे हुआ था। संज्ञा सूर्यका तेज नहीं सह सकी। इससे वह सूर्यके पास अपनी छाया छोड़कर स्वयं पिताके पास लौट गयी। उस छायासे सूर्यका पुत्र शनैश्चर हुआ[6]। पिताने जब संज्ञाको अपने पतिके पास ही रहनेके लिये कहा तो संज्ञा पिताके यहाँसे तो चली गयी, किंतु सूर्यसे बचनेके लिये उसने अश्वाका रूप बना लिया और अन्यत्र रहने लगी। सूर्यने अश्वरूप धारण करके संज्ञा (अश्वा)का पीछा किया। तब संज्ञा और सूर्यसे अश्विनीकुमारोंका जन्म हुआ। अन्ततः त्वष्टाने सूर्यको अपना तेज कम करवानेके लिये सहमत कर लिया। तब त्वष्टाने खरादपर चढ़ाकर सूर्यको छील दिया। त्वष्टाने सूर्यके द्वादश खण्ड कर दिये। इस प्रकार सूर्यका तेज कम हो गया[7]। पाश्चात्योंने इससे यह कल्पना की है कि सूर्यकी मूर्तिको शकलोग कवच पहनाते थे[11]। यही इस कथामें बतलाया गया है। महाभारतकी यह कथा अन्य पुराणोंमें दी हुई कथाका संक्षिप्त रूप है[12]। गोविन्दपुर (जिला गया, बिहार प्रान्त)के शिलालेख (शकाब्द १०५९ सन् ११३७-३८ ई०)में लिखा है कि विश्वकर्माने सूर्यदेवके तनुका तेज शाणयन्त्रपर चढ़ाकर कम किया था। इस पुराण-कथाका मूल स्रोत ऋग्वेद है[13]। ऋग्वेदमें त्वष्टाकी पुत्री शरण्यु और सूर्यके विवाहकी कथा है।

सूर्यदेवकी दूसरी प्रसिद्ध कथा है—'कर्णकी उत्पत्ति'। महाभारतमें सूर्यदेव प्रत्यक्ष पात्रके रूपमें दृष्टिगत होते हैं। पृथापर आनेवाले भावी संकटका विचार करके महर्षि दुर्वासाने पृथाको अपने धर्मकी रक्षा करनेके लिये

---

१ गीता ४। १, २ महाभारत ५। ११७। ८, ३ वही १। ६। १४। ४ वन १। ६५। १५-१६; ५. वही १। १७०। ७ ६ वही १। १७०। ७ ७ वही १। ७४। १० ८ वही १। २०३। ४१, ९. भागवत ६। ६। ४१—छाया शनैश्चरं लेभे। १० लिङ्गाद्य—विश्वकर्मा तनुरात्र शाणे... [illegible] । भ्रमिमारोप्य तनूं तेजः शातयामास तस्य वै॥ भविष्यपुराण ब्राह्म० ७९। ४१। ११ उदाच्य वेश पूर्व पाण्डुरा भारत्। (कल्पद्रुमिति?) १२ यह कथा पुराणमें विस्तारसे दी हुई है। १३ ऋग्वेद १। १४।

जबतक इन्द्रियोंकी शक्ति क्षीण नहीं होती, तबतक ही दिवाकरकी अर्चनाका कर्म सम्पन्न कर लेना चाहिये, क्योंकि मानव असमर्थ होनेपर इसे नहीं कर सकता और यह मानव-जीवन यों ही व्यर्थ निकल जाता है। भगवान् सूर्यदेवकी पूजाके समान इस जगत्त्रयमें अन्य कोई भी धर्मका कार्य नहीं है। अतः देवदेवेश दिवाकरका पूजन करो। जो मानव भक्तिपूर्वक शान्त, अज, प्रभु, देवदेवेश सूर्यकी पूजा किया करते हैं, वे इस लोकमें सुख प्राप्त करके परम पदको प्राप्त हो जाते हैं। सर्वप्रथम अपनी परम प्रहृष्ट अन्तरात्मासे गोपतिकी पूजा करके अञ्जलि बाँधकर पहले ब्रह्माजीने यह (आगे कहा जानेवाला) स्तोत्र कहा था।

ब्रह्माजीने कहा—भग अर्थात् षडैश्वर्यसम्पन्न, स्व-चित्तसे युक्त, देवोंके मार्ग-प्रणेता एवं सर्वश्रेष्ठ भास्करदेवको मैं सदा प्रणाम करता हूँ। जो देवेन्द्र शाश्वत, शोभन, शुद्ध, दिवस्पति, चित्रभानु दिवा और ईशोंके भी ईश हैं, उनको मैं प्रणाम करता हूँ। जो समस्त दुःखोंके हर्ता, प्रसन्नवदन, उत्तमाङ्ग, वर, वर प्रदान करनेवाले, वरद तथा वरेण्य भगवान् विभु हैं, उन्हें मैं प्रणाम करता हूँ। अर्क, अर्यमा, इन्द्र, विष्णु, ईश, दिवाकर, देवेश्वर, देवरत और विभावसु नामक भगवान् सूर्यको मैं प्रणाम करता हूँ। इस प्रकार मेरे द्वारा की गई स्तुतिका जो नित्य श्रवण किया करता है, वह परम कीर्तिको प्राप्तकर सूर्यलोकमें चला जाता है।

महाभारतमें सूर्यदेव

लेखिका—कु० सुषमा सक्सेना, एम्० ए० (संस्कृत) रामायण-विशारद, आयुर्वेदरत्न)

महाभारतमें सूर्यतत्त्वका पृथक् विवेचन नहीं है। सूर्य-सम्बन्धी उल्लेख जहाँ कहीं भी हैं, आनुषङ्गिक ही हैं, तथापि उनसे हम महाभारतकारकी सूर्य-सम्बन्धी विचारणाका व्यवस्थित स्वरूप प्राप्त कर सकते हैं। महाभारतमें सूर्यको ब्रह्म, चराचरका धाता, पाता, संहर्ता, एवं एक देवविशेष, कालाध्यक्ष ग्रहपति, एक ज्योतिष्पिण्ड और गोसहारके रूपमें विहित किया गया है। सूर्यदेवके सम्बन्धमें कुछ पुराण-कथाओंका भी अत्यन्त संक्षिप्त उल्लेख महाभारतमें हुआ है। सूर्योपासनाके विषयमें भी कुछ निर्देश प्राप्त होते हैं।

सूर्यकी ब्रह्मरूपता—सूर्यके अष्टोत्तरशत नामोंमें कुछ नाम ऐसे हैं, जो उनकी परमब्रह्मरूपता प्रकट करते हैं। वे नाम—हैं अश्वत्थ, शाश्वतपुरुष, सनातन, सर्वादि, अनन्त, प्रशान्तात्मा, विश्वात्मा, विश्वतोमुख, सर्वतोमुख, चराचरात्मा, सूक्ष्मात्मा। कुछ नामोंसे उनकी त्रिदेवरूपता व्यक्त होती है। ये नाम हैं—ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, शौरि, वेदकर्ता, वेदवाहन, स्रष्टा, आदिदेव और पितामह। एक साथ तीनों देवोंका ऐक्य भी मान्य है। महाभारतके अष्टोत्तरशतनाम एवं विश्वसहस्रनाममें कुछ नाम समान हैं; जैसे—सूर्य, अज, काल, शौरि, शनैश्चर आदि। अन्धकारका नाश करनेके कारण भी सूर्यको ... अर्थात् शूर या पराक्रमी कहा जाता है।

सूर्य चराचरका धाता-पाता-संहर्ता—सूर्यसे इस चराचरका उद्भव हुआ है,[1] सूर्यसे ही उसका पोषण होता है और सूर्यमें ही उसका लय होता है। यह सिद्ध करनेवाले सूर्यके नाम ये हैं—प्रजाध्यक्ष, विश्वकर्मा, ..., भूताश्रय, भूतपति, सर्वधातुनिषेविता, भूतादि, प्राणधारक, प्रजाद्वार, देहकर्ता, और चराचरात्मा। 'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'—इस श्रुति-वचनका प्रतिशब्द चराचरात्मा है। सृष्टिके आरम्भकालमें जब प्रजा भूखसे व्याकुल हो रही थी, तब सूर्यने ही उसका व्यवस्था की थी।

---

१ महाभारत ३।३।३६। २ वही ३।३।५८।

सूर्य एक देवविशेष हैं—देवताओंमें सूर्यका एक विशिष्ट स्थान है। उनका 'व्यक्ताव्यक्त' नाम यह दिखाता है कि वे शरीर धारण करके प्रकट हो जाते हैं और तदनुरूप कार्य करते हैं। वे मनुष्योंसे भी सम्बन्ध स्थापित करते हैं। सूर्यका वंश भी इस पृथ्वीपर चला, जिसे इक्ष्वाकुवंश कहते हैं। भगवान्‌ने सूर्यको और सूर्यने मनुको, मनुने इक्ष्वाकु आदिको कर्मयोग-धर्मका उपदेश भी दिया है, ऐसा गीतामें उल्लेख है[1]। इसीलिये अष्टोत्तरशत सूर्यनामोंमें उनके नाम धर्मध्वज, वेदकर्ता, वेदाङ्ग, वेदवाहन, योगी आदि हैं। सूर्यके 'कामद', 'करुणान्वित' नाम भी उनका देवत्व व्यक्त करते हैं—यह युक्ति-युक्त ही है।

प्रभावती सूर्यकी पत्नी हैं[2]। प्रभा अर्थात् सूर्यकी ज्योति। आगम-शास्त्रमें प्रभाको सूर्यकी शक्ति कहा गया है। पुरुषकी शक्ति पत्नी होती है। अतः प्रभा सूर्यकी पत्नी है।

मरीचिके पुत्र कश्यपके द्वारा अदितिके बारह पुत्र सूर्यके ही अंश माने जाते हैं। इनके नाम इस प्रकार हैं[3]—धाता, मित्र, अर्यमा, इन्द्र, वरुण, अंश, भग, विवस्वान्, पूषा, सविता, त्वष्टा और विष्णु। इनमें विष्णु छोटे होनेपर भी गुणोंमें सबसे बढ़कर हैं[4]। सावित्री[5] और तापती[6] ये दो सूर्यकी कन्याएँ हैं। यम सूर्यके पुत्र हैं[7]। सूर्यपुत्र होनेके कारण यमका तेज सूर्यके समान ही था।

देवरूपमें सूर्यका मनुष्योंसे सम्बन्ध बतानेवाली कुछ पुराण-कथाओंके उल्लेख भी महाभारतमें मिलते हैं। इनमें एक कथा यह है कि त्वष्टादेवताकी पुत्री संज्ञाका विवाह सूर्यसे हुआ था। संज्ञा सूर्यका तेज नहीं सह सकी। इससे वह सूर्यके पास अपनी छाया छोड़कर स्वयं पिताके पास लौट गयी। उस छायासे सूर्यका पुत्र शनैश्चर हुआ[8]। पिताने जब संज्ञाको अपने पतिके पास ही रहनेके लिये कहा तो संज्ञा पिताके यहाँसे तो चली गयी, किंतु सूर्यसे बचनेके लिये उसने अश्वाका रूप बना लिया और अन्यत्र रहने लगी। सूर्यने अश्वरूप धारण करके संज्ञा (अश्वा)का पीछा किया। तब संज्ञा और सूर्यसे अश्विनीकुमारोंका जन्म हुआ। अन्ततः त्वष्टाने सूर्यको अपना तेज कम करवानेके लिये सहमत कर लिया। तब त्वष्टाने खरादपर चढ़ाकर सूर्यको छील दिया। त्वष्टाने सूर्यके द्वादश खण्ड कर दिये। इस प्रकार सूर्यका तेज कम हो गया[9]। पाश्चात्योंने इससे यह कल्पना की है कि सूर्यकी मूर्तिको शकलोग कवच पहनाते थे[10]। वही इस कथामें बतलाया गया है। महाभारतकी यह कथा अन्य पुराणोंमें दी हुई कथाका संक्षिप्त रूप है[11]। गोविन्दपुर (जिला गया, बिहार प्रान्त)के शिलालेख (शकाब्द १०५९, सन् ११३७-३८ ई०)में लिखा है कि विश्वकर्माने सूर्यदेवके तनुको तेज शाणयन्त्रपर चढ़ाकर कम किया था। इस पुराण-कथाका मूल स्रोत ऋग्वेद है[12]। ऋग्वेदमें त्वष्टाकी पुत्री शरण्यु और सूर्यके विवाहकी कथा है।

सूर्य-वंशकी दूसरी प्रसिद्ध कथा है—'कर्णकी उत्पत्ति'। महाभारतमें सूर्यके सम्बन्ध कर्णके रूपमें दृष्टिगत होते हैं। पृथापर आनेवाले भावी संकटका विचार करके महर्षि दुर्वासाने पृथाको अपने धर्मकी रक्षा करनेके लिये

१ गीता ४।१, २ महाभारत ५।११७।८। ३ वही १।६५।१४, ४ वही १।६५।१६, ५ वही १।१७०।७ ६ वही १।१७०।७ ७ वही १।७५।१० ८ वही १।२०३।४? ९ भागवत ६।६।४१—छाया शनैश्चरं लेभे। १० विल्सन—विष्णुपुराण अनुवाद [illegible]। [illegible] तनुं तेजः शातनमास ततः स वै॥ भविष्यपुराण ब्राह्म० ७९।४१। ११ [illegible] (कार्पस इन्स्क्रिप्शनम्) १२ यह कथा पुराणमें विस्तारसे दी हुई है। १३ ऋग्वेद १।१४।

ग्रहपति सूर्य—विभिन्न ग्रहोंके नाम सूर्यके अष्टोत्तरशत नामोंके अन्तर्गत हैं। इसका आशय यह होता है कि महाभारतकार सूर्यको ग्रहपति मानते हैं। सूर्यके एक सौ आठ नामोंमें—सूर्य, सोम, अङ्गारक (मङ्गल), बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर भी हैं[1]। सूर्यके 'धूमकेतु' नामसे केतु शब्द व्यञ्जित होता है और उससे राहु-नाम सङ्केतित हो जाता है। 'राहु' और 'केतु' नाम महाभारतमें अन्यत्र मिलते हैं। आदिपर्वमें अमृत-मन्थनकी कथामें राहुका नाम है, जो चन्द्रग्रहण करता है। उसके कबन्धका भी उल्लेख है। यह कबन्ध ही 'केतु' है। राहु-केतु दोनों नाम साथ-साथ कर्णपर्वमें आये हैं, जहाँ अर्जुन और कर्णके ध्वजोंकी उपमा उनसे दी गयी है[2]। इस प्रकार महाभारतमें नवों ग्रहोंके नाम दिये हुए हैं। और, प्राच्य विद्याके पाश्चात्त्य विचारकोंका यह कथन सत्य नहीं है कि 'महाभारतमें केवल पाँच ग्रहोंका उल्लेख है, जिनके नाम भी नहीं दिये गये हैं[3]।'

ज्योतिष्कपिण्ड सूर्य—सूर्य अपने ज्योतिर्मय पिण्डाकाररूपमें प्रतिदिन प्रातः-सायं उदित और अस्त होते हैं[4]। उस समय सूर्यका वर्ण मधुके समान पिङ्गल तथा तेजसे समस्त दिशाओंको उद्भासित (प्रकाशित) करनेवाला होता है[5]। कुन्तीका मन इन्हीं ज्योतिर्मय सूर्यको उदित होते हुए देखकर आसक्त हुआ था। इस प्रसङ्गमें यह वर्णन भी आया है कि सूर्य योग-शक्तिसे अपने दो स्वरूप बनाकर एकसे कुन्तीके पास आये और दूसरेसे आकाशमें तपते रहे[6]। इसका तात्पर्य यह है कि भगवान् सूर्यकी ही शक्ति ज्योतिर्मय पिण्डाकाररूपमें हमें दिखायी देती है। धर्मराज युधिष्ठिर सूर्यकी प्रार्थना करते हुए कहते हैं—

तव यद्युदयो न स्यादन्धं जगदिदं भवेत्।
न च धर्मार्थकामेषु प्रवर्तेरन् मनीषिणः॥
आधानपशुबन्धेष्टिमन्त्रयज्ञतपःक्रियाः।
त्वत्प्रसादादवाप्यन्ते ब्रह्मक्षत्रविशां गणैः॥

(महाभारत ३।३।५२-५४)

अर्थात् (भगवन्!) यदि आपका उदय न हो तो यह सारा जगत् अंधा हो जाय और मनीषी पुरुष धर्म, अर्थ एवं काम-सम्बन्धी कर्मोंमें प्रवृत्त ही न हों। गर्भाधान या अग्निकी स्थापना, पशुओंको बाँधना, इष्टि (यज्ञ-पूजा), मन्त्र, यज्ञानुष्ठान और तपश्चर्या आदि समस्त क्रियाएँ आपकी ही कृपासे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यगणोंके द्वारा सम्पन्न की जाती हैं।

महाभारतमें स्थान-स्थानपर शूरवीरों एवं महर्षियोंके तेजकी तुलना सूर्यसे की गयी है, जो सूर्यके ज्योतिष्कपिण्ड-रूपको समक्ष लाती है। एक बार महर्षि जमदग्नि धनुष चलानेकी क्रीड़ा कर रहे थे[7]। वे धनुष चलाते और उनकी पत्नी रेणुका बाण ला-लाकर देती थीं[8]। क्रीड़ा करते-करते ज्येष्ठ मासके सूर्य दिनके मध्यभागमें आ पहुँचे[9]। इससे रेणुका बाण लानेकी क्रियामें विफल होने लगीं[10]। अतः रुष्ट होकर जमदग्निने कहा—'इस उद्दीप्त किरणोंवाले सूर्यको आज मैं अपने बाणोंके द्वारा अपनी अस्त्राग्निके तेजसे गिरा दूँगा[11]।' जमदग्निको युद्धोद्यत देख सूर्यदेव ब्राह्मणका वेश धारण कर वहाँ आये और कहा—'सूर्यदेवने आपका क्या अपराध किया है? सूर्यदेव तो विश्वकल्याणार्थ कार्यमें लगे हुए हैं। अतः इनकी गति रोकनेसे आपको क्या लाभ होगा'[12]? जमदग्निने सूर्यको शरणागत समझकर कहा—'ठीक है, इस समय तुम्हारे द्वारा जो यह अपराध हुआ है, उसका कोई समाधान सोचो जिससे तुम्हारी

---

१ महाभारत ३।३।१७-१८, २ वही ८।८७।९२, ३ ऐसा श्री उ० एन० दासजीने अपने ग्रन्थ 'पौराणिक एवं तान्त्रिक रिलीजन'में पृ० १२ पर लिखा है, ४ महाभारत ३।३।३०४ ५ वही ३।३०८।१० ६ वही ३।३०४।१ ७ वही ३।३०४।१० ८ वही १३।९५।६, ९ वही १३।९५।७ १० वही १३।९५।९ ११ १३।९५।१० १२ वही १३।९६।१८ १३ वही १३।९६।२०।

वशीकरण मन्त्र दिया[1]। दुर्वासासे प्राप्त मन्त्रकी परीक्षा लेनेके लिये कुन्तीद्वारा आवाहन किये जानेपर[2] सूर्यदेवका प्रकट[3] होना और कुन्तीको पुत्र (कर्ण) रूप फल प्राप्त होना[4] सूर्यदेवकी प्रत्यक्षता ही है। सूर्य-कुन्तीके पुत्र कर्ण देवमाता अदितिके कुण्डल तथा सूर्यके कवचसहित उत्पन्न हुए थे[5]। सूर्यदेवकी कृपासे कुन्तीका कन्यात्व कर्णको उत्पन्न करनेके बाद भी ज्यों-का-त्यों बना रहा। महाभारतकारने 'कन्या' शब्दकी व्याख्या करते हुए कहा है कि 'कम्' धातुसे कन्या शब्दकी सिद्धि होती है। 'कम्' धातुका अर्थ है 'चाहना', क्योंकि यह स्वयंवरमें आये हुए किसी व्यक्तिको अपनी कामनाका विषय बना सकती है[6]। मन्त्रकी परीक्षा मात्र करनेके विचारसे ही कुन्तीने सूर्यका आवाहन किया था, किंतु उससे जब सूर्य वास्तवमें प्रत्यक्ष हो गये और उससे प्रणययाचना करने लगे तथा कुन्ती सूर्यको आत्म-समर्पण करनेमें भयका अनुभव करने लगी, तब सूर्यने वरदान दिया कि 'तुम कन्या ही बनी रहोगी और स्वयंवरमें किसीका भी वरण करनेमें समर्थ होगी।' यह आश्वासन प्राप्त करके कुन्तीने पुत्र (कर्ण) को प्राप्त किया। कर्ण सूर्यके समान तेजस्वी थे। वे महाभारत-युद्धके प्रमुख महारथियोंमें थे। दुर्योधनने तो इन्हींके बलपर युद्ध छेड़ा था। समय-समयपर सूर्यदेव पुत्र-स्नेहके कारण कर्णपर विपत्ति आनेके पूर्व उन्हें सावधान कर देते थे। नारायण श्रीकृष्णने महाभारत-युद्धमें अर्जुनकी विजय निश्चित की थी। अतः विधाताकी इच्छानुसार अपने पुत्र अर्जुनकी विजयके लिये प्रयत्नशील इन्द्रने कर्णसे कवच-कुण्डल दानमें माँगनेका निश्चय किया। सूर्यके लिये सभी अनावृत हैं, अतः सूर्य इन्द्रके इस निश्चयको जान गये और पुत्रस्नेहके कारण योग-समृद्धिसे सम्पन्न वेदवेत्ता ब्राह्मणका रूप धारणकर उन्होंने रातको स्वप्नमें कर्णको दर्शन दिया[7] तथा कर्णसे कहा—'इन्द्र ब्राह्मणका वेष धारण करके तुम्हारे पास कवच-कुण्डल माँगने आयेंगे, तुम देना मत[8]।' परंतु कर्णने अपने निश्चयके अनुसार याचकको प्राणतक देनेका[9] अपना व्रत बता दिया। इसपर सूर्यने कर्णसे कहा कि यदि तुमने यह निश्चय कर ही लिया है, तो तुम कवच-कुण्डलके बदले इन्द्रसे अमोघ शक्ति ले लेना। यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि सूर्यने कर्णको यह नहीं बताया है कि वे कर्णके पिता हैं। कर्ण यही समझते हैं कि मेरे आराध्यदेव होनेके कारण ही सूर्य मेरे प्रति स्नेह रखते[10] हैं। वैसे तो सूर्यसे ही यह समस्त प्रजा उत्पन्न हुई है और वे सभीका पालन करते हैं[11] तथा इनके अष्टोत्तरशत नामोंमें एक नाम 'पिता' भी है, परंतु अपने वंशरूप कर्णसे उन्हें अधिक प्रेम था।

कालचक्र सूर्य—सूर्यका नाम काल है। ये अनन्त-असीम कालके विभाजक हैं अर्थात् कालचक्र प्रवर्तक हैं। अतः समयके छोटे-बड़े सभी विभागोंको महाभारतमें सूर्यरूप कहा गया है। सूर्यके गण हैं—कृत, त्रेता, द्वापर, कलियुग, संवत्सर, दिन, रात्रि, याम, क्षण, कला, काष्ठा—मुहूर्तरूप समय। सूर्यके कारण ही हम समयके इन खण्डोंका अनुभव करते हैं, अन्यथा महाकाल तो अनन्त-अखण्ड इन्द्रियातीतकी अनुभूति है। सूर्यका नाम 'तमोनुद' यह प्रकट करता है कि आप तमस्‌में प्रकाश करके 'समय' की भावना उत्पन्न करते हैं। ब्रह्माजीका दिन सहस्र युगोंका बताया गया है। 'कालज्ञानके जाननेवाले विद्वानोंने उसका आदि और अन्त सूर्यको ही माना है[12]।

१ महाभारत १।११०।८ २ वही १।११०।९, ३ वही १।११०।११७-११८, ४ १।११०।१६ के बाद दाक्षिणात्य ५ वही १।११०।२०, ६ वही ३।३०७।२८-२९, ७ वही ३।३०७।१३, ८ वही ३।३०७।१, ९ वही ३।३०९।८०, १० वही ३।३००।१५ से सम्पूर्ण, ११ वही ३।३०१।५-१२, १२ वही ३।३०२।१५, १३ वही ३।३।१९, १४ वही ३।३।५५।

ग्रहपति सूर्य—विभिन्न ग्रहोंके नाम सूर्यके अष्टोत्तरशत नामोंके अन्तर्गत हैं। इसका आशय यह होता है कि महाभारतकार सूर्यको ग्रहपति मानते हैं। सूर्यके एक सौ आठ नामोंमें—सूर्य, सोम, अङ्गारक (मङ्गल), बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर भी हैं[1]। सूर्यके 'धूमकेतु' नामसे केतु शब्द व्यञ्जित होता है और उससे राहु-नाम सङ्केतित हो जाता है। 'राहु' और 'केतु' नाम महाभारतमें अन्यत्र मिलते हैं। आदिपर्वमें अमृत-मन्थनकी कथामें राहुका नाम है, जो चन्द्रग्रहण करता है। उसके कबन्धका भी उल्लेख है। यह कबन्ध ही 'केतु' है। राहु-केतु दोनों नाम साथ-साथ कर्णपर्वमें आये हैं, जहाँ अर्जुन और कर्णके ध्वजोंकी उपमा उनसे दी गयी है[2]। इस प्रकार महाभारतमें नवों ग्रहोंके नाम दिये हुए हैं। और, प्राच्य विद्याके पाश्चात्य विचारकोंका यह कथन सत्य नहीं है कि 'महाभारतमें केवल पाँच ग्रहोंका उल्लेख है, जिनके नाम भी नहीं दिये गये हैं[3]।'

ज्योतिष्कपिण्ड सूर्य—सूर्य अपने ज्योतिर्मय पिण्डाकाररूपमें प्रतिदिन प्रातः-सायं उदित और अस्त होते हैं[4]। उस समय सूर्यका वर्ण मधुके समान पिङ्गल तथा तेजसे समस्त दिशाओंको उद्भासित (प्रकाशित) करनेवाला होता है[5]। कुन्तीका मन इन्हीं ज्योतिर्मय सूर्यको उदित होते हुए देखकर आसक्त हुआ था। इस प्रसङ्गमें यह वर्णन भी आया है कि सूर्य योग-शक्तिसे अपने दो स्वरूप बनाकर एकसे कुन्तीके पास आये और दूसरेसे आकाशमें तपते रहे[6]। इसका तात्पर्य यह है कि भगवान् सूर्यकी ही शक्ति ज्योतिर्मय पिण्डाकाररूपमें हमें दिखायी देती है। धर्मराज युधिष्ठिर सूर्यकी प्रार्थना करते हुए कहते हैं—

> तव यद्युदयो न स्यादन्धं जगदिदं भवेत्।
> न च धर्मार्थकामेषु प्रवर्तेरन् मनीषिणः॥
> आधानपशुबन्धेष्टिमन्त्रयज्ञतपःक्रियाः।
> त्वत्प्रसादादवाप्यन्ते ब्रह्मक्षत्रविशां गणैः॥
>
> (महाभारत ३।३।५३-५४)

अर्थात् (भगवन्!) यदि आपका उदय न हो तो यह सारा जगत् अंधा हो जाय और मनीषी पुरुष धर्म, अर्थ एवं काम-सम्बन्धी कर्मोंमें प्रवृत्त ही न हों। गर्भाधान या अग्निकी स्थापना, पशुओंको बाँधना, इष्टि (यज्ञ-पूजा), मन्त्र, यज्ञानुष्ठान और तपश्चर्या आदि समस्त क्रियाएँ आपकी ही कृपासे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यगणोंके द्वारा सम्पन्न की जाती हैं।

महाभारतमें स्थान-स्थानपर शूरवीरों एवं महर्षियोंके तेजकी तुलना सूर्यसे की गयी है, जो सूर्यके ज्योतिष्कपिण्ड रूपको समक्ष लाती है। एक बार महर्षि जमदग्नि धनुष चलानेकी क्रीडा कर रहे थे। वे धनुष चलाते और उनकी पत्नी रेणुका बाण ला-लाकर देती थीं। क्रीडा करते-करते ज्येष्ठ मासके सूर्य दिनके मध्यभागमें आ पहुँचे[7]। इससे रेणुका बाण लानेकी क्रियामें विकल होने लगीं[8]। अतः रुष्ट होकर जमदग्निने कहा—'इस उद्दीप्त किरणोंवाले सूर्यको आज मैं अपने बाणोंके द्वारा अपनी अस्त्राग्निके तेजसे गिरा दूँगा[9]।' जमदग्निको युद्धोद्यत देख सूर्यदेव ब्राह्मणका वेश धारण कर वहाँ आये और कहा—'सूर्यदेवने आपका क्या अपराध किया है? सूर्यदेव तो निखिलकल्याणार्थ कार्यमें लगे हुए हैं। अतः इनकी गति रोकनेसे आपको क्या लाभ होगा?' जमदग्निने सूर्यको शरणागत समझकर कहा—'ठीक है, इस समय तुम्हारे द्वारा जो यह अपराध हुआ है, उसका कोई समाधान सोचो जिससे तुम्हारी

१ महाभारत १।२।१७।१८ २ वही ८।८७।९२ ३ ऐसा ही ज० एन० बनर्जी भी ... पौराणिक एण्ड तान्त्रिक रिलिजन में ... पर लिखा है। ४ महाभारत १।१।१०४ ... ३।१०४।९ ६ वही ३।३०४।५ ७ वही ३।३०४।१० ८ वही १३।९५।६ ९ वही १३।९५।७ १० वही १३। ... ११ १३।९५।१६ १२ वही १३ ...

किरणोंद्वारा तपा हुआ मार्ग सुगमतापूर्वक चलने योग्य हो सके[1] ।' यह सुनकर सूर्यने शीघ्र ही जमदग्निको छत्र और उपानह्—दोनों वस्तुएँ प्रदान कीं[2] । इससे यह सिद्ध होता है कि भगवान् सूर्य प्रजाके कल्याणार्थ कार्य करते हैं । वे यदि अपने कार्यसे च्युत होंगे तो समस्त संसार नष्ट हो जायगा । अतः किसी भी देवता, गन्धर्व, और महर्षि आदिको उनके कार्यमें व्यवधान पहुँचानेका प्रयत्न नहीं करना चाहिये ।

मोक्षद्वार सूर्य—सूर्यके नामोंमें एक नाम 'मोक्षद्वार' है । इसी अर्थका समर्थक नाम है—स्वर्गद्वार । त्रिविष्टप भी सूर्यका एक नाम है । भीष्मने दक्षिणायन सूर्यकी समस्त अवधिमें शर-शय्यापर जीवन धारण किया । भीष्म आठवें वसुके अंशरूप थे[3] । पिताके सुखके लिये भीषण प्रतिज्ञा करनेपर पिताद्वारा उन्हें इच्छामृत्युका वरदान मिला था[4] । जीवनसे उदासीन होनेपर अर्जुनके बाणोंसे विकल हो[5] भीष्मने मृत्युका चिन्तन किया । वे अर्जुनद्वारा रथसे गिरा दिये गये[6] थे । किंतु उस समय सूर्य दक्षिणायनमें थे, अतः भीष्म प्राण-त्याग नहीं किये[7] । श्रुतिके अनुसार दक्षिणायन सूर्यके समय प्राणविसर्जन होनेसे पुनः जन्म ग्रहण करना पड़ता है । भीष्मकी इच्छा थी कि जो मेरा पुरातन स्थान (वसुगणोंके पास स्वर्गमें) है, वहीं जाऊँ[8] । अतः उत्तरायण सूर्यकी प्रतीक्षामें भीष्मने अट्ठावन दिन शरशय्यापर व्यतीत[9] किया । स्पष्ट है कि सूर्य मोक्षद्वार हैं[10] । गीता ८ । २४ में स्पष्टतः प्रतिपादित है कि—उत्तरायणमें मरनेवाले ब्रह्मलोकको प्राप्त करते हैं ।

सूर्योपासना—अष्टोत्तरशत नामोंमें अनुस्यूत 'सर्वलोकनमस्कृतः' से स्पष्ट है कि सूर्यकी उपासना अत्यन्त व्यापक है—ऐसा महाभारतकारका मत है । सूर्यके 'कामद' और 'करुणान्वित' नाम यह प्रकट करते हैं कि सूर्यकी पूजासे इच्छाओंकी पूर्ति होती है और साधकपर भगवान् सूर्य अपनी करुणाकी वर्षा करते हैं । 'प्रजाद्वार' नाम यह बताता है कि सूर्योपासनासे सन्तानकी प्राप्ति होती है । 'मोक्षद्वार' नाम यह प्रकट करता है कि सूर्योपासनासे स्वर्गकी प्राप्ति होती है । महर्षि धौम्य कहते हैं कि जो व्यक्ति सूर्यके इन एक सौ आठ नामोंका नित्य पाठ करता है, वह स्त्री, पुत्र, धन, रत्न, पूर्वजन्म-स्मृति, धृति, बुद्धि, विशोकता, इष्टलाभ और भुक्ति-मुक्ति प्राप्त करता है—

> सूर्योदये यः सुसमाहितः पठेत्
> स पुत्रदारान् धनरत्नसंचयान् ।
> लभेत जातिस्मरतां नरः सदा
> धृतिं च मेधां च स विन्दते पुमान् ॥
> इमं स्तवं देववरस्य यो नरः
> प्रकीर्तयेच्छुचिसुमनाः समाहितः ।
> विमुच्यते शोकदवाग्निसागरा-
> ल्लभेत कामान् मनसा यथेप्सितान् ॥
>
> (महाभारत ३ । ३ । ३०-३१)

युधिष्ठिर कहते हैं कि ऋषिगण, वेदके तत्त्वज्ञ ब्राह्मण, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, यक्ष, गुह्यक, नागवाले तैंतीस देवता (बारह आदित्य, ग्यारह रुद्र, आठ वसु, इन्द्र और प्रजापति), विमानचारी सिद्धगण, उपेन्द्र, महेन्द्र, श्रेष्ठ विद्याधरगण, सात पितृगण (वैराज, अग्निष्वात्त, सोमपा, गार्हपत्य, एकशृङ्ग, चतुर्वेद, कला), दिव्यमानव, वसुगण, मरुद्गण, रुद्र, साध्य, बालखिल्य तथा सिद्ध-महर्षि आपकी उपासना करते हैं । षष्ठी और सप्तमीको सूर्यकी पूजा करनेसे लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है । सूर्योपासनासे और भी अनेक प्राप्य हैं, यह बताते हुए युधिष्ठिर कहते हैं—

१ महाभारत १३ । ९६ । १२ २ वही १३ । ९६ । १३ ३ वही १ । ६३ । १०५ ४ वही १ । १०० । ३८-३९, ६ वही ६ । ११९ । ५६ ७ वही ६ । ११९ । ८६ ८ वही ६ । ११९ । १०४, ९ वही ६ । ११९ । ५ १० वही १३ । १६७ । २६, ११ वही ३ । ३ । ३९—४४ ।

न तेषामापदः सन्ति नाधयो व्याधयस्तथा।
ये तवानन्यमनसः कुर्वन्त्यभिनन्दनम्॥
सर्वरोगैर्विरहिताः सर्वपापविवर्जिताः।
त्वद्भावभक्ताः सुखिनो भवन्ति चिरजीविनः॥
(महाभारत ३। ३। ६५-६६)

इतना कहनेपर भी महाभारतकारको तृप्ति नहीं हुई। वे पुनः कहते हैं—

इमं स्तवं प्रयतमनाः समाधिना
पठेदिहान्योऽपि वरं समर्थयन्।
तत् तस्य दद्याच्च रविर्मनीषितं
तदाप्नुयाद् यद्यपि तत् सुदुर्लभम्॥
(३।३।७)

अर्थात् जो कोई पुरुष मनको संयममें रखकर चित्त वृत्तियोंको एकाग्र करके इस स्तोत्रका पाठ करेगा, वह यदि कोई अत्यन्त दुर्लभ वर भी माँगे तो भगवान् सूर्य उसको उस मनोवाञ्छित वस्तुको दे सकते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि यद्यपि महाभारतमें विष्णुपुराण आदिकी भाँति व्यापक क्रमबद्धतासे मुख्य सन्दर्भरूपमें वर्णन नहीं होनेपर भी सूर्यमाहात्म्यके लिये आनुषङ्गिक वर्णन महत्त्वके हैं और उनसे महाभारतकारकी सर्वविषयक धारणाएँ विवेचित हो जाती हैं। वस्तुतः महाभारत भगवान् सूर्यकी महत्ताका प्रतिपादन ही नहीं, प्रत्युत समर्थन भी करता है। सूर्यदेव हैं और सब कुछ करनेमें सर्वथा समर्थ हैं। अतः सूर्यकी अर्चना—उपासना करनी चाहिये—यह महाभारतकारको इष्ट है।

महाभारतोक्त सूर्यस्तोत्रका चमत्कार

(लेखक—महाकवि श्रीवनमालिदासजी, शास्त्रीजी महाराज)

दुर्योधनेनैव दुराग्रहेण
निर्वासितायैव युधिष्ठिराय।
पात्रं प्रदत्तं भुवनोपभोज्यं
तस्मै नमः सूर्यमहोदयाय॥

अपने भक्तमात्रको अतिशय उन्नति देनेवाले उन भगवान् सूर्यको मेरा सादर प्रणाम है, जिन्होंने दुर्योधनके द्वारा दुर्व्यसनमय दुरोदर (जुआ)के निमित्त वनमें निर्वासित युधिष्ठिरके लिये ऐसा चमत्कारमय पात्र प्रदान किया जो भुवनमात्रको भोजन कराने में समर्थ था।

दुर्दान्त दुर्योधनके दुर्दमनीय दुःशासनादिमय दुर्व्यवहारमय दुर्द्यूतके द्वारा पराजित हुए पाँचों पाण्डव जब द्रौपदीके सहित वनको प्रस्थित हो गये तब धर्मराज युधिष्ठिरकी राजसभामें अपने धर्म-कर्मका सानन्द निर्वाह करनेवाले हजारों वैदिक ब्राह्मण निश्चय करनेपर भी उनके साथ ही वनको चल दिये। उस समय युधिष्ठिरने वनमें जाकर युधिष्ठिरने अपने पूज्य पुरोहित श्रीधौम्य ऋषिसे प्रार्थना की—'हे भगवन्! ये ब्राह्मण जब मेरा साथ दे रहे हैं, तब इनके भोजनकी व्यवस्था भी मुझे ही करनी चाहिये। अतः आप कृपया इन सबके भोजनकी व्यवस्थाका कोई उपाय अवश्य बताइये।' तब धौम्य ऋषिने प्रसन्न होकर कहा—'मैं श्रीब्रह्माजीके द्वारा कहा हुआ अष्टोत्तरशतनामात्मक सूर्यका स्तोत्र तुम्हें देता हूँ, तुम उसके द्वारा भगवान् सूर्यकी आराधना करो। तुम्हारा मनोरथ शीघ्र ही पूर्ण हो जायगा।' [यह स्तोत्र महाभारतके वनपर्वमें तीसरे अध्यायमें इस प्रकार है—]

धौम्य उवाच

सूर्योऽर्यमा भगस्त्वष्टा पूषार्कः सविता रविः।
गभस्तिमानजः कालो मृत्युर्धाता प्रभाकरः॥
पृथिव्यापश्च तेजश्च खं वायुश्च परायणम्।
सोमो बृहस्पतिः शुक्रो बुधोऽङ्गारक एव च॥

इन्द्रो विवस्वान् दीप्तांशुः शुचिः शौरिः शनैश्चरः ।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च स्कन्दो वै वरुणो यमः ॥
वैद्युतो जाठरश्चाग्निरैन्धनस्तेजसां पतिः ।
धर्मध्वजो वेदकर्ता वेदाङ्गो वेदवाहनः ॥
कृतं त्रेता द्वापरश्च कलिः सर्वमलाश्रयः ।
कला काष्ठा मुहूर्ताश्च क्षपा यामस्तथा क्षणः ॥
संवत्सरकरोऽश्वत्थः कालचक्रो विभावसुः ।
पुरुषः शाश्वतो योगी व्यक्ताव्यक्तः सनातनः ॥
कालाध्यक्षः प्रजाध्यक्षो विश्वकर्मा तमोनुदः ।
वरुणः सागरोंऽशश्च जीमूतो जीवनोऽरिहा ॥
भूताश्रयो भूतपतिः सर्वलोकनमस्कृतः ।
स्रष्टा संवर्तको वह्निः सर्वस्यादिरलोलुपः ॥
अनन्तः कपिलो भानुः कामदः सर्वतोमुखः ।
जयो विशालो वरदः सर्वधातुनिषेचिता ॥
मनःसुपर्णो भूतादिः शीघ्रगः प्राणधारकः ।
धन्वन्तरिर्धूमकेतुरादिदेवो दितेः सुतः ॥
द्वादशात्मारविन्दाक्षः पिता माता पितामहः ।
स्वर्गद्वारं प्रजाद्वारं मोक्षद्वारं त्रिविष्टपम् ॥
देहकर्ता प्रशान्तात्मा विश्वात्मा विश्वतोमुखः ।
चराचरात्मा सूक्ष्मात्मा मैत्रेयः करुणान्वितः ॥
एतद् वै कीर्तनीयस्य सूर्यस्यामिततेजसः ।
नामाष्टशतकं चेदं प्रोक्तमेतत् स्वयम्भुवा ॥

सुरगणपितृयक्षसेवितं
ह्यसुरनिशाचरसिद्धवन्दितम् ।
वरकनकहुताशनप्रभं
प्रणिपतितोऽस्मि हिताय भास्करम् ॥
सूर्योदये यः सुसमाहितः पठेत्
स पुत्रदारान् धनरत्नसंचयान् ।
लभेत जातिस्मरतां नरः सदा
धृतिं च मेधां च स विन्दते पुमान् ॥
इमं स्तवं देववरस्य यो नरः
प्रकीर्तयेच्छुचिसुमनाः समाहितः ।
विमुच्यते शोकदवाग्निसागरा-
ल्लभेत कामान् मनसा यथेप्सितान् ॥

प्रतिदिन प्रातःकाल संकीर्तनीय अमित तेजस्वी भगवान् श्रीसूर्यदेवका एक सौ आठ नामोंवाला यह स्तोत्र ब्रह्माजीके द्वारा कहा गया है। अतः मैं भी अपने हितके लिये उन भगवान् भास्करको साष्टाङ्ग प्रणाम करता हूँ—जो देवगण, पितृगण एवं यक्षोंके द्वारा सेवित तथा असुर, निशाचर, सिद्ध एवं साध्य आदिके द्वारा वन्दित हैं और जिनकी कान्ति निर्मल सुवर्ण एवं अग्निके समान है।

जो व्यक्ति सूर्योदयके समय विशेष सावधान होकर इस सूर्य-स्तोत्रका प्रतिदिन पाठ करता है, वह सब पुत्र, कलत्र, धन, रत्नसमूह, पूर्वजन्मकी स्मृति, धैर्य एवं धारणाशक्तिवाली बुद्धिको अनायास प्राप्त कर लेता है।

जो मनुष्य स्नान आदिसे पवित्र हो विशेष सावधान होकर स्वच्छ मनोयोगपूर्वक, देवश्रेष्ठ सूर्यदेवके इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह शोकरूपी दावानलके सागरसे अनायास पार हो जाता है तथा स्वाभिलषित मनोरथोंको भी प्राप्त कर लेता है।

इस प्रकार धौम्य ऋषिके द्वारा प्राप्त इस सूर्य-स्तोत्रका विधिपूर्वक अनुष्ठान करनेवाले युधिष्ठिरके ऊपर शीघ्र ही प्रसन्न होकर अक्षयपात्र देते हुए भगवान् सूर्य बोले—'हे राजन्! मैं तुमसे प्रसन्न हूँ, तुम्हारे समस्त समितियोंके भोजनकी सुव्यवस्थाके लिये मैं तुम्हें यह अक्षयपात्र देता हूँ, देखो, अनन्त प्राणियोंको भोजन कराकर भी जबतक द्रौपदी भोजन नहीं करेगी, तब-तक यह पात्र खाली नहीं होगा और द्रौपदी इस पात्रमें जो भोजन बनायेगी, उसमें छप्पन भोग छत्तीसों व्यञ्जनों-सा स्वाद आयेगा।'

इस प्रकार सूर्यदेवके द्वारा प्राप्त उस अक्षयपात्रके सहयोगसे धर्मराज युधिष्ठिरने अपने वनवासके बारह वर्ष सभी ब्राह्मणों, ऋषियों, महात्माओंकी तथा अश्व, पाण्डवप्रभृति प्राणियोंकी सेवा करते हुए अनायास व्यतीत कर लिये।

लेखक भी लगभग चौबीस वर्षोंसे इस स्तोत्रका अनुष्ठान करता रहा है । इस स्तोत्रके अन्तमें अपनी अभिलाषाका द्योतक स्वरचित यह श्लोक भी जोड़ देता है—

यावज्जीवं तु नीरोगं कुरु मां च शतायुषम् ।
प्रसीद धौम्यकृतया स्तुत्या मयि विकर्तन ॥

'हे समस्त रोग, दुःख, दोष एवं दारिद्र्य आदिका शमन करनेवाले सूर्यदेव ! धौम्य ऋषिके द्वारा की हुई इस स्तुतिसे आप मुझपर प्रसन्न हो जाइये और मुझको जीवनभरके लिये नीरोग तथा सौ वर्षकी आयुवाला बना दीजिये, जिससे कि मैं समस्त शास्त्रोंका यथावत् अनुशीलन कर सकूँ ।' इस प्रकारका अनुष्ठान कर प्रत्येक व्यक्ति लाभ उठा सकता है ।

वाल्मीकि-रामायणमें सूर्यकी वंशावली

(लेखक—विद्यावारिधि श्रीसुधीरनारायणजी ठाकुर (सीतारामशरण) व्या०-वेदान्ताचार्य, साहित्यरत्न,)

भगवान् भास्कर एक प्रत्यक्ष शक्तिशाली सत्ता हैं, जिनका प्रभाव सम्पूर्ण सृष्टिमें व्याप्त है । इस विषयमें विश्वके किसी भी क्षेत्रके विचारकोंमें मतभेद नहीं है, तथापि भारतीय परम्पराके आधारपर (पाश्चात्य मान्यताके समान) यह सत्ता कोई जड सत्ता नहीं है । यद्यपि चमकनेवाला तेज पुञ्ज यह मण्डल जड प्रतीत होता है, फिर भी आर्ष ग्रन्थोंकी मान्यतापर विचार करनेसे यही कहा जा सकता है कि यह तेजोमण्डल पृथिव्यादिकी भाँति भले ही जडलोक हो, किंतु उसमें विराजमान कोई अपूर्व चेतनशक्ति अवश्य है जो समस्त सृष्टिकी मङ्गलकामनासे अनुदिन अपनी कृपावर्षिणी किरणोंद्वारा अमृत-वर्षण कर सभी जीवोंमें शक्ति प्रदान करती रहती है । अतः भारतीय दृष्टिमें ये 'सूर्य' मण्डल-मात्र नहीं, अपितु साक्षात् नारायण ही हैं । इसलिये यद्यपि विविध ग्रन्थोंमें इनके माहात्म्यगानके साथ-साथ इनकी स्वस्थ वंशपरम्परा कल्पभेदसे वंशानुक्रमणिकामें कुछ वैषम्यके साथ प्राप्त होती है । फिर भी प्रधान प्रधान राजाओंका वर्णन प्रायः सभी वंशानुक्रमणिकाओंमें है । सम्प्रति महर्षि वाल्मीकिने अपनी रामायणमें इनकी जो वंशपरम्परा दी है, उसे आगे दिखलाया जा रहा है ।

मिथिलामें विवाह प्रसङ्गमें ब्रह्मर्षि वसिष्ठने जनकसे इक्ष्वाकुवंशकी परम्पराका निरूपण करते हुए कहा है— 'सर्वप्रथम सृष्टिके पूर्व ही अव्यक्तसे शाश्वत (नित्य), अव्यय हिरण्य (ब्रह्म) प्रकट हुए । ब्रह्मासे मरीचि एवं मरीचिसे कश्यपकी उत्पत्ति हुई । इसी महात्मा कश्यपसे विवस्वान् (सूर्यदेव) प्रादुर्भूत हुए । भगवान् विवस्वान्ने कृपा करके मनुको जन्म दिया, जो इस सृष्टिके सर्वप्रथम शासक माने जाते हैं । उन्होंने अपना शासन व्यवस्थाके स्वरूपको दृढ रखनेके लिये एक नियम-(विधि) ग्रन्थका निर्माण किया जो आज भी मनुस्मृतिके नामसे प्रसिद्ध है । इसी मनुसे इक्ष्वाकु उत्पन्न हुए । इक्ष्वाकुके पुत्र विकुक्षि, विकुक्षिके पुत्र बाण, बाणके पुत्र अनरण्य, अनरण्यके पुत्र पृथु, पृथुके पुत्र त्रिशङ्कु हुए (जो सशरीर स्वर्ग गये, किंतु ईश्वरीय विधानके विपरीत होनेके कारण उन्हें वहाँ स्थान नहीं मिला, फिर भी विश्वामित्रकी कृपासे वे मर्त्यलोकमें न आकर ऊर्ध्वलोकमें ही लटक रहे) । त्रिशङ्कुके पुत्र धुन्धुमार, धुन्धुमारके पुत्र युवनाश्व, युवनाश्वके पुत्र मान्धाता हुए जिन्होंने अपने शौर्यगुणके बलपर एक रात्रिमें सम्पूर्ण वसुन्धरापर आधिपत्य प्राप्त कर लिया था । मान्धाताके पुत्र सुसन्धि हुए । सुसन्धिके दो पुत्र ध्रुवसन्धि एवं प्रसेनजित् थे । ध्रुवसन्धिके पुत्र भरत, भरतके पुत्र असित हुए । असितकी ये दोनों

एक सौ चौवालीस वर्षकी आयु निश्चित की गयी है। जहाँ वर्ष शब्दका अर्थ दिन माननेपर आयु बहुत अधिक प्रतीत हो, वहाँ एक हजार वर्षका अर्थ एक वर्ष मानना चाहिये। इस प्रकार दशरथके साठ हजार वर्ष वाले कथनमें साठ हजार वर्ष शब्दका अर्थ होगा—पूरे साठ वर्ष। स्मृति या पुराणोंमें सत्ययुग, त्रेतायुग आदिमें जो चार सौ या तीन सौ वर्षकी मनुष्यकी आयु लिखी गयी है, उसका तात्पर्य है कि सत्ययुग, त्रेतायुग आदिका परिमाण कलियुगसे चतुर्गुण या त्रिगुण माना जाता है। इसलिये कलियुगके सौ वर्ष ही उन युगोंके चार सौ या तीन सौ कहे जाते हैं। इससे उन वाक्योंका श्रुतिसे विरोध नहीं समझना चाहिये। इसी प्रकार बहुत-बहुत कालके अन्तरपर होनेवाले राजाओंके समयमें भी किसी एक ऋषिके ही अस्तित्वका वर्णन पुराणोंमें पाया जाता है। उदाहरणके लिये वसिष्ठ और विश्वामित्रके अस्तित्वको लिया जा सकता है, जो हरिश्चन्द्र और उनके पिता त्रिशंकु आदि राजाओंके समयमें भी उपस्थित हैं तथा दशरथ और रामके समयमें भी। इसी प्रकार परशुराम, भगवान् रामके समयमें उनसे धनुर्भङ्गके कारण विवाद करते देखे जाते हैं और महाभारतकालमें भी भीष्म, कर्ण आदिको उन्होंने विद्या पढ़ायी, ऐसा भी प्राप्त होता है। इसका तात्पर्य है कि वसिष्ठ, विश्वामित्र आदि नाम कुलपारम्परिक नामका बोधक है। जबतक किसी विशेष कारणसे—प्रवर आदिकी गणनाके लिये नामका परिवर्तन नहीं होता, वही नाम चलता रहता था, किंतु भगवान् रामके राज्यका समय इतना लम्बा किसी प्रकार नहीं हो सकता, अतः समयका संकोच करना आवश्यक होगा। इसलिये दस सहस्र वर्षका अर्थ है—सौ वर्ष और दशशत वर्षका अर्थ है—दस वर्ष, अर्थात् रामने एक सौ दस वर्षतक राज्य करके ब्रह्म सायुज्य प्राप्त किया था। जहाँतक वंश-परम्परामें अनन्त नामोंकी चर्चा है, उसके सम्बन्धमें कहना है कि पुराणकी वंश-परम्परामें क्रमबद्ध सभी राजाओंके नाम नहीं दिये गये हैं, अपितु जिस वंशमें जो अत्यन्त प्रधान राजा हुए, उनके ही नाम पुराणोंमें वर्णित हैं। वंशके वर्णन प्रसंगमें पुत्रादि शब्दका अर्थ उनका वंशज है। उदाहरण—रामके लिये 'रघुनन्दन' शब्दका व्यवहार आनुवंशिक है, न कि रघुका पुत्र। इस बातकी पुष्टि निम्नलिखित वाक्यसे भी होती है—

अपत्यं पितुरेव स्यात् ततः प्राचामपीति च।

अर्थात् 'पिताका तो अपत्य होता ही है, उसके पूर्वपुरुषोंका भी वह अपत्य कहा जाता है।' इसके अतिरिक्त श्रीमद्भागवतमें परीक्षितके द्वारा राजाओंके वंश पूछनेपर श्रीशुकदेवजीका उत्तर है कि—

श्रूयतां मानवो वंशः प्राचुर्येण परन्तप।
न शक्यते विस्तरतो वक्तुं वर्षशतैरपि॥
(९।१।७)

'वैवस्वत मनुका मैं प्रधानरूपसे वंश सुनाता हूँ। इसका विस्तार तो सैकड़ों वर्षोंमें भी नहीं किया जा सकता।' इससे सिद्ध है कि वंशके नाम बहुत अधिक हैं। 'लिंगपुराण' तथा 'वायुपुराण' (उत्त०, अ० २६, श्लोक २१२)-में भी राजाओंके वंश-कीर्तनके अन्तमें लिखा गया है कि—

एते इक्ष्वाकुदायादा राजानः प्रायशः स्मृताः।
वंशे प्रधाना एतस्मिन् प्राधान्येन प्रकीर्तिताः॥

'इक्ष्वाकु-वंशके प्रायः प्रधान-प्रधान राजाओंके ही नाम कहे गये हैं।' यही कारण है कि जिनका विवाह आदि सम्बन्ध पुराणोंमें लिखा है, उनकी पीढ़ियोंमें बहुत भेद पड़ता है। उदाहरणके तौरपर इक्ष्वाकुके तीन पुत्र विकुक्षि, निमि और दण्डक कहे गये हैं। उनमें विकुक्षिके वंशमें प्रायः ७५ पुरुषोंके अनन्तर रामका अवतार वर्णित है और निमिके वंशमें प्रायः इक्कीस

कुशध्वजके अनन्तर ही सीताके पिता सीरध्वज जनकका नाम आता है। इस तरह दोनोंकी पीढ़ियोंमें लगभग एक हजार वर्षोंका अन्तर असम्भव-सा लगता है। इससे स्पष्ट है कि दोनों वंशोंके प्रधान प्रधान राजाओंके ही नाम पुराणोंमें गिनाये गये हैं। अतः जिस राजवंशमें प्रधान और प्रतापी राजा अधिक हुए, उस वंशके अधिक नाम आ गये हैं और जिस वंशमें प्रधान राजा न्यून हुए, वहाँ न्यून नामकी ही गणना हुई है। राजाओंके वंश-वर्णनमें ऐसा भी भेद देखा जाता है कि किसी एक पुराणमें एक वंशके राजाओंके जो नाम मिलते हैं, वे दूसरे पुराणोंमें नहीं मिलते। इसका कारण यह है कि जिस पुराणकारकी दृष्टिमें जो राजा प्रतापवान् और उल्लेखनीय माने गये हैं, उन्हींके नाम उस पुराणकारने गिनाये। कुछ पुराणकारोंने तो संक्षिप्तीकरणके विचारसे भी ऐसा किया है। पुराणोंमें वंश आदिके वक्ता पृथक्-पृथक् ऋषि आदि हैं, जो पुराणवाचकोंको स्पष्ट ही प्रतीत हो जाता है। इस प्रकार यह सिद्ध है कि पुराणोंकी पीढ़ियोंमें प्रधान प्रधान राजाओंके ही नाम गिनाये गये हैं और भेद भी मिल जाते हैं। राजवंशोंके नाम बहुत पुराणकारोंने लोकश्रुतिके आधारपर भी लिया है, जिस लोकश्रुतिमें सम्पूर्ण राजवंशके प्रत्येक राजाका नाम आना असम्भव था। लोकश्रुति तो प्रधान और अवतारी पुरुषोंका ही स्मरण रखती है, अन्य लोगोंको छाँटकर किनारे कर देती है। किंतु वंशानुगत यदि सभी राजाओंके नाम और समय उपलब्ध हो जाते तो ठीक-ठीक काल-गणनाका आधार प्राप्त हो जाता। परंतु ऐसा नहीं है, अतः पुराणोंमें काल-गणनाका जो विस्तार वैज्ञानिक रीतिसे किया गया है, उसे न मानकर अपनी श्रद्धासे उसका संकोच करना उपयुक्त नहीं है।

सूर्यवंशका विवेचन

संक्षिप्त रूपसे कालके निरूपण और अनुपपत्तियोंके समाधानके निमित्त कुछ अन्य बातोंके साथ राजवंशोंका विवेचन आरम्भ किया जाता है। ऋषियोंके वर्णनका क्रम पुराणोंमें प्रायः नहीं मिलता। किसी-किसी पुराणमें ऋषियोंके वंशका कुछ अंश कहा गया है, पर राजवंशोंकी तरह ऋषि-वंशानुगत क्रम नहीं मिलता। इन पुराणोंमें भारतीय राजाओंके तीन वंश माने गये हैं—सूर्यवंश, चन्द्रवंश तथा अग्निवंश। इन तीन दीप पदार्थोंके नामपर क्षत्रिय-वंशकी कल्पनाका रहस्य यह है कि सृष्टिमें तेज तीन प्रकारका ही प्रसिद्ध है—सूर्यका प्रखर तेज, चन्द्रका शीतल तेज और अग्निका अन्य स्थानमें व्याप्त दाहक तेज। इनमें भी मुख्य रूपसे सूर्य ही तेजके घन हैं। चन्द्रमाका तेज केवल प्रकाश-रूप है। उसमें उष्णता नहीं है। यह प्रकाश भी सूर्यसे ही प्राप्त है। अग्निमें भी तेज सूर्यके सम्बन्धसे ही प्राप्त होता है। विष्णुपुराणका कहना है कि सूर्य जब अस्ताचलको जाते हैं, तब अपना तेज अग्निमें अर्पित कर जाते हैं। इसीलिये अग्निकी ज्वाला रात्रिमें दूरसे दिखायी देती है* और दिनमें जब सूर्य अग्निसे अपना तेज ले लेते हैं, तब अग्निका केवल धूम ही दिखायी देता है—दूरसे ज्वाला नहीं दीख पड़ती। यही कारण है कि पुराणोंमें सूर्यवंश ही मुख्य माना गया है। चन्द्रवंश और अग्निवंशको उसीकी शाखा-रूपमें प्रतिपादित किया गया है। इनमें भी अग्निवंशका वर्णन पुराणोंमें अल्प मात्रामें ही प्राप्त होता है। महाभारत-युद्धके अनन्तर ही चौहान आदि अग्निवंशियोंका प्रभाव इतिहासमें दीख पड़ता है। महाभारत-युद्धतक सूर्यवंश और चन्द्रवंशका ही विस्तार मिलता है।

* प्रभा विवस्वतो रात्रावस्तं गच्छति भास्वरे। विशत्यग्निमतो रात्रौ वह्निर्दूरात्प्रकाशते॥
(विष्णु० २।८।२५

प्राण प्रक्रियाके साथ मनुष्यचरितका साङ्कर्य

पुराणोंकी यह प्रक्रिया है कि प्राण अथवा प्राणजन्य पिण्डोंके साथ ही मनुष्यका चरित मिला दिया जाता है। पुराणोंमें प्राण या प्राणजनित पिण्डोंका विवरण प्रायः ब्राह्मण-ग्रन्थोंके ही आधारपर है। सूर्यवंशके आरम्भमें भी उसी प्रक्रियाका अवलम्बन किया गया है। उनमें तेजके पिण्डरूप सूर्य और सोमघन-रूप चन्द्रमाकी उत्पत्तिका वर्णन किया गया है।

सूर्यकी पाँच पत्नियाँ—सूर्यकी पाँच पत्नियोंका वर्णन पुराणोंमें मिलता है—प्रभा, संज्ञा, रात्रि (राज्ञी), वडवा और छाया। इनमें अपनी पुत्री संज्ञाको त्वष्टाने सूर्यको प्रदान किया था। उससे वैवस्वत मनु, यम और यमुना नामकी तीन सन्तानें उत्पन्न हुईं। संज्ञा अपने पति सूर्यका तेज सहन नहीं कर सकती थी। अतः अपनेको अन्तर्हित कर देनेका विचार करने लगी। उसने अपने ही रूपकी छाया नामक एक स्त्रीको उत्पन्न किया और उसे अपने स्थानपर रखकर स्वयं वडवा बनकर सुमेरु प्रान्तमें चली गयी। जाते समय उसने छायासे कहा—'इस रहस्यको सूर्यसे प्रकट मत करना।' छायाने कहा—'सूर्य जबतक मेरा केश पकड़कर न पूछेंगे, तबतक मैं नहीं कहूँगी।' बहुत कालतक इस रहस्यका भेद नहीं खुल सका और सूर्य छायाको 'संज्ञा' ही समझते रहे। रूप, गुण और व्यवहारमें छाया संज्ञाके समान ही थी, अतः 'सवर्णा' नामसे भी अभिहित हुई। छायाके सावर्णि मनु, शनैश्चर, तापी नदी और विष्टि नामक चार सन्तानें उत्पन्न हुईं। कुछ समय बीतनेपर छाया अपनी सन्तानोंसे अधिक प्रेम करने लगी और अपनी सपत्नीकी सन्तानोंका तिरस्कार करने लगी। इस विषमताको वैवस्वत मनु सहन नहीं कर सके और सूर्यसे शिकायत की—'माँ छाया, हममें और शनैश्चर आदिमें भेदका व्यवहार करती है।' तत्पश्चात् सूर्यने अपनी पत्नी छायासे इसका कारण पूछा। छायाकी ओरसे जब यथार्थ उत्तर न मिल सका, तो सूर्यने क्रोधमें आकर उसके केश पकड़ लिया और डाँटते हुए ठीक-ठीक उत्तर बतलानेके लिये उसको बाध्य किया। छायाने अपनी पूर्वप्रतिज्ञाके अनुसार संज्ञावाली बातका रहस्य प्रकट कर दिया और कहा—'आपकी वास्तविक पत्नी संज्ञा अपने स्थानमें मुझे रखकर वह स्वयं वडवारूप धारण कर चली गयी है।' इस रहस्यको जानकर सूर्यने अश्वरूप धारण किया और संज्ञाको ढूँढ़ने निकल पड़े। ढूँढ़नेके क्रममें संज्ञा सुमेरु प्रान्तमें मिली और सूर्यने अपने अश्वरूपसे ही उसके साथ समागम किया। इस समागमके फलस्वरूप वडवा-रूपधारी संज्ञासे 'नासत्य' और 'दस्र' नामकी दो सन्तानें उत्पन्न हुईं जो 'अश्विनी'में उत्पन्न होनेके कारण 'अश्विनीकुमार' नामसे ही देवताओंकी गणनामें प्रसिद्ध हैं। फिर त्वष्टाने सूर्यको अपने सानपर चढ़ाकर इनका बेडौल रूप हटाकर और सुन्दर शुद्ध रूप बना दिया। तत्पश्चात् पुनः संज्ञा सूर्यके पास आ गयी।*

इन स्त्रियोंका प्रतीकात्मक आशय यह है कि सूर्य-मण्डलके चारों ओर प्रभा व्याप्त होती है और सदा सूर्यके साथ रहती है। अतः उसे सूर्यकी पत्नी और सहचारिणी कहा गया है। उस प्रभासे ही प्रातःकाल होता है, इसीलिये 'प्रभात' को प्रभाका पुत्र बताया गया है। सूर्यके अस्ताचल चले जानेपर ही रात्रि होती है जिसका सम्बन्ध सूर्यसे होता है। अतः रात्रिको सूर्य-पत्नियोंमें गिना गया है। सूर्यका जब प्रकाश फैलता है

*वायुपुराण, उत्तरार्द्ध, अध्याय २२, मत्स्यपुराण अध्याय ११ और पद्मपुराण सृष्टिखण्ड, अध्याय ८, श्लोक ३ से ७ तक।

तो छप्पर या खिड़की आदिके छोटे-छोटे छेदोंमें रेणुकण उड़ते हुए दीखते हैं। वही 'सुरेणु' नामसे अभिहित हैं और सभी प्राणियोंमें संज्ञा, अर्थात् चेष्टा सूर्यसे ही प्राप्त दीख पड़ती है। इसीलिये श्रुतिका कथन है—'प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः' अर्थात् सूर्यपिण्ड ही सारी सृष्टिमें प्राण-रूपसे उदित है। इसीलिये संज्ञा सूर्यकी सहचारिणी है, जिसे पुराणोंमें सूर्यकी पत्नी कहा गया है। त्वष्टा सभी प्राणरूप देवताओंके भिन्न-भिन्न स्वरूपोंके सगठनका कारण बनता है। 'विश्वकलित', अर्थात् प्रत्येक भागसे बिखरे हुए सभी प्राण त्वष्टा-रूप प्राणशक्तिसे ही सगठित होकर अपना रूप ग्रहण करते हैं। यही कारण है कि त्वष्टा भी प्राणियोंकी चेष्टा (संज्ञा) में कारण बनता है। अतः संज्ञाको त्वष्टाकी पुत्री भी बतलाया गया है। पृथ्वीपर सीधे आनेवाले सूर्यके प्रकाशको ही 'संज्ञा' या प्रभा नाम शास्त्रोंमें कहा गया है। जो प्रकाश किसी भित्ति आदिसे रुककर तिरछे आता है, वह 'छाया' या 'सवर्णा' नामसे अभिहित है। स्मरण रहे कि जहाँ हम छाया देखते हैं, वहाँ भी सूर्यका प्रकाश अवश्य है। वहाँ सूर्यकी किरणें भित्ति आदिसे प्रतिहत होकर आती हैं—सीधी नहीं आतीं। अतः इसका नाम 'छाया' या 'सवर्णा' रखा गया। सूर्यका तेज सहन न करनेके कारण 'संज्ञा' अपने स्थानमें 'छाया' या 'सवर्णा'को रखकर चली गयी। संज्ञासे पहले वैवस्वत मनु उत्पन्न हुआ एवं 'सवर्णा' या छाया'से 'सावर्णि' मनुका जन्म हुआ—इत्यादि कथाओंका यही आशय है कि सीधी किरणोंसे जो अर्थेन्द्र बनता है, वह 'वैवस्वत मनु' और प्रतिहत किरणोंसे बननेवाला अर्थेन्द्र 'सावर्णि मनु' कहा जाता है। मनुकी उत्पत्तिका वैज्ञानिक विवरण पुराण-परिशीलनके द्वितीय खण्डमें मण्डलोंकी उत्पत्तिके प्रसंगमें किया जा चुका है। 'संज्ञा' और 'सवर्णा'से 'यमुना और 'तापी' नामकी दो नदियोंकी उत्पत्तिका रहस्य हमने अन्यत्र लिखा है। यमकी उत्पत्ति सूर्यसे हुई है—इसका तात्पर्य यह है कि सूर्यमण्डलसे ही प्राप्त होनेवाली सभी प्राणियोंकी आयु जब किसी शक्तिसे विच्छिन्न होकर टूट जाती है तब प्राणियोंकी मृत्यु होती है। सूर्य और उससे उत्पन्न होनेवाली आयुको परस्पर विच्छिन्न करनेवाली शक्तिका नाम ही 'यम' है। वह यम-रूप शक्ति भी कहीं बाहरसे नहीं आती, अपितु सूर्यसे ही उत्पन्न होती है। इसका थोड़ा विवरण हमने 'भृगु' और 'अंगिरा'वाले प्रकरणमें दिया है[2]। 'सवर्णा'से उत्पन्न शनैश्चरको भी सूर्यका पुत्र बताया गया है। इसका तात्पर्य है कि 'शनि'नामक तारा सूर्यसे इतनी दूरीपर है कि वहाँ सूर्यकी किरणें सीधी पहुँच ही नहीं पातीं—कुछ वक्र होकर ही वहाँ पहुँचती हैं, इसीलिये उसे 'सवर्णा' या 'छाया' से उत्पन्न बतलाया गया है। शनि इतना बड़ा है कि अनेक सूर्य उसमें प्रवेश कर सकते हैं। वह भी इस ब्रह्माण्डका परिधिगत है इस कारण उसे सूर्यका पुत्र कहा गया है। जितने भी तारे ब्रह्माण्ड-परिधिगत हैं, वे सभी इस सूर्यसे उत्पन्न माने जाते हैं। सूर्यका जो प्रकाश सुमेरुकी परिधिमें जाता है, उसे ही प्रायः 'अश्व' कहते हैं। 'सवर्णा' जब अश्वा-रूपसे सुमेरु-प्रान्तमें चली गयी, तो सूर्य भी अश्व बनकर सुमेरु प्रान्तमें पहुँचे और वहाँ अश्व और अश्विनी (अश्वा) का संयोग हुआ, जिससे अश्विनीकुमारोंकी उत्पत्ति हुई। सुमेरु पृथ्वीका परिधि है अर्थात् प्रान्त भाग है। वहाँ सूर्य-किरणोंकी अवस्था ही भिन्न हो जाती है। वहीं

१—दे० पुराण-परिशीलन पृष्ठ २२१।

२ दे०—वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति पृ० ९७ से १०० तक।

अश्विनी नक्षत्रकी आभाके साथ सूर्यकी किरणोंका अद्भुत समागम होता है, जिससे वहाँका वातावरण अन्य स्थानोंसे भिन्न हो जाता है।

इक्ष्वाकु—पूर्ववर्णित सूर्यवंशी वैवस्वत मनुसे ही इक्ष्वाकुकी उत्पत्ति पुराणोंमें कही गयी है। प्रत्येक मन्वन्तरमें ब्रह्मासे मनुके उत्पन्न होनेकी कथाका वर्णन आता है और मनुको ही सभी प्राणियोंका स्रष्टा माना जाता है। यही पुराणोंकी प्रक्रिया है। पुराणोंकी प्रक्रियामें सूर्यको ही ब्रह्मारूप माना गया है और उनसे वैवस्वत मनुकी उत्पत्ति कही गयी है। एक दिशामें जानेवाले प्राणोंके प्रवाहको मनु कहते हैं। इसी कारण सभी प्राणी वृत्ताकार न बनकर लम्बे होते हैं और उनकी आकृतिके एक भागमें ही शक्ति प्रधान रूपसे रहती है, जिसकी चर्चा पहले भी की गयी है।

पुराणोंमें लिखा है कि मनुने अपनी छींकसे इक्ष्वाकुकी उत्पत्ति की। इसका भी तात्पर्य मनुकी प्राणरूपतासे ही है। हमने पूर्व ही 'वराह' के प्रकरणमें लिखा है कि विचार करते हुए ब्रह्माकी नाकसे एक छोटा-सा जन्तु निकला और वही बढ़कर वराहके रूपमें परिणत हो गया। वही प्रक्रिया यहाँ भी समझनी चाहिये। प्राणका व्यापार मुख्यरूपसे नाकसे हुआ करता है और मनु ऐन्द्र प्राण है, अतः उसकी भी सृष्टि नाकसे ही बतलायी गयी है। यहाँ प्राणरूप देवताओंके चरित्रकी संगति मनुष्य-प्राणियोंसे पुराणोंमें मिला दी जाती है। इन सबका तात्पर्य यही है कि सूर्यवंशमें मनुष्य-रूप राजाओंका प्रारम्भ इक्ष्वाकुसे ही होता है। यदि इनके पिता आदिका मनुष्य-रूपमें वर्णन अपेक्षित हो, तो यही कहना होगा कि सूर्य या आदित्य नामका कोई पुरुष-विशेष भी था और उससे मनु नामका कोई पुत्र उत्पन्न हुआ। उसीसे इक्ष्वाकुका जन्म हुआ। इसी इक्ष्वाकुसे उत्पन्न सूर्यवंशके प्रधान राजाओंका वर्णन विस्तारसे पुराणोंमें है और जिन राजाओंके कुछ अद्भुत कर्म हैं या जिनके कार्योंका विज्ञानसे भी सम्बन्ध जोड़ा गया है, उनके चरित्रोंका भी विवरण विशेषरूपसे पुराणोंमें है।*

'पावनी नः पुनातु'

ब्रह्माण्डं खण्डयन्ती हरशिरसि जटावल्लिमुल्लासयन्ती
स्वर्लोकादापतन्ती कनकगिरिगुहागण्डशैलात्स्खलन्ती।
क्षोणीपृष्ठे लुठन्ती दुरितचयचमूं निर्भरं भर्त्सयन्ती
पाथोधिं पूरयन्ती सुरनगरसरित् पावनी नः पुनातु॥

[लोक-कल्याणमें प्रवीण सूर्यवंशीय भगीरथकी भव्य भावनाके गम्भीर प्रयत्नके द्वारा जिस सफलता-सुरसरित्की अवतारणा की उनसे पावनताकी प्रार्थनामें ऋषि वाल्मीकिजी गङ्गास्तोत्रमें कहते हैं—]

ब्रह्माण्डको विखण्डित करती हुई, महादेवके जटाजूटको सुशोभित करती हुई, स्वर्गलोकसे गिरती हुई, सुमेरु पर्वतके समीप विशाल चट्टानोंसे टकराती हुई (सूर्यवंश्य भगीरथके प्रयत्नसे) पृथ्वीपर आकर बहती हुई एवं पापोंकी प्रबल सेनाको नितान्त त्रास देती हुई तथा समुद्रको परिपूर्ण करती हुई पावनी दिव्य नदी (भागीरथी) हम सबको पवित्र करे।

* (—म० म० पं० श्रीगिरिधरजी शर्मा चतुर्वेदी लिखित—पुराण-परिशीलन पृ० २१८ से २२५ तक साभार)

सूर्यकी उत्पत्ति-कथा—पौराणिक दृष्टि

(लेखक—साहित्यमार्तण्ड प्रो० श्रीरञ्जनसूरिदेवजी, एम्० ए० (त्रय), स्वर्ण पदक प्राप्त, साहित्य आयुर्वेद-पुराण पालि जैनदर्शनाचार्य, व्याकरणतीर्थ, साहित्यरत्न, साहित्यालंकार)

सूर्य आगम निगम-संस्तुत और ज्ञान विज्ञान-सम्मत देवाधिदेव परम देवता हैं। उन्हें लोकजीवनके साक्षी और सांसारिक प्राणियोंकी आँखोंका प्रकाशक कहा गया है। इसीलिये उनको 'लोकसाक्षी' और 'जगच्चक्षु' कहते हैं। निरुक्तके अनुसार आकाशमें परिभ्रमण करनेके कारण उन्हें सूर्यकी संज्ञा प्राप्त है। वे ही लोकको कर्मकी ओर प्रेरित करते हैं तथा लोकरक्षक होनेसे रविके नामसे उद्घोषित हुए हैं।[1]

प्राचीनतम वैदिक ऋषि-मुनिसे आधुनिकतम वैज्ञानिक-तक सूर्यके भौतिक एवं आध्यात्मिक गुणोंसे भलीभाँति परिचित होते रहे हैं। अतएव सूर्यसे भावपूर्ण सम्पर्क स्थापित करनेके लिये उन्होंने सूर्योपासनाको विश्वधर्म और संस्कृतिका अनिवार्य अङ्ग बना दिया। फलतः भगवान् सूर्य सम्पूर्ण विश्वके लिये अधिष्ठाताके रूपमें अङ्गीकृत हो गये। रोग-सम्बन्धी जीवाणुओंके शमनके लिये सूर्य किरणोंकी उपयोगिता चिकित्साशास्त्रसम्मत है और वनस्पतिशास्त्रमें वनस्पतियोंकी अभिवृद्धिके लिये सूर्यकिरणोंकी उपादेयता स्वीकार की गयी है। ऋषि-विज्ञानके अनुसार वर्षाके हेतु मेघके निर्माणके लिये सूर्यज्योति अनिवार्य है।[2]

आरोग्य-कामना, निर्धनता-निवारण और सन्तति प्राप्ति आदिकी दृष्टिसे तो सूर्यकी पूजा एवं उनके स्तोत्रोंके पाठका व्यापक प्रचलन है। धर्मकाण्डमें सूर्यको प्रथम पूज्य देवकी प्रतिष्ठा प्राप्त है। सूर्यको अर्घ्य देनेके बाद ही देवकार्य या पितृकार्यका विधान सर्वसम्मत है। तन्त्रासार या आगमपद्धतिमें तो सूर्यविज्ञानकी अत्यन्त महिमा है।[3] योगासनोंमें भी 'सूर्यनमस्कार'को प्राथमिकता दी गयी है। निस्सन्देह सूर्य जागतिक जीवोंके प्राणपोषक, सर्वसम्प्रदायसम्मत लोकतान्त्रिक अजातशत्रु देवता हैं। शास्त्र एवं पुराणोंमें ऐसा निर्देश है कि जो व्यक्ति प्रतिदिन सूर्यको नमस्कार करता है, वह हजार जन्मोंमें भी दरिद्र नहीं होता।[4] मार्कण्डेयपुराणके अनुसार प्रातःकालीन सूर्य जिस घरमें शय्यापर सोये हुए पुरुषको नहीं देखते, जिस घरमें नित्य अग्नि और जल वर्तमान रहता है और जिस घरमें प्रतिदिन सूर्यको दीपक दिखाया जाता है, वह घर लक्ष्मीपात्र होता है।[5] इसके अतिरिक्त यह भी उल्लेख है कि आरोग्यकामी मनुष्योंको सूर्यकी प्रार्थना करनी चाहिये।[6] जिस प्रकार सूर्यकी किरणोंसे सम्पूर्ण संसार प्रकाशित

---

१ (क) सरति आकाशे—इति सूर्यः । (ख) सुवति कर्मणि लोकं प्रेरयति इति सूर्यः । (ग) रूयते-स्तूयते इति रविः ।
(घ) असौ सरणात् लोकस्य वा सूर्यः परिभ्रमात् । अविरतं प्रकाशेन अवनात् स रविः स्मृतः ॥

२ धूमज्योतिः सलिलमरुतां संनिपातः क्व मेघः । (मेघदूत १ । ५)

३ सूर्यविज्ञानके चमत्कारोंके विशद विवरणके लिये द्रष्टव्य—'सूर्यविज्ञान' शीर्षक प्रकरण 'भारतीय संस्कृति और साधना' (खण्ड २, पृष्ठ १६१), म० म० पं० गोपीनाथ कविराज, प्र०-बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना ४ ।

४ आदित्यस्य नमस्कारं ये कुर्वन्ति दिने दिने । जन्मान्तरसहस्रेषु दारिद्र्यं नोपजायते ॥
(—आदित्यहृदयपुराण)

५ भास्करादर्शनानि निर्जलाग्निगृहाणि च । सूर्योदयदीपानि लक्ष्म्या गेहानि भावय ॥
(—मा० पु० ५० । ८१)

६ आरोग्यं भास्करादिच्छेद्धनमिच्छेद्धुताशनात् । ज्ञानं च महेश्वरादिच्छेन्मोक्षमिच्छेज्जनार्दनात् ॥
(—भागवतौ व्यासवचनम्)

है, उसी प्रकार सूर्यकी महिमासे समस्त विश्ववाङ्मय मुखरित है।

यह सर्वज्ञात है कि जो देवता जितने महान् होते हैं, उनकी उत्पत्तिकी कथा उतनी ही अद्भुत होती है। पुराणोंमें वर्णित महामहिम देवता सूर्यकी उत्पत्तिकथा न केवल विचित्र ही है, अपितु इसमें सूर्यके वैज्ञानिक आयामोंका रूपकात्मक विन्यास भी परिलक्षित होता है।

प्रजापति ब्रह्माको जब सृष्टिकी कामना हुई, तो उन्होंने अपने दायें अँगूठेसे दक्षको और बायेंसे उनकी पत्नीका सृजन किया। ब्रह्मपुत्र मरीचिका ही दूसरा नाम कश्यप था। दक्षकी तेरहवीं कन्याके रूपमें उत्पन्न अदितिके साथ कश्यपका विवाह हुआ। कश्यपके द्वारा स्थापित अदितिके गर्भसे भगवान् सूर्यने जन्म लिया। उन भगवान् सूर्यसे ही समस्त सचराचर जगत्का आविर्भाव हुआ। अदितिने पहले सूर्यकी आराधना की थी, इसीलिये वे अदितिके गर्भसे पुत्रके रूपमें प्रकट हुए।

ब्रह्माके मुखसे पहले 'ॐ' प्रकट हुआ। उससे पहले भूः, भुवः और स्वः उत्पन्न हुए। यह व्याहृतित्रय ही आदिदेव सूर्यका स्वरूप है। साक्षात् परब्रह्म-स्वरूप 'ॐ' सूर्यका सूक्ष्म रूप है। फिर यथाक्रम उनके 'महः, जनः, तपः और सत्यम्' इन चार स्थूलसे स्थूलतर रूपोंका आविर्भाव हुआ। 'भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः और सत्यम्' ये सूर्यकी सप्तमूर्तिके रूपमें प्रतिष्ठित हैं। आदि तेज 'ॐ' के स्वभावसे जो तेज उत्पन्न हुआ, वही आदि तेजको सम्यक्रूपसे आवृत करके अवस्थित हुआ। फिर बादमें ब्रह्माके मुखसे निकले हुए ऋक्-मय, यजुर्मय और साममय—अर्थात् शान्तिक, पौष्टिक और आभिचारिक तेज परस्पर मिलकर उक्त आद्य तेज 'ॐ' पर अधिष्ठित हो गये। इस प्रकार एकत्र तेजःपुञ्जसे विश्वमें व्याप्त गम्भीर अन्धकार नष्ट हो गया और सम्पूर्ण स्थावर-जङ्गमात्मक जगत् सुनिर्मल हो उठा। दसों दिशाएँ किरणोंकी प्रखर कान्तिसे चमकने लगीं। इस प्रकार ऋग्यजुःसामजनित छन्दोमय तेज मण्डलीभूत होकर ॐकारस्वरूप परमतेजके साथ मिल गया और यही अव्ययात्मक तेज विश्वसृष्टिका कारण बना। अदितिसे उत्पन्न होनेके कारण सूर्यको 'आदित्य' कहा जाता है, किंतु पुराणोंके अनुसार, सृष्टिके आदिमें उत्पन्न होनेके कारण ही सूर्यको 'आदित्य' नामसे सम्बोधित करते हैं।

ऋक्, यजु और साममय—अर्थात् शान्तिक, पौष्टिक और आभिचारिक तेज क्रमशः प्रातः, मध्याह्न और अपराह्णमें ताप देते हैं। पूर्वाह्णके ऋक्तेजकी छवि शान्तिक, मध्याह्नके यजुस्तेजकी पौष्टिक और सायाह्नके सामतेजकी आभिचारिक है। सूर्यका तेज सृष्टिकालमें ऋङ्मय ब्रह्मास्वरूप, स्थितिकालमें यजुर्मय विष्णु-स्वरूप तथा संहारकालमें साममय रुद्रस्वरूपमें प्रतिष्ठित रहता है। इसीलिये सूर्यको वेदात्मा, वेदसंस्थित, वेदविद्याश्रय और परमपुरुष कहा जाता है। सूर्य ही सृष्टि, स्थिति और प्रलयके हेतु एवं सत्त्व, रज और तम—इन तीनों गुणोंके आश्रय हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महेश—इन त्रिदेवोंके प्रतिरूप भी सूर्य ही हैं। इसीलिये देवतागण सर्वा-सर्वदा इनकी स्तुति करते हैं[1]।

उपरिवर्णित परमतेजोमय सूर्यसे जब संसारका अधः, ऊर्ध्व और मध्यभाग सन्तप्त होने लगे, तो सृष्टिकर्ता ब्रह्मा भयत्रस्त हो उठे कि इस आदित्यसे सम्पूर्ण सृष्टि ही भस्म हो जायगी। अतः वे सूर्यकी स्तुति करने लगे। तब उनकी प्रार्थनापर सूर्यने अपने तेजका संवरण कर लिया। फिर तो ब्रह्माने समस्त चराचर जगत्—वन, नदी, पहाड़, मनुष्य, पशु, देवता, दानव और उरग आदिकी विराट् सृष्टि की।

१—द्रष्टव्य—विष्णुपुराण द्वितीय अंश अ० ११ श्लोक ७—१६।

अदितिसे देवता, दितिसे दैत्य तथा दनुसे दानव उत्पन्न हुए। अदिति, दिति और दनुके पुत्र सारे संसारमें व्याप्त हो गये। देवों और दैत्य-दानवोंमें भयंकर युद्ध होने लगा। इस देवासुर-संग्राममें देवता पराजित हो गये। हारे हुए देवोंकी दीनता और ग्लानि देखकर अदिति अपनी संतानोंकी मङ्गलकामनासे सूर्यकी आराधना करने लगीं, तब भगवान् सूर्यने प्रसन्न होकर अदितिसे कहा—'मैं तुम्हारे गर्भसे सहस्रांशु होकर जन्म लूँगा और तुम्हारे पुत्रोंके शत्रुओंका नाश करूँगा।'[1]

भगवान् सूर्यकी किरणोंके सहस्रांशुने देवमाता अदितिके गर्भमें प्रवेश करके अवताररूपमें अवस्थित हुआ। अदिति बड़ी सावधानीके साथ पवित्र रहकर, कृच्छ्र-चान्द्रायण आदि व्रत करती हुई दिव्य गर्भ धारण किये रहीं। उनकी कठोर तपश्चर्याको देख पतिदेव कश्यप क्रुद्ध होकर बोले—'नित्य निराहार व्रत करके इस गर्भाण्डको क्यों नष्ट कर रही हो?' अदितिके उत्तरमें आकाश अनुनादित हुई—'यह गर्भाण्ड नष्ट नहीं होगा, वरन् शत्रुओंके विनाशका कारण बनेगा।' यह कहकर क्रोधाविष्ट अदितिने देव-रक्षक तेज पुञ्जस्वरूप अपने गर्भाण्डका परित्याग किया। गर्भाण्डके तेजसे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जगने लगा। तब कश्यप सूर्य सदृश तेजस्वी उस गर्भको देखकर प्राचीन ऋग्वेदोक्त मन्त्रोंसे उसकी स्तुति प्रार्थना करने लगे। उस गर्भाण्डसे रक्तवर्णके समान प्रतिभावान् एक बालक प्रकट हुआ, जिसके तेजसे सभी दिशाएँ समुद्भासित हो उठीं। फिर तो गम्भीर स्वरमें आकाशवाणी हुई—'कश्यप! तुमने अदितिसे कहा था कि क्यों गर्भाण्डको मार रही हो, इसीलिये इस पुत्रका नाम 'मार्तण्ड' (मारितण्ड) होगा। यह पूर्ण समर्थ होकर सूर्यके अधिकारका कार्य करेगा और यज्ञका भाग हरनेवाले असुरोंका विनाशक होगा।'[2] इस आकाश वाणीको सुनकर परम हर्षित देवता आकाशसे उतरे और दैत्य तेजो बलसे हीन हो गये। पुनः देवताओं और दानवोंमें भीषण संग्राम हुआ, किंतु मार्तण्डके तेजसे सभी असुर जलकर भस्म हो गये।

इसके बाद प्रजापति विश्वकर्माने अपनी पुत्री संज्ञाका उन परम तेजस्वी मार्तण्डके साथ विवाह कर दिया। संज्ञासे भगवान् सूर्यके तीन संतानें—दो पुत्र (वैवस्वत मनु और यम) और एक कन्या (यमुना) उत्पन्न हुईं। परंतु मार्तण्डके बिम्बका अखिलभुवन संतापकारी तेज संज्ञाके लिये असह्य हो गया। तब उसने अपने स्थानपर अपनी छायाको रख दिया और स्वयं पिता विश्वकर्माके घर लौट गयी।

छायासे भी सूर्यने तीन सन्तानें—दो पुत्र और एक कन्या उत्पन्न कीं। वैवस्वत मनुके तुल्य वंश पुत्र सावर्णि नामसे प्रसिद्ध हुआ। दूसरा पुत्र शनैश्चर नामक ग्रह हुआ और पुत्रीका नाम 'तपती' रखा गया। 'तपती' को महाराज संवरण विवाहके निमित्त अपने साथ ले गये। छाया अपने औरस बच्चोंसे जैसा प्यार करती थी, वैसा प्यार सौतेली संतानोंको नहीं दे पाती थी। पहली बार इस अपमानको वैवस्वत मनुने तो सहन कर लिया, किंतु यमराजसे नहीं सहा गया। वह सौतेली माँपर चरणप्रहार करनेके लिये उद्यत हो गया। फलतः उसे माताके अभिशापका भागी होना पड़ा। हालांकि अन्तमें वह शापमुक्त होकर 'धर्मराज' नामसे सम्बोधित होने लगा।

---

[1] —[illegible] ते गर्भे [illegible] । [illegible] ॥
(मार्कण्डेयपुराण [illegible])

[2] —मारितं ते यत [illegible] । [illegible] ॥
[illegible] च [illegible] करिष्यति । [illegible] ॥
(—मा० पु० [illegible])

संज्ञाके विरहसे व्याकुल सूर्यने अपना तेज क्षीण करनेके लिये श्वशुर विश्वकर्मासे आग्रह किया। तब विश्वकर्मा उनके मण्डलाकार बिम्बको चाक (सान) पर चढ़ाकर तेज घटाने के लिये उद्यत हुए। फिर शाकद्वीपमें सूर्य चाकपर चढ़कर घूमने लगे। चक्रारूढ़ सूर्यके परिभ्रान्त होनेसे सारे जड-चेतन जगत्में उथल-पुथल मच गयी। पहाड़ फट गये, पर्वतशिखर चूर्ण-विचूर्ण हो गये। आकाश, पाताल और मर्त्य—तीनों लोक एवं भुवन व्याकुल हो उठे। इस प्रकार विश्व-विध्वंसकी स्थिति उत्पन्न हो गयी। सभी देवी देवता भयाक्रान्त होकर सूर्यकी स्तुति करने लगे।

विश्वकर्माने सूर्यबिम्बके सोलह भागोंमें पंद्रह भागोंको रेत डाला। फलतः सूर्यका प्रचण्ड तापकारी शरीर मृदुल मनोरम कान्तिसे कमनीय हो गया। विश्वकर्माने सूर्यतेजके पंद्रह भागोंसे विष्णुके चक्र, महादेवके त्रिशूल, कुबेरकी शिबिका, यमके दण्ड और कार्तिकेयके शक्ति पाशकी रचना की एवं अन्यान्य देवोंके प्रभाविशिष्ट विविध अस्त्र-शस्त्र बनाये। अब सूर्यके सुन्दर शरीरको देखकर संज्ञा परम प्रसन्न हुई।

इस प्रकार भारतीय कला चेतनाके प्रतीक [illegible] उत्पत्तिकी कथा थोड़े-बहुत रूपान्तरोंके साथ [illegible] पुराणोंमें वर्णित है। यह कथा [illegible] मार्कण्डेयपुराणपर आधृत है तथा विशेषकर भविष्य [illegible] (ब्राह्मपर्व), वराहपुराण (आदित्योत्पत्ति अध्याय), विष्णुपुराण (द्वितीय अंश), कूर्मपुराण ([illegible] अध्याय), मत्स्यपुराण (अ० १०१) और ब्रह्मवैवर्त [illegible] (श्रीकृष्णखण्ड) आदिमें वर्णित है। इसीलिये [illegible] इन तेजोधाम भगवान् सूर्यकी प्रार्थनामें नतशीश हैं।

> यस्य सर्वमयस्येदमङ्गभूतं जगत्प्रभो।
> स नः प्रसीदतां भास्वान् जगतां यश्च जीवनम्॥
> यस्यैकभास्वरं रूपं प्रभामण्डलदुर्दृशम्।
> द्वितीयमैन्दवं सौम्यं स नो भास्वान् प्रसीदतु॥
> ताभ्यां च यस्य रूपाभ्यामिदं विश्वं विनिर्मितम्।
> अग्नीषोममयं भास्वान् स नो देवः प्रसीदतु॥
> (—मा० पु० १०१। ३२-३४)

जय सूरज

(रचयिता—पं० श्रीसूरजचंदजी शाह० 'सत्यप्रेमी' (डाँगीजी)

जय सूरज सबके उजियारे।
आदि नाथ आदित्य प्रभाकर, नारायण प्रत्यक्ष हमारे॥ जय०
तेज स्वरूप, बुद्धिके प्रेरक, सावित्रीके राजदुलारे॥ जय सूरज०॥ १॥
परम प्रचण्ड गुणोंके उद्गम, अग्नि पिण्ड, ब्रह्माण्ड सहारे॥ जय सूरज०॥ २॥
ज्योति अखण्ड अनन्त तुम्हारी, खण्ड-खण्ड ग्रह-उपग्रह-तारे॥ जय सूरज०॥ ३॥
दिव्य रश्मियोंके दर्शनमें, ऋषि मुनियोंने तत्त्व विचारे॥ जय सूरज०॥ ४॥
सबके मित्र त्रिकाल विधाता, सभी देव प्रिय प्राण तुम्हारे॥ जय सूरज०॥ ५॥
क्षण क्षणके अणु-अणुमें व्यापक, तन-मन सबके रोग निवारे॥ जय सूरज०॥ ६॥
रस बरसाते अन्न पकाते सबने पूज्य तुम्हें स्वीकारे॥ जय सूरज०॥ ७॥
निर्गुण सर्वगुणात्मक अद्भुत, सदात्मा प्रभु इष्ट हमारे॥ जय सूरज०॥ ८॥
तुम हो निर्मल ज्ञान ध्यान दो, 'सूर्य रुद्र' तन, मन, धन वारे॥ जय सूरज०॥ ९॥

पुराणोंमें सूर्यवंशका विस्तार

(लेखक—डॉ० श्रीभूपसिंहजी राजपूत)

सभी धर्म एवं सभ्य जातियाँ अपने-अपने धर्माचार्यों तथा शासकोंकी वंशावलियाँ सुरक्षित रखती हैं। सेमेटिक धर्मोंकी वंशावलियाँ आदिम आदमी आदमसे शुरू होती हैं। बाइबिलके पूर्वार्ध भागमें आदमसे लेकर जलप्लावन-कालीन नबी नूह तथा बादके अब्राहम, इस्साक और मूसा प्रभृति महापुरुषोंकी वंशावलियाँ सङ्कलित हैं। बाइबिलके उत्तरार्ध भागमें महात्मा ईसाकी वंशावली भी इसमें मिला दी गयी है। मुस्लिम धर्मग्रन्थोंमें ऐसी वंशावलियाँ हैं, जिनके द्वारा हजरत मोहम्मदका सम्बन्ध इस्साकके सौतेले भाई इस्मायलसे जोड़ा जाता है। ईरानके पारसी तथा मुस्लिम नरेशोंकी वंशावलियोंका सङ्कलन महमूद गजनवीने फिरदौसी नामक अपने एक मुस्लिम दरबारी कविसे शाहनामा नामक ग्रन्थमें कराया था। कहनेका अभिप्राय यह कि वंशावलियाँ सभ्य-समाजमें सर्वत्र ही समादृत हैं।

हमारे देशमें इतिहासका प्रमुख स्रोत होनेके कारण वंशावलियोंका सङ्कलन पुराणोंमें बहुत शुद्धता एवं गवेषणात्मक ढंगसे किया गया है। प्राचीन साहित्यमें पुराणोंका सम्बन्ध इतिहाससे इतना घनिष्ठ है कि दोनों सम्मिलितरूपसे इतिहास-पुराण नामसे अनेक स्थलोंपर उल्लिखित हुए हैं। महाभारत भी स्वयंको इतिहासोत्तम कहता है (आदिपर्व २ । ३–५)। इसी प्रकार वायु पुराण पुराण होनेपर भी अपनेको पुरातन इतिहास बतलाता है (देखिये वा० पु० १०३ । ४८–५१)। इसीलिये पुराणके पञ्च लक्षणोंमें वंशावलियोंके वर्णनका भी विधान है—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चेति पुराणं पञ्चलक्षणम्॥

पुराणोंमें विष्णुपुराणका एक विशिष्ट स्थान है। यह पुराण वैष्णव दर्शनका मूल आलम्बन है। इसके खण्डोंका नाम अंश है, जिनकी संख्या छः है तथा अध्यायोंकी संख्या १२६ है। इस पुराणका चतुर्थ अंश विशेषत ऐतिहासिक है। इस अंशमें अनेक क्षत्रिय-वंशोंकी वंशावलियाँ दी गयी हैं, जिनके वंशधर वर्तमानमें राजपूत हैं।

पुराणोंमें वर्णित इतिहासकी सत्यताकी जाँच अन्य प्रामाणिक शिलालेखों तथा मुद्राओंके द्वारा सिद्ध होती है। श्रीकाशीप्रसाद जायसवाल तथा डॉ० मिराशी प्रभृति विद्वानोंने बड़े परिश्रमसे ऐसे अनेक प्रमाण जुटाये हैं, जिनमें पुराणगत बहुत-से राजचरितोंकी सत्यता प्रमाणित हुई है। पश्चिमके प्रसिद्ध विद्वान् पार्जिटर महोदयने इन अनुश्रुतियोंकी प्रामाण्य-सिद्धिमें अनेक प्रमाण तथा युक्तियाँ दी हैं। आपका महत्त्वपूर्ण मौलिक ग्रन्थ 'ऐंशियण्ट इण्डियन हिस्टोरिकल ट्रेडीशन' पुराणोंके अनुसार ऐतिहासिक महत्त्वको विद्वानोंके सामने इस प्रकारसे प्रमाणभूत तथा यथार्थ सिद्ध करता है कि आज पौराणिक अनुश्रुतियाँ पूर्ववत् अविश्वासपूर्ण नहीं मानी जाती हैं।

दो-एक उदाहरण यहाँ देना अप्रासङ्गिक न होगा। पुराणोंमें राजा बिम्बसारके चार पुत्रोंका उल्लेख मिलता है, जब कि कुछ समय पहलेके इतिहासकार केवल एक ही गौतमीपुत्रका अस्तित्व मानते थे। किंतु पुनः खुदाईमें प्राप्त हुई मुद्राओंसे इस बातकी पुष्टि हुई कि उसके चार अन्य पुत्र थे।

इसी प्रकार आन्ध्रोंके विषयमें भी पौराणिक अनुश्रुतियोंकी प्रामाणिकता सिद्ध हो चुकी है। शिशुनाग, नन्द, शुङ्ग, कण्व, मित्र, नाग, आन्ध्र तथा आभीर इत्यादि राजवंशोंकी समय ऐतिहासिक सामग्रीके उपलब्धि पुराणोंकी देन है।

पुराणोंकी अनुश्रुतियोंमें सूतोंने राजाओंकी वंशावलियोंको बड़ी सावधानीसे सुरक्षित रखा है। जहाँ-कहीं इन वंशावलियोंमें एक ही नामके अनेक राजाओंका वर्णन आता है, वहाँ सूतोंने इन नामोंसे होनेवाले भ्रमको दूर करनेके लिये स्पष्ट विभाजन किया है, यथा—नैषध-नल और इक्ष्वाकु-नल, करंधमका पुत्र मरुत्त तथा अविक्षित्‌का पुत्र मरुत्त। इसी प्रकारसे ऋक्ष, परीक्षित् तथा जनमेजय दो-दो और भीमसेन तीन हुए हैं। परंतु यह उल्लेख पुराणोंमें इतनी सफाईसे किया गया है, जिससे मानना पड़ता है कि यह वर्णन पुराणकारोंके ऐतिहासिक एवं यथार्थ ज्ञानका परिचायक है। सच तो यह है कि यदि अबतकके शिलालेखों, ताम्रपत्रों या मुद्राओंके आधारपर इनकी पुष्टि नहीं हुई है तो यह असम्भव नहीं है कि भविष्यकी खोजें उसकी पुष्टि कर सकें।

पौराणिक वंशावलियोंमें सूर्यवंशका बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। यही वह वंश है, जिसमें धार्मिक एवं राजनीतिक क्षेत्रोंमें चमकनेवाले अनेक नक्षत्र प्रकट हुए हैं।

धार्मिक क्षेत्रमें ऋषभदेवजी, श्रीरामचन्द्रजी, सिद्धार्थ गौतम बुद्ध, सिद्धार्थ-कुमार वर्धमान महावीर स्वामी, दशमेश-पिता गुरु गोविन्दसिंह, गुरु जम्भेश्वरजी (विश्नोई गुरु), सिद्ध पीर गोगादेवजी, सत्यवादी हरिश्चन्द्र तथा भगीरथ आदिके नाम उल्लेखनीय हैं।

इसी प्रकार राजनैतिक इतिहासके आकाशमें चमकनेवाले नक्षत्र-सदृश महाराणा प्रतापसिंह, राजरानी मीराबाई, महारानी पद्मावती, इन्हींके वंशज छत्रपति शिवाजी महाराज, भारतके अन्तिम प्रतापी सम्राट् पृथ्वीराज चौहान, अग्रवाल-वंशके आदि पुरुष महाराजा अग्रसेनजी, वीर वैरागी लक्ष्मणसिंह, बन्दा बहादुर तथा अंशी व मनोंके सिद्धहस्त कलाकार राजा भोजको कौन भुला सकता है।

इसी प्रतापी सूर्यवंशका वर्णन विष्णुपुराणके चतुर्थ पर यह अकिंचन अग्रलिखित कुछ पंक्तियोंमें करनेका प्रयास करता है। इस विषयमें महाकवि कालिदासका रघुवंशमें कथन है—

क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः।
तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम्॥
(सर्ग १।२)

आदिकवि वाल्मीकि कहते हैं—

सर्वा पूर्वमियं येषामासीत् कृत्स्ना वसुंधरा।
प्रजापतिमुपादाय नृपाणां जयशालिनाम्॥
इक्ष्वाकूणामिदं तेषां राज्ञां वंशे महात्मनाम्।
महदुत्पन्नमाख्यानं रामायणमिति श्रुतम्॥
(वा० रा० १।५।१-३)

सर्वप्रथम भगवान् विष्णु जो अनादिदेव हैं, जिनकी नाभिसे ब्रह्माजीका आविर्भाव हुआ तथा जिनके यहाँ सूर्य हुए, आनेवाली सन्तति इनके ही कारण सूर्यवंशी कहलायी।

सूर्यके प्रतापी पुत्र विवस्वान् मनु हुए, जिनके पुत्र मनु हुए। इनकी ही सन्तान होनेसे सभी—समस्त मनुष्य मानव कहलाते हैं। मनुजीके प्रतापी पुत्र जो भगवान् विष्णुके अंशावताररूपमें उत्पन्न हुए, इक्ष्वाकुकुल-संस्थापक ऋषभदेवजीके नामसे लोकविख्यात हैं, उन्हें श्रमण विचारधाराके जैनमतावलम्बी लोग भी प्रथम तीर्थंकर मानते हैं। विकुक्षि इनके ज्येष्ठ पुत्र थे जिनका शशाद या शशांक नाम भी प्रचलित है। ये अयोध्याके शासक बने तथा इनके कनिष्ठ भ्राता निमि मिथिलाके संस्थापक हुए। जैनलोग इन निमि महाराजको भी अपना एक तीर्थंकर मानते हैं। इन्हींकी बाईसवीं पीढ़ीमें सीताके पिता महाराज सीरध्वज जनक हुए हैं।

विकुक्षिकी पाँचवीं पीढ़ीमें पृथीराज पृथु और आठवीं पीढ़ीमें श्रावस्ती नगरीके संस्थापक श्रावस्त हुए तथा सत्रहवीं पीढ़ीमें महाराज प्रतापी सम्राट् मान्धाता हुए हैं। इनका एक विरुद ग्रहोर भी है, क्योंकि ये पेट फाड़कर निकले थे। मान्धाताकी बारहवीं पीढ़ीमें

महाराज त्रिशंकु हुए, जो अपने पुरोहित ऋषि विश्वामित्रके तपोबलसे सदेह स्वर्गारोहण कर गये। इन्हीं महाराज त्रिशंकुकी सन्तान सत्यवादी हरिश्चन्द्र हुए, जिनका नाम दानवीरों तथा सत्यवादियोंमें सर्वप्रथम लिया जाता है।

राजा हरिश्चन्द्रकी बारहवीं पीढ़ीमें महाराज दिलीप हुए, जिन्होंने गुरुकी गायकी रक्षाके लिये अपना शरीर सिंहको देनेका प्रस्ताव किया था। दिलीपके पुत्र भगीरथ हुए, जो पुण्य सलिला गङ्गाजीको धराधामपर लाये। भागीरथी नदी इनका अमर स्मारक है। इन्हीं भगीरथकी पाँचवीं पीढ़ीमें प्रतापी अम्बरीष हुए और आठवीं पीढ़ीके राजा ऋतुपर्ण, दमयन्तीपति नलके समकालीन थे। सत्रहवीं पीढ़ीमें उत्पन्न राजा खट्वाङ्गने देवासुर-संग्राममें देवपक्षकी ओरसे भाग लेकर अपनी वीरता दिखायी। इन्हीं खट्वाङ्गके पौत्र हुए महाराज रघु, जिनके कारण इनके वंशज रघुवंशी कहलाये। इसी रघुकुलके विषयमें रामचरितमानसमें लिखा गया है—'रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाहुँ बरु बचनु न जाई॥' महाराज रघुके पौत्र राजा दशरथ थे, जिनके यहाँ भगवान् विष्णुने श्रीरामचन्द्रजीके रूपमें सातवाँ अवतार लिया था।

श्रीराम सूर्यकी छाछठवीं, ऋषभदेवकी चासठवीं, हरिश्चन्द्रकी तैंतीसवीं तथा भगीरथकी इक्कीसवीं पीढ़ीमें हुए थे। भगवान् रामके परमपवित्र जीवन चरित्रको कौन ऐसा भारतीय होगा जो न जानता हो। आपका उदात्त चरित्र देशों, धर्मों तथा जातियोंकी सीमाओंको लाँघकर भारतके बाहर भी समानरूपसे लोकप्रसिद्ध है। अनेक पाठकोंको यह जानकर आश्चर्य होगा कि विश्वके सबसे बड़े मुस्लिम राष्ट्र इण्डोनेशिया, विश्वके सर्वाधिक जनसंख्यावाले देश चीन, विश्वके एकमात्र हिन्दूराष्ट्र नेपाल, एशियाके इकलौते ईसाई राष्ट्र फिलीपीन्स तथा विश्वके सभी बौद्धराष्ट्रोंकी अपनी-अपनी सम्पत्ति राम-कथाएँ हैं। सभीमें स्थानीय पुटके कुछ एक स्थलोंको छोड़कर मूल कथा वही है, जो वाल्मीकिरामायणकी है। ऐसा लगता है कि इस बातको हजारों वर्ष पूर्व भविष्य-द्रष्टा वाल्मीकिजीने भाँपकर ही यह लिखा था—

यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।
तावद्रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति॥

भारतीय राजनीतिमें महाराज रामचन्द्रजीका रामराज्य आज भी एक आदर्श बना हुआ है।

श्रीरामचन्द्रजीके दो पुत्र हुए, जिनमें कनिष्ठ लव थे जो श्रावस्तीके शासक बने। इनकी तिरासीवीं पीढ़ीमें राजा कर्ण हुए हैं, जिनके विषयमें प्रचलित धारणा है कि श्राद्धोंका प्रचलन आपके ही द्वारा किया गया और इसीलिये श्राद्ध कर्णागत (कनागत) भी कहे जाते हैं। महाराज लवकी सत्तावनवीं पीढ़ीमें सिद्धार्थ हुए, जिनके कनिष्ठ पुत्र वर्धमान महावीरके नामसे विख्यात हुए। आपने श्रमण विचारधाराको समुचितरूपसे अनुगुम्फित कर वर्तमान जैनमत-का प्रवर्तन किया है। (इसी वंशसे आगे चलकर जोधपुर, बीकानेर तथा ईडर (गुजरात) और किशनगढ़ आदि राजघरानोंका निर्गम हुआ था)।

श्रीरामचन्द्रजीके ज्येष्ठ पुत्र महाराज कुश अयोध्याके राजा बने। इस वंशमें कुशकी पचासवीं पीढ़ीमें राजा बृहद्बल हुए। उन्होंने महाभारतके युद्धमें कौरवपक्षकी ओरसे लड़ते हुए अभिमन्युके हाथों वीरगति प्राप्त की। राजा बृहद्बलके बाद उनका पुत्र बृहत्क्षय सिंहासनारूढ़ हुआ और पाण्डवोंसे उसकी मैत्री हुई। राजा बृहद्बलकी बाइसवीं पीढ़ीमें राजा संजय हुए। इनके एक राजकुमार आगे चलकर मार्ग भूलकर महर्षि गौतमके आश्रममें रहने लगे। वहाँ शाक-भूमिका बड़ा भारी वन था। अतः ये राजकुमार तथा इनका परिवार शाक्यनाम

प्रसिद्ध हुआ। महाकवि अश्वघोष (ईसापूर्व प्रथम शती) ने 'सौन्दरनन्द'में लिखा है—

शाकवृक्षप्रतिच्छन्नं वासं यस्माच्च चक्रिरे।
तस्मादिक्ष्वाकुवंश्यास्ते भुवि शाक्या इति स्मृताः॥

इक्ष्वाकुवंशी रघुकुलवाले क्षत्रियोंकी यह शाखा शाक्यके साथ-साथ गौतम भी कहलायी, क्योंकि—

तेषां मुनिरुपाध्यायो गौतमः कपिलोऽभवत्।
गुरुगोत्रादतः कौत्सास्ते भवन्ति स्म गौतमाः॥
(वही)

इन्हीं राजपुत्रोंने कालान्तरमें गुरु कपिलकी स्मृतिमें एक नगर बसाकर उसका नाम कपिलवस्तु रखा और उसे अपनी राजधानी बनायी। शाक्यराजके वंशमें महाराज शुद्धोदन एवं पट्टमहिषी मायादेवीके यहाँ मानवजातिको जरा, रोग, बुढ़ापा और मृत्युके भयसे मुक्तिका मार्ग दिखानेके लिये राजकुमार सिद्धार्थके रूपमें भगवान् विष्णुका अवतरण हुआ। ये शाक्य-सिंह भगवान् बुद्धके नामसे विख्यात हुए। वैष्णव लोगोंके साथ-साथ देश एवं पूर्व एशियाके करोड़ों अन्य लोग भी आपको भगवान् मानकर पूजा करते हैं। थोड़े ही समय तक राजवैभव एवं गृहस्थाश्रमका उपभोग करके आप संन्यासी हो गये।

आपके पुत्र राजकुमार राहुल हुए। विष्णुपुराणमें यह वंशावली आगे भी चलती है। राहुलके बाद प्रसेनजित, क्षुद्रक, कुण्डक, सुरथ और सुमित्र नामक राजा हुए। इसके बाद इस राजवंशका वर्णन पुराणोंमें नहीं है। ऐसे तो इस वंशके लाखों लोग अब भी नेपाल एवं भारतमें वर्तमान हैं।

यहाँ हमने बहुत ही संक्षेपमें प्रतापी सूर्यवंशका वर्णन किया है। यह वर्णन पुराणोंमें पर्याप्त विस्तारसे दिया हुआ है। जिज्ञासु विद्वान् वहाँसे देख सकते हैं। पुराणोंसे आगेके राजवंशोंका वृत्तान्त अन्य ऐतिहासिक ग्रन्थोंमें भरे पड़े हैं।

सुमित्रान्त सूर्यवंश

सूर्यवंशीय राजवंशोंका वृत्तान्त 'बृहद्बल'के बाद आनेवाले सुमित्रतक जाता है। उसमें उनतीस राजाओंकी नामावली आती है। उस नामावलीमें सुमित्र अन्तिम राजा है। वायुपुराणमें भविष्यके राजाओंका आदिपुरुष प्रथम बृहद्रथको कहा गया है और अन्य पुराणोंमें बृहद्बलको। इसी प्रकार विभिन्न पुराणोंकी उन नामावलियोंकी आलोचना करनेसे यह स्पष्ट हो जाता है कि क्रममें और नामोंमें भी थोड़ा-बहुत परिवर्तन अवश्य हुआ है। महाभारत-संग्राममें कोशलाधिपति बृहद्बल भी सम्मिलित हुआ था और यह अभिमन्युके हाथोंसे मारा गया—यह महाभारत युद्धमें योग देनेवाले राजाओंकी सूचीसे स्पष्ट है। उसमें भी अनेक नाम ऐसे हैं जो किसी कारण-विशेषसे इतिहासमें प्रसिद्ध हैं, परन्तु अधिकतर अप्रसिद्ध ही हैं। विष्णुपुराण (४।२२।१३) में राजाओंके नाम गिनानेके बाद यह श्लोक आया है—

इक्ष्वाकूणामयं वंशस्सुमित्रान्तो भविष्यति।
यतस्तं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ॥

अर्थात् इक्ष्वाकुओंके वंशका अन्तिम राजा 'सुमित्र' होगा, जिसके बाद इस वंश (सूर्यवंश) की स्थिति कलियुगमें ही समाप्त हो जायगी। इसका तात्पर्य यह है कि इस वंशका अन्तिम प्रतापी राजा सुमित्र होंगे, किंतु आज भी भारतमें सूर्यवंशीय परम्परा सर्वथा टूटी नहीं है—चल रही है।

भगवान् भुवनभास्कर और उनकी वंश-परम्पराकी ऐतिहासिकता

(लेखक—डॉ० श्रीरञ्जनजी, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

भारतीय देवी-देवताओंके जन्म, उनके माता पिता, जाति-वंश और कर्म आदिका इतिहास हमारे प्राचीन साहित्यमें उपलब्ध होता है। यह सब कुछ आगम और अनुमानके आधारपर ही है। देवताओंके अस्तित्वकी सिद्धि कहीं आगमसे और कहीं अनुमानसे प्राप्त होती है। ये इनके अस्तित्वको सिद्ध करते हैं। कहीं-कहीं प्रत्यक्ष प्रमाणसे भी इनके अस्तित्वको सिद्ध किया जाता है। यह सत्य भी है कि जो समस्त शरीरधारियोंद्वारा देखा जाता है, वह अवश्य ही प्रमाण है। इस प्रकार आगम, अनुमान और प्रत्यक्ष प्रमाणके आधारपर देवी देवताओंका अस्तित्व भारतीय संस्कृतिमें स्वीकार किया जाता है। शाम्ब और भगवान् वासुदेवके वार्तालापसे यह बात सिद्ध होती है। इस परिप्रेक्ष्यमें शाम्बकी जिज्ञासा बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। अत उन्होंने भगवान् वासुदेवसे अपनी उत्कण्ठा प्रकट कर दी—

> या चाक्षगोचरा काचिद्विशिष्टेष्टफलप्रदा।
> तामवादौ ममाचक्ष्व कथयिष्यस्यथापराम्॥
> (भविष्यपुराण प्रथम भाग सप्तमी कल्प अ० ४८। २०)

अर्थात् जो देवता नेत्रोंके गोचर हों और विशिष्ट अभीष्ट प्रदान करनेवाले हों, उन्हींके विषयमें पहले मुझे बताइये। इनके अनन्तर अन्य देवताओंके विषयमें वर्णन करनेकी कृपा करेंगे। फिर तो भगवान् वासुदेवने शाम्बको बतलाया—

> प्रत्यक्षं देवता सूर्यो जगच्चक्षुर्दिवाकरः।
> तस्मादभ्यधिका काचिद्देवता नास्ति शाश्वती॥
> यस्मादिदं जगज्जातं लयं यास्यति यत्र च।
> कृतादिलक्षणः कालः स्मृतः साक्षाद्दिवाकरः॥
> ग्रहनक्षत्रयोगाश्च राशयः करणानि च।
> आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ वायवोऽनलः॥
> शक्रः प्रजापतिः सर्वे भूर्भुवः स्वस्तथैव च।
> लोकाः सर्वे नगा नागाः सरितः सागरास्तथा॥
> भूतग्रामस्य सर्वस्य हेतुर्दिवाकरः।
> अस्येच्छया जगत्सर्वमुत्पन्नं सचराचरम्।
> स्थिरं प्रवर्तते चैव स्वार्थे चानुप्रवर्तते॥
> प्रसादादस्य लोकोऽयं चेष्टमानः प्रदृश्यते।
> अस्मिन्नभ्युदिते सर्वमुदेत्यस्तमिते मति॥
> तस्मादेतत् परं नास्ति न भूतं न भविष्यति।
> यो वै वेदेषु सर्वेषु परमात्मेति गीयते॥
> इतिहासपुराणेषु अन्तरात्मेति गीयते।
> बाह्यात्मेति सुषुम्णास्थः स्वप्नस्थो जाग्रतः स्थितः॥

अर्थात् प्रत्यक्ष देवता सूर्य हैं। ये इस समस्त जगत्के नेत्र हैं। इन्हींसे दिनका सृजन होता है। इनसे भी अधिक निरन्तर रहनेवाला कोई भी देवता नहीं है। इन्हींसे यह जगत् उत्पन्न हुआ है और अन्त समयमें इन्हींमें लयको प्राप्त होगा। कृतादि लक्षणवाला यह काल भी दिवाकर ही कहा गया है। जितने भी ग्रह, नक्षत्र, योग, राशियाँ, करण, आदित्य-गण, वसुगण, रुद्र अश्विनीकुमार, वायु, अग्नि शक्र, प्रजापति, समस्त भूर्भुव स्व आदि लोक, सम्पूर्ण नग, नाग, नदियाँ, समुद्र और समस्त भूतोंका समुदाय है—इन सभीके हेतु दिवाकर ही हैं। इन्हींकी इच्छासे यह सम्पूर्ण चराचर जगत् उत्पन्न हुआ है। इन्हींसे यह जगत् स्थित रहता, अपने अर्थमें प्रवृत्त होता तथा चेष्टावान् होता हुआ दिखलायी पड़ता है। इनके उदय होनेपर सभीका उदय होता है और अस्त होनेपर सब अस्तमित हो जाते हैं। जब ये अदृश्य होते हैं तो फिर कुछ भी दिखलायी नहीं पड़ता। तात्पर्य यह है कि इनसे श्रेष्ठ कोई देवता न है, न हुआ है और न भविष्यमें होगा ही। अत समस्त वेदोंमें 'परमात्मा' नामसे ये पुकारे जाते हैं। इतिहास और पुराणोंमें इन्हें अन्तरात्मा इस नामसे कहा जाता है। ये बाह्यात्मा सुषुम्णामें स्वप्न और जाग्रत् स्थितिमें होकर रहते हैं। इस प्रकार ये भगवान् सर्वान्तर .

अजन्मा हैं, फिर भी एक जिज्ञासा अन्तस्तलको उत्प्रेरित करती रहती है—उनका जन्म कैसे हुआ, कहाँ हुआ और किसके द्वारा हुआ। यह बात ठीक है कि वे परमात्मा हैं तो उनका जन्म कैसा? परंतु उनका अवतार तो होता ही है। गीताकी पंक्तियाँ साक्षी हैं—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
(४।७)

तो उनका क्या अवतार हुआ? उन्होंने क्या जन्म ग्रहण किया? 'हाँ और नहीं' के ऊहापोहमें हमें प्राचीन साहित्यकी ओर जाना आवश्यक है। अतः आगे चलें। मत्स्यपुराणमें कहा गया है—

मानसं वाचिकं वापि कायजं यच्च दुष्कृतम्।
सर्वं सूर्यप्रसादेन तदशेषं व्यपोहति॥

अर्थात् मनुष्यके मानसिक, वाचिक अथवा शारीरिक जो भी पाप होते हैं, वे सब भगवान् सूर्यकी कृपासे निःशेष नष्ट हो जाते हैं। भगवान् भुवन-भास्करकी जो आराधना करता है, उसे मनोवाञ्छित फल प्राप्त होते हैं।

इतिहासप्रसिद्ध देवासुरसंग्राममें दैत्य-दानवोंने मिलकर देवताओंको हरा दिया। तबसे देवता मुख छिपाए अपनी प्रतिष्ठा रखनेके लिये सतत प्रयत्नशील थे। देवताओंकी माँ अदिति प्रजापति दक्षकी कन्या थीं। उनका विवाह महर्षि कश्यपसे हुआ था। इस हारसे अत्यन्त दुःखी होकर उन्होंने सूर्यकी उपासना आरम्भ की। सोचा, भगवान् सूर्य भक्तोंको असाम फल देते हैं। मत्स्यपुराणमें कहा गया है—

उपवासेनापि यद्भानोः पूजया प्राप्यते फलम्।
यज्ञैरन्यैर्विविधैर्न तत् मनुजानैरपि॥
(मत्स्यपुराण ९७।६१)

अर्थात् यदि कोई भगवान् सूर्यका तो एक दिनके पूजनसे यह फल देते हैं, जो शास्त्रोक्त विधिसे युक्त सवाँगों यज्ञोंके अनुष्ठानसे भी नहीं मिल सकता। माता अदिति भगवान् सूर्यकी निरन्तर उपासना करती—'भगवन्! आप मुझपर प्रसन्न हों। गोपते (किरणोंके स्वामिन्)! मैं आपको भलीभाँति नहीं जानती। दिवाकर! आप ऐसी कृपा करें, जिससे मुझे आपके स्वरूपका सम्यक् दर्शन हो सके। भक्तोंपर दया करनेवाले प्रभो! मेरे पुत्र आपके भक्त हैं। आप उनपर कृपा करें। प्रभो! मेरे पुत्रोंका राज्य एवं यज्ञभाग दैत्य एवं दानवोंने छीन लिया है। आप अपने अंशसे मेरे गर्भद्वारा प्रकट होकर पुत्रोंकी रक्षा करें।' तब भगवान् सूर्य प्रसन्न हो गये। उन्होंने कहा—'देवि! मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूँगा। मैं अपने हजारवें अंशसे तुम्हारे उदरसे प्रकट होकर पुत्रोंकी रक्षा करूँगा।' इसके पश्चात् भगवान् भास्कर अन्तर्धान हो गये।

माता अदिति निश्चिन्त होकर भगवान् सूर्यकी आराधनामें तल्लीन हो यम-नियमसे रहने लगीं। कश्यपजी इस समाचारको पाकर अत्यन्त प्रफुल्लित हुए। समय पाकर भगवान् सूर्यका जन्म अदितिके गर्भसे हुआ। इस अवतारको भारतीय साहित्यमें मार्तण्डके नामसे पुकारा जाता है। देवतागण भगवान् सूर्यको भाईके रूपमें प्राप्तकर बहुत ही प्रसन्न हुए। अग्निपुराणमें कहा है कि भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे ब्रह्माजीका जन्म हुआ। ब्रह्माजीके पुत्रका नाम मरीचि है। मरीचिसे महर्षि कश्यपका जन्म हुआ। ये ही महर्षि कश्यप सूर्यके पिता हैं।

सूर्यदेव युवावस्थामें होनेपर उनका विवाह-संस्कार हुआ। उन्होंने क्रमसे तीन विवाह किये। संज्ञा, राज्ञी और प्रभा—उनकी ये तीन धर्मपत्नियाँ हैं। राज्ञी रैवतकी पुत्री हैं। इनसे रैवत नामका पुत्र हुआ। प्रभासे सूर्यको प्रभातनामक पुत्रकी प्राप्ति हुई। इसमें संज्ञाकी कहानी बड़ी रोचक है। उसे हम पाठकोंके समक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं।

शिल्पाचार्य विश्वकर्माकी पुत्रीका नाम संज्ञा था। संज्ञाका परिणय भगवान् सूर्यसे हुआ। संज्ञाके गर्भसे वैवस्वत मनुका जन्म हुआ। उन्हींसे सूर्यको जुड़वी संतान—यम और यमुना भी प्राप्त हुई। कहते हैं देवशिल्पी विश्वकर्माकी पुत्री संज्ञा सूर्यके तेजको सहन करनेमें अपनेको असमर्थ पा रही थी। अतः वे एक दिन मनके समान गतिवाली घोड़ीका रूप धारण कर उत्तरकुरु (हरियाणा)में चली गयीं। जाते समय उसने सूर्यके घरमें अपनी प्रतिच्छाया प्रतिष्ठापित कर दी। सूर्यको यह रहस्य ज्ञात नहीं हो पाया। अतः प्रतिच्छायासे भी सूर्यको पुत्र सावर्णिमनु और शनि तथा कन्या तपती और विष्टि नामक संतानें प्राप्त हुईं। इन बालकोंपर सूर्यका अगाध प्रेम था। किसीको भी यह रहस्य मालूम नहीं हुआ कि इन बच्चोंकी माँ एक नहीं, दो हैं। पर विधाताके विधानको तो देखें, एक दिन छायाके विषमतापूर्ण व्यवहारका भण्डाफोड़ हो गया। संज्ञाके पुत्रोंने शिकायत की। अतः भगवान् भास्कर क्रोधसे तमतमा उठे। उन्होंने कहा—'भामिनि! अपने पुत्रोंके प्रति तुम्हारा यह व्यवहार उचित नहीं है।' पर इससे क्या होता। प्रतिच्छाया संज्ञा पुत्रोंके साथ अपने व्यवहारमें कोई परिवर्तन नहीं कर पायी। तब निराश होकर महापुत्र यमराजने बात स्पष्ट कर दी, कहा—'तात! यह हम लोगोंकी माता नहीं है। इसका व्यवहार हमलोगोंके साथ विमाताके समान है, क्योंकि यह तपती और शनिके प्रति विशेष प्यार करती है।' फिर तो गृहकलह छिड़ गया। पति-पत्नी दोनोंने क्रुद्ध होकर यमको शाप दे दिया। अपने शापवाक्योंमें जो दिया, वह जगत्प्रसिद्ध यमराज और शनिके द्वारा हमें प्राप्त है। तब माता छायाने यमको शाप दे दिया—'तुम आज ही प्रेतोंके राजा होओगे।' भगवान् सूर्य इस बातसे दुःखित हुए। अतः उन्होंने अपने तेजोबलसे इसका सुधार किया, जिससे वे आज यम धर्मराजके रूपमें पाप-पुण्यका निर्णय करते हैं और स्वर्गमें उनकी प्रतिष्ठा है। साथ ही सूर्यका छायाके प्रति क्रोध भी शान्त नहीं हुआ। प्रतिशोधकी भावनासे छायाके पुत्र शनिको उन्होंने शाप दिया—'पुत्र! माताके दोषसे तुम्हारी दृष्टिमें क्रूरता भरी रहेगी।' यही कारण है कि शनिके कोपभाजन होनेसे प्रायः हमारा अहित होता रहता है।

अब भगवान् सूर्य ध्यानावस्थित होकर संज्ञाका पता लगानेका प्रयत्न करने लगे। ध्यानावस्थामें उन्होंने देखा—'संज्ञा उत्तरकुरुदेश (हरियाणा)में घोड़ीका रूप बनाकर विचरण कर रही है।' अतः तत्काल उन्होंने अश्वका रूप धारण कर संज्ञाका साहचर्य प्राप्त किया। कहते हैं—संज्ञाके गर्भमें आम-विजयी प्राण और अपान पहलेसे ही विद्यमान थे। फिर तो समय पाकर वे सूर्यदेवके तेजसे मूर्तिमान् हो उठे। इस प्रकार घोड़ी-रूपधारी विश्वकर्माकी पुत्री संज्ञासे दो पुरुष-रत्नकी उत्पत्ति हुई। यही दो पुरुष-रत्न अश्विनीकुमारके नामसे विख्यात हैं। बात यहीं समाप्त नहीं होती है। संज्ञा सूर्यकी पराशक्ति है, पर सूर्यके तेजको सहन करनेमें वह अपनेको बराबर असमर्थ पाती रही। तदनन्तर पिता विश्वकर्माने सूर्य-देवके तेजका हरण किया, तब कहीं सूर्य और संज्ञा—ये दोनों एक साथ रहने लगे। इस प्रकार सब मिलाकर भगवान् सूर्यके दस पुत्र और तीन पुत्रियाँ हुईं।

अब सूर्य-पुत्रोंके कुटुम्बका वृत्तान्त भी प्रस्तुत है—

वैवस्वत मनुके दस पुत्र हुए। उनके नाम इस प्रकार हैं—इक्ष्वाकु, नाभाग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, प्रांशु, नृग, दिष्ट, करूष और पृषध्र। ये सभी पिताके समान तेजस्वी और धर्मशाली थे। मनुकी इला नामकी एक कन्या भी थी। इसका विवाह बुधसे हुआ। इन्हींसे पुरूरवाका जन्म हुआ। इसके बाद इलाने अपनेको पुरुष रूपमें परिणत कर लिया। पुरुषरूपमें इसका नाम सुद्युम्न हुआ। सुद्युम्नके तीन धर्मात्मा पुत्र हुए—उत्कल, गय और विनताश्व।

नाभागसे परम वैष्णव अम्बरीषका जन्म हुआ। धृष्टसे धार्ष्टक वंशका विस्तार हुआ है। शर्यातिको सुकन्या और आनर्त नामकी संतानें प्राप्त हुईं।

इन दस पुत्रोंमें इक्ष्वाकुकी वंशपरम्परा ही पृथ्वीपर विद्यमान है। शेष नौ पुत्रोंकी कहानी एक या दो पीढ़ियोंके बाद समाप्त हो गयी। इक्ष्वाकु वंशको यहाँ संक्षिप्तमें प्रस्तुत किया जा रहा है।

इक्ष्वाकुके पुत्र विकुक्षि थे। ये कुछ समयतक देवताओंके राज्यपर आधिपत्य जमाये रहे। इनके पुत्रका नाम ककुत्स्थ था। ककुत्स्थसे पृथु, पृथुसे युवनाश्व और युवनाश्वसे श्रावस्तक हुए। इसीने श्रावस्तक नामकी नगरी बसायी। श्रावस्तकसे बृहदश्व और बृहदश्वसे कुवलाश्व हुए। इनका दूसरा नाम धुन्धुमार भी है, क्योंकि इन्होंने धुन्धुमार नामके दैत्यका वध किया था। इनके तीन पुत्र हुए—दृढाश्व, दण्ड और कपिल। दृढाश्वसे हर्यश्व और प्रमोदकका जन्म हुआ। हर्यश्वसे निकुम्भ और निकुम्भसे संहताश्वकी उत्पत्ति हुई। संहताश्वके दो पुत्र हुए—अकृशाश्व और रणाश्व। रणाश्वके पुत्रका नाम युवनाश्व था। युवनाश्वके पुत्र राजा मान्धाता थे। मान्धाताके दो पुत्र-रत्न प्राप्त हुए—पुरुकुत्स और मुचुकुन्द।

पुरुकुत्ससे त्रसदस्युका जन्म हुआ। इनका दूसरा नाम सम्भूत था। इनके पुत्रका नाम सुधन्वा था। सुधन्वासे त्रिधन्वा और त्रिधन्वासे तरुण हुए। तरुणसे सत्यव्रत और सत्यव्रतसे दानवीर महापराक्रमशाली हरिश्चन्द्रका जन्म हुआ। हरिश्चन्द्रसे रोहिताश्व, रोहिताश्वसे वृक, वृकसे बाहु और बाहुसे राजा सगरकी उत्पत्ति हुई। राजा सगरकी दो पत्नियाँ थीं। एकका नाम प्रभा और दूसरीका नाम भानुमती था। प्रभाको और्व मुनिकी कृपासे साठ हजार पुत्र हुए और भानुमतीसे राजा सगरको द्वारा असमंजस नामका एक पुत्र हुआ। असमंजसके पुत्र अंशुमान और अंशुमानके राजा दिलीप हुए। राजा दिलीपके पुत्र भगीरथ हुए। ये राजा सगरके साठ हजार पुत्रोंके उद्धारके लिये गङ्गाको धरतीपर लाये। कहते हैं, राजा सगरके साठ हजार पुत्र महर्षि कपिलके शापवश पृथ्वी खोदते समय भस्म हो गये थे।

भगीरथसे नाभाग, नाभागसे अम्बरीष और अम्बरीषसे सिंधुद्वीपका जन्म हुआ। सिंधुद्वीपके श्रुतायु, श्रुतायुके ऋतुपर्ण, ऋतुपर्णके कल्माषपाद, कल्माषपादके सर्वकर्मा और सर्वकर्माके अनरण्य हुए। अनरण्यके निघ्न, निघ्नके दिलीप, दिलीपके रघु, रघुसे अज और अजसे चक्रवर्ती सम्राट् दशरथका जन्म हुआ।

दशरथकी तीन पत्नियाँ थीं। कौसल्या, कैकेयी और सुमित्रा। इनके चार पुत्र हुए—राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न। रामने रावणका वध किया। ये अयोध्याके सर्वश्रेष्ठ राजा हुए। महर्षि वाल्मीकि तथा हिंदीके प्रसिद्ध कवि तुलसीदासजीने इन्हींके चरित्रका वर्णन अपनी-अपनी रामायणमें किया है। श्रीरामका विवाह जनकनन्दिनी जानकीसे हुआ। इनसे रामको दो पुत्र लव और कुश प्राप्त हुए। भरतको तक्ष और पुष्कल, लक्ष्मणको अङ्गद और चन्द्रकेतु, शत्रुघ्नको सुबाहु और शत्रुघाती प्राप्त हुए।

इसके बाद की वंश-परम्परा निम्न प्रकार है—कुशसे अतिथिका जन्म हुआ। अतिथिसे निषध और निषधसे नलकी उत्पत्ति हुई (ये दमयन्तीके पति नहीं हैं)। नलसे नभ, नभसे पुण्डरीक, पुण्डरीकसे सुधन्वा, सुधन्वासे देवानीक, देवानीकसे अहिनाश्व और अहिनाश्वसे सहस्राश्व हुए। सहस्राश्वके पुत्रका नाम चन्द्रलोक था। चन्द्रलोकसे तारापीड, तारापीडसे चन्द्रगिरि और चन्द्रगिरिसे भानुरथ उत्पन्न हुए। भानुरथके पुत्रका नाम श्रुतायु था। इस प्रकार इस वंशका इतिहास बहुत ही बड़ा है। इसके आज कुछ परिवार समाप्त हो गये हैं।

(प्रस्तुत वंशावली अग्निपुराण, भविष्यपुराण, ब्रह्मपुराण, श्रीमद्भागवत, वाल्मीकिरामायण कल्पतरुके भाष्य, अग्निमहापुराण और नरसिंहपुराण-अङ्कके आधारपर तैयार की गयी है।)

सूर्यसे सृष्टिका वैदिक विज्ञान

(लेखक—वेदान्तरत्न ऋषि श्रीरणछोड़दासजी 'उद्धव')

स्वयम्भू प्रजापति इस विश्वप्रवृत्तिके कारण ही 'विश्वकर्मा' कहलाये, जिनकी यह पञ्चपर्वा विश्वविद्या 'त्रिधामविद्या' कहलायी है। स्वयम्भू और परमेष्ठी—इन दो पर्वोंकी समष्टि १—'परमधाम' है, २—सूर्य 'मध्यम धाम' और चन्द्रमा एवं भूमिपिण्ड—इन दोनोंका समुच्चय ३—'अवमधाम' है। तीन धामोंमें एवं पाँच पर्वोंसे समन्वित यह विश्वविद्या विश्वकर्मा स्वयम्भू—प्रजापतिकी 'महिमा-विद्या' भी मानी गयी है। वेदमें कहा है—

> या ते धामानि परमाणि यावमा
> या मध्यमा विश्वकर्मन्नुतेमा।
> शिक्षा सखिभ्यो हविषि स्वधावः
> स्वयं यजस्व तन्वं वृधानः॥
> (ऋक्० १०।८१।५)

अपने सर्वस्व आहुतिवाली सुप्रसिद्ध 'सर्वहुतयज्ञ' की सफलसिद्धिके लिये यही अपने आकर्षणसे स्वयं 'यजस्व तन्वं वृधानः' रूपसे सम्पूर्ण प्राणोंका आवाहन करता है।

तीनों धामोंमें मध्यम धाम 'रविधाम' मानवधर्मके बहुत अनुकूल होता है। वेदमहार्णव स्व० श्रीमधुसूदनजी ओझाने 'धर्मपरीक्षा-पञ्जिका'में सिद्ध किया है कि—

'नियत्यानुगृहीतो मध्यमो भावो धर्मो न काष्ठानुगतो भावः।'

'विधियुक्त मध्यभाव धर्म है, अतिभाव नहीं।'

'सूर्य तो स्थावर-जङ्गम जगत्के आत्मा हैं' इन्हींसे सबकी उत्पत्ति हुई है—'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'
(ऋक्० १।११५।१, यजु० ७।४२)

रविका सम्बन्ध वैश्वानरसे है। वैश्वानर दस कला वाला होनेके कारण विराट्पुरुष है। सम्पूर्ण 'पुरुषसूक्त' केवल इसी वैश्वानरवाले विराट्पुरुषका निरूपण करता है। इसी वैश्वानरकी त्रैलोक्य-व्यापकता बतलाते हुए वेदमहर्षि पुरुषसूक्तमें कहते हैं—

> सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
> स भूमिं सर्वतः स्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्॥
> (यजु० ३१।१)

इस पुरुषके हजारों मस्तक हैं, हजारों आँखें हैं, हजारों पैर हैं। वह भूमिका सब ओरसे स्पर्श (व्याप्त) कर (अध्यात्ममें) दशाङ्गुलका अतिक्रमण कर (दस अङ्गुलवाले प्रादेशमात्र) अर्थात् अंगूठेसे तर्जनीतककी लम्बाईके स्थानमें स्थित हो गया है।'

सूर्य स्थावर-जङ्गम सृष्टिकी आत्मा है— यदि ज्ञानप्रधान सूर्यका तेजोमय वीर्य बहुत थोड़ी मात्रामें पृथ्वीके वैश्वानर अग्निमें आहुत होता है, तो अर्थ प्रधान अचेतनसृष्टि होती है। इस सृष्टिमें दोनों ही भाग हैं, परंतु विशेषता पृथ्वीके भागकी ही है। इसकी प्रबलताके कारण अल्पमात्रामें आनेवाला सूर्यका तेज दब जाता है। इस सृष्टिमें जैसे सूर्यका ज्ञानभाग दबा हुआ है, उसी प्रकार अन्तरिक्ष वायुका भाग भी दबा हुआ ही है। इसीलिये अचेतनमें अपने स्वरूपकी वृद्धि नहीं है। पहले स्वरूपसे आगे बढ़ना 'व्यापार' है, व्यापार क्रिया है, क्रिया अन्तरिक्षकी वायुका धर्म है, उसका इसमें अभाव है अतः यह अचेतन जैसाका तैसा ही रहता है। काँच, अभ्रक (भोडल), सोना, हीरा, नीलम, माणिक्य (लाल), पुखराज, लोहा, ताँबा, चाँदी, सोना, हरताल, पत्थर और [illegible]

(पारा) आदि सम्पूर्ण जड़ पदार्थ अर्थप्रधान हैं। वैश्वानर—अग्निमय है।

जगत् अग्नीषोमात्मक है। जैसे अङ्गिराप्रधान आग्नेयप्राण प्राण कहा जाता है, वैसे ही भृगुप्रधान सौम्यप्राण 'रयि' कहलाता है। प्राण अग्नि है और रयि सोम है। इसी अग्नीषोमात्मक प्राण-रयिसे विश्वका निर्माण हुआ है। इनमें सोमरूप रयि ही आगे-आगे होनेवाले सङ्कोचसे मूर्च्छित होता हुई मूर्ति (पिण्ड) बनता है। मूर्च्छित सोम ही 'मूर्ति' है। मूर्ति अर्थ प्रधाना है द्रव्यप्रधाना है। इसका सम्बन्ध वैश्वानरको गर्भमें रखनेवाले सोमसे है। सोमका सम्बन्ध विष्णुसे है, अतएव इस अर्थमयी सृष्टिको अर्थात् 'धातुसृष्टि'को हम 'विष्णु' देवतासे सम्बद्ध मानते हैं। यही अचेतनसृष्टि, असंज्ञ, एकात्मक आदि नामोंसे प्रसिद्ध है। वैश्वानर, तैजस और प्राज्ञ—इन तीनोंमेंसे इनमें केवल पार्थिव 'वैश्वानरात्मा' ही प्रधानरूपसे रहता है।

दूसरी अर्द्धचेतनसृष्टि है। सूर्यका तेज कुछ अधिक आया और अन्तरिक्षकी वायुका भाग भी आया, दोनोंके आगमनसे सृष्टिमें कुछ अधिक विकास हुआ। इन दोनोंमें अर्द्धचेतनसृष्टि हुई। लता (पुष्कर-पर्ण-पानीका पत्ता शराब आदि) वृक्ष, घास, पत्तियाँ, दूर्वादि छोटे तृण और केला, सुपारी नारियल, छुहारा, ताड़ आदि यह तृणवर्ग एवं वृक्षादि सब अर्द्धचेतनसृष्टिके अन्तर्भूत हैं। इसमें अचेतनसृष्टिकी अपेक्षा यद्यपि सूर्यके ज्ञानकी अधिक मात्रा आ गयी है, परंतु इसमें आनेवाला सूर्यका भाग अन्तरिक्षकी वायुसे दब जाता है, इसलिये इसमें भी ज्ञानकी मात्राका पूर्ण विकास होने नहीं पाता। इनमें क्रियारूप वायु है इसलिये ये बढ़ते हैं एवं पृथ्वीका अर्थभाग भी पूर्ण मात्रामें है अतएव ये पृथ्वीसे पृथक् नहीं हो सकते। यही नीचे रहकर ऊपर बढ़ते हैं। इस प्रकार इनमें वैश्वानर और तैजस—इन दो भूतात्माओंकी सत्ता सिद्ध हो जाती है। सुप्तावस्थामें हममें जो ज्ञान है, वही ज्ञान इनमें है। इनमें केवल चमड़ीका विकास है। इस स्पर्शसे ही ये अनुभव करते हैं।

तीसरी चेतनसृष्टि है। कृमि, कीट, पशु, पक्षी, मनुष्य, राक्षस, पिशाच, यक्ष, गन्धर्व आदिका इसमें अन्तर्भाव है। इसमें सूर्यके सर्वज्ञभागका विकास है। इस सृष्टिमें वैश्वानर, तैजस और प्राज्ञ—ये तीनों हैं। दूसरे शब्दोंमें—इनमें ज्ञान, क्रिया और अर्थ—ये तीनों विकसित हैं। ज्ञानमय प्रज्ञाभागके आनेसे चैतन्य जाग्रत हो जाता है। इससे जाग्रत् होनेसे इन्द्रियोंका विकास हो जाता है और सुप्तावस्था दूर हो जाती है। यही जीव-सृष्टि समनस्क एवं ... आत्मावाली आदि नामोंसे प्रसिद्ध है। पहली सृष्टि धातुसृष्टि है, दूसरी सृष्टि मूलसृष्टि है एवं तीसरी सृष्टि जीवसृष्टि है।

वृक्षादि मूलसृष्टिके पैर नहीं हैं, वे स्वयं 'पादप' हैं। पाद ही उनके पालक हैं। उन्हींके द्वारा पृथ्वीके रसका पानकर वे अपनी स्वरूपकी सत्ता रखते हैं। 'पादप' नामसे प्रसिद्ध हो रहे हैं। इस मूलसृष्टि भूपिण्डको नहीं छोड़ता है, अतएव इसे 'असर्पिणी' कहते हैं। पशुओंसे ऊपर (कृमिसे प्रारम्भकर मनुष्य तक) की सृष्टि भूतलके मूलसे अलग हो जाती है। ... सृष्टिके पैरवाली होनेके कारण हम इसे 'सर्पिणी-सृष्टि' कहते हैं। मनुष्योंके ऊपर आठ प्रकारकी देवसृष्टि है। यह भूतलसे पृथक् है, इसलिये इसे हम 'अन्त ...' सकते हैं। प्रारम्भमें अव्यक्त है, अन्तमें अव्यक्त है, मध्यमें व्यक्त है। वृक्षादि सृष्टिका मूलभूमिमें ही ... है, अतएव यह सृष्टि 'मूलसृष्टि' कहलाती है। ... मध्यकी सृष्टि बन्धनसे अलग है, इसलिये यह ... है। इसी अभिप्रायसे माध्यन्दिन-श्रुति कहती है—

'अथ पुरुष—अमूल उभयतः परिच्छिन्नोऽन्तरिक्ष मनुचरति। (शतपथ ब्रा० २।१।१३)

तीसरी सृष्टिकी प्रथम अवस्था कृमि है। यहाँसे उस सर्वज्ञकी चेतनाके विकासका प्रारम्भ है। सूर्यका तेज अधिक होनेके कारण अन्त सञ्ज्ञ जीव भूपिण्डके बन्धनसे अलग हो गये हैं। आकर्षणसे अलग होकर हिलने लगे और चलने लगे हैं। पृथ्वीका बल पहलेकी अपेक्षा कम हो गया है। यह समलोंमें पहली 'कृमिसृष्टि' है।

सर्वज्ञ इन्द्र (सूर्य) प्रज्ञामय (ज्ञानमय) है। अव्ययपुरुषका विकास भी भूमिमें होता है। सूर्य विज्ञानघन हैं। ये ही मघवा—इन्द्र हैं। इसी स्थानपर उस ज्ञानमय पुरुषका विकास है, अतएव ये सूर्यरूप इन्द्र 'प्रज्ञामय' कहलाते हैं। इसी अभिप्रायसे इनके लिये—'प्राणोऽस्मि प्रज्ञात्मा' कहा जाता है। इसी विज्ञानको लक्ष्यमें रखकर केनोपनिषद्में कहा गया है कि 'अग्निके सामने यक्षने तृण रक्खा, परंतु अग्नि उसे न जला सकी, वायु उड़ा नहीं सकी, किंतु जब इन्द्र आये तो तृण और यक्ष दोनों अन्तर्लीन हो गये। इसका तात्पर्य यही है कि वह तृण ज्ञानमय था, यक्ष स्वयं ज्ञानमय था। अर्थप्रधान अग्नि और क्रियाप्रधान वायु—इन दोनोंकी अपेक्षा यक्ष-ज्ञान विजातीय था, इसलिये इन दोनोंका उसमें लय नहीं हुआ, परंतु इन्द्र ज्ञानमय थे, अतएव सजातीयताके कारण वह ज्ञानघन उस महाज्ञानके समुद्रमें विलीन हो गया।

सारांश यही है कि सूर्यका प्राज्ञ इन्द्र अव्ययके ज्ञानसे युक्त है। इन इन्द्रको आधार बनाकर ही अव्यय आत्मा जीवरूपमें परिणत होता है, अतएव सूर्यको ही स्थावर-जङ्गमकी आत्मा बतलाया जाता है—

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।
(ऋ० १।११५।१, यजु० ७।४२)

यह इन्द्रमय अव्यय आत्मा एक प्रकारका सूर्य है। इसका प्रतिबिम्ब केवल अप् (जल), वायु और सोम (विरल जल) पर ही पड़ता है।

'वायुरापश्चन्द्रमा इत्येते भृगवः' (गोपथ पू० २।९)

—के अनुसार यहाँ परमेष्ठी है। इसके शरीरका यही परमेष्ठी 'महान्' है। इसीपर उस चेतनमय सर्वज्ञका प्रतिबिम्ब पड़ता है, महान् ही उसे अपने गर्भमें धारण करता है, अतएव इसके लिये—

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम्।
(गीता १४।३)

—यह कहा जाता है। महान् उसकी योनि है। यह योनि अप्, वायु और सोमके भेदसे तीन प्रकारकी है, अतएव तीन स्थलोंपर ही चेतनाका प्रतिबिम्ब पड़ता है। यही कारण है कि चैतन्यसृष्टि सम्पूर्ण विश्वमें आप्या, वायव्या एवं सौम्याके भेदसे तीन ही प्रकारकी होती है। जलमें रहनेवाले मत्स्य (मछली) मगर, केकड़ा, तिमिङ्गिल आदि सब जलजन्तु आप्यजीव हैं। पानी ही इनकी आत्मा है। बिना पानीके इनका चैतन्य कभी स्थिर नहीं रह सकता। कृमि, कीट, पशु, पक्षी और मनुष्य—ये पाँचों जाति वायव्य हैं। वायु ही इनकी आत्मा है। चन्द्रमामें रहनेवाले पितर प्रकारके देवता सौम्य हैं। ये ही जाति हमारे इस प्रकरणके मुख्य पात्र हैं।

हमारा मस्तक सौरतेजसे और हृदयमें सोमसे भरा हुआ है। इस मनुष्य-सृष्टिके मध्यमें एक 'अर्धमनुष्य'की सृष्टि और होती है, उसी सृष्टिके सूत्र 'वानर' नामसे प्रसिद्ध है। इसमें दोनोंके धर्म हैं। मनुष्य हाथसे खाता है और भोगिभागसे चलता है। पशु मुखसे खाता है और पैरोंसे चलता है। वानरमें दोनों धर्म हैं। इन्हें अपने हाथमें पकड़ कर खाते देखकर इनका रूप हो जाता है और मनुष्योंकी भाँति हाथसे पकड़ कर खा...

एव मनुष्यकी भाँति श्रोणिभागसे बैठ जायगा, वह पशुओंकी भाँति चारों हाथ-पैरोंसे चलता भी है। किंतु मनुष्योंके पूर्वज बंदर नहीं थे। 'डारविन थ्योरी'के अनुयायियोंको हम बतला देना चाहते हैं कि मनुष्यका (इस रूपमें) विकास मानना उनकी कोरी कल्पना ही है। मानव-सृष्टिमें नालच्छेद है, जब कि वानर-सृष्टि नालच्छेदसे अलग है। यह दोनोंमें महान् मौलिक भेद है। 'वानर' (—वानर—विकल्पसे नर—) आधा मनुष्य और आधा पशु कहा जाता है। वानरके बाद मनुष्य-सृष्टिका विकास है। सूर्य और पृथ्वीके दो दलोंके ताल्लुकसे होनेवाली इस भूतसृष्टिका वास्तविक रहस्य सूर्यसे सृष्टि का विज्ञान सिद्ध करता है। वस्तुतः सूर्यसे ही सृष्टि हुई है, इसीलिये कहा गया है कि सभी प्राणी सूर्यसे ही उत्पन्न हैं—

'नूनं जनाः सूर्येण प्रसूताः'

भुवन-भास्कर भगवान् सूर्य

(लेखक—राष्ट्रपति पुरस्कृत डॉ० श्रीकृष्णदत्तजी भारद्वाज, शास्त्री, आचार्य, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

वैदिक साक्ष्य—मधुच्छन्दाके पुत्र महर्षि अघमर्षणने अपने ऋग्वेदीय एक सूक्तमें यह बताया है कि विधाताने सूर्यको पूर्वकल्पकी सृष्टिके अनुसार (इस कल्पके आरम्भमें) बनाया—

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।
(—१० । १९० । ३)

मित्रावरुण-नन्दन महर्षि वसिष्ठने अपने श्रीविष्णु सूक्तमें भगवान् विष्णु (और उनके सखा इन्द्र) को अग्नि, उषा और सूर्यका उत्पादक कहा है—

'उरुं यज्ञाय चक्रथुरु लोकं
जनयन्ता सूर्यमुषासमग्निम्'
(—ऋग्वेद ७ । ९९ । ४)

पुरुष-सूक्तमें कहा गया है कि सूर्यका उद्गम विराट् पुरुष भगवान्के नेत्रसे हुआ था—

'चक्षोः सूर्यो अजायत'
(—ऋग्वेद १० । ९० । १३)

गीताका मत—भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा था कि अग्नि, चन्द्र और सूर्यमें जो प्रकाश है, उसे मेरा ही तेज समझो—

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्॥
(—गीता १५ । १२)

इसपर भाष्य करते हुए आचार्य शङ्करने लिखा है कि 'मामकम्—मदीयं मम विष्णोस्तज्ज्योतिः' और आचार्य रामानुजने लिखा है कि—'एतेषामादित्यादीनां यत्तेजस्तन्मदीयं तेजः, तैस्तैराराधितेन मया तेभ्यो दत्तमिति विद्धि।'

सूर्याधार ध्रुव—सूर्यका आधार ध्रुव है और ध्रुव तारात्मकविग्रह शिशुमारके पुच्छभागमें अवस्थित है। शिशुमारके आधार स्वयं भगवान् नारायण हैं। नारायण उस (शिशुमार) के हृदयमें विराजमान हैं—

(अ) नारायणोऽयनं धाम्नां तस्याधारः स्वयं हरिः।
(आ) आधारः शिशुमारस्य सर्वाध्यक्षो जनार्दनः।
(इ) आधारभूतः सवितुर्ध्रुवो मुनिवरोत्तम।
ध्रुवस्य शिशुमारोऽसौ सोऽपि नारायणात्मकः॥
(—विष्णुपुराण २ । ९ । ४, ५, २१)

श्रीमद्भागवतके निम्नलिखित वचन भी इस प्रसङ्गमें मननीय हैं—

अथास्य [illegible] महापुरुषः [illegible] पुरुषस्याप्रमेयस्य परि [illegible] [illegible]।

केचनैतज्ज्योतिरनीकं [illegible] भगवतो वासुदेवस्य [illegible] यस्य पुच्छाग्रेऽवाक्शिरसः [illegible] [illegible]। (—[illegible])

महर्षियोंद्वारा प्रदक्षिणीकृत—इस जगत्में तेजस्तत्त्व सर्वत्र अनुस्यूत है। कहीं उसकी उपलब्धि न्यून है तो कहीं अधिक। सूर्य-मण्डल तो साक्षात् तेजोमय ही है। चन्द्र, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि आदि ग्रह और हमारी यह पृथ्वी भी सूर्यकी परिक्रमामें सतत निरत है।

भास्करालोकन—उदय होते हुए और अस्त होते हुए अरुणवर्ण सूर्यमण्डलका दर्शन सुगमतासे किया जा सकता है। इन दोनों सन्ध्याओंसे अतिरिक्त दशामें सूर्यकी ओर देखते रहनेसे नेत्रोंमें विकारकी आशङ्का रहती है। इसीलिये भास्करालोकन वर्जित है—

भास्करालोकनाश्लीलपरिवादादि वर्जयेत्।

(याज्ञवल्क्यस्मृति १।२।३३)

आदित्यमण्डलके अधिष्ठाता चेतन देवता—आदित्य-मण्डलके अभिमानी देवता चेतन हैं। वे ही सूर्य हैं, जिन्हें भक्तजन अपनी प्रणामाञ्जलियाँ समर्पित किया करते हैं। भौतिक विज्ञानके विद्वानोंकी दृष्टिमें आदित्य-मण्डल केवल तेज पुञ्ज है, किंतु वेदानुयायी सनातनधर्मकी मान्यताके अनुसार आदित्यके अभिमानी देवता सूर्य चेतन हैं—

ज्योतिरादिविषया अपि आदित्यादयो देवता वचना शब्दाश्चेतनावन्तमैश्वर्याद्युपेत त त देवता त्मान समर्पयन्ति।

अस्ति ह्यैश्वर्ययोगाद् देवताना ज्योतिराद्यात्म भिश्चावस्थातु यथेष्ट च त त विग्रह ग्रहीतु सामर्थ्यम्।

(ब्रह्मसूत्र १।३।३३ पर शाङ्करभाष्य)

विग्रहवान् भगवान् सूर्य—श्रीसूर्यदेव कश्यप और अदितिके पुत्र हैं। 'अदिति' माताके पुत्र होनेके कारण ये 'आदित्य' कहलाते हैं। इनके विग्रहका वर्ण बन्धूक (दुपहरिया) पुष्पके समान है। ये द्विभुज हैं और पद्म धारण किये रहते हैं। इनकी पुरीका नाम विवस्वती है—

विवस्वास्तु सुरे सूर्ये तन्नगर्यां विवस्वती।

(अमरकोषकी व्याख्या सुधा टीकामें मेदिनीसे उद्धृत)

इनकी संज्ञा-नामिका पत्नीके पुत्र हैं धर्मराज यम और पुत्री हैं यमुना देवी तथा छाया-नामिका पत्नीके पुत्र हैं शनिदेव। माठर, पिङ्गल और दण्ड इनके सेवक हैं, तथा गरुड़जीके भाई अरुण इनके सारथि हैं। इनके रथको सात घोड़े चलाते हैं जिसमें केवल एक पहिया है।

याज्ञवल्क्य-स्मृति (१।१२।२९७-३०२) के अनुसार सूर्यदेवकी प्रतिमा ताँबेकी बनानी चाहिये और इनकी आराधनाका प्रधान मन्त्र 'आ कृष्णेन रजसा वर्तमान'—इत्यादि है। इनकी प्रसन्नताके लिये किये जानेवाले हवनमें आककी समिधाका विधान है।

माणिक्य धारण करनेसे ये शुभ फल प्रदान करते हैं—'माणिक्य तरणे' (—जातकाभरण, स्मृतिकौस्तुभ)।

श्रीसूर्यदेवसे ही महर्षि याज्ञवल्क्यने बृहदारण्यक उपनिषद् (ज्ञान) प्राप्त किया था—

ज्ञेय चारण्यकमह यदादित्यादवाप्तवान्॥

(याज्ञवल्क्यस्मृति ३।४।११०)

तथा पवननन्दन आञ्जनेय श्रीरामदूत हनुमान्‌जीने भी इनसे शिक्षा प्राप्त की थी।

सूर्यका उपस्थान—वैदिक मान्यता जनताके लिये निखिल सन्ध्योपासनाका एक अपरिहार्य अङ्ग है—सूर्योपस्थान, जैसा कि महर्षि याज्ञवल्क्यने दैनिक कर्मोंमें गिनाया है—

स्नानमब्दैवतैर्मन्त्रैर्मार्जन प्राणसयम।
सूर्यस्य चाप्युपस्थान गायत्र्या प्रत्यह जपः॥

(याज्ञवल्क्यस्मृति १।२।२२)

यजुर्वेदीय माध्यन्दिन शाखाका अनुसरण करनेवाले सन्ध्योपासक प्रतिदिन 'उद्वय तमसस्परि स्वः' (२०।२१), उदु त्य जातवेदसम्० (७।४१), चित्र देवानामुदगादनीकम्० (७।४२) तथा तच्चक्षुर्देवहितम् पुरस्तात्० (३६।२४)—इन चार प्रतीकवाले मन्त्रोंसे सूर्यका उपस्थान किया करते हैं। चतुर्थ मन्त्रका उच्चारण करते समय उपस्थाताके हृदयमें कैसी भव्य भावना भरी रहती

एवं मनुष्यकी भाँति श्रोणिभागसे बैठ जायगा, वह पशुओंकी भाँति चारों हाथ-पैरोंसे चलता भी है। किंतु मनुष्योंके पूर्वज बंदर नहीं थे। 'डारविन थ्योरी'के अनुयायियोंको हम बताना देना चाहते हैं कि मनुष्यका (इस रूपमें) विकास मानना उनकी कोरी कल्पना ही है। मानव-सृष्टिमें नालच्छेद है, जब कि वानर-सृष्टि नालच्छेदसे अलग है। यह दोनोंमें महान् मौलिक भेद है। 'वानर' (—वानर- विकल्पसे नर—) आधा मनुष्य और आधा पशु कहा जाता है। वानरके द्वारा मनुष्य सृष्टिका विकास है। सूर्य और पृथ्वीके दो दलोंके रूपमें होनेवाली इस मूलसृष्टिका वास्तविक रहस्य दूसरे ढंग का विज्ञान सिद्ध करता है। वस्तुतः सूर्यसे ही सृष्टि हुई है, इसीलिये कहा गया है कि सभी प्राणी सूर्यसे ही उत्पन्न हैं—

'नूनं जनाः सूर्येण प्रसूताः'

भुवन-भास्कर भगवान् सूर्य

(लेखक—राष्ट्रपति पुरस्कृत डॉ० श्रीकृष्णदत्तजी भारद्वाज, शास्त्री, आचार्य, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

वैदिक साक्ष्य—मधुच्छन्दाके पुत्र महर्षि अघमर्षणने अपने ऋग्वेदीय एक सूक्तमें यह बताया है कि विधाताने सूर्यको पूर्वकल्पकी सृष्टिके अनुसार (इस कल्पके आरम्भमें) बनाया—

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।
(—१०।१९०।३)

मित्रावरुण-नन्दन महर्षि वसिष्ठने अपने श्रीविष्णु सूक्तमें भगवान् विष्णु (और उनके सखा इन्द्र) को अग्नि, उषा और सूर्यका उत्पादक कहा है—

'उरु यज्ञाय चक्रथुरु लोकं
जनयन्ता सूर्यमुषासमग्निम्'
(—ऋग्वेद ७।९९।४)

पुरुष-सूक्तमें कहा गया है कि सूर्यका उद्गम विराट् पुरुष भगवान्के नेत्रसे हुआ था—

'चक्षोः सूर्यो अजायत'
(—ऋग्वेद १०।९०।१३)

गीताका मत—भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा था कि अग्नि चन्द्र और सूर्यमें जो प्रकाश है उसे मेरा ही तेज समझो—

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्॥
(—गीता १५।१२)

इसपर भाष्य करते हुए आचार्य शङ्करने लिखा है कि 'मामकं—मदीयं मम विष्णोस्तज्ज्योतिः' और आचार्य रामानुजने लिखा है कि—'एतेषामादित्यादीनां यत्तेजस्तन्मदीयं तेजः, तैस्तैराराधितेन मया तेभ्यो दत्तमिति विद्धि।'

सूर्याधार ध्रुव—सूर्यका आधार ध्रुव है और ध्रुव तारामय विग्रह शिशुमारके पुच्छभागमें अवस्थित है। शिशुमारके आधार स्वयं भगवान् नारायण हैं। नारायण उस (शिशुमार) के हृदयमें विराजमान हैं—

(अ) नारायणोऽयनं धाम्नां तस्याधारः स्वयं हरिः।
(आ) आधारः शिशुमारस्य सर्वाध्यक्षो जनार्दनः।
(इ) आधारभूतः सवितुर्ध्रुवो मुनिवरोत्तम।
ध्रुवस्य शिशुमारोऽसौ सोऽपि नारायणात्मकः॥
(—विष्णुपुराण २।९।४, ६, २१)

श्रीमद्भागवतके निम्नलिखित वचन भी इस प्रसङ्गमें मननीय हैं—

भगणा ग्रहादयः ध्रुवमेवावलम्ब्य परि चङ्क्रमन्ति।

केचनैतज्ज्योतिरनीकं शिशुमारसंस्थानेन भगवतो वासुदेवस्य योगधारणायामनुवर्णयन्ति। यस्य पुच्छाग्रेऽवाक्शिरसः कुण्डलीभूतदेहस्य ध्रुव उपकल्पितः। (—५।२१।३, ४, ५)

महोंद्वारा प्रदक्षिणीकृत—इस जगत्‌में तेजस्तत्त्व सर्वत्र अनुस्यूत है। कहीं उसकी उपलब्धि न्यून है तो कहीं अधिक। सूर्य-मण्डल तो साक्षात् तेजोमय ही है। चन्द्र, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि आदि ग्रह और हमारी यह पृथ्वी भी सूर्यकी परिक्रमामें सतत निरत है।

भास्करालोकन—उदय होते हुए और अस्त होते हुए अरुणवर्ण सूर्यमण्डलका दर्शन सुगमतासे किया जा सकता है। इन दोनों सन्ध्याओंसे अतिरिक्त दशामें सूर्यकी ओर देखते रहनेसे नेत्रोंमें विकारकी आशङ्का रहती है। इसीलिये भास्करालोकन वर्जित है—

भास्करालोकनाश्लीलपरिवादादि वर्जयेत्।
(याज्ञवल्क्यस्मृति १।२।३३)

आदित्यमण्डलके अधिष्ठाता चेतन देवता—आदित्य-मण्डलके अभिमानी देवता चेतन हैं। वे ही सूर्य हैं, जिन्हें भक्तजन अपनी प्रणामाञ्जलियाँ समर्पित किया करते हैं। भौतिक विज्ञानके विद्वान्‌की दृष्टिमें आदित्य-मण्डल केवल तेज पुञ्ज है, किंतु वेदानुयायी सनातनधर्मकी मान्यताके अनुसार आदित्यके अभिमानी देवता सूर्य चेतन हैं—

ज्योतिरादिविषया अपि आदित्यादयो देवता वचनाः शब्दाश्चेतनावन्तमैश्वर्याद्युपेतं तं तं देवतात्मानं समर्पयन्ति।

अस्ति ह्यैश्वर्ययोगाद् देवतानां ज्योतिराद्यात्मभिश्चावस्थातुं यथेष्टं च तं तं विग्रहं ग्रहीतुं सामर्थ्यम्।
(ब्रह्मसूत्र १।३।३३ पर शाङ्करभाष्य)

विग्रहवान् भगवान् सूर्य—श्रीसूर्यदेव कश्यप और अदितिके पुत्र हैं। 'अदिति' माताके पुत्र होनेके कारण ये 'आदित्य' कहलाते हैं। इनके विग्रहका वर्ण बन्धूक (दुपहरिया) पुष्पके समान है। ये द्विभुज हैं और पद्म धारण किये रहते हैं। इनकी पुरीका नाम विवस्वती है—

विवस्वांस्तु सुरे सूर्ये तन्नगर्यां विवस्वती।
(अमरकोषकी व्याख्या सुधा टीकामें मेदिनीसे उद्धृत)

इनकी संज्ञा-नामिका पत्नीके पुत्र हैं धर्मराज यम और पुत्री हैं यमुना देवी तथा छाया-नामिका पत्नीके पुत्र हैं शनिदेव। माठर, पिङ्गल और दण्ड इनके सेवक हैं, तथा गरुड़जीके भाई अरुण इनके सारथि हैं। इनके रथको सात घोड़े चलाते हैं जिसमें केवल एक पहिया है।

याज्ञवल्क्य स्मृति (१।१२।२९७-३०२) के अनुसार सूर्यदेवकी प्रतिमा ताँबेकी बनानी चाहिये और इनकी आराधनाका प्रधान मन्त्र 'आ कृष्णेन रजसा वर्तमान'—इत्यादि है। इनकी प्रसन्नताके लिये किये जानेवाले हवनमें आककी समिधाका विधान है।

माणिक्य धारण करनेसे ये शुभ फल प्रदान करते हैं—'माणिक्यं तरणे' (—जातकाभरण, स्मृतिकौस्तुभ)।

श्रीसूर्यदेवसे ही महर्षि याज्ञवल्क्यने बृहदारण्यक उपनिषद् (ज्ञान) प्राप्त किया था—

ज्ञेयं चारण्यकमहं यदादित्यादवाप्तवान्॥
(याज्ञवल्क्यस्मृति ३।४।११०)

तथा पवननन्दन आञ्जनेय श्रीरामदूत हनुमान्‌जीने भी इनसे शिक्षा प्राप्त की थी।

सूर्यका उपस्थान—वैदिक मान्यता जनताके लिये विहित सन्ध्योपासनाका एक अपरिहार्य अङ्ग है—सूर्योपस्थान, जैसा कि महर्षि याज्ञवल्क्यने दैनिक कर्मोंमें गिनाया है—

स्नानमब्दैवतैर्मन्त्रैर्मार्जनं प्राणसंयमः।
सूर्यस्य चाप्युपस्थानं गायत्र्याः प्रत्यहं जपः॥
(याज्ञवल्क्यस्मृति १।२।२२)

यजुर्वेदीय माध्यन्दिन शाखाका अनुसरण करनेवाले सन्ध्योपासक प्रतिदिन 'उद्वयं तमसस्परि स्वः' (२०।२१), उदु त्यं जातवेदसम्० (७।४१), चित्रं देवानामुदगादनीकम्० (७।४२) तथा तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्तात्० (३६।२४)—इन चार प्रतीकवाले मन्त्रोंसे सूर्यका उपस्थान किया करते हैं। चतुर्थ मन्त्रका उच्चारण करते समय उपस्थाताके हृदयमें कैसी भव्य भावना भरी रहती

भासद्रत्नाढ्यमौलिः स्फुरदधररुचा
रञ्जितश्चारुकेशो
भास्वान् यो दिव्यतेजा करकमलयुतः
स्वर्णवर्णः प्रभाभिः ।
विश्वाकाशावकाशो ग्रहगणसहितो
भाति यश्चोदयाद्रौ
सर्वानन्दप्रदाता हरिहरनमितः
पातु मां विश्वचक्षुः ॥

अर्थात् 'विश्वके द्रष्टा, सब प्रकारके सुखोंको देनेवाले, हरि और हरसे आराधित वे श्रीसूर्यदेवता मेरी रक्षा करें— जिनका मुकुट चमचमाते हुए रत्नोंसे जड़ा हुआ है, जो अपने अधरकी अरुणिम कान्तिसे सम्बन्धित हैं, जिनके केश आकर्षक हैं, जो प्रकाशमान हैं, जिनका तेज दिव्य है, जो अपने हाथोंमें कमल लिये हुए हैं, जो अपनी प्रभाके कारण स्वर्ण वर्णवाले हैं, जो समस्त गगन-मण्डलको प्रकाशित करनेवाले हैं, जो चन्द्र, मङ्गल, बुध, बृहस्पति आदि ग्रहोंके साथ रहते हैं और जो (प्रतिदिन प्रातःकालमें) उदयाचलपर किरणावलीका प्रसार किया करते हैं ।'

इस ध्यानके पश्चात् एक यन्त्रका और तदनन्तर सूर्य-मन्त्रका उद्धार किया गया है। फिर पूजा विधि बताकर साम्बपुराणसे एक सौर-स्तोत्र, ब्रह्मयामलसे त्रैलोक्य मङ्गल नामका कवच, श्रीवाल्मीकीय रामायणसे आदित्य हृदय शुक्लयजुर्वेदसे 'विभ्राट्' पदसे प्रारम्भ होनेवाला सूक्त, महाभारतीय वनपर्वसे सूर्याष्टोत्तरशतनाम-स्तोत्र और भविष्यपुराणके सप्तमीकल्पसे सूर्यसहस्रनामस्तोत्र दिये गये हैं। यह ग्रन्थ सौर-सम्प्रदायनिष्ठ भक्तजनोंके लिये परम उपादेय है।

गुणाश्रित नामावली—संस्कृत-साहित्यमें सूर्यदेवके अनेक पर्याय प्राप्त होते हैं। ये नाम देवताके विभिन्न गुणोंको प्रदर्शित करते हैं। अमरसिंहने अपने नाम लिङ्गानुशासन नामक कोश—(१ । ३ । २८—३१)में ऐसे सैंतीस नाम दिये हैं, जो अकारादिक्रमसे लिखे जानेपर ये हैं—अरुण, अर्क, अर्यमा, अहर्पति, अहस्कर, आदित्य, उष्णरश्मि, ग्रहपति, चित्रभानु, तपन, तरणि, दिवापति, दिवाकर, द्युमणि, द्वादशात्मा, प्रभाकर, पूषा, भानु, भास्कर, भास्वान्, मार्तण्ड, मित्र, मिहिर, रवि, ब्रध्न, विकर्तन, विभाकर, विभावसु, विरोचन, विवस्वान्, सप्ताश्व, सूर, सूर्य, सविता, सहस्रांशु, हंस और हरिदश्व ।

सूर्यदेव प्रणम्य हैं, हम यहाँ उन्हें अपनी प्रणामाञ्जलि समर्पित करते हैं—

अरुण किरणके विकिरणसे जो जगतीके सब जीवोंको
जीवनका मधुर पीयूष पिलाकर जीवित प्रतिदिन रखते हैं।
हय-सप्तकयुत एक चक्रके स्यन्दनपर आसीन हुए
बालखिल्य मुनिगण-संयुत हो नभके मध्य विचरते हैं ॥
भक्तजनोंके स्तव सुनकर दया-आर्द्र-मन होकर जो
व्याधि आधिको, रोग शोकको सतत हरते रहते हैं।
हम उन सूर्यदेवके अतिशय मङ्गलमय पद-पद्मोंमें
नमन कमलकी अञ्जलियोंको नित्य समर्पित करते हैं ॥

सूर्यसहस्रनामकी फलश्रुति

धन्यं यशस्यमायुष्यं दुःखदुःस्वप्ननाशनम् ।
बन्धमोक्षकरं चैव भानोर्नामानुकीर्तनात् ॥
(भवि० पु० सप्तमीकल्प १२१)

जो भगवान् भानुके नामों (सूर्यसहस्रनामस्तोत्र) का प्रतिदिन अनुकीर्तन (पाठ) करते हैं वे लोकमें यशस्वी होकर धन्य हो जाते हैं और चिरायु प्राप्त करते हैं। सूर्यदेवके नामोंका पाठ करनेसे दुःख और दुःस्वप्न दूर होते हैं तथा बन्धनसे मुक्ति मिलती है।

है, यह कहता है—'हम रोग मत दिनामें उदित होने हुए प्रकाशमान सूर्यदेवका प्रतिदिन सौ वर्षोंतक ही नहीं, और भी अधिक वर्षोंतक दर्शन करते रहें।'

सूर्योपासनासे भोग और मोक्षका लाभ—वैदिक संहिताओंमें ऐसे अनेक सूक्त हैं जिनके देवता सूर्य हैं, अर्थात् जिनमें सूर्यदेवके अनुभावकी चर्चा की गयी है। एक मन्त्रमें इस प्रकार प्रार्थना है—

उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम्।
हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय॥
(ऋग्वेद १।५०।११)

शौनकने अपने बृहद्-देवता नामक ग्रन्थमें इस मन्त्रके विषयमें लिखा है कि—

उद्यन्नद्यति मन्त्रोऽयं सौरः पापप्रणाशनः।
रोगघ्नश्च विषघ्नश्च मुक्तिमुक्तिफलप्रदः॥

अर्थात् 'उद्यन्नद्य०'—इत्यादि सूर्यदेवताका मन्त्र पापोंको नष्ट करनेवाला है। (इसके द्वारा सूर्यदेवकी प्रार्थना की जाय तो) यह रोगोंका नाश और विषोंका शमन कर देता है तथा सांसारिक भोग एवं मोक्ष प्रदान करता है। सूर्योपासनाके स्वास्थ्यप्रद प्रभावके कारण आगमनमें यह वचन उपलब्ध होता है कि 'आरोग्यं भास्करादिच्छेत्।'

सत्राजित्पर कृपा—प्राचीन कालमें इस धराधामके पुण्यात्मा महानुभावोंपर देवताओंका परम अनुग्रहशील व्यवहार होता था। उपस्थापित सूर्यदेवने श्रीकृष्णचन्द्रके श्वशुर सत्राजितको द्वारकामें सागर-तीरपर स्वयं आकर स्यमन्तकमणि प्रदान की थी—

तस्योपतिष्ठतः सूर्यो विवस्वानग्रतः स्थितः।
ततो विग्रहवन्तं तं ददर्श नृपतिस्तदा॥
प्रीतिमानथ तं दृष्ट्वा मुहूर्तं कृतवान् कथाम्।
ततः स्यमन्तकमणिं दत्तवांस्तस्य भास्करः॥
(हरिवं० १।३८।१६।२०)

आदित्याभिमानी देवता और परमेश्वर—छान्दोग्योपनिषद्में एक स्थानपर यह कहा गया है कि आदित्य (मण्डल)में एक हिरण्मय पुरुषका स्थान होता है। उनके दोनों नेत्र कमलके समान (सुन्दर) हैं—

य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते... तस्य यथा कप्यासं पुण्डरीकमेवमक्षिणी (१।६।६)

इस आशयको स्पष्ट करनेके लिये श्रीवेदव्यासजीने सूत्र लिखे हैं—

'अन्तस्तद्धर्मोपदेशात्' और 'भेदव्यपदेशाच्चान्यः'
(ब्रह्मसूत्र १।१।२०।२१)

इनपर शाङ्करभाष्यके ये वचन मननीय हैं—

'य एषोऽन्तरादित्ये—इति च श्रूयमाणः पुरुषः परमेश्वर एव, न संसारी। अस्ति चादित्यादिशरीराभिमानिभ्यो जीवेभ्योऽन्य ईश्वरोऽन्तर्यामी। य आदित्ये तिष्ठन्नादित्यादन्तरो यमादित्यो न वेद यस्यादित्यः शरीरं य आदित्यमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृत इति श्रुत्यन्तरे भेदव्यपदेशात्। तत्र हि आदित्यादन्तरो यमादित्यो न वेद इति वेदितुरादित्याद्विज्ञानात्मनोऽन्योऽन्तर्यामी स्पष्टं निर्दिश्यते—।'

इसका भाव यह है कि प्राकृत पाञ्चभौतिक तेजोमय आदित्यमण्डलमें जो उसके अभिमानी विज्ञानात्मा अर्थात् चेतन देवता हैं, वे भी जिस परमेश्वरको नहीं जानते वे ही 'य एषोऽन्तरादित्ये०'—आदि श्रुतिके द्वारा प्रतिपाद्य पुण्डरीकाक्ष परमेश्वर हैं।

सूर्य-तन्त्र—सूर्यदेवके उपासकोंने अपने उपास्यको सर्वोच्च माना है। इनका सम्प्रदाय 'सौर-सम्प्रदाय' कहलाता है। इस सम्प्रदायके सिद्धान्तोंका निरूपण पौराणिक तथा तान्त्रिक साहित्यके ग्रन्थोंमें उपलब्ध है। उदाहरणार्थ भविष्यपुराणमें सूर्योपासनाकी प्रचुर चर्चा द्रष्टव्य है। इसी प्रकार श्रीसूर्यदेवकी उपासना-पद्धतिका निर्देशक एक 'सूर्य-तन्त्र' नामक ग्रन्थ है। इसमें सर्वप्रथम उपास्य देवके ध्यानकी यह स्रग्धरा है—

भास्वद्रत्नाढ्यमौलिः स्फुरदधररुचा
रञ्जितश्चारुकेशो
भास्वान् यो दिव्यतेजा करकमलयुतः
स्वर्णवर्णः प्रभाभिः ।
विश्वाकाशावकाशो ग्रहगणसहितो
भाति यश्चोदयाद्रौ
सर्वानन्दप्रदाता हरिहरनमितः
पातु मां विश्वचक्षुः ॥

अर्थात् 'विश्वके द्रष्टा, सब प्रकारके सुखोंको देनेवाले, हरि और हरसे आराधित वे श्रीसूर्यदेवता मेरी रक्षा करें—जिनका मुकुट चमचमाते हुए रत्नोंसे जड़ा हुआ है, जो अपने अधरकी अरुणिम कान्तिसे सम्वलित हैं, जिनके केश आकर्षक हैं, जो प्रकाशस्वरूप हैं, जिनका तेज दिव्य है, जो अपने हाथोंमें कमल लिये हुए हैं, जो अपनी प्रभाके कारण स्वर्ण वर्णवाले हैं, जो समस्त गगन-मण्डलको प्रकाशित करनेवाले हैं, जो चन्द्र, मङ्गल, बुध, बृहस्पति आदि ग्रहोंके साथ रहते हैं और जो (प्रतिदिन प्रातःकालमें) उदयाचलपर किरणावलीका प्रसार किया करते हैं।'

इस ध्यानके पश्चात् एक यन्त्रका और तदनन्तर सूर्य-मन्त्रका उद्धार किया गया है। फिर पूजा-विधि बताकर साम्बपुराणसे एक सौर-स्तोत्र, ब्रह्मयामलसे त्रैलोक्य मङ्गल नामका कवच, श्रीवाल्मीकीय रामायणसे आदित्य हृदय, शुक्लयजुर्वेदसे 'विभ्राट्' पदसे प्रारम्भ होनेवाला सूक्त, महाभारतीय वनपर्वसे सूर्याष्टोत्तरशतनाम-स्तोत्र और भविष्यपुराणके सप्तमीकल्पसे सूर्यसहस्रनामस्तोत्र दिये गये हैं। यह ग्रन्थ सौर-सम्प्रदायनिष्ठ भक्तजनोंके लिये परम उपादेय है।

गुणाश्रित नामावली—संस्कृत-साहित्यमें सूर्यदेवके अनेक पर्याय प्राप्त होते हैं। ये नाम देवताके विभिन्न गुणोंको प्रदर्शित करते हैं। अमरसिंहने अपने 'नामलिङ्गानुशासन' नामक कोष—(१। ३। २८—३१)में ऐसे सैंतीस नाम दिये हैं, जो अकारादिक्रमसे लिखे जानेपर ये हैं—अरुण, अर्क, अर्यमा, अहर्पति, अहस्कर, आदित्य, उष्णरश्मि, ग्रहपति, चित्रभानु, तपन, तरणि, त्विषाम्पति, दिवाकर, द्युमणि, द्वादशात्मा, प्रभाकर, पूषा, भानु, भास्कर, भास्वान्, मार्तण्ड, मित्र, मिहिर, रवि, ब्रध्न, विकर्तन, विभाकर, विभावसु, विरोचन, विवस्वान्, सप्ताश्व, सूर, सूर्य, सविता, सहस्रांशु, हंस और हरिदश्व।

सूर्यदेव प्रणम्य हैं, हम यहाँ उन्हें अपनी प्रणामाञ्जलि समर्पित करते हैं—

अरुण किरणके विकिरणसे जो जगतीके सब जीवोंका
जीवनका मधुर पीयूष पिलाकर जीवित प्रतिदिन रखते हैं।
हय-सप्तकयुत एक चक्रके स्यन्दनपर आसीन हुए
बालखिल्य मुनिगण-संस्तुत हो नभके मध्य विचरते हैं॥
भक्तजनोंके संस्तव सुनकर दया-आर्द्र-मन होकर जो
व्याधि आधिको, राग शोकको सतत हरते रहते हैं।
हम उन सूर्यदेवके अतिशय मङ्गलमय पद-पद्मोंमें
नमन कमलकी अञ्जलियोंको नित्य समर्पित करते हैं॥

सूर्यसहस्रनामकी फलश्रुति

धन्यं यशस्यमायुष्यं दुःखदुःस्वप्ननाशनम्।
बन्धमोक्षकरं चैव भानोर्नामानुकीर्तनात्॥
(भवि० पु० सप्तमीकल्प १२१)

जो भगवान् भानुके नामों (सूर्यसहस्रनामस्तोत्र) का प्रतिदिन अनुकीर्तन (पाठ) करते हैं वे लोकमें यशस्वी होकर धन्य हो जाते हैं और चिरायु प्राप्त करते हैं। सूर्यदेवके नामोंका पाठ करनेसे दुःख और दुःस्वप्न दूर होते हैं तथा बन्धनसे मुक्ति मिलती है।

है, वह कहता है—'हमलोग पूर्व दिशामें उदित होते हुए प्रकाशमान सूर्यदेवका प्रतिदिन सौ वर्षोंतक ही नहीं, और भी अधिक वर्षोंतक दर्शन करते रहें।'

सूर्योपासनासे भोग और मोक्षका लाभ—वैदिक संहिताओंमें ऐसे अनेक सूक्त हैं जिनके देवता सूर्य हैं, अर्थात् जिनमें सूर्यदेवके अनुभावकी चर्चा की गयी है। एक मन्त्रमें इस प्रकार प्रार्थना है—

उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम्।
हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय॥
(ऋग्वेद १।५०।११)

शौनकने अपने बृहद्-देवता नामक ग्रन्थमें इस मन्त्रके विषयमें लिखा है कि—

उद्यन्नद्येति मन्त्रोऽयं सौरः पापप्रणाशनः।
रोगघ्नश्च विषघ्नश्च भुक्तिमुक्तिफलप्रदः॥

अर्थात् 'उद्यन्नद्य०'—इत्यादि सूर्यदेवताका मन्त्र पापों को नष्ट करनेवाला है। (इसके द्वारा सूर्यदेवकी प्रार्थना की जाय तो) यह रोगोंका नाश और विषोंका शमन कर देता है तथा सांसारिक भोग एवं मोक्ष प्रदान करता है। सूर्योपासनाके स्वास्थ्यप्रद प्रभावके कारण भागवतमें यह वचन उपलब्ध होता है कि 'आरोग्यं भास्करादिच्छेत्।'

सत्राजित्पर कृपा—प्राचीन कालमें इस धराधामके पुण्यात्मा महानुभावोंपर देवताओंका परम अनुग्रहशील व्यवहार होता था। उपस्थापित सूर्यदेवने श्रीकृष्णचन्द्रके श्वशुर सत्राजितको द्वारकामें सागर-तीरपर स्वयं आकर स्यमन्तकमणि प्रदान की थी—

तस्योपतिष्ठतः सूर्यं विवस्वानग्रतः स्थितः।
ततो विग्रहवन्तं तं ददर्श नृपतिस्तदा॥
प्रीतिमानथ तं दृष्ट्वा मुहूर्तं कृतवान् कथाम्।
ततः स्यमन्तकमणिं दत्तवांस्तस्य भास्करः॥
(हरिवंश० १।३८।१६।२२)

आदित्याभिमानी देवता और परमेश्वर—छान्दोग्योपनिषद्में एक स्थानपर यह कहा गया है कि आदित्य (मण्डल)में एक हिरण्मय पुरुषका दर्शन होता है। उनके दोनों नेत्र कमलके समान (सुंदर) हैं—

य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते
तस्य यथा कप्यासं पुण्डरीकमेवमक्षिणी (१।६।६)

इस आशयको स्पष्ट करनेके लिये श्रीवेदव्यासजीने सूत्र लिखे हैं—

'अन्तस्तद्धर्मोपदेशात्' और 'भेदव्यपदेशाच्चान्यः'
(ब्रह्मसूत्र १।१।२०-२१)

इनपर शाङ्करभाष्यके ये वचन मननीय हैं—

'य एषोऽन्तरादित्ये—इति च श्रूयमाणः पुरुषः परमेश्वर एव, न संसारी। अस्ति चादित्यादिशरीराभिमानिभ्यो जीवेभ्योऽन्य ईश्वरोऽन्तर्यामी। य आदित्ये तिष्ठन्नादित्यादन्तरो यमादित्यो न वेद यस्यादित्यः शरीरं य आदित्यमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृत इति श्रुत्यन्तरे भेदव्यपदेशात्। तत्र हि आदित्यादन्तरो यमादित्यो न वेद इति वेदितुरादित्याद्विज्ञानात्मनोऽन्योऽन्तर्यामी स्पष्टं निर्दिश्यते—।'

इसका भाव यह है कि प्राकृत पाञ्चभौतिक सजीव आदित्यमण्डलमें जो उसके अभिमानी विज्ञानात्मा अर्थात् चेतन देवता हैं, वे भी जिस परमेश्वरको नहीं जानते वे ही 'य एषोऽन्तरादित्ये०'—आदि श्रुति द्वारा प्रतिपाद्य पुण्डरीकाक्ष परमेश्वर हैं।

सूर्य-तन्त्र—सूर्यदेवके उपासकोंने अपने उपास्यको सर्वोच्च माना है। इनका सम्प्रदाय 'सौर-सम्प्रदाय' कहलाता है। इस सम्प्रदायके सिद्धान्तोंका निरूपण पौराणिक तथा तान्त्रिक साहित्यके ग्रन्थोंमें उपलब्ध है। उदाहरणार्थ भविष्यपुराणमें सूर्योपासनाकी प्रचुर चर्चा द्रष्टव्य है। इसी प्रकार श्रीसूर्यदेवकी उपासना-पद्धतिका निर्देशक एक 'सूर्य-तन्त्र' नामक ग्रन्थ है। इसमें सर्वप्रथम उपास्य देवके ध्यानकी यह स्रग्धरा है—

भास्वद्रत्नाढ्यमौलि स्फुरदधररुचा रञ्जितश्चारुकेशो
भास्वान् यो दिव्यतेजा करकमलयुत स्वर्णवर्ण प्रभाभि ।
विश्वाकाशावकाशो ग्रहगणसहितो भाति यश्चोदयाद्री
सर्वानन्दप्रदाता हरिहरनमित पातु मा विश्वचक्षु ॥

अर्थात् 'विश्वके द्रष्टा, सब प्रकारके सुखोंको देनेवाले, हरि और हरसे आराधित वे श्रीसूर्यदेवता मेरी रक्षा करें— जिनका मुकुट चमचमाते हुए रत्नोंसे जड़ा हुआ है, जो अपने अधरकी अरुणिम कान्तिसे सरञ्जित ह, जिनके केश आकर्षक हैं, जो प्रकाशमान ह, जिनका तेज दिव्य है, जो अपने हाथोंमें कमल लिये हुए हैं, जो अपनी प्रभाके कारण स्वर्ण वर्णवाले हैं, जो समस्त गगन-मण्डलको प्रकाशित करनेवाले हैं, जो चन्द्र, मङ्गल, बुध, बृहस्पति आदि ग्रहोंके साथ रहते हैं और जो (प्रतिदिन प्रात कालमें) उदयाचलपर किरणावलीका प्रसार किया करते ह ।'

इस ध्यानके पश्चात् एक यन्त्रका और तदन तर सूर्य-मन्त्रका उद्धार किया गया है। फिर पूजा विधि बताकर साम्बपुराणसे एक सौर-स्तोत्र, ब्रह्मयामलसे त्रैलोक्य-मङ्गल नामका कवच, श्रीवाल्मीकीय रामायणसे आदित्य हृदय, शुक्लयजुर्वेदसे 'विभ्राट्' पदसे प्रारम्भ होनेवाला सूक्त, महाभारतीय वनपर्वसे सूर्याष्टोत्तरशतनाम-स्तोत्र और भविष्यपुराणके सप्तमीकल्पसे सूर्यसहस्रनामस्तोत्र दिये गये हैं। यह ग्रन्थ सौर-सम्प्रदायनिष्ठ भक्तजनोंके लिये परम उपादेय है।

गुणाश्रित नामावली—संस्कृत-साहित्यमें सूर्यदेवके अनेक पर्याय प्राप्त होते हैं। ये नाम देवताके विभिन्न गुणोंको प्रदर्शित करते हैं। अमरसिंहने अपने नाम लिङ्गानुशासन नामक कोष—(१ । ३ । २८—३१)में ऐसे सैंतीस नाम दिये हैं, जो अकारादिक्रमसे लिखे जानेपर ये हैं—अरुण, अर्क, अर्यमा, अहर्पति, अहस्कर, आदित्य, उष्णरश्मि, ग्रहपति, चित्रभानु, तपन, तरणि, त्विषाम्पति, दिवाकर, द्युमणि, द्वादशात्मा, प्रभाकर, पूषा, भानु, भास्कर, भास्वान्, मार्तण्ड, मित्र, मिहिर, रवि, ब्रध्न, विकर्तन, विभाकर, विभावसु, विरोचन, विवस्वान्, सप्ताश्व, सूर, सूर्य, सविता, सहस्रांशु, हंस और हरिदश्व।

सूर्यदेव प्रणम्य हैं, हम यहाँ उन्हें अपनी प्रणामाञ्जलि समर्पित करते हैं—

अरुण किरणके विकिरणसे जो जगतीके सब जीवोंको
जीवनका मधुर पीयूष पिलाकर जीवित प्रतिदिन रखते हैं।
हय-सप्तकयुत एक चक्रके स्यन्दनपर आसीन हुए
बालखिल्य मुनिगण-संस्तुत हो नभके मध्य विचरते हैं॥
भक्तजनोंके मन्त्र सुनकर दया भार्द्र-मन होकर जो
व्याधि आधिको, शोक शोकको सतत हरते रहते हैं।
हम उन सूर्यदेवके अतिशय मङ्गलमय पद-पद्मोंमें
नमन कमलकी अञ्जलियोंका नित्य समर्पित करते हैं॥

सूर्यसहस्रनामकी फलश्रुति

धन्य यशस्यमायुष्य दु खदुःस्वप्ननाशनम् ।
बन्धमोक्षकर चैव भानोर्नामानुकीर्तनात् ॥
(भवि० पु सप्तमीकल्प १२१)

जो भगवान् भानुके नामों (सूर्यसहस्रनामस्तोत्र) का प्रतिदिन अनुकीर्तन (पाठ) करते हैं वे लोकमें यशस्वी होकर धन्य हो जाते हैं और चिरायु प्राप्त करते हैं। सूर्यदेवके नामोंका पाठ करनेसे दु ख और दु स्वप्न दूर होते हैं तथा बन्धनसे मुक्ति मिलती है।

है, वह कहता है—'हमलोग पूर्व दिशामें उदित होते हुए प्रकाशमान सूर्यदेवका प्रतिदिन सौ वर्षोंतक ही नहीं, और भी अधिक वर्षोंतक दर्शन करते रहें।'

सूर्योपासनासे भोग और मोक्षका लाभ—वैदिक संहिताओंमें ऐसे अनेक सूक्त हैं जिनके देवता सूर्य हैं, अर्थात् जिनमें सूर्यदेवके अनुभावकी चर्चा की गयी है। एक मन्त्रमें इस प्रकार प्रार्थना है—

> उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम्।
> हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय॥
> (ऋग्वेद १।५०।११)

शौनकने अपने बृहद्-देवता नामक ग्रन्थमें इस मन्त्रके विषयमें लिखा है कि—

> उद्यन्नद्येति मन्त्रोऽयं सौरः पापप्रणाशनः।
> रोगघ्नश्च विषघ्नश्च भुक्तिमुक्तिफलप्रदः॥

अर्थात् 'उद्यन्नद्य०'—इत्यादि सूर्यदेवतावाला मन्त्र पापोंको नष्ट करनेवाला है। (इसके द्वारा सूर्यदेवकी प्रार्थना की जाय तो) यह रोगोंका नाश और विषोंका शमन कर देता है तथा सांसारिक भोग एवं मोक्ष प्रदान करता है। सूर्योपासनाके स्वास्थ्यप्रद प्रभावके कारण भागवतमें यह वचन उपलब्ध होता है कि 'आरोग्यं भास्करादिच्छेत्।'

सत्राजित्पर कृपा—प्राचीन कालमें इस धराधामके पुण्यात्मा महानुभावोंपर देवताओंका परम अनुग्रहशील व्यवहार होता था। उपास्यदेव सूर्यदेवने श्रीकृष्णचन्द्रके श्वशुर सत्राजितको द्वारकामें सागरतीरपर स्वयं आकर स्यमन्तकमणि प्रदान की थी—

> तस्योपतिष्ठतः सूर्यं विवस्वानग्रतः स्थितः।
> ततो विग्रहवन्तं तं ददर्श नृपतिस्तदा॥
> प्रीतिमानथ तं दृष्ट्वा मुहूर्तं कृतवान् कथाम्।
> ततः स्यमन्तकमणिं ददावस्तस्य भास्करः॥
> (हरिवंश १।३८।१६।२२)

आदित्याभिमानी देवता और परमेश्वर—छान्दोग्योपनिषद्में एक स्थानपर यह कहा गया है कि आदित्य (मण्डल)में एक हिरण्मय पुरुषका दर्शन होता है। उनके दोनों नेत्र कमलके समान (सुन्दर) हैं—

> य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते
> तस्य यथा कप्यासं पुण्डरीकमेवमक्षिणी (१।६।६)

इस आशयको स्पष्ट करनेके लिये श्रीवेदव्यासजीने सूत्र लिखे हैं—

> 'अन्तस्तद्धर्मोपदेशात्' और 'भेदव्यपदेशाच्चान्यः'
> (ब्रह्मसूत्र १।१।२०-२१)

इनपर शाङ्करभाष्यके ये वचन मननीय हैं—

'य एषोऽन्तरादित्ये—इति च श्रूयमाणः पुरुषः परमेश्वर एव, न संसारी। अस्ति चादित्यादिशरीराभिमानिभ्यो जीवेभ्योऽन्य ईश्वरोऽन्तर्यामी। य आदित्ये तिष्ठन्नादित्यादन्तरो यमादित्यो न वेद यस्यादित्यः शरीरं य आदित्यमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृत इति श्रुत्यन्तरे भेदव्यपदेशात्। तत्र हि आदित्यादन्तरो यमादित्यो न वेद इति वेदितुरादित्याद्विज्ञानात्मनोऽन्योऽन्तर्यामी स्पष्टं निर्दिश्यते—।'

इसका भाव यह है कि प्राकृत पाञ्चभौतिक तेजोमय आदित्यमण्डलमें जो उसके अभिमानी विज्ञानात्मा अर्थात् चेतन देवता हैं, वे भी जिस परमेश्वरको नहीं जानते वे ही 'य एषोऽन्तरादित्ये०'—आदि श्रुतिके द्वारा प्रतिपाद्य पुण्डरीकाक्ष परमेश्वर हैं।

सूर्य-तन्त्र—सूर्यदेवके उपासकोंने अपने उपास्यको सर्वोच्च माना है। इनका सम्प्रदाय 'सौर-सम्प्रदाय' कहलाता है। इस सम्प्रदायके सिद्धान्तोंका निरूपण पौराणिक तथा तान्त्रिक साहित्यके ग्रन्थोंमें उपलब्ध है। उदाहरणार्थ भविष्यपुराणमें सूर्योपासनाकी प्रचुर चर्चा द्रष्टव्य है। इसी प्रकार श्रीसूर्यदेवकी उपासना-पद्धतिका निर्देशक एक 'सूर्य-तन्त्र' नामक ग्रन्थ है। इसमें सर्वप्रथम उपास्य देवके ध्यानकी यह स्रग्धरा है—

सभी आराधनाओंके अन्तमें सूर्य-नमस्कारकी प्रक्रिया सर्वत्र प्रचलित है। ये सूर्यनमस्कार और सूर्यार्घ्य भी उन्हीं सूर्यतत्त्वोंकी व्यापकता प्रकट करते हैं। वस्तुतः सभी शुभाशुभ कर्मोंको सूर्यशक्तिमें समर्पित कर देना ही उपासनाका चरम लक्ष्य है।

सामान्य जलमें सभी तीर्थोंका आवाहन अंकुश-मुद्रा द्वारा सूर्यशक्तिसे ही होता है। यथा -

ब्रह्माण्डोदरतीर्थानि करैः स्पृष्टानि ते रवेः।
तेन सत्येन मे देव तीर्थं देहि दिवाकर॥

इससे स्पष्ट है कि सूर्य किरणें ही सभी तीर्थोंके उद्गमस्थान हैं। यहीं उनका उत्स है जो शतशः भूमण्डलपर व्याप्त है।

सूर्यको विष्णु या विष्णुतेज भी कहा जाता है। सूर्यके प्रणाम-मन्त्रमें यह स्पष्ट देखा जा सकता है। यथा—

'नमो विवस्वते ब्रह्मन् भास्वते विष्णुतेजसे ।'
यहाँ वेवेष्टि—व्याप्नोतीति विष्णुः—(विष्लृ-व्याप्तौ धातुसे निष्पन्न है—विष्णु शब्द) व्याप्त अर्थात्—सूर्य। अखिल ब्रह्माण्डमें जो अखण्डरूपसे व्याप्त हों वे ही 'विष्णु' हैं और वे प्रत्यक्ष विष्णु सूर्य ही हैं। वे ही विष्णुतेज हैं। पूजान्तमें 'अस्मिन् कर्मणि यद्वैगुण्यं जातं तद्दोषप्रशमनाय विष्णोः स्मरणमहं करिष्ये'—इस वाक्यसे स्मरणपूर्वक सूर्यार्घ्य दिया जाता है। विष्णु और सूर्य एक हैं।

सर्वाधिक महिमा-गरिमा-शालिनी गायत्रीकी उपासना ही भारतीय जन-जीवनकी वह अखण्ड अशेष तेजस्विनी शक्ति है जिसकी उपासनासे मानव देवत्वको प्राप्त करता है एवं असाध्य साधन करता है। अतीत और अनागत कार्य उसके लिये हस्तामलकवत् हो जाते हैं। यही आराधना नवीन सृष्टिनिर्माणक्षम बनाती है। यह गायत्री ही वसिष्ठको महर्षि तथा भगवान् बनानेका कारण है। इसीने विश्वामित्रको महर्षि बना दिया।

ऐसे महामहिमशाली गायत्री-मन्त्रका सीधा सम्बन्ध सूर्य शक्तिसे ही है। 'तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि'—इसमें उसी सविता (सूर्य)के अमोघ-शक्ति-सचयनकी प्रक्रिया है, जो सर्वसिद्धिदायिका है।

अब 'पितृलोक'की बातपर थोड़ा ध्यान दें। 'पा-रक्षणे' धातुसे 'पाति—रक्षति यः सः पिता, पान्तीति पितरः—तेषां पितृणां लोकः पितृलोकः'—सिद्ध होता है। यह पितृलोक उन्हीं भगवान् सूर्यका लोक है, जो सभीके रक्षक हैं तथा वहाँ सभी पितरोंका समीकरण है। अतएव तर्पण और पिण्ड दानादि सभी पितृकर्म सूर्य-शक्तिके द्वारा ही यथास्थान पहुँचते हैं। इसमें प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि रात्रिमें—सम्बद्ध भूभागके सूर्यादर्शनकालमें कोई पितृकर्म नहीं होते हैं। 'कुतुप' काल—मध्याह्नकालमें ही पिण्डदान आदिका विधान है। श्राद्धमें सपिण्डीकरण भी सूर्यास्तसे बहुत पहले ही करनेका नियम है। दैनिक तर्पण भी रात्रिमें या प्रातः अरुणोदयसे पहले नहीं किये जाते हैं। तात्पर्य यह कि सभी पितृ-कर्मोंका सम्बन्ध सीधे सूर्यतत्त्व—सूर्यशक्तिसे ही है।

कहा जाता है कि आधुनिक वैज्ञानिकोंका हाइड्रोजन-आक्सिजन भी उस वैदिक 'मित्रावरुण'का ही पर्यायवाची शब्द है, जो मित्रावरुण सूर्यशक्ति ही है। मित्र और सूर्य—ये पर्यायवाची शब्द हैं तथा वरुण जलतत्त्व के अधिष्ठाता सूर्यतत्त्वाधीन हैं, जो ऊपरकी पंक्तियोंमें स्पष्ट किया गया है।

आधुनिक वैज्ञानिकोंमें तो आज 'सौर ऊर्जा' ग्रहण करनेकी होड़-सी लगी हुई है। इसपर तो बहुत अधिक कार्य और प्रयोग भी हो चुके हैं और हो रहे हैं।

क्या शस्योत्पादन—सशक्त अन्नोत्पादन तथा सुन्दर फल-पुष्पोंके विकासमें सर्वाधिक महत्त्व सूर्यशक्तिका नहीं है?

सूर्य-तत्त्व (सूर्योपासना)

(लेखक—प० श्रीआद्याचरणजी झा, व्याकरण-साहित्याचार्य)

'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च', 'सूर्यो वै ब्रह्म', 'सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्'—इत्यादि सहस्रश वैदिक तथा केवल पौराणिक एव धर्मशास्त्रीय वचनोंके आधारपर ही नहीं, किंतु सूर्यशक्तिके स्पष्ट वैज्ञानिक विवेचनके आलोकमें भी एक वाक्यमें यह कहना सर्वथा उपयुक्त होगा कि 'सूर्य-तत्त्व'से ही इस समस्त चराचर जगत्की सत्ता तथा उपयोगिता है ।

कहना न होगा कि ये ही सूर्य अखण्ड प्रकाश पुञ्जसे ब्रह्माण्डको आलोकित करते हैं, सूर्य किरणें ही सभी पदार्थोंमें रस तथा शक्ति प्रदान करती हैं । अग्नि तत्त्व, वायुतत्त्व, जलतत्त्व तथा सूर्य-तत्त्वोंको ही अशेष, अमित एव अखण्डशक्ति ऊर्जा प्रदान करनेवाली हैं । इन तत्त्वोंमें सूर्य-तत्त्व ही सर्वप्रधान है । आकाशमण्डलके सशक्त रहनेपर ही अग्नि, वायु एव जल अपनी-अपनी शक्ति प्रदर्शित कर सकते हैं, क्योंकि इन तत्त्वोंका आश्रय-स्थान मुख्यत आकाशमण्डल ही है । आकाश मण्डलमें सूर्य किरणें ही समुद्रों तथा नदियोंसे जल ग्रहणकर अग्नि-वायु-जल-तत्त्वोंके मिश्रणसे मेघोंका निर्माण करती हैं तथा वायुतत्त्वके सहयोगसे यथास्थान स्वेच्छानुसार वर्षा करती हैं ।

सौरमण्डल ही एक वह महान् केन्द्र है जो अपने चुम्बकीय आकर्षणसे देवलोक, पितृलोक आदिका समन्वित कार्य सँभाल रहा है । सभी देव-कर्म सूर्याराधनसे ही प्रारम्भ होते हैं एव उसीसे सम्पन्न होते हैं । कोई भी आराधना दिनमें 'सूर्यादि पञ्चदेवता'-पूजनसे प्रारम्भ होती है । रात्रिमें वे ही 'गणपत्यादि पञ्चदेवता'के नामसे पूजित होते हैं—यह मिथिलाकी परम्परा है । कहीं-कहीं दिनमें भी 'गणपत्यादि पञ्चदेवता' कहकर पूजन प्रारम्भ होता है ।

यहाँ जरा सूक्ष्मदृष्टिसे देखें तो स्पष्ट होगा कि वे 'गणपति' भी यथार्थत 'सूर्य' ही हैं । गणानाम्—नक्षत्राणा पति गणपति—'सूर्य' । सूर्यका प्रकाश जिस भूभागपर रहता है वहाँ ये नक्षत्र अदृश्य रहते हैं। सूर्यके प्रकाशके दूसरे भूभागपर चले जानेसे ये चन्द्रमासहित सभी नक्षत्र दृश्य हो जाते हैं ।

सूर्यका उदय-अस्त होना देवीभागवत, स्कन्द के अनुसार उनके दर्शन और अदर्शनमात्र हैं, अन्य नहीं—

उदयास्तमन नास्ति दर्शनादर्शन रवे ।

इस तरह अहर्निश शब्दका व्यवहार भी सूर्यके दर्शनादर्शन ही हैं । फलत सूर्य अखण्ड और अविनश्वर हैं । वे सदा एक समान हैं ।

यही रहस्य है कि शिवके आत्मज होनेपर भी 'गणपति'का पूजन प्रारम्भमें होता है । वे 'गणपति' ही 'सूर्य-तत्त्व' हैं जो सभी स्थावर-जङ्गममें सञ्चालक हैं। कहा जाता है कि 'शनि'के देखनेसे 'गणपति'के मस्तक गिर गये और महादेवने उसके स्थानपर हाथीका मुँह लगा दिया, जिससे वे 'गजानन' हो गये । इसके रहस्यको यहाँ देखें । 'शुण्ड'को 'कर' कहते हैं, (करम्—शुण्डमस्यास्तीति—करी—हस्ती, हाथी,) कर शुण्ड का पर्यायवाची शब्द है । क्या यह कर (शुण्ड) सूर्यकी ही तेज पुञ्ज किरणावली नहीं है, जिसे परम शिवने इस सूर्यके रक्तपिण्डसदृश आरक्त-पृथुल-गणपतिके मस्तक—शिरके रूपमें संयुक्त कर दिया ? क्या इस तरह सभी आराधनाओंमें गणेशाराधनका, जो सूर्याराधन ही है गूढ रहस्य प्रकट नहीं होता ? क्या इस विवेचनसे गणपतिके जन्म, शिर पतन, शिर संयोजनादि पौराणिक विस्तृत आख्यानकी गम्भीरताका पता नहीं चलता ?

सभी आराधनाओंके अन्तमें सूर्य-नमस्कारकी प्रक्रिया सर्वत्र प्रचलित है। ये सूर्यनमस्कार और सूर्यार्घ्य भी उन्हीं सूर्यतत्त्वोंकी व्यापकता प्रकट करते हैं। वस्तुत सभी शुभाशुभ कर्मोंको सूर्यशक्तिमें समर्पित कर देना ही उपासनाका चरम लक्ष्य है।

सामान्य जलमें सभी तीर्थोंका आवाहन अङ्कुश-मुद्रा द्वारा सूर्यशक्तिसे ही होता है। यथा -

ब्रह्माण्डोदरतीर्थानि करैः स्पृष्टानि ते रवे ।
तेन सत्येन मे देव तीर्थं देहि दिवाकर ॥

इससे स्पष्ट है कि सूर्य किरणें ही सभी तीर्थोंके उद्गमस्थान हैं। यहीं उनका उत्स है जो शतश भूमण्डलपर व्याप्त है।

सूर्यको विष्णु या विष्णुतेज भी कहा जाता है। सूर्यके प्रणाम-मन्त्रमें यह स्पष्ट देखा जा सकता है। यथा—

'नमो विवस्वते ब्रह्मन् भास्वते विष्णुतेजसे ।'
'वेवेष्टि—व्याप्नोतीति विष्णु'—(विष्लृ-व्याप्तौ धातुसे निष्पादित है—विष्णु शब्द) व्याप्त अर्थात्—सूर्य। अखिल ब्रह्माण्डमें जो अखण्डरूपसे व्याप्त हों वे ही 'विष्णु' हैं और वे प्रत्यक्ष विष्णु सूर्य ही हैं। वे ही विष्णुतेज हैं। पूजान्तमें **'अस्मिन् कर्मणि यद्वैगुण्य जात तद्दोषप्रशमनाय विष्णोः स्मरणमह करिष्ये'**—इस वाक्यसे स्मरणपूर्वक सूर्यार्घ्य दिया जाता है। विष्णु और सूर्य एक हैं।

सर्वोचित महिमा-गरिमा शालिनी गायत्रीकी उपासना ही भारतीय जन-जीवनकी वह अखण्ड अशेष तेजस्विनी शक्ति है जिसकी उपासनासे मानव देवत्वको प्राप्त करता है एव असाध्य साधन करता है। अतीत और अनागत कार्य उसके लिये हस्तामलकवत् हो जाते हैं। यही आराधना नवीन सृष्टिनिर्माणक्षम बनाती है। यह गायत्री ही वसिष्ठको महर्षि तथा भगवान् बनानेका कारण है। इसीने विश्वामित्रको महर्षि बना दिया।

ऐसे महामहिमशाली गायत्री-मन्त्रका सीधा सम्बन्ध सूर्य शक्तिसे ही है। **'तत्सवितुर्वरेण्य भर्गो देवस्य धीमहि'**—इसमें उसी सविता (सूर्य)के अमोघ-शक्ति सचयनकी प्रक्रिया है, जो सर्वसिद्धिदायिका है।

अब 'पितृलोक'की बातपर थोड़ा ध्यान दें। **'पा-रक्षणे'** धातुसे **'पाति—रक्षति य सः पिता, पान्तीति पितरः—तेषा पितॄणा लोकः पितृलोक'**—सिद्ध होता है। यह पितृलोक उन्हीं भगवान् सूर्यका लोक है, जो सभीके रक्षक हैं तथा यहाँ सभी पितरोंका समीकरण है। अतएव तर्पण और पिण्ड-दानादि सभी पितृकर्म सूर्य-शक्तिके द्वारा ही यथास्थान पहुँचते हैं। इसमें प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि रात्रिमें—सम्बद्ध भूभागके सूर्यादर्शनकालमें कोई पितृकर्म नहीं होते हैं। 'कुतुप' काल—मध्याह्नकालमें ही पिण्डदान आदिका विधान है। श्राद्धमें सपिण्डीकरण भी सूर्यास्तसे बहुत पहले ही करनेका नियम है। दैनिक तर्पण भी रात्रिमें या प्रात अरुणोदयसे पहले नहीं किये जाते हैं। तात्पर्य यह कि सभी पितृ-कर्मोंका सम्बन्ध सीधे सूर्यतत्त्व—सूर्यशक्तिसे ही है।

कहा जाता है कि आधुनिक वैज्ञानिकोंका हाइड्रोजन-आक्सिजन भी उस वैदिक 'मित्रावरुण'का ही पर्यायवाची शब्द है, जो मित्रावरुण सूर्यशक्ति ही है। मित्र और सूर्य—य पर्यायवाची शब्द हैं तथा वरुण जलतत्त्व-के अधिष्ठाता सूर्यतत्त्वाधीन हैं, जो ऊपरकी पक्तियोंमें स्पष्ट किया गया है।

आधुनिक वैज्ञानिकोंमें तो आज 'सौर ऊर्जा' ग्रहण करनेकी होड़-सी लगी हुई है। इसपर तो बहुत अधिक कार्य और प्रयोग भी हो चुके हैं और हो रहे हैं।

क्या शस्योत्पादन—सशक्ति अन्नोत्पादन तथा सुन्दर फल-पुष्पोंके विकासमें सर्वाधिक महत्त्व सूर्यशक्तिका नहीं है ?

उपर्युक्त अति संक्षिप्त विवेचनके परिप्रेक्ष्यमें यह कहना पर्याप्त होगा कि 'आध्यात्मिक', 'आधिदैविक' तथा 'आधिभौतिक' शक्तियोंकी प्राप्ति एवं उनके विकासके लिये सूर्य-शक्ति ही सर्वोपरि है। इस शक्तिके बलपर ही अन्य शक्तियाँ कार्यरत हो सकती हैं।

इस सूर्यशक्तिका संचय आस्तिक, नास्तिक, हिंदू, मुसल्मान, सिख और ईसाई प्रभृति सभीके लिये समान उपयोगी है। संचयनका सरल मार्ग सूर्यकी नैत्यिक उपासना और अर्चना ही है।

सूर्यतत्त्व विवेचन

(लेखक—प० श्रीकिशोरचन्द्रजी मिश्र, एम्० एस्-सी०, बी० एल्० (स्वर्णपदक), बी० एड्० (स्वर्णपदक)

'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'

संस्कृत-भाषामें 'तत्' एक सर्वनाम पद है, जो किसी भी संज्ञावाचक पदके बदले प्रयुक्त हो सकता है—चाहे वह संज्ञा पुल्लिंग हो या स्त्रीलिंग अथवा नपुंसक। व्याकरणके नियमानुसार व्यक्तिवाचक, पदार्थ वाचक, जातिवाचक अथवा समूहवाचक संज्ञामें 'त्व' जोड़कर भाववाचक संज्ञा बनायी जाती है, जैसे—देवत्व, मनुष्यत्व, असुरत्व प्रभृति। उसी प्रकार तत् और त्वके संयोगसे तत्त्व शब्द बनता है। तत्त्वका सरल अर्थ है उसका अपनापन, उसकी विशिष्टता अथवा उसका सारभूत निजत्व, जो अन्यत्र अलभ्य हो। अतएव 'सूर्यतत्त्व'का अभिप्राय यह है कि श्रीसूर्यकी अपनी विशिष्टता, उनका निजत्व, उनका सार-से-सार तत्त्व एवं उनका सूक्ष्मातिसूक्ष्म अस्तित्व।

किसीकी कुछ विशेषताएँ एवं महिमाएँ इन्द्रियगोचर होती हैं, कुछ इन्द्रियातीत। कुछ ऐसी अनेक विशेषताएँ हैं, जो हमारी इन्द्रियोंकी पकड़में नहीं आतीं, क्योंकि वे अत्यन्त सूक्ष्म हैं—सूक्ष्मातिसूक्ष्म हैं। वे न किसी सर्जनके शस्त्रास्त्रके द्वारा ज्ञात की जा सकती हैं और न विज्ञानकी किसी विश्लेषणात्मक पद्धतिद्वारा ही किसी प्रयोगशाला या परीक्षणशालामें विश्लेषित—परीक्षित हो सकती हैं। उन्हें परम इन्द्रियातीत अवस्थामें जाकर ज्ञात किया जा सकता है। ऐसी इन्द्रियातीत अवस्थामें पहुँच कर गहन-से-गहन तत्त्वोंका ... जिन्हीं पूर्वजोंको ... ऋषि

कहते हैं। वे ऐसी शक्तियोंसे सम्पन्न होते थे कि उनके लिये कुछ भी अज्ञात नहीं रहता अर्थात् उनके लिये सब कुछ हस्तामलकवत् हो जाते थे। वे त्रिकालदर्शी थे। विज्ञान अभीतक इन्द्रियातीत शक्ति प्राप्त नहीं कर सका है। इसलिये अभीतक ऋषि 'ऋषि' हैं और वैज्ञानिक 'वैज्ञानिक'। परंतु ये दोनों हैं सत्यके पुजारी एवं सत्यके अन्वेषक। इसलिये ऋषिद्वारा उद्घाटित अनन्त सत्यका समर्थन आज वैज्ञानिक मुक्तकण्ठसे कर रहे हैं और अनेकके अनुसंधानमें लगे हैं। ऋषि-संतान होनेके साथ-ही-साथ विज्ञानका एक विद्यार्थी होनेके कारण दोनों दृष्टियोंसे सूर्यतत्त्वपर हम प्रकाश डालनेका प्रयास करेंगे।

ऋषियोंने जो कुछ अनुभव किया है, देखा है और कहा है वे सब वेदमें उपलब्ध हैं। प्राचीनतावश वेदकी भाषा एवं कथन शैली विलक्षण है। कहीं-कहीं प्रतीकात्मक है, परोक्षप्रिय है और कहीं संकेतात्मक है। शब्दार्थ कुछ है और कहनेका असली अभिप्राय कुछ और ही है। किसी वस्तुकी सूक्ष्मतामें जाते-जाते हम ऐसे विन्दुपर पहुँचते हैं, जिसे अनिर्वाच्य कह सकते हैं, क्योंकि वाक् भूतात्मक है, इन्द्रिय निःसृत है और इन्द्रियग्राह्य भी। किंतु अनिर्वाच्यावस्था अतीन्द्रिय है एवं इन्द्रियके परेकी अवस्था है। अतएव किसीके वास्तविक तत्त्वको, सूक्ष्मातिसूक्ष्म अनिर्वाच्यावस्था या सारको व्यक्त करनेमें भाषाकी त्रुटि, भाषाकी अक्षमता हो है। इसलिये ऋषिकी बातों एवं वेदको समझना

अतार ज्ञानसाध्य तथा श्रमसाध्य है। वह घोर तपस्या चाहता है। अस्तु।

वैज्ञानिक-दृष्टिसे सूर्य 'अतीव तेजसः कूट', 'दुर्निरीक्ष्य', 'ज्योतिषा पतिः' हैं वे विशाल प्रकाशपुञ्ज हैं। उनका व्यास लगभग १३९२००० कीलोमीटर और वजन प्राय $२×१०^३$ कीलोग्राम है और आभ्यन्तरिक तापमान १३०००००० सेंटीमेट है, जिसे कल्पनासे परे कहा जा सकता है। सूर्यके प्रकाशसे सौर परिवारमें जहाँ जो है, सब प्रकाशित होते रहते हैं। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड* इनसे दीप्त होता रहता है। सूर्यमें प्रकाशकी मुख्यता है। इसलिये चन्द्र (अर्थात् उपग्रह) दामिनी-द्युति (अन्तरिक्षका प्रकाश) और अग्नि सूर्यकी ज्योति ही हैं। इन सबकी रोशनी, उष्मा या ऊर्जाका मूल स्रोत सूर्य ही हैं।

भारतीय वाङ्मयमें प्रकाश विभिन्न अर्थोंमें प्रयुक्त होता है। इसका सर्वाधिक प्रचलित अर्थ है ज्ञान, चैतन्य, सज्ञा और बोधलक्षणा बुद्धि। इसी प्रकार अन्धकार अज्ञानता, अविद्या, मूर्च्छा अथवा सज्ञाहीनताका पर्याय है। इस कारणसे भी देवीमाहात्म्यमें उत्तर चरित्रके विनियोगमें महासरस्वती देवता, सूर्य तत्त्व और रुद्र ऋषि हैं। कहनेका तात्पर्य यह है कि विद्या, बुद्धि और ज्ञानकी अधिष्ठात्री देवीके साथ देदीप्यमान भगवान् सूर्यका अचल सम्बन्ध है। ये दोनों उज्ज्वल हैं तथा दोनों जाड्य-नाशमें पूर्ण समर्थ हैं। 'प्राधानिक रहस्यम्'में स्पष्ट कहा गया है कि सरस्वती शिव (रुद्र) की सहोदरा हैं। एक 'कुन्देन्दुतुषारधवला' हैं तो दूसरे 'कर्पूरगौर' हैं।

देवीमाहात्म्यके उत्तरचरित्रके पञ्चम अध्यायमें देवताओंने देवीकी (सरस्वतीके रूपमें) सर्वव्यापकता रूपमें स्तुति की है। उसमें उन्होंने कहा है—'या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते' और 'या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता'† अर्थात् जो देवी सब भूतों (प्राणियों और पदार्थों)में चेतना और बुद्धिरूपसे विराज रही हैं। मूलतः महासरस्वतीको सूर्यतत्त्व मान लेनेपर सूर्य भी चेतना और बुद्धिरूप सिद्ध हो जाते हैं।

सूर्य (सोम और वैश्वानरका रूप धारण करके) पृथ्वीमें व्याप्त होकर तृण-लता, जीव-जन्तु—प्राणी प्राणीमें व्याप्त हो इन सबकी उत्पत्ति और पालन पोषणका कार्य करते रहते हैं।

इस अर्थमें सूर्य सविता (जन्मदाता) और पूषा (पोषण करनेवाले) भी हैं। वह्निपुराण स्पष्ट शब्दोंमें कहता है कि—'कृष्णवर्यो भगवान् विष्णु सविता स तु कीर्तित' अर्थात् भगवान् श्रीकृष्णके कथनानुसार विष्णु ही सविता कहे जाते हैं। सविता ही विष्णु हैं। विष्णु और सविता—ये दोनों पर्यायवाचक शब्द हैं। सूर्यके कारण ही ओषधियों एव वनस्पतियोंकी कृषि पृथ्वी पर सम्भव है। इनके प्रभावसे ही पृथ्वी शस्यश्यामला बनी रहती तथा वसुन्धरा कहलाती है। धनका प्रभव सूर्यके कारण है।

वेद सबकी उत्पत्ति ब्रह्मसे मानते हैं। विज्ञानने ब्रह्मसाक्षात्कार अभीतक नहीं किया है। अत उसके अनुसार कुछ अणुओंके किसी कारणवश एक साथ सबद्ध हो जानेपर उनके रासायनिक विस्फोटसे अत्यधिक ऊर्जाके उत्पन्न होनेसे धीरे-धीरे एक विशाल वाष्पीय धधकता हुआ पिण्ड बन गया। पौराणिक शब्दमें सूर्य स्वयम्भू (अपने आप प्रकट) हैं। अतएव जन्मके लिये, अपनी ऊष्माके लिये, अपने ईंधनके लिये, अपने प्रकाशके लिये और अपने

* जहाँतक सूर्यका प्रकाश जाता है, वहाँतकको एक ब्रह्माण्ड माना जाता है। विश्वमें कोटि ब्रह्माण्ड हैं—ऐसा कहनेका तात्पर्य यह है कि हमारे सूर्यकी भाँति ज्वलन्त प्रकाश पिण्ड सहस्रों ही नहीं, करोड़ों हैं।

† श्रीदुर्गासप्तशती

उपर्युक्त अति संक्षिप्त विवेचनके परिप्रेक्ष्यमें यह कहना पर्याप्त होगा कि 'आध्यात्मिक', 'आधिदैविक' तथा 'आधिभौतिक' शक्तियोंकी प्राप्ति एवं उनके विकासके लिये सूर्य-शक्ति ही सर्वोपरि है। इस शक्तिके बलपर ही अन्य शक्तियाँ कार्यरत हो सकती हैं।

इस सूर्यशक्तिका संचय आस्तिक, नास्तिक, हिंदू, मुसल्मान, सिख और ईसाई प्रभृति सभीके लिये समान उपयोगी है। सचयनका सरल मार्ग सूर्यकी नैष्ठिक उपासना और अर्चना ही है।

सूर्यतत्त्व-विवेचन

(लेखक—पं० श्रीकिशोरचन्द्रजी मिश्र, एम्० एस्-सी०, बी० एल्० (स्वर्णपदक), बी० एड्० (स्वर्णपदक)

'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'

संस्कृत भाषामें 'तत्' एक सर्वनाम पद है, जो किसी भी संज्ञावाचक पदके बदले प्रयुक्त हो सकता है—चाहे वह संज्ञा पुल्लिंग हो या स्त्रीलिंग अथवा नपुंसक। व्याकरणके नियमानुसार व्यक्तिवाचक, पदार्थवाचक, जातिवाचक अथवा समूहवाचक संज्ञामें 'त्व' जोड़कर भाववाचक संज्ञा बनायी जाती है, जैसे—देवत्व, मनुष्यत्व, असुरत्व प्रभृति। उसी प्रकार तत् और त्वके संयोगसे तत्त्व शब्द बनता है। तत्त्वका सरल अर्थ है उसका अपनापन, उसकी विशिष्टता अथवा उसका सारभूत निजत्व, जो अन्यत्र अलभ्य हो। अतएव 'सूर्य-तत्त्व'का अभिप्राय यह है कि श्रीसूर्यकी अपनी विशिष्टता, उनका निजत्व, उनका सार-से-सार तत्त्व एवं उनका सूक्ष्मातिसूक्ष्म अस्तित्व।

किसीकी कुछ विशेषताएँ एवं महिमाएँ इन्द्रियगोचर होती हैं, कुछ इन्द्रियातीत। कुछ ऐसी अनेक विशेषताएँ हैं, जो हमारी इन्द्रियोंकी पकड़में नहीं आतीं, क्योंकि वे अत्यन्त सूक्ष्म हैं—सूक्ष्मातिसूक्ष्म हैं। वे न किसी सर्जनके शल्यास्त्रके द्वारा ज्ञात की जा सकती हैं और न विज्ञानकी किसी विश्लेषणात्मक पद्धतिद्वारा ही किसी प्रयोगशाला या परीक्षणशालामें विश्लेषित—परीक्षित हो सकती हैं। उन्हें केवल इन्द्रियातीत अवस्थामें जाकर ज्ञात किया जा सकता है। वैसा इन्द्रियातीत अवस्थामें पहुँचकर गहन-से-गहन तत्त्वोंको स्पष्ट देखनेका श्रेय हमारे किन्हीं पूर्वजोंको है, जिन्हें हम ऋषि (मन्त्रद्रष्टा) कहते हैं। वे ऐसी शक्तियोंसे सम्पन्न होते थे कि उनके लिये कुछ भी अज्ञात नहीं रहता अर्थात् उनके लिये सब कुछ हस्तामलकवत् हो जाते थे। वे त्रिकालज्ञ थे। विज्ञान अभीतक इन्द्रियातीत शक्ति प्राप्त नहीं कर सका है। इसलिये अभीतक ऋषि 'ऋषि' हैं और वैज्ञानिक 'वैज्ञानिक'। परंतु ये दोनों हैं सत्यके पुजारी एवं सत्यके अन्वेषक। इसलिये ऋषिद्वारा उद्घाटित अनेक सत्यका समर्थन आज वैज्ञानिक मुक्तकण्ठसे कर रहे हैं और अनेकके अनुसंधानमें लगे हैं। ऋषि-संतान होनेके साथ-ही-साथ विज्ञानका एक विद्यार्थी होनेके कारण दोनों दृष्टियोंसे सूर्यतत्त्वपर हम प्रकाश डालनेका प्रयास करेंगे।

ऋषियोंने जो कुछ अनुभव किया है, देखा है और कहा है वे सब वेदमें उपलब्ध हैं। प्राचीनतावश वेदकी भाषा एवं कथन शैली क्लिष्ट है। कहीं-कहीं प्रतीकात्मक है, परोक्षप्रिय है और कहीं संकेतात्मक है। शब्दार्थ कुछ है और कहनेका असली अभिप्राय कुछ और ही है। किसी वस्तुकी सूक्ष्मतामें जाते-जाते हम ऐसे बिंदुपर पहुँचते हैं, जिसे अनिर्वाच्य कह सकते हैं, क्योंकि वाक् भूतात्मक है, इन्द्रिय निःसृत है और इन्द्रियग्राह्य भी। किंतु अनिर्वाच्यावस्था अतीन्द्रिय है एवं इन्द्रियके परेकी अवस्था है। अतएव किसीके वास्तविक तत्त्वको, सूक्ष्मातिसूक्ष्म अनिर्वाच्यावस्था या सारको व्यक्त करनेमें भाषाकी त्रुटि, भाषाकी अक्षमता ही जाती है। इसलिये ऋषिकी बातों एवं वेदको समझना

*

प्रकार ज्ञानसाध्य तथा श्रमसाध्य है। वह कठोर तपस्या चाहता है। अस्तु।

वैज्ञानिक-दृष्टिसे सूर्य 'अतीव तेजस फूट', 'दुर्निरीक्ष्य', 'ज्योतिषां पतिः' हैं, वे विशाल प्रकाशपुञ्ज हैं। उनका व्यास लगभग १३९२००० कीलोमीटर और वजन प्रायः २×१०^{२७} कीलोग्राम है और आभ्यन्तरिक तापमान १३०००००० सेंटीग्रेट है, जिसे कल्पनासे परे कहा जा सकता है। सूर्यके प्रकाशसे सौर परिवारमें जहाँ जो है, सब प्रकाशित होते रहते हैं। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड* इनसे दीप्त होता रहता है। सूर्यमें प्रकाशकी मुख्यता है। इसलिये चन्द्र (अर्थात् उपग्रह) दामिनी-द्युति (अन्तरिक्षका प्रकाश) और अग्नि सूर्यकी ज्योति ही हैं। इन सबकी रोशनी, उष्मा या ऊर्जाका मूल स्रोत सूर्य ही हैं।

भारतीय वाङ्मयमें प्रकाश विभिन्न अर्थोंमें प्रयुक्त होता है। इसका सर्वाधिक प्रचलित अर्थ है ज्ञान, चैतन्य, संज्ञा और बोधलक्षणा बुद्धि। इसी प्रकार अन्धकार अज्ञानता, अविद्या, मूर्च्छा अथवा संज्ञाहीनताका पर्याय है। इस कारणसे भी देवीमाहात्म्यमें उत्तर चरित्रके विनियोगमें महासरस्वती देवता, सूर्य तत्त्व और रुद्र ऋषि हैं। कहनेका तात्पर्य यह है कि विद्या, बुद्धि और ज्ञानकी अधिष्ठात्री देवीके साथ देदीप्यमान भगवान् सूर्यका अचल सम्बन्ध है। ये दोनों उज्ज्वल हैं तथा दोनों जाड्य-नाशमें पूर्ण समर्थ हैं। **'प्राधानिक रहस्यम्'**में स्पष्ट कहा गया है कि सरस्वती शिव (रुद्र) की सहोदरा हैं। एक **'कुन्देन्दुतुषारधवला'** हैं तो दूसरे **'कर्पूरगौर'** हैं।

देवीमाहात्म्यके उत्तरचरित्रके पञ्चम अध्यायमें देवताओंने देवीकी (सरस्वतीके रूपमें) सर्वव्यापकता रूपमें स्तुति की है। उसमें उन्होंने कहा है—**'या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते'** और **'या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता'**† अर्थात् जो देवी सब भूतों (प्राणियों और पदार्थों) में चेतना और बुद्धिरूपसे विराज रही हैं। मूलतः महासरस्वतीको सूर्यतत्त्व मान लेनेपर सूर्य भी चेतना और बुद्धिरूप सिद्ध हो जाते हैं।

सूर्य (सोम और वैश्वानरका रूप धारण करके) पृथ्वीमें व्याप्त होकर तृण-लता, जीव-जन्तु—प्राणी प्राणीमें व्याप्त हो इन सबकी उत्पत्ति और पालन पोषणका कार्य करते रहते हैं।

इस अर्थमें सूर्य सविता (जन्मदाता) और पूषा (पोषण करनेवाले) भी हैं। वह्निपुराण स्पष्ट शब्दोंमें कहता है कि—**'कृष्णश्च भगवान् विष्णु सविता स तु कीर्तितः'** अर्थात् भगवान् श्रीकृष्णके कथनानुसार विष्णु ही सविता कहे जाते हैं। सविता ही विष्णु हैं। विष्णु और सविता—ये दोनों पर्यायवाचक शब्द हैं। सूर्यके कारण ही ओषधियों एवं वनस्पतियोंकी कृषि पृथ्वी पर सम्भव है। इनके प्रभावसे ही पृथ्वी शस्यश्यामला बनी रहती तथा वसुन्धरा कहलाती है। फलतः प्रभव सूर्यके कारण है।

वेद सबकी उत्पत्ति ब्रह्मसे मानते हैं। विज्ञानने ब्रह्मसाक्षात्कार अभीतक नहीं किया है। अतः उसके अनुसार कुछ अणुओंके किसी कारणवश एक साथ सबद्ध हो जानेपर उनके रासायनिक विस्फोटसे अत्यधिक ऊर्जाके उत्पन्न होनेसे धीरे-धीरे एक विशाल वाष्पीय धधकता हुआ पिण्ड बन गया। पौराणिक शब्दमें सूर्य स्वयम्भू (अपने आप प्रकट) हैं। अतएव जन्मके लिये, अपनी ऊष्माके लिये अपने ईंधनके लिये, अपने प्रकाशके लिये और अपने

* जहाँतक सूर्यका प्रकाश जाता है, वहाँतकको एक ब्रह्माण्ड माना जाता है। विश्वमें कोटि ब्रह्माण्ड हैं—ऐसा कहनेका तात्पर्य यह है कि हमारे सूर्यकी भाँति ज्वलन्त प्रकाश पिण्ड सहस्रों ही नहीं, करोड़ों हैं।

† श्रीदुर्गासप्तशती

नानाविध कार्योंके लिये वे पूर्णतः आत्मनिर्भर हैं। ऐसी धारणामें वैज्ञानिक वेदान्तियोंके साथ इस बातपर सहमत दीख पड़ते हैं कि अद्वैतवादियोंके ब्रह्मकी भाँति सूर्य भी अपने निर्माण, सौर-परिवारक ग्रहों उपग्रहों तथा पृथ्वीपरकी सारी सृष्टिके निर्माणमें निमित्तकारण हैं, उपादानकारण एवं साथ-साथ कर्ता भी हैं। इस प्रकार पृथ्वी ही नहीं, सम्पूर्ण सौर परिवारके कर्ता, निमित्तकारण और उपादानकारण होनेसे अनेक ब्रह्मविद् ऋषियोंने अपने ब्रह्मजिज्ञासु शिष्योंको ब्रह्मज्ञानके लिये इन्हीं सूर्यकी उपासनाका आदेश दिया था।

ऊर्णनाभि-(मकड़ी) द्वारा अपने शरीरसे तन्तु निकालकर स्वयं अपना जाल बना लेना सम्भवतः ब्रह्मतत्त्वको स्पष्ट करनेके लिये उतना प्रभावकारी दृष्टान्त नहीं है, जितना सूर्यका अपने-आप शून्यसे प्रकट हो जाना, अपने अंशसे पृथ्वी तथा अन्य ग्रहोंका सृष्टिकर्ता बनना और अपनी आकर्षणशक्तिसे सब ग्रहों उपग्रहोंसे अपने चतुर्दिक् चक्कर लगवाना और पृथ्वीपर लाखों-करोड़ों प्रकारके विभिन्न भूतों, पदार्थों एवं प्राणियोंकी सृष्टिकर उनका भरण-पोषण तथा यथासमय लय करना है। ब्रह्मके सदृश (शून्यमात्रसे विश्व निर्माण होना) आदि गुणोंके कारण सूर्यको भारतके मेधावियोंने ब्रह्मको समझनेका सर्वश्रेष्ठ साधन माना है।

सम्भवतः इसीसे सूर्यको सौर-परिवारका ब्रह्म (प्रभव तथा लयस्थान) होनेके कारण ऋषियोंने इतनी भक्तिसे घोषणा की है—'तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि'—मैं उस सविता देवके वरेण्य भर्गका ध्यान करता हूँ, इसलिये कि वे 'धियो यो नः प्रचोदयात्' हमारी ब्रह्मप्रकाशिका बुद्धिको प्रेरित करें, हमें ब्रह्मज्ञान दें—हमें ब्रह्मकी प्राप्ति हो सके। यह निःसंदेह है कि गायत्री (वेदमाता) के सम्यक् अध्ययनसे ब्रह्मसाक्षात्कार हो सकता है। नित्य और नाशवान्का, निर्गुण और सगुणका तथा सत्य और असत्यका ज्ञान हो सकता है एवं महामायाकी कृपासे मायासे मुक्ति भी मिल सकती है।

सूर्यका अत्यन्त गहरा सम्बन्ध काल (समय) से भी है। कला-काष्ठादिरूपसे परिणामप्रदायक है काल और पृथ्वीपर कालगणनाके मुख्य आधार हैं सूर्य। इसकी विशद विवेचना सूर्यसिद्धान्त प्रभृति ग्रन्थोंमें है। मनीषियोंने कालको अत्यधिक शक्तिशाली माना है। किसी-किसीने इसे एक तत्त्व तथा सृष्टिका एक महत्त्वपूर्ण घटक माना है। कृषिविज्ञानकी उन्नति प्रगति होनेपर भी कुछ शस्य ऐसे हैं, जो पूर्ण प्रयत्न करनेपर भी समयसे पूर्व अङ्कुरित नहीं होते एवं समयसे पूर्व फल-फूल नहीं देते—मानो वे पुष्टि करते हैं इस उक्तिकी—'समय पाय तरुवर फरै केतिक सींचो नीर'। आचार्य वराहमिहिर कालको ही सभी कारणोंका कारण मानते हैं।

'काल कारणमके—' (बृहत्संहिता १। ७)। अथर्ववेद इससे भी आगे बढ़कर कहता है—'कालो हि सर्वेश्वरः'[1]। सृष्टिके प्रसङ्गमें काली, महाकाली अथवा महाकालकी कल्पना भी कालकी प्रभव प्रलयकारिणी शक्तिकी परिचायिका है। यहाँ यह कहनेका संक्षेपमें अभिप्राय यही है कि 'कालको परिणित करनेवाला तथा जिसका जन्म हुआ है उसको शैशव, कौमार्य, यौवन, वयस्क, प्रौढ़ तथा वार्धक्यसे होते हुए मृत्युतक पहुँचानेवाले और पुनः गर्भाधानसे लेकर विकासके विभिन्न सोपानों एवं जन्मतक पहुँचानेवाले कालके नियन्ता तथा विभिन्न ऋतुओंके निर्माता सूर्य ही हैं। अथ च कालकी सम्पूर्ण शक्ति सूक्ष्मातिसूक्ष्मरूपसे सूर्यमें ही सन्निविष्ट है।

अत्यन्त काव्यात्मक तथा विज्ञानात्मक ढंगसे सृष्टिके व्यक्त होनेका वर्णन करती हुई श्रुति कहती है—चक्षोः सूर्यो अजायत[2]। सूर्य विराट् पुरुषके

१ (अथर्ववेद १९। ५३। ३८)। २ (ऋग्वेद, मण्डल १०, सूक्त ९०)।

आँखसे प्रकट हुए। अतएव इनका सर्वप्रमुख कार्य हुआ देखना। देखना ही जानना है। सूर्य वस्तुओंको रूपायित करते हैं, दृश्य बनाते हैं, दृष्टिपथमें लाते हैं, ज्ञान प्रदान करते हैं और बुद्धिको भी प्रेरित या सक्रिय करते हैं। इस कारण सूर्यको 'जगत चक्षु' या 'जगच्चक्षु', 'गुरूणा गुरु', 'जगद्गुरु' सर्वश्रेष्ठ अन्धकारनाशक, अज्ञान दूर करनेवाला और कर्मसाक्षी भी कहा जाता है। शायद इसीलिये निभृत से निभृत स्थानमें गुप्तातिगुप्तरूपसे किया गया कर्म भी प्रकट हो जाता है और किसी-न किसी रूपमें सृष्टिको प्रभावित करते हुए कर्त्ताको भी प्रभावित करता है।

जिस प्रकार निष्क्रिय ब्रह्मकी अनन्तानन्त क्रियाएँ गिनी-गिनायी नहीं जा सकती हैं वैसे ही 'शतधा वर्तमान' सूर्यकी सैकड़ों क्रियाएँ एव उनकी सहस्रमुखी क्षमताका विवरण नहीं दिया जा सकता। सूर्यकी ये अनगिनत किरणें प्रतिक्षण अनेकानेक स्थानोंपर—गदी-से-गदी जगहपर, रम्य-से-रम्य स्थानपर, पवित्र-से-पवित्र स्थलपर और भयकर एव दुर्गन्धपूर्ण स्थानपर भी पड़ती हैं, परतु इसके कारण उनमें कोइ विकार नहीं आता है। इतना ही नहीं, सूर्यकिरणें गदगियाँ दूर करती हैं तथा गङ्गाकी भाँति सबको पवित्र करती हैं। इसलिये सत श्रीतुलसीदासजीने कहा है—

समरथ के नहिं दोष गुसाईं। रवि पावक सुरसरि की नाईं॥

साराशत सूर्यका प्राकट्य शून्य या विराट् पुरुषकी आँखसे है। सूर्यके मुख्य-मुख्य कर्म—प्रकाश एव उष्मादान, धीको प्रेरित करना, ग्रह-उपग्रहोंकी सृष्टि एव उनका धारण, उनका सचालन प्रभृति, काल-नियन्त्रण, उनकी निर्लिप्तता तथा पवित्र करनेकी क्रिया आदि है। सूर्य-तत्त्वके विषयमें वैज्ञानिक तर्कके आधारपर यदि विज्ञान अभीतक ऋषियोंके स्वर-में-स्वर मिलाकर 'आदित्यो ब्रह्म' नहीं कह सकता है तो इतना तो अवश्य कह सकता है कि सूर्य सृष्टिसचालिका किसी अज्ञात सर्वश्रेष्ठ शक्तिकी (जिसे वेद ब्रह्म, परमात्मा या आद्याशक्ति कहता है) अति तेजस्वी प्रत्यक्ष विभूति हैं, जो निष्काम कर्मयोगीका सर्वाधिक ज्वलन्त दृष्टान्त हैं और जो सदैव प्राणियोंका नानाविध कल्याण करनेमें ही लगे रहते हैं। सूर्य वस्तुत विरञ्चिनारायणशकरात्मा हैं। 'त्रयीमय' हैं और एक शब्दमें यह 'त्रयीमयत्व' ही सूर्यतत्त्व है। कवि-कुलशिरोमणि सत तुलसीके शब्दोंमें 'तेज प्रताप रूप-रस-राशि'* सूर्यका तत्त्व है, तेज, प्रताप, रूप और रसका प्राचुर्य ही सूर्यत्व है। जो 'आदित्यो ब्रह्म' यह नहीं स्वीकार कर सके, उन्हें इतना तो स्वीकार करना ही चाहिये कि सूर्य सौर-परिवारके प्रत्यक्ष अध्यक्ष तथा परमात्माके सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि हैं। अत वे सभीके लिये परम पूज्य जगतके श्रेष्ठ देवता हैं।

हम सबका कल्याण करें

परम प्रकाशवान् रवि जिसको स्वत तमादि प्रयाण करे।
मुक्तिप्रदायक जो भक्तोंका भवभयधनसे त्राण करे॥
धमवृद्धि कर जो जन मनमें नित-नवनूतन प्राण भरे।
परम प्रकाशक सवितामण्डल हम सबका कल्याण करे॥

—प० श्रीबाबूलालजी द्विवदी

---

* विनयपत्रिका, सूर्यस्तुति २।

सूर्य तत्त्वकी मीमासा

(लेखक—श्रीविश्वनाथजी शास्त्री)

सूर्य मानवीय जीवन, प्रज्ञा और विज्ञानके आदि उत्स हैं । सूर्यसे ही ब्रह्माण्ड उत्सर्जित है ।

पाश्चात्य भौतिक वैज्ञानिक सूर्यको निम्न भाषामें कहते हैं—Sun the star which was governs illuminates the earth other bodies forming the solar system By the patient efforts of astronomers and physicists a vast body of knowledge of which her we can but give the outline has been gained regarding it. For convenience we condense such of this infromation as admits of the treatment into the subjoined table —Chambers EncycloPedia, Vol IX (1904 Edi)

अर्थात् यह जो सूर्य है, वह प्रचण्ड गर्म नक्षत्र है । यह पृथ्वीका नियामक और प्रकाशक है । इसकी गतिके अनुसार ही महीनोंका निर्माण और विभाग हुआ है । ज्योतिष-शास्त्र और चिकित्सा-विज्ञानकी प्रणालियोंके लिये यह बहुत उपयोगी है । देह-रचना और रोगके हटानेमें यह प्रभूत सुविधा प्रदान करता है । भारतीय पुरातत्त्वीय चिकित्सकोंका भी सम्मत है—

'आरोग्य भास्करादिच्छेत् ।' भास्करकी उपासना एव प्रार्थनासे ही आरोग्य मिलता है । ऋग्वेद (म० ७, सू० ६२, मं० १) में ठीक इसी तरहका भाव है ।

यथा—

उत सूर्यो बृहदर्चीष्य श्रेत् पुरु
विश्वा जनिम मानुषणाम् ।
समो दिवा ददृशे रोचमान
क्रत्वा कृतः सुकृत कर्तृभिर्भूत् ॥

अर्थात—ये सूर्य जो सबके प्रेरक हैं, वे अत्यन्त तेजोमय हैं । ऊपरमें स्थित होकर भी ये नागरिकोंको तेजवान् करते हैं । उनका उत्कर्ष कहाँतक कही जाय ? वे समानरूपसे हमारे—क समीक, उपयोगि-समूहोंके उत्पादक हैं । प्रति प्रतिक्षण मनको मानेवाले ये देव इस जगत् नियामक हैं, तत्त्वोंके सम्पादक हैं और सभी सत्कर्म दाता हैं । इसलिये तत्त्वदर्शियों-(विज्ञानियों) द्वा ये सर्वदा स्तुत्य हैं । पुण्य-कार्य, मङ्गल-कार्य और शु कार्यके बनानेवाले हैं । इनका उदय कितना विचित्र है

चित्र देवानामुदगादनीक चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्ने । आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्ष सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च (ऋ० १ । ११५ । १, ऐ० आ० ३ । ९, अथर्व० १३ । २ । ३५, वा० य० ७ । ४२, तै० स० १ । ४ । ४३, तै० ब्रा० २ । ८ । ७ । ३, तै० आ० १ । ७ । ६ नि० १२ । १६)

सायणभाष्यके अनुसार ये जगन्मात्रके आत्मस्वरूप (परमात्मा) सूर्य स्थावर-जङ्गम सभी प्राणियोंको अपने तेजोमय प्रकाशसे जाग्रत् करते हैं । इनके किरणसमूह जीवमें जीवन-सचार करते हैं । मित्र, वरुण, अग्नि, चक्षु , प्राण, अपान, जठर, वायु और जलके ये अद्भुत प्रवर्तक हैं । ये चक्षु स्वरूपके सद्य एव सर्वत्र अन्तर्यामीरूपसे विद्यमान हैं । अथर्ववेद (२ । ३२ । १)में कहा है—

'उद्यन्नादित्य क्रिमीन् हन्तु निम्रोचन् हन्तु रश्मय ।'

अर्थात आदित्य अपनी रश्मियोंसे, जीवनके सभी दोषोंसे मुक्त करते हुए रोगोंके कीटाणुओंको मार देते हैं, जीवनको रोगमुक्त कर स्वस्थ बनाते हैं । ऋग्वेद (८ । २९ । १०) में लिखा है—

'अर्चन्त एके महिसाममन्यत तेन सूर्यमरोचयन् ।'

एकमात्र सूर्यकी अर्चनासे ही प्राणी भारी-से-भारी कार्यमें सफलता तथा सर्वज्ञता पाते हैं । अतएव

सभी लोग सर्वोत्पादक इन भगवान् सूर्यको सबसे अधिक चाहते हैं।

सूर्य जगत्‌के सृष्टिकर्ता—ब्रह्मा हैं

अमरकोश (स्व० व० १६) में ब्रह्माको हिरण्यगर्भ कहा गया है—

ब्रह्मात्मभूः सुरज्येष्ठः परमेष्ठी पितामहः ।
हिरण्यगर्भो लोकेशः स्वयम्भूश्चतुराननः ॥

वेदोंमें और पुराणादि धर्म ग्रन्थोंमें भी सूर्यको हिरण्यगर्भ, आदित्य तथा विधाताके नामोंसे सृष्टिकर्ता कहा गया है, यथा—

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे
भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

(ऋ० १० । १२१ । १ वा यजु० १३ । ४, अथर्व० ४ । २ । ७, तै० सं० ४ । १ । ८ । ३ ताण्ड्य ब्रा० ९ । ९ । १२, नि० १० । २३)

निरुक्तके टीकाकार दुर्गाचार्यके अनुसार उक्त मन्त्रका अर्थ यह है—हिरण्यगर्भ ब्रह्मा (ब्रह्मणा या हिरण्यगर्भावस्था) सकल प्राणियोंकी उत्पत्तिके पूर्व स्वय शरीर धारण करते हैं। वे एकमात्र सृष्टिकर्ता हैं जो जगत्‌के सम्बन्धभूत स्थावर-जङ्गमादिके ईश्वर हैं। वे अन्तरिक्ष-लोक, द्युलोक और भूलोकको धारण करते हैं। इन सभी तत्त्वोंमें वे ओतप्रोत होकर वास करते हैं। उन महान् प्रजापतिके लिये हम हवि प्रदान करते हैं।

ब्रह्मपुराण (अ० ३१) में लिखा है—

आदित्यमूलमखिलं त्रैलोक्यं मुनिसत्तमाः ।
भवत्यस्माज्जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥
रुद्रोपेन्द्रमहेन्द्राणां विप्रेन्द्रत्रिदिवौकसाम् ।
महाद्युतिमतां चैव तेजोऽयं सार्वलौकिकम् ॥
सर्वात्मा सर्वलोकेशो देवदेवः प्रजापतिः ।
सूर्य एव त्रिलोकस्य मूलं परमदैवतम् ॥

'हे मुनिवर ! त्रिलोकके मूल आदित्य हैं। इन्हींसे सम्पूर्ण जगत्, सभी देवता, असुर, मनुष्य, रुद्र, उपेन्द्र, महेन्द्र, विप्रेन्द्र और तीनों लोकोंके तीनों देवता, समस्त लोकोंके महाप्रकाशक तेजवान्, सर्वात्मा एवं सर्वलोकेश, देवाधिदेव, प्रजापति उत्पन्न हैं। ये ही सूर्य तीनों लोकोंके मूल हैं तथा परम देवता हैं। सभी देवता इन सूर्यकी रश्मियोंमें निविष्ट हैं। ये तीन भागोंमें विभक्त हैं।'

सूर्यका त्रिदेवत्व

भविष्योत्तरपुराणके कृष्णार्जुन-संवाद (आदित्य हृदयस्तोत्र) में भगवान्‌ने कहा है कि—

उदये ब्रह्मणोपेन मध्याह्ने तु महेश्वरम् ।
अस्तकाले भवेद्विष्णुः त्रिमूर्तिश्च दिवाकरः ॥

सूर्य उदयकालमें ब्रह्मा, मध्याह्नकालमें महेश्वर और अस्तके समय विष्णुरूप हैं।

ऋग्वेद (५ । ६२ । ८) में कहा गया है कि—

'हिरण्यरूपमुषसो व्युष्टावयः स्थूणमुदिता सूर्यस्य।'

सूर्यके उदय होनेपर उषाकालमें सूर्य हिरण्यरूप (ब्रह्मस्वरूप) होते हैं।

सूतसंहिता शिवमाहात्म्यखण्ड, १३ अ० में कहा है कि—

हिरण्यगर्भो भगवान् ब्रह्मा विश्वजगत्पतिः ।

बृहद्देवता (१ । ६१) में शौनकाचार्यने लिखा है कि—

भवद्भूतं भविष्यं च जङ्गमं स्थावरं च यत् ।
अस्यैके सूर्यमेवैकं प्रभवं प्रलयं विदुः ॥
असतश्च सतश्चैव योनिरेषा प्रजापतिः ।
तदक्षरं चाव्ययं च यच्चैतद् ब्रह्म शाश्वतम् ॥
कृत्वैव हि त्रिधात्मानमेषु लोकेषु तिष्ठति ।
देवान् यथायथं सर्वान् निवेश्य स्वेषु रश्मिषु ॥

'भूत, भविष्य, वर्तमान स्थावर, जङ्गम तथा सत्-असत् इन सबके उत्पादन-क्षेत्र एकमात्र सूर्यप्रजापति

सूर्यमें ही सभी तत्त्व, सभी भूत, सभी जीवन, सभी क्षर-अक्षर नाशवान् और अव्ययकी मूल सत्ता व्यवस्थित है—केवल ब्रह्म-सूर्यमें ही सर्वदा सन्नद्ध हैं। सूर्यकी ही रश्मियोंमें लोक, परलोक, देव, पितर, मानव और ब्रह्माण्ड आदि निवेशित हैं।' इसी प्रकार साम्बपुराण (४।१—५) में लिखा है—

अनाद्यो लोकनाथः स विश्वमाली जगत्पतिः।
मित्रत्वेऽध्यस्थितो देवस्तपस्तेपे नराधिपः।
अनादिनिधनो ब्रह्मा नित्यश्चाक्षर एव च।
सृष्ट्वा प्रजापतीन् सर्वान् सृष्ट्वा च विविधाः प्रजाः।
ततः स च सहस्रांशुरव्यक्तः पुरुषः स्वयम्।

'आदि-अन्तहीन लोकेश्वर ब्रह्माण्डके संचालक और जगत्के स्वामी सूर्यने अपने मित्रभावमें अवस्थित होकर तेजतापद्वारा इस चराचर जगत्की रचना की है। विश्व-सृजनके बाद ब्रह्मारूपमें प्रजाकी सृष्टि की है। ये अव्यक्त हैं एवं हजारों किरणवाले विराट् पुरुष हैं। इन्हींमें सारी सृष्टि है।'

सूर्य—विष्णु

वेद, ब्राह्मण, संहिता और पुराणोंमें सूर्य ही विष्णु हैं। विष्णु द्वादशादित्योंमें होना अर्थात् बारहवाँ आदित्य हैं। वेदका एक मन्त्र यहाँ उद्धृत किया जा रहा है—

अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे।
पृथिव्याः सप्त धामभिः॥
(—ऋ० १।२२।१६)

जिस प्रकार सात किरणोंके द्वारा विष्णु पृथिवीकी परिक्रमा करते हैं, उसी प्रकार उन्हीं तत्त्वोंद्वारा वे हम सबकी रक्षा करें।

वैदिक कोष निघण्टुमें कहा गया है—

तीव्ररश्मिद्वारेण सर्वत्र हि आविशतीति विष्णुः।
(— ।११)

अपनी तेज और तीक्ष्ण रश्मियोंद्वारा सर्वत्र फैलनेके कारण सूर्य विष्णु कहे जाते हैं।

इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्।
समूळ्हमस्य पांसुरे॥ (ऋ० १।२२।१७)

विष्णु अपने अदृश्य पादसे पृथ्वी, द्यौ और अन्तरिक्ष किरणद्वारा धूल-धूसरित विश्वको प्रकाशित करते हैं।

सूर्य और शिव तथा शैव शक्तियाँ

सूर्यः शिवो जगन्नाथः सोमः साक्षादुमा स्वयम्।
आदित्यो भास्करो भानु रविर्देवो दिवाकरम्॥
उमा प्रभा तथा प्रज्ञा सन्ध्या सावित्रीमेव च॥
(—लिङ्गपु० उ०, अ० १९)

'रुद्रो वैवस्वतः साक्षात्' (—वायुपु० अ० ५३)

सूर्य, शिव, जगन्नाथ और सोम स्वयं साक्षात् उमा हैं। आदित्य, भास्कर, भानु, रवि तथा दिवाकर देव हैं। इनकी शक्तियाँ ये हैं—उमा, प्रभा, प्रज्ञा, सन्ध्या तथा सावित्री।

इस प्रकार देखा जाता है कि प्राचीन भारतीय द्वैतवाद एक मूलक है। एकेश्वरवाद ही द्वैतवादमें परिणत हुआ है। एकेश्वरवादका मूल आदित्य हैं। भारद्वाज स्मृतिका ७९ श्लोक इस सम्बन्धमें विशेष प्रामाणिक है, यथा—

'आदित्ये तन्महः साक्षात् परब्रह्मप्रकाशकम्।'

इस भूमण्डलपर साक्षात् परब्रह्मरूपमें आदित्य ही प्रकाशित हैं। इसलिये भगवान् ऋग्वेद सर्वत्र केवल सविताको ही देखते हैं—

सविता पश्चातात् सविता पुरस्तात्
सवितोत्तरात्तात् सविताधरात्तात्।
सविता नः सुवतु सर्वतातिं
सविता नो रासतां दीर्घमायुः॥
(—ऋ० १०।३६।१४)

सविता देवता मेरे आगे-पीछे, ऊपर-नीचे सर्वत्र सविता-ही-सविता हैं। सविता हमें सभी प्रकार सुख देते हैं। हमारी आयुको बढ़ाते हैं।

गायत्रीमन्त्र सविता-उपासनाका तत्त्व है और सर्वज्ञानी जनोंसे समादृत है। यह चारों वेद तथा समस्त ज्ञान

विज्ञान और प्रज्ञाका सार है। ब्रह्म और जीवात्माकी एकताका यथार्थ बोधक है। वेद विहित समस्त उपासना कर्मोंके प्रारम्भमें गायत्री-जप, सूर्यार्घ्य और ॐकारका उच्चारण करनेकी मान्यता है। इसके बिना कोई अनुष्ठान सफल नहीं हो सकता है। व्यास, भारद्वाज, पराशर, वसिष्ठ, मार्कण्डेय, योगी याज्ञवल्क्य एवं अन्य अनेक महान् महर्षियोंने ऐसा माना है कि गायत्री-जपसे पाप-उपपाप आदि मलोंसे जापककी शुद्धि होती है। यजुर्वेदका इशोपनिषद् कहता है—

योऽसावादित्ये पुरुष सोऽसावहम्।

जो यह पुरुष आदित्यमें है, वही पुरुष मैं हूँ। उस परमात्मपुरुषकी आत्मा भी 'मैं हूँ'। इसीका शुद्ध आत्मतेज रश्मियोंके अणुओंद्वारा सूर्यमण्डलसे सम्पर्क करते हैं। जगत्में रहकर भी शुद्ध आत्म-धाममें जानेके लिये सूर्य-रश्मि ही प्रधान योगका द्वार है—वाहक है। यूरोपियन साधक पिथा गोरसने भी माना है कि यह एक तेजधारक पदार्थ है। इसीमेंसे होकर आत्म-ज्योति पृथ्वीपर उतरती है।

सूर्यसाधना और उपासना

सूतसंहिता (य० वैभ्वा० अ० ६) में भगवान् महेश्वर शिवने कहा है कि—

आदित्येन परिज्ञात यय धीमह्युपास्महे।
सावित्र्या कथितो ह्यर्थः सम्प्रहेण मयादरात्।
नीलग्रीव विरूपाक्ष साम्बमूर्ति च लक्षितम्॥

'नीलग्रीव शिवजीका कहना है कि आदरपूर्वक मैं सावित्री-मन्त्रकी, जिसे गायत्री या धीमहि कहते हैं, उपासना करता हूँ।'

भविष्योत्तरपुराणमें भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको जो सूर्योपासना बतलायी है, वह आदित्यहृदय है। श्रीकृष्णने कहा है—

रुद्रादिदैवतैः सर्वै पृष्टेन कथित मया।
वक्ष्येऽह सूर्यविन्यास शृणु पाण्डव यत्नत॥

अर्थात् अर्जुन! रुद्र आदि देवताओंके पूछनेपर जिस सूर्य-उपासनाको हमने बताया था वही तुमको बताता हूँ, सुनो। श्रीकृष्ण सूर्य (विष्णु)के अंशावतार द्वादशादित्यके अंश थे। इसीसे वे सूर्य (विष्णु) नारायण नामसे भी सम्बोधित हुए। महाभारतके स्वर्गारोहणपर्व (५। २५)में कहा है कि भगवान् श्रीकृष्ण इहलीला समाप्त कर नारायणमें ही विलीन हो गये।

य स नारायणो नाम देवदेव सनातन।
तस्यांशो वासुदेवस्तु कर्मणोऽन्ते विवेश ह॥

इस प्रकार देवताओंद्वारा आदित्य-उपासनाकी प्राचीनता देखी जाती है।

बृहद्देवता (१५६ अ०)में लिखा है—'विष्णुरादित्यात्मा।' (वायुपुराण अ० ६८। १२)में कहा गया है कि असुरोंके देवता पहले सूर्य और चन्द्रमा थे। इन्होंने ही अपने-अपने सम्प्रदायके अनुसार अलग-अलग राज्य बसाया था। इनमें अधिकांश सौर थे। राम-रावण युद्ध-(वा० रा०, यु० का०, अ० १०७)में जब भगवान् रामचन्द्रजी विशेष श्रान्त-चिन्तित थे तब ऋषि अगस्त्यने उन्हें सूर्यस्तोत्र बताया था। श्रीरामने अगस्त्य मुनिके उपदेशानुसार पूर्वमुख होकर पवित्र हो तीन बार आचमन किया और सूर्यके स्तोत्रका पाठ किया। इससे उन्हें महाबल प्राप्त हुआ और उन्होंने रावणका शिरश्छेद किया। द्वितीय जीवितगुप्तके दसवीं शताब्दीका एक शिलालेख कलकत्ताके जादूघरमें है। इसका विवरण कनिंघम साहेबने (Cunningham's Archeological reports. Vol XVI 65 में) लिखा है कि भास्करके अङ्गसे प्रादुर्भूत प्रकाशमान 'मग' ब्राह्मण शाकद्वीपसे कृष्णभगवान्‌की अनुमतिसे उनके पुत्र भगवान् साम्बद्वारा लाये गये। उन दिनों विश्वमें ये ही लोग सूर्य साधनाके विशेषज्ञ थे। यह बात भविष्यपुराण और साम्ब पुराणमें विस्तृतरूपसे वर्णित है। महाभारत ग्रन्थमें भी उक्त बातोंका उल्लेख है। इस बातसे

होता है कि भारतमें भी सूर्य-पूजाका प्रचलन था, किंतु विशेषज्ञोंका अभाव था। बेबिलोनके प्राचीन वृत्तग्रन्थ (Etna Myth)में लिखा है कि इगल (गरुड़-जाति) पक्षीपर बैठकर कोई राजा तृतीय स्वर्ग-(Third heaven of Annu)में जाते हुए जीव चिकित्सक ओषधि ले गया था। १९७३ ई० के अगस्तमें विख्यात अमेरिकन पत्रिका 'न्यू सायंटिस्ट' (New Sceintist, August 1973)में प्रख्यात आणविक जीव-विज्ञानी डॉ० फ्रांसिस, डॉ० क्रिक और डॉ० लेसलीन कहा है कि इस पृथ्वीपर हजारों वर्षतक कोई जीवन नहीं था। यहाँतक कि जीवनकी सम्भावना भी नहीं थी। महाकाशके सूर्याश्रयमें स्थित जीवन-सुष्टि इस युगकी वन्ध्या पृथ्वीपर (सूर्यके आश्रयके प्राणि-सभ्यतासे छूटकर) आया है। मि० क्रिक और मि० उरगेलके हस्ताक्षरयुक्त लम्बे वक्तव्यमें यह भी कहा गया है कि छाया-पथसे अन्यत्र अवश्य ही किसी किसी सभ्यताका विकास था। छाया पथ तेरह सौ करोड़ वर्षका है। इस पृथ्वीके प्राणियोंके उद्भवका काल चार सौ करोड़ वर्षका है। इस प्रकार नौ सौ करोड़ वर्षोंका अन्तर है।

अन्तर्देशीय सूर्य अर्चन

विश्वमें सर्वत्र ही अनुमानतः ईसवी सनसे
हजार वर्ष पूर्वसे लेकर (नवीन मतसे चार करो
वर्षसे) १४० ईसवीतक सूर्य-पूजाके प्रमाण मिले हैं।
विश्वका प्राचीन दर्शन-(In early philosophy
throughout the world the sun worship)
सौरदर्शन ही है। पर्सियन चर्चोंके मित्र (Mitra)
ग्रीकोंके हेलियस (Hlios) एजिप्त(मिश्र)के रा(
तातारियोंका भाग्यवर्धक देवता फ्लोरस (Flourish
प्राचीन पेरू-(दक्षिण अमरिका)के ऐश्वर्य
पुल्लेस (Pullest) उत्तरी अमरिकनके रेड इंडियनों
एतना (Atna) और ऐना, अफ्रिकाके विले (श्वेत)
(white) चीनका उ० ची० (Wu chi) प्राचीन
जापानियोंका इज्ञा-गी (Izna-gi) नवीन सेन्ट
ईजमका एमिनो, मिनाक, नाची (Amieno-Minak
Nachi) आदि देवता, सूर्य, मित्र, दिवाकर आदिके रूप
पूजित तथा उपासित थे। निष्कर्ष यह कि सूर्यकी शक्ति
सारी सृष्टि हुई है। इनकी महिमा अनन्त है और इनकी
पूजा-अर्चा अनादिकालसे विश्वभरमें प्रचलित हैं। भारतमें
ये प्राचीन कालसे ही प्रत्यक्ष देवता माने जाते हैं।

सूर्यकी विश्व मान्यता

आकाशके देवता 'एना' और पृथ्वीके देवता 'इया'में निष्ठा रखनेवाले बेबीलोनिया निवासियोंने दिनका आरम्भ सूर्योदयसे माना।

मिश्रकी नीलघाटी सभ्यतामें सूर्यपूजा मुख्य थी। यहाँ मन्दिरोंको इस ढंगसे बनाया जाता था कि उनके मध्यमें स्थापित मूर्तिपर उदय होते सूर्यकी किरणें पड़ सकें।

कैल्डियन लोग भी सूर्यको महत्त्व देते थे और उन्होंने सात ग्रहोंका पता लगाया था—जिनके नामपर दिनोंके नाम रखे। वे तारोंकी अवस्थिति और गतिसे भी अवगत थे।

सुमेरियन सभ्यतामें चन्द्रमाको सूर्यसे बड़ा माना गया। उन्होंने ज्योतिषके द्वारा बारह मासोंका पञ्चाङ्ग बनाया।

फिनीशियन सूर्य चन्द्रके उपासक थे। असीरियावाले भी अपने ढंगसे सूर्यकी पूजा करते थे। सूर्यपूजा सर्वत्र थी।

ऋग्वेदमें सूर्यकी महिमाके सूचक चौदह सूक्त हैं। सौर सम्प्रदाय अत्यन्त प्राचीन है। भारतीय दैनन्दिन उपासनामें सूर्य पूजा अनिवार्य है।

...त्मा जगतस्तस्थुषश्च

(... मारजी शास्त्री, व्याकरणाचार्य, दर्शनालङ्कार)

... स्थान है। ...नोंको प्रतिदिन ...विषय नहीं हैं, ...दानसे अनुगृहीत ...संख्य उपकार हैं। ... संसारके सभी कार्य हैं। उनकी कृपा सब ...क किरणें कीटाणुओंका ... हैं। सूर्यकी किरणें ...हैं विविध मच्छर आदि ... होनेसे विविध रोगोंकी ...किरणोंसे बढ़कर आरोग्य- ...अथवा सुगम नहीं है। ...शक्तिके साथ परम ...भास्करादिच्छेत्'—सूर्य ...अद्भुत स्फूर्तिका संचार ...शक्तिसम्पन्न ये किरणें ही ...(शुक्र-नील-पीत-रक्त- ...ी हैं। इस प्रकार ... हैं। विश्वका ... है। स्थावर ...

गया है। ये प्रकाशमय देव हमें प्रकाश देकर सत्कर्मोंमें प्रवृत्त होनेकी प्रेरणा देते हैं। गायत्रीके प्रतिपाद्य ये ही सूर्यदेव हैं। गायत्री-मन्त्रमें इन्हीं सवितादेवके तेजोमय रूपके ध्यानका वर्णन है। 'सूर्यो याति भुवनानि पश्यन्' सूर्य लोकोंको—उनके कर्मोंको देखते हुए चलते हैं। अतः सूर्यका गमन प्रत्यक्ष सिद्ध है। 'सूर्यश्चलो भूरचला स्वभावतः'— इस उक्तिके अनुसार पृथिवी अचल और सूर्य गतिशील हैं। भगवान् सूर्य दिव्य तेजोमय, ब्रह्मस्वरूप होनेसे कर्मोंके प्रेरक होनेसे 'सविता', 'सर्वोत्पादक', आकाशगामी होनेसे 'सूर्य' कहे जाते हैं। भगवान् सूर्य सम्पूर्ण जगत्के आत्मा हैं। वेदोंमें 'पर-अपर'रूपसे भगवान् सूर्यकी स्तुति है। ये भगवान् सूर्य प्रातः आश्चर्यजनकरूपसे रात्रिके सम्पूर्ण अन्धकारका विनाशकर सम्पूर्ण ज्योतियोंकी ज्योति लेकर उदित होते हैं। ये मित्र, वरुण और अग्नि आदि देवोंके चक्षुःस्वरूप हैं। सारे देव मनुष्यादिके रूपमें सूर्यके उदयमें ही अभिव्यक्त होते हैं। सूर्य उदित होकर आकाश तथा भूमिको अपने तेजसे व्याप्त कर देते हैं। सूर्य चर-अचर सभीके आत्मा हैं। वे सबके अन्तर्यामी हैं। देवोंके द्वारा प्रतिष्ठित तथा देवों... विश्वके शुद्ध निर्मल चक्षुःस्वरूप सूर्य ... हैं। उनकी अनुकम्पासे हम सब सौ ...शक्तिसम्पन्न होकर उन्हें देखें। स्वाधीन-जीवन जीते रहें। सौ वर्षपर्यन्त कर्मेन्द्रिय श्रेष्ठ वाक्-शक्तिसम्पन्न हों और दीनतासे ...नता न दिखायें। सौ वर्षोंसे भी ...शक्ति-सम्पन्न रहें—ॐ चित्रं ... वरुणस्याग्नेः। आप्रा ... आत्मा जगतस्तस्थुषश्च। ... पुरस्ताच्छु...

ब्रह्म कूटस्थ हैं, प्रकृति त्रिगुणात्मिका है। प्रकृतिके रज, सत्त्व और तम—इन तीन गुणोंसे पञ्च-तत्त्व समुद्भूत हुए हैं। प्रकृतिके सत्त्वगुणोद्रेकसे आकाशतत्त्वका, रजोगुणसे अग्नितत्त्वका और तमोगुणसे पृथ्वीतत्त्वका प्रादुर्भाव हुआ। ये तीनों तत्त्व विशुद्ध हैं। परंतु सत्त्वगुण और रजोगुणके सम्मिश्रणसे वायुतत्त्वका तथा रजोगुण और तमोगुणके सम्मिश्रणसे जलतत्त्वका प्रादुर्भाव हुआ। उक्त दोनों तत्त्व विमिश्रित तत्त्व हैं। इस प्रकार प्रकृतिके तीन गुणोंसे पञ्च महाभूतोंकी उत्पत्ति हुई, जिनका पञ्चीकृत* संघात यह समस्त चराचर जगत् है। उक्त तत्त्वोंके न्यूनाधिक्यके तारतम्यसे ही सृष्टिके पदार्थोंमें विविधता पायी जाती है। इसी तात्त्विक तारतम्यके अनुसार मानव-समाज भी पञ्चविध प्रकृति-सम्पन्न है। अतएव पञ्चविध प्रकृतिवाले मानवोंके लिये एक ही श्रीमन्नारायणके पञ्चविध रूपोंकी कल्पना करके पञ्च देवोपासनाकी वैज्ञानिक स्थापना की गयी है। शास्त्र कहता है—

'उपासनासिद्ध्यर्थं हि ब्रह्मणो रूपकल्पना'।

तदनुसार आकाशतत्त्वकी प्रधानतावाले सात्त्विक मनुष्योंकी विष्णुभगवान्‌में स्वभावतः विशिष्ट श्रद्धा होती है। अग्नितत्त्वकी प्रधानतावाले रजोगुणी मनुष्य जगन्माता शक्तिमें विशेष आस्था रखते हैं। पृथ्वीतत्त्व-प्रधान तमोगुणी प्रकृतिवाले मनुष्य भूतभावन शिव-भगवान्‌के भक्त होते हैं। वायुतत्त्व-प्रधान सत्त्व और रजोमिश्रित प्रकृतिवाले मनुष्य सूर्य भगवान्‌में श्रद्धालु होते हैं तथा जलतत्त्वकी प्रधानतावाले रज और तमोमिश्रित प्रकृतिके मनुष्य विघ्नेश्वर गणेशमें निष्ठा रखते हैं। इस प्रकार वैष्णव, शैव, शाक्त, सौर और गाणपत्य—ये पाँचों सम्प्रदाय क्रमशः पाँचों तत्त्वोंके तारतम्यपर परिनिष्ठित हैं। परंतु स्व-स्वसम्प्रदायकी उपासनापद्धतिके अनुसार स्वेष्टकी विशिष्ट पूजा करते हुए भी पूर्वोक्त पाँचों ही सम्प्रदायोंके साधकोंको अनिवार्यरूपसे नित्यकर्मभूत सन्ध्योपासनामें भगवान् सूर्यको अर्घ्य प्रदान करना, सावित्री देवताके गायत्री-मन्त्रका जप करना अत्यन्त अत्यावश्यक है जिसका तात्पर्य है कि प्रत्येक साधक पहले सौर है, पश्चात् स्वेष्ट देवताका उपासक है। कारणवश स्वेष्ट देवकी उपासना न हो पानेकी दशामें उतना प्रत्यवाय (पाप) नहीं है, परंतु सन्ध्याहीन द्विज सभी द्विज-कर्मोंसे अन्त्यजके समान बहिष्कार्य हो जाता है।

इस प्रकार ब्रह्माण्डात्मा सूर्यभगवान्‌का सर्वातिशायी महत्त्व है। उनकी उपासना अनुष्ठेय कर्तव्य है।

---

* पञ्चीकृत किसे कहते हैं? पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश—इन पाँचों महाभूतोंमेंसे इनके तामसांश स्वरूप एक-एक भूतके दो-दो भाग करके और एक-एक भागको पृथक् रखकर दूसरे भागोंको चार-चार भाग करके पृथक् रखे हुए भागोंमें एक-एक भाग प्रत्येक भूतका संयुक्त करनेसे पञ्चीकरण होता है। इससे निश्चय हुआ कि प्रत्येक भूतके अपने आधेमें प्रत्येक दूसरे भूतोंके आधे भागका चतुर्थांश मिला हुआ रहता है। जैसे पञ्चीकृत आकाशमें अपञ्चीकृत आकाशका आधा भाग और दूसरे प्रत्येक अपञ्चीकृत भूतोंके अर्द्धभागका चतुर्थांश अर्थात् अपर प्रत्येक भूतका अष्टमांश मिला हुआ रहता है। इसी प्रकार प्रत्येक भूतमें समझ लेना चाहिये। इन पञ्चीकृत पञ्च महाभूतोंसे ही प्रत्येक ब्रह्माण्ड उत्पन्न होते हैं। उन उन ब्रह्माण्डोंमें चौदह भुवन होते हैं तथा उद्भिज्ज, स्वेदज, अण्डज और जरायुज—ये चार प्रकारके शरीर उत्पन्न होते हैं। शरीरोंका अभिमान रखनेवाला जीव और अनन्त ब्रह्माण्डोंके अभिमान रखनेवाले ईश्वर हैं।

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च

(लेखक—श्रीशिवकुमारजी शास्त्री, व्याकरणाचार्य, दर्शनालङ्कार)

देवोपासनामें भगवान् सूर्यका विशिष्ट स्थान है। भगवान् सूर्यका प्रत्यक्ष दर्शन सभी जनोंको प्रतिदिन अनुभूत होता है। वे अनुमानके विषय नहीं हैं, सूर्य सम्पूर्ण विश्वको प्रतिदिन प्रकाशदानसे अनुगृहीत करते हैं। हम सबपर उनके असंख्य उपकार हैं। सम्पूर्ण वैदिक-स्मार्त अनुष्ठान एवं संसारके सभी कार्य भगवान् सूर्यकी कृपाके अधीन हैं। उनकी कृपा सब जीवोंपर समान है। सूर्यकी शोषक किरणें कीटाणुओंका नाशकर आरोग्य प्रदान करती हैं। सूर्यकी किरणें जिन घरोंमें नहीं पहुँचतीं, वहाँ विविध मच्छर आदि जीवों तथा कीटाणुओंका आवास होनेसे विविध रोगोंकी उत्पत्ति होती है। सूर्यकी किरणोंसे बढ़कर आरोग्य प्रदानकी शक्ति अन्यत्र सुलभ अथवा सुगम नहीं है। सूर्यकिरणोंमें रोगविनाशक शक्तिके साथ परम-पावनता भी है। **'आरोग्यं भास्करादिच्छेत्'**—सूर्य नमस्कारसे मन तथा शरीरमें अद्भुत स्फूर्तिका सञ्चार होता है। सूर्यकी विविध शक्तिसम्पन्न ये किरणें ही विविध रूप पृथिवीको सप्तविधरूप-(शुक्ल-नील-पीत-रक्त-हरित-कपिश चित्र) वाली बनाती हैं। इस प्रकार भगवान् सूर्य हमारे प्रत्यक्ष संरक्षक देव हैं। विश्वका एक-एक जीव उनकी कृपाका कृतज्ञ है। स्थावर-जङ्गम सभी उनसे विकासकी शक्ति पाते हैं। इसी दृष्टिको लेकर करोड़ों जन **'आदित्यस्य नमस्कारं ये कुर्वन्ति दिने दिने। जन्मान्तरसहस्रेषु दारिद्र्यं नोपजायते ॥'**—के अनुसार प्रतिदिन प्रातः-सायं भगवान् सूर्यनारायणको पुष्पसमन्वित जलसे अर्घ्य देकर उनका शिरसा नमन करते हैं। धर्मशास्त्र हमें सूर्योदयसे पूर्व उठनेका आदेश देते हैं। **'तं चेदभ्युदियात् सूर्यः शयानं कामचारतः'** आदि कहकर स्वस्थ पुरुषको सूर्योदयके पश्चात् उठनेपर उपवासका विधान बताया गया है। ये प्रकाशमय देव हमें प्रकाश देकर सत्कर्मोंमें प्रवृत्त होनेकी प्रेरणा देते हैं। गायत्रीके प्रतिपाद्य ये ही सूर्यदेव हैं। *गायत्री-मन्त्रमें इन्हीं* सवितादेवके तेजोमय रूपके ध्यानका वर्णन है। **'सूर्यो याति भुवनानि पश्यन्'** सूर्य लोकोंको—उनके कर्मोंको देखते हुए चलते हैं। अतः सूर्यका गमन प्रत्यक्ष सिद्ध है। **'भवचलो भूरचला स्वभावतः'**—इस उक्तिके अनुसार पृथिवी अचल और सूर्य गतिशील हैं। भगवान् सूर्य दिव्य तेजोमय, ब्रह्मस्वरूप होनेसे कर्मोंके प्रेरक होनेसे 'सविता', सर्वोत्पादक', आकाशगामी होनेसे 'सूर्य' कहे जाते हैं। भगवान् सूर्य सम्पूर्ण जगत्के आत्मा हैं। वेदोंमें 'पर-अपर'रूपसे भगवान् सूर्यकी स्तुति है। ये भगवान् सूर्य प्रातः आश्चर्यजनकरूपसे रात्रिके सम्पूर्ण अन्धकारका विनाशकर सम्पूर्ण ज्योतियोंकी ज्योति लेकर उदित होते हैं। ये मित्र, वरुण और अग्नि आदि देवोंके चक्षुःस्वरूप हैं। सारे देव मनुष्यादिके रूपमें सूर्यके उदयमें ही अभिव्यक्त होते हैं। सूर्य उदित होकर आकाश तथा भूमिको अपने तेजसे व्याप्त कर देते हैं। सूर्य चर-अचर सभीके आत्मा हैं। वे सबके अन्तर्यामी हैं। देवोंके द्वारा प्रतिष्ठित तथा देवोंके हितकारक विश्वके शुद्ध निर्मल चक्षुःस्वरूप सूर्य पूर्वदिशामें उगते हैं। उनकी अनुकम्पासे हम सब सौ वर्षपर्यन्त नेत्रशक्तिसम्पन्न होकर उन्हें देखें। स्वाधीन-जीवन होकर सौ वर्षतक जीवित रहें। सौ वर्षपर्यन्त कर्णेन्द्रिय-सम्पन्न होकर सुनें। श्रेष्ठ वाक्-शक्तिसम्पन्न हों और दीनतासे रहित हों। किसीसे दीनता न दिखायें। सौ वर्षोंसे भी अधिक हम सर्वेन्द्रियशक्ति-सम्पन्न रहें—ॐ चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षꣳ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च। (शु० यजु० ७। ४२) ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छु

ब्रह्म कूटस्थ है, प्रकृति त्रिगुणात्मिका है। प्रकृतिके रज, सत्त्व और तम—इन तीन गुणोंसे पञ्च-तत्त्व समुद्भूत हुए हैं। प्रकृतिके सत्त्वगुणोद्रेकसे आकाशतत्त्वका, रजोगुणसे अग्नितत्त्वका और तमोगुणसे पृथ्वीतत्त्वका प्रादुर्भाव हुआ। ये तीनों तत्त्व विशुद्ध हैं। परंतु सत्त्वगुण और रजोगुणके सम्मिश्रणसे वायुतत्त्वका तथा रजोगुण और तमोगुणके सम्मिश्रणसे जलतत्त्वका प्रादुर्भाव हुआ। उक्त दोनों तत्त्व विमिश्रित तत्त्व हैं। इस प्रकार प्रकृतिके तीन गुणोंसे पञ्च महाभूतोंकी उत्पत्ति हुई, जिनका पञ्चीकृत* संघात यह समस्त चराचर जगत् है। उक्त तत्त्वोंके न्यूनाधिक्यके तारतम्यसे ही सृष्टिके पदार्थोंमें विविधता पायी जाती है। इसी तात्त्विक तारतम्यके अनुसार मानव-समाज भी पञ्चविध प्रकृति-सम्पन्न है। अतएव पञ्चविध प्रकृतिवाले मानवोंके लिये एक ही श्रीमन्नारायणके पञ्चविध रूपोंकी कल्पना करके पञ्च देवोपासनाकी वैज्ञानिक स्थापना की गयी है। शास्त्र कहता है—

'उपासनासिद्ध्यर्थं हि ब्रह्मणो रूपकल्पना'।

तदनुसार आकाशतत्त्वकी प्रधानतावाले सात्त्विक मनुष्योंकी विष्णुभगवान्‌में स्वभावतः विशिष्ट श्रद्धा होती है। अग्नितत्त्वकी प्रधानतावाले रजोगुणी मनुष्य जगन्माता शक्तिमें विशेष आस्था रखते हैं। पृथ्वीतत्त्व-प्रधान तमोगुणी प्रकृतिवाले मनुष्य भूतभावन शिव-भगवान्‌के भक्त होते हैं। वायुतत्त्व-प्रधान सत्त्व और रजोमिश्रित प्रकृतिवाले मनुष्य सूर्य भगवान्‌में श्रद्धालु होते हैं तथा जलतत्त्वकी प्रधानतावाले रज और तमोमिश्रित प्रकृतिके मनुष्य विघ्नेश्वर गणेशमें निष्ठा रखते हैं। इस प्रकार वैष्णव, शैव, शाक्त, सौर और गाणपत्य—ये पाँचों सम्प्रदाय क्रमशः पाँचों तत्त्वोंके तारतम्यपर परिनिष्ठित हैं। परंतु स्व-स्वसम्प्रदायकी उपासनापद्धतिके अनुसार स्वेष्टकी विशिष्ट पूजा करते हुए भी पूर्वोक्त पाँचों ही सम्प्रदायोंके साधकोंको अनिवार्यरूपसे नित्यकर्मभूत सन्ध्योपासनामें भगवान् सूर्यको अर्घ्य प्रदान करना, सावित्री देवताके गायत्री-मन्त्रका जप करना अत्यन्त आवश्यक है जिसका तात्पर्य है कि प्रत्येक साधक पहले सौर है, पश्चात् स्वेष्ट देवताका उपासक है। कारणवश स्वेष्ट देवताकी उपासना न हो पानेकी दशामें उतना प्रत्यवाय (पाप) नहीं है, परंतु सन्ध्याहीन द्विज सभी द्विज-कर्मोंसे अन्त्यजके समान बहिष्कार्य हो जाता है।

इस प्रकार ब्रह्माण्डात्मा सूर्यभगवान्‌का सर्वातिशायी महत्त्व है। उनकी उपासना अनुष्ठेय कर्तव्य है।

---

* पञ्चीकृत किसे कहते हैं? पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश—इन पाँचों महाभूतोंमेंसे इनके तामसांश स्वरूप एक-एक भूतके दो-दो भाग करके और एक-एक भागको पृथक् रखकर दूसरे भागोंको चार-चार भाग करके पृथक् रखते हुए भागोंमें एक-एक भाग प्रत्येक भूतका संयुक्त करनेसे पञ्चीकरण होता है। इससे निश्चय हुआ कि प्रत्येक भूतके अपने आधेमें प्रत्येक दूसरे भूतोंके आधे भागका चतुर्थांश मिला हुआ रहता है। जैसे पञ्चीकृत आकाशमें अपञ्चीकृत आकाशका आधा भाग और दूसरे प्रत्येक अपञ्चीकृत भूतोंके अर्द्धभागका चतुर्थांश अर्थात् अपर प्रत्येक भूतका अष्टमांश मिला हुआ रहता है। इसी प्रकार प्रत्येक भूतमें समझ लेना चाहिये। इन पञ्चीकृत पञ्च महाभूतोंसे ही प्रत्येक ब्रह्माण्ड उत्पन्न होते हैं। उन उन ब्रह्माण्डोंमें चौदह भुवन होते हैं तथा उद्भिज्ज, स्वेदज, अण्डज और जरायुज—ये चार प्रकारके शरीर उत्पन्न होते हैं। शरीरोंका अभिमान रखनेवाला जीव और अनन्त ब्रह्माण्डोंके अभिमान रखनेवाले ईश्वर हैं।

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च

(लेखक—श्रीशिवकुमारजी शास्त्री, व्याकरणाचार्य, दर्शनालङ्कार)

देवोपासनामें भगवान् सूर्यका विशिष्ट स्थान है। भगवान् सूर्यका प्रत्यक्ष दर्शन सभी जनोंको प्रतिदिन अनुभूत होता है। वे अनुमानके विषय नहीं हैं, सूर्य सम्पूर्ण विश्वको प्रतिदिन प्रकाशदानसे अनुगृहीत करते हैं। हम सबपर उनके अमूल्य उपकार हैं। सम्पूर्ण वैदिक-स्मार्त अनुष्ठान एवं संसारके सभी कार्य भगवान् सूर्यकी कृपाके अधीन हैं। उनकी कृपा सब जीवोंपर समान है। सूर्यकी शोधक किरणें कीटाणुओंका नाशकर आरोग्य प्रदान करती हैं। सूर्यकी किरणें जिन घरोंमें नहीं पहुँचतीं, वहाँ विविध मच्छर आदि जीवों तथा कीटाणुओंका आवास होनेसे विविध रोगोंकी उत्पत्ति होती है। सूर्यकी किरणोंसे बढ़कर आरोग्य-प्रदानकी शक्ति अन्यत्र सुलभ अथवा सुगम नहीं है। सूर्यकिरणोंमें रोगविनाशक शक्तिके साथ परम पावनता भी है। 'आरोग्यं भास्करादिच्छेत्'—सूर्य नमस्कारसे मन तथा शरीरमें अद्भुत स्फूर्तिका सञ्चार होता है। सूर्यकी विविध शक्तिसम्पन्न ये किरणें ही विविध रूप पृथिवीको सप्तविधरूप-(शुक्ल-नील-पीत-रक्त-हरित-कपिश चित्र) वाली बनाती हैं। इस प्रकार भगवान् सूर्य हमारे प्रत्यक्ष सम्पर्क देव हैं। विश्वका एक-एक जीव उनकी कृपाका कृतज्ञ है। स्थावर-जङ्गम सभी उनसे विकासकी शक्ति पाते हैं। इसी दृष्टिको लेकर करोड़ों जन 'आदित्यस्य नमस्कारं ये कुर्वन्ति दिने दिने। जन्मान्तरसहस्रेषु दारिद्र्यं नोपजायते॥'—के अनुसार प्रतिदिन प्रातःसायं भगवान् सूर्यनारायणको पुष्पसमन्वित जलसे अर्घ्य देकर उनका शिरसा नमन करते हैं। धर्मशास्त्र हमें सूर्योदयसे पूर्व उठनेका आदेश देते हैं। 'न चेदभ्युदियात् सूर्यः शयानं कामचारतः' आदि कहकर स्वस्थ पुरुषको सूर्योदयके पश्चात् उठनेपर उपवासका विधान बताया गया है। ये प्रकाशमय देव हमें प्रकाश देकर सत्कर्मोंमें प्रवृत्त होनेकी प्रेरणा देते हैं। गायत्रीके प्रतिपाद्य ये ही सूर्यदेव हैं। गायत्री-मन्त्रमें इन्हीं सवितादेवके तेजोमय रूपके ध्यानका वर्णन है। **'सूर्यो याति भुवनानि पश्यन्'** सूर्य लोकोंको—उनके कर्मोंको देखते हुए चलते हैं। अतः सूर्यका गमन प्रत्यक्ष सिद्ध है। **'मरुच्चलो भूरचला स्वभावतः'**—इस उक्तिके अनुसार पृथिवी अचल और सूर्य गतिशील हैं। भगवान् सूर्य दिव्य तेजोमय, ब्रह्मस्वरूप होनेसे कर्मोंके प्रेरक होनेसे 'सविता', 'सर्वोत्पादक', आकाशगामी होनेसे 'सूर्य' कहे जाते हैं। भगवान् सूर्य सम्पूर्ण जगत्के आत्मा हैं। वेदोंमें 'पर-अपर'रूपसे भगवान् सूर्यकी स्तुति है। ये भगवान् सूर्य प्रातः आश्चर्यजनकरूपसे रात्रिके सम्पूर्ण अन्धकारका विनाशकर सम्पूर्ण ज्योतियोंकी ज्योति लेकर उदित होते हैं। ये मित्र, वरुण और अग्नि आदि देवोंके चक्षुस्वरूप हैं। सारे देव मनुष्यादिके रूपमें सूर्यके उदयमें ही अभिव्यक्त होते हैं। सूर्य उदित होकर आकाश तथा भूमिको अपने तेजसे व्याप्त कर देते हैं। सूर्य चर-अचर सबीके आत्मा हैं। वे सबके अन्तर्यामी हैं। देवोंके द्वारा प्रतिष्ठित तथा देवोंके हितकारक विश्वके शुद्ध निर्मल चक्षुस्वरूप सूर्य पूर्वदिशामें उगते हैं। उनकी अनुकम्पासे हम सब सौ वर्षपर्यन्त नेत्रशक्तिसम्पन्न होकर उन्हें देखें। स्वाधीन-जीवन होकर सौ वर्षतक जीवित रहें। सौ वर्षपर्यन्त कर्णेन्द्रिय-सम्पन्न होकर सुनें। श्रेष्ठ वाक् शक्तिसम्पन्न हों और दीनतासे रहित हों। किसीसे दीनता न दिखायें। सौ वर्षोंसे भी अधिक हम सर्वेन्द्रियशक्ति-सम्पन्न रहें—ॐ चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षꣳ सू[illegible] [illegible]जगतस्तस्थु[illegible]
(शु० यजु० ७।४२)। ॐ त[illegible] पुर[illegible]

मसुश्चरत् पश्यम शरद शत जीवेम शरद शत शृणुयाम शरद शत प्रब्रवाम शरद शतमदीनाः स्याम शरद शत भूयश्चशरद शतात्। (शु० यजु० ३६। २४) सूर्योपस्थानके इन मन्त्रोंको प्रत्येक द्विज प्रतिदिन प्रात साय दोहराता है। वेदमन्त्रोंमें सूर्यको जगत्का अभिन्न आत्मा बताया गया है (शुक्ल यजुर्वेदके तैंतीसवें अध्यायमें और अन्यत्र भी श्रीसूर्यका विशिष्ट वर्णन है)। वेदोंमें भगवान् सूर्यकी दिव्य महिमाका विस्तृत वर्णन है। उपनिषदोंमें भी सूर्य ब्रह्मस्वरूपसे वर्णित हैं। ऋषि सूर्यकी प्रार्थना करते हुए कहते हैं—'हे विश्वके पोषण करनेवाले, एकाकी गमन करनेवाले, ससारके नियामक प्रजापतिपुत्र सूर्यदेव! आप अपनी किरणोंको हटा लें, अपने तेजको समेट लें, जिससे मैं आपके अत्यन्त कल्याणमय रूपको देख सकूँ।' यह आदित्यमण्डलस्थ पुरुष मैं हूँ। इसके पूर्वका मन्त्र भी इसी आशयको अभिव्यक्त करता है—

'हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहित मुखम्।
तत्त्व पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये॥
पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य
व्यूह रश्मीन् समूह।
तेजो यत्ते रूप कल्याणतम तत्ते
पश्यामि योऽसावसौ पुरुष सोऽहमस्मि॥
(ईशा० उप० १५। १६)

प्राय सभी पुराणोंमें सूर्यकी महिमा वर्णित है। सत्य, वेद, अमृत (शुभ फल), मृत्यु (अशुभ फल) के अधिष्ठाता पुराणपुरुष भगवान् विष्णुके स्वरूपभूत सर्वान्तर्यामी श्रीसूर्यकी हम सभी प्रार्थना करते हैं। 'प्रत्नस्य विष्णो रूप यत्सत्यस्यर्तस्य ब्रह्मणः। अमृतस्य च मृत्योश्च सूर्यमात्मानमीमहीति (श्रीमद्भा ५।२०।५) 'हे सवितादेवता! आप हमारे सभी दुरितों (पापों) को दूर करें तथा जो कल्याण हो उसे लाकर दें' यह कहकर—'विश्वानि देव सवित दुरितानि परा सुव। यद् भद्र तन्न आ सुव।' (ऋ० ५। ८२। ५) हम भगवान् सूर्यसे सब पापोंके विनाशके साथ आत्मकल्याणके लिये प्रार्थना करते हैं। सम्पूर्ण फलों और सस्योंका परिपाक-परिपक्व तथा उनकी दृढ़ता-कठोरता सूर्यकी किरणोंसे ही सम्भव होती है। रसोंके आदान-(ग्रहण-) से ही सूर्यको 'आदित्य' कहते हैं। वे अदितिसे पुत्ररूपमें उत्पन्न भी हैं। सम्पूर्ण वृष्टिके आधार ये अशुमाली ही हैं—'आदित्याज्जायते वृष्टि'। भगवान् सूर्यनारायणकी विभिन्न किरणें ही जलका शोषण कर पुन जलवर्षणसे जगत्को आप्यायित करती हैं। ये भगवान् भास्कर ही जगत्के सभी जीवोंके कर्मोंके साक्षी हैं। प्रत्यक्ष देवके रूपमें भगवान् सूर्य सम्पूर्ण जगत्के परम आराध्य हैं। श्रुतियों एव उनके आधारके शास्त्रवचनोंके अनुसार जब एक आस्तिक हिन्दू अधिष्ठातृ देवताकी भावनासे सारे जगत्को चिद्विलास—चेतनानुप्राणित मानता है तब सम्पूर्ण तेज शक्तिके धारक भगवान् सूर्य जो ताप-प्रकाश आदिके द्वारा हमारे परम उपकारक हैं, वे प्रवर्तक-अवस्थामें गतिरहित कैसे मान्य होंगे। वे साक्षात् चेतन परब्रह्मस्वरूप हैं। वे केवल तेजके गोलामात्र नहीं हैं, वे चिन्मय प्रज्ञानघन परमार्थतत्त्व हैं। जिस प्रकार बाहरी चकाचौंधसे यह आत्मतत्त्व आच्छादित है, उसी प्रकार इस हिरण्मय-सुवर्णवत् प्रकाशमान, चमचमाहटसे सत्यरूप नारायणका मुख (शरीर) छिपा है। साधक उस परमार्थ सत्यके दर्शनार्थ सूर्यसे उस आवरणके हटानेकी प्रार्थना करता है। भगवान् सूर्यके सम्पूर्ण धर्म तथा कार्य जगत्के परम उपकारक हैं। इसीसे हमारे त्रिकालदर्शी महर्षियोंने उपासनामें उन्हें उच्च स्थान दिया है। जगत्के एक मात्र चक्षु स्वरूप, सबकी सृष्टि-स्थिति प्रलयके कारण, वेदमय, त्रिगुणात्मक रूप धारण करनेवाले, ब्रह्म-विष्णु शिवस्वरूप भगवान् सूर्यका हम शिरसा नमन करते हैं। सूर्यमण्डलमध्यवर्ती वे नारायण हमारे ध्येय हैं। हमें उनका प्रतिदिन ध्यान करना चाहिये।

सूर्य-ब्रह्म-समन्वय

(लेखक—श्रीमजवल्लभशरणजी वेदान्ताचार्य, पञ्चतीर्थ)

सर्वोऽस्ति नाम्ना भगवान् निगद्यते
सूर्योऽपि सर्वेषु विभाति भासया।
ब्रह्मैव सूर्यं समुदेति नित्यश
तस्मै नमो ध्वान्तविलोपकारिणे ॥

वैदिक धर्मकी वैष्णव, शैव, शाक्त, गाणपत्य और सौर—ये पाँच प्रसिद्ध शाखाएँ हैं। इनमें विष्णु, शिव, शक्ति, गणपति और सूर्य—इन पाँचों देवोंकी उपासनाका विशद विधान है। यद्यपि वेद और पुराण आदि समस्त शास्त्रोंमें एकेश्वरवादका प्रतिपादन एव समर्थन मिलता है, तथापि भावनाको प्रबल बनानेके लिये उपर्युक्त सनातनधर्मकी पाँचों शाखाओंमें वैष्णव विष्णुकी, शैव शिवकी, शाक्त शक्तिकी, गाणपत्य गणपतिकी और सौर सूर्यकी प्रधानता मानकर अपनी-अपनी भावनाको दृढ़ करते हैं। वस्तुत ईश्वर—परमात्मा (ब्रह्म) एक ही तत्त्व है, जो चराचरात्मक जगत्का उत्पादक, पालक, सहारक तथा जीवोंको जन्म मरणरूपी ससृतिचक्रसे छुड़ानेवाला है। शास्त्रकी यह विशेषता है कि अनन्त गुण, शक्ति, रूप एव नामवाले ब्रह्मके जिस नामको लेकर जहाँ विवेचन किया जाता है, वहाँ उसीमें ब्रह्मके समस्त गुण-शक्ति-नाम-रूपादिका समर्थन कर दिया जाता है। साधारण बुद्धिवाले व्यक्ति पूर्णतया मनन न कर पानेसे अपने किसी एक ही अभीष्ट उपास्यकी सर्वोच्चता मानकर परस्परमें कलह तक कर बैठते हैं। तत्त्वत यह ठीक नहीं है।

वस्तुत विचार किया जाय तो हमें प्रत्येक दृष्ट एव श्रुत वस्तुमें ब्रह्मत्वकी अनुभूति हो सकती है। सूर्यमें तो प्रत्यक्ष ही वैशिष्ट्यका अनुभव हो रहा है। वेदोंमें सैकड़ों सूक्त हैं, जिनमें उपर्युक्त पाँचों देवोंके अतिरिक्त बृहस्पति आदि ग्रहों और जडतत्त्वमें परिगणित पर्जन्य, रात्रि, रक्षोघ्न, मन्यु, अग्नि, पृथ्वी, उषा और ओषधि आदिके अन्य भी बहुत-से सूक्त हैं। उनमें उन्हींकी महत्ताका दिग्दर्शन है, जिनके नामसे वे सूक्त सम्बद्ध हैं। श्रीसूर्यदेवके नामसे सम्बद्ध भी अनेक सूक्त हैं, उनमें—'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च' (ऋ० १। ११५। १) इत्यादि मन्त्रोंद्वारा स्पष्टतया सूर्यको चराचरात्मक जगत्की आत्मा कहा गया है। सूर्यके जितने भी पर्यायवाची नाम हैं, उन सबके तात्पर्यका ब्रह्मसे ही सम्बन्ध है, क्योंकि एक ही परमात्मा वैश्वानर, प्राण, आकाश, यम, सूर्य और इस आदि अनन्त नामोंसे अभिहित है[1]। वेद एव पुराण आदि उसी एक परमात्माका आमनन करते हैं,[3] अधिक क्या ससारमें—ऐसा कोई शब्द नहीं जो ब्रह्मका वाचक न हो—'उल्लू'-जैसे शब्दोंकी व्युत्पत्ति भी ब्रह्मपरक लगायी जा सकती है[4] और 'मूढ'-जैसे अपमानसूचक शब्दोंसे भी परमात्माकी स्तुति की गयी है[5]। परिवर्तन एव विनश्वरशील प्राणियोंके शरीर तथा उनके अङ्ग-प्रत्यङ्गमें भी प्रसङ्गवश भगवत्ताका अभिनिवेश प्रतिपादित किया गया है। ऋषि-महर्षि, मुनि-महात्मा, साधु-सन्त और ब्राह्मण जब किसीको आशीर्वाद देते हैं, तो अभयमुद्रावाले हाथके लिये सकेत करते हैं—यह मेरा हाथ भगवान् (भले-बुरे कर्म करनेमें समर्थ) ही नहीं, भगवान्से भी बढ़कर है, क्योंकि इस हाथके द्वारा किये हुए कर्मोंका फल देनेके लिये भगवान्को भी विवश होना पड़ता है। परम्परया कर्म भी मोक्षके

१ अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रित । (गीता १५। १४)
२ एक सद्विप्रा बहुधा वदन्ति। ३ सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति " " ।
४ सर्वे शब्दा ब्रह्मवाचका उत्—उदूर्ध्वं लुनातीति उल्लू । (श्रीभाष्य) ५ नम शान्ताय घोराय मूढाय गुणधर्मिणे । (भा० ८। ३। १२) (गूढाय पाठ भी मन्तव्य है। स०)

साधन हैं। अत कर्मोंका कर्त्ता यह हाथ ही संसारके दु खोंसे छुड़ानेवाला महान् औषध है, अतएव यही मुक्ति दिलाता है—

अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तर'।
अयं मे विश्वभेषजोऽयं शिवाभिमर्शनः॥
(ऋ० १०।६०।१२)

सूर्यकी जड़ता और परायणता भारतीय शास्त्रमें भी वर्णित है। पाश्चात्त्य विचारक तो इसे एक आगका गोला मानते ही हैं, किंतु चिन्तित हैं कि आगमें इंधन चाहिये। यदि सूर्यरूपी इस आगके गोलेमें इंधन न पहुँच पायगा और यह शान्त हो जायगा तो दुनियाकी क्या दशा होगी? भारतीय शास्त्रोंके विज्ञाताओंने उपासनाको ही उपास्यका पोषक मानकर इस समस्याका समाधान किया है। अत सूर्यका जितना अधिक आराधन किया जायगा, उतना ही अधिक सूर्यका पोषण एवं लोकका हित होगा। कोई किसीकी प्रशंसा करता है तो प्रशस्य व्यक्ति प्रफुल्ल एवं प्रमुदित होता है—ऐसा प्रत्यक्ष देखा जाता है। वेद भी कहते हैं—'प्रभो! हमारी ये सुन्दर उक्तियाँ आपके तेजःस्वरूप अग्निको बढ़ायें—व्यक्त करें—जिससे आप हमारी रक्षा एवं पालन-पोषण करें—

वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः।

सूर्यको वेद एवं पुराण आदि शास्त्रोंमें कहीं परमात्मासे समुत्पन्न माना गया है[1], कहीं चक्षुसे उद्भूत और कहीं चक्षुस्वरूप ही माना गया है। कहींपर इन्द्रादि देवोंसे समुत्पन्न और कई स्थलोंमें साक्षात् परब्रह्म परमात्मा (ब्रह्मा, विष्णु और शंकर आदि देवोंका उपास्य) भी कहा गया है[3]। इन सभी विभिन्न वाक्योंका समन्वय अत्यन्त अशक्य है, किंतु असम्भव नहीं।

अध्यात्म, अधिभूत एवं अधिदैव—ये तीन भेद प्रत्येक दृष्ट-श्रुत वस्तुओंके माने जाते हैं। अधिभूत शरीर, अध्यात्म—आत्मा (जीव) और अधिदैव—परमात्मा अन्तर्यामी कहलाता है। इन्हीं तीनों रूपोंसे शास्त्रमें सूर्यका विभिन्न रूपसे वर्णन किया गया है। शास्त्रीय विधान है—'आरोग्यं भास्करादिच्छेत्'। इसके अनुसार आराधना करनेपर भगवान् सूर्य आराधकके शरीरको स्वस्थ बनाते हैं। शरीर ही धर्मादि पुरुषार्थचतुष्टयका साधक है। केवल प्राणी ही नहीं, चराचरात्मक अखिल जगत्का सूर्यद्वारा अपार हित होता है। अतएव चाहे आस्तिक हो या नास्तिक, चाहे आर्यसनातनी हो या अन्य धर्मावलम्बी—सभीके लिये जीवनप्रदान करनेवाले ये सूर्य भगवान् उपास्य एवं पूज्य हैं, वे हमारी रक्षा करें।

सर्वोपकारी सूर्य

देव किं बान्धवः स्यात्प्रियसुहृदथवाऽऽचार्य आहोस्विदर्यो
रक्षाचक्षुर्नु दीपो गुरुरुत जनको जीवितं बीजमोजः।
एवं निर्णीयते यः क इव न जगतां सर्वथा सर्वदाऽसौ
सर्वाकारोपकारी दिशतु दशशताभीषुरभ्यर्थितं नः॥

जिन भगवान् सूर्यनारायणके विषयमें यह निर्णय हो नहीं पाता कि वे वास्तवमें देवता हैं या बान्धव, प्रिय मित्र हैं (अथवा वेदके उपज) आचार्य किंवा अन्य स्वामी, वे क्या हैं—रक्षानेत्र हैं अथवा विश्वप्रकाशक दीपक, वे धर्माचार्य गुरु हैं अथवा पालनकर्ता पिता, प्राण हैं या जगत्के प्रमुख आदिकारण बल हैं अथवा और कुछ! किंतु इतना निश्चय है कि सभी कालों, सभी देशों और सभी दशाओंमें वे कल्याण करनेवाले हैं। वे सहस्ररश्मि (भगवान् सूर्य) हम सबका मङ्गल-मनोरथ पूर्ण करें। (सूर्यशतकम् १०)

---

1 सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्। (ऋ० १०।१९०।३) 2 चक्षोः सूर्यो अजायत। (यजुर्वेद ३१।१२)
3 एष ब्रह्मा च विष्णुश्च शिवः स्कन्दः प्रजापतिः। (आदित्यहृदय, वा० रा० उ० १०७।८)

चराचरके आत्मा सूर्यदेव

(लेखक—श्रीजगन्नाथजी वेदालङ्कार)

वेदोंमें सूर्य, सविता और उनकी शक्तियों—मित्र, वरुण, अर्यमा, भग और पूषाके प्रति अनेक सूक्त सम्बोधित किये गये हैं। उनके स्वाध्याय और मननसे विदित होता है कि सूर्य एवं सविता जड़-पिण्ड नहीं, अग्निका गोला ही नहीं, अपितु ताप, प्रकाश, जीवनशक्तिके प्रदाता, प्रजाओंके प्राण 'सूर्य' या 'नारायण' हैं। 'चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत।' (ऋक्० १०।९०।१३), 'यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः। अग्निं यश्चक्र आस्यं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः' (अथर्व० १०।७।३३), 'यतः सूर्य उदेत्यस्तं यत्र च गच्छति। तदेव मन्येऽहं ज्येष्ठं तदु नात्येति किं चन॥' (अथर्व० १०।८।१६) इत्यादि मन्त्रोंमें सूर्यको परम पुरुष परमेश्वरके चक्षुसे उत्पन्न, ज्येष्ठ ब्रह्मका चक्षु तथा उन्हींसे उदित और उन्हींमें अस्त होनेवाला कहा गया है। अतः सूर्यदेव मानव-देहकी भाँति जड़ चेतनात्मक हैं। जैसे हमारी देह जड़ और उसमें विराजमान आत्मा चेतन है वैसे ही सूर्यका बाहरी आकार (पिण्ड) भौतिक या जड़ है, पर उसके भीतर चेतन आत्मा विराजमान है। वे एक देवता हैं—बाह्य और आन्तर प्रकाशके दाता, ताप और जीवनशक्तिके अक्षय भाण्डार, सकल सृष्टिके प्राणस्वरूप। वे आत्मप्रसाद और अप्रसाद—कोप और कृपा, वर और शाप, निग्रह और अनुग्रह करनेमें सर्वथा समर्थ सूर्य नारायण हैं।

वैज्ञानिक जगत्को जब यह विदित हुआ कि हिंदू धर्मके अनुसार सूर्य एक देवता हैं जो प्रसन्न एवं अप्रसन्न भी होते हैं तो एक क्रान्ति उत्पन्न हो गयी। उन्होंने इसकी सत्यता जाँचनेके लिये परीक्षण करना प्रारम्भ कर दिया। मिस्टर जार्ज नामक एक विज्ञानके प्रोफेसरने इस परीक्षणमें सफलता प्राप्त की। ज्येष्ठमासकी कड़कती धूपमें वे केवल पाजामा पहने हुए पाँच मिनट सूर्यके सामने ठहरे। फिर जब कमरेमें जाकर तापमान देखा तो १०३ डिग्री ज्वर चढ़ा पाया। दूसरे दिन पूजाकी सब सामग्री—पत्र, पुष्प, धूप-दीप, नैवेद्य आदि लेकर यथाविधि श्रद्धासे पूजा की, शास्त्रोक्त रीतिसे सूर्य नमस्कार किया। उसमें ११ मिनट लगे। जब कमरेमें जाकर थर्मामीटरसे तापमान देखा तो ज्वर पूरी तरहसे उतरा पाया। इस परीक्षणसे वे इस निश्चयपर पहुँचे कि सूर्य वैज्ञानिकोंके कथनानुसार अग्निका गोला ही हो, ऐसी बात नहीं है। उसमें चेतन सत्ताकी भाँति कोप-प्रसादका तत्त्व भी विद्यमान है। अतः विज्ञानसे भी सूर्य नारायणका देवत्व स्पष्ट हो जाता है। वेदोंमें कहा गया है—'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च' (ऋक्० १।११५।१) सूर्यदेव स्थावर और जङ्गम जगत्के जड़ और चेतनके आत्मा हैं। इन्हें मार्तण्ड* भी कहते हैं, क्योंकि ये मृत अण्ड (ब्रह्माण्ड) मेंसे होकर जगत्को अपनी ऊष्मा तथा प्रकाशसे जीवन-दान देते हैं। इनकी दिव्य किरणोंको प्राप्त करके ही यह विश्व चेतन-दशाको प्राप्त हुआ और होता है। इन्हींसे चराचर जगत्में प्राणका सञ्चार होता है—'प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः' (प्रश्न० १।८)। अतएव वेद भगवान् सूर्यसे शक्ति और शान्तिकी प्राप्तिके लिये उनकी पूजा और प्रार्थना करनेकी आज्ञा देते हैं—

सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा।
सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा।
ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा।

* मृतेऽण्डे एष एतस्मिन् यदभूत् ततो मार्तण्ड इति व्यपदेशः।

सजुर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या।
जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा ॥
(यजु० ३। १०)

शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु
शं नश्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु।
शं नो देवः सविता त्रायमाण
शं नो भवन्तूषसो विभातीः ।
(—ऋ० ७।३५।८, १०)

तैत्तिरीय आरण्यकमें कहा गया है कि उदय और अस्त होते हुए सूर्यका ध्यान और उपासना करनेसे ज्ञानी ब्राह्मण सब प्रकारकी सुख-सम्पदा और कल्याण प्राप्त करते हैं—उद्यन्तमस्तं यन्तमादित्यमभिध्यायन् ब्राह्मणो विद्वान् सकलं भद्रमश्नुते।

अब यहाँ वेदके कतिपय सूक्तों, मन्त्रोंके भावोंद्वारा सूर्यभगवान्‌के महनीय स्वरूप और कार्य-व्यापारका निरूपण किया जाता है।

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः।
दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥
(—ऋ० १।५०।१)

'उस सर्वज्ञ सूर्यदेवको उसकी किरणें, उसके ध्वजारूपी अश्व (क्षितिजपरसे आकाशमें) ऊपर ले जा रहे हैं, ताकि सम्पूर्ण विश्व, सभी प्राणी उनके दर्शन करें।'

आध्यात्मिक अर्थ—अन्तर्ज्ञानकी रश्मियाँ उपासकको उस सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, स्वयंप्रकाश, सर्व-परमात्मदेवकी ओर ले जाती हैं जिससे कि वह इस विश्वके रहस्यको साक्षात् देख-समझ सके।

अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः।
सूराय विश्वचक्षसे ॥ (—ऋ० १।५०।२)

'ये सब नक्षत्रगण रात्रिके अन्धकारके साथ चोरोंकी भाँति चुपकेसे उस विश्वदर्शी सूर्यके सामनेसे भागे जा रहे हैं।'

अदृश्रमस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु।
भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥ (—ऋ० १।५०।३)

'दीप्यमान अग्नियों-जैसे इनके ये ध्वज, ये किरणें मनुष्य आदि सभी जीव-जन्तुओंको अनुकूल दर्शन करा रही हैं।'

तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य।
विश्वमा भासि रोचनम् ॥
(—ऋ० १।५०।४)

'हे सूर्यदेव! आप अन्धकारसे पार लगानेवाले, सर्वसुन्दर, परम दर्शनीय, ज्योतिके स्रष्टा हैं। आप इस सम्पूर्ण चराचर जगत्‌को भास्वर-रूपमें प्रकाशित करते हैं।'

प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषान्।
प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे ॥ (—ऋ० १।५०।५)

'द्युलोकवासी प्रजाओं, मनुष्यों तथा सम्पूर्ण विश्वके सम्मुख आप उदित हो रहे हैं ताकि वे सभी आपकी स्वर्गीय ज्योतिके दर्शन करें।'

येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु।
त्वं वरुण पश्यसि ॥ (—ऋ० १।५०।६)

'हे पवित्रीकारक, पापनाशक वरुणदेव! जिस नेत्रसे तुम लोगोंमें कर्मपरायण मनुष्यके सत्य-अनृतका अवलोकन करते हो वह यही सूर्यरूपी नेत्र है।'

वि द्यामेषि रजस्पृथ्वहा मिमानो अक्तुभिः।
पश्यञ्जन्मानि सूर्य ॥ (—ऋ० १।५०।७)

'हे सूर्यदेव! रात्रिके योगसे दिवसोंको सीमित करते हुए या अपनी किरणोंसे दिनोंका माप करते हुए आप उत्पन्न प्राणिमात्रका निरीक्षण करते-करते द्युलोक और विशाल अन्तरिक्ष-प्रदेशमें संचरण करते रहते हैं।'

सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य।
शोचिष्केशं विचक्षण ॥ (—ऋ० १।५०।८)

'हे सूक्ष्मदर्शिन् विशालदृष्टे सूर्यदेव! आपके रश्मिरूपी सात अश्व किरणरूपी केशोंसे सुशोभित आपको रथमें ले जा रहे हैं।'

अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः।
ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥ (—ऋ० १।५०।९)

'सर्वप्रकाशक सूर्यदेव अपने रथमें सात पवित्र और निर्दोषकारक कन्याओंको रथमें जोत रखा है। स्वयं ही रथमें जुत जानेवाले इन अश्वोंकी सहायतासे वे अपने मार्गका अनुसरण करते हैं।'

उद्वयं तमसस्परि ज्योतिष्पश्यन्त उत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्॥
(—ऋ० १।५०।१०)

'अन्धकारसे उस पार श्रेष्ठ तेजका दर्शन करते-करते हम देवलोकमें सर्वश्रेष्ठ-ज्योति स्वरूप सूर्यदेवके पास पहुँच गये हैं।'

आध्यात्मिक अर्थ—अन्तर्यज्ञ करनेवाले हम उपासक अज्ञानान्धकारके ऊपर उच्च और फिर उच्चतर ज्योतिका साक्षात्कार करते हुए अन्तमें उच्चतम-ज्योति स्वरूप, देवोंमें परमदेव परमात्म-सूर्यतक जा पहुँचे हैं।

हृद्रोग, कामला आदि रोगोंके नाशक सूर्यदेव

उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम्।
हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय॥

'हे मित्रवत् मानि उपकारक तेजसे सम्पन्न सूर्यदेव! आप आज उदित होकर फिर उच्चतर बृहद् द्युमें आरोहण करते हुए मेरे इस हृद्रोग तथा पीलिया (कामला रोग)-का विनाश कर दीजिये।'[1]

शुकेषु मे हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि।
अथो हारिद्रवेषु मे हरिमाणं नि दध्मसि॥
(—ऋ० १।५०।१२)

'अपना पीलिया (पीलापन) हम अपने शरीरसे अलग कर उसी रंगके शुक और सारिका-नामक पक्षियोंमें तथा हारिद्रव नामक वृक्षोंमें रख देते हैं।'[2]

उदगादयमादित्यो विश्वेन सहसा सह।
द्विषन्तं मह्यं रन्धयन् मो अहं द्विषते रधम्॥
(—ऋ० १।५०।१३)

अदितिके पुत्र ये आदित्यदेव मेरे लिये उपद्रवकारी शत्रु और रोगका नाश करते हुए अपने सम्पूर्ण बलके साथ मेरे समक्ष उदित हुए हैं। (अपना समस्त भार उनपर सौंप चुका हूँ—मैं सूर्यभगवान्‌का उपासक हूँ) अतः अपने अनिष्टकारी मानुष या अमानुष प्राणी या रोगका स्वयं नाश न करूँ, मेरे द्वेषीके विषयमें जो कुछ करना है उसे सूर्य भगवान् ही मेरे लिये करें।

चित्रं देवानामुदगादनीकं
चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं
सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च॥
(—ऋ० १।११५।१)

'देवोंके ये सुन्दर मुख, मित्र-वरुण और अग्निके नेत्र ये सूर्यदेव उदित हुए हैं। स्थावर-जङ्गम विश्वके आत्मा इन सूर्यदेवने द्यौ, पृथिवी और अन्तरिक्ष—इन तीनों लोकोंको अपने दिव्य प्रकाशसे भर दिया है।'

सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां
मर्यो न योषामभ्येति पश्चात्।
यत्रा नरो देवयन्तो युगानि
वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम्॥
(—ऋ० १।११५।२)

'भगवान् प्रातःकालकी जिस बेलामें सूर्य सौन्दर्यसे दीप्यमान उषादेवीका उसी प्रकार अनुगमन करते हैं जिस प्रकार पति अपनी अनुरक्ता पत्नीका, उस समयमें देवत्वकामी मनुष्य उत्तरोत्तर कल्याणकी ओर ले

---

[1] सूर्य-किरण-चिकित्साके द्वारा सूर्यके भिन्न-भिन्न रंगोंवाली किरणोंके यथाविधि सेवनसे देहके विकारों और रोगोंका नाशकर शारीरिक और आन्तर स्वास्थ्य प्राप्त किया जा सकता है। इसकी विधियाँ विकसित हो चुकी हैं। भिन्न-भिन्न रंगोंकी बोतलोंमें जल भरकर उसे सूर्यकी धूपमें रखनेसे उसमें नाना रोगोंके नाशकी शक्ति उत्पन्न हो जाती है।

[2] सूर्यदेवकी यथाविधि उपासनासे प्राप्त उनकी कृपा तथा मन्त्रबलसे अपना पीलापन अपने शरीरसे निकालकर उस रंगके पक्षियों या वृक्षोंमें फेंका जा सकता है जिनके लिये यह स्वाभाविक और हानिरहित होता है।

जानेवाले कल्याणकी अभिलाषासे अपने यज्ञायोजनोंका विस्तार करते हैं ।'

भद्रा अश्वा हरितः सूर्यस्य
चित्रा एतग्वा अनुमाद्यास ।
नमस्यन्तो दिव आ पृष्ठमस्थु
परि द्यावापृथिवी यन्ति सद्य ॥
(—ऋक्० १ । ११५ । ३)

'सूर्यके कल्याणकारी, कान्तिमय, नानावर्ण, शीघ्रगामी, आनन्ददायी एव स्तुत्य रश्मिरूप अश्व अपने स्वामी सूर्यकी पूजा करते हुए द्युलोकके पृष्ठपर आरूढ होकर तत्क्षण ही द्यावापृथिवीको व्याप्त कर लेते हैं ।'

तत् सूर्यस्य देवत्व तन्महित्व
मध्या कर्तोर्विततं स जभार ।
यदेदयुक्त हरितः सधस्था
दाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ॥
(—ऋक्० १ । ११५ । ४)

'यह भगवान् सूर्यका देवत्व और महिमा है कि वे अपने कार्यके बीचमें ही अपने फैले हुए रश्मिजालको समेट लेते हैं । जिस समय वह अपने कान्तिमान्, रश्मिरूप अश्वोंको अपने रथसे समेटकर अपनेमें सयुक्त कर लेते हैं, उसी समय रात्रि समस्त जगत्के लिये अपना अन्धकाररूप वस्त्र बुनती है ।'

तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे
सूर्यो रूप कृणुते द्योरुपस्थे ।
अनन्तमन्यद् रुशदस्य पाज
कृष्णमन्यद्धरितः स भरन्ति ॥
(—ऋक्० १ । ११५ । ५)

'सबके प्रेरक भगवान् सविता अपनी प्रेम-सामञ्जस्यमयमूर्ति मित्रदेव तथा अपनी पवित्र्य-वैशाल्यमय-मूर्ति वरुणदेवके सम्मुख स्वर्लोककी गोदमें अपना तेजोमय स्वरूप प्रकट कर रहे हैं । इनके कान्तिमान् अश्व इनका एक अनन्त, दीप्यमान, दिनरूपी, श्वेतवर्ण तेज तथा दूसरा निशान्धकाररूपी कृष्णवर्ण तेज निरन्तर लाते रहते हैं ।'

अद्या देवा उदिता सूर्यस्य
निरंहसः पिपृता निरवद्यात् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः
सिन्धु पृथिवी उत द्यौः ॥
(—ऋक्० १ । ११५ । ६)

'हे देवो ! आज सूर्योदयके समय हमें पाप, निन्द्य कर्म और अपकीर्तिके गर्तसे निकालकर हमारी रक्षा करो । मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्यौ—ये सब देव हमारी इस प्रार्थनाका सम्मान कर इसे पूर्ण करें, हमारी उन्नति और अभिवृद्धि साधित करें ।'*

रोग-सङ्कटादिके निवारक सूर्यदेव

येन सूर्य ज्योतिषा बाधसे तमो
जगच्च विश्वमुदियर्षि भानुना ।
तेनास्मद्विश्वामनिरामनाहुतिमपामी
वामप दुष्ष्वप्न्य सुव ॥
(—ऋक्० १० । ३७ । ४)

'हे सूर्यदेव ! जिस ज्योतिसे आप तमका निवारण करते और सम्पूर्ण जगत्को अपने तेजसे अभ्युदय प्राप्त कराते हैं, उसीसे आप हमारे समस्त विपत्-सङ्कट, अयज्ञ भावना, आधि-व्याधि तथा दुःस्वप्न-जनित अनिष्टका भी निवारण कर दीजिये ।'

सर्वश्रेष्ठ ज्योति

इद श्रेष्ठ ज्योतिषा ज्योतिरुत्तम
विश्वजिद्धनजिदुच्यते बृहत् ।
विश्वभ्राड् भ्राजो महि सूर्यो दृश
उरु पप्रथे सह ओजो अच्युतम् ॥
(—ऋक्० १० । १७० । ३)

* 'उदिता सूर्यस्य' इन पदोंका साङ्केतिक अर्थ यह है कि सूर्यदेव मित्र, वरुण तथा अन्य देवोंके नेत्र हैं और लोगोंके सत्य-अनृत एव पाप-पुण्यके साक्षी हैं । अत ये सूर्य उदित होनेपर सभी देवोंके समक्ष हमारे निष्पाप निरपराध होनेकी साक्षी दें तथा वे देव भी हमें पापसे बचाते हुए हमारी प्रगति एव विकास साधित करें ।

'यह सौर-ज्योति-ग्रह-नक्षत्र आदि ज्योतियोंकी भी ज्योति, उनकी प्रकाशक, सर्वश्रेष्ठ, सर्वोच्च ज्योति है। यह विशाल, विश्वविजयी और ऐश्वर्यविजयी कहलाती है। सम्पूर्ण विश्वको प्रकाशित करनेवाले ये महान् देदीप्यमान सूर्यदेव अपने विस्तृत तमका अभिभव करनेवाले, अविनाशी ओज-तेजका सबके दर्शनके लिये विस्तार करते हैं।'

देवयानके अधिष्ठाता

अध्वनामध्वपते प्र मा तिर स्वस्ति मेऽ
स्मिन् पथि देवयाने भूयात् ॥* (—यजु० ५। ३३)

'हे सकल मार्गोंके स्वामिन् सूर्यदेव! मुझे पार लगाइये। इस देवयानमार्गपर मेरा पूर्ण मङ्गल हो!!'

देवोंमें परम तेजस्वी

सूर्य भ्राजिष्ठ भ्राजिष्ठस्त्वं देवेष्वसि
भ्राजिष्ठोऽहं मनुष्येषु भूयासम् ॥ (—यजु० ८। ४०)

हे परमतेजस्विन् सूर्यदेव! आप देवोंमें सबसे अधिक देदीप्यमान हैं, मैं भी मनुष्योंमें सबसे अधिक देदीप्यमान परम तेजस्वी हो जाऊँ।'

पाप-तापमोचक

यदि जाग्रद्यदि स्वप्न एनांसि चकृमा वयम्।
सूर्यो मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वंहसः ॥
(—यजु० २०। १६)

'जागते या सोते यदि हमने कोई पाप किये हों तो भगवान् सूर्यदेव हमें उन समस्त पापोंसे, कुटिल कर्मोंसे मुक्त कर दें।'

मनके वशीकर्ता

यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभि सूर्य।
सर्वं तदिन्द्र ते वशे ॥
(—यजु० ३३। ३५)

'हे वृत्रघातक, असुरसंहारक सूर्यदेव! जिस किसी भी पदार्थ एवं प्राणीके सामने आप आज उदित हुए हैं वह सब—वे सभी आपके वशमें हैं।'

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्।
पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ
शृणुयाम शरदः शतम् ॥
प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं
भूयश्च शरदः शतात्।
(—यजु० ३६। २४)

'देखो! वे परमदेवद्वारा स्थापित शुद्ध, पवित्र, देदीप्यमान, सबके द्रष्टा और साक्षी, मार्गदर्शक सूर्यरूप चक्षु हमारे सामने उदित हुए हैं। उनकी कृपासे हम सौ वर्षोंतक देखते रहें, सौ वर्षोंतक जीवित रहें, सौ वर्षोंतक श्रवणशक्तिसे सम्पन्न रहें, सौ वर्षोंतक प्रवचन करते रहें, सौ वर्षोंतक अदीन रहें, किसीके अधीन होकर न रहें, सौ वर्षोंसे भी अधिक देखते, सुनते, बोलते रहें, पराधीन न होते हुए जीवित रहें।'

आवाहन—सूर्योपासनाका मन्त्र

उदिह्युदिहि सूर्य वर्चसा माभ्युदिहि।
यांश्च पश्यामि यांश्च न तेषु मा सुमतिं कृधि
तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि
परमे व्योमन् ॥ (—अथर्व० १७। १। ७)

'हे भगवान् सूर्यदेव! आप उदित हों, उदित हों, आध्यात्म तेजके साथ मेरे समक्ष उदित हों। जो मेरे दृष्टिगोचर होते हैं और जो नहीं होते उन सबके प्रति मुझे सुमति दें। हे सर्वव्यापक सूर्यदेव! आपके ही नानाविध बलवीर्य नाना प्रकारसे कार्य कर रहे हैं। आप हमें सब प्रकारकी दृष्टि-शक्तियोंसे पूर्ण और परितृप्त कीजिये, परम व्योममें अमृतत्वमें प्रतिष्ठित कर दीजिये।'

* कहीं बाहर कार्यके लिये जाते समय पूर्ण श्रद्धाभक्ति और एकाग्रताके साथ इस मन्त्रका जप करके तथा जप करते हुए जानेसे कार्य-सिद्धि होती है।

सूर्यके सहचारी देव—वरुण, मित्र, अर्यमा, भग, पूषा

अग्नि, इन्द्र, सूर्य और सोम—ये चार प्रधान वैदिक देवता हैं। इनमेंसे प्रत्येकके अपने-अपने सहचारी देव हैं जो सदा उसके सङ्ग रहते हैं और उसके कार्य व्यापारमें सहायता करते हैं। यहाँ हम वेदके गूढार्थ द्रष्टा महर्षि श्रीअरविन्दके अनुसार सूर्यके सहचारी देवों—वरुण, मित्र, अर्यमा, भग और पूषाके स्वरूप और कार्यव्यापार संक्षेपमें प्रतिपादित करते हैं।

सूर्यदेव परम सत्यकी ज्योति हैं और हमारी सत्ता, हमारे ज्ञान और कर्मके मर्ममें जो सत्य कार्य कर रहा है उसके अधिष्ठातृदेवता भी वे ही हैं। सूर्यदेवता के परम सत्यको यदि हम प्राप्त करना चाहते हैं, अपनी प्रकृतिमें दृढतया स्थापित करना चाहते हैं तो उसके लिये कुछ शर्तोंकी पूर्ति करना आवश्यक है। एक विशाल पवित्रता एवं निर्मल विशालता प्राप्त करना आवश्यक है जो हमारे समस्त पाप-पुञ्ज एवं कुटिल असत्यको उन्मूलन कर दे। उस विशालता एवं पवित्रताकी साक्षात् मूर्ति ही हैं वरुणदेव। इसी प्रकार प्रेम और समग्र बोधकी शक्ति प्राप्त करना भी अनिवार्य है जो हमारे सभी विचारों, कार्यों और आवेगोंको परिचालित करे और उनमें सामञ्जस्य स्थापित करे। ऐसी शक्तिके साक्षात् विग्रह ही हैं मित्रदेव। और फिर विशद विवेकसे पूर्ण अभीप्सा तथा पुरुषार्थकी अध्यवशक्ति भी अपरिहार्य है। उसीका नाम है अर्यमा। इनके साथ ही अपेक्षित है सब पदार्थोंके समुचित दिव्य उपभोगकी सहज सुखमय अवस्था जो पाप, प्रमाद और पीड़ाके दुःस्वप्नको दूर भगा दे। ऐसा कर सकनेवाली शक्ति ही है भग देवता। ये चारों दिव्यशक्तियाँ सूर्यदेवताके सत्यकी शक्तियाँ हैं।

किंतु इनके और उनके दिव्य कार्य सहसा सम्पन्न नहीं हो सकते। मनुष्यके अंदर देवत्वकी पूर्ति एकदम ही नहीं की जा सकती, अपितु एकके बाद एक दिव्य उषाओंके उदयसे, प्रकाशप्रद सूर्यके समय-समयपर पुनः-पुनः उदयनसे होनेवाले ज्योतिर्मय विकासके क्रमिक पोषणके द्वारा ही साधित हो सकता है। इसके लिये सूर्य अपने आपको एक अन्य रूपमें पोषक एवं संवर्धक पूषाके रूपमें प्रकट करते हैं। हमारी अभीष्ट आध्यात्मिक सम्पदा दिन प्रतिदिन इस पूषा (पोषक सूर्य) के पुनरावर्तनके समय वृद्धिको प्राप्त होती है। पूषा सूर्यशक्तिके इस पहलूका प्रतिनिधित्व करते हैं।

वरुण परम सत्यके सूर्य परमेश्वरकी सक्रिय सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमत्ताके मूर्त विग्रह हैं। सत्ता और चेतनाकी विशालता, ज्ञान और शक्तिकी दृढता एवं विराट्ताके राजा हैं वरुणदेव। वे आकाशसम, सिन्धुसम, अनन्त विस्तारवाले राजा स्वराट और सम्राट् हैं। दुर्निवार पाशरूप शस्त्रके धारक दण्डदाता हैं और उपचारकर्ता भी।

मित्र प्रेमके देवता, दिव्य सखा, मनुष्यों और देवोंके सदय सहायक हैं। वेदोंके अनुसार सभी देवोंमें प्रियतम देव यही हैं। इसी प्रकार अर्यमा अन्तर्यज्ञ और अभीप्साकी तथा सत्यके लिये संग्रामकी मूर्तिमती शक्ति हैं। पूर्णता, प्रकाश और दिव्यानन्दकी प्राप्तिके लिये मनुष्यजाति जो यात्रा कर रही है उसकी संचालक शक्ति अर्यमा ही हैं। सृष्टिके समस्त पदार्थोंके आनन्दका उपभोग करनेवाली शक्ति हैं भगदेवता। प्रचुर ऐश्वर्यों (वाजों*) के प्रभु एवं स्वामी हमारी मानसिक अभिवृद्धिके अधिपति, हमारे सखा-साथी हैं पूषा देवता। वे हमारे प्रचुर पदार्थोंका मनसे संरक्षण करते हैं।

* भगवान् पूषाका नाम वाजपति भी है।

कल्याण-मूर्ति सूर्यदेव

(लेखक—श्रीमत् प्रभुपाद आचार्य श्रीप्राणकिशोरजी गोस्वामी)

आर्य ऋषियोंके मतानुसार अति प्राचीन कालमें जब यहाँ कुछ और नहीं था, तब अद्वैत, परमकारण पुरुष इस जगत्के कारण पुरुष थे। वे सच्चिदानन्दमय परम तेजस्वी पुरुष प्रकृतिके अप्रकाश्य पुरुष हैं। उन परम पुरुषके प्राकृतिक हाथ, पैर और नेत्र आदि न होते हुए भी वे ग्रहण, गमन और दर्शन करनेमें सर्वथा समर्थ हैं। उन्होंने जब एकसे अनेक होनेकी कामना की तो उनके नेत्रोंसे चारों ओर—सर्वत्र सूर्यकी ज्योतिराशि छिटक गयी और प्रकृतिकी रचनामें परमाणु परिव्याप्त होकर विश्वसृष्टिकी आधार-शिला स्थापित हो गयी। उन परम पुरुषोत्तमके दृष्टिपातसे विश्व सहसा आलोकमय और सृष्टि चञ्चल हो गया। उनके दृष्टि बंद करनेसे योग निद्राकी अवस्थामें सम्पूर्ण विश्वकी नामरूपरहित अन्धकार रात्रि होती है। इस निविड अन्धकारसे मुक्ति पानेके लिये ज्योतिर्मय राज्यमें प्रवेश प्राप्तिका साधन है—प्रार्थना—सुन्दर वेदमन्त्र। अनन्त आकाशमें, विचित्र, दिव्य, नाना वर्णोंके आलोकनिर्झरित अनन्त ज्योति बिन्दु वरुण लोकमें प्रचुर जल, इन्द्रलोकमें विद्युत्, वज्र अग्नि, अशनिपात, वर्षाका पानी, शस्य-क्षेत्रका पोषण, प्राणि जगत्का पालन, सर्वत्र व्यापक स्थावर-जङ्गमका आत्मा सूर्य हैं। वैज्ञानिकोंके विश्लेषणात्मक मण्डित विचारोंसे सूर्य एक नहीं, अनेक हैं। ग्रहों-उपग्रहोंके सम्बन्धमें सूर्य उनके छोटे-बड़े होनेके कारण उनके बीचकी दूरीका परिमाण, तेजस्विकीर्णता, शक्तिका प्रचुर तारतम्य एवं नाना प्रकारसे आकर्षणके धारक हैं। सूर्य ही सम्पूर्ण सौर-जगत्के शक्तिके सञ्चालक, प्रेरक, गतिदायक एवं विक्षोभ-साधक हैं। ऋषि-महर्षियोंने एक-एक करके सूर्यकी गणना की। स्थूलभेदके विचारसे द्वादश आदित्य अपने अनन्त स्वरूपमें सर्वव्यापक तापशक्तिसे युक्त, परम आश्रय तथा परम अवलम्बन हैं।

अनन्त तरंगोंवाला सागर सूर्यको जलका उपायन देता है। सूर्य उससे मेघोंकी सृष्टि करते हैं। विद्युत्-तरंगोंसे वे क्रीड़ा करते हैं तथा मेघ-वर्षणके जलसे शस्यकी सृष्टि जगत्को परितृप्त करते हैं। यज्ञकुण्डमें अग्निरूपमें अवस्थान करके सूर्यदेवता यज्ञेश्वर नारायणकी पूजा ग्रहण करते हैं। जल, पृथ्वी, वायु और आकाशमें—सर्वत्र सूर्य नारायण और उनकी शक्ति विद्यमान है।

ऐसे परम उपकारी भगवान् सूर्यकी श्रद्धासहित पूजा उपासना कौन नहीं करेगा। इसीलिये जडवादी, चिद्वादी, देहवादी, वैज्ञानिक ज्ञानी, विज्ञानी, योगी और साधक भक्तजन—सभी सूर्य तथा सूर्यविज्ञानके रहस्योंके जाननेके लिये सर्वत्र समुत्सुक होकर साधनमें रत हैं। जो शक्ति विश्वप्राणका नियन्त्रण करती है, उसे किसी भी प्रकार सम्मुखस्थ एवं अनुकूल करना सम्भव होनेपर देह, मन, प्राण, सुस्थ, सरल, कर्मठ तथा सब प्रकारसे आत्ममण्डित करना सम्भव है। प्रतिदिन साधुजन तीन बार इन्हीं सूर्यके सम्मुख होनेके लिये मन्त्रोंद्वारा उपासना करते हैं। वे मन्त्र ही सूर्योपस्थान-मन्त्र हैं। सम्यक् ध्यानके लिये वे ही प्रधान मन्त्र हैं। सूर्यदेवताके सम्मुख होकर गायत्रीमन्त्रसे उनकी शक्तिकी प्रेरणा और सद्बुद्धि-लाभकी प्रार्थना की जाती है। जो वाक्शक्ति, वाङ्मय-रचना तथा मूलाग्नि देवता का दान है उसे विश्वजनके लिये विरक्ति उत्पन्न करनेमें प्रयुक्त न कर समाजको धारण-पोषण करनेमें नियुक्त करनेसे ही आत्म-तुष्टि तथा विश्वका कल्याण होता है।

शैव, शाक्त, गाणपत्य और वैष्णव आदि भारतीय साधना-पद्धतियोंके अन्तर्गत सभी ज्योतिर्मण्डलके

सूर्य-स्वरूपमें ही अपने आराध्य देवताका ध्यान करते हैं। सूर्यके समक्ष साधुजन शुभ प्रेरणाके निमित्त गायत्री-मन्त्रसे प्रार्थना निवेदित करते हैं। इस विराट् आलोकधाराके साथ एकात्मताकी भावना ही दिव्य भगवदीय प्रेम, परमगति तथा परमशान्ति है। जो प्रेम सूर्यके प्रकाशसे उद्भासित है, वही सच्चा प्रेम है। कवि, ज्ञानी और दार्शनिक—सभी सम्पूर्ण जगत्के साथ प्रेमसम्बन्ध स्थापित करके सच्चे मानव बन सकते हैं।

हम ध्यान करते हैं—'तत्सवितुर्वरेण्य भर्गो देवस्य' परम आदरणीय ये सविता देवता 'भर्ग' अर्थात् दीप्तिसे समस्त विश्वको आलोकित और नियन्त्रित करते हैं। सूर्य देवताकी यह प्रार्थना भारतीय संस्कृतिकी विशिष्ट प्रार्थना है। वैदिक ऋषियोंने सत्य-दर्शनके लिये किस मन्त्र-तन्त्रके द्वारा इस तेजपुञ्जकी महामहिमाका अवधारण किया था, यह कथा आज हमें ज्ञात नहीं है। किंतु वर्तमान युगके वैज्ञानिक उन यन्त्रोंकी सहायतासे गगन-मण्डलचारी नक्षत्रमण्डलके साथ नाना प्रकारसे परिचय-सम्बन्ध और अनुसंधानके निमित्त सतत जाग्रत् हैं। कल्याण प्रदाता परब्रह्मस्वरूप इन्हीं भगवान् सूर्यका हम नित्य स्मरण करते हैं।

उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः।
दृशे विश्वाय सूर्यम्॥ (—ऋक्० १।५०।१)

स्वयंप्रकाश सूर्य समस्त प्राणिसमूहको जानते हैं। उनके अश्वगण (किरणसमूह) उनके दर्शनके लिये उन्हें ऊँचे किये रखते हैं। प्राचीन कालमें लोग जानते थे कि अनन्त आकाशमें बहुत-से ब्रह्माण्ड हैं। प्रत्येक ब्रह्माण्डका पृथक् नियन्त्रण और अपनी-अपनी महिमा तथा विशिष्ट अवस्थिति है। यद्यपि हमारा यह सौर-जगत् ब्रह्माण्डकी तुलनामें क्षुद्र है, तथापि इस ब्रह्माण्डके ब्रह्मा चतुर्भुज हैं, बृहत्तरमण्डलोंके ब्रह्मा कोई चतुर्मुख तथा कोई सहस्रमुख हैं। आधुनिक वैज्ञानिकगण इस प्रकारके बृहत्तर नक्षत्रमण्डलोंमें सौर जगत्के अवस्थानके सम्बन्धमें निःसंदेह हैं। उनके विज्ञानसम्मत प्रयोगोंने दूर-दूरान्तरके विचित्र नक्षत्रोंके समूहोंका अस्तित्व प्रमाणित कर दिया है। एक प्रसिद्ध ज्योतिर्विज्ञानीने भर्ग या कन्या राशिके परिमण्डलके मध्यमें 'एम० ८७' नामसे एक अपरिमेय बृहत् उपनक्षत्रका अनुसंधान किया है। कैलिफोर्नियामें माउंट पैलोमरिमें अवस्थित हेल्मान मन्दिर एवं आरिजोनामें किटपित्रक राष्ट्रिय मानमन्दिरसे पर्यवेक्षण करके उक्त वक्तव्यका समर्थन किया गया है। इस 'एम० ८७' मण्डलकी गुरुत्वाकर्षणशक्ति असाधारण है। परिमण्डलमें अवस्थित इसी 'एम० ८७'ने भर्गो नक्षत्रके १०० नक्षत्रोंको अपनी आकर्षणशक्तिसे महाकाशमें स्थिर बना रखा है। वैज्ञानिकोंका मत है कि इस तथ्य पर विचार करनेसे लगता है—जैसे कोई मानो मध्यस्थ रहकर ग्रह-मण्डलोंकी गतिविधिको नियन्त्रित या सुनियन्त्रित करता है। यही शक्ति विभिन्न प्रकारकी तरंगोंसे ५००० प्रकाशवर्षोंकी दूरीतक प्रेषण करती है। 'सवितुर्वरेण्य भर्गो देवस्य'—कहकर मानो भारतके वैदिक ऋषिगण इसी अदृश्य तात्त्विक शक्तिकी ओर इंगित कर नित्य अभ्यर्थना करनेकी प्रेरणा देते हैं।

प्रतत्ते अद्य शिपिविष्ट नामार्यः
शंसामि वयुनानि विद्वान्।
स त्वा गृणामि तवसमतव्यान्
क्षयन्तमस्य रजसः पराके॥
(—ऋग्वेद ७।१००।५)

हे ज्योतिर्मय प्रभो! तुम्हारे नामकी महिमा जानकर मैं उसीका कीर्तन करता हूँ। हे महामहिमामय भगवन्! मैं क्षुद्र होते हुए भी इस ब्रह्माण्डके उस पार अवस्थित होनेके लिये आपकी स्तुति करता हूँ। (आप मुझे यह परम कल्याण दें, आप कल्याण मूर्ति हैं।)

सर्वस्वरूप भगवान् सूर्यनारायण

(लेखक—पं० श्रीवैद्यनाथजी अग्निहोत्री)

भुवन भास्कर भगवान् श्रीसूर्यनारायण प्रत्यक्ष देवता हैं—प्रकाशस्वरूप हैं। वेद, इतिहास और पुराण आदिमें इनका अतीव रोचक तथा सारगर्भित वर्णन मिलता है। ईश्वरीय ज्ञानस्वरूप अपौरुषेय वेदके शीर्षस्थानीय परम गुह्य उपनिषदोंमें भगवान् सूर्यके स्वरूपका मार्मिक कथन है। उपनिषदोंके अनुसार सबका सारतत्त्व एक अनन्त, अखण्ड अद्वय, निर्गुण, निराकार, नित्य, सत् चित्-आनन्द तथा शुद्ध-बुद्ध-मुक्तस्वरूप ही परमतत्त्व है। उसका न कोई नाम है न रूप, न क्रिया है न सम्बन्ध और न कोई गुण एवं न जाति ही है। तथापि गुण, सम्बन्ध आदिका आरोप कर कहीं उसे ब्रह्म कहा गया है, कहीं विष्णु, कहीं शिव, कहीं नारायण, कहीं देवी और कहीं भगवान् 'सूर्यनारायण'।

भगवान् सूर्यके तीन रूप हैं—(१) निर्गुण निराकार, (२) सगुण निराकार और (३) सगुण साकार।

प्रथम तथा द्वितीय निराकार-रूपको एक मानकर कहीं दो ही रूपोंका वर्णन मिलता है। जैसे 'मैत्रायण्युपनिषद्'में आया है—

द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चामूर्तं च। अथ यन्मूर्तं तदसत्यं यदमूर्तं तत्सत्यं तद्ब्रह्म, यद्ब्रह्म तज्ज्योतिर्यज्ज्योतिः स आदित्यः। (६। ३)

'ब्रह्मके दो रूप हैं—एक मूर्त—साकार और दूसरा अमूर्त—निराकार। जो मूर्त है वह असत्य—विनाशी है और जो अमूर्त है, वह सत्य—अविनाशी है। वह ब्रह्म है। जो ब्रह्म है, वह ज्योति प्रकाशस्वरूप है और जो ज्योति है, वह आदित्य—सूर्य है।'

यद्यपि भगवान् सूर्य निर्गुण निराकार हैं तथापि अपनी मायाशक्तिके सम्बन्धसे सगुण कहे जाते हैं। वस्तुतः सामान्य सम्बन्धसे नहीं, तादात्म्याध्यास-सम्बन्धसे ही गुणोंका आरोप, क्रियाका कथन, संसारका सर्जन पालन तथा संहारका भी आरोप होता है। अघटित घटना-पटीयसी मायाके कारण ही वे सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् उपास्य तथा समस्त प्राणियोंके कर्मफलप्रदाता कहे जाते हैं। भगवान् सूर्यद्वारा ही सृष्टि होती है। वे अभिन्न निमित्तोपादान कारण हैं। अतः चराचर समस्त संसार सूर्यका रूप ही है। सूर्योपनिषद्में इसीका प्रतिपादन कुछ विस्तारसे किया गया है।

कारणसे कार्य भिन्न नहीं होता। सूर्य कारण हैं और अन्य सभी कार्य। इसलिये सभी सूर्यस्वरूप हैं और वे सूर्य ही समस्त प्राणियोंकी आत्मा हैं। यह सूर्यका एकत्व ज्ञान ही परमकल्याण—मोक्षका कारण है। स्वयं भगवान् सूर्यका कथन है—'त्वमयाह न भेदोऽस्ति पूर्णत्वात् परमात्मनः' (—मण्डलब्राह्मणोपनिषद् ३। २) 'परम आत्माके पूर्ण होनेके कारण कोई भेद नहीं है। तुम और मैं एक ही हैं।' "ब्रह्माहमस्मीति कृतकृत्यो भवति" (—मण्डलब्रा० ३। २) मैं ब्रह्म ही हूँ—यह जानकर पुरुष कृतकृत्य होता है।' इस प्रकार निर्गुण-सगुण निराकार भगवान् सूर्यके अभिन्न ज्ञानसे परमपद—मोक्ष प्राप्त होता है।

सगुण निराकार और सगुण साकारस्वरूपकी उपासना का वर्णन अनेक उपनिषदोंमें मिलता है। 'य एवासौ तपति तमुद्गीथमुपासीत' (छा० १। ३। १)। जो ये भगवान् सूर्य आकाशमें तपते हैं, उनकी उद्गीथ रूपसे उपासना करनी चाहिये। 'आदित्यो ब्रह्मेति' (छा० ३। १९। १)। आदित्य ब्रह्म है—इस रूपमें आदित्यकी उपासना करनी चाहिये— 'आदित्य ओमित्येवं ध्यायंस्तथात्मानं युञ्जीतेति

(मैत्रा० । ६) आदित्य ही ओम् है, इस रूपमें आदित्यका ध्यान करते हुए अपनेको तद्रूप करे ।

'अथ ह सांकृतिर्भगवानादित्यलोकं जगाम । तमादित्यं नत्वा चाक्षुष्मतीविद्यया तमस्तुवत्' (—अक्ष्युपनिषद्) । भगवान् सांकृति मुनि आदित्यलोकमें गये और वहाँ भगवान् सूर्यको नमस्कारकर चाक्षुष्मती विद्याकी प्राप्तिके लिये उनकी स्तुति की । 'याज्ञवल्क्यो ह वै महामुनिरादित्यलोकं जगाम । तमादित्यं नत्वा भो भगवन्नादित्यात्मतत्त्वमनुब्रूहीति' (—मण्डल ब्रा० १ । १) महामुनि याज्ञवल्क्य आदित्यलोकमें गये और वहाँ भगवान् आदित्यको प्रणाम कर कहा— भगवन् आदित्य! आप अपने आत्मतत्त्वका वर्णन कीजिये ।' सूर्यदेवने दोनोंको दोनों विद्याएँ दीं ।

जैसे भगवान् विष्णुका स्थान वैकुण्ठ, भूतभावन शंकरका कैलास तथा चतुर्मुख ब्रह्माका स्थान ब्रह्मलोक है वैसे ही आप भुवनभास्कर सूर्यका स्थान आदित्यलोक—सूर्यमण्डल है । प्रायः लोग सूर्यमण्डल और सूर्यनारायणको एक ही मानते हैं । सूर्य ही कालचक्रके प्रणेता हैं । सूर्यसे ही दिन, रात्रि, घटी, पल, मास, पक्ष, अयन तथा संवत् आदिका विभाग होता है । सूर्य संसारके नेत्र हैं । इनके बिना सब अन्धकारमय है । सूर्य ही जीवन, तेज, ओज, बल, यश, चक्षु, श्रोत्र, आत्मा और मन हैं— 'आदित्यो वै तेज ओजो बलं यशश्चक्षुः श्रोत्रमात्मा मनः' (—नारायणोपनिषद् १५), 'मह इत्यादित्यः । आदित्येन वाव सर्वे लोका महीयन्ते' (—तै० उ० १ । ५ । २) । 'भूः, भुवः, स्वः'—इन तीनों लोकोंसे भिन्न 'महः' चौथा लोक है, यह आदित्य ही है । आदित्यसे ही समस्त लोक वृद्धि प्राप्त करते हैं । आदित्य महान् है । भूः आदि तीनों लोक इसके अवयव—अंग हैं और यह अङ्गी है । आदित्यके योगसे ही अन्य लोक महत्ता प्राप्त करते हैं । आदित्यकी महिमा अनिर्वचनीय है ।

आदित्यलोकमें भगवान् सूर्यनारायणका साकार विग्रह है । वे रक्तकमलमें स्थित, हिरण्यमय वर्ण, चतुर्भुज तथा दो भुजाओंमें पद्म धारण किये हुए हैं और दो हस्त अभय तथा वर-मुद्रासे युक्त हैं । वे सात अश्वयुक्त रथमें सवार होते हैं । जो उपासक ऐसे उन भगवान् सूर्यकी उपासना करते हैं, उन्हें मनोवाञ्छित फल प्राप्त होता है । उपासकके सम्मुख प्रकट होकर वे उसकी इच्छापूर्ति करते हैं ।

इस प्रकार भगवान् सूर्य विभिन्न रूपोंमें होते हुए भी एक ही हैं । नाम, रूप, क्रिया और इससे भिन्न जो तथा अखण्ड, अनन्त, चेतन-तत्त्व भी एकमात्र भगवान् सूर्य ही हैं । एकत्वका प्रतिपादन करनेवाली अनेक श्रुतियाँ हैं । 'स यश्चायं पुरुषे यश्चासावादित्ये स एकः' (—तै० उ० २ । ८ । ५) 'जो यह परमतत्त्व इस पुरुषमें है और जो आदित्यमें है, वह एक ही है ।' जैसे घटाकाश और महाकाशमें भेद नहीं है, वैसे ही जीव और परम-तत्त्वमें किंचित् भी भेद नहीं है । यह परमतत्त्व भगवान् सूर्य ही हैं । सूर्य सर्वस्वरूप ब्रह्म हैं ।

अप्रतिमरूप रवि अग-जग-स्वामी

(रचयिता—श्रीजमुनाजी तिवारी)

अनल अनिल तन उन्दासी, आदित्यरश्मि है वासी ।
सहस करण रवि कमलहारी, सकल विश्वका है साक्षी ॥
रूप-गन्ध अरु रस-कारी, अमित तेजमय छविधारी ।
देव-प्रलयमय है सब जगका, पूज्य सकल सुर नर-मुनि जनका ॥
जल-चर, थल-चर, नभ-चर प्राणी, सबका ही यह जीवनदानी ।
विष्णु सनातन नित नभगामी, अप्रतिमरूप रवि अग-जग-स्वामी ॥

भारतीय संस्कृतिमें सूर्य

(लेखक—पं० डॉ० श्रीरामजी उपाध्याय एम्० ए०, डी० फिल्०)

रूपं यदेतद् बहुधा चकास्ति
यद्येन भावी भविता न जातु।
तदप्रसुरुत्मदर्शीश्वरस्य
धन्यं वपुस्तैजससारधाम्न ॥

भारतीय संस्कृतिमें आरम्भसे ही सूर्यकी महिमा अतिशय रही है। यह भारतीय आध्यात्मिक जीवनका चरम आदर्श प्रस्तुत करती है। स्वामी रामतीर्थके शब्दोंमें सूर्य सबसे बड़े संन्यासी हैं, क्योंकि वे सबको प्रकाश और जीवन प्रदान करते हैं।* प्रकाश देनेका काम आचार्यका है। वैदिक कालमें ही सूर्यको आचार्यरूपमें प्रतिष्ठा प्राप्त हुई थी। भगवान् सूर्यने याज्ञवल्क्यको वाजसनेयिसंहिताका उपदेश दिया था। गायत्रीके 'धियो यो नः प्रचोदयात्' के द्वारा सूर्यका गुरुत्व ब्रह्मचारी और आचार्यके सम्बन्धमें प्रस्फुटित हुआ है। वैदिक युगसे ही उपनयनमें आचार्य और विद्यार्थीकी अञ्जलि जलसे भरकर आचार्यके मन्त्र पढ़नेकी विधि रही है, यथा—

तत् सवितुर्वृणीमहे वयं देवस्य भोजनम्।
श्रेष्ठं सर्वधातमं तुरं भगस्य धीमहि ॥
(—ऋग्वेद ५ । ८२ । १)

अर्थात्—'हम सवितादेवके भोजनको प्राप्त कर रहे हैं। यह श्रेष्ठ है, सर्वथा पोषक और रोगनाशक है।' यह मन्त्र पढ़कर आचार्य अपने हाथका जल विद्यार्थीकी अञ्जलिमें डाल देते और उसका हाथ अँगूठेसे पकड़ लेते थे। इसके पश्चात् आचार्य कहते थे—

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां
पूष्णो हस्ताभ्यां गृह्णाम्यसौ।

'सवितादेवके अनुशासनमें अश्विद्वयकी बाँहोंसे, तथा पूषाके हाथोंसे मैं तुम्हारा हाथ पकड़ता हूँ।'

इस प्रकार शिष्य और आचार्यके सम्बन्धमें सूर्यकी उपस्थिति प्रमाणित होती थी और यह सिद्ध किया जाता था कि जैसे सूर्य प्रकाश देकर जगत्का अन्धकार निरन्तर दूर करते हैं, वैसे ही आचार्य शिष्यका अज्ञानान्धकार दूर करते रहेंगे। इस अवसरपर सूर्यसे प्रार्थना की जाती थी—

मयि सूर्यो भ्राजो दधातु—अर्थात्—'सूर्य मुझमें प्रकाशकी प्रतिष्ठा करें।'

सूर्यसे आजीवन कर्मयोगकी शिक्षा प्राप्त होती है। सूर्य शब्दकी व्युत्पत्ति है—सुवति प्रेरयति कर्मणि लोकम् अर्थात् सूर्य सतत लोकको कर्ममें लगा देते हैं अतः 'सूर्य' हैं।

सूर्यको निष्काम कर्मकी प्रेरणा परमात्म-स्वरूप भगवान् श्रीकृष्णसे मिली जैसा कि गीता (४ । १)में उन्होंने स्वयं कहा है।

सूर्यके सात अश्वोंद्वारा निष्काम कर्मयोगका चारित्रिक आदर्श प्रस्तुत किया गया है। उनके नाम ये हैं—

जयोऽजयश्च विजयो जितप्राणो जितश्रमः।
मनोजवो जितक्रोधो वाजिनः सप्त कीर्तिताः॥

परम्परा भी सूर्यवंशमें निष्काम कर्मयोग और आत्मज्ञानकी अभिरुचि (कोष) रहा है। सूर्यके पुत्र यमसे नचिकेताने कर्मयोगकी शिक्षा प्राप्त की थी।

सूर्यकी उपर्युक्त विशेषताओंके आधारपर पौराणिक युगमें सौर-सम्प्रदायका प्रवर्तन हुआ। किसी देवताके नामपर सम्प्रदाय बनना तभी सम्भव होता है, जब वह उपास्य बना हो, उससे सारी सुविधा उदय होना हो

* सत्यं सातान सूर्यः । (ऋग्वेद १ । १०५ । १२) यह आध्यात्मिक जीवनका प्रतीक वाक्य है।

और अन्तमें उसमें सारी सृष्टिका विलय भी हो जाता हो। इसकी पुष्टि सूर्योपनिषद्में प्राप्त होती है। ऋग्वेद (१। ११५। १)में भी इस धारणाका परिपाक हुआ है। उसके अनुसार—

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।

ऋग्वेदमें सूर्यका नाम विश्वकर्मा मिलता है। इससे उनकी सृष्टि-रचनाकी योग्यता प्रमाणित होती है।

सूर्योपनिषद्में सूर्यका ब्रह्म स्वरूप स्पष्टरूपसे वर्णित है, जिससे वे सबका उद्भव और विलयका आश्रय प्रतीत होते हैं। देखिये—

सूर्याद् भवन्ति भूतानि सूर्येण पालितानि तु।
सूर्ये लयं प्राप्नुवन्ति यः सूर्यः सोऽहमेव च॥

अर्थात्—'सूर्यसे सभी भूत उत्पन्न होते हैं, सूर्य सबका पालन करते हैं और सूर्यमें सबका विलय भी होता है। जो सूर्य हैं, वही मैं हूँ।'

उपनिषदोंमें आदित्यको सत्य मानकर उन्हें ब्रह्म बताया गया है। इस प्रकार चाक्षुष पुरुषकी आदित्य पुरुषसे अभिन्नता है, यथा—

तद् यत्तत् सत्यमसौ स आदित्यो य एष एतस्मिन् मण्डले पुरुषो यश्चायं दक्षिणेऽक्षन् पुरुष स्तावेतावन्योन्यस्मिन् प्रतिष्ठितौ।

(—बृहदारण्यक० ५। ५। २)

वह सत्य आदित्य हैं। जो इस आदित्यमण्डलमें पुरुष है और जो दक्षिण नेत्रमें पुरुष है, वे दोनों पुरुष एक दूसरेमें प्रतिष्ठित हैं।[1]

इस प्रकार अधिदैव आदित्य पुरुष और अध्यात्म चाक्षुष पुरुषका अन्योन्याश्रय सम्बन्ध बताकर सूर्यको प्रथम उद्भव बताया गया है। अथर्ववेदके अनुसार सूर्य सबके नेत्र हैं।[2]

इसके पीछे उपनिषद् दर्शन है—'आप एवेदम् अग्र आसु:। ता आप: सत्यमसृजन्त। सत्यं [illegible]। तद् यत्तत् सत्यमसौ स आदित्य' इत्यादि। यह सूर्यकी उपासनाका प्रथम सोपान है।

गायत्री आदित्यमें प्रतिष्ठित है। शतपथ ब्राह्मणके अनुसार गायत्रीमें जगत् प्रतिष्ठित है। गायत्री जगत्का ... है। आदित्य-हृदयमें इस विचारधाराका समर्थन करते हुए कहा गया है—

नमः सवित्रे जगदेकचक्षुषे
जगत्प्रसूतिस्थितिनाशहेतवे।
त्रयीमयाय त्रिगुणात्मधारिणे
विरञ्चिनारायणशङ्करात्मने॥

परवर्ती कालमें 'सर्वदेवमयो रविः' के प्रतिभासके ... सभी सम्प्रदायोंको परस्पर निकट लाया गया। महाभारतमें युधिष्ठिरने सूर्यकी स्तुति की है—

त्वमिन्द्रमाणुस्त्वं रुद्रस्त्वं विष्णुस्त्वं प्रजापतिः।
त्वमग्निस्त्वं मनः सूक्ष्मं प्रभुस्त्वं ब्रह्म शाश्वतम्॥

अर्थात्—'सूर्य! आप इन्द्र, रुद्र, विष्णु, प्रजापति, अग्नि, मन, प्रभु और ब्रह्म हैं।'

सूर्यतापिनी उपनिषद्में उपर्युक्त विचारधाराका ... मिलता है, यथा—

एष ब्रह्मा च विष्णुश्च रुद्र एष हि भास्करः।
त्रिमूर्त्यात्मा त्रिवेदात्मा सर्वदेवमयो रविः॥
प्रत्यक्षं दैवतं सूर्यं परोक्षं सर्वदेवता।
सूर्यस्योपासनं कार्यं गच्छेद् वै सूर्यसदम्॥

आदित्यहृदयके अनुसार एक ही सूर्य तीनों कालोंमें क्रमशः त्रिदेव बनते हैं। यथा—

उदये ब्रह्मणो रूपं मध्याह्ने तु महेश्वरः।
अस्तमाने स्वयं विष्णुस्त्रिमूर्तिश्च दिवाकरः॥

---

[1] स आदित्य एष्मिन् प्रतिष्ठित इति चक्षुषीति। [2] सूर्यो मे चक्षुर्वातः प्राणोऽन्तरिक्षमात्मा पृथ्वी शरीरम्। (—अथर्व० ५। ७। १)

केवल देव ही नहीं, अपितु त्रिपुरसुन्दरी ललिता देवीका ध्यान करनेके लिये भी उनका सूर्यमण्डलस्थ-स्वरूप वरणीय है, यथा—

सूर्यमण्डलमध्यस्था देवीं त्रिपुरसुन्दरीम्।
पाशाङ्कुशधनुर्बाणहस्तां ध्यायेत् सुसाधकः॥

विष्णुके समान उनके आराधनकी विधियाँ रही हैं। कुछ पूजा-सम्बन्धी विशेषताएँ भी हैं, जैसे—सूर्य-नमस्कार, अर्घ्यदान आदि। सूर्योदयसे सूर्यास्ततक सूर्योन्मुख होकर मन्त्र या स्तोत्रका जप आदित्यव्रत होता है। षष्ठी या सप्तमी तिथियोंमें दिनभर उपवास करके भगवान् भास्करकी पूजा करना पूर्ण व्रत होता है। पौराणिक धारणाके अनुसार जो-जो पदार्थ सूर्यके लिये अर्पित किये जाते हैं, भगवान् सूर्य उन्हें लाख गुना करके लौटा देते हैं। उस युगमें सूर्यकी एक दिनकी पूजा सैकड़ों यज्ञोंके अनुष्ठानसे बढ़कर मानी गयी है।[1]

सौर पुराणोंमें सूर्यको सर्वश्रेष्ठ देव बतलाया गया है और सभी देवताओंको इन्हींका स्वरूप कहा है। इन पुराणोंके अनुसार भगवान् सूर्य बारबार जीवोंकी सृष्टि और संहार करते हैं। ये पितरोंके और देवताओंके भी देवता हैं। जनक, बालखिल्य, व्यास तथा अन्य संन्यासी योगका आश्रय लेकर इस सूर्य-मण्डलमें प्रवेश कर चुके हैं। ये भगवान् सूर्य सम्पूर्ण जगत्के माता, पिता और गुरु हैं।[2]

सूर्यके बारह रूप हैं। इनमेंसे इन्द्र देवताओंके राजा हैं, धाता प्रजापति हैं, पर्जन्य जल बरसाते हैं, त्वष्टा वनस्पति और ओषधियोंमें विराजमान हैं, पूषा अन्नमें स्थित हैं और प्रजाजनोंका पोषण करते हैं, अर्यमा वायुके माध्यमसे सभी देवताओंमें स्थित हैं, भग देहधारियोंके शरीरमें स्थित हैं, विवस्वान् अग्निमें स्थित हैं और जीवोंके खाये हुए भोजनको पचाते हैं, विष्णु धर्मकी स्थापनाके लिये अवतार लेते हैं अंशुमान् वायुमें प्रतिष्ठित होकर प्रजाको आनन्द प्रदान करते हैं, वरुण जलमें स्थित होकर प्रजाकी रक्षा करते हैं तथा मित्र सम्पूर्ण लोकके मित्र हैं। सूर्यका उपर्युक्त वैशिष्ट्य उन्हें अतिशय लोकपूज्य बना देता है।[3]

सूर्यके हजार नामोंकी कल्पना स्तोत्ररूपमें विकसित हुई है। इन्हीं नामोंका एक संक्षिप्त संस्करण बना, जिसमें केवल इक्कीस नाम हैं। इसको स्तोत्रराजकी उपाधि मिली। इसके पाठसे शरीरमें आरोग्यता धनकी वृद्धि और यशकी प्राप्ति होती है।[4]

सौर-सम्प्रदायके अनुयायी ललाटपर लाल चन्दनसे सूर्यकी आकृति बनाते हैं और लाल फूलोंकी माला धारण करते हैं। वे ब्रह्मरूपमें उदयोन्मुख सूर्यकी, महेश्वर रूपमें मध्याह्न सूर्यकी तथा विष्णुरूपमें अस्तोन्मुख सूर्यकी पूजा करते हैं। सूर्यके कुछ भक्त उनका दर्शन किये बिना भोजन नहीं करते। कुछ लोग तपाये हुए लोहेसे ललाटपर सूर्यकी मुद्राको अङ्कित करके निरन्तर उनके ध्यानमें मग्न रहनेका विधान अपनाते हैं।

भगवान् सूर्यके कुछ उपासक तीसरी शताब्दीमें बाहरसे भारतमें आये। ऐसी जातियोंमें मगोंका नाम उल्लेखनीय है। राजपूतानेमें मग जातिके ब्राह्मण आजकल भी मिलते हैं। यह जाति मूलतः प्राचीन ईरानकी 'मग' जाति है। वहींसे ये भारतमें आये। कुशानयुगमें सूर्यकी पूजा-विधि ईरानसे भारतमें आयी। सूर्य-पूजाका प्रसार प्राचीन कालमें एशिया माइनरसे रोम तक था। यूनानका सम्राट् सिकन्दर सूर्यका उपासक था।

भारतमें सूर्यकी पूजासे सम्बद्ध बहुत-से मन्दिर पाँचवीं शतीके आरम्भ कालसे बनते रहे हैं। इनमेंसे सबसे अधिक प्रसिद्ध तेरहवीं शताब्दी

१ ब्रह्मपुराण, अध्याय २९से। २ वही अध्याय २९।३०से। ३ वही अध्याय ३०।३० से। ४ वही अध्याय ३१।३१–३३।

कोणार्क सूर्य-मंदिर आज भी वर्तमान है। छठी शतीसे कुछ राजा प्रमुखरूपसे सूर्यके उपासक रहे हैं। इनमेंसे हर्षवर्धन और उनके पूर्वजोंके नाम प्रसिद्ध हैं।

सौर-सम्प्रदायका परिचय ब्रह्मपुराणके अतिरिक्त सौर पुराणसे भी मिलता है। ब्रह्मपुराणमें सूर्योपासनाकी प्रमुखता होनेसे इसका भी नाम सौरपुराण है। सौरपुराणमें शैव-सम्प्रदायका परिचय विशेषरूपसे मिलता है। इसमें शिवका सूर्यसे तादात्म्य भी दिखलाया गया है। स्वयं सूर्यने शिवकी उपासनाको श्रेयस्कर कहा है।

अकबरने आदेश निकाला था। प्रातः, मध्याह्न, सायं और अर्द्धरात्रि—चार बार सूर्यकी पूजा होनी चाहिये। वह स्वयं सूर्यके अभिमुख होकर उनके सहस्र नामका पाठ एवं पूजा करता था। इसके पश्चात् कानोंका स्पर्श करके चक्राकार घूमता और अंगुलियोंसे कर्णपालीको पकड़ता था। वह अन्य दिनों भी सूर्यकी पूजा करता था। जहाँगीर भी सूर्यकी पूजा करता था। उसने अकबरके द्वारा सम्मानित सौर-संवत् राजकीय आय-व्ययकी गणनाके लिये प्रचलित रखा था।

भगवान् भास्कर

(लेखक—डॉ० श्रीमाताप्रसादजी गुप्त, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० लिट्०)

सृष्टिका वैचित्र्य देखकर बुद्धि भ्रमित हो जाती है, कल्पना कुण्ठित होती है और मनकी मनस्विता भी हार मानकर बैठ जाती है। जिधर भी दृष्टि डालिये— कितना विशाल, विस्तृत, वैचित्र्यपूर्ण, विचित्र प्रसार लक्षित होता है—कल-कल ध्वनि करते झरने, पयस्विनी सरिताएँ, स्फटिकमणिसदृश पारदर्शी सरोवर, रत्नगर्भा पृथ्वी उच्च शिखरोंसे युक्त एवं हिमाच्छादित दीर्घकाय पर्वत मालाएँ, शीतल-मन्द-सुगन्ध गुणोंका वाहक समीर और उधर प्रकृतिका अत्यन्त भयङ्कर एवं प्रलयकारी रूप जलप्लावन, भूमि-विस्फोट, भूचाल, विद्युत् प्रसारण आदि रूपमें देखा जाता है। पर पृथ्वीके इस विस्मयकारी दृश्यसे भी बढ़कर अति विस्तृत, सर्वत्र व्याप्त तथा असीम आकाशमण्डल है, जिसके नक्षत्र अथवा ग्रह-पिण्ड हमें अपनी स्थिति एवं गतिसे ही प्रभावित नहीं करते, अपितु हम आश्चर्यचकित हो विस्फारित नेत्रोंसे उनकी ओर देखते ही रह जाते हैं। डेनमार्कके एकान्त उपवनमें स्थित कुटियाकी ने [illegible]। उस समय आकाश निर्मल था। [illegible] बृहदाकार तारोंसे परिपूरित आकाश ही बहुत [illegible] आ गया हो। इसी प्रकार [illegible]का वह स्वच्छ [illegible] बिम्ब भी, जो आकारमें इतना विशाल दिखायी देता था, मानो एमन पार्कमें जलशायी वह कमल-पत्र, जिसका व्यास लगभग १॥ मीटरका था और उठे हुए किनारे कमल-पत्रको एक बड़ी परातका रूप प्रदान कर रहे थे। इतना विशाल चन्द्रबिम्ब और तारोंकी वह अनूठी जगमगाहट केवल वहीं था।

गगनमण्डलके इन विस्मयकारी तथ्योंका परिचय प्राप्त करनेके लिये वैज्ञानिक सतत प्रयत्नशील हैं—रहस्योद्घाटन तो शब्दमात्रसे ही बोधित है। इस प्रसङ्गमें चन्द्रलोक, मङ्गल और शुक्र आदि लोकोंकी यात्राओंके अभियान सफलता-असफलताके यान झूलते रहते हैं। सफलता जो मिली है, वह भी तो कितनी—अगण्य-सी! परंतु भगवान् भास्कर तो हमारे इस आश्चर्यमय अनुभव और सृष्टि-वैचित्र्यकी पराकाष्ठा हैं।

सूर्य और सौर-मण्डल-सम्बन्धी अनेक अन्वेषण परीक्षण एवं स्पष्टीकरण आदि पढ़ने-सुननेमें आते हैं, पर

[illegible]

पृ० २०० पर से।

उनका परिमाण मनमें अनुमानसे एक अणु मात्रा ही है। सूर्य प्रत्यक्ष देवता हैं। हमारी सृष्टिके महत्त्वपूर्ण आधार सूर्य यदि प्रकाश पुञ्ज हैं तो जीवन प्रदायिनी ऊष्माके भी वे आधार हैं। वन, उपवन, जल, कृषि, गतिके विभिन्न रूप, फल, फूल तथा वृक्ष-लता आदि—यहाँतक कि जीवन भी उन्हींके द्वारा प्रदत्त उपहार है। सम्पूर्ण विश्व उनसे लाभान्वित है। न जाने कितने लोक सौरमण्डलके अधिष्ठाताका गुणगान करते हैं। भगवान् सूर्यके विषयमें कहा गया है कि उनके प्रकाशमण्डलका व्यास ८६४००० मील है—पृथ्वीके व्यासमे १०९ गुना। इनका पुञ्ज २२७ पर २५ शून्य लगाकर अङ्कित किया जाता है जो पृथ्वी-पुञ्जसे लगभग ३ लाख गुना है। सूर्यसे हमारा पृथ्वीकी दूरी १४९८९१००० किलोमीटर है। यहाँसे प्रकाशके आनेमें ही प्रकाश गतिसे ८॥ मिनिट लगते हैं। ये संख्याएँ—आँकड़े सूर्यकी अति महत्ता, अति विस्तार और अति प्रचण्डताके द्योतक हैं। ऋतुओंका विभाजन, दिन-रातकी मात्राएँ, प्रकाश-अन्धकारका गति, वर्षा-अनावर्षा अवर्षा—यहाँ तक कि जीवनके विभिन्न उपक्रम सूर्यपर ही निर्भर हैं। यही कारण है कि अनादि कालसे सूर्यकी उपासना न केवल हमारे देशमें वरन् विश्वके विभिन्न भागोंमें भक्ति एवं श्रद्धाके साथ की जाती रही है। सूर्य एक ऐसी परम शक्ति हैं, उत्कृष्ट देवता हैं जिसमें उनकी असीम शक्तिका उपयोग नियमानुकूल ही होता है—नियमोंकी अवहेलना नहीं होती। यही कारण है कि खगोल-शास्त्रियों एवं ज्योतिर्विदोंका ज्ञान विनान दृढ़ताके साथ प्रतिफलित होता रहता है। यदि निश्चित नियमों का अतिक्रमण केवल गतिके सूक्ष्मातिसूक्ष्म अंशमें भी हो जाय तो उसका परिणाम निश्चय ही महाप्रलय है।

जैसा ऊपर कहा जा चुका है कि पृथ्वीके प्रत्येक खण्डमें तारोंसे जटित आकाश मर्यादासे ही विस्मय और खोजका विषय रहा है—सभी जाति लोग इसकी ओर आकृष्ट हुए हैं। जिन नौ या सात ग्रहोंकी कल्पना विश्वके विविध मनीषियोंने की, उनमें सूर्यको सर्वोत्कृष्ट स्थान दिया जाता रहा है। अनेक लोक-कथाएँ एवं जन श्रुतियाँ भी चलती आयी हैं और सूर्यको अनेक रूपोंमें देखा गया है। एक पाश्चात्त्य लोककथा है—'जब सृष्टिके आरम्भमें सामोनने माउगको युद्धमें पराजितकर कारागारमें डाल दिया तब पराजित करनेवाला शक्तिको गुलाकर (गोला बनाकर) शून्यमें डाल दिया। वही शक्ति गोलाकार होकर इधर-उधर लुढ़कती रही। बहुत समय पश्चात् माउङ नामके वीरने इस लुढ़कनेवाले गोलेका मार्ग नियमित कर दिया और तभीसे सूर्यका मार्ग निर्धारित हो गया।'

सूर्य-चन्द्रको किसी दैत्यद्वारा निगलनेकी बात भी बहुत प्राचीन कालसे चलती आ रही है। अमेरिकाके रेड इंडियन भी अनेक प्रकारकी सूर्य-कथाएँ कहते रहे हैं। ज्योतिषका आधार तो सूर्य ही रहा है। चीनके प्राचीन विद्वानोंने सूर्यको आधार मानकर अपने खगोल-शास्त्र, ज्योतिर्विद्या तथा धर्मका विस्तार किया। चीनमें सूर्यका नाम 'याँग' है और चन्द्रका 'यिन'। सूर्योपासनाके प्रसङ्ग भी वहाँ मिलते हैं। 'लीकी' की पुस्तक 'लि आओ लेह सेंग में नामी पुस्तकके अन्तर्गत सूर्यको 'स्वर्ग पुत्र' कहा गया है और दिनका प्रणेता कहकर उनकी अभ्यर्थना की गयी है। बौद्ध जातकोंमें भी सूर्यके प्रसङ्ग आते हैं और उन्हें भाइनके रूपमें मान्यता मिलती है। इसकी अजवीथि नागवीथि और गोवीथि नामके मार्गोपर तीन गलियाँ मानी गयी हैं। इस्लाममें सूर्यको इल्म अड्कआम अन नजूम'का केन्द्र माना गया है। मुस्लिम विद्वानोंकी मान्यता रही कि सूर्य आदि चेतन हैं, इच्छाशक्तिका उपयोग करते हैं और उनके पिण्ड उनमें व्याप्त अन्तरात्मासे प्रेरित होते हैं। ईसाइयोंके 'न्यू टेस्टामेंट'में सूर्यके धार्मिक महत्त्वका कई बार वर्णन आया है। सेंटपॉलने आदेश दिया है कि—'सूर्यके रहते

कोणार्क सूर्य-मन्दिर आज भी वर्तमान है। छठी शतीसे कुछ राजा प्रमुखरूपसे सूर्यके उपासक रहे हैं। इनमेंसे हर्षवर्धन और उनके पूर्वजोंके नाम प्रसिद्ध हैं।

सौर-सम्प्रदायका परिचय ब्रह्मपुराणके अतिरिक्त सौर पुराणसे भी मिलता है। ब्रह्मपुराणमें सूर्योपासनाकी प्रमुखता होनेसे इसका भी नाम सौरपुराण है। सौरपुराणमें शैव-सम्प्रदायोंका परिचय विशेषरूपसे मिलता है। इसमें शिवका सूर्यसे तादात्म्य भी दिखलाया गया है। स्वयं सूर्यने शिवकी उपासनाको श्रेयस्कर कहा है।

अकबरने आदेश निकाला था। प्रातः, मध्याह्न, सायं और अर्द्धरात्रि—चार बार सूर्यकी पूजा होनी चाहिये। वह स्वयं सूर्यके अभिमुख होकर उनके सहस्र नामका पाठ एवं जप करता था। इसके पश्चात् दोनों कानोंका स्पर्श करके चक्राकार घूमता और दोनों अङ्गुलियोंसे कर्णपालीको पकड़ता था। वह अन्य विधियोंसे भी सूर्यकी पूजा करता था। जहाँगीर भी सूर्यका वन्दन करता था। उसने अकबरके द्वारा सम्मानित सौर-संवत्‌को राजकीय आय-व्ययकी गणनाके लिये प्रचलित रखा था।*

भगवान् भास्कर

(लेखक—डॉ० श्रीमाताप्रसादजी गुप्त, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० लिट्०)

सृष्टिका वैचित्र्य देखकर बुद्धि भ्रमित हो जाती है, कल्पना कुण्ठित होती है और मनकी मननशीलता भी हार मानकर बैठ जाती है। जिधर भी दृष्टि डालिये—कितना विशाल, विस्तृत, वैविध्यपूर्ण, विचित्र प्रसार लक्षित होता है—कल-कल ध्वनि करती हुई पयस्विनी सरिताएँ, स्फटिकमणिसदृश पारदर्शी सरोवर, रत्नगर्भा पृथ्वी, उच्च शिखरोंसे युक्त एवं हिमाच्छादित दीर्घकाय पर्वत-मालाएँ, शीतल-मन्द-सुगन्ध गुणोंका वाहक समीर और उधर प्रकृतिका अत्यन्त भयङ्कर एवं प्रलयकारी रूप जलप्लावन, भूमि-विघटन, भूचाल, विद्युत्-प्रताड़न आदि रूपमें देखा जाता है। पर पृथ्वीके इस विस्मयकारी दृश्यसे भी बढ़कर अति विस्तृत, सर्वत्र व्याप्त तथा असीम आकाशमण्डल है, जिसके नक्षत्र अथवा ग्रह-पिण्ड हमें अपनी स्थिति एवं गतिसे ही प्रभावित नहीं करते, अपितु हम आश्चर्यचकित हो विस्फारित नेत्रोंसे उनको ओर देखते ही रह जाते हैं। डेनमार्कके एकान्त उपवनमें स्थित कुटियाकी वे रातें मुझे स्मरण हैं। उस समय आकाश निर्मल था। वह ऐसा प्रतीत होता था जैसे मोटे-मोटे बृहदाकार तारोंसे परिपूरित आकाश ही बहुत नीचे आ गया हो। इसी प्रकार जर्मनीका वह स्वच्छ चन्द्रबिम्ब भी, जो आकारमें इतना विशाल दिखायी देता था मानो गगन पार्श्वमें जलशायी वह कमल-पत्र, जिसका व्यास लगभग १॥ मीटरका था और उसके किनारे कमल-पत्रको एक बड़ी परातका रूप प्रदान कर रहे थे। इतना विशाल चन्द्रबिम्ब और तारोंकी वह अनूठी जगमगाहट केवल वहीं देखी। गगनमण्डलके इन विस्मयकारी तथ्योंका परिचय प्राप्त करनेके लिये वैज्ञानिक सतत प्रयत्नशील हैं—रहस्योद्घाटन तो शब्दमात्रसे ही बोधित है। इस प्रसङ्गमें चन्द्रलोक, मङ्गल और शुक्र आदिके लोकोंकी यात्राओंके अभियान सफलता-असफलताके बीच झूलते चलते हैं। सफलता जो मिली है, वह भी तो कितनी—अल्प-सी! परंतु भगवान् भास्कर तो हमारे इस आश्चर्यमय अनुभव और सृष्टि-वैचित्र्यकी पराकाष्ठा हैं।

सूर्य और सौर-मण्डल-सम्बन्धी अनेक अन्वेषण, परीक्षण एवं स्पष्टीकरण आदि पढ़ने-सुननेमें आते हैं, पर

* आइन अकबरी ब्लाकमैनका अंग्रेजी अनुवाद १९६५ ई०, पृ० २००-२१२ से।

उनका परिमाण मेरे अनुमानसे एक अणु-मात्र ही है। सूर्य प्रत्यक्ष देवता हैं। हमारी सृष्टिके महत्त्वपूर्ण आधार सूर्य यदि प्रकाश-पुञ्ज हैं तो जीवन प्रदायिनी ऊष्माके भी वे जनक हैं। वन, उपवन, जल, कृषि गतिके विभिन्न रूप, फल, फूल तथा वृक्ष-लता आदि—यहाँतक कि जीवन भी उन्हींके द्वारा प्रदत्त उपहार है। सम्पूर्ण विश्व उनसे लाभान्वित है। न जाने कितने लोग सौरमण्डलके अधिष्ठाताका गुणगान करते हैं। भगवान् सूर्यके विषयमें कहा गया है कि उनके प्रकाशमण्डलका व्यास ८६४००० मील है—पृथ्वीके व्याससे १०० गुना। इनका पुञ्ज २७ पर २५ शून्य लगाकर अङ्कित किया जाता है जो पृथ्वी पुञ्जसे लगभग ३ लाख गुना है। सूर्यसे हमारी पृथ्वीकी दूरी १४९८०१००० किलोमीटर है। यहाँसे प्रकाशके आनेमें इस प्रकाश गतिसे ८॥ मिनिट लगते हैं। ये संख्याएँ—आँकड़े सूर्यकी अति महत्ता, अति विस्तार और अति प्रचण्डताके द्योतक हैं। ऋतुओंका विभाजन, दिन-रातकी सीमाएँ, प्रकाश-अन्धकारकी गति, वर्षा-अतिवर्षा, अनावृष्टि—यहाँ तक कि जीवनके विभिन्न उपक्रम सूर्यपर ही निर्भर हैं। यही कारण है कि अनादि कालसे सूर्यकी उपासना न केवल हमारे देशमें, वरन् विश्वके विभिन्न भागोंमें भक्ति एवं श्रद्धाके साथ की जाती रही है। सूर्य एक ऐसी परम शक्ति है, उत्कृष्ट देवता हैं जिसकी उनकी असीम शक्तिका उपयोग नियमानुकूल ही होता है—नियमोंकी अवहेलना नहीं होती। यही कारण है कि खगोल-शास्त्रियों एवं ज्योतिषियोंका ज्ञान-विज्ञान दृढ़ताके साथ प्रतिफलित होता रहता है। यदि निश्चित नियमों का अतिक्रमण केवल गतिके सूक्ष्मातिसूक्ष्म अंशमें भी हो जाय तो उसका परिणाम निश्चय ही महाप्रलय है।

जैसा ऊपर कहा जा चुका है कि पृथ्वीके प्रत्येक खण्डमें तारोंसे जटित आकाश सर्वदासे ही विस्मय और कौतुकका विषय रहा है—सभी वर्गके लोग इसकी ओर आकृष्ट हुए हैं। जिन नौ या सात ग्रहोंकी कल्पना विश्वके विविध मनीषियोंने की उनमें सूर्यको सर्वोत्कृष्ट स्थान दिया जाता रहा है। अनेक लोक-कथाएँ एवं जन-श्रुतियाँ भी चलती आयी हैं और सूर्यको अनेक रूपोंमें देखा गया है। एक पाश्चात्त्य लोककथा है—'जब सृष्टिके आरम्भमें सामोरने नाइगको युद्धमें पराजितकर कारागारमें डाल दिया, तब पराजित करनेवाली शक्तिको गुलाकर (गोल बनाकर) शून्यमें डाल दिया। वही शक्ति गोलाकार होकर इधर-उधर लुढ़कती रही। बहुत समय पश्चात् माउइ नामके वीरने इस लुढ़कनेवाले गोलेका मार्ग नियमित कर दिया और तभीसे सूर्यका मार्ग निर्धारित हो गया।'

सूर्य-चन्द्रको किसी दैत्यद्वारा निगलनेकी बात भी बहुत प्राचीन कालसे चलती आ रही है। अमरिकाके रेड इंडियन भी अनेक प्रकारकी सूर्य-कथाएँ कहते रहे हैं। ज्योतिषका आधार तो सूर्य ही रहा है। चीनके प्राचीन विद्वानोंने ग्रहको आधार मानकर अपने खगोल-शास्त्र, ज्योतिर्विद्या तथा धर्मका विस्तार किया। चीनमें सूर्यका नाम 'यांग' है और चन्द्रमा 'यिन'। सूर्योपासनाके प्रसङ्ग भी वहाँ मिलते हैं। 'लीकी' की पुस्तक 'यि आओ नेट सेंग'में नवीं पुस्तकके अन्तर्गत सूर्यको 'स्वर्ग पुत्र' कहा गया है और दिव्यता प्रदाता कहकर उनकी अभ्यर्थना की गयी है। बौद्ध जातकोंमें भी सूर्यके प्रसङ्ग आते हैं और उन्हें वाहनके रूपमें मान्यता मिलती है। इनकी गजवीथि, नागवीथि और गोवीथि नामके मार्गोंपर तीन गतियाँ मानी गयी हैं। इस्लाममें सूर्यको 'इल्म अउल्म' अल नजूम का केन्द्र माना गया है। मुस्लिम विद्वानोंकी मान्यता रही कि सूर्य आदि चेतन हैं, इच्छाशक्तिका उपयोग करते हैं और उनके पिण्ड उनमें व्याप्त अन्तरात्मासे प्रेरित होते हैं। ईसाइयोंके 'न्यू टेस्टामेंट'में सूर्यके धार्मिक महत्त्वका कई बार वर्णन आया है। मैग्नोलने आदेश दिया है कि—सूर्यके द्वारा

पवित्र किया गया रविवार दानकी अपेक्षा करता है । इसे प्रभुका दिन माना गया है और इसीलिये यह उपासना का प्रमुख दिन है । ग्रीक और रोमन विद्वानोंने भी इसी दिनको पूजाका दिन स्वीकार किया और महान् थियोडोसियसने तो रविवारके दिन नाच-गान, थियेटर, सरकस-मनोविनोद और मुकदमेबाजीका निषेध किया । बाल्टिक समुद्रके आसपास सूर्यके प्रसङ्गमें अनेक कथाएँ प्रचलित हुईं । 'एडा'की कविताओंमें सूर्यको चन्द्रमाकी पत्नी* माना गया है और उनकी पुत्री उषाको देवपुत्रकी प्रेयसी, जिसके दहेजमें सूर्यने अपनी किरणोंके उस अंशको दे दिया, जिससे गगनमण्डलमें बादलोंके कँगूरे प्रतिभासित होते हैं तथा वृक्षोंकी ऊपरकी टहनियोंमें शोभा आ जाती है । वर्णन आता है—'अपने रजत पदत्राणोंसे सूर्यदेवी रजतगिरिपर नृत्य करती हुई अपने प्रेमी चन्द्रदेवका आवाहन करती है । वसन्त ऋतुकी प्रतीक्षा होती है और तब उनके प्रणयस्वरूप संतति की सृष्टि है, जो तारोंके रूपमें आकाशको आच्छादित कर लेती है । परंतु दुर्भाग्यसे चन्द्रदेव सोते ही रहते हैं और सूर्यदेवी उठकर चली जाती है और तबसे इन दोनोंका चिर वियोग ही रहता है आदि ।'

आर्य और अनार्य—सभीने सूर्यको उपासनीय माना है । द्रविड़ोंने सूर्यको 'परमेश्वर' कहकर उन्हें महान् माना और विविध प्रकारकी पूजाका विधान किया । हिन्दुओंमें सूर्यकी त्रिकाल उपासना-विधि चली और उन्हें जीवनका दाता एवं पोषक माना । सूर्यके कहीं सात और कहीं दो घोड़ोंसे कर्षित स्वर्णरथकी बात अनेक स्थलोंपर आती है । 'सौर'-सम्प्रदायका भी वर्णन मिलता है । सूर्य-साहित्य वास्तवमें बहुत विस्तृत तथा सर्वत्र उपलब्ध भी है ।

इस स्थानपर सूर्यसम्बन्धी समय-सूचक कुछ अनुभव प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

(१) अपने देशमें तो सूर्य अधिक-से-अधि ७ बजेतक रहते हैं और सूर्यास्तके उपरान्त शीघ्र ही रात्रिका पदार्पण हो जाता है, परंतु उत्तरमें स्वीड ग्रीष्मऋतुमें बहुत देरसे होता है और उसके ब सन्ध्याकाल घंटों बना रहता है । मेरा सर्वप्रथम ल दिनका अनुभव एडिनबरामें हुआ, जब मुझे एक स्कॉट दम्पतीने चाय-पानका निमन्त्रण रात्रिके नौ बजेका दिया था । हमारे यहाँ तो यह समय ४।। बजेका होता है । मैंने अपने मित्रसे कहा—'रातको नौ बजे चाय कैसी ?' उन्होंने उत्तर दिया—'यहाँ तो यही उपयुक्त समय है, जब आरामसे बैठकर बातें करने तथा विचार विनिमयमें सुविधा होती है ।' वे भी मेरे साथ जानेको थे । हम रातमें नौ बजे निमन्त्रणको सार्थक करने पहुँचे और वे स्कॉट-दम्पति ही नहीं, भगवान् सूर्य भी आकाशमें अपने प्रकाशसे हमारा स्वागत कर रहे थे । तबसे मैंने भगवान् सूर्यके ये चमत्कार विश्वके अनेक भागोंमें देखा ।

(२) वायुयानकी यात्रामें घड़ीकी अदला-बदलीका अवसर तो आता ही रहता है—यदि आप भारतसे यूरोप एवं अमेरिका जा रहे हैं तो निरन्तर संकेत मिलता रहेगा—'अब इतना पीछे, अब और इतना पीछे, अब और-और ।' इस प्रकार निरन्तर आपकी घड़ी पीछे होती जायगी और जब आप वहाँसे लौटेंगे तो आगे, आगे और आगे घड़ीकी सुइयाँ खिसकानी पड़ेंगी । पर यदि आप जापान जा रहे हैं तो यह क्रिया उल्टे रूपमें होगी यानी जापान जाते समय आगे और लौटते समय पीछे । और इन सबके कारण हैं भगवान् भास्कर जिनकी

* वेद-वैदिक एवं भारतीय अन्य विस्तृत साहित्योंमें भगवान् सूर्यको स्वतन्त्र, सर्वशक्ति-सम्पन्न तथा अखिल जगत्के पालक मानते हैं । इन्हीं भगवान् सूर्यसे सृष्टि हुई है । अतः हमारी मान्यता उपर्युक्त कहानीसे मेल नहीं खाती । यह अंश अन्यत्रकी जन-श्रुतियोंकी जानकारी हेतु ही दिया गया है ।

ज्योति समयक्रमको एक निश्चित क्रियासे परिचालित करती रहती है।

(३) पिछले वर्ष मैं स्वीडेन गया। वहाँ लिनोपिंग तथा उमियो-विश्वविद्यालयोंमें मुझे व्याख्यान देने थे। उमियोंमें भाषण देनेके पश्चात् जब मैं अपने स्थानपर लौटा तब कहा गया—'कमरेमें खिड़कियोंके पर्दे खींच लें अन्यथा नींदमें बाधा आयेगी।' मैं होटलसे निकला, आकाशमें सूर्य विद्यमान थे—कोई विशेष बात न थी क्योंकि मैं ९॥ बजे रात्रिमें सूर्यको देखनेमें अभ्यस्त हूँ। पर यहाँ तो १०॥ बजे रातमें भी सूर्यभगवान् आकाशमें विराज रहे थे और अब तो ११ बजने जा रहे हैं—अस्तु, सूर्यास्त हुआ, पर अन्धकारका नाम नहीं। मैंने खिड़कीसे देखा प्रकाश-जैसा ही था। पर्दे खींचकर सोनेका उपक्रम किया, पर ११ बजे रात्रिको सूर्यदर्शनकी बात मस्तिष्कमें घूम रही थी, १ बजे फिर देखा—वही प्रकाश, और दोबारा जब ३ बजेके लगभग देखा तब तो सूर्यदेव अपनी सम्पूर्ण आभासहित आकाशमें विद्यमान थे।

अगले दिन मैंने अपना अनुभव भाषाविद् डॉ० सोडरबर्ग तथा संस्कृत विदुषी प्रोफेसर श्रेराको सुनाया तो उन्होंने कहा—'यह तो सामान्य बात है। हम आपको उस स्थानपर ले जानेकी तैयारी कर रहे हैं जहाँ आप अर्द्धरात्रिके समय सूर्यका प्रत्यक्ष दर्शन करेंगे तथा रात्रिका नितान्त अभाव देखेंगे। यह स्थान लगभग चार-पाँच सौ किलोमीटर दूर था, पर यूरोपकी व्यवस्थित सड़कोंपर यह दूरी अधिक नहीं था। पूरा कार्यक्रम तैयार हो गया, परंतु मौसम एकदम खराब हो गया और मौसमकी भविष्यवाणीने २ ३ दिनोंतक बहुत खराब मौसम रहनेकी घोषणा की। आप समझ सकते हैं कि क्या परिणाम हुआ—मेरी अर्द्धरात्रिमें सूर्यको देखनेकी आशा निराशामें परिवर्तित हो गयी, बादल और वर्षामें यह कैसे सम्भव होता।

हाँ, उसी यात्रामें एक जर्मन मित्रके घरपर उनका नार्वेपर बनायी एक फिल्म देखा, जिसमें उन्होंने इस अलभ्य दृश्यका सम्यक् रूपसे दर्शन कराया था। उनकी घड़ीमें रातके १२ बजे थे और सूर्य अपनी पूर्ण आभाके साथ आकाशमें शान्तभावसे आसीन प्रतीत हो रहे थे। यह आभास ही नहीं होता था कि अर्द्धरात्रि है—जब सूर्य विद्यमान हैं तब अन्धकार कहाँ, रात्रि कैसी!

(४) मैं मेक्सिकोमें था, हवाई द्वीपके होनो लुलुकी यात्राका आरम्भ हो चुका था। मेरी यात्रा सम्भवतः १८ अगस्तको थी। मैंने जापान एयर लाइन्समें यात्राकी पुष्टि कराते हुए होटल-आरक्षणके लिये कहा तो उन्होंने शीघ्र ही बिना कुछ पूछे, १७ अगस्तसे होटल-आरक्षण कर दिया, विचित्र बात! मैंने देखा-समझा, कुछ भूल हुई? १८की उड़ान और १७से आरक्षण! मैंने सङ्केत किया—आपसे कुछ भूल हो रही है, मैं दिनाङ्क १८को उड़ान ले रहा हूँ, १७को होटलका उपयोग किस प्रकार कर सकता हूँ? कहा गया—भूल नहीं है ठीक है—क्योंकि मैरिडिन रेखा पार का जायगी और उसमें एक दिनका अंतर पड़ जाता है। मैं चुप हो गया। पर थी आश्चर्यजनक बात। मैरिडिन रेखा पार की गयी और उस वायुयानमें ही मुझे एक प्रमाण-पत्र दिया गया, जिसमें इस बातका उल्लेख था कि अमुक व्यक्तिने अमुक उड़ानसे यह रेखा पार की। साथ ही घड़ीका समय और दिनाङ्क बदलनेके लिये भी सङ्केत दिये गये। दिनाङ्क १८ को मैं उड़ा था और दिनाङ्क १७ को मेरे मित्र होनो लुलु हवाईअड्डेपर मेरे स्वागतार्थ उपस्थित थे—सभी स्थानोंमें दिनाङ्क १७ था। कितनी विचित्र है भगवान् भास्करद्वारा विविध स्थानोंपर समय-रचना!

इस प्रकारके मेरे अनेक अनुभव हैं—कहीं रात, रात, रात, कहीं सर्वदा दिन। कहीं २४ घंटोंका

मध्याकाल, कहीं सहसा सूर्यास्त और तत्काल बाद ही रात्रिका आगमन। एक ही सूर्यनारायण इस पृथ्वीको कितने अन्तरालोंमें विभक्त कर देते हैं!

लोग कहीं सूर्यके दर्शनके लिये तरसते हैं, कहीं सूर्यकी प्रखरतासे बचनेके लिये छायाका अन्वेषण करते हैं, कहीं सूर्यकी रश्मियोंका शरीरमें सेवनकर श्वेत वर्णमें कमी करना चाहते हैं, कहीं कालिमामात्र दोषसे बचनेकी चेष्टा करते हैं। मेरे एक मित्रने अन्धकार, सर्दी, वर्षासे त्रस्त होकर लिखा था—'आप अपने देशसे थोड़ा-सा सूर्यका प्रकाश और उसकी किंचित् ऊष्मा हम भेज दें, हम आपको कुछ बादल और वर्षा भेज देंगे'—यह एक हास्य प्रसङ्ग-सा लगता है, पर है यह सूर्यका महत्त्व और उनके प्रभाव-वैशिष्ट्यका परिचायक। मेरा ऐसा अनुमान है कि सृष्टिकी विभिन्न शक्तियोंमें सूर्यका स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और जीवनका नियमन, प्रजनन, विघटन, विस्फारण आदि उन्हींकी शक्तिपर निर्भर है। अतः लोकोपकारी, लोक-नियन्ता, लोकोत्तर भगवान् भास्करको और उनकी प्रखर, प्रचण्ड, उद्दीप्त, जीवनशक्ति सर्वपरितोषिणी आभाको पुनः-पुनः नमस्कार है।

सूर्यदेवता, तुम्हें प्रणाम!

(लेखक—श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

उषा, उषाकी मधुमय बेला! कैसा अद्भुत सौन्दर्य!! कैसा अद्भुत आनन्द!!!

सूर्यकी अग्रगामिनी उषाके दर्शन करके मानव अनादिकालसे मुग्ध होता आया है। ऋषि लोग उषाके गीत गाते नहीं थकते। ऋग्वेदमें, विश्वके इस प्राचीनतम ग्रन्थमें उषासम्बन्धी अनेक ऋचाएँ हैं। परमेश्वरकी सन्देशवाहिका उषाको सम्बोधित करते हुए ऋषि कहते हैं—'तू हिमकिरणोंसे स्नान करके आयी है। तू अमृतत्वकी पताका है। तू परमेश्वरका सदेश लायी है। तेरा दर्शन करके यदि परमेश्वरका रूप न दीखे तो फिर मुझे कौन परमेश्वरका दर्शन करायेगा?'

ऋषि लोग मुग्ध हैं उषाके सौन्दर्यपर, उसकी अनोखी सुषमापर। अनेकानेक विशेषणोंसे उन्होंने उषाको अलङ्कृत किया है, जैसे—

सूनरी (सुन्दरी), सुभगा (सौभाग्यवती), विश्ववारा (सबके द्वारा वरण की जानेवाली), प्रचेता (प्रकृष्ट ज्ञानवाली), मघोनी (दानशीला), रेवती (धनवाली), अश्ववती और गोमती आदि।

ऋषि कहते हैं—

> आ घा योषेव सूनर्युषा याति प्रभुञ्जती।
> जरयन्ती वृजनं पद्वदीयत उत्पातयति पक्षिणः॥
> (—ऋ० १।४८।५)

उषा एक सुन्दरी युवतीकी भाँति सबको आनन्दित करती हुई आती है। यह सारे प्राणिसमूहको जगाती है। पैरवालोंको अपने-अपने कामपर भेजती है और परवाले पक्षियोंको आकाशमें विचरण करनेके लिये प्रेरित करती है।

नित्य नवीन उषा प्रकाशमय परिधान पहने दर्शकोंके समक्ष प्रकट होती है। उसके आगमनसे अन्धकार विलीन होता है और सर्वत्र प्रकाश फैलता है। वह चमकनेवाले वेगवान् सौ रथोंपर आरूढ है। रात्रिकी बड़ी बहन—तथा धासूकी वटी वह उषा सूर्यका मार्ग प्रशस्त करती है। भगवान् सूर्यके साथ उसका निकटतम सम्बन्ध है।

ऋषि उषासे कहते हैं—

> विश्वस्य हि प्राणनं जीवनं त्वे वि यदुच्छसि सूनरि।
> सा नो रथेन बृहता विभावरि श्रुधि चित्रामघे हवम्॥
> (—ऋ० १।४८।१०)

हे सुन्दरि ! तू जब प्रकाशित होती है तो सम्पूर्ण प्राणियोंका प्राण तथा जीवन तुझमें विद्यमान रहता है । हे प्रकाशवति, हे विभावरि ! बड़े रथपर आसीन हमारी ओर आनेवाली चित्रामघे अर्थात् विचित्र धनवाली उषे ! हमारी पुकार सुनो ।'

उषा है भगवान् अंशुमालीका पूर्वरूप ।

यह लीजिये, आकाशके सुन्दर क्षितिजपर आ विराजे हैं—सविताभगवान् । इन सवितादेवका सब कुछ स्वर्णिम है—केश स्वर्णिम, नेत्र स्वर्णिम, जिह्वा भी स्वर्णिम । हाथ स्वर्णिम, अँगुलियाँ स्वर्णिम और तो और, आपका रथ भी स्वर्णिम है ।

सविता है—प्रकाशक देवता ।

पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक—सर्वत्र वे ही प्रकाश बिखेरते हैं । स्वर्णिम रथपर आरूढ सवितादेव सभी देवताओंके ही नेता नहीं हैं, अपितु स्थावर और जङ्गम सभीपर उनका आधिपत्य है । सम्पूर्ण जगत्को धारण करनेवाले तथा सबको कर्म-जगत्में प्रेरित करनेवाले उन सविता भगवान्की हम गायत्री-मन्त्रसे वन्दना करते हैं और उनसे सद्बुद्धिकी याचना करते हैं—

ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ।

कितना भव्य होता है बाल-रविका दर्शन !

निरभ्र आकाशमें उनकी झाँकी बड़ी अद्भुत होती है । फिर यदि गङ्गा, यमुना और गोदावरी आदिका तट हो, पर्वतराज हिमाचल अथवा विन्ध्य पर्वतमाला-जैसे किसी उत्तुङ्ग शैलका कोई कोना या सागरका शुभ्र किनारा हो—जहाँ उच्छल जलधितरङ्गें क्रीडा करती हों—फिर तो उसके सौन्दर्यका क्या कहना ! देखिये, देखते ही रह जाइये !!

वेदमें भगवान् सूर्यको स्थावर-जङ्गमकी आत्मा कहा गया है—'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च' । सूर्यमें परमात्माके दर्शन करनेका सुझाव देते हुए आचार्य विनोबा 'गीता-प्रवचन'में कहते हैं—

सूर्यका दर्शन मानो परमात्माका ही दर्शन है । वे नाना प्रकारके रंग-बिरंगे चित्र आकाशमें खींचते हैं । सुबह उठकर परमेश्वरकी कला देखें तो उस दिव्य कलाके लिये भला क्या उपमा दी जा सकती है ? ऋषियोंने उन्हें 'मित्र' नाम दिया है—

मित्रो जनान् यातयति ब्रुवाणो
मित्रो दाधार पृथिवीमुत द्याम् ।
(—ऋ० ३ । ५९ । १)

ये मित्रसंज्ञक सूर्य लोगोंको सत्कर्ममें प्रवृत्त होनेके लिये पुकारते हैं । उन्हें कामधाममें लगाते हैं । ये स्वर्ग और पृथिवीको धारण किये हुए हैं ।

दिनभर सारे जगत्में प्रकाश और आनन्द बिखेर कर सान्ध्य-वेलामें अस्ताचलकी ओर जानेवाले भगवान् भास्करका सौन्दर्य भी अद्भुत है !

वह कौन किसीसे कम है ? प्रसिद्ध अंग्रेज कवि लॉगफैलो मुग्ध हैं उनके सौन्दर्यपर—मानो सिनाई पर्वतसे उतर रहे हों पैगम्बर !

Down Sank the great red sun
And in golden glimmering Vapours
Veiled the light of his face
Like the Prophet descending from Sinai
(Evangeline)

प्रातः एवं सायंकालमें भगवान् सूर्यके इस मनोरम दृश्यको देखकर यदि हम आनन्दविभोर न हो उठें तो हमसे अभागा और कौन होगा ?

इतना ही नहीं । वर्षा कालमें जब नभ छाये हों और उस समय भगवान् भास्कर बादलोंसे आँख मिचौनी खेलते हों—तब यत्र-तत्र हमें आकाशमें एक सतरंगा धनुष दीखता है—इन्द्रधनुष । कैसी है उसकी वह छटा !

कोई पार है उनकी शोभाका—उनका मनोरम छटाका !

प्रसिद्ध दार्शनिक स्पिनोजाने तो इन्द्रधनुषपर एक लेख ही लिख डाला है। और वह भावुक कवि वर्ड्सवर्थ ! वह तो झूम-झूमकर गा उठा—

My heart leaps up when I be hold
A rainbow in the Sky
So was it when my life began
So it is now when I am a man
So be it when I shall grow old,
Or let me die

'मेरा हृदय उछलने लगता है, आकाशमें इन्द्रधनुषको देखकर। बचपनमें भी मेरा यही हाल था और आज जवानीमें भी। मैं बूढ़ा हो जाऊँ अथवा मर ही क्यों न जाऊँ, पर मैं चाहूँगा यही कि इन्द्रधनुषको देखकर मेरा हृदय इसी प्रकार हिलोरें मारता रहे ! कैसी है कविकी भव्य अनुभूति !

वेदमें अनेक देवताओंके मन्त्र हैं।

पहली ही ऋचा है—'अग्निमीळे पुरोहितम्०

(—ऋ० १।१।१)

कौन हैं—ये अग्निदेव ?

इनके तीन रूप बताये गये हैं—

पृथिवीपर पार्थिव अग्नि, अन्तरिक्षमें विद्युत् और द्युलोकमें भगवान् सूर्य।

विष्णुत्वको लीजिये।

और्णवाभ कहते हैं—'सूर्योदय है विष्णुका प्रथम चरण।' 'मध्याह्न है विष्णुका द्वितीय चरण।' 'सूर्यास्त है विष्णुका तृतीय चरण।'

विल्सन हों या मैक्समूलर, मैकडानल हों या कीथ—वेदके विद्वान् इसी मतको प्रामाणिक मानते हैं।

पूषन् !

सबको जाननेवाले, सबको देखनेवाले, पशुओंकी विशेषरूपसे रक्षा करनेवाले देव, इन्हें भी सूर्य माना गया है।

और इन्द्र !

परम शक्तिशाली इन्द्रदेव हैं। मैक्समूलर कहते हैं कि इन्द्र भी सूर्यके प्रतिरूप हैं।

सभी सयाने एक मत।

उषा देव हों या सविता, अग्नि हों या विष्णु पूषन् हों या इन्द्र—सभी सूर्यदेवता हैं।

मित्र, रवि, सूर्य, भानु, खग, पूषन्—सूर्य-नमस्कारमें आनेवाले सभी नाम भगवान् सूर्यके हैं। इनके मन्त्र ये हैं—

ॐ ह्रां मित्राय नमः। ॐ ह्रीं रवये नमः। ॐ ह्रूं सूर्याय नमः। ॐ ह्रैं भानवे नमः। ॐ ह्रौं खगाय नमः। ॐ ह्रः पूष्णे नमः।

और सूर्यकी किरणें !

उनका जादू किससे छिपा है ? वेदमें सूर्यकी किरणों Ultra violet Rays को 'एतशा' या 'नीलग्रीव' कहा गया है। शेक्सपियर लट्टू है इन किरणोंके जादूपर,—मिट्टीको सोना बनानेवाले जादूपर—

The glorious sun
Stays in his course and plays the alchemist
Turning with Splendour of his precious eye
The meagre cloddy earth to glittering gold.

(King John III 1)

प्रातःकालीन सूर्यकी सुनहली किरणें पृथ्वीकी देहपर सोना ही बरसाती जान पड़ती हैं। यह कोरी कल्पना नहीं है।

आज तो विज्ञान भी मुक्तकण्ठसे स्वीकार करता है कि ये सूर्य पृथ्वीसे नौ करोड़ मील दूर, पर यह उन्हींकी कृपा है कि सारी सृष्टि, सारा जगत् जीवित है। सूर्य न हो तो पृथिवी ही न रहे, वनस्पति न रहे और न रहे कोई जीव-जन्तु या प्राणी ही।

सूर्य-प्रकाशका बदौलत ही धरती सोना उगलती है। सूर्य ही चन्द्रमा और तमाम नक्षत्रोंके परम प्रकाशक हैं। सब उन्हींके प्रकाशसे टिमटिमाते हैं। वही बिजलीघर हैं, सारा सौरमण्डल है और उनसे प्रकाशमान होनेवाला नक्षत्र-पुञ्ज है।

सूर्य-किरणोंमें क्षय, रिकेट्स, रक्ताल्पता जैसे परम भयङ्कर रोगोंको निर्मूल करनेकी तो अद्भुत शक्ति है ही, आरोग्य, बल, जीवन, प्राण, स्वास्थ्य, सौन्दर्य—सब कुछ प्रदान करनेकी भी उनमें जादूभरी शक्ति है। सूर्य किरणें मानवके, सारे प्राणि-जगत्के सर्वाङ्गीण विकासके अनुपम साधन हैं। ज्ञान और विज्ञान—सभी इस तथ्यको स्वीकार करते हैं।

अभागा होगा वह जो सूर्यदेवताको प्रणाम न करे। सूर्यस्नान, सूर्यनमस्कार आदि विज्ञानसम्मत साधन पुकार पुकारकर कहते हैं—'उठो! सूर्यदेवताको प्रणाम करो! वे तुम्हें शक्ति देंगे, बल देंगे, बुद्धि और यश देंगे। तुम उन्हें प्रणाम करके भी तो देखो!'

जैन-आगमोंमें सूर्य

(लेखक—आचार्य श्रीतुलसी)

जैन-तत्त्व विद्याका मूलभूत आधार है—जैन-आगम। इन आगमोंकी संरचनामें जैन-तीर्थंकरों और गणधरोंकी ज्ञान-चेतनाका उपयोग हुआ है। तत्त्व विद्याके मूल स्रोतोंका अवबोध तीर्थंकरोंके पास उपलब्ध होता है और उसके विस्तृत विश्लेषणमें गणधरोंकी मेधा सक्रिय होती है। इस दृष्टिसे यह कहा जा सकता है कि जैन आगमोंकी आर्थीपरम्परा तीर्थंकरोंसे अनुबन्धित है तथा उन्हें शाब्दिक परिवेशमें ढालनेका काम गणधरों और स्थविरोंका है।

जैन-तत्त्व विद्या बहु-आयामी तत्त्वविद्या है। धर्म, दर्शन, इतिहास, संस्कृति, कला, गणित, भूगोल आदि विविध विषयोंका तलस्पर्शी विवेचन जैन-आगमोंमें प्राप्त होता है। मुख्यरूपसे इनमें चेतन और अचेतन—इन दो तत्त्वोंकी व्याख्या है। संसारके सारे तत्त्व इन दोनों तत्त्वोंमें अन्तर्भुक्त हैं। इसलिये जैन शास्त्रोंको विश्वके प्रतिनिधि शास्त्रोंकी श्रेणीमें स्थापित किया जा सकता है। प्रस्तुत संदर्भमें जैन-आगमोंके आधारपर सूर्य-सम्बन्धी विवरणकी संक्षिप्त सूचनामात्र दी जा रही है।

जैन आगमोंमें चार प्रकारके जीव माने गये हैं—नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव। देवोंके सम्बन्धमें बड़े विस्तारसे चर्चा है। देवोंकी मुख्यरूपसे चार श्रेणियाँ हैं—भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक। असुर, नाग आदि दस प्रकारके देव भवनपति देव कहलाते हैं। पिशाच, यक्ष, किन्नर, गन्धर्व आदि देव व्यन्तर देवोंकी श्रेणीमें आते हैं। सूर्य, चन्द्रमा आदि ज्योतिष्क देव हैं। लोकके ऊर्ध्वभागमें रहनेवाले देव वैमानिक देवके नामसे पहचाने जाते हैं।

ज्योतिष्क देव पाँच प्रकारके हैं—सूर्य, चन्द्र, ग्रह नक्षत्र और तारा। इन पाँचों देवोंमें सूर्य और चन्द्रमा को इन्द्र माना गया है। सूर्य इनमें सबसे अधिक तेजस्वी हैं। प्रकाश और तापके अतिरिक्त भी लोक-जीवनमें सूर्यकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। जैन धर्मके

मुख्य शास्त्रोंमें एक आगम 'सूर्यप्रज्ञप्ति' है। उसमें सूर्य का विभिन्न दृष्टियोंसे प्रतिपादन किया गया है। इस एक आगममें सूर्य-सम्बन्धी इतनी सूचनाएँ हैं कि उनके आधारपर ज्योतिषके क्षेत्रमें कई विद्वान् अनुसंधान कर सकते हैं।

जैन शास्त्रोंके अनुसार यह दृश्य सूर्य सूर्यदेव नहीं, अपितु उनका विमान है। सूर्य एक पृथ्वी है। उसमें तैजस परमाणु-स्कन्ध प्रचुरमात्रामें उपलब्ध हैं, अतः उससे प्रकाशकी रश्मियाँ विकीर्ण होती रहती हैं। सूर्य आदि देवोंके विमान सहजरूपसे गतिशील रहते हैं। फिर भी उनके स्वामी देवोंकी समृद्धिके अनुरूप हजारों हजारों देव-विमानोंकी गतिमें अपना योगदान देते हैं। सूर्यका विमान मेरु पर्वतके समतल भूमिभागसे आठ सौ योजनकी ऊँचाईपर अवस्थित है। इन योजनोंका माप जैनागमोंमें वर्णित प्रमाणाङ्गुलके आधारपर किया गया है।

सूर्यका प्रकाश कितनी दूर फैलता है? इस प्रश्नके उत्तरमें भगवती-सूत्रमें बताया गया है कि सूर्यका प्रकाश सौ योजन ऊपर पहुँचता है। अठारह सौ योजन नीचे पहुँचता है और सैंतालीस हजार दो सौ तिरसठ (४७२६३) योजनसे कुछ अधिक क्षेत्रफलमें तिरछा पहुँचता है।

जैन-शास्त्रोंमें सूर्य और चन्द्रमाकी संख्याका पूरा विवरण है। विश्वके समग्र सूर्योंकी संख्याका आकलन किया जाय तो वे हमारे गणितके निश्चित मापकोंको पार कर असंख्यतक हो जाते हैं। वैसे मनुष्य लोकमें एक सौ बत्तीस सूर्य हैं। इनके सम्बन्धमें जम्बूद्वीप तथा प्रज्ञापनासूत्रमें विस्तृत विवेचन है। एक सौ बत्तीस सूर्योंकी अवस्थिति इस प्रकार है—

जम्बूद्वीपमें दो सूर्य हैं। लवणसमुद्रमें चार सूर्य हैं। धातकीखण्डमें सूर्योंकी संख्या बारह हो जाती है। कालोदधिमें बयालीस सूर्य हैं और पुष्करार्धद्वीपमें बहत्तरकी संख्यातक पहुँच जाते हैं। कुल मिलाकर इनकी संख्या एक सौ बत्तीस हो जाती है।

ज्योतिष्क देव चर और अचर दोनों प्रकारके हैं। मनुष्यलोकमें जो सूर्य, चन्द्रमा आदि हैं, वे चर हैं। उनसे बाहर जो असंख्य सूर्य और चन्द्रमा हैं, वे स्थिर हैं। कालका समग्र निर्धारण सूर्यकी गतिके आधारपर होता है। मनुष्यलोकसे बहिर्वर्ती क्षेत्रोंमें सूर्यकी गति नहीं है, इसलिये वहाँ व्यावहारिक काल-जैसी कोई व्यवस्था भी नहीं है। सामान्यतः सूर्य और पृथ्वीकी गति एक विवादास्पद पक्ष है। पर जैन-शास्त्रीय दृष्टिकोणसे समय-क्षेत्र (मनुष्यलोक) के सूर्य चर और उससे बहिर्वर्ती सूर्य स्थिर हैं।

जैन-मुनियोंकी चर्यामें सूर्यका एक विशेष स्थान है। उनके अनेक कार्य सूर्यकी साक्षीमें ही हो सकते हैं। सूर्यकी अनुपस्थितिमें जैन मुनि भोजन भी नहीं कर सकते। इस तथ्यकी अभिव्यक्ति आगम वाणीमें इस प्रकार हुई है—

अत्थंगयम्मि आइच्चे पुरत्था य अणुग्गए।
आहारमइयं सव्वं मणसा वि न पत्थए॥

सूर्यास्तसे लेकर जबतक सूर्य पुनः पूर्वमें निकल न आये तबतक मुनि सब प्रकारके आहारकी मनसे भी इच्छा न करे।

उग्गए सूरे अणत्थमियसंकप्पे

सूर्योदय होनेके बाद जबतक सूर्य फिर अस्त नहीं होते हैं तबतक ही मुनि भोजन पानी, औषधि आदि ग्रहण करनेका संकल्प कर सकता है।

जैन-धर्ममें प्रत्याख्यानकी परम्परामें भी सूर्यको साक्षीरूप रखा जाता है। उसका एक निदर्शन इस प्रकार है—

'उग्गए सूरे णमुक्कारसहियं पच्चक्खामि चउव्विहं पि आहारं असणं पाणं खाइमं साइमं अण्णत्थणाभोगेणं सहसागारेणं वोसिरामि ।'

नमस्कारसहिता, पौरिषी आदि प्रत्याख्यानके क्रममें कालकी सीमाका निर्धारण सूर्योदयसे किया जाता है ।

जैन-मुनि अपने जीवनमें साधनाके अनेक प्रयोग करते हैं । उन प्रयोगोंके साथ भी सूर्यका सम्बन्ध है । जैनोंके बृहत्तम आगम 'भगवती'में ऐसे अनेक प्रसङ्ग उपस्थित किये गये हैं । उनमें एक प्रसङ्ग है—गृहपति तामलिका । तामलि अपने भावी जीवनको उदात्त बनानेके लिये चिन्तन करता है—'जबतक मुझमें उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषकार और पराक्रम है तबतक मेरे लिये यही उचित है कि मैं परिवारका पूरा दायित्व अपने ज्येष्ठ पुत्रको सौंप दूँ और स्वयं सहस्ररश्मि, दिनकर, तेजसे जाज्वल्यमान सूर्यके कुछ ऊपर आ जानेपर प्रव्रज्या स्वीकार करूँ ।'

प्रव्रज्या स्वीकार कर वह एक विशेष संकल्प स्वीकार करता है—'आजसे मैं निरन्तर दो-दो दिनका उपवास करूँगा । उपवासकालमें 'आतापना' भूमिमें जाकर दोनों हाथोंको ऊपर फैलाकर सूर्याभिमुख हो आतापना लूँगा ।'

तपस्याके साथ सूर्यके आतपमें आतापना लेनेकी बात कई दृष्टियोंसे महत्त्वपूर्ण है । तपस्यासे कर्म-शरीर क्षीण होता है और आत्माकी सुप्त शक्तियाँ जाग्रत् होती हैं । उसके साथ सूर्यकी आतापना लेनेसे तैजस-शरीर प्रबल होता है । इससे शरीरकी कान्ति और ओज प्रदीप्त होता है । जैन-शास्त्रोंमें एक विशेष लब्धि 'तैजस-लब्धि'की चर्चा है । यह शक्ति जिस साधकको उपलब्ध हो जाती है वह तैजस-शरीरके प्रयोगसे अनेक चमत्कार दिखा सकता है । यह शक्ति अनुग्रह और निग्रह दोनों स्थितियोंमें काम आती है । इस शक्तिको प्राप्त करनेके लिये लगातार ६ मासतक सूर्याभिमुख आताप लेनेका विधान है ।

शरीर-शास्त्रीय दृष्टिसे जैन-साधना-पद्धतिमें सूर्यकी रश्मियोंके प्रभावको नकारा नहीं जा सकता । जैन शास्त्रोंमें रात्रि-भोजनको परिहार्य बताया गया है । इस प्रतिपादनका वैज्ञानिक विश्लेषण न हो तो उक्त पद्धति-मात्र एक परम्परा-सी प्रतीत होती है, किंतु इस परम्पराके पीछे रहे हुए दृष्टिकोणको समझनेसे इसकी वैज्ञानिकता स्वयं प्रमाणित हो जाती है ।

यह तथ्य निर्विवाद है कि सूर्यकी रश्मियोंमें तेज है । इस तेजका प्रभाव प्राणि-जगत्के पाचन-संस्थानपर अत्यधिक पड़ता है । जो व्यक्ति सूर्यास्तके बाद भोजन करते हैं, वे भोजनको पचानेके लिये सूर्य-रश्मियोंकी ऊर्जाको उपलब्ध नहीं कर सकते । इसीलिये उनकी पाचनक्षमता क्षीणप्राय हो जाती है और अजीर्णरोग-जैसी बीमारियाँ उन्हें लग जाती हैं । सूर्यास्तके पश्चात् भोजन करनेवालोंकी भाँति सूर्योदयसे पहले या तत्काल बाद भोजन करनेसे भी पाचन-संस्थान सूर्यकी रश्मि-तेजसे अप्रभावित होता है, क्योंकि सूर्यके उदय हो जानेपर भी उनकी रश्मियोंका ताप प्राणि-जगत्को उपलब्ध होनेमें पचास-साठ मिनटका समय लग ही जाता है । यद्यपि बाल-सूर्यकी रश्मियोंमें भी 'विटमिन्स' होते हैं, पर भोजन पचानेमें सहायक तत्त्व कुछ समय बाद ही मिल सकते हैं । सम्भव है, इसी दृष्टिसे जैन-धर्ममें नमस्कार संहिता-तप और रात्रिमें चतुर्विध आहार-परित्याग तपकी प्रक्रियाको स्वीकृत किया गया है ।

जैन-शास्त्रोंमें सूर्यका जो विवेचन है, उसका समीचीन संकलन करनेके लिये वर्गीकृत उनका गम्भीर अध्ययन आवश्यक है । ज्योतिषके क्षेत्रमें अनुसंधान करनेवालोंको इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिये ।

आदित्यकी ब्रह्मरूपमें उपासना

आदित्य नारायण ब्रह्म हैं—ऐसा उपदेश है, उसीकी व्याख्या की जाती है। पहले यह असत् ही था फिर वह सत् (कार्याभिमुख) हुआ। जब वह अङ्कुरित हुआ तब एक अण्डेके रूपमें परिणत हो गया, वर्षपर्यन्त उसी प्रकार पड़ा रहा। फिर वह फटा और उसके दो खण्ड हो गये। उन दोनों अण्डोंके खण्ड रजत और स्वर्णरूप हो गये। उनमें जो खण्ड रजत हुआ, वह यह पृथ्वी है और जो सुवर्ण हुआ, वह ऊर्ध्वलोक है। उस अण्डेका जो जरायु (स्थूल गर्भवेष्टन) था, (वही) वे पर्वत हैं, जो उल्व (सूक्ष्म गर्भवेष्टन) था, वह मेघोंके सहित कुहरा है, जो धमनियाँ थीं, वे नदियाँ हैं तथा जो वस्तिगत जल था, वह समुद्र है। फिर उससे जो उत्पन्न हुआ, वह ये आदित्य हैं। उनके उत्पन्न होते ही बड़े जोरोंका शब्द हुआ तथा उसीसे सम्पूर्ण प्राणी और सारे भोग हुए। इसीसे उनका उदय और अस्त होनेपर दीर्घ शब्दयुक्त घोष उत्पन्न होते हैं तथा सम्पूर्ण प्राणी और सारे भोग भी उत्पन्न होते हैं। वह जानकर जो आदित्यको 'यह ब्रह्म है' उनकी उपासना करता है (वह आदित्यरूप हो जाता है, तथा) उसके समीप शीघ्र ही सुन्दर घोष आते हैं और उसे सुख देते हैं, सुख देते हैं।

(—छा० उ० ३। १९। १-४)

सूर्यकी महिमा और उपासना

(लेखक—याज्ञिकसम्राट् पण्डित श्रीवेणीरामजी शर्मा, गौड़, वेदाचार्य)

नित्य, नैमित्तिक और काम्य अनुष्ठानोंमें नवग्रहका स्थापन और पूजन अनिवार्य है। नवग्रह-पूजनमें भी सर्वप्रथम सूर्यका नाम आता है, जिनका ग्रहोंके मध्यमें पूजन किया जाता है। इसी प्रकार प्रत्येक यज्ञ-यागादि-हवन-कर्ममें भी सर्वप्रथम नवग्रहका ही हवन होता है, जिसमें सर्वप्रथम सूर्यदेवको आहुति दी जाती है। इससे स्पष्ट है कि प्रत्येक धार्मिक कर्ममें सूर्यकी उपासना आवश्यक है। जो मनुष्य सूर्य-पूजनके बिना कोई भी कर्म करते हैं, वे अपूर्ण माने जाते हैं। अतः स्पष्ट है कि जिस कर्ममें सूर्यका पूजन नहीं होता, वह अपूर्ण है।

सूर्यकी उपासना हिंदू-समाजमें विविध रूपमें की जाती है। कुछ लोग पूजात्मक, कुछ लोग ध्यानात्मक, कुछ लोग पाठात्मक, कुछ लोग जपात्मक और कुछ लोग हवनात्मकरूपसे उपासना करते हैं। सूर्यकी सभी प्रकारकी उपासनाओंमें उपासकको अद्भुत सुख-शान्तिकी अनुभूति प्राप्त होती है।

जगत्के और देवोंके आत्मा भगवान् सूर्यकी सत्ता द्युलोक और पृथ्वीलोकमें व्याप्त है। सूर्यकी सत्ता द्युलोक और पृथ्वीलोकमें होनेके कारण द्युलोकस्थ देवताओंसे और पृथ्वीलोकस्थ मनुष्योंसे इनका विशेष सम्बन्ध है।

वेदोंमें कहा गया है—

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥

(ऋ० १। ११५। १, शु० य० ७। ४२, अथर्व० १३। २। ३५)

भगवान् सूर्य तेजोमयी किरणोंके पुञ्ज हैं। वे मित्र, वरुण और अग्नि आदि देवताओं एवं सम्पूर्ण विश्वके नेत्र हैं तथा स्थावर-जङ्गम—सबके अन्तर्यामी एवं सम्पूर्ण विश्वकी आत्मा हैं। वे सूर्य आकाश पृथ्वी और

न्तरिक्ष—इन तीनों लोकोंको अपने प्रकाशसे पूर्ण याप्त करते हुए आश्चर्यरूपसे उदित हुए हैं। वे 'सूर्य थावर-जङ्गमात्मक सम्पूर्ण विश्वका आत्मा हैं। यह भी हा गया है कि—

'सूर्यो वै सर्वासां देवतानामात्मा।'
(—सूर्य-उपनिषद्)

'सूर्य ही समस्त देवताओंके आत्मा हैं।'

इसलिये स्पष्ट है कि भगवान् सूर्य देवताओं, नुष्यों और स्थावर-जङ्गमात्मक सम्पूर्ण विश्वके ात्मा हैं।

सूर्यकी प्राणरूपता—सूर्यके द्वारा ही संसारके मस्त जड और चेतन-जगत्को जीवन शक्ति और ाण-शक्ति प्राप्त होती है। अतः सूर्यको प्राणिमात्रका प्राण' कहा गया है।

'उद्यन्तु खलु वा आदित्यः सर्वाणि भूतानि ाणयति तस्मादेनं प्राण इत्याचक्षते।' (—ऐतरेय ाह्मण २।६) 'आदित्यो ह वै प्राण।' (—प्रश्नो निषद् १।५)।

अर्थात् उदित होते हुए सूर्य सम्पूर्ण प्राणियोंको प्राण-दान देते हैं, इसलिये सूर्यको प्राण कहते हैं।

अतः निश्चित है कि सूर्य ही प्राणिमात्रको प्राणदान करते हैं, जिससे समस्त प्राणियोंके प्राणोंका रक्षण और पोषण होता है। इसलिये सूर्य ही प्राणिमात्रके जीवन हैं।

सूर्यकी ब्रह्मरूपता—'आदित्यो ब्रह्म' छान्दोग्योपनिषद् (—३।१९।१)-के और 'असावादित्यो ब्रह्म' सूर्योपनिषद्के अनुसार भगवान् सूर्य प्रत्यक्ष ब्रह्म ही हैं। सूर्यके ब्रह्म' होनेके कारण ही उन्हें भर्ता, र्ता एवं हर्ता कहा गया है।

'स य एतमेवं विद्वानादित्यं ब्रह्मेत्युपास्तेऽभ्याशो ह यदेनꣳसाधवो घोषा आ च गच्छेयुरुप च निम्रेडेरन्निम्रेडेरन्।'
(—छान्दोग्योपनिषद् ३।१९।४)

'इसके अनुसार जो आदित्य (सूर्य) को 'यह ब्रह्म है' इस प्रकार ब्रह्मरूपसे उपासना करता है, वह आदित्यरूप हो जाता है तथा उसके समीप शीघ्र ही सुन्दर घोष आते हैं और वे सुख देते हैं।'

सूर्यका सर्वप्रसवितृत्व—भुवन-भास्कर भगवान् सूर्य साक्षात् 'नारायण' हैं। वे ही समस्त संसारके उत्पादक हैं। ऋग्वेद (७।६३।४) में कहा गया है— 'नूनं जनाः सूर्येण प्रसूता।' 'निश्चय ही मनुष्य सूर्यसे उत्पन्न हुए हैं।' सूर्योपनिषद्में भी कहा गया है—'सूर्यसे ही समस्त प्राणियोंकी उत्पत्ति होती है। सूर्यसे ही पालन होता है और सूर्यमें ही लय होता है और जो सूर्य हैं, वही मैं हूँ।'

सूर्याद् भवन्ति भूतानि सूर्येण पालितानि तु।
सूर्ये लयं प्राप्नुवन्ति यः सूर्यः सोऽहमेव च॥

सूर्य समस्त संसारके प्रसविता (जन्मदाता) हैं। इसीलिये इनका नाम 'सविता' है—'सविता वै प्रसवानामीशे सवितारमत।' (—कृष्णयजुर्वेद २।१।६।३) 'सूर्य ही संसारके प्रसविता हैं और वे ही अपने ऐश्वर्यसे जगत्के प्रकाशक हैं।' तथा 'सविता सर्वस्य प्रसविता।' (निरुक्त, दैवतकाण्ड ४।३१) 'सविता सबके उत्पादक हैं।'

भगवान् सूर्य संसारके सृष्टिकर्ता हैं। अतः सूर्यसे ही सांसारिक सृष्टिचक्र प्रवर्तित और प्रचलित है। सूर्यसे ही प्राणोंकी उत्पत्ति होती है। सूर्यसे ही (खेती) होती है। सूर्यसे ही वृष्टि होती [illegible]

मरुद्गण, साध्यदेव, सप्तर्षिगण एवं तैंतीस कोटि देवता निवास करते हैं। इन समस्त 'ख' लोकीय देवोंका प्रतिनिधित्व सूर्य एवं चन्द्रद्वारा होता है। दूसरे शब्दोंमें तेजोनिधान भगवान् भुवन-भास्कर श्रीसूर्यनारायण ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्डकी अचिन्त्यशक्तियोंके प्रमुख संचालक हैं।

ऋग्वेद (शाकल) संहिता (१।११५।१) में 'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च' कहकर जङ्गम तथा स्थावर—सभी प्राणियोंकी आत्मा भगवान् सूर्यको ही स्वीकार किया गया है। श्रीमद्भागवतमें सुस्पष्ट वर्णन है कि सूर्यके द्वारा ही दिशा, आकाश, द्युलोक, भूर्लोक, स्वर्ग-मोक्षके प्रदेश, नरक और रसातल तथा अन्य समस्त स्थानोंका विभाग होता है। सूर्यभगवान् ही देवता, तिर्यक्, मनुष्य, सरीसृप और लता-वृक्षादि समस्त जीव समूहोंके आत्मा एवं नेत्रेन्द्रियके अधिष्ठाता हैं।[1] महाभारतमें भगवान् सूर्यका स्तवन करते हुए महाराज युधिष्ठिर कहते हैं—'सूर्यदेव! आप सम्पूर्ण जगत्‌के नेत्र तथा समस्त प्राणियोंके आत्मा हैं। आप ही सब जीवोंके उत्पत्ति-स्थान और कर्मानुष्ठानमें लगे पुरुषोंके सदाचार हैं।[2] जो ब्रह्मा, महादेव, विष्णु, प्रजापति, वायु, आकाश, जल, पृथ्वी, पर्वत, समुद्र, ग्रह, नक्षत्र और चन्द्रमा आदि देवता हैं, वनस्पति, वृक्ष तथा ओषधियाँ जिनके स्वरूप हैं, ब्राह्मी, वैष्णवी और माहेश्वरी—ये त्रिधा शक्तियाँ जिनका वपु हैं, भानु (सूर्य) जिनके स्वरूप हैं, वे आप भुवन-भास्कर (हमपर) प्रसन्न हों।' इस प्रकार मार्कण्डेयपुराणमें भगवान् सूर्यकी सर्वेश्वरता प्रदर्शित की गयी है।[3] फलतः आत्मस्थानीय सूर्यको प्रधान देव स्वीकार करना वैदिक तथ्य है।[4]

सूर्योपासनाका सर्वप्रथम संकेत हमें वेदोंमें ही उपलब्ध होता है। ऋग्वेद (शाकल) संहिता (—१।३५।२) में—'आ कृष्णेन रजसा०' 'शुचिषद्०' (—ऋग्० ४।४०।५), (कठ० २।५।२) तथा मैत्रायणीसंहिता—(कृष्णयजुर्वेद) 'तत्सवित्रे विद्महे प्रभाकराय धीमहि। तन्नो भानुः प्रचोदयात्' (—२।९।१)-में कहकर भगवान् सूर्यकी उपासनाकी महत्ता प्रदर्शित की गयी है। 'तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो॰' इत्यादि प्रसिद्ध गायत्री-मन्त्र सूर्यकी तेज-शक्तिकी उपासनासे सम्बद्ध है और ब्रह्मविद्याके नामसे भी विख्यात है।[5] ऋग्वेद (८।४०।१०, ५।६३।५) अथर्ववेद (५।२४।९, १३।१।४५) आदि स्थानोंमें सूर्यको द्युलोकसे सम्बद्धकर सभीका चक्षु कहा गया है। विभूति-वर्णनके प्रसङ्गमें भगवान्‌ने स्वयं 'ज्योतिषां रविरंशुमान्'[6] कहकर सूर्यकी महत्ता प्रदर्शित की है। उपनिषदोंमें भी स्वीकार किया गया है कि ब्रह्म ही प्रतीकरूपसे 'आदित्य' है।[7] गायत्री-मन्त्रमें सूर्यके रूपमें परब्रह्म परमेश्वरकी ही उपासना वर्णित

१ सूर्येण हि विभज्यन्ते दिशः खं द्यौर्मही भिदा। स्वर्गापवर्गौ नरका रसौकांसि च सर्वशः॥
देवतिर्यङ्मनुष्याणां सरीसृपसवीरुधाम्। सर्वजीवनिकायानां सूर्य आत्मा दृगीश्वरः॥
(—श्रीमद्भागवत ५।२०।४५-४६)

२ 'त्वं भानो जगतश्चक्षुस्त्वमात्मा सर्वदेहिनाम्। त्वं योनिः सर्वभूतानां त्वमाचारः क्रियावताम्॥' (—महा० वन० ३।३६)। ३ (मार्कण्डेयपुराण १०९।६९—७०)। ४ सूर्यतापिनी उपनिषद्‌में इसीलिये सूर्यको 'सर्वदेवमय' स्वीकार किया गया है—
एष ब्रह्मा च विष्णुश्च रुद्र एष हि भास्करः। त्रिमूर्त्यात्मा त्रिवेदात्मा सर्वदेवमयो रविः॥ (—१।६)
५ शुक्लयजु० (३।३५, २२।९), (ऋग्वेदसंहिता ३।६२।१०)।
६ गीता (१०।२१), श्रीमद्भागवत (११।१६।३४)। ७ (क) 'आदित्यो ब्रह्म' (—छान्दोग्योपनिषद् ३।१९।१), (ख) 'असौ य एष आदित्य' (—शत० ब्रा० ८।५।१।६, १४।१।१।६), (ग) 'असावादित्यो ब्रह्म' (—तैत्तिरीयारण्यक २।२)।

रही है। गायत्री-मन्त्रमें कहे गये 'सवितु'[1] पदसे सूर्यका ही ग्रहण होता है। अतः सूर्य सविताका ही पर्यायवाची शब्द है।[2] गायत्री और सूर्यका परस्पर जो अभिन्न सम्बन्ध है, वह वाच्य वाचकरूपमें निर्दिष्ट है। अर्थात् सूर्य गायत्रीके साक्षात् वाच्य हैं और गायत्री उन सविताकी वाचिका है।[3] तभी तो कहा गया है कि गायत्री-मन्त्रद्वारा जलको अभिमन्त्रित करके जिसने भगवान् सूर्यको यथासमय तीन अञ्जलियाँ जल अर्पित कीं, क्या उसने तीनों लोकोंको नहीं दे दिया?[4]

कतिपय स्तुतियों और प्रार्थनाओंके माध्यमसे भी वेदोंमें मानव-समुदायके समक्ष आदर्श प्रस्तुत करते हुए सूर्यकी महिमामयी गाथाका बखान किया गया है। ऋग्वेदके एक मन्त्रमें ऋषि कहते हैं कि हम बार-बार देते हुए, किसीका धारणा करते हुए, जानते हुए परस्पर मिलते रहें और सूर्य चन्द्रमाके समान कल्याण पथका अनुसरण करते रहें। अर्थात् जिस प्रकार सूर्य चन्द्रमा परस्पर आदान प्रदानकर लाखों वर्षसे नियमित रीतिसे कार्य कर रहे हैं, कभी अपने काममें प्रमाद नहीं करते, अपने आश्रित जनोंको धोखा नहीं देते, प्रत्युत यथोचित समयपर कार्य करनेमें सहायता देते हैं, ठीक उसी प्रकार हम भी उनका आदर्श सामने रखकर काम करें। हम भी अपने विलास (चन्द्रमा Materialism, wosidly i ait) को विवेक (सूर्य Spiritual Knowledge) के अधीन मर्यादित रखें। अवसर देखकर कभी उग्रतासे और कभी शान्तिसे काम करें।[5] ऋग्वेदमें ऋषि अन्यत्र कहते हैं कि 'हे सवितादेव! आप सब प्रकारके कष्टों (पापों) को दूर करें और जो कल्याणकारक हो वही हमारे लिये हे— उत्पन्न करें।[6] अभिप्राय यह कि सूर्य तभी कल्याण करते हैं, जब हम उनके समान नियमसे काम करनेवाले हों। यदि हम प्रातःकाल उठकर सूर्य-सेवन (खुले मैदानमें सन्ध्योपासन, जीवन-निर्वाहक कार्य) करते हों तो सब प्रकारसे कल्याण हो सकता है। स्वास्थ्य बढ़ सकता है,

सूर्यकी आराधना और प्राकृतिक नियमोंके पालनसे रोग दूर होते हैं तथा स्वास्थ्य स्थिर रहता है,—ऐसी हमारी वैदिक और पौराणिक मान्यता है। इसी परिप्रेक्ष्यमें ऋग्वेदके ऋषि भगवान् आदित्यकी स्तुति करते हुए कहते हैं—'हे अखण्ड नियमोंके पालन-कर्ता परम देव (आदित्यासो)! आप हमारे रोगोंको दूर करें, हमारी दुर्मतिका दमन करें और पापोंको दूर हटा दें।'[7] इसी सदर्भमें ब्रह्मपुराणका स्पष्ट उद्घोष है कि मनुष्यके मानसिक, वाचिक और शारीरिक जो भी पाप होते हैं, वे सब भगवान् सूर्यकी कृपासे निःशेष नष्ट हो जाते हैं।[8] इतना ही नहीं सूर्याराधकका अभ्यागत,

---

१ यजुर्वेद (३६ । ३), २ (क) 'असौ वा आदित्यो देवः सविता।' (—शतपथ० ६ । ३ । १ । २०), (ख) 'आदित्योऽपि सवितेवोच्यते।' (—निरुक्त, दैवतकाण्ड ४ । ३१)

३ वाच्यवाचकसम्बन्धो गायत्र्याः सवितुर्द्वयोः। वाच्योऽसौ सविता साक्षाद् गायत्री वाचिका परा॥ (—स्कन्दपुराण ६ । १ । ० । ५४)

४ गायत्र्या मन्त्रतोयाढ्यं दत्तं येनाञ्जलित्रयम्। काले सवित्रे किं न स्यात् तेन दत्तं जगत्त्रयम्॥ (—स्कन्दपुराण ४ । १ । ० । ४६)

५ स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव। पुनर्ददताघ्नता जानता सं गमेमहि॥ (—ऋक्० ५ । ५१ । १५)

६ 'विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद् भद्रं तन्न आ सुव॥' (—ऋक्० ५ । ८२ । ५)

७ 'अपामीवामप स्रिधमप सेधत दुर्मतिम्। आदित्यासो युयोतना नो अंहसः॥' (—ऋक्० ८ । १८ । १०)

८ मानसं वाचिकं वापि कायजं यच्च दुष्कृतम्। सर्वं सूर्यप्रसादेन तदशेषं व्यपोहति॥' (२९ । ४०)

कोढ़, दरिद्रता, रोग, शोक, भय और कलह—ये सभी विश्वेश्वर सूर्यकी कृपासे निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं। जो भयंकर कष्टसे दुखी, गलित अङ्गोंवाला, नेत्रहीन, बड़े-बड़े घावोंसे युक्त, यक्ष्मासे ग्रस्त, महान् शूलरोगसे पीड़ित अथवा नाना प्रकारकी व्याधियोंसे युक्त हैं, उनके भी समस्त रोग सूर्य-कृपासे नष्ट हो जाते हैं—इसमें कुछ भी संदेह नहीं है। ध्यातव्य है कि पुराणोंमें विशेषत कुष्ठरोगकी निवृत्तिके लिये ही सूर्यकी उपासनाका प्रारम्भ बतलाया गया है। भविष्यपुराणके ब्राह्मपर्वमें दुर्वासाके शापसे कृष्ण पुत्र साम्बके कुष्ठरोगसे आक्रान्त होनेकी प्रख्यात कथा है। श्रीकृष्णचन्द्रके आग्रहपर गरुडने शाकद्वीपसे वेदविपाक ज्ञाता ब्राह्मणोंको लाकर इस रोगकी निवृत्तिका मार्ग उन्मुक्त किया। इन ब्राह्मणोंने सूर्यमन्दिरका स्थापना करायी तथा सूर्यकी आराधनासे साम्बको रोगमुक्त कर दिया था।*

पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड, अध्याय ८२में महाराज भद्रेश्वरकी प्रख्यात गाथा भी इसका प्रभूत प्रमाण है। महाराज भद्रेश्वरके बायें हाथमें श्वेत कुष्ठ हो गया था। वैद्योंने बहुत उपचार किया, पर कोढ़का चिह्न मिटनेके बजाय और भी स्पष्ट दिखायी देने लगा। फलत ब्राह्मणोंकी सम्मतिसे महाराज भद्रेश्वरने सूर्याराधनके द्वारा ही कुष्ठ रोगसे छुटकारा पाया। प्रसिद्ध 'सूर्यशतक'के रचयिता मयूर कविने भी कुष्ठरोगके निवारणार्थ भगवान् सूर्यकी आराधना करते हुए 'सूर्यशतक'की रचना कर अपनेको कुष्ठरोगसे निर्मुक्त किया था। स्कन्दपुराणके नागरखण्डमें जिन तीन सूर्य विग्रहोंका वर्णन है, उनमें प्रथमका नाम 'मुण्डीर', दूसरेका 'कालप्रिय' तथा तीसरेका 'मूलस्थान' है। भगवान् सूर्य प्रात काल मुण्डीरमें, मध्याह्नके समय कालप्रियमें तथा सन्ध्या-समय मूलस्थानमें जाते हैं। उस समय जो मनुष्य इन तीनों सूर्य विग्रहोंमेंसे किसी एकका भी भक्तिपूर्वक दर्शन करता है, वह निःसंदेह सब प्रकारके रोगोंसे मुक्त होकर मोक्षको प्राप्त होता है। समुद्रके निकट चिटकपुर नामक नगरमें रहनेवाले एक ब्राह्मणकी गाथा इसका प्रमाण है। उस ब्राह्मणने हाटकेश्वर क्षेत्रमें जाकर मुण्डीर स्वामीकी आराधना की जिससे उसका कुष्ठरोग जाता रहा तथा शरीर सुन्दर हो गया।

अब हम भगवान् सूर्यसे सम्बद्ध कतिपय पठनीय वैदिक ऋचाओंके दैनिक पाठसे प्राप्त होनेवाले फलका वर्णन करते हैं। लेखका कलेवर बढ़ न जाय, इसलिये जान-बूझकर ऋचाओंका संकेतमात्र किया जा रहा है—

(१) 'उद्वय तमसः०' (—ऋग्वेद १।५०।१०) तथा 'उदु त्य जातवेदसम्०' (—ऋक्० १।५०।१)—जो व्यक्ति प्रतिदिन इन ऋचाओंसे उदित होते हुए सूर्यका उपस्थान करता है तथा उनके उद्देश्यसे सात बार जलाञ्जलि देता है, उसके मानसिक दु खका विनाश हो जाता है।

(२) 'पुरीष्यासोऽग्नयः०'(—ऋग्वेद ३।२२।४)—इस ऋचाका जप आरोग्यकी कामना करनेवाले रोगीके लिये बहुत ही उपास्य है।

(३) 'अप न शोशुचदघम्०' (—ऋग्वेद १।९७।१-८)—इत्यादि ऋचाओंके द्वारा मध्याह्नकालमें सूर्यदेवका स्तुति करनेवाला व्यक्ति सभी प्रकारके पापोंसे मुक्त हो जाता है।

(४) 'चित्रं देवानाम्०' (—ऋग्वेद १।११५।१) मन्त्रसे हाथमें समिधाएँ लेकर प्रतिदिन तीनों सन्ध्याओंके समय सूर्यका उपस्थान करनेवाला व्यक्ति मनोवाञ्छित धन प्राप्त करता है।

* ततः शापाभिभूतेन सम्यगाराध्य भास्करम्। साम्बेनाप्तं तथाऽऽरोग्यं रूपं च परमं पुनः॥
(—भविष्य, ब्राह्मपर्व ७२। ४९)

(५) 'हंस शुचिषत्०' (—ऋग्वेद ४।४०।५)—इस मन्त्रका जप करते हुए सूर्यका दर्शन पवित्रता प्रदान करता है।

(६) 'तच्चक्षुर्देवहितम्०' (—ऋग्वेद ७।६६।१६)—इस ऋचासे उदयकालिक एवं मध्याह्नकालिक सूर्यका उपस्थान करनेवाला दीर्घकालतक जीवित रह सकता है।

(७) 'यस्तोऽग्यामीद्०' (—यजुर्वेद ३१।१४)—इस मन्त्रसे घृतकी आहुति देनेपर भगवान् सूर्यसे अभाष्ट वस्तुकी प्राप्ति होती है।

(८) 'असौ यस्ताम्र ०' (—यजुर्वेद १६।६) मन्त्रका पाठ करते हुए नित्य प्रातःकाल एवं सायंकाल आत्म्यगहित होकर भगवान् सूर्यका उपस्थान अभय अन्न एवं दीर्घ आयु प्रदान करनेवाला होता है।

(९) 'अद्य नो देव सवित ०' (—सामवेद १४१)—यह मन्त्र दुःस्वप्नोंका नाश करनेवाला है।

(१०) ॐ आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो
	निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।
हिरण्ययेन सविता रथेनाऽऽदेवो
	याति भुवनानि पश्यन्॥
(—ऋग्वेद १।३५।२, यजु० ३३।४३)

—यह मन्त्र सभी प्रकारकी कामनाओंकी पूर्ति करनेवाला है। प्रतिदिन प्रातःकाल इस मन्त्रका कम-से कम सात हजार जप करना चाहिये।

भगवान् सूर्यसे सम्बद्ध मन्त्रोंमें अधोलिखित मन्त्र सभी प्रकारके नेत्ररोगोंको यथाशीघ्र समाप्त करनेवाला अनुभूत मन्त्र है। (मैंने जीवनमें कई बार इस मन्त्रसे आश्चर्यजनक सफलता अर्जित की है।) यह पाठ-मात्रसे सिद्ध होनेवाला है। इसे 'चाक्षुषोपनिषद्'के नामसे भी जाना जाता है तथा इसका वर्णन कृष्ण यजुर्वेदमें मिलता है।

'अस्याश्चाक्षुषीविद्याया अहिर्बुध्न्य ऋषिः, गायत्री छन्दः, सूर्यो देवता, चक्षूरोगनिवृत्तये जपे विनियोगः।

ॐ चक्षुः चक्षुः चक्षुः तेजः स्थिरो भव। मां पाहि पाहि। त्वरितं चक्षूरोगान् शमय शमय। मम जातरूपं तेजो दर्शय दर्शय। यथाहं अन्धो न स्यां तथा कल्पय कल्पय। कल्याणं कुरु कुरु। यानि मम पूर्वजन्मोपार्जितानि चक्षुःप्रतिरोधकदुष्कृतानि तानि सर्वाणि निर्मूलय निर्मूलय। ॐ नमः चक्षुस्तेजोदात्रे दिव्याय भास्कराय। ॐ नमः करुणाकरायामृताय। ॐ नमः सूर्याय। ॐ नमो भगवते सूर्यायाक्षितेजसे नमः। खेचराय नमः। महते नमः। रजसे नमः। तमसे नमः। असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मा अमृतं गमय। उष्णो भगवाञ्छुचिरूपः। हंसो भगवान् शुचिरप्रतिरूपः। य इमां चाक्षुष्मतीविद्यां ब्राह्मणो नित्यमधीते न तस्याक्षिरोगो भवति। न तस्य कुले अन्धो भवति। अष्टौ ब्राह्मणान् ग्राहयित्वा विद्या सिद्धिर्भवति।

१ ॐ इस चाक्षुषी विद्याके ऋषि अहिर्बुध्न्य हैं, गायत्री छन्द है, सूर्यनारायण देवता हैं तथा नेत्ररोगकी निवृत्तिके लिये इसका जप होता है—यह विनियोग है। (भगवानका नाम लेकर कहे) हे चक्षुके अभिमानी सूर्यदेव! आप मेरे चक्षुमें चक्षुके तेजरूपसे स्थिर हो जायँ। मेरी रक्षा करें, रक्षा करें। मेरे आँखके रोगोंका शीघ्र शमन करें, शमन करें। मुझे अपना सुवर्ण जैसा तेज दिखला दें, दिखला दें। जिससे मैं अन्धा न होऊँ (कृपया) वैसा ही उपाय करें, उपाय करें। मेरा कल्याण करें, कल्याण करें। दर्शनशक्तिका अवरोध करनेवाले मेरे पूर्वजन्मार्जित जितने भी पाप हैं, उन सबको जड़से उखाड़ दें, जड़से उखाड़ दें। ॐ (सच्चिदानन्दस्वरूप) नेत्रोंको तेज प्रदान करनेवाले दिव्यस्वरूप भगवान् भास्करको नमस्कार है। ॐ करुणाकर अमृतस्वरूपको नमस्कार है। ॐ सूर्य भगवान्को नमस्कार

इस प्रकार उपरिलिखित सम्पूर्ण विवेचनके आकलनसे यह कहना समीचीन प्रतीत होता है कि भगवान् सूर्यकी उपासना मानवमात्रके लिये नितान्त वाञ्छनीय है । सूर्योपासनासे दिव्य आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, धन, पशु, मित्र, पुत्र, स्त्री, अनेक इन्द्रिय-भोग तथा स्वर्ग ही नहीं, मोक्षतक भी अनायास सुलभ हो जाता है । अतः प्रत्येक नैतिक, सामाजिक तथा धार्मिक अभ्युत्थानके इच्छुक व्यक्तिको विशेषतः आरोग्यके इच्छुक व्यक्तिको— सद्य फलप्रदाता भगवान् भास्करकी उपासना करके अपना जीवन सफल बनाना चाहिये । यह प्रसिद्ध भी है कि 'आरोग्यं भास्करादिच्छेत्' ।

वैदिक धर्ममें सूर्योपासना

(लेखक—डॉ० श्रीनीलकण्ठाकान्तजी चौधरी विद्यार्णव, एम० ए०, एल्-एल्० बी०, पी-एच्० डी०)

सनातन (वैदिक) धर्ममें भगवान् सूर्यकी उपासनाका एक मुख्य स्थान है । हिंदुमात्र महाभाग सूर्यके उपासक हैं ।

वेदमें भगवान् सूर्यके असंख्य मन्त्र हैं । स्थानाभावके कारण कुछ दो-चार मन्त्रोंपर ही यहाँ आलोचन किया जाता है ।

(१) ब्रह्मगायत्री

'ॐ भूर्भुवः स्वः तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥'

भगवान् सूर्यका एक नाम सविता है । यह मन्त्र वेदोंका मूल स्वरूप है । प्रति द्विजको त्रिकाल—अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यको तीनों सन्ध्याओंमें इस महामन्त्रका जप करना आवश्यक है ।

वेदमाता जगत्प्रसविनी आद्याशक्ति सावित्री परब्रह्मस्वरूपिणी हैं ।

भाष्य—

तिसृणां महाव्याहृतीनां प्रजापतिऋषिरग्नि-वायुसूर्या देवताः, गायत्र्या विश्वामित्र ऋषिर्गायत्री छन्दः, सविता देवता महाव्याहृतीनां शान्तिकरणे विनियोगः ।

अस्यार्थः—भूः पृथिवी, भुवः आकाशः, स्वः स्वर्गम् एतान् त्रीन् लोकानिति परिणम्य धीमहीति क्रियापदं योज्यम् । तथा तत्सवितुरादित्यस्य भर्गः वीर्यं तेजो वा धीमहि ध्यायेम चिन्तयामेति यावत् । किम्भूतं वरेण्यं वरस्य श्रेष्ठम् । किम्भूतस्य सवितुः देवस्य दानादिगुणयुक्तस्य । पुनः किम्भूतस्य? यः सविता नोऽस्माकं धियो बुद्धीः प्रचोदयात् प्रेरयति—सकलपुरुषार्थेषु प्रवर्तयतीत्यर्थः ।

भाष्यका भावार्थ—तीन महाव्याहृतियों—भूः, भुवः, स्वः के ऋषि स्वयं प्रजापति ब्रह्मा हैं तथा अग्नि, वायु और सूर्य देवता हैं । छन्द नहीं है । इस गायत्रीके ऋषि हैं विश्वामित्र (ये गाधिपुत्र नहीं हैं), गायत्री छन्द है और

है । ॐ नेत्रोंके प्रकाशक भगवान् सूर्यदेवको नमस्कार है । ॐ आकाशविहारीको नमस्कार है । परमश्रेष्ठ स्वरूपको नमस्कार है । ॐ (सबमें क्रियाशक्ति उत्पन्न करनेवाले) रजोगुणरूप सूर्यभगवान्को नमस्कार है । (अन्धकारको सर्वथा अपने अंदर समा लेनेवाले) तमोगुणके आश्रयभूत भगवान् सूर्यको नमस्कार है । हे भगवन् ! आप मुझको असत्से सत्की ओर ले चलिये । अन्धकारसे प्रकाशकी ओर ले चलिये । मृत्युसे अमृतकी ओर ले चलिये । उष्णस्वरूप भगवान् सूर्य शुचिरूप हैं । हंसस्वरूप भगवान् सूर्य शुचि तथा अप्रतिरूप हैं—उनके तेजोमय स्वरूपकी समता करनेवाला कोई नहीं है । जो ब्राह्मण इस चाक्षुष्मती विद्याका नित्य पाठ करता है, उसको नेत्रसम्बन्धी कोई रोग नहीं होता । उसके कुलमें कोई अंधा नहीं होता । आठ ब्राह्मणोंको इस विद्याका दान करनेपर—इसका ग्रहण करा देनेपर इस विद्याकी सिद्धि होती है ।।

सविता देवता हैं। महावीररूप कर्ममें अर्थात् यज्ञमें यज्ञोपान्त शान्तिके लिये विनियोग है।

भूका अर्थात् पृथ्वीके चैतन्यपुरुषका हम सब मिलकर ध्यान करें। आकाशके पुरुषका हम ध्यान करें। स्वर्गलोकके चैतन्य पुरुषका ध्यान करें और उस सविताकी अर्थात् आदित्य या सूर्यके भर्गकी, पाप मार्जनकारी तेजकी तथा वीर्यकी हम चिन्ता करें। वह किस प्रकारका भर्ग है? श्रेष्ठसे भी श्रेष्ठ है। वे सविता कैसे हैं? जगत्के जन्मदाता हैं—उन्हींसे जगत्की सृष्टि हुई है। ये सविता हमें सब कुछ दे रहे हैं। हमें एवं पृथ्वीके समस्त प्राणियोंको प्राण दे रहे हैं, अन्न दे रहे हैं, हमारा पालन-पोषण कर रहे हैं। यही है सविताका तेज। सविता भगवान् सूर्यके शरीराभिमानी देवता हैं। हम सबकी बुद्धिको तथा सब प्रकारके परम पुरुषार्थको, जिसमें धर्म, अर्थ एवं काम गौण हैं और मोक्ष मुख्य है, प्रदान करते हैं।

अतः भगवान् सूर्यके इस प्रकाशरूपी शक्ति सावित्रीकी उपासना ही ब्रह्मविद्याकी साधना है। यही मनुष्यको जन्म और मृत्युसे छुड़ाकर मोक्षरूपी फल प्रदान करती है।

(२) आदित्य ब्रह्मस्वरूप

'ॐ असावादित्यो ब्रह्म॥' 'ये सूर्य ही ब्रह्मके साकारस्वरूप हैं।'

(यह मन्त्र अथर्ववेदीय सूर्योपनिषद्में है। सूर्योपनिषद्का उल्लेख मुक्तिकोपनिषद्में है।)

(३) हिरण्यवर्ण श्रीसूर्यनारायण

'पद्मासनारूढेन धीजेन षडङ्ग रक्ताम्बुजसंस्थित सप्ताश्वरथिनं हिरण्यवर्णं चतुर्भुजं पद्मद्वयाभयवरद हस्तं कालचक्रप्रणेतारं श्रीसूर्यनारायणं य एवं वेद स वै ब्राह्मणः।' (—सूर्योपनिषद्)

'य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते हिरण्यश्मश्रुर्हिरण्यकेश आप्रणखात् सर्व एव सुवर्णः।' (—छान्दोग्य उ० १।६।६)

भावार्थ—सूर्यमण्डलमें हिरण्यवर्ण श्रीसूर्यनारायण अवस्थित हैं। वे सप्ताश्वरथमें सवार, रक्तकमलस्थित कालचक्रप्रणेता चतुर्भुज हैं, जिनके दो हाथोंमें कमल और अन्य दो हाथोंमें अभय वर मुद्रा है। ये हिरण्यश्मश्रु एवं हिरण्यकेश हैं। इनके नखसे लेकर सभी अङ्ग-प्रत्यङ्ग सुवर्णवर्णके हैं। इस प्रकार इन आदित्य देवका दर्शन होता है। जो इनको जानते हैं, वे ही *ब्रह्मवित् अर्थात् ब्राह्मण हैं।*

(४) सूर्य ही स्थावर-जङ्गम—सम्पूर्ण भूतोंकी आत्मा हैं

वेदके अनेक मन्त्रोंमें सूर्यको चक्षु कहा गया है। नीचे केवल परिचय हेतु कुछ मन्त्र दिये जाते हैं—

ॐ चित्रं देवानामुदगादनीकं
चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आ प्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्ष
सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च॥

भाष्य

(असौ) सूर्य उदगात् (उदितोऽभवत्)। कीदृशः? मित्रस्य वरुणस्य अग्नेः (देवानां त्रयाणां तदुपलक्षितानां त्रयाणां जगताम्) चक्षुः (प्रकाशकः)। तत्र सूर्यदेवताकः स्वर्लोकः, वरुणदेवताकः महर्लोकः, अग्निदेवताकः भूर्लोकश्च। पुनः कीदृशः? देवानामनीकम् (समष्टिस्वरूपः)। कथमुदगात्? चित्रम् (आश्चर्यं यथा भवति तथा)। (उदयादनन्तरं) द्यावा पृथिवी (दिवं पृथिवीं च) अन्तरिक्षम् (आकाशम्) आप्रा (आप्रात् पूरितवान् स्वेन रश्मिणा जालेनेति शेषः)। पुनः किम्भूतः? जगतः (जङ्गमस्य) तस्थुषः (स्थावरस्य) च आत्मा (स्थावरजङ्गमात्मकस्य सकलस्य संसारस्य योऽयमेव सूर्य इत्यर्थः)।

भाष्यार्थ—मित्र, वरुण एवं अग्निके द्वारा अधिष्ठित, त्रिलोकके प्रकाशक, सभी देवताओंके समष्टिस्वरूप तथा स्थावर-जङ्गमके अन्तर्यामी प्राणस्वरूप भगवान् सूर्य आश्चर्य-

रूपसे उदित हुए हैं। स्वर्ग, मर्त्य और आकाशको अपने रश्मिजालसे परिपूर्ण किये हैं।

इस वेदमन्त्रके अन्तर्निहित गम्भीर सत्यको आधुनिक जड़ विज्ञान तथा पाश्चात्य जातिवाले भी क्रमशः हृदयङ्गम कर स्वीकार करने लगे हैं। सूर्यसे ही इस दृश्यमान पृथ्वी तथा अन्य लोक एवं समस्त भूतगणोंकी सृष्टि, स्थिति तथा लय होती है। सूर्यके नहीं रहनेसे समस्त प्राणी और उद्भिज—दोनोंका ही जीना असम्भव है।

'आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः।'
(मनुस्मृति)

सूर्यसे वर्षा, वर्षासे अन्न और अन्नसे प्रजा अर्थात् प्राणीका अस्तित्व होता है।

नीचेके मन्त्रमें सूर्यनारायणको त्रिलोकीमें स्थित समस्त देवगणोंका 'चक्षु' कहा गया है।

(५) विष्णुगायत्री

'ॐ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः, दिवीव चक्षुराततम्।'

भावार्थ—उस सर्वव्यापी विष्णुके परमपदको, जो कि तुरीयस्थान है, ज्ञानीजन सर्वदा आकाशस्थित सूर्यके समान सभी ओर दर्शन करते हैं।

अतः हे साधक! तुम निराश मत हो, तुम भी क्रमशः साधन-पथसे चेष्टा करनेपर इसकी उपलब्धि कर सकोगे।

(६) जगत्‌के नेत्रस्वरूप भगवान् सूर्यकी कृपासे दीर्घ स्वास्थ्यमय जीवन-लाभ होता है

ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतम्, जीवेम शरदः शतम्, शृणुयाम शरदः शतम्। प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतम्, भूयश्च शरदः शतात्॥

भाष्य

तत् चक्षुः जगतां नेत्रभूतम् आदित्यरूपं पुरस्तात् पूर्वस्यां दिशि उच्चरत् उच्चरति उदेति। कीदृशम्? देवहितं देवानां हितं प्रियम्। पुनः कीदृशम्? शुक्रम् शुक्लम् अपापं स्पष्टं शोचिष्मद् वा। तस्य प्रसादात् शतं शरदः वर्षाणि वयं पश्येम शतवर्षपर्यन्तं अव्याहतचक्षुरिन्द्रिया भवेम। शतं शरदः अपराधीनजीविनो भवेम। शतं शरदः शृणुयाम स्पष्टश्रोत्रेन्द्रिया भवेम। शतं शरदः प्रब्रवाम अस्खलितवागिन्द्रिया भवेम। न कस्यापि दैन्यं कुर्याम। शतवर्षोपर्यपि बहुकालम् इत्यादि।'

भाष्यार्थ—हम जिनकी स्तुति कर रहे हैं, जगत्‌के नेत्रस्वरूप भगवान् आदित्य पूर्व दिशामें उदित हो रहे हैं। ये देवगणके हितकारी हैं। वे शुभ्र अर्थात् निष्पाप और दीप्तिशाली हैं। इनके अनुग्रहसे हम सौ वर्षतक चक्षुहीन न होकर सब कुछ देख सकें। हम सौ वर्षोंतक पराधीन न होकर जीवित रह सकें। हम सौ वर्षोंतक श्रवणहीन न होकर स्पष्ट सुन सकें। सौ वर्षोंतक वाक् शक्तिहीन न होकर उत्तमरूपसे बोल सकें। किसीके भी समक्ष मैं दीन न बनूँ। सौ वर्षोंतक ऐसा ही हो।

इस प्रकार अनेक वेद-मन्त्रोंमें 'आदित्य' को परमब्रह्मके चक्षुके समान बताया गया है एवं उनका स्तवन किया गया है। वे जगत्‌के साक्षी हैं।

(७) पञ्चमहाभूत, पञ्चदेवता एवं पञ्चोपासना

आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी—ये पाँच महाभूत—क्रमशः सूक्ष्मसे स्थूल हैं। पहले अपञ्चीकृत सूक्ष्म महाभूत थे। ईश्वरकी इच्छासे सृष्टिद्वारा परस्पर मिश्रित होकर पञ्चीकरणद्वारा स्थूल महाभूत हुए हैं। प्रत्येक महाभूतके पाँच-पाँच तत्त्व और हैं। कुल मिलाकर पचीस तत्त्व हैं। प्रत्येक प्राणीकी स्थूल देहमें ये पाँच महाभूत पञ्चीकृत होकर पचीस भागोंमें वर्तमान हैं।

इन सब महाभूतोंके अधिपति पाँच देवता हैं—गणेश, शक्ति, शिव, विष्णु और सूर्य। सनातन-धर्मके उपास

पञ्चदेवोंमें सूर्य

आदित्यं गणनाथं च देवीं रुद्रं च केशवम् ।
पञ्चदैवत मित्युक्तं सर्वकर्मसु पूजयेत् ॥

रूपसे उदित हुए हैं। स्वर्ग, मर्त्य और आकाशको अपने रश्मिजालसे परिपूर्ण किये हैं।

इस वेदमन्त्रके अन्तर्निहित गम्भीर सत्यको आधुनिक जड विज्ञान तथा पाश्चात्य जातिवाले भी क्रमश हृदयङ्गम कर स्वीकार करने लगे हैं। सूर्यसे ही इस दृश्यमान पृथ्वी तथा अन्य लोक एव समस्त भूतगणोंकी सृष्टि, स्थिति तथा लय होती है। सूर्यके नहीं रहनेसे समस्त प्राणी और उद्भिज—दोनोंका ही जीना असम्भव है।

'आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्न तत' प्रजा ।
(मनुस्मृति)

सूर्यसे वर्षा, वर्षासे अन्न और अन्नसे प्रजा अर्थात् प्राणीका अस्तित्व होता है।

नीचेके मन्त्रमें सूर्यनारायणको त्रिलोकीमें स्थित समस्त देवगणोंका 'चक्षु' कहा गया है।

(५) विष्णुगायत्री

'ॐ तद्विष्णो परम पद सदा पश्यन्ति सूरय ।
दिवीव चक्षुराततम् ।'

भावार्थ—उस सर्वव्यापी विष्णुके परमपदको, जो कि तुरीयस्थान है, ज्ञानीजन सर्वदा आकाशस्थित सूर्यके समान सभी ओर दर्शन करते हैं।

अत हे साधक! तुम निराश मत हो, तुम भी क्रमश साधन-पथसे चेष्टा करनेपर इसकी उपलब्धि कर सकोगे।

(६) जगत्के नेत्रस्वरूप भगवान् सूर्यकी कृपासे दीर्घ स्वास्थ्यमय जीवन-लाभ होता है

ॐ तच्चक्षुर्देवहित पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् ।
पश्येम शरद शतम्, जीवेम शरद शतम्,
शृणुयाम शरद शतम् । प्रब्रवाम शरद शतमदीना
स्याम शरद शतम्, भूयश्च शरद शतात् ॥

भाष्य

तत् चक्षु जगता नेत्रभूतम् आदित्यरूप पुरस्तात् पूर्वस्या दिशि उच्चरन् उच्चरति उदेति। कीदृशम्? देवहित देवाना हित प्रियम्। पुन कीदृशम् शुक्र शुक्लम् अपाप स्पष्ट शोचिसद् वा। तस्य प्रसादात् शत शरद वर्षाणि वय पश्येम शतवर्षपर्यन्त वयम् अव्याहतचक्षुरिन्द्रिया भवेम। शत शरद जीवेम अपराधीनजीविनो भवेम। शत शरद शृणुयाम स्पष्टश्रोत्रेन्द्रिया भवेम। शत शरद प्रब्रवाम अस्खलितवागिन्द्रिया भवेम। न कस्याप्यग्रे दैन्य कुर्याम। शतवर्षोपर्यपि बहुकालम् इत्यादि।'

भाष्यार्थ—हम जिनकी स्तुति कर रहे हैं, वे जगत्के नेत्रस्वरूप भगवान् आदित्य पूर्व दिशामें उदित हो रहे हैं। ये देवगणके हितकारी हैं। वे शुक्र अर्थात् निष्पाप और दीप्तिशाली हैं। इनके अनुग्रहसे हम सौ वर्षोंतक चक्षुहीन न होकर सब कुछ देख सकें। हम सौ वर्षोंतक पराधीन न होकर जीवित रह सकें। हम सौ वर्षोंतक श्रवणहीन न होकर स्पष्ट सुन सकें। हम सौ वर्षोंतक वाक् शक्तिहीन न होकर उत्तमरूपसे बोल सकें। किसीके भी समक्ष मैं दीन न बनूँ। सौ हजार वर्षोंतक ऐसा ही हो।

इस प्रकार अनेक वेद-मन्त्रोंमें आदित्यदेवको परब्रह्मके चक्षुके समान बताया गया है एव उनका स्तवन किया गया है। वे जगत्के साक्षी हैं।

(७) पञ्चमहाभूत, पञ्चदेवता एव पञ्चोपासना

आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी—ये पञ्च महाभूत—क्रमश सूक्ष्मसे स्थूल हैं। पहले अपञ्चीकृत सूक्ष्म महाभूत थे। ईश्वरकी इच्छासे सृष्टिद्वारा परस्पर मिश्रित होकर पञ्चीकरणद्वारा स्थूल महाभूत हुए हैं। प्रत्येक महाभूतके पाँच-पाँच तत्त्व और हैं। कुल मिलाकर पचीस तत्त्व हैं। प्रत्येक प्राणीकी स्थूल देहमें ये सारे महाभूत पञ्चीकृत होकर पचीस भागोंमें वर्तमान हैं।

इन सब महाभूतोंके अधिपति पाँच देवता हैं—गणेश, शक्ति, शिव, विष्णु और सूर्य। सनातन-धर्मके उपासक

मात्र पाँच प्रकारके सम्प्रदायमें हैं, यथा—गाणपत्य (गणेश-उपासक), शाक्त (शक्ति-उपासक), शैव (शिव-उपासक), वैष्णव (विष्णु-उपासक) और सौर (सूर्य-उपासक) । चाहे किसी भी सम्प्रदायके हों, चाहे किसी भी देवताकी पूजा करें, पहले पञ्चदेवताकी पूजा करनी पड़ती है । इष्टदेव चाहे कोई भी हो, सर्वप्रथम गणेशजीकी पूजा करनी पड़ती है । उपास्य इष्टदेवके साथ अभेद-भावसे निष्ठापूर्वक सबकी पूजा करनी पड़ती है ।

भगवान् शंकराचार्यके उदेशानुसार दाक्षिणात्य ब्राह्मणगण पञ्चदेवताकी पूजा एक ही साथ पञ्चलिङ्गमें करते हैं । इष्टदेवताका लिङ्ग बीचमें रखा जाता है और चारों तरफ दूसरे चार देवताओंके लिङ्ग रखते हैं । शिव—बाणलिङ्ग, विष्णुलिङ्ग—शालग्राम-शिला, गणेश लिङ्ग—रक्तवर्ण चतुष्कोण पत्थर, शक्तिलिङ्ग—धातु निर्मित यन्त्र और सूर्यलिङ्ग—स्फटिक-बिम्ब (गोल) । वाराणसीमें ये पञ्चलिङ्ग न्योछावर (मूल्य) देनेपर उपलब्ध होते हैं ।

इन पञ्चदेवताओंकी जो कि पञ्चमहाभूतोंके अधिपति हैं, इनकी पूजा आदिका रहस्य बड़ा गहरा है । सनातनधर्मकी पूजा-पद्धति साम्प्रदायिक होते हुए भी असाम्प्रदायिक है । सर्वप्रथम पञ्चदेवताकी पूजा ही इसका प्रमाण है । स्थानाभावके कारण विस्तृत आलोचना यहाँ असम्भव है ।

(८) वैदिक तथा पौराणिक साधनामें सूर्यकी उपासनाका मुख्य स्थान है

त्रैकालिक वैदिक संध्यामें, आचमनमें, सूर्यके लिये जलाञ्जलिमें, गायत्रीके जपमें, सूर्यार्घ्यदानमें तथा सूर्यके प्रणाम आदिमें सूर्यकी उपासना ओतप्रोत है। ठीक इसी प्रकार प्रत्येक पौराणिक अथवा तान्त्रिक उपासनामें सूर्यकी पूजा एक आवश्यक कर्तव्य है । अतः सनातनधर्मको माननेवाले सूर्यके उपासक सभी स्त्री-पुरुष सौर हैं ।

(९) रामायण और महाभारतमें सूर्यका उपाख्यान

इतिहासों और पुराणोंमें सूर्यपर अनेक उल्लेख हैं । श्रीहनुमान्‌जीने सूर्यसे व्याकरण-शास्त्र आदिकी शिक्षा प्राप्त की थी । उन्हें सूर्यदेवसे कई वर मिले थे ।

महाभारतमें मिलता है कि कौरव-पाण्डव—दोनों तापत्य थे । क्योंकि उनके पूर्वपुरुष राजा संवरणने सूर्यकन्या तपतीसे विवाह किया था । सूर्यके तेजसे कुन्तीके गर्भमें वैकर्तन महावीर कर्णने कवच-कुण्डलसहित जन्म ग्रहण किया था । वे प्रतिदिन सूर्यकी उपासना करते थे । वन वासकालमें सूर्यकी उपासना करनेसे युधिष्ठिरको एक पात्र मिला था । महारानी द्रौपदी उसमें भोजन बनाती थीं । उनके भोजनके पूर्व उसमें अन्न आदि अक्षय्य होता था । हजारों अतिथि प्रत्येक दिन इस पात्रसे आहार प्राप्त करते थे । द्रौपदीके अज्ञातवासके समय सूर्यके निकट प्रार्थना करनेसे सूर्यने द्रौपदीको कीचक नामक राक्षसके अत्याचारोंसे बचाया था । परंतु वे स्वयं अदृश्य थे । श्रीकृष्ण एवं जाम्बवतीके पुत्र साम्ब सूर्यकी उपासना करके दुःसाध्य रोगसे मुक्त हुए थे ।

राजा अश्वपतिने सूर्यकी उपासना करके सावित्री देवीको अपनी कन्याके रूपमें प्राप्त किया था । इसी सावित्रीने यमलोकसे अपने पति सत्यवान्‌को वापस लाकर सदाके लिये भारतवर्षमें सतीत्वकी मर्यादा स्थापित की है ।

ये सभी घटनाएँ सत्य हैं, काल्पनिक समझनेसे भूल होगी । सूर्यकी उपासना करनेसे आज भी इसका फल प्राप्त होता देखा जाता है ।

(१०) अब भी दर्शन होता है

इस लेखकको मध्यप्रदेशके नर्मदा नदीके किनारे महाण नामक स्थानमें सन् १९३४ में एक

दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। वे आजन्म ब्रह्मचारी थे। उन्होंने सात बार गायत्री-पुरश्चरण किया था। पञ्चम पुरश्चरणके अन्तमें आपको नर्मदाके वक्षमें एक निर्जन द्वीपमें 'साक्षसूत्रकमण्डलु' बालिकाके वेशमें गायत्रीदेवीका प्रत्यक्ष दर्शन मिला। आप गद्गद होकर गिड़गिड़ाने लगे। माता,—'करते जा'—ऐसा आदेश देकर अन्तर्हित हो गयीं।

उन्होंने लेखकको और भी बताया कि देवप्रयाग नामक स्थानमें एक वेदमन्त्रके सात हजार बार जप करनेसे उन्हें सप्ताश्ववाहित रथपर सवार हुए सूर्यदेवका भी दर्शन हुआ था।

(११) सूर्यमें त्राटकयोग

लेखकको एक बार नादसिद्ध परमहंस योगीका परिचय हुआ था। 'पातञ्जलयोगदर्शन' में है कि सूर्यपर संयम करनेसे भुवनज्ञान होता है। उस योगीने सूर्योदयसे सूर्यास्ततक सूर्यपर एकटक त्राटक कर सिद्धि प्राप्त की थी। किसीको देखकर उसका प्रकृत स्वरूप और सारा वृत्तान्त उनके आँखोंके सामने आ जाता था।

(१२) रघुवंशमें जगन्माता सीतादेवीका सूर्यपर त्राटकयोगका उल्लेख

महाकवि कालिदास (प्रथम इ० पू० श०) सिद्ध तान्त्रिकाचार्य और महायोगी थे। उन्होंने रघुवंशमें जगन्माता सीतादेवीका सूर्यपर त्राटकयोगका उल्लेख किया है।

> साहं तपः सूर्यनिविष्टदृष्टि-
> रूर्ध्वं प्रसूतेश्चरितुं यतिष्ये।
> भूयो यथा मे जननान्तरेऽपि
> त्वमेव भर्ता न च विप्रयोगः ॥
> (रघु० १४। ६६)

महासती सीतादेवीने वनवासका आदेश पाकर लक्ष्मणके पास सूर्यवंशके दीपक श्रीरामके नाम एक संदेश भेजा था। उसमें उन्होंने लिखा था कि 'मेरे गर्भस्थित सूर्यवंशधर संतानका जन्म हो जानेके बाद मैं सूर्यपर दृष्टि निबद्ध कर अनन्यहृदयसे तपस्या करूँगी जिससे जन्मान्तरमें भी आपको ही पतिरूपमें पाऊँ—कभी भी आपके साथ विच्छेद न हो।'

मुस्लिम यात्री इब्न् बतूताने अपनी भ्रमण-कहानीमें लिखा है कि उन्होंने एक हिंदू योगीको सूर्यपर त्राटक करते हुए देखा। कुछ सालोंके बाद जब वे अपनी यात्रासे वापस लौट रहे थे, तब उन्होंने फिरसे उसी योगीको सूर्यपर त्राटक लगाये हुए देखा।

(१३) 'क्व सूर्यप्रभवो वंशः'

सूर्यवंशके प्रवर्तक मनुको श्रीभगवान्‌ने स्वयं कर्मयोगका उपदेश दिया था। गीतामें श्रीकृष्णने इसका उल्लेख किया है। सूर्यवंशके क्षत्रिय राजागण आरम्भ-कालसे वर्णाश्रम-धर्मके सेतु रहे एवं वे ही जातीय स्वतन्त्रताकी रक्षा करते रहे हैं।

उदयपुर (चित्तौड़)के महाराणा लवके वंशज हैं। सूर्य ही उनके ध्वजके प्रतीक हैं। कुशवाह अर्थात् कुशके वंशज राजागण भी और कई राज्योंमें यवनोंके साथ युद्धकर आधुनिक कालतक शासन करते आये हैं। सूर्यवंशी क्षत्रिय इतिहासके गौरव हैं।

(१४) सूर्य-मन्दिर

भारतमें सूर्यकी उपासना बहुत कालपूर्वसे प्रचलित थी। खेदका विषय है कि अधिकतर सूर्य-मंदिर मुस्लिम शासनकालमें नष्ट-भ्रष्ट कर दिये गये। जिनमेंसे कुछ मन्दिरोंके विषयमें उल्लेख किया जा रहा है—

१—मुल्तान (मूलस्थानपुर) सूर्य-मन्दिरके लिये विख्यात था। सिन्धदेशके पराधीन होनेके बहुत दिनों बादतक भी यह मन्दिर रहा। मुस्लिम शासक

इस मन्दिरसे कर वसूल करते रहे। अब यहाँ सभी कुछ ध्वस्त है।

२—कश्मीरमें पर्वतके ऊपर मार्तण्ड-मन्दिरका विशाल भग्नखण्ड (खण्डहर) आज भी है। इस मन्दिरको तोड़नेके लिये अत्यधिक गोले-बारूदकी आवश्यकता पड़ी थी। वे इसे साधारण औजारोंसे नहीं तोड़ सके।

३—चित्तौड़गढ़में सूर्य-मन्दिर कालिकाजीके मन्दिरके नामसे प्रसिद्ध है, इस समय यहाँ सूर्यदेवकी कोई मूर्ति नहीं है।

४—मोधेरा (गुजरात) में कुण्डके किनारे एक विशाल भव्य सूर्यमन्दिर था। अब उसका एक टुकड़ामात्र ही शेष बचा है। इस मन्दिरकी शिल्पकला अपूर्व एवं विस्मयकर है।

५—कोणार्क (उड़ीसा) का सूर्य-मन्दिर तेरहवीं शताब्दीमें निर्मित हुआ था। मूल मन्दिर (विमान) कम-से-कम २२५ फुट ऊँचा था। १५७० ई०में उड़ीसा-जयके बाद काला पहाड़ और दूसरे मुस्लिम शासकोंने इसे नष्ट कर दिया। अब भी नाट-मन्दिर और जगमोहन, जो खण्डहरके रूपमें बचा है वह पृथ्वीभरमें एक आश्चर्यजनक कृति है। मराठोंके शासनकालमें यहाँके अरुणस्तम्भको पुरीमें जगन्नाथ-मन्दिरके सामने स्थापित किया गया। सूर्यकी महिमा अक्षुण्ण है, उन्हें प्रणाम है—

जवाकुसुमसंकाशं काश्यपेयं महाद्युतिम्।
ध्वान्तारिं सर्वपापघ्नं प्रणतोऽस्मि दिवाकरम्॥

भगवान् सूर्यका दिव्य स्वरूप और उनकी उपासना

(लेखक—महामहोपाध्याय आचार्य श्रीहरिशंकर वेणीरामजी शास्त्री, कर्मकाण्ड-विशारद, विद्याभूषण, संस्कृतरत्न, विद्यालंकार)

'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'

श्रीसूर्यनारायण स्थावर-जङ्गमात्मक सम्पूर्ण जगत्की आत्मा हैं।

सूर्य शब्दकी व्युत्पत्ति—

रश्मीनां प्राणानां रसानां च स्वीकरणात् सूर्यः। सरति आकाशे इति सूर्यः। सुवति लोकं कर्मणा प्रेरयति इति वा सूते सर्वं जगत् इति सूर्यः।

अर्थात्—रश्मियोंका, प्राणोंका और रसोंका स्वीकार करनेसे, आकाशमें गमन करनेसे, उदयकालमें लोगोंको कर्म करनेमें प्रेरणा करनेसे अथवा सर्वजगत्को उत्पन्न करनेवाला होनेसे भुवन-भास्करको सूर्य कहा जाता है। सूर्यनारायण परब्रह्म परमात्मा—ईश्वरके अवतार हैं। अव्याकृत परमात्मरूप, सर्वप्राणियोंके जीवनके हेतुरूप, प्राणस्वरूप, सबको सुख देनेवाले तथा सचराचर जगत्के उत्पादक सूर्य ईश्वररूप हैं। अतः ये ईश्वरावतार भगवान् सूर्य ही सबके उपास्यदेव हैं। जगत्के व्यवहारमें काल, देश, क्रिया, कर्ता, करण, कार्य, आगम, द्रव्य और फल—ये सब भगवान् सूर्य हैं। समस्त जगत्के कल्याण और देवता आदिकी तृप्तिके आधार सूर्यभगवान् हैं। अतएव श्रीसूर्यनारायण सर्वजगत्की आत्मा हैं।

सगुण-साकार पञ्चदेवोपासनामें विष्णु, शिव, देवी, सूर्य और गणपति—ये पाँचों देवता सगुण परब्रह्मके प्रचलित रूप हैं—इनमें श्रीसूर्यनारायण अन्यतम हैं। सूर्यमण्डलमें सूर्यनारायणकी उपासना करनेके लिये वेद, उपनिषद्, दर्शनशास्त्र एवं मनु आदि स्मृतियोंमें तथा पुराण, आगम (तन्त्रशास्त्र) आदि ग्रन्थोंमें विस्तृत वर्णन किया गया है।

श्रीपरमात्मा सूर्यात्मारूपसे सूर्यमण्डलमें विराजमान हैं और उनकी परमज्योतिका स्थूल दृश्य सूर्य हैं। भगवान् सूर्यनारायणकी उदयास्त-समय उपासना

ज्ञान-विज्ञानकी प्राप्ति होती है और परम कल्याण होता है। शास्त्रमें कहा है—

'उद्यन्त यातमादित्यमभिध्यायन् कर्म कुर्वन् ब्राह्मणो विद्वान् सकलं भद्रमश्नुते।'

भगवान् श्रीसूर्यके स्वरूपका ध्यान

'भास्वद्रत्नाढ्यमौलिः स्फुरदधररुचा रञ्जितश्चारुकेशो भास्वान् यो दिव्यतेजा करकमलयुतः स्वर्णवर्णः प्रभाभिः। विश्वाकाशावकाशे ग्रहगणसहितो भाति यश्चोदयाद्रौ सर्वानन्दप्रदाता हरिहरनमितः पातु मां विश्वचक्षुः॥'

'उत्तम रत्नोंसे जटित मुकुट जिनके मस्तककी शोभा बढ़ा रहे हैं, जो चमकते हुए अधर-ओष्ठकी कान्तिसे शोभित हैं, जिनके सुन्दर केश हैं, जो भास्वान् अलौकिक तेजसे युक्त हैं, जिनके हाथोंमें कमल हैं, जो प्रभाके द्वारा स्वर्णवर्ण हैं एवं ग्रहवृन्दके सहित आकाशदेशमें उदयगिरि—उदयाचल पर्वतपर शोभा पाते हैं, जिनसे समस्त जीवलोक आनन्द प्राप्त करते हैं, हरि और हरके द्वारा जो नमित हैं, ऐसे विश्वचक्षु भगवान् सूर्यनारायण मेरी रक्षा करें।'

इस ध्यानमें सारे रूपोंके द्वारा ब्रह्मके ज्योतिर्मय प्रभावका वर्णन किया गया है। श्रीपरमात्मा सूर्यात्मा रूपसे सूर्यमण्डलमें विराजमान हैं और उनकी परम ज्योतिका स्थूल दृश्य सूर्य हैं। इसी भावको प्रकट करनेके लिये सूर्य-ध्यानमें इस प्रकार ज्योतिर्मय रूपका वर्णन किया गया है। सूर्यकिरणोंमें हरित, पीत, लाल, नील आदि सप्तवर्णके समन्वयके कारण ही सूर्यकिरण श्वेतवर्ण हैं। इसलिये सप्तवर्णोंके रूपसे सप्ताश्वको सूर्यका वाहन कहा गया है। *क्योंकि ज्योतिर्मय कारण-ब्रह्मसे* जब कार्य-ब्रह्मका आविर्भाव होता है, उस समय सप्तरंग ही प्रथम परिणमित होता है। इसी कारण व्यक्तावस्थाका द्योतक वाहन और अव्यक्तरूपी ज्योतिर्मय सगुण ब्रह्मका द्योतक सूर्यका ध्यान है। हाथका कमल मुक्तिका प्रकाशक है, अर्थात् जीवको मुक्ति देना सूर्यके हाथमें है। अरुणका उदय सूर्योदयसे पूर्व होता है, इसीसे सप्ताश्ववाही रथके सारथि सूर्यके सम्मुख विराजमान अरुण हैं। इसी प्रकार सूर्यभगवान्‌का ध्यान मायान् भावोंके अनुसार वर्णित किया गया है।

परमात्मा एक, अद्वितीय, निराकार एवं सर्वव्यापक होनेपर भी पञ्चदेवतारूप सगुणरूपमें प्रकट होते हैं—

विष्णुश्चिता यस्तु सता शिवः सन्
स्वतेजसार्कः स्वधिया गणेशः।
देवी स्वशक्त्या कुशलं विधत्ते
कस्मैचिदस्मै प्रणतिः सदास्ताम्॥

'जो परमात्मा चित्-भावसे विष्णुरूप होकर, सद्भावसे शिवरूप होकर, तेजरूपसे सूर्यरूप होकर, बुद्धिरूपसे गणेशरूप होकर और शक्तिरूपसे देवीरूप होकर जगत्‌का कल्याण करते हैं, ऐसे परब्रह्मको नमस्कार है।'

तात्पर्य यह है कि सच्चिदानन्दमय, मन-वाग्-बुद्धिसे अतीत, निराकार, निष्क्रिय, तत्त्वातीत, निर्गुण पद कुछ और ही है। वह निर्गुण परब्रह्म-भाव जब सगुण-साकाररूपसे उपासकके सम्मुख ध्याता-ध्यान-ध्येयरूपी त्रिपुटीके सम्बन्धसे आविर्भूत होता है, तब सूक्ष्मातिसूक्ष्म अवलम्बन या तो चित्-भावमय होगा अन्यथा सद्भावमय होगा अथवा तेजोमय होगा, नहीं तो बुद्धिमय या शक्तिमय होगा।

चिद्भावका अवलम्बन करके जो भावना चलेगी वह विष्णुरूपमें, जो सद्भावका अवलम्बन करके चलेगी वह शिवरूपमें, जो दिव्य तेजोमय भावका अवलम्बन करके चलेगी वह सूर्यरूपमें, जो विशुद्ध बुद्धि-भावका अवलम्बन करके अग्रसर होगी वह गणपतिरूपमें और जो अलौकिक अनन्त शक्तिका अवलम्बन करके अग्रसर होगी वह देवीके रूपमें परिणत होगी। पाँचों रूप ही सगुण ब्रह्मके परिचायक होते हुए पाँचों भावोंके अवलम्बनसे पञ्चधा बन गये हैं।

वेदमें सूर्योपासना—

यजुर्वेद अध्याय ३३, मन्त्र ४३में भगवान् सूर्यनारायण हिरण्मय रथमें आरूढ होकर समस्त भुवनोंको देखते हुए गमन करते हैं—

आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्॥

सबके प्रेरक सवितादेव सुवर्णमय रथमें आरूढ होकर कृष्णवर्णकी रात्रि-लक्षणवाले अन्तरिक्षपथमें पुनरावर्तनक्रमसे भ्रमण करते, देवादिको और मनुष्यादिको अपने-अपने व्यापारमें स्थापन करते एवं सम्पूर्ण भुवनोंको देखते हुए गमन करते हैं—अर्थात् कौन साधु और कौन असाधु कर्म करते हैं, इसका निरीक्षण करते हुए निरन्तर गमन करते रहते हैं। इसलिये भगवान् सूर्यनारायण मनुष्योंके शुभ और अशुभ कर्मोंके साक्षी हैं।

अभि त्यं देवꣳ सवितारमोण्योः कविक्रतुमर्चामि सत्यसवꣳ रत्नधामभि प्रियं मतिं कविम्।
ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा अदिद्युतत्सवीमनि हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपा स्वः॥
(शुक्लयजु० ४। २५)

'उस द्यावा-पृथ्वीके मध्यमें वर्तमान दिव्यगुणयुक्त, सतत दीप्तिमान्, बुद्धिप्रदाता, क्रान्तकर्मा, अप्रतिहतक्रियायुक्त, सिद्धिकी प्रेरणा करनेवाले, रमणीय रत्नोंके धारक एवं पोषक, दाता, रत्नरूप, ब्रह्मविद्याके धाम, समस्त चराचरके प्रियतम, मननयोग्य, अनुपम कल्पनाशक्ति-सम्पन्न, क्रान्तदर्शी, वेदविद्याके उपदेष्टा, भगवान् सविता—सूर्य-देवता अर्थात् सबके उत्पादक परमात्माका सब प्रकारसे मैं पूजन करता हूँ, जिनकी अपरिमेय दीप्ति गगनमण्डलमें सबके ऊपर विराजती है तथा आकाशमण्डलमें अनन्त नक्षत्रमण्डल जिनकी दीप्तिसे दीप्तिमान् हैं और जिनकी आत्मप्रकाशरूप मति सर्वत्र विराजमान है, जो सबको कर्मकी आज्ञा करते हैं, जो ज्योतिरूप हाथ (किरण) तथा प्रकाशमान व्यवहारवाले हैं एवं सिद्ध-सङ्कल्प हैं और जिनकी कृपासे स्वर्ग निर्मित हुआ है, उन सूर्यदेवकी मैं पूजा करता हूँ।'

भगवान् सूर्य सबके आत्मा—

सूर्यनारायण स्थावर-जङ्गमके आत्मा—अन्तर्यामी हैं—'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'। इसलिये सूर्यकी आराधना करनेकी वेदमें आज्ञा है—

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षꣳसूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च। (शुक्लयजु० ७। ४२)

यह कैसा आश्चर्य है कि किरणोंके पुञ्ज तथा मित्र, वरुण और अग्निके नेत्र, समस्त जगत्के प्रकाशक, जङ्गम और स्थावर सम्पूर्ण जगत्का आत्मा—अन्तर्यामी सूर्यभगवान् उदय होते हुए, भूलोकसे द्युलोकपर्यन्त अन्तरिक्ष अर्थात् लोकत्रयको अपने तेजसे पूर्ण करते हैं।'

भगवान् सूर्यकी उपासनासे धनकी प्राप्ति—

चित्रमित्युपतिष्ठेत त्रिसन्ध्यं भास्करं यथा।
समित्पाणिर्नरो नित्यमीप्सितं धनमाप्नुयात्॥

हाथमें समिधा लेकर 'चित्रं देवानाम्'—इस मन्त्रसे भगवान् सूर्यकी त्रिकाल प्रार्थना करनेवाला पुरुष इच्छित धनको प्राप्त करता है।

सूर्यकी महत्ता—

बण्महाꣳ असि सूर्य बडादित्य महाꣳ असि।
महस्ते सतो महिमा पनस्यतेऽद्धा देव महाꣳ असि॥
(शुक्लयजु० ३३। ३९)

'हे जगत्को अपने-अपने कार्यमें प्रेरित करनेवाले सूर्यरूप परमात्मन्! सत्य ही आप सबसे अधिक श्रेष्ठ हैं। सबको ग्रहण करनेवाले हे आदित्य! सत्य ही आप बड़े महान् हैं। बड़े महान् होनेसे आपकी महिमा लोगोंसे स्तुत की जाती है। हे दीप्यमान सूर्यदेव! सत्य ही आप सबसे श्रेष्ठ हैं।'

सूर्यके उदयसे सब जगत् अपने-अपने कार्यमें प्रवृत्त होते हैं। सूर्यके उदयसे जाड्याग्निका नाश होकर अङ्कुरादिकी उत्पत्ति होती है। ब्रह्मका हृदयमें प्रकाशरूप उदय होनेसे अज्ञानका नाश—मुक्तिकी प्राप्ति होती है। जैसा कि शुक्लयजुर्वेद ३३। ४०में स्पष्ट है—

बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि।
महस्ते सतो महिमा पनस्यतेऽद्धा देव महाँ असि॥

'हे सूर्य! सत्य ही धन और यशसे तथा अन्नके प्रकट करनेसे आप श्रेष्ठ हैं। हे दीप्यमान! प्राणियोंके हितकारी! देवताओंके मध्यमें—आप सब कार्योंमें प्रथम पूज्य हैं। इसीलिये देवताओंकी पूजामें आपको अर्घ्य प्रदान करनेके बाद ही दूसरे देवताका अधिकार है। आप व्यापक, उपमारहित, किसीसे न रुकनेवाले तेजयुक्त, यज्ञद्वारा महत्त्वसे अधिक श्रेष्ठ हैं अर्थात् माहात्म्यके प्रभावसे एक कालमें सर्वदेशव्यापी अप्रतिद्वन्द्वी ज्योतिका विस्तार करते हुए प्राणिमात्रके हितकारीस्वरूपसे प्रथम पूजनीय हैं।'

गायत्री-मन्त्रमें उपास्य सूर्यनारायण—

प्रातःकालसे ही भगवान् सूर्यकी उपासनाका आरम्भ होता है। प्रातःकालमें प्रातःसन्ध्योपासनासे आरम्भ होकर सायंकालमें सायं सन्ध्योपासना-पर्यन्त त्रिकाल सन्ध्योपासनामें भगवान् सूर्यनारायणकी उपासना की जाती है।

श्रुतिमें 'अहरहः सन्ध्यामुपासीत' कहा गया है। सन्ध्योपासनाके मन्त्रोंमें सूर्यकी उपासना है। सूर्योपस्थानमें भगवान् सूर्यकी आराधना है। यथा—

ॐ उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्॥
(शुक्लयजु० २०। २१)

'हम सब प्रधान इस लोकसे पर—श्रेष्ठ स्वर्गको देखते हुए तथा भगवान् सूर्यको देवलोकमें देखते हुए श्रेष्ठ प्रकाशरूपको प्राप्त हुए हैं।'

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः।
दृशे विश्वाय सूर्यम्॥ (शुक्लयजु० ७। ४१)

'किरणें उन प्रसिद्ध, सब पदार्थोंके ज्ञाता वेदरूपी धनवाले, प्रकाशात्मक सूर्यदेवको इस समस्त विश्वप्रकाश करनेके निमित्त, विशेषताके साथ प्रतिनिधि उन्हें वहन करती हैं।'

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतः शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतम्भूयश्च शरदः शतात्।

(शुक्लयजु० ३६। २४)

वे (सूर्य) देवताओंद्वारा स्थापित अथवा देवताओंके हितकारी जगत्‌के नेत्रभूत, शुक्र—मलसे रहित, शुद्ध प्रकाशरूप पूर्वदिशामें उदित होते हैं। उन परमात्मा (सूर्यनारायण)के प्रसादसे हम सौ शरद्‌पर्यन्त देखें अर्थात् सौ वर्षपर्यन्त हमारे नेत्र-इन्द्रियकी गति निर्बल न हो। सौ शरद् ऋतुओंतक अपराधीन होकर जियें। सौ शरद्‌पर्यन्त स्पष्ट श्रोत्र-इन्द्रियवाले हों। सौ शरद्‌पर्यन्त अस्खलित वाणीयुक्त रहें। सौ शरद्‌पर्यन्त दीनतारहित हों। सौ शरद्‌ऋतुओंसे अधिक कालपर्यन्त भी देखें, सुनें और जीवित रहें। आशय यह कि शत शत वर्षोंतक, अनेक निष्पाप जीवन अर्थात् अतिपावन जीवन प्राप्त करें।

सन्ध्योपासनामें सूर्योपस्थानके अनन्तर गायत्री-मन्त्रका जप करनेका विधान है। गायत्री-मन्त्रमें उपास्य सूर्य हैं, इसलिये ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य गायत्री-मन्त्रद्वारा सूर्य भगवान्‌की उपासना करते हैं—

गायत्री-मन्त्र—ॐ भूर्भुवः स्वः, तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥
(शुक्लयजु० ३६। ३)

'भूः' यह प्रथम व्याहृति 'भुवः' दूसरी व्याहृति और 'स्वः' तीसरी व्याहृति है। ये ही तीनों व्याहृतियाँ पृथ्वी आदि

तीनों लोकोंके नाम हैं। इनका उच्चारण कर प्रजापतिने तीन लोकोंकी रचना की है। अतः इनका उच्चारण करके त्रिलोकीश्वका स्मरण कर गायत्री-मन्त्रका जप करे। पहले ॐकारका उच्चारण करे, तत्पश्चात् तीनों व्याहृतियोंका उच्चारणकर गायत्री-मन्त्रका जप करे।

गायत्री-मन्त्रका अर्थ—(तत्) उस (देवस्य) प्रकाशात्मक (सवितुः) प्रेरक—अन्तर्यामी विज्ञानानन्द स्वभाव हिरण्यगर्भोपाध्यवच्छिन्न आदित्यके अन्तःस्थित पुरुष—'योऽसावादित्ये पुरुषः (यजु० ४०) वा ब्रह्मके (वरेण्यम्) सबसे प्रार्थना किये हुए (भर्गः) सम्पूर्ण पापके तथा संसारके आवागमन दूर करनेमें समर्थ सत्य, ज्ञान तथा आनन्दादिमय तेजका हम (धीमहि) ध्यान करते हैं, (यः) जो सवितादेव (नः) हमारी (धियः) बुद्धियोंको सत्कर्ममें (प्रचोदयात्) प्रेरित करें।

अथवा 'सवितादेवके उस वरणीय तेजका हम ध्यान करते हैं, जो हमारी बुद्धियोंको प्रेरित करता है'—वह सविता ही है।

भगवान् शंकराचार्यने संध्याभाष्यमें गायत्री-मन्त्रके अर्थमें भगवान् सूर्यके माहात्म्यका वर्णन किया है। यथा—

'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्चेति श्रवणात्, ईश्वर स्यैवायमवताराकारः सूर्य इति। अर्थात्—अव्याहत स्वरूपस्य परमात्मनः सर्वेषां जीवनप्राणस्वरूपिणः सर्वसुखदायकस्य च सचराचरजगदुत्पादकस्य प्रकाशमानस्य सूर्यरूपेश्वरस्य तत्प्रसिद्धं सर्वश्रेष्ठं सर्वाभिलषणीयं पापभञ्जकं तेजो वयं ध्यायेमहि, यः सूर्योऽस्माकं बुद्धीरसन्मार्गान्निवृत्य सन्मार्गे प्रेरयति।'

'स्थावर जङ्गम सम्पूर्ण जगत्के आत्मा सूर्य ही हैं' इस प्रकार भगवान् सूर्य ईश्वरावतार ही हैं, अर्थात् अव्याकृतस्वरूप, परमात्मरूप, सर्वप्राणियोंके जीवनका हेतुरूप और प्राणस्वरूप एवं सबको सुख देनेवाले, सचराचर जगत्के उत्पादक सूर्यरूप ईश्वरका सबसे श्रेष्ठ और पापका नाश करनेवाले तेजका हम ध्यान करते हैं। वे भगवान् सूर्य हमारी बुद्धियोंको असन्मार्गसे निवृत्त करके सन्मार्गमें प्रेरणा करते हैं।'

निष्कर्ष यह कि परमात्मस्वरूप सबका जीवनरूप और सर्वजगत्का उत्पादक ईश्वराकार भगवान् सूर्य ही सबके उपास्य देव हैं। उनकी शास्त्रविधिसे नित्य उपासना करनी चाहिये।

सूर्य दर्शनका तान्त्रिक अनुभूत प्रयोग

(लेखक—पं० श्रीकैलाशचन्द्रजी शर्मा)

सभी तन्त्र-रसिकजन तन्त्रग्रन्थोंमें शिरोमणि दत्तात्रेय तन्त्रके महत्त्व तथा उपयोगितासे परिचित हैं। योगिराजने इस ग्रन्थरत्नमें तन्त्रविद्याके अत्युत्तम एवं लाभदायक प्रयोग बताये हैं। तन्त्र-प्रयोग यद्यपि केवलमात्र अधिकारी तान्त्रिकोंको ही प्रदातव्य होते हैं, अतः उनसे सम्बद्ध ग्रन्थोंको सामान्यतः गुप्त रखनेका ही प्रयत्न किया जाता है, तथापि भगवान् सूर्यके दर्शनका यह तान्त्रिक प्रयोग पाठकोंके लाभार्थ यहाँ दिया जा रहा है। उक्त प्रयोग दत्तात्रेय-तन्त्रके एकादश पटलमें निम्न प्रकारसे बताया है—

> मातुलुङ्गस्य बीजेन तैलं ग्राह्यं प्रयत्नतः।
> लेपयेत्ताम्रपात्रे च तन्मध्याह्ने विलोकयेत्॥
> रथेन सह साकारो दृश्यते भास्करो ध्रुवम्।
> विना मन्त्रेण सिद्धिः स्यात् सिद्धयोगउदाहृतः॥

'बिजौरा नींबूके तैलको यत्नसे निकालकर ताम्रपत्र पर लेप करके मध्याह्न-समय उस ताम्रपत्रको सूर्यके सम्मुख रख कर देखे। इससे रथसहित सूर्यका पूर्ण आकार निश्चय ही दीख पड़ेगा। यह बिना मन्त्रका सिद्ध प्रयोग कहा गया है।'

काशीकी आदित्योपासना

(लेखक—प्रा० श्रीगोपालदत्तजी पाण्डेय, एम्० ए०, एल्० टी०, व्याकरणाचार्य)

भारतीय उपासना-पद्धतिमें सूर्यका स्थान अतीव प्रभावकारी है। वैदिक वाङ्मयसे लेकर पुराणोंतक आदित्यकी श्रेष्ठता एवं उनके स्वरूपका विवेचन विशद रूपमें उपलब्ध होता है। सूर्यका एकमात्र प्रत्यक्षरूप उनके वैशिष्ट्यका प्रतिपादक है। उनके ही प्रकाशसे सारा भौतिक जगत् प्रकाशमान होता है। वे ही प्राणिमात्रके उद्बुद्ध होनेमें कारण हैं। उनके उदित होते ही सभी प्राणी क्रियाशील हो जाते हैं। वे ही स्थावर और जङ्गम प्राणियोंको जीवन्त बनाते हैं—'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च' (ऋ० १। ११५। १)। प्रत्यक्ष रूपमें यह जगत् सूर्यके आश्रित है। इसका कारण यह है कि सूर्य आठ महीनोंतक अपनी किरणोंसे छहों रसोंसे विशिष्ट जलको ग्रहणकर उसे सहस्र-गुणित करके चार महीनोंमें वर्षाके द्वारा संसारको ही अर्पित कर स्वयंको ऋणमुक्त कर लेते हैं। वर्षाका यह जल जन जीवनके लिये अमृततुल्य है। इसी दृष्टिसे वायु और ब्रह्माण्डपुराणोंमें सूर्यको भी 'जीवन' नाम दिया गया है। ऋग्वेदमें भी सूर्यको जगत्‌का आधार माना गया है। उनकी तेजस्विता ही जगत्‌को आलोकित कर, अहर्निश एकरूपता प्राप्त करती हुई जीव और जगत्‌के नेत्रोंका रूप धारण कर लेती है।[१]

सूर्यके अनेक पर्यायवाची नाम हैं। उनमेंसे नाम 'आदित्य' भी है। सामान्यतया 'आदित्य' शब्दसे प्रकारके अर्थोंका बोध होता है—एक अदितिकी संतति और दूसरा आदित्यकी संतति। इस प्रकार 'आदित्य' शब्द अपत्यवाचक है। अदिति (कश्यप-पत्नी) देवमाता हैं। सब देवता उन्हींकी संतति माने जाते हैं। उन्हींमेंसे एक आदित्य भी हुए[३]। लोक और वेदमें 'सूर्य' नामसे उन्हींका प्रतिपादन होता है। वेदमें सात आदित्योंका उल्लेख मिलता है। वे क्रमशः—मित्र, अर्यमा, भग, वरुण, दक्ष, अंश तथा मार्तण्ड हैं। शतपथ ब्राह्मणमें एक स्थानपर मार्तण्डको सम्मिलित कर उनकी संख्या आठ बतलायी गयी है[४]। साथ ही दूसरी जगह वहीं द्वादश आदित्योंका भी उल्लेख मिलता है, किंतु उनके नामोंका उल्लेख नहीं किया गया है[५]। आगे चलकर विष्णु, वायु, ब्रह्माण्ड और मत्स्यपुराणोंमें द्वादशादित्योंको विष्णु, इन्द्र, अर्यमा, धाता, त्वष्टा, पूषा, विवस्वान्, सविता, मित्र, वरुण, अंशु तथा भग नामोंसे अभिहित किया गया है। इन नामोंसे मत्स्यपुराणके यम और अंशुमान्—ये दो विशिष्ट शब्दोंमें भिन्नता दिखायी देती है। सूर्यके पर्यायवाची 'आदित्य' शब्दका अर्थ पुराणोंमें विष्णुकी शक्तिसे सवलित हो आदित्यगणके रूपमें परिवर्धित हो गया है। तदनुसार ये आदित्यगण सूर्यके मण्डलको तेजोयुक्त बनाते हैं[६]। ...

१ सूर्यस्य चक्षू रजसैत्यावृतं तस्मिन्नार्पिता भुवनानि विश्वा। (ऋ० १। १६४। १४)

२ उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्यम्॥ (ऋ० १। ५०। १)

३ सप्त दिशो नाना सूर्याः सप्त होतार ऋत्विजः। देवा आदित्या ये सप्त तेभिः सोमाभि रक्ष न इन्द्रायेन्दो परि स्रव (ऋ० ९। ११४। ३)

४ अष्टौ ह वै पुत्रा अदितेः। यांस्त्वेतद्देवा आदित्या इत्याचक्षते सप्त हैव तेऽविकृतं हाष्टमं जनयांचकार मार्ताण्डं ह देवो देवास यावानेवाप्त स्तावांस्तिर्यङ् पुरुषसम्मित इत्यु हैक आहुः॥ (श० ब्रा० ३। १। ३। ३)

५ स मनसैव वाचं मिथुनं समभवत्। स द्वादश द्रप्सान् गर्भ्यभवत् ते द्वादशादित्या असृज्यन्त तान् दिक्षुपादधात्। (श० ब्रा० ६। १। २। ८)

६ सूर्यमापादयन्त्येते तेजसा तेन उत्तमम्॥ (मत्स्यपुराण १२६। २)

प्रकार आदित्यगण देवपदको प्राप्तकर सूर्यके सहचर तथा सहयोगी ही नहीं रहे, अपितु आगे चलकर उनका तादात्म्य भी सूर्यसे स्थापित हो गया।

सूर्यकी उपासनाके अनेक प्रकार हैं। प्रथम परम्पराप्राप्त अङ्गके रूपमें और द्वितीय साक्षात् प्रधानके रूपमें वे पूजित होते हैं। स्मार्त देव-उपासनामें पञ्चदेव (पाँच देवता) पूजित होकर शिव, विष्णु, देवी, गणेश तथा सूर्यको मान्यता प्रदान करते हैं। इनमेंसे प्रत्येक अपनेको मध्यमें रख अवशिष्ट चारोंको दिगन्तरालोंमें स्थापित करवा कर अर्चनाके स्तरोंको उदात्त करते हैं। साधनाके क्षेत्रमें शिव, शक्ति एवं विष्णुका अधिकतर प्राधान्य है। उसमें भी विष्णु पालनकर्ताके रूपमें अधिक व्यापक हैं। आदित्य भी इस दृष्टिसे विष्णुकी कोटिमें समाविष्ट होते हैं, क्योंकि उनका क्षेत्र अखिल विश्व है। वे प्रतिदिन विश्वका भ्रमण कर अखिल ब्रह्माण्डमें व्याप्त रहते हैं[1]। इस प्रकार सूर्यके दैवी तत्त्वका परिचिन्तन भारतीय पूजा-पद्धतिकी विशेष विधा रही है। सूर्यके दैवी तत्त्वके साथ ही इसके उपासना-तत्त्वका सूत्रपात हुआ है।

आदित्योपासनाका वैदिक स्वरूप स्वाभाविक एवं सरल था। इसका आभास अब भी प्रातः उठते ही उदयोन्मुख सूर्यको नमस्कार करना एवं स्नानसे निवृत्त हो अर्घ्य प्रदान आदि क्रिया-कलापमें प्रवृत्त होना उसकी स्वाभाविकता-का स्मरण दिलाते हैं। भक्तिका यह प्रकार श्रीमन्त एवं निर्धन—दोनोंके लिये समान है। आगे चलकर सौर सम्प्रदायमें प्रतिमा-प्रतिष्ठा तथा देवालयनिर्माणका सन्निवेश किन परिस्थितियोंमें हुआ—यह विचारणीय विषय रहा है। पिछली पङ्क्तियोंमें यह संकेत किया जा चुका है कि वैष्णव, शैव तथा शाक्त—इन सबकी उपासनामें अन्य देवता इनके अङ्ग थे। ऐसी परिस्थितिमें सूर्योपासकोंमें सूर्यकी पूजाका माध्यम सूर्यकी दृश्यमान आकृतिसे साम्य रखनेवाला चिह्न चक्र (मण्डल) स्वीकार किया गया तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। इस चक्रके स्वरूपकी प्रेरणा पुराणोंमें निरूपित सत्राजित्के आख्यान से मिलती है। तदनुसार सत्राजित्की उपासनासे संतुष्ट होकर सूर्य अग्निज्वालासे परिवेष्टित वृत्तकी आकृतिमें प्रकट हुए थे। सत्राजित्ने सूर्यसे वास्तविक स्वरूपको प्रकट करनेका आग्रह किया। तत्पश्चात् सूर्यने स्यमन्तक मणि हटाकर अपना दर्शनीय कलेवर दिखाया। यह रूप लोहित-ताम्रवर्णात्मक था तथा नेत्र भी लाल थे। साम्बपुराणके अनुसार सूर्यके प्रचण्ड रूपको न सह सकनेके कारण उनकी पत्नी संज्ञाके तथा ब्रह्माके निवेदन करनेपर विश्वकर्माने सूर्यकी तेजोमय आकृतिमें काट-छाँट कर दिया। पर चरणोंका तेज वैसे ही रहने दिया। अतएव पुराणोंमें यह निर्देश मिलता है कि सूर्यकी प्रतिमा बनाते समय उनके चरणोंका अनावृत प्रदर्शन नहीं करना चाहिये। इस प्रकारकी कल्पनाका सामञ्जस्य शतपथ ब्राह्मणमें वर्णित सूर्यके 'पराक्रम' को स्पष्ट करते हुए चरणोंके अभावमें भी गतिशील रहने की विशेषताद्वारा प्रकट करना है[2]। इस परिप्रेक्ष्यमें सूर्यके विग्रह अधिकतर मण्डलात्मक अथवा अष्टदल-कमलके मध्यस्थित चक्रके रूपमें ही दृष्टिगोचर होते हैं। आकृति विशेषसहित विग्रह विरले ही हैं। कहीं जो हैं, वे भी अनावृत चरणोंके प्रदर्शनसे रहित ही हैं। रथारूढ सूर्यकी कल्पनामें भी उनका स्वरूप मण्डलाकृति प्रधान ही अङ्कित मिलता है। पूजा-पद्धतिमें सूर्यका ध्यान भी इसी रूपमें वर्णित है।

---

१ आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च। हिरण्ययेन सविता रथेनाऽऽदेवो याति भुवनानि पश्यन्॥
(ऋ० १।३५।२)

२ यदिद या अप्यपाद्भवति अल्पमेव प्रतिक्रमणाय भवत्यु-पापरका हृदयाविपर्यमिदिति तदेन स्वरसाद् इत्यादेनम् अन प्रभृति॥ (श० ब्रा० ४।४।५।५)

काशीमें प्रधानतया शिवकी उपासना की जाती है। यह अविमुक्त क्षेत्र है। द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंमेंसे एक 'विश्वेश्वर' नामक शिवका यह पूजा-स्थल है। कहा जाता है कि भगवान् शंकरके त्रिशूलपर बसी यह नगरी कभी ध्वस्त नहीं होती। शैव-धर्मके अतिरिक्त यहाँ शक्ति तथा विष्णुकी उपासना भी उसी तरह होती है। काशीकी उपासनाके विषयमें 'काशीखण्ड'से विशेषरूपमें संकेत प्राप्त होते हैं। तदनुसार काशीमें शिवपीठ, देवीपीठ, विष्णुपीठ, विनायकपीठ, भैरवपीठ, षडाननपीठ और आदित्यपीठ आदि अनेक देवस्थान हैं, जहाँ भक्तगण प्रतिदिन पूजा-अर्चामें संलग्न रहते हैं। काशीके आदित्य-पीठ भी अपनी ऐतिह्य विशेषता लिये आज भी लोकमानसमें प्रतिष्ठित हैं। इनमेंसे कुछ तो अब अपना अस्तित्व खो बैठे हैं—केवल उनके स्थानकी पूजा होती है। कुछ अपने स्थानको परिवर्तित कर केवल 'महत्त्व बनाये हुए हैं। काशीखण्डमें बारह आदित्यपीठोंका उल्लेख मिलता है। इसके अनुसार जगत्के नेत्र सूर्य स्वयं बारह रूपोंमें विभक्त होकर काशीपुरीमें व्यवस्थित हुए*। इनका उद्देश्य अपने तेजसे नगरकी रक्षा करना है। जिस प्रकार नगरके परीरक्षण करनेमें गणेश और भैरव प्रत्येक दिशामें स्थापित किये जाते हैं, उसी प्रकार आदित्यकी द्वादश मूर्तियाँ काशी क्षेत्रमें दुष्टोंके दलन करनेमें अग्रसर रही हैं। इन द्वादशपीठोंके अतिरिक्त सुमन्तादित्य तथा कर्णादित्यके अन्य विग्रह भी उपलब्ध होते हैं। आदित्योपासनाका प्रमुख उद्देश्य स्वास्थ्यकी रक्षा करना है। उसमें भी विशेषतया रक्तदोष जनित रोगोंको शमन करना है। अतः रविवारके व्रतमें नमक, उष्ण जल एवं दूध वर्जित हैं। शास्त्रोंमें सूर्योदयसे पूर्व शीतल जलसे स्नान करके पूजन करनेका विधान है। पौष मासके रविवार सूर्यकी उपासनाके लिये विशेषरूपमें ग्राह्य हैं। वैसे प्रत्येक रविवारको सूर्यकी पूजा होती ही है। काशीके आदित्योपासनाके द्वादश पीठोंमें प्रमुख लोलार्कका वर्णन 'कृत्यकल्पतरु'में प्राप्त होता है। उसमें अन्य पीठोंका उल्लेख नहीं है। ऐसा विदित होता है कि लोलार्ककी मान्यता काशीके आदित्यपीठोंमें सर्वाधिक रही है। तदनुसार आदित्यपीठोंमें लोलार्कका स्थान सर्वप्रमुख रहा है, इस बातकी पुष्टि वामनपुराणके इस कथनसे भी होती है कि वाराणसीमें तीन देवता हैं—'अविमुक्तेश्वर, केशव तथा लोलार्क।' लोलार्कका स्थान वर्तमान भदैनी मुहल्लेमें स्थित है। यहीं तुलसीघाट भी है। लोलार्क प्रभृति आदित्यपीठोंका वर्णन क्रमशः इस प्रकार है—

(१) लोलार्क—यह आदित्यपीठ वाराणसीके आदित्यपीठोंमें मूर्धन्य है। इसका प्रमुख कारण यह है कि इससे सम्बद्ध एक कुण्ड भी है, जिसे 'लोलार्क-कुण्ड' कहा जाता है। इस कारण लोलार्कको तीर्थकी महत्ता भी प्राप्त है। असि-संगमके समीप होनेके कारण लोलार्क-कुण्डका जल गङ्गामें मिल जानेके बाद उत्तरवाहिनी गङ्गाके तटीय अन्य तीर्थोंमें पहुँचता है।† प्राचीनकालमें लोलार्क-कुण्डका संगम गङ्गासे होता था। वर्तमान समयमें यह कुण्ड ऊँचे कगारपर है और इसका जल फव्वारा द्वारा गङ्गामें एक सुरंगके द्वारा गङ्गामें पहुँचता है। देवपूजनका माहात्म्य उसके तटवर्ती समीपस्थ जलाशयमें स्नान करनेके बाद अधिक पुण्यजनक माना गया है।

---

* इति काशीप्रभावज्ञो जगच्चक्षुस्तमोनुदः। कृत्वा द्वादशधात्मानं काशिपुर्यां व्यवस्थितः ॥
लोलार्क उत्तरार्कश्च साम्बादित्यस्तथैव च। चतुर्थो द्रुपदादित्यो मयूखादित्य एव च ॥
खखोल्कश्चारुणादित्यो वृद्धकेशवसंज्ञकौ। दशमो विमलादित्यो गङ्गादित्यस्तथैव च ॥
द्वादशश्च यमादित्यः काशिपुर्यां घटोद्भव। तमोऽधिकेभ्यो दुष्टेभ्यः क्षेत्रं रक्षन्त्यमी सदा ॥

† सर्वेषां काशितीर्थानां लोलार्कः प्रथमं शिरः। ततोऽङ्गान्यन्यतीर्थानि तज्जलप्लावितानि हि ॥

(का० खं० ४६। ५६)

ऐसे जलाशय, कुण्ड और ह्रद आदि भौम-तीर्थोंकी कोटिमें आते हैं। इस कारण तत्सम्बद्ध जलाशय और उसके समीपस्थ देवस्थान एक-दूसरेके पूरक हो जाते हैं। लोलार्ककुण्डकी प्रख्यातिसे प्रभावित हो महाराज गोविन्दचन्द्रने यहाँ स्नानकर ग्राम-दान किया था।*

'लोलार्क' नामकरणके सम्बन्धमें वामनपुराणमें वर्णित सुकेशिचरितका उपाख्यान अविस्मरणीय है। तदनुसार 'सब दानव सुकेशीके उपदेशसे आचारसम्पन्न, धनधान्य एवं सतनियुक्त हो सुख प्राप्त करने लगे। उनके वर्चस्वसे सूर्य, चन्द्रमा एवं नक्षत्र भी श्रीहत हो गये। यहाँतक कि लोक निशाचरोंसे प्रभावित हो गया। वह निशाचर-नगरी दिनमें सूर्यके समान तथा रात्रिमें चन्द्रमाके सदृश प्रतीत होने लगी। इन राक्षसोंके इस कुकृत्यसे क्रोधाविष्ट हो भगवान् सूर्यने उस नगरीको देखा। सूर्यकी प्रखर किरणोंके प्रभावसे वह नगरी इस प्रकार ध्वस्त हुई, जैसे आकाशसे गिरता हुआ कोई ग्रह हो। नगरको गिरता हुआ देखकर सुकेशी राक्षसने शिवका स्मरण किया। सब राक्षसोंके हा-हा क्रन्दन (आर्तनाद) तथा आकाश-विहारी चारणोंके—'हरभक्तका नाश होने जा रहा है'—इस वाक्यको सुनकर भगवान् शंकर विचारमग्न हो गये। इस राक्षसपुरीको सूर्यने नीचे गिरा दिया है—यह जानकर भगवान् शंकरने क्रुद्ध हो सूर्यको आकाशसे नीचे गिरा दिया। सूर्यके वाराणसीमें नीचे गिरते ही स्वयं ब्रह्मा और इन्द्र अन्य देवताओंके साथ मन्दराचल पर्वतपर गये। वहाँ भगवान् शंकरको प्रसन्न करके पुनः वाराणसीमें सूर्यको ले आये†। इस प्रकार शिवने प्रसन्न होकर अन्तरिक्षसे विचलित हुए सूर्यको अपने हाथसे उठाकर उनका नाम 'लोलार्क' रख उन्हें रथपर बैठाया।' काशीखण्डमें यह उपाख्यान दूसरी तरह वर्णित हुआ है। उसके अनुसार राजा दिवोदासको धर्मच्युत कर वाराणसी नगर उनके हाथसे छीन लेनेके लिये भगवान् शंकरने योगिनियोंको भेजा था। वे इस कार्यमें असफल रहीं। अन्तमें शिवने सूर्यको भेजा। उन्हें भी कठिनाइयाँ हुईं। अनेक रूप धारण करने पड़े। प्रथम रूप उन्होंने लोलार्कका धारण किया। काशीकी विशालता या मतान्तरसे शिवके कोपसे उनका मन चञ्चल हो उठा, अतः वे लोलार्क कहलाये। इसीके साथ यह स्थान भी लोलार्क कहलाया एवं कुण्ड भी उसी नामसे प्रसिद्ध हुआ।

---

* द्रष्टव्य—पं० श्रीकुबेरनाथ सुकुल कृत—'वाराणसी-वैभव' पृ० ७३।

† ततः सुकेशिवचनात् सर्व एव निशाचराः। तेनोदितं तु ते धर्मं चक्रुर्मुदितमानसाः ॥
ततः प्रवृद्धिं सुतरामगच्छन्त निशाचराः। पुत्रपौत्रार्थसंयुक्ताः सदाचारसमन्विताः ॥
ततस्त्रिभुवनं ब्रह्मन् निशाचरपुरोऽभवत्। दिवा सूर्यस्य सदृशं क्षणदायां च चन्द्रवत् ॥
तद् भानुना तदा दृष्टं क्रोधाध्मातेन चक्षुषा। निपपाताम्बराद् दृष्टं क्षीणपुण्य इव ग्रहः ॥
पतमानं समालोक्य पुरं शालकटंकटः। नमो भवाय शर्वाय इदमुच्चैरुदीरयत् ॥
तदाक्रन्दं च शर्वः श्रुतवान् सर्वतोऽव्ययः। श्रुत्वा स चिन्तयामास केनासौ पात्यते भुवि ॥
ज्ञातवान् देवपतिना सहस्रकिरणेन तत्। पातितं राक्षसपुरं ततः क्रुद्धस्त्रिलोचनः ॥
क्रुद्धस्तु भगवान् दृग्भिर्भानुमन्तमपश्यत। दृष्टमात्रस्त्रिनेत्रेण निपपात ततोऽम्बरात् ॥
ततो ब्रह्मा सुरपतिः सुरैः सार्धं समभ्ययात्। रम्यं महेश्वरावासं मन्दरं रविकारणात् ॥
गत्वा दृष्ट्वा च देवेशं शंकरं शूलपाणिनम्। प्रसाद्य भास्करार्थाय वाराणस्यामुपानयत् ॥
ततो दिवाकरं भूयः पाणिनादाय शंकरः। कृत्वा नामास्य लोलेति रथमारोपयत् पुनः ॥
आरोपिते दिनकरे ब्रह्माभ्येत्य सुकेशिनम्। सबान्धवं सनगरं रथमारोपयद्दिवि ॥
(वामनपु० अ० १५)

मार्गशीर्ष शुक्ला षष्ठी अथवा सप्तमीको 'रविवारका योग होनेपर लोलार्क-दर्शनका विशेष माहात्म्य है।'[1] आजकल यहाँकी वार्षिक यात्रा भाद्रपद शुक्ला षष्ठीको सम्पन्न होती है। व्याधिग्रस्त स्त्री पुरुष एवं निःसतान स्त्रियाँ लोलार्क-षष्ठीके दिन लोलार्ककुण्डमें स्नान कर गीले वस्त्र वहीं छोड़ देतीं और लोलार्ककी अर्चना-वन्दना कर इच्छित वरदान माँगती हैं। सूर्यपीठ होनेके कारण प्रति रविवारको भी यहाँ पूजन करनेका माहात्म्य है।[2] लोलार्क-तीर्थको काशीका नेत्र माना गया है। यह तीर्थ नगरके दक्षिणभागमें स्थित होनेके कारण दक्षिणी भागका रक्षक कहा गया है। दक्षिणसे प्रवेश करनेवाले समस्त पापोंका यह तीर्थ अवरोध करता है। नगरके दक्षिण भागकी विशेषता गङ्गा-असि-सङ्गमके साथ लोलार्ककी स्थितिके कारण अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाती है।

२-उत्तरार्क—वाराणसीकी उत्तरी सीमाका सूर्यपीठ उत्तरार्क है। इससे सम्बद्ध जलाशय उत्तरार्क-कुण्डके नामसे विख्यात था।[3] वर्तमान समयमें यह बकरिया-कुण्ड कहलाता है। कदाचित् यह बालार्क-कुण्डका ही अपभ्रंश है। इसकी वर्तमान स्थिति पूर्वोत्तर रेलवे स्टेशन अलईपुर (वाराणसी नगर) के समीप ही है। मुसल्मानोंके आधिपत्यके प्रारम्भमें ही यह सूर्यपीठ नष्ट हो गया था, उसका पुनः निर्माण अबतक नहीं हुआ। उत्तरार्ककी मूर्ति लुप्त है। केवल उसके स्थानकी पूजा होती है। अब इसपर मस्जिद-मजार बने हुए हैं। इन भवनोंमें प्रयुक्त पत्थरोंपर अङ्कित चिह्नोंको देखकर प्रतीत होता है कि प्राचीन कालमें यहाँ विहार तथा मन्दिर विद्यमान रहे हों।

पौष मासके रविवार यहाँकी यात्राके लिये प्रशस्त माने गये हैं।[4] यह क्रम अब समाप्त हो गया है। इसके विपरीत अब यहाँ ज्येष्ठके रविवारोंको गाजीमियाँका मेला लगता है।

काशीखण्डके अतिरिक्त 'आदित्यपुराण'में उत्तरार्कका माहात्म्य बड़े विस्तारके साथ वर्णित है। इस उपाख्यानके अनुसार जाम्बवतीके पुत्र साम्बने अपने पिता कृष्णसे यह निवेदन किया कि आप सूर्योपासनाका ऐसा उपाय बतलायें कि लोग व्याधिनिर्मुक्त हो सुखी जीवन व्यतीत करें, क्योंकि मैंने सूर्यकी अर्चना कर महारोग (चर्मरोग) से मुक्ति पायी है। इसके उत्तरमें श्रीकृष्णने कहा कि क्षेत्र भेदसे भगवान् सूर्य विशेष फलदायक होते हैं।[5] इसी प्रकार वाराणसीमें उत्तरार्क विशेषरूपसे व्याधिनाशक हैं। दैत्योंद्वारा देवताओंके पराजित किये जानेपर 'अदिति-के गर्भसे मार्तण्ड उत्पन्न हुए। सब देवोंके मित्र होनेके कारण उन्हें मित्र भी कहा गया। ये ही सूर्य, ज्योतिः, रवि और जगच्चक्षु आदि नामोंसे सम्बोधित किये गये।

---

१ मार्गशीर्षस्य सप्तम्यां षष्ठ्यां वा रविवासरे। विधाय वार्षिकीं यात्रां नरः पापैः प्रमुच्यते॥
(का० ख० अ० ४६)

२ प्रत्यर्कवारं लोलार्कं यः पश्यति शुचिव्रतः। न तस्य दुःखं लोकेऽस्मिन् कदाचित् सम्भविष्यति॥
(वही ४६।५६)

३ अथोत्तरस्यामाशायां कुण्डमर्काख्यमुत्तमम्। तत्र नाम्नोत्तरार्केण रश्मिमाली व्यवस्थितः॥
(वही ४७।१)

४ उत्तरार्कस्य देवस्य पुष्ये मासि रवेर्दिने। कार्या सांवत्सरी यात्रा नरैः काशीफलेप्सुभिः॥
(वही ४७।५७)

५ यद्यप्यविशेषेण हि सर्वत्रैव दिवाकरः। तथापि क्षेत्रभेदेन फलदो हि रविः स्मृतः॥
यथा शुक्तिषु मुक्ताश्च विशेषं विषयेषु च। एकमेव जलं मेघे स्वातौ मुक्ता प्रपद्यते॥
(आदित्यपुराण)

दुखी देवताओंने सूर्यकी प्रार्थना की। उनकी प्रार्थना सुनकर सूर्यने कहा—'मैं दानवोंका संहार करनेके लिये दृढ़ एवं अजेय शस्त्रोंको उत्पन्न करूँगा।' ध्यानमग्न हो सूर्यने स्वकीय तेजसे पूरित शिलाको उत्पन्न कर देवताओंसे उसे वाराणसीके उत्तर भागमें ले जानेको कहा। इसके साथ ही वरुणाके दक्षिण तटपर विश्वकर्माने उस शिलासे सर्वलक्षणसम्पन्न उत्तरार्ककी दिव्य प्रतिमा बनायी। शिलाके गढ़े जानेपर पत्थरोंके टुकड़ों (शस्त्रों) द्वारा देव-सेनाको सुसज्जितकर दैत्योंपर विजय प्राप्त की। वहाँ शिलाके अवघर्षण (रगड़)से जो गड्ढा बना, वह जलाशय 'उत्तरमानस' के नामसे प्रख्यात हुआ। उसमें स्नानकर देवताओंने रक्त चन्दनयुक्त करवीर (कनेल) के पुष्प तथा अक्षत आदिसे उत्तरार्ककी पूजा की। इस पूजनके फल-स्वरूप उत्तरार्कने देवोंको अजेय होनेका वर दिया तथा अपनी उत्पत्तिके विषयमें यह कहा कि पौष मासकी सप्तमी तिथि, रविवार, उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें मेरा जन्म हुआ है[2]। सूर्यकी कृपाके फलस्वरूप देवोंने उत्तरार्कके पूर्वमें गणेश, दक्षिणमें क्षेत्रपाल तथा भैरव और पश्चिममें 'उत्तर-मानसरोवर' स्थापित किये। यह 'मानसरोवर' जल-रूपमें सूर्यकी शक्ति 'छाया' मानी गयी[3]। इसके उत्तरमें स्वयं उत्तरार्क विराजमान हैं। उनकी बायीं ओर 'धर्मकूप' बनवाया गया।

आदित्यपुराणमें वर्णित उत्तरार्क तथा उसके समीपवर्ती पूजा-स्थलोंका विशद परिचय प्राप्त होता है। इस कथानकसे यह अभिव्यञ्जित होता है कि एक बार तो इस स्थलके विध्वंसक पराजित हो गये हैं। यहाँके आक्रमणोंके सम्बन्धमें इतिहास इस बातका साक्षी है कि सन् १०३४-३५ ई०के आसपास सालार मसऊद गाजी (जो गाजीमियाँके नामसे प्रसिद्ध रहे) के आदेशसे उनके सेनापति मलिक अफजल अल्वीकी सेना वाराणसीमें प्रथम बार पराजित हो गयी थी। ११९४ ई० के बादसे जब कुतुबुद्दीन ऐबककी सेनाने वाराणसीकी सेनापर विजय प्राप्त कर राजघाटका किला ढहा दिया, तभी अनेक मठ-मन्दिरोंका भी विध्वंस हुए। उस समयके विध्वस्त मन्दिरोंमें 'उत्तरार्क' (बकरियाकुण्ड) का मन्दिर भी है। इस क्षेत्रके आसपासकी विध्वस्त मूर्तियोंमेंसे बकरियाकुण्डसे प्राप्त गोवर्धनधारी कृष्णकी गुप्तकालीन विशाल मूर्ति 'कला-भवन' में सुरक्षित है[4]। इस वर्णनसे आदित्यपुराणमें वर्णित यहाँपर अनेक देवस्थानोंके होनेका प्रमाण परिपुष्ट होता है। (क्रमशः)

आदित्यके प्रातःस्मरणीय द्वादश नाम

आदित्यं प्रथमं नाम द्वितीयं तु दिवाकरः। तृतीयं भास्करः प्रोक्तं चतुर्थं तु प्रभाकरः॥
पञ्चमं तु सहस्रांशुः षष्ठं त्रैलोक्यलोचनः। सप्तमं हरिदश्वश्च अष्टमं च विभावसुः॥
नवमं दिनकरः प्रोक्तो दशमं द्वादशात्मकः। एकादशं त्रयोमूर्तिर्द्वादशं सूर्य एव च॥

(—आदित्यहृदयम्।०)

---

१ घटनाद्दृषदां येन या खनिः समपद्यत। सरः समभवत् तत्र नाम्ना चोत्तरमानसम्॥
शिलाकणाणुभिः शुद्धं व्याधिनाशनहेतुभिः। पूरितं स्वच्छमम्भोभिर्भास्करस्येव मानसम्॥

२ अथ पौषस्य सप्तम्यामर्कवारे ममोद्भवः। अभूदुत्तरफाल्गुन्यां नक्षत्रे भगदैवते॥
(आदित्यपुराण)

३ ज्योत्स्ना छायेति तामाहुः सूर्यशक्तिं महाप्रभाम्। अपां रूपेण सा तत्र स्थिता सरसि मानसे॥
(आदित्यपुराण)

४ द्रष्टव्य—पं० कुबेरनाथ सुकुलकृत 'वाराणसी-वैभव' पृष्ठ २८०-२८१।

भगवान् सूर्यदेव और उनकी पूजा-परम्पराएँ

(लेखक—डॉ० श्रीसर्वानन्दजी पाठक, एम्०ए०, पी-एच्० डी०(द्वय), डी० लिट्०, शास्त्री, काव्यतीर्थ, पुराणाचार्य)

किसी भी राष्ट्रका अस्तित्व उसकी अपनी संस्कृतिपर ही मुख्यतया आधारित रहता है। संस्कृतिके ही अस्तित्व और अनस्तित्वसे राष्ट्र उत्थान-पतनकी अवस्थामें रहता है। जहाँ संस्कृतिकी अपेक्षा रहती है, वहीं राष्ट्र सार्वत्रिक रूपसे उन्नतिकी ओर निरन्तर प्रगतिशील रहता है और तद्विपरीत जहाँ प्रशासनमें अपनी संस्कृतिकी उपेक्षा होने लगती है, वहाँ उस राष्ट्रका पतन भी अवश्यम्भावी है—चाहे वह क्रमिक हो या आकस्मिक, पर उसका ऐसा होना निश्चित है। भारतका राष्ट्रिय उत्थान तो एकमात्र सांस्कृतिक अनुष्ठानपर ही आधारित रहता आ रहा है। आजसे ही नहीं, सनातनकालसे इतिहास ही इसका मुख्य साक्षी है। भारतीय संस्कृतिकी आधारशिला है वर्णाश्रम-धर्मका पालन। ब्राह्मणादि वर्णचतुष्टय एवं ब्रह्मचर्यादि आश्रमचतुष्टयका अभिप्रेत है ऐहिक अभ्युदयकी प्राप्ति तथा आमुष्मिक निःश्रेयसकी उपलब्धि—आत्माकी परमात्मामें एकाकारता और इन दोनों उपलब्धियोंका एकमात्र साधन है—भगवदुपासना। भगवदुपासनाके दो प्रकार हैं—सगुण-साकाररूपात्मक तथा निर्गुण निराकाररूपात्मक, पर इस उपलब्धिद्वयके लिये तदुपासना है परम अनिवार्य—'नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय'। अनुभवी एवं सिद्ध उपासकोंके मतसे निर्गुण-निराकारोपासनाकी अपेक्षा सगुण-साकारोपासना सरलतर है और यह अभ्युदय तथा निःश्रेयस् दोनों उपलब्धियोंके लिये प्रथम सोपान है। प्रथम सोपानपर दृढमूल हो जानेपर अग्रिम पथ सुगम हो जाता है। निष्ठा एवं श्रद्धापूर्ण आचरणसे लक्ष्यकी प्राप्तिमें विलम्ब नहीं होता। एतन्निमित्त विश्वासपूर्वक निरन्तर नियमरूपसे अनुष्ठानकी परम आवश्यकता है।

साकारोपासनामें पञ्चदेवार्चन मुख्यतया कर्तव्य है। पञ्चदेवोंमें सूर्य, गणेश, शक्ति, शिव और विष्णु हैं—

आदित्यं गणनाथं च देवीं रुद्रं च केशवम्।
पञ्चदैवतमित्युक्तं सर्वकर्मसु पूजयेत्॥
(संस्कृत-शब्दार्थ-कौस्तुभ, पृ० ६२५)

सूर्य इन पाँच देवताओंसे अन्य हैं और नवग्रहदेवोंमें इनका प्रथम स्थान है।

आधुनिक कोशकारोंके मतानुसार सूर्य सौरमण्डलका एक प्रधान पिण्ड या जाज्वल्यमान तारा है, जिसकी पृथ्वी, सौर-मण्डलके अन्यान्य ग्रह एवं उपग्रह प्रदक्षिणा करते रहते हैं। साथ ही जो पृथ्वीको प्रकाश और उष्णता मिलनेका साधन तथा उसके ऋतुक्रमका कारण है*।

शब्दशास्त्रीय निरुक्तिके अनुसार सूर्यका व्युत्पत्त्यर्थ होता है—यह एक ऐसा महान् तत्त्व, जो आकाशमण्डलमें अनवरत गतिसे परिभ्रमण करता रहता है—'सरति सातत्येन परिभ्रमत्याकाशे इति सूर्यः'। यह शब्द भ्वादिगणीय 'सृ गतौ' धातुके आगे 'क्यप्' के योगसे निष्पन्न हुआ है†। पौराणिक विवृतिके अनुसार महर्षि मरीचिपुत्र कश्यप ऋषिकी पत्नी दक्षकन्या अदितिके गर्भसे उत्पन्न होनेके कारण सूर्यका एक नाम आदित्य है और यह आदित्य (सूर्य) संख्यामें बारह हैं। यथा—१–शक्र (इन्द्र), २–अर्यमा, ३–धाता, ४–त्वष्टा, ५–पूषा, ६–विवस्वान्, ७–सविता, ८–मित्र, ९–वरुण,

* बृहत् हिन्दीकोश, १२९२ तथा सं० श० कौ०, पृ०१२२४। वस्तुतः ग्रह सूर्यकी परिक्रमा करते हैं और उपग्रह अपने ग्रहकी परिक्रमा करते हैं परंतु दोनोंकी परिक्रमा सूर्यकी परिक्रमा हो जाती है—यही यहाँ अभिप्राय है।

† राजसूयसूर्यमृषोद्यरुच्यकुप्यकृष्टपच्याव्यथ्याः (पा० अ०सू० ३।१।११४)

१०–अंशु, ११–भग और १२–विष्णु[1]। महाभारतमें भी इन्हीं बारह सूर्योंकी मान्यता है[2]। तदनुसार इन्द्र सबसे बड़े हैं और विष्णु सबसे छोटे। भगवान् सूर्यकी उपासना बारह महीनोंमें इन्हीं बारह नामोंसे होती है, जैसे—मधु (चैत्र) में धाता, माधव (वैशाख) में अर्यमा, शुक्र (ज्येष्ठ) में मित्र, शुचि (आषाढ़) में वरुण, नभ (श्रावण) में इन्द्र, नभस्य (भाद्रपद) में विवस्वान्, इष (आश्विन) में पूषा, तपस्य (कार्तिक) में क्रतु या पर्जन्य, सह (मार्गशीर्ष) में अंशु, पुष्य (पौष) में भग, इष (माघ) में त्वष्टा और ऊर्ज (फाल्गुन) में विष्णु[3]। यही भगवान् सूर्यका उपासनाक्रम है। अमरकोषमें सूर्यके एतदतिरिक्त ३१नामोंका उल्लेख है, यथा—१–सूर, २–आदित्य, ३–द्वादशात्मा, ४–दिवाकर, ५–भास्कर, ६–अहस्कर, ७–ब्रध्न, ८–प्रभाकर, ९–विभाकर, १०–भास्वान्, ११–सप्ताश्व, १२–हरिदश्व, १३–उष्णरश्मि, १४–विकर्तन, १५–अर्क, १६–मार्तण्ड, १७–मिहिर, १८–अरुण, १९–द्युमणि, २०–तरणि, २१–चित्रभानु, २२–विरोचन, २३–विभावसु, २४–ग्रहपति, २५–त्विषांपति, २६–अहर्पति, २७–भानु, २८–हंस, २९–सहस्रांशु, ३०–तपन और ३१–रवि। इन नामोंके अतिरिक्त १६ नाम और उल्लिखित हैं—

१–पद्माक्ष, २–तेजसा राशि, ३–छायानाथ, ४–तमिस्रहा, ५–कर्मसाक्षी, ६–जगच्चक्षु, ७–लोकबन्धु, ८–त्रयीतनु ९–प्रद्योतन, १०–दिनमणि, ११–खद्योत, १२–लोकबान्धव, १३–इन, १४–धामनिधि, १५–अंशुमाली और १६–अब्जिनीपति[4]। ऋग्वेदमें १–मित्र, २–अर्यमा, ३–भग, ४–(बहुव्यापक) वरुण, ५–दक्ष और ६–अंश—इन छः नामोंकी चर्चा है[5]।

उपरिसंख्यक सूर्यनामोंका उल्लेख तो औपचारिकमात्र है, यथार्थतया तो सूर्यके नाम अनन्त–असंख्य हैं, क्योंकि सूर्य और विष्णु दोनों अभिन्न तत्त्व हैं। जो विष्णु हैं, वे ही सूर्य और जो सूर्य हैं, वे ही विष्णु, वस्तुतः सूर्य एक ही हैं, किंतु कर्म, काल और परिस्थितिके अनुसार सूर्यके विविध नाम रखे गये हैं—नामी एक, नाम अनेक।

वैदिक साहित्य और सूर्योपासना

पाश्चात्त्य सभ्यताके अनुरागी आधुनिक इतिहासके समर्थक अधिकांश भारतीय विद्वानोंके मतानुसार सूर्योपासना आधुनिक है। उनके मतमें प्राचीन कालमें सूर्य-पूजाका प्रचलन नहीं था। किंतु उन विद्वानोंकी यह धारणा भ्रान्तिपूर्ण है, क्योंकि भारतीय प्राचीन परम्परामें सूर्यके आराधनापरक प्रमाण प्रचुरमात्रामें प्राप्त होते हैं। वेद विश्वके साहित्यमें प्राचीनतम हैं। इस मान्यतामें कदाचित् दो मत नहीं हो सकते हैं। लोकमान्य बाल गङ्गाधर तिलकके मतानुसार ऋग्वेद-संहिताका निर्माण-काल ९,००० वर्षोंसे कमका नहीं है। ऋग्वेदमें सूर्योपासनाके अनेक प्रसङ्ग मिलते हैं[6]। कतिपय प्रसङ्गोंका उल्लेख करना उपयोगितापूर्ण है, यथा—मण्डल १ सूक्त ५० ऋचा १—१३ अनुष्टुप् छन्दोबद्ध है। इसके ऋषि कण्वके पुत्र प्रस्कण्व हैं। इसमें महिमा-गानके द्वारा रोगनिवारणके लिये प्रार्थना की गयी है। पुनः सूक्त ११५, १६४ और १९१ में क्रमशः ऋषि अंगिराके पुत्र कुत्स, उचथ्यके पुत्र दीर्घतमा और अगस्त्य हैं, जिन्होंने सूर्य-महिमाका गान किया है।

मण्डल ५ सूक्त ४० में ऋषि अत्रि हैं। मण्डल ७ सूक्त ६० में ऋषि वसिष्ठ हैं। इसकी एक ही ऋचाके द्वारा सूर्यके अनुग्रहमें यजमानके पापमुक्तिके

---

१ विष्णुपुराण १। १५। १३१–१३३ २ महाभारत, १। ६६। १६ ३ वि० पु० २। १०। ३–१८। ४ अमरकोष १। ३ २८–३०३ तथा (२८–४१) ५. ऋग्वेद ४। २७। १ ६ प० रामगोविन्द त्रिवेदी [:] ऋग्वेदकी भूमिका, पृ० १९।

लिये उनसे प्रार्थना की है। मण्डल ८ में सूक्त १८के ऋषि इरिम्बिठि और छन्द उष्णिक् हैं। इसमें रोगशान्ति, सुखप्राप्ति तथा शत्रुनाशकी प्रार्थना है।

मण्डल ९ में सूक्त ५ के ऋषि पृषध्र हैं। इसमें सूर्यको स्वर्गीय शोभारूप बतलाया गया है। मण्डल १०में सूक्त ३७, ८८, १३६, १७० और १८९ के ऋषि सूर्यपुत्र अभितपा, मूर्द्धन्वान्, जूति, सूर्यपुत्र चक्षु और ऋषिका सार्पराज्ञी नामकी हैं। इनमें क्रमशः दरिद्रताके अपहर्ता, द्यावापृथिवीके धारणकर्ता, लोको त्पादक, अन्नदाता, यज्ञादि शुभानुष्ठानोंमें पूज्य और यजमानके आयुर्दाता आदि विविध विशेषणोंके साथ सूर्यकी स्तुति की गयी है।

इसके अतिरिक्त वरुण, सविता, पूषा, आदित्य, त्वष्टा, मित्र, वरुण और धाता आदि अन्यान्य नामोंसे भी सूर्यकी पूजा एवं आराधनाके प्रसङ्ग हैं।

द्विजमात्रके लिये अनिवार्य कृत्यके रूपमें दैनिक त्रिकाल सन्ध्योपासनामें गायत्री-जपके पूर्व सूर्योपस्थानका विधान है। उपासक सूर्यको तमस्—अन्धकारसे उठाकर प्रकाशमें ले जानेवाले मानते हुए स्वर्गदर्शनके साथ सर्वोत्तम ज्योतिर्मय सत्यकी प्राप्तिके लिये उनसे प्रार्थना करता है[1]। सूर्य तेजोमयी किरणोंके पुञ्ज हैं तथा मित्र, वरुण और अग्नि आदि देवताओं एवं सम्पूर्ण विश्वके नेत्र हैं। वे स्थावर तथा जङ्गम—सबके अन्तर्यामी आत्मा हैं। भगवान् सूर्य आकाश, पृथ्वी और अन्तरिक्षलोकोंको अपने प्रकाशसे पूर्ण करते हुए आश्चर्यरूपसे उदित होते हैं[2]। देवता आदि सम्पूर्ण जगत्के हितकारी और सबके नेत्ररूप तेजोमय भगवान् सूर्य पूर्व दिशामें उदित हो रहे हैं। (उनके प्रसादसे) हमारी दृष्टिशक्ति सौ वर्षोंतक अक्षुण्ण रहे, सौ वर्षोंतक हम स्वस्थताके साथ जीते रहें। सौ वर्षोंतक हमारी श्रुति (कान) सशक्त रहे। सौ वर्षोंतक हममें बोलनेकी शक्ति रहे तथा सौ वर्षोंतक हम कभी दैन्यावस्थाको प्राप्त न हों, इतना ही नहीं, सौ वर्षोंसे भी चिर-अधिक कालतक हम देखें, जीवित रहें, सुनें, बोलें एवं कदापि दीन-दशापन्न न हों[3]।

वैदिक मन्त्रराज ब्रह्मगायत्रीमें भगवान् सूर्यको त्रिभुवनके उत्पत्तिकर्ता ब्रह्मा माना गया है। गायत्रीकी व्याख्यामें कहा गया है—हम स्थावर-जङ्गमरूप सम्पूर्ण विश्वको उत्पन्न करनेवाले उन निरतिशय प्रकाशमय परमेश्वरके भजने योग्य तेजका ध्यान करते हैं, जो हमारी बुद्धियोंको सत्कर्म—आत्मचिन्तनकी ओर प्रेरित करें—वे देव भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्गलोकरूप सच्चिदानन्दमय परब्रह्म हैं[4]।

वैदिक वाङ्मयमें सूर्यके विवरण बहुशः उपलब्ध हैं। एक स्थानपर सूर्यको ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रका ही रूप माना गया है—

एष ब्रह्मा च विष्णुश्च रुद्र एव हि भास्करः।[5]

योगदर्शनके मतानुसार सूर्यमें संयम करनेसे सम्पूर्ण भुवनका प्रत्यक्ष ज्ञान हो जाता है। भुवन शब्दसे यहाँ तात्पर्य चतुर्दश लोकोंसे है—सात ऊर्ध्वलोक ये हैं। भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक,

---

१ उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्। देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्॥ (—यजुर्वेद २०।२१)

२ चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च॥ (—वही ७।४२ और ऋग्वेद १।११५।१)

३ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्। (—वही ३६।२४)

४. ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्॥ (—वही ३६।३)

५. सूर्योपनिषद्, पृ० ८८, इन्द्रदेव उपाध्याय—पुराणविमर्श, पृ० ४०९।

*

तपोलोक और अन्तिम सत्यलोक हैं, सात अधोलोक ये हैं—महातल, रसातल, अतल, सुतल, वितल, तलातल तथा अन्तिम पाताल। यौगिक साधना करनेवाला उपासक जब सूर्यमें एकान्त ध्यानकी सिद्धि पा जाता है, तब सम्पूर्ण चतुर्दश लोकोंमें क्या घटना हो रही है, इसका टेलिविजनके समान उसे प्रत्यक्ष अनुभव हो जाता है।[1]

सूर्यपरक अनेक पौराणिक आख्यायिकाओंका मूल वैदिक है। सूर्यकी उपासनाका इतिहास भी वैदिक ही है। उत्तर वैदिक साहित्य तथा रामायण-महाभारतमें भी सूर्योपासनासम्बन्धी चर्चाका बाहुल्य दृष्टिगोचर होता है। गुप्तकालके पूर्वसे ही सूर्योपासकोंका एक सम्प्रदाय बन चुका था, जो सौर नामसे प्रसिद्ध था। सौर सम्प्रदायके उपासक अपने उपास्यदेव सूर्यके प्रति अनन्य आस्थाके कारण उन्हें आदिदेवके रूपमें मानते थे। भौगोलिक दृष्टिसे भी भारतमें सूर्योपासना व्यापक थी। मथुरा, मुल्तान, कश्मीर, कोणार्क और उज्जयिनी आदि स्थान सूर्योपासकोंके प्रधान केन्द्र थे।[2]

सूर्योपासनाका आरम्भिक स्वरूप प्रतीकात्मक था। सूर्यकी प्रतिमा चक्र एवं कमल आदिसे व्यक्त की जाती थी। मूर्तरूपमें सूर्य-प्रतिमाका प्रथम प्रमाण बोधगयाकी कलामें है। बौद्ध-सम्प्रदायमें भी सूर्योपासना होती थी। भाजाकी बौद्ध-गुफामें भी सूर्यकी प्रतिमा बोधगयाकी परम्परामें ही निर्मित हुई है। इन दोनों प्रतिमाओंका काल ईसाकी पूर्व प्रथम शती है। बौद्ध-परम्पराके ही समान जैन-गुफामें भी सूर्यकी प्रतिमा मिली है। खण्डगिरि—उड़ीसाकी अनन्त गुफामें सूर्यकी जो प्रतिमा है (ईसाकी दूसरी शतीकी) वह भी भाजा और बोधगयाकी ही परम्परामें है। चार अश्वोंसे युक्त एकचक्र-रथारूढ़ सूर्यकी प्रतिमा मिली है। गन्धारसे प्राप्त सूर्य प्रतिमाकी एक विचित्रता यह है कि सूर्यके चरणोंको जूतोंसे युक्त बनाया गया है। इस परम्पराका परिपालन मथुराकी सूर्य-मूर्तियोंमें भी किया गया है।[3] मथुरामें निर्मित सूर्य-प्रतिमाओंको उदीच्य वेशमें बनाया गया है।

गुप्तकालीन सूर्य-प्रतिमाओंमें ईरानी प्रभाव कम था—बिल्कुल नहीं। निदायतपुर, कुमारपुर (राजशाही बंगाल) और भूमराकी गुप्तकालीन सूर्यप्रतिमाएँ शैली, भावविन्यास और आकृतिमें भारतीय हैं। सूर्यके मुख्य आयुध कमल दोनों हाथोंमें ही विशेषतया प्रदर्शित हैं। मध्यकालीन उपलब्ध सूर्यप्रतिमाएँ दो प्रकारकी—स्थानक सूर्य-प्रतिमाएँ और पद्मस्थ प्रतिमाएँ हैं।[4]

सूर्यकी स्थिति

विश्वाकाश अनन्त एवं असीम है। इसकी सीमाको नापना मानव-मस्तिष्कके लिये सर्वथा तथा सर्वदा असम्भव है। वह इसकी सीमाके परीक्षणमें शत-प्रतिशत असफल होता है। पञ्चभूतों (पृथिवी आदि) में आकाश विशालतम है और सूक्ष्मतम भी। इस विश्वाकाशमें सूर्यसे अपेक्षा असंख्य गुना विशाल तथा अगण्य प्रकाशपिण्ड सृष्टिके आदिकालसे निरन्तर गतिशील हैं। उनके प्रति सेकण्ड लाख-लाख योजनकी रफ्तार—गतिसे चलनेपर भी आजतक उनका प्रकाश इस पृथ्वीपर नहीं पहुँच सका है—वेदादि शास्त्रीय विद्वानोंके अतिरिक्त आधुनिक विज्ञानाचार्योंकी भी विश्वासपूर्ण यही घोषणा है। सूर्य आकाशमण्डलके साक्षात् दृश्यमान ग्रहोपग्रह-नक्षत्रादि प्रकाश पिण्डोंमें विशालतम हैं। इनके रथका विस्तार नौ सहस्र योजनोंमें है और इससे दूना रथका ईषादण्ड (जूआ और रथके मध्यका भाग) है।

१ भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात्। पातञ्जल-योगदर्शन, विभूतिपाद, सूत्र २६। २ पुराणविमर्श पृ० ४९९।
३ वही पृ० ५००। ४ वही पृ० ५०१।

उसका धुरा डेढ़ करोड़ सात लाख योजन लम्बा है, जिसमें रथका पहिया लगा हुआ है। सूर्यकी उदयास्त गतिसे काल अर्थात् निमेष, काष्ठा, कला, मुहूर्त, रात्रि दिन, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर और चतुर्युग (कलि, द्वापर, त्रेता, सत्य युग) आदिका निर्णय होता है।

पुराण-वाङ्मयमें सूर्यका परिचय पार्थिव जगत्के एक आदर्श राजाके रूपमें भी मिलता है, जो राजा अपनी प्रजाओंसे राज्य-कर (टैक्स) बहुत कम—नाममात्रका ही लेते हैं, पर उसके बदलेमें प्रजाओंको अनेक गुना अधिक दे देते हैं और उनके स्वास्थ्य आदि समग्र सुख-सुविधाओंका समुचित प्रबन्ध कर देते हैं। इस सम्बन्धमें बड़ा सुन्दर चित्रण किया गया है। सूर्य अपनी किरणोंके द्वारा पृथ्वीसे जितना रस खींचते हैं, उन सबको प्राणियोंकी पुष्टि और अन्नकी वृद्धिके लिये (वर्षा ऋतुमें) बरसा देते हैं। उससे भगवान् सूर्य समस्त प्राणियोंको आनन्दित कर देते हैं और इस प्रकार वे देव, मनुष्य और पितृगण आदि सभीका पोषण करते हैं। इस रीतिसे सूर्यदेव देवताओंकी पाक्षिक, पितृगणकी मासिक तथा मनुष्योंकी नित्य तृप्ति करते रहते हैं। सूर्यके ही कारण होनेवाली वृष्टिसे पृथ्वीके वृक्ष-वनस्पति, कन्द-मूल और जड़ी-बूटियाँ प्रभृति भैषज्य पदार्थ पोषित और औषधि गुणोंसे सम्पन्न होते हैं और औषधिरूप इन्हीं पदार्थोंके उपयोगसे प्रजा रोगमुक्त होती है। कालिदासने अपने महाकाव्यमें सूर्यके सम्बन्धमें ऐसा ही सुन्दर चित्रण उपस्थित करते हुए कहा है—सूर्यदेव ग्रीष्मकालमें पृथ्वीके जिस रसको खींचते हैं—ग्रहण करते हैं, उसे चतुर्मासमें हजार गुना अधिक करके दे देते हैं। विश्वको सूर्यका इस विसर्गवृत्तिसे परहितके लिये त्याग करनेकी शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। भारतने उनकी इस विसर्ग-वृत्तिसे परहितार्थ त्याग करनेकी शिक्षा ली थी। इस वृत्तिको अपनानेसे प्रजावर्गके लिये आध्यात्मिक उपलब्धि भी निश्चय ही सम्भव है। भारतमें भगवान् सूर्य ही एकमात्र आरोग्यदाता देवताके रूपमें स्वीकृत हैं। उपासना करनेपर अग्निदेव जिस प्रकार धन देते हैं, भगवान् शंकर ऐश्वर्य देते हैं और महायोगेश्वर कृष्ण ज्ञान देते हैं, उसी प्रकार उपासित भगवान् भास्कर शारीरिक, मानसिक, आदि सर्वविध आरोग्य प्रदान करते हैं। अतः उन-उनकी पूर्ति हेतु उन-उन देवताओंसे प्रार्थना करनी चाहिये—

आरोग्यं भास्करादिच्छेद्धनमिच्छेद्धुताशनात्।
ऐश्वर्यमीश्वरादिच्छेज्ज्ञानमिच्छेज्जनार्दनात्॥

भारतीय मान्यतामें नियम-नियमपूर्वक सूर्यकी आराधना करनेसे असाध्य और भयंकर गलित कुष्ठरोगसे पीड़ित व्यक्ति भी नीरोग्य लाभ करते हैं।

समस्त पुराणों और उप-पुराणोंमें सूर्योपासना आदिके सम्बन्धमें विविध विवृतियाँ निहित हैं, पर सारांशरूपमें इतना ही वर्णन पर्याप्त है। इसके अतिरिक्त पुराणेतर समस्त भारतीय साहित्य भगवान् सूर्यका विविध विवरण देता है। सबका सार है—भगवान् सूर्यकी उपासना पूजा एवं अर्चना। इस हमारे सत्प्रमें पुष्प और अर्घ्य रह हैं।

सूर्योपासनाकी परम्परा

(लेखक—डॉ० पं० श्रीरमाकान्तजी त्रिपाठी, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

सूर्यका वर्णन वैदिक कालसे ही देवताके रूपमें मिलता है, किंतु वैदिक कालमें सूर्यका स्थान गौण समझा जा सकता है, क्योंकि वैदिक कालमें इन्द्र तथा अग्नि इनकी अपेक्षा अधिक शक्तिशाली देवता माने गये हैं। पौराणिक गाथाओंके आधारपर सूर्यको देवमाता अदिति तथा महर्षि कश्यपका पुत्र माना जाता है। अदिति-पुत्र होनेके कारण ही इन्हें आदित्यकी संज्ञा प्रदान की गयी है। वेदोंमें सबसे प्राचीन ऋग्वेद (मण्डल २, सूक्त २७, मन्त्र १) में छः आदित्य माने गये हैं—मित्र, अर्यमा, भग, वरुण, दक्ष तथा अंश। किंतु ऋग्वेदमें ही आगे (मण्डल ९, सूत्र, ११४ मन्त्र ३ में) आदित्यकी संख्या सात बतलायी गयी है। पुनः आगे चलकर हमें अदितिके आठ पुत्रोंका नाम मिलता है। वे निम्न हैं—मित्र, वरुण, धाता, अर्यमा, भग, अंश, विवस्वान् तथा आदित्य। इनमेंसे सातको लेकर अदिति चली गयी और आठवें आदित्य (सूर्य) को आकाशमें छोड़ दिया। वेदोंके पश्चात् शतपथ ब्राह्मणमें द्वादश आदित्योंका उल्लेख मिलता है। महाभारत (आदिपर्व, अध्याय १२१) में इन आदित्योंका नाम धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, अंश, भग, इन्द्र, विवस्वान्, पूषा, त्वष्टा, सविता तथा विष्णु बताया गया है। इस प्रकार भिन्न-भिन्न स्थानोंपर भिन्न भिन्न उल्लेख मिलनेसे यह निश्चित करना कठिन है कि वास्तवमें कौन-से अदिति-पुत्र सूर्य हैं। आदित्य तथा सूर्य कहीं-कहीं अभिन्न माने जाते हैं। किन्हीं-किन्हीं विद्वानोंका मत है कि वस्तुतः ये द्वादश आदित्य एक ही सूर्यके कर्म, काल और परिस्थितिके अनुसार रखे गये भिन्न भिन्न नाम हैं। कुछ विद्वान् तो यह भी कहते हैं कि ये द्वादश आदित्य (सूर्य)के द्वादश मासोंमें उदित होनेके भिन्न-भिन्न नाम हैं। यही कारण है कि पूषा, सविता, मित्र, वरुण तथा सूर्यको लोग अभिन्न मानते हैं। किंतु इतना तो निश्चित है कि इन देवताओंमें कुछ-न-कुछ स्वरूपभेद अवश्य रहा होगा, जिसके कारण इन्हें पृथक्-पृथक् नामोंसे निर्दिष्ट किया गया है। यह भेद समयके साथ लुप्त हो गया और अत्यन्त सूक्ष्म होनेके कारण अब हमें कोई भेद दृष्टिगोचर नहीं होता है।

सूर्यके विषयमें यह भी प्रसिद्ध है कि वे आकाशके पुत्र हैं। यह तथ्य ऋग्वेदसे भी वहाँ प्रमाणित होता है, जहाँ आकाश-पुत्र सूर्यके लिये गीत गानेका वर्णन मिलता है।[1] कहीं-कहीं उषाको सूर्यकी माता बतलाया गया है, जो चमकते हुए बालकको अपने साथ लाती है तथा उसका मातृत्व सूर्यसे प्रथम उदय होनेके कारण माना गया है। ऋग्वेदमें ही सूर्य तथा उषा दोनोंको इन्द्रसे उत्पन्न बताया गया है।[3] उषाको ऋग्वेदमें ही एक स्थानपर सूर्यकी पत्नी[4] तथा एक अन्य स्थानपर सूर्य-पुत्री माना गया है।[5] इस प्रकार वेदोंके आधारपर यह निश्चित करना कठिन है कि सूर्य किसके पुत्र थे, क्योंकि स्थान-स्थानपर भिन्न-भिन्न वर्णन मिलते हैं।

सूर्यके जन्मके विषयमें इन सबसे विचित्र कथानक विष्णुपुराणमें मिलता है, जहाँ सूर्यको विश्वकर्माकी शक्तिके आठवें अंशसे उत्पन्न कहा गया है। विष्णुपुराणकी कथा निम्न प्रकार है—'विश्वकर्माकी पुत्री संज्ञाके

१ हिंदी ऋग्वेद—इण्डियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) लिमिटेड, प्रयाग, पृ० १३३६, मन्त्र ८०। २ ऋग्वेद१०। ३७। १ 'दिवस्पुत्राय सूर्याय शंसत'। ३ ऋग्वेद (२। १२। ७) य सूर्यं य उषसं जजान। ४ ऋग्वेद (१। ७५। ५)। ५ ऋग्वेद (४। ४३। २) सूर्यस्य दुहिता।

साथ सूर्यका विवाह हुआ तथा तीन पुत्रोंको जन्म देनेके पश्चात् उसने अपने पतिकी शक्तिको असहनीय समझा तथा स्वनिर्मित छायासे अपना स्थान ग्रहण करनेको कहकर वह वनको चली गयी। छायाने अपनी भिन्नता सूर्यसे नहीं बतायी। सूर्यने कुछ कालतक इसपर ध्यान भी नहीं दिया। एक दिन सञ्ज्ञाके एक पुत्र यमने छायाके साथ कुछ दुर्व्यवहार कर दिया और छायाने उसे शाप दे दिया। सूर्यने (जिन्हें यह ज्ञात था कि माताका शाप पुत्रपर कोई प्रभाव नहीं डालता) इस विषयमें खोज की। उन्हें ज्ञात हो गया कि उनकी कल्पित पत्नी कौन है। सूर्यके क्रुद्ध तेजसे छाया नष्ट हो गयी। तदनन्तर वे सञ्ज्ञाकी खोजमें गये, जो उन्हें घोड़ीके रूपमें वनमें भ्रमण करती हुई दिखायी दी। सूर्यने इस बार अपनेको अश्वरूपमें परिवर्तित कर दिया और वहींपर उन दोनोंने कुछ समयतक जीवन व्यतीत किया। कुछ समयके अनन्तर वे अपने पशु-जीवनसे ऊबकर वास्तविक रूप धारण करके घर लौट आये। 'विश्वकर्माने इस प्रकारकी घटनाओंकी पुनरावृत्तिसे बचनेके लिये सूर्यको एक पाषाणपर स्थित कर दिया तथा उनके आठवें अंशका अपहरण करके उससे विष्णुके चक्र, शिवके त्रिशूल तथा कार्तिकेयकी शक्तिका निर्माण किया।'[1]

इस प्रकार सूर्यके जन्मके विषयमें भिन्न-भिन्न कथाएँ होनेके कारण यह निश्चित करना सम्भव नहीं है कि वे वास्तवमें किस देवताके पुत्र थे। सम्भव है कि वे अदितिके ही पुत्र हों, क्योंकि अदितिको प्रायः सभी देवताओंकी माता माना गया है।

मित्र, सविता, सूर्य तथा पूषा—ये चारों ही नाम वस्तुतः सूर्यके ही द्योतक हैं, किंतु पूषाका स्वरूप कहीं-कहीं सूर्यसे भिन्न-सा प्रतीत होता है। मित्र, सविता तथा सूर्य शब्द वेदोंमें सूर्यके लिये ही प्रयुक्त हुए हैं। मित्र सूर्यके संसारके नियामक हैं तथा वे सवितासे अभिन्न माने जाते हैं। वैदिक 'मित्र' पारसी धर्मके 'मिथ्र'से स्वरूपतः अभिन्न है। मित्रका अर्थ सुहृद् अथवा सहायक है और निश्चय ही यह सूर्यकी रक्षण-शक्तिका द्योतक है। सविता 'हिरण्मयदेव' हैं, जिनके हाथ, नेत्र और जिह्वा सब हिरण्मय हैं। सविता विश्वको अपने हिरण्मय नेत्रोंसे देखते हुए गमन करते हैं।[2] सविताका अर्थ है 'प्रसव करनेवाला', 'स्फूर्ति प्रदान करनेवाला' देवता। निश्चय ही वे विश्वमें गतिका सञ्चार करनेवाले तथा प्रेरणा देनेवाले सूर्यके प्रतिनिधि हैं।

ऋग्वेदके प्रथम मण्डलके ३५वें सूक्तके ग्यारह मन्त्र सूर्यकी स्तुतिमें कहे गये हैं। यहाँ सूर्यके अन्तरिक्ष भ्रमण, प्रातःसे सायंतक उदय-नियम, रात्रि-किरण, सूर्यके कारण चन्द्रमाकी स्थिति आदिका वर्णन मिलता है। प्रथम मण्डलके ५०वें सूक्तके आठवें मन्त्रमें लिखा है—'सूर्य! हरित नामक सात अश्व रथसे आपको ले जाते हैं। किरणें तथा ज्योति ही आपके केश हैं। ऋग्वेदमें आगे कहा गया है—'सूर्यके एकचक्र रथमें सात अश्व जोते गये हैं। एक ही अश्व सात नामोंसे रथ-वहन करता है।'[3] वे सभी प्राणियोंके, शोभन तथा अशोभन कार्यके द्रष्टा हैं तथा मनुष्योंके कर्मोंके प्रेरक देव हैं। सूर्य आकाशमें चमकते हुए अन्धकारको दूर भगाते हैं। अपने गौरव तथा महत्त्वके कारण उन्हें देवोंका पुरोहित कहा गया है। सूर्यको मित्र तथा वरुणका नेत्र बताया जाता है।'

सूर्यके विविध रूपोंका स्पष्ट वर्णन वेदोंमें उपलब्ध होता है। ऋषि लोग अन्धकारको दूर भगानेवाले सूर्यके तीन

---

1. Thomas—Epics, myths and legends of India, P 116—119
2. आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च। हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्॥
3. हिन्दी ऋग्वेद (इंडियन प्रेस पब्लिकेशन्स, लिमिटेड प्रयाग, पृ० १४८, मन्त्र २)
4. उद् वयं तमसस्परि ज्योतिष्पश्यन्त उत्तरम्। देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्॥ (—ऋ० १।५०।१०)

रूपोंका वर्णन करते हैं—उत्, उत् + तर—उत्तर, उत् + तम—उत्तम, जो क्रमशः माहात्म्यमें बढ़कर हैं। सूर्यकी उस ज्योतिका नाम उत् है जो इस भुवनके भौतिक अन्धकारके अपहरणमें समर्थ होती है। देवोंके मध्यमें जो देव-रूपसे निवास करती है, वह 'उत्तर' है, परंतु इन दोनोंसे बढ़कर एक विशिष्ट ज्योति है, जिसे उत्तम कहते हैं।* ये तीनों शब्द सूर्यके कार्यात्मक, कारणात्मक तथा कार्यकारणसे अतीत अवस्थाके द्योतक हैं। इस एक ही मन्त्रमें सूर्यके आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक स्वरूपोंका संकेत किया गया है। (वेद सूर्यके इन तीनों स्वरूपोंका प्रतिपादन करते हैं।)

वेदोंमें सूर्यका महत्त्व अन्य देवताओंकी अपेक्षा गौण नहीं है। तथ्य उनके महत्त्वको अनेकशः सूचित करते हैं। चार धार्मिक सम्प्रदायोंमेंसे सूर्यकी आराधना करनेवाला एक सौर-सम्प्रदाय भी है। एक विशेष प्रकारका धार्मिक सम्प्रदाय सूर्यकी आराधना करता है। इसीसे स्पष्ट होता है कि अन्य देवताओंकी अपेक्षा सूर्यका अधिक महत्त्व है।

वेदका सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण मन्त्र गायत्री है, जिसे वेदोंकी माता भी कहा जाता है। यह मन्त्र सविता अथवा सूर्यके महत्त्वका ही वर्णन करता है। पौराणिक एकाक्षर 'ॐ' भी सूर्यसे ही सम्बद्ध है। यह सूर्यसम्बन्धी अग्नि तथा त्रिदेवोंका प्रतीक है। यह एक चक्रमें लिखा हुआ सूर्य-मण्डलका द्योतक है। छान्दोग्य उपनिषद्में 'ॐ'का महत्त्व इस प्रकार कहा गया है—'सभी प्राणियोंका सार पृथ्वी है, पृथ्वीका सार जल है, जलका सार वनस्पति है, वनस्पतियोंका सार मनुष्य है, मनुष्यका सार वाणी है, वाणीका सार ऋग्वेद है, ऋग्वेदका सार सामवेद है, सामवेदका सार उद्गीथ है और उसीको 'ॐ' कहते हैं।'

'स्वस्तिक' हिन्दू मात्रका एक सौर चिह्न है। इस शब्दका अर्थ है 'भलीभाँति रहना'। यह तेज अथवा महिमाका द्योतक है तथा इस बातका संकेत करता है कि जीवनका मार्ग कुटिल है तथा वह मनुष्यको व्याकुल कर सकता है, किंतु प्रकाशका मार्ग उसके साथ-ही-साथ चलता है।

ग्रीक-पौराणिक गाथाओंमें सूर्य

ग्रीक-पौराणिक गाथाओंमें सूर्यका वर्णन लगभग वैसा ही मिलता है, जैसा कि भारतीय धर्मप्रधान वेदोंमें। वास्तवमें यदि देखा जाय तो हम इस निष्कर्षपर सफलतासे पहुँच सकते हैं कि ग्रीक-धर्म वैदिक धर्मका अनुकरणमात्र है। ग्रीककी पौराणिक गाथाओंके अनुसार देवी गाला (Gala) पृथ्वीकी देवी हैं। इन्होंने Chaos के पश्चात् जन्म लिया एवं आकाश, पर्वत तथा समुद्रका निर्माण स्वयं किया। उरानस (Uranus) इनके पति तथा पुत्र दोनों ही हैं। इन दोनोंके संयोगसे Cronus (Saturn) उत्पन्न हुए जो इनके सबसे छोटे पुत्र हैं वे देवताओंके सम्राट् माने गये हैं। Cronusकी पत्नीका नाम Rttea है तथा इन दोनोंके संयोगसे जेउस (Zeus) उत्पन्न हुए। ग्रीककी पौराणिक गाथाओंमें सूर्यको इन्हीं Zeus का पुत्र माना गया है। सूर्यको ग्रीककी पौराणिक गाथाओंमें Phoebs Apollo (फोएबस अपोलो) तथा Helios नामोंसे सम्बद्ध किया गया है। पौराणिक गाथाओंमें सूर्यके प्रासाद आदिका भी वर्णन मिलता है। एक पौराणिक गाथाके अनुसार सूर्य-पुत्र Phaethon उनके प्रासादमें

* उद् वयं तमसस्परि ज्योतिष्पश्यन्त उत्तरम्। देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्॥ (ऋ० १।५०।१०)

साथ सूर्यका विवाह हुआ तथा तीन पुत्रोंको जन्म देनेके पश्चात् उसने अपने पतिकी शक्तिको असहनीय समझा तथा स्वनिर्मित छायासे अपना स्थान ग्रहण करनेको कहकर वह वनको चली गयी। छायाने अपनी भिन्नता सूर्यसे नहीं बतायी। सूर्यने कुछ कालतक इसपर ध्यान भी नहीं दिया। एक दिन सञ्ज्ञाके एक पुत्र यमने छायाके साथ कुछ दुर्व्यवहार कर दिया और छायाने उसे शाप दे दिया। सूर्यने (जिन्हें यह ज्ञात था कि माताका शाप पुत्रपर कोई प्रभाव नहीं डालता) इस विषयमें खोज की। उन्हें ज्ञात हो गया कि उनकी कल्पित पत्नी कौन है। सूर्यके क्रुद्ध तेजसे छाया नष्ट हो गयी। तदनन्तर वे सञ्ज्ञाकी खोजमें गये, जो उन्हें घोड़ीके रूपमें वनमें भ्रमण करती हुई दिखायी दी। सूर्यने इस बार अपनेको अश्वरूपमें परिवर्तित कर दिया और वहींपर उन दोनोंने कुछ समयतक जीवन व्यतीत किया। कुछ समयके अनन्तर वे अपने पशु-जीवनसे ऊबकर वास्तविक रूप धारण करके घर लौट आये। विश्वकर्माने इस प्रकारकी घटनाकी पुनरावृत्तिसे बचनेके लिये सूर्यको एक पाषाणपर स्थित कर दिया तथा उनके आठवें अंशका अपहरण करके उससे विष्णुके चक्र, शिवके त्रिशूल तथा कार्तिकेयकी शक्तिका निर्माण किया।[1]

इस प्रकार सूर्यके जन्मके विषयमें भिन्न-भिन्न कथाएँ होनेके कारण यह निश्चित करना सम्भव नहीं है कि वे वास्तवमें किस देवताके पुत्र थे। सम्भव है कि वे अदितिके ही पुत्र हों, क्योंकि अदितिको प्रायः सभी देवताओंकी माता माना गया है।

मित्र, सविता, सूर्य तथा पूषा—ये चारों ही नाम वस्तुतः सूर्यके ही द्योतक हैं, किंतु पूषाका स्वरूप कहीं-कहीं सूर्यसे भिन्न-सा प्रतीत होता है। मित्र, सविता तथा सूर्य शब्द वेदोंमें सूर्यके लिये ही प्रयुक्त हुए हैं। मित्र सूर्यके सञ्चारके नियामक हैं तथा वे सवितासे अभिन्न माने जाते हैं। वैदिक 'मित्र' पारसी-धर्मके 'मिथ्र'से स्वरूपतः अभिन्न है। मित्रका अर्थ सुहृद् अथवा सहायक है और निश्चय ही यह सूर्यकी रक्षण-शक्तिका द्योतक है। सविता 'हिरण्यमयदेव' हैं, जिनके हाथ, नेत्र और जिह्वा सब हिरण्मय हैं। सविता विश्वको अपने हिरण्मय नेत्रोंसे देखते हुए गमन करते हैं।[2] सविताका अर्थ है 'प्रसव करनेवाला', 'स्फूर्ति प्रदान करनेवाला' देवता। निश्चय ही वे विश्वमें गतिका सञ्चार करनेवाले तथा प्रेरणा देनेवाले सूर्यके प्रतिनिधि हैं।

ऋग्वेदके प्रथम मण्डलके ३५वें सूक्तके ग्यारह मन्त्र सूर्यकी स्तुतिमें कहे गये हैं। यहाँ सूर्यके अन्तरिक्ष-भ्रमण, प्रातःसे सायंतक उदय-नियम, राशि विवरण, सूर्यके कारण चन्द्रमाकी स्थिति आदिका वर्णन मिलता है। प्रथम मण्डलके ५०वें सूक्तके आठवें मन्त्रमें लिखा है—'सूर्य! हरित नामक सात अश्व रथसे आपको ले जाते हैं। किरणें तथा ज्योति ही आपके केश हैं।' ऋग्वेदमें आगे कहा गया है—'सूर्यके एकचक्र रथमें सात अश्व जोते गये हैं। एक ही अश्व सात नामोंसे रथ-वहन करता है।[3] वे सभी प्राणियोंके, शोभन तथा अशोभन कार्योंके द्रष्टा हैं तथा मनुष्योंके कर्मोंके प्रेरक देव हैं। सूर्य आकाशमें चमकते हुए अन्धकारको दूर भगाते हैं। अपने गौरव तथा महत्त्वके कारण उन्हें देवोंका पुरोहित कहा गया है। सूर्यको मित्र तथा वरुणका नेत्र बताया जाता है।'[4]

सूर्यके विविध रूपोंका स्पष्ट वर्णन वेदोंमें उपलब्ध होता है। ऋषि लोग अन्धकारको दूर भगानेवाले सूर्यके तीन

---

१ Thomas—Epicsm myths and leg ends of India P 116—118

२ आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च। हिरण्ययेन सविता रथेनाऽऽ देवो याति भुवनानि पश्यन्॥

३ हिन्दी ऋग्वेद (इण्डियन प्रेस पब्लिकेशन्स, लिमिटेड प्रयाग, पृ० २४५, मन्त्र २)

४ उद् वय तमसस्परि ज्योतिष्पश्यन्त उत्तरम्। देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्॥ (—ऋ० १।५०।१०)

रूपोंका वर्णन करते हैं—उत्, उत् + तर—उत्तर, उत् + तम—उत्तम, जो क्रमश माहात्म्यमें बढ़कर हैं। सूर्यकी उस ज्योतिका नाम उत् है जो इस भुवनके भौतिक अन्धकारके अपहरणमें समर्थ होती है। देवोंके मध्यमें जो देव-रूपसे निवास करती है, वह 'उत्तर' है, परतु इन दोनोंसे बढ़कर एक विशिष्ट ज्योति है, जिसे उत्तम कहते हैं।* ये तीनों शब्द सूर्यके कार्यात्मक, कारणात्मक तथा कार्यकारणसे अतीत अवस्थाके द्योतक हैं। इस एक ही मन्त्रमें सूर्यके आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक स्वरूपोंका संकेत किया गया है। (वेद सूर्यके इन तीनों स्वरूपोंका प्रतिपादन करते हैं।)

वेदोंमें सूर्यका महत्त्व अन्य देवताओंकी अपेक्षा गौण नहीं है। तथ्य उनके महत्त्वको अनेकश सूचित करते हैं। चार धार्मिक सम्प्रदायोंमेंसे सूर्यकी आराधना करनेवाला एक सौर-सम्प्रदाय भी है। एक विशेष प्रकारका धार्मिक सम्प्रदाय सूर्यकी आराधना करता है। इसीसे स्पष्ट होता है कि अन्य देवताओंकी अपेक्षा सूर्यका अधिक महत्त्व है।

वेदका सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण मन्त्र गायत्री है, जिसे वेदोंकी माता भी कहा जाता है। यह मन्त्र सविता अथवा सूर्यके महत्त्वका ही वर्णन करता है। पौराणिक एकाक्षर 'ॐ' भी सूर्यसे ही सम्बद्ध है। यह सूर्यसम्बन्धी अग्नि तथा त्रिदेवोंका प्रतीक है। यह एक चक्रमें लिखा हुआ सूर्य-मण्डलका द्योतक है। छान्दोग्य उपनिषद्में 'ॐ'का महत्त्व इस प्रकार कहा गया है—'सभी प्राणियोंका सार पृथ्वी है, पृथ्वीका सार जल है, जलका सार वनस्पति है, वनस्पतियोंका सार मनुष्य है, मनुष्यका सार वाणी है, वाणीका सार ऋग्वेद है, ऋग्वेदका सार सामवेद है, सामवेदका सार उद्गीथ है और उसीको 'ॐ' कहते हैं।'

'स्वस्तिक' हिन्दू मात्रका एक सौर चिह्न है। इस शब्दका अर्थ है 'भलीभाँति रहना'। यह तेज अथवा महिमाका द्योतक है तथा इस बातका संकेत करता है कि जीवनका मार्ग कुटिल है तथा वह मनुष्यको व्याकुल कर सकता है, किंतु प्रकाशका मार्ग उसके साथ-ही-साथ चलता है।

ग्रीक-पौराणिक गाथाओंमें सूर्य

ग्रीक-पौराणिक गाथाओंमें सूर्यका वर्णन लगभग वैसा ही मिलता है, जैसा कि भारतीय धर्मप्रधान वेदोंमें। वास्तवमें यदि देखा जाय तो हम इस निष्कर्षपर सफलतासे पहुँच सकते हैं कि ग्रीक-धर्म वैदिक धर्मका अनुकरणमात्र है। ग्रीककी पौराणिक गाथाओंके अनुसार देवी गाला (Gala) पृथ्वीकी देवी हैं। इन्होंने Chaos के पश्चात् जन्म लिया एवं आकाश, पर्वत तथा समुद्रका निर्माण स्वयं किया। उरानस (Uranus) इनके पति तथा पुत्र दोनों ही हैं। इन दोनोंके संयोगसे Cronus (Saturn) उत्पन्न हुए जो इनके सबसे छोटे पुत्र हैं वे देवताओंके सम्राट् माने गये हैं। Cronusकी पत्नीका नाम Rttea है तथा इन दोनोंके संयोगसे जेउस (Zeus) उत्पन्न हुए। ग्रीककी पौराणिक गाथाओंमें सूर्यको इन्हीं Zeus का पुत्र माना गया है। सूर्यको ग्रीककी पौराणिक गाथाओंमें Phoebs Apollo (फोएबस अपोलो) तथा Helios नामोंसे सम्बद्ध किया गया है। पौराणिक गाथाओंमें सूर्यके प्रासाद आदिका भी वर्णन मिलता है। एक पौराणिक गाथाके अनुसार सूर्य-पुत्र Phaethon उनके प्रासादमें

* उद् वयं तमसस्परि ज्योतिष्पश्यन्त उत्तरम्। देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्॥
(ऋ० १।५०।१०)

पहुँचा जो कान्तियुक्त स्तम्भोंपर आश्रित था[1] तथा स्वर्ण एव लाल मणियोंसे दीप्तिमान् हो रहा था। इसकी कारनिस चमकते हाथी-दाँतोंसे बनी थी और चौडे चाँदीके द्वारोंपर उपाख्यान एव अद्भुत कथाएँ खिची थीं।

फोएबस (Phoebus) लोहित वर्णका जामा पहने हुए अनुपम मरकतमणियोंसे शोभायमान सिंहासनपर वे आरूढ थे। उनके भृत्य दायीं तथा बायीं ओर क्रमसे खड़े थे। उनमें दिवस, मास, वर्ष, शताब्दियाँ तथा ऋतुएँ भी थीं। वसन्त ऋतु अपने फूलोंके गुच्छस्तोंके साथ, ग्रीष्म ऋतु अपने पीन वर्णके अन्नोंसहित तथा शरद् ऋतु, जिसके केश ओलोंकी भाँति श्वेत थे, उनके चारों ओर नम्रभावसे स्थित थे। उनके मस्तकके चारों ओर जाज्वल्यमान किरणें बिखर रही थीं।

सूर्यके प्रासादमें पहुँचनेके पश्चात् Phaethon ने उनसे कहा कि वे अपना रथ एक दिनके लिये उसको दे दें। उस स्थानपर, जब सूर्य उसको रथ न माँगनेके लिये समझाते हैं, तब वे स्वय रथका वर्णन अपने मुखसे करते हैं, जो निम्न है—

'केवल मैं ही रथके प्रज्वलित धुरेपर, जिससे चिनगारियाँ निकलती रहती हैं एव जो वायुके मध्य घूमता है, खड़ा रह सकता हूँ। रथको एक निर्दिष्ट मार्गसे जाना चाहिये। यह अश्वोंके लिये एक कठिन कार्य होता है, जब कि प्रातःकाल स्वस्थ भी रहते हैं। मध्याह्नमें रथको आकाशके मध्यभागमें होना चाहिये। कभी-कभी मैं स्वय भी घबड़ा जाता हूँ, जब मैं नीची भूमि और समुद्रको देखता हूँ।[2] लौटते समय भी अभ्यस्त हाथ ही रश्मियोंको सँभाल सकते हैं। Thetis (समुद्रोंकी देवी) भी, जो मुझे अपने शीतल जलमें ले लेनेकी प्रतीक्षा करती रहती है, पूर्णरूपसे सावधान रहती है, जबतक मैं आकाशसे फेंक नहीं दिया जाता। यह भी एक समस्या है कि स्वर्ग निरन्तर चलता रहता है तथा रथकी गति चक्रके समान तीव्र गतिके विरुद्ध होती है।[3]

इस प्रकार रथका जो वर्णन हमें यहाँ मिलता है, लगभग वैसा ही वर्णन भारतीय पौराणिक गाथाओंमें भी मिलता है। सूर्यके रथमें वहाँ तो अग्निका निवास ही माना गया है, फिर यदि उसके धुरेसे अग्नि निकलती है तो कोई विशेष बात नहीं। वेदमें सूर्यके आकाशसे फेंके जानेका वर्णन अवश्य नहीं मिलता, यह मीकल्धर्मकी अपनी परिकल्पना है।

इसके पश्चात् Apollo अपने पुत्रसे कहते हैं कि यदि मैं तुम्हें अपना रथ दे भी दूँ तो तुम इन बाधाओंका निराकरण नहीं कर सकते, किंतु phaethon के विशेष आग्रहपर सूर्य उसको रथ दिखलानेके लिये ले जाते हैं। यहाँ पुनः रथका वर्णन आया है और वह तो भारतीय धर्मका अनुकृतिमात्र प्रतीत होता है। वर्णन

1 Borne by Illuminous Pillars the Palace of the Sun God rose lustrous with gold and flamered rubies. The Cornice was of dazzling ivory and carved in relief on the wide silver doors were legends and miracle tales.'

—Gods and Heroes—Gustav schwab—Translated in English—Olgamarx and Ernst Morwitz (Page. 49)

2 "I myself am often shaken with dread when at a such height. I stand upright in my chariot. My head spins when I look down to the land and sea so far beneath me —Gods and Heroes, (P 49 Eng Trans.)

3 "Heaven turns incessantly and that the driving is against the sweep of its vast rotations" (Gods and Heroes, P 49, Eng Trans.)

इस प्रकार है—'रथ-धुरा तथा चक्र-हाल स्वर्णनिर्मित थे। उसकी तीलियाँ चाँदीकी थीं तथा जुआ चन्द्रकान्तामणि तथा अन्य बहुमूल्य मणियोंसे चमक रहा था।'

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय पौराणिक गाथाओं तथा ग्रीक पौराणिक गाथाओंमें पर्याप्त साम्य है और सूर्यका जो महत्त्व भारतीय धर्ममें है, वही महत्त्व ग्रीक-धर्ममें भी प्रतिपादित किया गया है। लगभग सभी पौराणिक गाथाओंमें सूर्यका स्थान महत्त्वपूर्ण है तथा ये ही एक ऐसे देवता हैं, जिनकी आराधना प्रायः सभी धर्मोंमें समान रूपसे होती है।

ऐतिहासिक युगमें सूर्योपासना

वैदिक कालमें अन्य देवताओंकी अपेक्षा सूर्यका स्थान गौण था, किंतु आगे चलकर सूर्यका महत्त्व अन्य देवताओंकी अपेक्षा अधिक हो गया। महाभारतके समयसे ही समाजमें सूर्य पूजाका प्रचलन हो गया था। कुषाण-कालमें तो सूर्य पूजाका प्रचलन ही नहीं था, वरन् कुषाण-सम्राट् स्वयं सूर्योपासक थे। कनिष्क (७८ ई०) के पूर्वज शिव तथा सूर्यके उपासक थे।[1] इसके पश्चात् हमें तीसरी शताब्दी ई० के गुप्त-सम्राटोंके समयमें भी सूर्य, विष्णु तथा शिवकी उपासनाका उल्लेख मिलता है। कुमारगुप्त-(४१४–५५ ई०) के समयमें ब्राह्मण-धर्मका विशेष अभ्युत्थान हुआ तथा उस समयमें विष्णु, शिव तथा सूर्यकी उपासना विशेषरूपसे होती थी—यद्यपि स्वयं कुमारगुप्त कार्तिकेयका उपासक था। स्कन्दगुप्त (४५५–६७ ई०) के समयमें तो बुलन्दशहर जिलेके इन्द्रपुर नामक स्थानपर दो क्षत्रियोंने एक सूर्य-मन्दिर भी बनवाया था।[3] गुप्त-सम्राटोंके कालतक सूर्य-आराधनाका विशेष प्रचलन हो गया था और उनके समयमें मालवाके मन्दसौर नामक स्थानमें, ग्वालियरमें, इन्दौरमें तथा बघेलखण्डक आश्रमक नामक स्थानमें निर्मित चार श्रेष्ठ सूर्य-मन्दिरोंका उल्लेख प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त उनके समयकी बनी हुई सूर्यदेवकी कुछ मूर्तियाँ भी बंगालमें मिलती हैं जिनसे यह प्रतीत होता है कि गुप्त-सम्राटोंके समयमें सूर्यभगवान्‌की आराधना अधिक प्रचलित थी।

सातवीं इसवीमें हर्षके समयमें सूर्योपासना अपनी चरम सीमापर पहुँच गयी। हर्षके पिता तथा उनके कुछ और पूर्वज न केवल सूर्योपासक थे, अपितु 'आदित्य-भक्त' भी थे। हर्षके पिताके विषयमें तो बाणने अपने 'हर्षचरित'में लिखा है कि वे स्वभावसे ही सूर्यके भक्त थे तथा प्रतिदिन सूर्योदयके समय स्नान करके 'आदित्य-हृदय मन्त्रका नियमित जप किया करते थे।[5] हर्षचरितके अतिरिक्त अन्य कई प्रमाणोंसे भी इस तथ्यकी पुष्टि होती है कि सौर-सम्प्रदाय अन्य धार्मिक सम्प्रदायोंकी अपेक्षा अधिक उत्कर्षपर था। हर्षके समयमें प्रयागमें तीन दिनका अधिवेशन हुआ था। इस अधिवेशनमें पहले दिन बुद्धकी मूर्ति प्रतिष्ठित की गयी तथा दूसरे और तीसरे दिन क्रमशः सूर्य तथा शिवकी पूजा की गयी थी।[6] इससे भी ज्ञात होता है कि उस कालमें सूर्य-पूजाका पर्याप्त महत्त्व था। सूर्योपासनाका यह चरमोत्कर्ष हर्षके समयतक ही सीमित नहीं रहा, अपितु

१ डा० भगवतशरण उपाध्याय—प्राचीन भारतका इतिहास (संस्करण १९६७) पृष्ठ २१७।

२ वही पृष्ठ २५८।

३ श्रीनेत्र पाण्डेय—भारतका बृहत् इतिहास (सं० १९६०) पृ० २६८।

४ वही पृ० २८०।

चौखम्बा प्रकाशन, पृ०२०२।

५. हर्षचरित—

६ प्राचीन भारतका इतिहास—डा० भगवतशरण उपाध्याय, पृ०३०६, सं० १९६७।

लगभग ग्यारहवीं शतीतक सूर्य-पूजाका प्रचलन रहा। हर्षके पश्चात् ललितादित्य मुक्तापीड (७२४–७६०ई०) नामक एक अन्य राजा भी सूर्यका भक्त था। उसने सूर्यके 'मार्तण्ड-मन्दिर'का निर्माण करवाया, जिसके खँडहरोंसे प्रतीत होता है कि यह मन्दिर अपने समय में विशाल रहा होगा।* प्रतिहार-सम्राटोंके समयमें भी सूर्य-पूजाका विशेष प्रचलन था। ग्यारहवीं शताब्दीके लगभग निर्मित कोणार्कका विशाल सूर्य-मन्दिर भी जनताकी सूर्य-भक्तिका ही प्रतीक है। इस प्रकार हम देखते हैं कि वेद-कालसे लेकर लगभग ग्यारहवीं शताब्दी तक सूर्यने अन्य देवताओंकी अपेक्षा विशेष मान प्राप्त किया।

कुष्ठ-रोग-निवारणमें सूर्यका महत्त्व

जनश्रुतिके अनुसार मयूरको कुष्ठरोग हो गया था तथा इस भयंकर रोगसे त्राण पानेके लिये उन्होंने भगवान् सूर्यकी उपासना की एवं भगवान् सूर्यको प्रसन्न कर पुनः स्वास्थ्य-लाभ किया। इस जनश्रुतिमें सत्यांश कितना है, यह तो नहीं कहा जा सकता, किंतु इतना अवश्य है कि भारतीय परम्परामें प्रारम्भसे ही सूर्यको इस रोगसे मुक्त करनेवाला देवता माना गया है।

ऋग्वेदके प्रथम मण्डलमें इसका उल्लेख मिलता है। यहाँ सूर्यको सभी चर्मरोगों तथा अनेक अन्य भीषण रोगोंका विनाशक बताया गया है—सूर्य उदित होकर और उन्नत आकाशमें चढ़कर हमारा मानसरोग (हृदय रोग), पीतवर्ण-रोग (पीलिया) तथा शरीर-रोग विनष्ट करें। मैं अपने हरिमाण तथा शरीर-रोगको शुक एवं सारिका पक्षियोंपर न्यस्त करता हूँ। आदित्य मेरे अनिष्टकारी रोगके विनाशके लिये समस्त तेजके साथ उदित हुए हैं†। इन मन्त्रोंसे ज्ञात होता है कि सूर्योपासनासे न केवल शारीरिक अपितु मानसिक रोग भी विनष्ट हो जाते हैं। प्रत्येक सूर्योपासक अपनी आधि-व्याधिके शमनके लिये इन मन्त्रोंको जपता है। सायणके विचारसे इन्हीं मन्त्रोंका जप करनेसे प्रस्कण्व ऋषिका चर्मरोग विनष्ट हो गया था।

सूर्योपासनासे कुष्ठरोगका निवारण हो जाता है, यह धारणा न केवल भारतीयोंमें ही बद्धमूल थी, अपितु प्राचीनकालसे ही पारसियोंमें भी मान्य थी। हेरोडोटसके अनुसार कुष्ठरोगका कारण सूर्यभगवान्‌के प्रति अपराध करना था। उसके इतिहासकी प्रथम पुस्तकमें इस प्रकारका उल्लेख मिलता है—'कोई भी नागरिक जो कुष्ठरोग या श्वेतकुष्ठसे ग्रस्त होता था, नगरमें प्रविष्ट नहीं होता था, न वह अन्य पारसियोंसे मिलता-जुलता था तथा अन्य लोग यह कहते थे कि इसके इस रोगका कारण सूर्यके प्रति किया गया कोई अपराध है।'‡ इससे यह भी ज्ञात होता है कि पारसियोंका यह विश्वास था कि जो देवता इस प्रकारके संक्रामक रोगोंकी उत्पत्तिका कारण है, केवल वही उस रोगका विनाशक हो सकता है।

आज भी भारतवर्षमें कई स्थानोंपर इस प्रकारकी धारणा प्रचलित है कि सभी प्रकारके चर्मरोगोंका विनाश

* प्राचीन भारतका इतिहास (पृ० ३०६)—डा० भगवतशरण उपाध्याय।

† ऋग्वेद, प्रथम मण्डल, सूक्त ५०, मन्त्र ११–१३

‡ "Whatsoever one of the citizens has leprosy or the white (leprosy) does come into city, nor does he mingle with the other Persians. And they say that he contracts these (diseases) because of having committed some sin against the Sun." Quackenbos, Sanskrit Poems of Mayura P. 35

आदित्योपासनासे हो जाता है। अयोध्याके निकट सूर्यकुण्ड नामक एक जलाशय है। जनश्रुति है कि उस कुण्डमें स्नान करनेसे सभी प्रकारके चर्मरोगोंका विनाश हो जाता है। मिथिलामें भी ऐसी धारणा है कि कार्तिक शुक्लपक्षकी षष्ठीके दिन सूर्योपासना करनेसे मनुष्यको किसी प्रकारका चर्मरोग नहीं हो सकता है।

इसके अतिरिक्त अन्य सभी पौराणिक कथाओंको अन्धविश्वास कहनेवाले वैज्ञानिक भी इस तथ्यको स्वीकार करते हैं कि सूर्य-किरणें सभी प्रकारके चर्मरोगोंके विनाशके लिये अत्यन्त लाभदायक हैं। आजकल तो अनेक चिकित्सालयोंमें सूर्यकी किरणोंसे ही कुष्ठरोग-ग्रस्त लोगोंका उपचार किया जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सूर्य ही एक ऐसे देवता हैं, जिनकी उपासना समस्त जाति करती है। सूर्योपासनाकी परम्परा अत्यन्त प्राचीन है और आज भी प्रायः सर्वत्र प्रचलित है।

सूर्याराधना-रहस्य

(लेखक—श्रीवजरंगबलीजी ब्रह्मचारी)

भगवान् सूर्यनारायण ही संसारके समस्त ओज, तेज, दीप्ति और कान्तिके निर्माता हैं। वे आत्मशक्तिके आश्रयदाता तथा प्रकाश-तत्त्वके विधाता हैं। वे आधि-व्याधिका अपहरण करते और कष्ट तथा क्लेशका शमन करते हैं और रोगोंको आमूल-चूल हनन कर हमारे जीवनको निर्मल, विमल, स्वस्थ एवं सशक्त बना देते हैं।

यदि हम असत्से सत्की ओर, मृत्युसे अमरत्वकी ओर तथा अन्धकारसे प्रकाश-पथकी ओर जाना चाहते हैं, तो जगत्-प्रकाश-प्रकाशक भगवान् सूर्यकी सत्ता महत्ताको समझकर हमें उनकी आराधना और उपासना मनोयोगसे करनी चाहिये।

वेदोंमें सूर्यको चराचर जगत्की आत्मा कहा गया है और इसी आत्मप्रकाशको बृहदारण्यक उपनिषद्में देखनेयोग्य, सुननेयोग्य तथा मनन करनेयोग्य बताया गया है—'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः।' (बृ० उ० २।४।५)।

सौर-सम्प्रदायवाले सूर्यको विश्वका स्रष्टा मानकर एकचित्तसे उनकी आराधना करते हैं। पहले सौर सम्प्रदायवालोंकी छः शाखाएँ थीं। सभी अष्टाक्षर-मन्त्रका जप करते, लाल चन्दनका तिलक लगाते, माला धारण करते और सूर्यकी भिन्न-भिन्न देवोंके रूपमें आराधना करते थे। कोई सूर्यकी ब्रह्माके रूपमें, दूसरे विष्णुरूपमें, तीसरे शिवके रूपमें, चौथे त्रिमूर्तिके रूपमें आराधना करते थे। पाँचवें सम्प्रदायवाले सूर्यको ब्रह्म मानकर सूर्यबिम्बके नित्य दर्शनकर षोडश उपचारोंद्वारा उनकी पूजा करते थे और सूर्यके दर्शन किये बिना जल भी नहीं पीते थे। छठे सम्प्रदायवाले सूर्यका चित्र अपने मस्तक तथा भुजाओंपर अङ्कित कराके सतत सूर्यका ध्यान करते थे। श्रुतियों, भविष्यत्, ब्रह्म आदि पुराणों, बृहत्संहिता तथा सूर्यशतक आदिमें सूर्यके महत्त्वका वर्णन किया गया है।

वेदोंमें कहा गया है कि—

'उद्यन्तमस्तं यान्तमादित्यमभिध्यायन् कुर्वन् ब्राह्मणो विद्वान् सकलं भद्रमश्नुते।'

(तै० आ० प्र० २, अ० २)

अर्थात्—'उदय और अस्त होते हुए सूर्यकी आराधना ध्यानादि, करनेवाला विद्वान् ब्राह्मण सब प्रकारके कल्याणको प्राप्त करता है।'

— भगवान् सूर्य परमात्मा नारायणके साक्षात प्रतीक हैं, इसीलिये वे 'सूर्यनारायण' कहलाते हैं। सर्गके आदिमें भगवान् नारायण ही सूर्यरूपमें प्रकट होते हैं, तभी तो सूर्यकी गणना पञ्चदेवोंमें है। वे स्थूलकाल के नियामक, तेजके महान् आकर, इस ब्रह्माण्डके केन्द्र तथा भगवान्‌की प्रत्यक्ष विभूतियोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं। इसीलिये सन्ध्योपासनमें सूर्यरूपसे ही भगवान्‌की आराधना की जाती है। उनकी आराधनासे हमारे तेज, बल, आयु और नेत्रोंकी ज्योतिकी वृद्धि होती है।

इस जगत्‌में सूर्यभगवान्‌की आराधना करनेवाले अनेक राष्ट्र हैं। शास्त्रीय शोध जैसे-जैसे बढ़ता जा रहा है, वैसे-वैसे यह सिद्ध होता जा रहा है कि सूर्यमें उत्पादिका, सरक्षिका, आकर्षिका और प्रकाशिका—सभी शक्तियाँ विद्यमान हैं। भगवान् सूर्य अपनी शक्ति अपने कुटुम्बके प्रत्येक सदस्य—चन्द्र, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि आदिको यथा योग्य परिमाणमें नित्य प्रदान करते हैं। सूर्य सिद्धान्त ज्योतिषशास्त्रकी दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ माना जाता है। कहा जाता है कि भगवान् सूर्यनारायणने 'मय' नामक असुरकी आराधनासे प्रसन्न होकर उसको यह ज्ञान दिया था। सूर्य ज्ञान देव भी हैं।

यौगिक क्रियाओंके स्फुरण और जागरणमें भी भगवान् सूर्यनारायणकी आराधनाकी महत्त्वपूर्ण भूमिका मानी जाती है। महाकुण्डलिनी नामकी शक्ति, जो समस्त सृष्टिमें परिव्याप्त है, व्यक्तिमें कुण्डलिनीके रूपमें व्यक्त होती है। प्राणवायुको वहन करनेवाली मेरुदण्डसे सम्बद्ध इडा, पिङ्गला और सुषुम्ना—ये तीन नाड़ियाँ हैं। इनमें इडा और पिङ्गलाको सूर्य-चन्द्र कहा जाता है। इनकी नियमित साधना और आराधनासे ही योगी षट्‌चक्र-भेदनकर कुण्डलिनी शक्तिको उद्‌बुद्ध कर सकनेमें सक्षम हो पाता है।

ज्ञानयोग और भक्तियोगके साथ-साथ सूर्यनारायण निष्काम कर्मयोगके भी आचार्य माने जाते हैं। इसीलिये समस्त ज्ञान विज्ञानके सारसर्वस्व भगवद्गीता (४। १)के अनुसार योगशिक्षा सर्वप्रथम भगवान् श्रीकृष्णने सूर्यनारायणको ही दी।

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।

भगवान् श्रीकृष्णकी उस दिव्य निष्काम कर्मयोगकी शिक्षाको सूर्यनारायणने इस प्रकार आत्मसात् कर लिया है कि तबसे वे नित्य, निरन्तर, नियमितरूपसे गतिशील रहकर सम्पूर्ण संसारको कर्म करनेका पथ प्रदर्शन करते चले आ रहे हैं। इसीलिये भगवान् सूर्यनारायणकी आराधना करनेवाले लोगोंको भी निष्काम कर्मयोग करनेकी नित्य नयी शक्ति, शारीरिक स्फूर्ति तथा राष्ट्र, समाज और विश्वकी सेवा करनेकी अनुपम भावभक्ति प्राप्त होती रहती है।

कर्मयोगी सूर्यका श्रेष्ठत्व

भगवान् श्रीकृष्णने विवस्वान् (सूर्यदेव) को कर्मयोगका उपदेश दिया था। सूर्य कर्मशीलता, कर्मठता किंवा लोकसंग्रहके अद्वितीय उदाहरण हैं। ये मेरु मण्डलके चारों ओर निरन्तर भ्रमण करते हुए प्रकाश एवं चैतन्यसे-निष्कामभावसे विश्व-कल्याण करते हैं। ऐतरेय ब्राह्मण (३३। ३। ५) में रोहितको कर्म-सौन्दर्य (कर्मकौशल) का उपदेश देते हुए कहा है कि—'सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरन्। चरैवेति।'—देखो, सूर्यका श्रेष्ठत्व इसीलिये है कि वे लोक मङ्गलके लिये निरन्तर गतिशील रहते हुए तनिक भी आलस्य नहीं करते हैं। अतः सूर्यदेवकी भाँति कर्तव्य-पथपर सदैव चलते ही रहो।'

सौरोपासना

(लेखक— स्वामी श्रीशिवानन्दजी)

वैदिकधर्मके अनुसार देवता-देवियोंकी संख्या गणनातीत है। 'हिंदुओंके तैंतीस कोटि देवता हैं' इस कथनका तात्पर्य संख्यासे नहीं है। इसका अर्थ यह है कि अगणित प्राणमय विभिन्न आकृतिपूर्ण यह जो सृष्टि है, इसकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके रूपमें इसके पीछे कोई सर्वशक्तिमान् पुरुष है। देवताओं, देवियोंके असंख्य नाम उसीकी विभिन्न शक्तियोंके वाहकमात्र हैं। वैदिकधर्ममें बहुदेवत्ववादकी जो कल्पना की गयी है, वह सब उस सर्वशक्तिमान्के असंख्य रूपकी कल्पना-मात्र ही है। कारण, वेद कहते हैं कि वस्तुतः एक आत्मा ही विश्वव्याप्त है। अर्थात् सभी रूपोंमें वे एक ही हैं। ऋग्वेदकी मन्त्र-संख्या ३।५३।८ में यह स्पष्ट कथन है—"रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव।" निरुक्तभगवान् कहते हैं—महाभाग्याद् देवताया एक आत्मा बहुधा स्तूयते। (७।१।४) अतएव इसके द्वारा यह सिद्धान्त निरूपित होता है कि विभिन्न देव-देवियोंकी विभिन्नता रूपमें, गुणमें है, किंतु मूलमें नहीं है, अर्थात् मूल तत्त्व एक होनेके बावजूद भी विभिन्न गुणोंके परिप्रेक्ष्यमें इसीका संख्यातीत सम्बोधन होता है।

यहाँ प्रश्न यह उठता है कि वह एक कौन है? जिसकी द्युतिच्छटा सभी देवी-देवताओंमें प्रतिभासित होती है? इसके उत्तरमें ऋग्वेद कहता है—सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च। परमात्मा सूर्य ही नित्य भास्वर अनन्त ज्योतिरूपसे विभूषित हो रहे हैं।

वेद और उपनिषद्की दृष्टिमें भी—इस श्रुतिपद' और (ऋक्० ४।४०।५) 'आ कृष्णेन रजसा०' तथा (ऋ० १।३५।२) तद्भास्कराय विद्महे प्रभाकाय धीमहि तन्नो भानुः प्रचोदयात्। (मैत्रायणीय कृष्णयजुर्वेद २।०।९) आदिसे यह मान्य है। अतएव आत्मस्वरूप सूर्यनारायण ही प्रधान देवता हैं। विभिन्न मन्त्रोंमें यही प्रतिपादित हुआ है। वे (सूर्य) विराट् पुरुष नारायण हैं। इसीलिये वेद भी उनके प्रति प्रार्थना-मुखर हैं।

वे ही विराट्पुरुष सूर्यनारायण हैं। जिनके नेत्रसे अभिव्यक्ति होती है, जो लोकलोचनोंके अधिदेवता हैं, जिनकी उपासना-द्वारा समस्त रोग नेत्रदोष आदि तथा मनस्ताप दूर होती है, जिनकी उपासनासे सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं, अनादिकालसे वर्णश्रेष्ठ द्विजगण जिनके उद्देश्यसे प्रतिदिन अर्घ्याञ्जलि निवेदन करते हैं, वे ही चर एवं अचर जगत्के जीवन देवता हैं। उन्हीं ज्योतिर्घन, जीवन-स्रष्टा, ज्ञानस्वरूप भगवान् श्रीसूर्यनारायणको हम प्रणाम करते हैं। सुतराम्, सूर्यनारायण ही विराट् पुरुष हैं, यह निःसन्देह-रूपसे स्वीकार किया जा सकता है।

इनसे अभिन्न शक्तित्रय—ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र हैं। ये सभी भगवान् सूर्यके अभिन्न अङ्गस्वरूप हैं। इनमें किंचित् भी भेद नहीं है। इसका प्रमाण शास्त्रने इस प्रकार दिया है—

> एष ब्रह्मा च विष्णुश्च रुद्र एव हि भास्करः।
> त्रिमूर्त्यात्मा त्रिवेदात्मा सर्वदेवमयो रविः॥
> (सूर्यतापनी उपनिषद् १।६)

इसकी पुष्टिमें शिवपुराणसे भी हो जाता है—

> आदित्यं च शिवं विद्याच्छिवमादित्यरूपिणम्।
> उभयोरन्तरं नास्ति ह्यादित्यस्य शिवस्य च॥

अर्थात् शिव और सूर्य दोनों अभिन्न हैं।

सूर्यनारायणकी उपासनाके विषयमें पौराणिक दृष्टान्त भी उपलब्ध होते हैं। सृष्टिके अनादिकालसे मनुष्यलोक और सौरमण्डलका सम्बन्ध अच्छेद्य है।

सौरमण्डलमें सूर्य, चन्द्र आदि नवग्रह, त्रिदेव, साध्यदेव, मरुद्गण और सप्तर्षिगणोंका निवास है। इन सबका प्रतिनिधित्व सूर्य ही करते हैं। तात्पर्य यह कि विश्व-ब्रह्माण्डमें इस अचिन्त्य-शक्तिके नियामक तेजोराशि भगवान् भास्कर ही हैं। देहधारी प्राणीकी संक्षेपतः तीन ही मुख्य अपेक्षाएँ हैं—तेज, मुक्ति और मुक्ति। इन तीनोंकी प्राप्तिके लिये वेद सन्ध्योपासनाको ही श्रेष्ठ बतलाते हैं। वर्ण-श्रेष्ठ द्विजातियोंके लिये शास्त्रके शासन—'अहरहः सन्ध्यामुपासीत'के अनुसार यह सन्ध्योपासना ही सूर्यकी उपासना है। इसके द्वारा चतुर्वर्गका फल प्राप्त होता है, यथा—

मन्देहदेहनाशार्थमुदयास्तमये रवि।
समीहते द्विजोत्कृष्ट मन्त्रतोयाञ्जलित्रयम्॥
गायत्रीमन्त्रतोयाढ्य क्षच येनाञ्जलित्रयम्।
काले सवित्रे किं न स्यात् तेन दत्त जगत्त्रयम्॥
किं किं न सविता सूते काले सम्यगुपासितः।
आयुरारोग्यमैश्वर्यं वसूनि च पशूनि च॥
मित्रपुत्रकलत्राणि क्षेत्राणि विविधानि च।
भोगानष्टविधांश्चापि स्वर्गं चाप्यपवर्गकम्॥
(स्कन्दपु० काशीखण्ड ९। ४५—४८)

जगत्में पञ्चभूतोंके साथ प्राणिमात्रका सम्बन्ध अच्छेद्य है। इन पञ्चभूतोंके अधिनायक पाँच देवता हैं। अतः प्राणिमात्र इन पञ्चदेवताओंके द्वारा विवृत हैं। इसीलिये कहा गया है कि—

आकाशस्याधिपो विष्णुरग्नेश्चैव महेश्वरी।
वायोः सूर्यः क्षितेरीशो जीवनस्य गणाधिपः॥

विष्णु आकाशके स्वामी हैं, अग्निकी महेश्वरी, वायुके सूर्य, पृथ्वीके विष्णु एवं जलके गणेश अधिदेवता हैं। अतएव इनके अस्तित्वके बिना पाञ्चभौतिक देहका अस्तित्व ही नहीं रह जाता। इसी कारण सभी कर्मोंमें ... विधान है।

गणनाथं च देवीं रुद्रं च केशवम्।
पञ्चदैवतमित्युक्त सर्वकर्मसु पूजयेत्॥

आयुर्वेदशास्त्रमें स्पष्ट उल्लेख है कि शरीरस्थ पञ्च तत्त्वोंमेंसे किसी एकके कुपित होनेपर नाना प्रकारके रोग होते हैं। इस विषयमें चरक एवं सुश्रुत प्रमाण ग्रन्थ हैं। इन पञ्चतत्त्वोंके बीच वायु प्रबलतम है। वायु-विकृति ही अस्वस्थताका प्रमुख कारण है। वायुके अधिदेवता भी सूर्य हैं, अतएव सूर्यकी उपासना अवश्य करनी चाहिये।

पुराण-ग्रन्थोंमें कुष्ठरोगके निवारणार्थ सूर्यदेवकी उपासनाकी प्रधानता स्वीकार की गयी है। भविष्य पुराणके ब्रह्मपर्वमें पाया जाता है कि कृष्णपुत्र साम्ब दुर्वासाके शापसे कुष्ठरोगग्रस्त हो गये। इस कारण श्रीकृष्णको दुःखी देखकर गरुड़ने शाकद्वीपसे वैद्यविद्यापार दर्शी पण्डित—ब्राह्मणादिको लाकर उस रोगकी निवृत्ति-के लिये प्रार्थना की। उन ब्राह्मणोंने सूर्य-मन्दिरकी स्थापना करायी और साम्बने सूर्यकी उपासनाके द्वारा रोगसे मुक्ति पायी।

ततः शापाभिभूतेन सम्यगाराध्य भास्करम्।
साम्बेनाप्त तथारोग्य रूप च परम पुन॥

मयूर कवि भी सूर्यशतककी रचना करके इस रोगसे मुक्त हुए थे। प्राकृतिक कथा यही है कि प्राणिमात्रके लिये सूर्य-पूजा एकान्तप्रयोजनीय और अवश्य करणीय है। इस प्रकार सूर्यकी उपासना पृथक्-पृथक् मासमें पृथक्-पृथक् नामोंसे साल्भर प्रतिमास करनी चाहिये, शास्त्रोंमें निर्देश है—

चैत्रमें धाता, वैशाखमें अर्यमा, ज्येष्ठमें मित्र, आषाढ़में वरुण, श्रावणमें इन्द्र, भाद्रपदमें विवस्वान्, आश्विनमें पूषा, कार्तिकमें क्रतु, मार्गशीर्षमें अंशु, पौषमें भग, माघमें त्वष्टा, फाल्गुनमें विष्णु नामसे।

भारतमें हिंदू-जातिमें आदिकालसे ही इस पूजा और उपासनाका प्रचलन है, इसके प्रमाणकी आवश्यकता नहीं है। केवल भारतवर्षमें ही नहीं, मानवजातिमें

आदिकालके इतिहासपर दृष्टिपात करनेसे इसका भूरि-भूरि प्रमाण पाया जाता है कि मानवजातिकी चिन्तन धाराके साथ-साथ सूर्यपूजा आदिकालसे ही सम्बद्ध है। सुप्रसिद्ध संस्कृतितत्त्ववेत्ता प्रो० ए० बी० कीथने कहा है कि अत्यन्त प्राचीनकालसे हा ग्रीक दर्शनमें सूर्यपूजाका प्रमाण मिलता है। Ghales भी जिनका जन्म एशिया माइनरमें ६४० खीष्ट पूर्वार्द्ध (ईसापूर्व)में हुआ था। उनका भी ऐसा ही मत है।

ग्रीक दार्शनिक Empedoeles ने सूर्यको अग्निके मूल स्रोतके रूपमें वर्णित किया है। और उन्होंने यह भी मत स्वीकार किया है कि सूर्य ही विश्वस्रष्टा हैं। हमारी उषा देवीकी सूर्य-परिक्रमाकी कथा और ग्रीक देशकी अपोलो और वियनाकी कहानी इसी तथ्यकी पोषक प्रतीत होती है। ग्रीक देशके भी विवाहमन्त्रमें आज भी सूर्य-मन्त्र पढ़ा जाता है।

मैक्सिकोमें आदिकालसे ही प्रचलित मत यही है कि विश्वब्रह्माण्डकी सृष्टिकी जड़में सूर्य ही विद्यमान हैं।

हमारे देशमें अति प्राचीनकालसे ही सूर्यमूर्ति (बुद्धगयाके स्तूपकी) एवं तात्कालीन शिलालेख और इलोराकी गुफाओंकी सूर्यप्रतिमा इस तथ्यका उद्घाटन करती है कि अति प्राचीनकालसे ही सूर्यपूजाका प्रचार एवं प्रसार इस देशमें चला आ रहा है, यहाँतक कि जैन धर्ममें भी देवगणोंके समूहमें सर्वोच्च स्थान सूर्यका ही है अर्थात् वे देवाधीश हैं।

निदान, सूर्यनारायणकी स्तुति प्रार्थना एवं उपासना आदिकालसे ही प्रचलित है और चलती रहेगी। इस विषयमें संदेहके लिये कोई स्थान नहीं है।

भगवान् भुवन-भास्कर और गायत्री-मन्त्र

(लेखक—श्रीगङ्गारामजी शास्त्री)

सूर्यका एक नाम सविता भी है। सविताकी शक्तिको ही सावित्री कहते हैं। 'तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्'—यह सविताका मन्त्र है। इसमें गायत्री-छन्दका प्रयोग होनेके कारण इसीको गायत्री-मन्त्र कहने लगे हैं। संक्षेपमें इस मन्त्रका अर्थ है—देदीप्यमान भगवान् सविता (सूर्य) के उस तेजका हम ध्यान करते हैं। वह (तेज) हमारी बुद्धिका प्रेरक बने। इस मन्त्रमें प्रणव और तीन व्याहृतियाँ जोड़कर 'ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्'—इस मन्त्रका साधक अनुष्ठान-पूर्वक जप करते हैं। इसी मन्त्रके द्वारा वेदपाठ प्रारम्भ करनेके पूर्व यज्ञोपवीत पहनाकर ब्रह्मचारीका उपनयनसंस्कार सम्पन्न कराया जाता है। किसी भी मन्त्रको सिद्ध करनेके लिये पुरश्चरण प्रारम्भ करनेके पूर्व दस सहस्र गायत्री-मन्त्र-जपका विधान है। इतना ही नहीं, गायत्रीकी महत्ता तो यहाँतक है कि किसी भी कार्यसिद्धिके लिये जहाँ शास्त्रमें अनुष्ठान-विशेष कथित न हो, वहाँ गायत्री-मन्त्रका जप और तिलका हवन करना चाहिये, यथा—

यत्र यत्र च संकीर्णमात्मानं मन्यते द्विजः।
तत्र तत्र तिलैर्होमो गायत्र्याश्च जपस्तथा॥

किसी भी मन्त्रको सिद्ध करनेके लिये सामान्य नियम यह है कि मन्त्रमें जितने अक्षर हों, उतने ही लक्ष मन्त्रका जप करके जपसंख्याका दशांश हवन, हवनका दशांश तर्पण, तर्पणका दशांश मार्जन और मार्जनका दशांश ब्राह्मण-भोजन करानेसे उस मन्त्रका पुरश्चरण पूरा होता है। पुरश्चरणके द्वारा मन्त्रके सिद्ध हो जानेपर कार्यविशेषके लिये उसका जप और कामनापरत्वसे विशेष द्रव्यका हवन करनेपर

सम्भव होती है। कभी-कभी इतना करनेपर भी सिद्धि प्राप्त नहीं होती। उस समय आचार्य कह देते हैं कि अमुक त्रुटि रह जानेके कारण अनुष्ठान सफल नहीं हुआ। पर गायत्री-मन्त्रके सम्बन्धमें यह बात नहीं है। एक बार गायत्री-मन्त्रका चौबीस लाख जप और तदनुसार हवन, तर्पण, मार्जन और ब्राह्मण-भोजनका द्वारा पुरश्चरण सम्पन्न हो जानेपर स्वयं गायत्री-माता साधकका योगक्षेम-वहन करती हैं। वैसे गायत्री-मन्त्रक द्वारा भी कामनापरक अनुष्ठान किये जा सकते हैं।

त्रिकाल-सन्ध्या—जिस प्रकार किसी भी मन्त्रको सिद्ध करनेके पूर्व अयुत गायत्री-जप करना होता है, उसी प्रकार प्रतिदिनके कार्यमें शरीर और आत्माकी पवित्रता और शक्तिसंचयके लिये त्रिकाल-सन्ध्या आवश्यक है। प्रतिदिनके कार्योंमें हमारे शरीरकी ऊर्जाका जो व्यय होता है उसकी पूर्ति सूर्योपस्थानके द्वारा भगवान् भुवन-भास्करसे होती है। इससे आध्यात्मिक शक्तिमें वृद्धि होती है। इसके साथ प्रतिदिन कम-से-कम एक माला गायत्री-जपका विधान है। त्रिकाल-सन्ध्याके लिये गायत्री-माताके तीन अलग-अलग रूपोंका ध्यान किया जाता है जो इस प्रकार है—

प्रातःकालीन ध्यान—

हंसारूढा सिताब्जे स्वरुणमणिलसद्भूषणा वाग्धेया
वेदाख्यामक्षमाला स्रजमयकमल दण्डमप्यादधानाम्।
ध्याये दोर्भिश्चतुर्भिस्त्रिभुवन
जननीं पूर्वसन्ध्यादिवन्द्याम्।
गायत्रीमृक्स्वभावामभिनव
वयसं मण्डले चण्डरश्मेः॥
विश्वमातः सुराभ्यर्च्ये पुण्ये गायत्रि यथासि।
आवाहयाम्युपास्त्यर्थमेह्येनोघ्नि पुनीहि माम्॥

'प्रातःसन्ध्याके समय सूर्यमण्डलमें श्वेत कमलपर स्थित, हंसपर आरूढ़, लालमणिके भूषणोंसे अलंकृत, आठ नेत्रों तथा चार हाथोंवाली और उनमें क्रमशः वेद, रुद्राक्षमाला, कमल एवं दण्डको धारण किये, ऋग्वेदकी जननी, किशोरी, त्रिभुवनकी माता गायत्रीका मैं ध्यान करता हूँ।'

'जगत्की माता देवताओंद्वारा पूजित, पुण्यमयी भगवती गायत्री! मैं उपासनाके लिये आपका आवाहन करता हूँ।'

मध्याह्नकालीन ध्यान—

वृषेन्द्रवाहना देवी ज्वलत्त्रिशिखधारिणी।
श्वेताम्बरधरा श्वेतनागाभरणभूषिता॥
श्वेतस्रगक्षमालालङ्कृता रक्ता च शाङ्करी।
जटाधराधराधात्री धरेन्द्राङ्कभवाम्भवा।
मातर्भवानि विश्वेशि आहुतेहि पुनीहि माम्॥

'मैं वृषभवाहना, प्रज्वलित त्रिशूल एवं श्वेत वस्त्रधारिणी, श्वेतस्रग, रुद्राक्षमाला एवं श्वेत सर्पसे विभूषित, लाल वर्णवाली, जटाधारिणी, पर्वतपुत्री, शिवरूपा, भवानी (संध्यादेवी) का आवाहन करता हूँ। आप आयें तथा मुझे पवित्र करें।'

सन्ध्याकालीन ध्यान—

सन्ध्या सायन्तनी कृष्णा विष्णुदेवा सरस्वती।
खगगा कृष्णवस्त्रा तु शङ्खचक्रधरापरा॥
कृष्णस्रग्भूषणैर्युक्ता सर्वज्ञानमयी वरा।
वीणाक्षमालिका चारुहस्ता स्मितवरानना॥
मातर्वाग्देवते स्तुत्ये आहुतेहि पुनीहि माम्॥

'मैं कृष्णवर्णा, कृष्णमुखी, कृष्णवर्णके माल्याभूषणोंसे युक्त, गरुडवाहना विष्णुरूपा, शङ्खचक्रधारिणी, वीणा रुद्राक्ष लिये, सुन्दर मुस्कानवाली, सर्वज्ञानमयी सायंकालीन सन्ध्या रूपिणी सरस्वतीका आवाहन करता हूँ। स्तुति करनेयोग्य माँ वाग्देवी आप यहाँ आयें तथा मुझे पवित्र करें।'

त्रिकाल-सन्ध्यामें हम अङ्गन्यास, करन्यासके द्वारा प्रतिदिन सूर्योपस्थान-मन्त्रोंसे सूर्यकी दिव्य शक्ति और दिव्य तेजका भौतिक शरीर और अन्तरात्मामें आवाहन करते हैं। इस प्रकार त्रिकाल-सन्ध्यामात्र धार्मिक
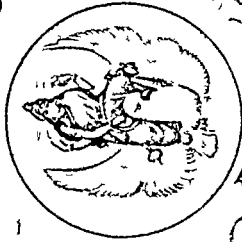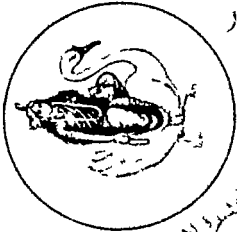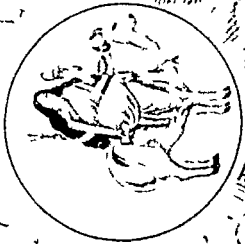
सावित्रीका त्रिकाल-ध्यान

गायत्री वेदजननी गायत्री पापनाशिनी। गायत्र्यास्तु परं नास्ति दिवि चेह च पावनम्॥

सूर्यकी शक्ति—सावित्री (गायत्री) की स्थापना और उपासनाका विधान है।

ज्योतिषां रविरंशुमान्—

श्रीमद्भगवद्गीताके उक्त कथनके अनुसार ज्योतिर्पिण्डोंमें सूर्यको परब्रह्मका स्वरूप ही माना गया है। इसलिये त्रिकाल-सन्ध्यामें सूर्य, गायत्री और प्रणवरूप ब्रह्मकी उपासना प्रत्येक द्विजके लिये आवश्यक है। ग्रहके रूपमें भी आद्य गणनाके अनुसार सूर्यकी प्रधानता बतायी गयी है। ज्यौतिषशास्त्रके अनुसार विचार करनेपर पता चलता है कि अन्य ग्रहोंकी अपेक्षा सूर्यके अनिष्ट स्थानमें स्थित होने अथवा क्रूर ग्रहके साथ सूर्यका किसी भी प्रकारका योग होनेसे ही अधिकांश रोग होते हैं। ग्रहका परस्पर सम्बन्ध चार प्रकारसे होता है, यथा—

प्रथमः स्थानसम्बन्धो दृष्टिजस्तु द्वितीयक।
तृतीयस्त्वेकतो दृष्टि स्थितिरेका चतुर्थक॥

यहाँ अनिष्ट स्थानस्थ सूर्यके कारण होनेवाले कुछ रोगोंका उल्लेख किया जाता है—

कर्कराशिस्थ शनिदृष्ट सूर्य अर्शरोग (बवासीर) कारक हैं। इसी योगसे वातव्याधि (गठिया) होती है। बुधसे दृष्ट कर्कराशिस्थ सूर्य कफ और वातरोगकारक हैं। भौमदृष्ट कर्कस्थ सूर्य भगन्दरकारक हैं। सिंहस्थ सूर्य रतौंधी कारक हैं। कुम्भस्थ सूर्य हृदयरोगकारक हैं। शनि और भौमके साथ अष्टमस्थ सूर्य अपस्मार-(मृगी-) कारक हैं। शत्रुराशिस्थ सूर्य कुब्जत्व, नेत्ररोग और कृमिरोगकारक हैं। भौमदृष्ट अष्टमस्थ सूर्य विसर्प और मसूरिकाकारक हैं। राहु और भौमके साथ अष्टमस्थ रवि कुष्ठकारक हैं। एकराशिस्थ शुक्र-सूर्य-शनि कुष्ठरोगकारक हैं। शुक्रसे दृष्ट सिंहस्थ रवि कुष्ठकारक हैं। शुक्रसे दृष्ट वृश्चिकस्थ सूर्य कुष्ठकारक हैं। नीचराशिस्थ सूर्य कुष्ठकारक हैं। शुक्रकी दशामें सूर्यकी अन्तर्दशा हो तो वे उन्माद, उदररोग, नेत्र और मुखरोगकारक हैं। सूर्यकी दशामें शुक्रकी अन्तर्दशा हो तो वे शिरोरोग, गलरोग, श्वेतकुष्ठ, ज्वर, शूल आदि कारक हैं।

इस प्रकार बहुसंख्यक रोगोंके होनेमें सूर्यका कोप प्रधान कारण होता है। इसी सिद्धान्तको ध्यानमें रखते हुए शास्त्रोंमें अर्घ्यदान और त्रिकाल-सन्ध्याका दैनिक विधान किया गया है। साथ ही ग्रहजनित व्याधियोंकी शान्तिके लिये ओषधि-मिश्रित जलसे स्नान और रत्नधारण भी निर्दिष्ट किया जाता है। सूर्य-किरणोंके विद्रुमवर्ण होनेसे सूर्यप्रसादनके लिये उसका धारण करना बताया गया है। सूर्यकिरणोंके लिये अधिक संवेदनशील होनेसे यह रत्न शरीरपर सूर्यकिरणका तत्काल प्रभाव छोड़ता है। निम्नलिखित ओषधियोंसे मिश्रित जलसे स्नान करना भी बताया गया है—

मैनसिल, छोटी इलायची, देवदारु, कुङ्कुम, खस, मुलहठी, मधु और लाल चन्दन। हृत्सादित्ययोगमें सूर्याथर्वशीर्ष, आदित्यहृदयस्तोत्रका पाठ और नेत्ररोगोंमें नेत्रोपनिषद्‌का पाठ करना बताया गया है। रोगोपशमनके लिये व्रत, पूजा-पाठ, सूर्यनमस्कार और औषधोपचार विहित हैं।

जिस प्रकार सूर्यकिरणोंसे आकृष्ट जल पृथ्वीपर जीवनदायी है, उसी प्रकार सूर्यकिरणोंसे आप्यायित होकर हमारा मन और शरीर नवीन स्फूर्ति पाता है। यदि विज्ञानकी वर्तमान प्रगति जारी रही तो वह दिन दूर नहीं, जब दैनिक ईंधन, विद्युत् और क्षुधाशान्तिके लिये सौर-ऊर्जाका प्रयोग सम्भव होगा। इस दिशामें तेजीसे काम हो रहा है। इस भौतिक उपलब्धिसे संसारका अत्यधिक कल्याण सम्भावित है। भगवान् भास्कर सर्वथा उपास्य हैं।

अक्ष्युपनिषद्

(नेत्ररोगहारी विद्या)

हरि ॐ। अथ ह साङ्कृतिर्भगवानादित्यलोकं जगाम । स आदित्यं नत्वा चाक्षुष्मतीविद्यया तमस्तुवत्। ॐ नमो भगवते श्रीसूर्यायाक्षितेजसे नमः। ॐ खेचराय नमः । ॐ महासेनाय नमः । ॐ तमसे नमः । ॐ रजसे नमः । ॐ सत्त्वाय नमः। ॐ *असतो मा सद् गमय । तमसो मा ज्योतिर्गमय । मृत्योर्माऽमृतं गमय ।* हंसो भगवाञ्छुचिरूपः अप्रतिरूपः। विश्वरूपं घृणिनं जातवेदसं हिरण्मयं ज्योतीरूपं तपन्तम्। सहस्ररश्मिः शतधा वर्तमानः पुरः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः । ॐ नमो भगवते श्रीसूर्यायादित्यायाक्षितेजसेऽहोऽवाहिनि वाहिनि स्वाहेति ।

एवं चक्षुष्मतीविद्यया स्तुतः श्रीसूर्यनारायणः सुप्रीतोऽब्रवीच्चक्षुष्मतीविद्यां ब्राह्मणो यो नित्यमधीते न तस्याक्षिरोगो भवति। न तस्य कुलेऽन्धो भवति। अष्टौ ब्राह्मणान् ग्राहयित्वाथ विद्यासिद्धिर्भवति। य एवं वेद स महान् भवति ।

× × × ×

कथा है कि एक समय भगवान् साङ्कृति आदित्य लोकमें गये । वहाँ सूर्यनारायणको प्रणाम करके उन्होंने चक्षुष्मती विद्याके द्वारा उनकी स्तुति की। चक्षु-इन्द्रियके प्रकाशक भगवान् श्रीसूर्यनारायणको नमस्कार है । आकाशमें विचरण करनेवाले सूर्यनारायणको नमस्कार है । महासेन (सहस्रों किरणोंकी भारी सेनावाले) भगवान् श्रीसूर्यनारायणको नमस्कार है । तमोगुणरूपमें भगवान् सूर्यनारायणको नमस्कार है। रजोगुणरूपमें भगवान् सूर्यनारायणको नमस्कार है। सत्त्वगुणरूपमें भगवान् सूर्यनारायणको नमस्कार है। भगवन्! आप मुझे असतसे सत्की ओर ले चलिये, मुझे अन्धकारसे प्रकाशकी ओर ले चलिये, मुझे मृत्युसे अमृतकी ओर ले चलिये। भगवान् सूर्य शुचिरूप हैं और वे अप्रतिरूप भी हैं —उनके रूपकी कहीं भी तुलना नहीं है। जो अखिल रूपोंको धारण कर रहे हैं तथा रश्मिमालाओंसे मण्डित हैं, उन जातवेदा (सर्वज्ञ, अग्नि स्वरूप) स्वर्णसदृश प्रकाशवाले ज्योति स्वरूप और तपनेवाले (भगवान् भास्करको हम स्मरण करते हैं।) ये सहस्रों किरणोंवाले और शत शत प्रकारसे सुशोभित भगवान् सूर्यनारायण समस्त प्राणियोंके समक्ष (उनकी भलाईके लिये) उदित हो रहे हैं। जो हमारे नेत्रोंके प्रकाश हैं, उन अदितिनन्दन भगवान् श्रीसूर्यको नमस्कार है। दिनका भार वहन करनेवाले विश्ववाहक सूर्यदेवके प्रति *हमारा सब कुछ सादर समर्पित है।*

इस प्रकार चक्षुष्मती विद्याके द्वारा स्तुति किये जानेपर भगवान् सूर्यनारायण अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले— जो ब्राह्मण इस चक्षुष्मतीविद्याका नित्य पाठ करता है, उसे आँखका रोग नहीं होता, उसके कुलमें कोई अन्धा नहीं होता । आठ ब्राह्मणोंको इसका ग्रहण करा देनेपर इस विद्याकी सिद्धि होती है । जो इस प्रकार जानता है, *वह महान् हो जाता है।*

कृष्णयजुर्वेदीय चाक्षुषोपनिषद्

अब नेत्र-रोगका हरण करनेवाली तथा पाठमात्रसे सिद्ध होनेवाली चाक्षुषीविद्याकी व्याख्या करते हैं, जिससे समस्त नेत्ररोगोंका सम्पूर्णतया नाश हो जाता है और नेत्र तेजयुक्त हो जाते हैं । उस चाक्षुषी विद्याके अहिर्बुध्न्य ऋषि हैं, गायत्री छन्द है, भगवान् सूर्य देवता हैं, नेत्ररोगकी निवृत्तिके लिये इसका जप होता है—यह विनियोग है* ।

चाक्षुषीविद्या

ॐ चक्षुः चक्षुः चक्षुः तेजः स्थिरो भव । मां पाहि पाहि । त्वरितं चक्षूरोगान् शमय शमय । मम जात

---

* ॐ अस्याश्चाक्षुषीविद्याया अहिर्बुध्न्य ऋषिः, गायत्री छन्दः, सूर्यो देवता, चक्षूरोगनिवृत्तये जपे विनियोगः ।

रूप तेजो दर्शय दर्शय । यथाहम् अन्धो न स्यां तथा कल्पय कल्पय । कल्याणं कुरु कुरु । यानि मम पूर्वजन्मोपार्जितानि चक्षुःप्रतिरोधकदुष्कृतानि सर्वाणि निर्मूलय निर्मूलय । ॐ नमः चक्षुस्तेजोदात्रे दिव्याय भास्कराय । ॐ नमः करुणाकरायामृताय । ॐ नमः सूर्याय । ॐ नमो भगवते सूर्यायाक्षितेजसे नमः । खेचराय नमः । महते नमः । रजसे नमः । तमसे नमः । असतो मा सद्गमय । तमसो मा ज्योतिर्गमय । मृत्योर्मा अमृतं गमय । उष्णो भगवाञ्छुचिरूपः । हंसो भगवान् शुचिरप्रतिरूपः । य इमां चक्षुष्मतीं विद्यां ब्राह्मणो नित्यमधीते न तस्याक्षिरोगो भवति । न तस्य कुले अन्धो भवति । अष्टौ ब्राह्मणान् ग्राहयित्वा विद्यासिद्धिर्भवति ॥

ॐ (भगवान्‌का नाम लेकर कहे), हे चक्षुके अभिमानी सूर्यदेव ! आप चक्षुमें चक्षुके तेजरूपसे स्थिर हो जायँ । मेरी रक्षा करें, रक्षा करें । मेरी आँखके रोगोंका शीघ्र शमन करें, शमन करें । मुझे अपना सुवर्ण-जैसा तेज दिखला दें, दिखला दें । जिससे मैं अंधा न होऊँ, कृपया वैसे ही उपाय करें, उपाय करें । मेरा कल्याण करें, कल्याण करें । दर्शन शक्तिका अवरोध करनेवाले मेरे पूर्वजन्मार्जित जितने भी पाप हैं, सबको जड़से उखाड़ दें, जड़से उखाड़ दें । ॐ (सच्चिदानन्दस्वरूप) नेत्रोंको तेज प्रदान करनेवाले दिव्यस्वरूप भगवान् भास्करको नमस्कार है । ॐ करुणाकर अमृतस्वरूपको नमस्कार है । ॐ भगवान् सूर्यको नमस्कार है । ॐ नेत्रोंके प्रकाश भगवान् सूर्यदेवको नमस्कार है । ॐ आकाश विहारीको नमस्कार है । परम श्रेष्ठस्वरूपको नमस्कार है । ॐ (सबमें क्रियाशक्ति उत्पन्न करनेवाले) रजोगुणरूप भगवान् सूर्यको नमस्कार है । (अन्धकारको सर्वथा अपने भीतर लीन करनेवाले) तमोगुणके आश्रयभूत भगवान् सूर्यको नमस्कार है । हे भगवन् ! आप मुझको असत्से सत्की ओर ले चलिये । अन्धकारसे प्रकाशकी ओर ले चलिये । मृत्युसे अमृतकी ओर ले चलिये । उष्ण स्वरूप भगवान् सूर्य शुचिरूप हैं । हंसस्वरूप भगवान् सूर्य शुचि तथा अप्रतिरूप हैं—उनके तेजोमय स्वरूपकी समता करनेवाला कोई भी नहीं है । जो ब्राह्मण इस चक्षुष्मतीविद्याका नित्य पाठ करता है, उसे नेत्र सम्बन्धी कोई रोग नहीं होता । उसके कुलमें कोई अंधा नहीं होता । आठ ब्राह्मणोंको इस विद्याका दान करनेपर—इसका ग्रहण करा देनेपर इस विद्याकी सिद्धि होती है ।*

---

* चाक्षुषी-(नेत्र-) उपनिषद्‌की शीघ्र फल देनेवाली विधि—नेत्ररोगसे पीड़ित श्रद्धालु साधकको चाहिये कि प्रतिदिन प्रातःकाल हल्दीके घोलसे अनारकी शाखाकी कलमसे काँसेके पात्रमें निम्नलिखित बत्तीसा यन्त्रको लिखे—

८	१५	२	७
६	३	१२	११
१४	९	८	१
४	७	१०	१२

मम चक्षूरोगान् शमय शमय

फिर उसी यन्त्रपर ताँबेकी कटोरीमें चतुर्मुख (चारों ओर चार बत्तियोंका) घीका दीपक जलाकर रख दें । तदनन्तर गन्ध पुष्पादिसे यन्त्रका पूजन करें । फिर पूर्वकी ओर मुख करके बैठें और हरिद्रा (हल्दी)की मालासे 'ॐ ह्रीं हंसः' इस बीजमन्त्रकी छः मालाएँ जपकर चाक्षुषोपनिषद्‌के कम-से-कम बारह पाठ करें । पाठके पश्चात् फिर उपर्युक्त बीजमन्त्रकी पाँच मालाएँ जपें । इसके बाद भगवान् सूर्यको श्रद्धापूर्वक अर्घ्य देकर प्रणाम करें और मनमें यह निश्चय करें कि मेरा नेत्ररोग शीघ्र ही नष्ट हो जायगा । ऐसा करते रहनेसे इस उपनिषद्‌का नेत्ररोगनाशमें अद्भुत प्रभाव बहुत शीघ्र देखनेमें आता है । —पं० श्रीमुकुन्दवल्लभजी मिश्र, ज्यौतिषाचार्य

भगवान् सूर्यका सर्वनेत्ररोगहर चाक्षुषोपनिषद्

(एक अनुभूत प्रयोग)

अक्षि-उपनिषद् भगवान् सूर्यकी नेत्र-रोगोंके लिये एक रामबाण उपासना है। रविवारको किसी शुभ तिथि और नक्षत्रमें प्रातः सूर्यके सम्मुख नेत्र बंद करके खड़े हो या बैठकर—'मेरे समस्त नेत्ररोग दूर हो रहे हैं' इस भावनासे रविवारसे बारह पाठ नित्य किये जाते हैं। यह प्रयोग बारह रविवारतकका होता है। यदि पुष्य नक्षत्रके साथ रविवारका योग मिल जाय तो अति उत्तम है। हस्त नक्षत्रयुक्त रविवारसे भी यह पाठ प्रारम्भ किया जाता है। लाल कनेर, लाल चन्दन मिले जलसे ताम्र-पात्रसे सूर्यनारायणको अर्घ्य देकर नमस्कार करके पाठ प्रारम्भ करना चाहिये। यह सैकड़ों बारका अनुभूत प्रयोग है। रविवारके दिन सूर्य रहते बिना नमकका एक बार भोजन करना चाहिये।

—प० श्रीमथुरानाथजी शुक्ल

चक्षुदृष्टि एव सूर्योपासना

(चक्षुष्मतीविद्या)

(लेखक—श्रीसोमचैतन्यजी श्रीवास्तव शास्त्री, एम्० ए०, एम्० ओ० एल्०)

मनुष्यको सुख-दुःख आदिकी प्राप्ति उसके द्वारा किये गये अपने कर्म, आचार एवं आहार-विहार आदिके अनुसार होती है। रोगजन्य क्लेशोंके मूल कारण भी उसके पूर्वजन्मकृत कर्म तथा मिथ्या आहार विहारजन्य दोषके प्रकोप हैं। धर्मानुष्ठान, पुण्यकर्माचरण एवं सुविहित औषधसेवनसे भी जो रोग शान्त नहीं होते हैं, उन्हें पूर्वजन्मकृत पापसे उत्पन्न समझना चाहिये। जबतक वह पूर्वजन्मका किया हुआ पाप-दोष निर्मूल नहीं होता, तबतक वह व्याधिरूपमें पीड़ा देता रहता है। ऐसे पाप-दोषकी शान्तिके लिये प्रायश्चित्त, देवाराधन, देवाभिषेक, जप होम, मार्जन, दान, दिव्य मणि एव यन्त्रका धारण, अभिमन्त्रित उत्तम औषधिका सेवन आदिके रूपमें दैवव्यपाश्रय चिकित्साका विधान मिलता है। चरक (सूत्र० अ० ११, चिकित्सा० अ० ३), अष्टाङ्गहृदय (चिकित्सा० अ० १०) एव वीरसिंहावलोक आदि कई ग्रन्थोंमें अनेक स्थानोंपर दैवव्यपाश्रय चिकित्सा करनेका विधान मिलता है।

भारतीय दर्शन पिण्ड एव ब्रह्माण्डमें अभेद मानता है। छान्दोग्य एव बृहदारण्यकोपनिषद्में अक्षिपुरुषविद्या —(उपकोसलविद्या-) प्रकरणमें चक्षुर्मण्डल तथा सूर्य-मण्डलमें अभेददृष्टि रखकर उपासना करनेका वर्णन मिलता है। वस्तुतः सृष्टि-व्यवस्थामें अध्यात्म और अधिदैवत जगत् परस्पर उपकार्योपकारकरूपमें अवस्थित हैं। सर्वलोकचक्षु भगवान् सूर्य ही पिण्डमें चक्षु शक्तिके रूपमें प्रविष्ट हुए हैं। अतः वे ही प्राणियोंकी दृष्टिशक्तिके अधिष्ठाता देव हैं। इसलिये दिव्यदृष्टिकी प्राप्ति एव नेत्रगत रोगोंको दूर करनेके लिये भगवान् सूर्यकी आराधना की जाती है।

परशुरामकल्पसूत्रके परिशिष्ट एव श्रीउमानन्दनाथ कृत नित्योत्सवमें दूरदृष्टिकी सिद्धि प्रदान करनेवाली चक्षुष्मतीविद्याका वर्णन मिलता है। सोलह मन्त्रोंसे समन्वित समष्टिरूपिणी यह विद्या है। मूलाधारमें ध्यान केन्द्रित करके इसका जप किया जाता है। इस विद्याके सिद्ध होनेपर साधक अन्य देश या द्वीपमें स्थित धन एव अन्य पदार्थोंको भी यथावत्रूपमें देख एवं जान सकता है। इस विद्याका विनियोग, ध्यान एवं पाठ निम्नलिखित रूपमें मिलता है—

विनियोग—

चक्षुष्मतीम मस्य भार्गव ऋषि, नाना छन्दांसि, चक्षुष्मती देवता, तत्प्रीत्यर्थे जपे विनियोग ।

ध्यान—

चक्षुस्तेजोमय पुष्प क दुक्र विभ्रतीं करै ।
गौर्यसिंहासनारूढा देवीं चक्षुष्मतीं भजे ॥

चक्षुष्मतीविद्याका पाठ—

ॐ सूर्यायाक्षितेजसे नम , खेचराय नम , असतो मा सद्गमय । तमसो मा ज्योतिर्गमय । मृत्योर्माऽमृत गमय । उष्णो भगवान् शुचिरूप । हंसो भगवान् शुचिरप्रतिरूपः ।

वय सुपर्णा उपसेदुरिन्द्र प्रियमेधा ऋषयो नाधमाना । अपध्वान्तमूर्णुहि पूर्धि चक्षुर्मुमुग्ध्यस्मा न्निधयेव बद्धान् ॥ पुण्डरीकाक्षाय नम । पुष्करेक्षणाय नम । अमलेक्षणाय नम । कमलेक्षणाय नमः । विश्वरूपाय नम । श्रीमहाविष्णवे नम ॥

इति षोडशाक्षरमन्त्रप्ररूपिणी चक्षुष्मतीविद्या दूरदृष्टि सिद्धिप्रदा ।

वीरसिंहावलोकमें नेत्रके रोगीके लिये निम्नलिखित दवीचिकित्साका विधान मिलता है ।

(१) अक्षिसम्भवरोगाणामाज्य कनकसयुतम् । अर्थात—नेत्ररोगी विधिपूर्वक स्वर्णयुक्त घृतकी दस हजार आहुतियाँ अग्निमें दे ।

(२) जबतक रोगसे मुक्ति न हो तबतक प्रतिदिन —ॐ चक्षुर्मे धेहि चक्षुषे चक्षुर्विख्यै तनूभ्यः । स चेदं वि च पश्येम ॥ (—काठक स ४ । ११ । ७८) इस मन्त्रका जप करे एव ब्राह्मणको मुद्गान (मूँग)का दान दे । तथा—

(३) 'वय सुपर्णो सुपर्णोऽसि'—इस मन्त्रसे घृतसहित चरुकी एक हजार आठ आहुतियाँ दे । '

(४) मन्ददृष्टि होनेपर 'उद्यन्नद्यमित्रम' इत्यादि ऋचाओंसे हजार कलशोंद्वारा भगवान् सूर्यका अभिषेक करे ।

(५) गरुडगायत्री—'ॐ पक्षिराजाय विद्महे सुवर्णपक्षाय धीमहि । तन्नो गरुडः प्रचोदयात् ॥' इस मन्त्रसे घृत मिले हुए तिलकी आहुति आँखके रोगको दूर करता है ।

(६) नष्टाक्ष व्यक्ति—'विष्णो ररराट०, प्रतद्विष्णु०, 'विष्णोर्नुकम्०'—इनमेंसे किसी एक मन्त्रका जप करे तथा शुद्ध एव पवित्र हो पूर्वाभिमुख बैठकर समिदाज्य तिलकी (लकड़ी, घी, तिलकी) एक सौ आठ आहुतियाँ प्रतिदिन अग्निमें दे ।

नेत्ररोगोंको दूर करनेके लिये पुराणोक्त नेत्रोपनिषद् अथवा यजुर्वेदीय चाक्षुषोपनिषद्का जप करनेका विधान भी मिलता है । इन दोनोंके पाठोंमें बहुत ही कम अन्तर है । दोनों ही उपनिषदें 'चक्षुष्मतीविद्या'के नामसे प्रसिद्ध हैं, परतु इनके प्रयोगमें भिन्नता मिलती है । (प्रयोग निम्नलिखित इनका पाठ पहले दिया गया है ।)

नेत्रोपनिषद्का पाठ धर्मठगुरुमें मिलता है । रविक्तके अनुष्ठानपूर्वक रोगके अनुसार इसका एक सौ, एक हजार या दस हजार पाठ पुरश्चरणके रूपमें करना चाहिये । योगीगुरुके अनुसार सूर्योदयके एक घड़ी पश्चात्तक एव सूर्यास्तके एक घड़ी पूर्वकालसे लेकर इसका पाठ करना आवश्यक है । नेत्ररोगसे पीड़ित साधक खड़े रहकर अथवा एक पैरपर स्थित होकर भगवान् सूर्यके पूर्ण अरुणमण्डलको दोनों नेत्रोंसे देखता हुआ हृदयमें जप करे एव शनै शनै (सूर्यमण्डलका तेज नेत्रोंको सह्य होनेकी क्षमताके साथ-साथ) जपकी संख्यामें वृद्धि करे ।

पूर्णारुणे दिनमणौ नयनोत्पलाभ्या
मालोकयेद्धृदि जपन् ननु निर्निमेषम् ।
आरूढ उन्नतपदे नरकै प्रबुद्धि
कुर्यादुपासनविधिं प्रतिसध्यमेतत् ॥

सूर्योदयानन्तरहोरैकमात्रमस्ताच्च प्राक् तावदेवेति भाव (योगीगुरु)।

नेत्रोपनिषद् (चाक्षुषीविद्याका पाठ पृष्ठ ३३१ में है।)

कृष्णयजुर्वेदीय चाक्षुषोपनिषद्के अन्तिम भागमें नेत्रोपनिषद्की अपेक्षा कुछ मन्त्र अधिक मिलते हैं। इस उपनिषद्के पाठके आरम्भ एव अन्तमें—'**सह नाववतु०**' इस शान्तिमन्त्रका पाठ करना चाहिये। इस चाक्षुषोपनिषद्की प्रयोगविधि 'कल्याण'के२ ३वें वर्षके उपनिषद् अङ्कमें प्रकाशित हुई थी।

उपर्युक्त दोनों उपनिषदोंकी विद्यासिद्धिका उपाय यह बताया गया है कि ये विद्याएँ आठ ब्राह्मणोंको ग्रहण करवा देनेपर सिद्ध हो जाती हैं। इन्हें लिखकर आठ शुचि सुसस्कृत ब्राह्मणोंको दे तथा उन्हें शुद्ध उच्चारणसहित पाठविधि सिखा दे—ऐसा करनेपर इनकी सिद्धि हो जाती है। उसके बाद इन्हें अपने या अपरके हितके लिये प्रयोगमें लाना चाहिये।

बत्तीसायन्त्र* सूर्योपासनासे सम्बद्ध है तथा सर्वदुःखनिवारण एव अभीष्टकार्यकी सिद्धिके लिये इसके दो अन्य प्रयोग कर्मठगुरुमें मिलते हैं—

(१) रविवारके दिन इस यन्त्रको भोजपत्र या कागजपर हरिद्राके रससे अनारकी लेखनीके द्वारा लिखे एव इस यन्त्रके नीचे अपना मनोरथ लिख दे। पुनः इसपर रूई बिछाकर यन्त्रलिखित कागजको लपेट दे और बत्तीरूपमें बनाकर इससे ज्योति प्रज्वलित करे। इसके बाद हरिद्राकी मालासे—'ॐ ह्रीं हस'—इस भास्करबीज-मन्त्रका एक हजार एक सौ बार जप करे। इस प्रकार लगातार सात रविवारको निर्दिष्ट विधिका अनुष्ठान कर मनुष्य सभी दुःखोंसे मुक्त होकर अत्यन्त सुख पाता है।

(२) रविवारके दिन प्रातःकाल उठकर स्नान करके हरिद्रारससे कांस्यपात्रमें बत्तीसायन्त्र लिखे और उसके ऊपर चतुर्मुख दीपककी स्थापना करके सूर्योदय होनेपर मन्त्रका पञ्चोपचार पूजन करे। दोनों हाथोंसे इस यन्त्रपात्रको उठा ले और सूर्यके सम्मुख स्थित होकर—'**ॐ ह्रीं हस**'—इस मन्त्रका जप करे। सूर्य दिनमें जैसे-जैसे परिवर्तित होते जायँ, वैसे-वैसे साधक भी घूमता जाय। सूर्यके अस्त होनेपर उन्हें अर्घ्य देकर प्रणाम करे, इस प्रकार अनुष्ठानको सम्पन्न करके मिष्टान्न भोजन कर भूमिपर शयन एव ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करे। कार्यकी गुरुताके अनुसार प्रति रविवारको इस प्रकार सवा मास, तीन मास, छः मास अथवा एक वर्षतक इसका अनुष्ठान करनेसे भगवान् श्रीसूर्यकी कृपासे सभी दुरूह कार्य सिद्ध होते हैं। अस्तु।

चक्षुष्मतीविद्याके चमत्कारका एक अनुभवपूर्ण प्रयोग, पाठकोंके लाभार्थ दिया जा रहा है। यह प्रयोग कुछ दिन पूर्व 'स्वास्थ्य' पत्रिकाके अनुभवाङ्क (फरवरी, १०७८)में छपा था। लेखकके विवरणके अनुसार राजपीपला-(गुजरात)के प्रसिद्ध डाक्टर श्रीनरहरि भाईको सन् १९४०में Detatchment of Retina नामक भयकर नेत्ररोग हुआ। इस रोगमें आँखका पर्दा फट जाता है एव ज्योति आंशिक रूपमें या सर्वांशमें चली जाती है। सर्जनोंके प्रयत्न असफल रहनेपर डाक्टर साहब अत्यन्त निराश हो गये। उक्त डाक्टर साहबके घरपर प्रातःस्मरणीय पूज्य महात्मा पुरुष श्रीरङ्ग अवधूत महाराज आया करते हैं। ये महात्मा ईश्वरका दर्शन किये हुए पवित्र सिद्ध अवतारी पुरुष माने जाते हैं। डाक्टर साहबकी प्रार्थनापर पूज्य

* द्रष्टव्य-पृष्ठ ३३२ की टिप्पणी जहाँ यह विधि पूर्ववत् दी गयी है।

श्रीअवधूतजी महाराजने उन्हें प्रसादस्वरूप विधिसहित 'चक्षुष्मतीविद्या' प्रदान की। इस विद्याका विधिपूर्वक अनुष्ठान करनेसे डाक्टर साहबकी नेत्रज्योति प्राप्त हुई। उसके बाद उन्होंने कई वर्षोंतक जनसेवा की तथा उनकी दृष्टि शक्ति अब भी बनी हुई है। डाक्टर साहब कहते हैं कि इस चक्षुष्मतीविद्याके प्रभावसे आज मेरी नेत्र-ज्योति है, अन्यथा मैं कबका अंधा हो गया था। उन्होंने इस विद्याकी प्रतियाँ छपवाकर निःशुल्क प्रसादीके रूपमें जनसमुदायको वितरित की हैं। श्रद्धा एवं धैर्यके साथ विधिपूर्वक इस विद्याका प्रयोग करनेसे नेत्रके अनेकविध रोग सर्वांशमें दूर हो सकते हैं।

पूज्य श्रीअवधूतजीद्वारा बनायी गयी चक्षुष्मती विद्याका पाठ एवं इसकी प्रयोगकी विधि नीचे दी जा रही है।

प्रयोगविधि—प्रातः शौच आदिसे निवृत्त होकर स्नान-सन्ध्या वन्दनके बाद पूजास्थानपर बैठिये और आचमन, प्राणायाम करनेके बाद नेत्ररोगकी निवृत्तिके लिये चक्षुष्मती विद्याके जपका संकल्प कीजिये। फिर गन्ध पुष्पादिसे सूर्यदेवका पूजन कीजिये। पूजा-द्रव्यके अभावमें मानसोपचारसे पूजन कीजिये। इस प्रकार भगवान् सूर्यकी पूजा करनेके बाद एक कांस्यधातुकी थाली या अन्य किसी चौड़े मुखवाले कांस्यपात्रमें शुद्ध जल भरकर उसे ऐसी जगहपर रखिये, जिससे उस पात्रके जलमें सूर्य देवताका प्रतिबिम्ब दीखता रहे। नेत्ररोगी साधकको उस पात्रके सामने पूर्वाभिमुख बैठकर पात्रके जलके भीतर सूर्य-प्रतिबिम्बकी ओर दृष्टि रखकर भावनायुक्त अर्थानुसन्धानके साथ दस, अट्ठाइस या एक सौ आठ पाठ करना चाहिये। यदि नित्य इतने पाठके लिये समय न मिले तो प्रतिदिन भले ही दस बार पाठ किया जाय, परंतु रविवारके दिन अट्ठाइस या एक सौ आठ पाठ करनेका प्रयत्न अवश्य किया जाय। यदि प्रारम्भमें नेत्र सूर्य प्रतिबिम्बकी ओर देखना सहन न कर सकें तो घृत-दीपकी ज्योतिकी ओर देखते हुए पाठ कर सकते हैं। (नेत्रोंके अक्षम होनेपर जलमें प्रतिबिम्बित सूर्य-बिम्बकी ओर देखते हुए ही पाठ करना चाहिये)। पाठ पूर्ण होनेपर जप श्रीसूर्यनारायणको अर्पित करके नमस्कार कीजिये। फिर उस कांस्यपात्रस्थित शुद्ध जलमें अधखुले नेत्रमें धीरे-धीरे छिड़काव कीजिये। जल छिड़कनेके बाद दोनों आँखें पाँच मिनटतक बंद रखिये। तत्पश्चात् सभी विधियाँ पूर्ण कर अपने दैनिक कर्म कीजिये।

पाठके उपरान्त नित्य—**'ॐ वर्चोदा असि वर्चो मे देहि स्वाहा'**—इस मन्त्रको बोलते हुए गोघृतकी दस आहुतियाँ अग्निमें देनी चाहिये। रविवारके दिन बीस आहुतियाँ आवश्यक हैं। यदि आहुति न दे सकें तो कोई आपत्ति नहीं, परंतु यदि पाठके साथ नित्य यज्ञाहुति भी दी जा सके तो उत्तम है।

चक्षुष्मतीविद्याका पाठ—

अस्याश्चक्षुष्मतीविद्याया अहिर्बुध्न्य ऋषिः। गायत्री छन्दः। श्रीसूर्यनारायणो देवता। ॐ बीजम्। नमः शक्तिः। स्वाहा कीलकम्। चक्षूरोगनिवृत्तये जपे विनियोगः।

ॐ चक्षुः चक्षुः चक्षुः तेजः स्थिरो भव। मां पाहि पाहि। त्वरितं चक्षूरोगान् शमय शमय। मम जातरूपं तेजो दर्शय दर्शय। यथाहमन्धो न स्यां तथा कल्पय कल्पय। कल्याणं कुरु कुरु। मम यानि यानि पूर्वजन्मोपार्जितानि चक्षुःप्रतिरोधकदुष्कृतानि तानि सर्वाणि

निर्मूलय निर्मूलय । ॐ नमश्चक्षुस्तेजोदात्रे दिव्य भास्कराय । ॐ नमः करुणाकरायामृताय । ॐ नमो भगवते श्रीसूर्यायाक्षितेजसे नमः । ॐ खेचराय नमः । ॐ महासेनाय नमः । ॐ तमसे नमः । ॐ रजसे नमः । ॐ सत्याय (सत्त्वाय ?) नमः । ॐ असतो मा सद्गमय । ॐ तमसो मा ज्योतिर्गमय । ॐ मृत्योर्माऽमृतं गमय । उष्णो भगवाञ्छुचिरूपः । हंसो भगवाञ्छुचिरप्रतिरूपः ।*

ॐ विश्वरूपं घृणिनं जातवेदसं
हिरण्मयं ज्योतीरूपं तपन्तम् ।
सहस्ररश्मिः शतधा वर्तमानः
पुरः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः ॥

ॐ नमो भगवते श्रीसूर्यायादित्यायाऽक्षितेजसेऽहोवाहिनि वाहिनि स्वाहा ॥

ॐ वयः सुपर्णा उपसेदुरिन्द्रं
प्रियमेधा ऋषयो नाधमानाः ।
अप ध्वान्तमूर्णुहि पूर्धि
चक्षुर्मुमुग्ध्यस्मान्निधयेव बद्धान् ॥

ॐ पुण्डरीकाक्षाय नमः । ॐ पुष्करेक्षणाय नमः । ॐ कमलेक्षणाय नमः । ॐ विश्वरूपाय नमः । ॐ श्रीमहाविष्णवे नमः । ॐ सूर्यनारायणाय नमः ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

जो सच्चिदानन्दस्वरूप हैं, सम्पूर्ण विश्व जिनका रूप है, जो किरणोंमें सुशोभित एवं जातवेदा (भूत आदि तीनों कालोंकी बातको जाननेवाले) हैं, जो ज्योतिःस्वरूप, हिरण्मय (सुवर्णके समान कान्तिमान्) पुरुषके रूपमें तप रहे हैं, इस सम्पूर्ण विश्वके जो एकमात्र उत्पत्ति स्थान हैं, उन प्रचण्ड प्रतापवाले भगवान् सूर्यको हम नमस्कार करते हैं । वे सूर्यदेव समस्त प्रजाओं (प्राणियों) के समक्ष (उनके कल्याणार्थ) उदित हो रहे हैं ।

ॐ नमो भगवते आदित्याय अहोवाहिनी अहोवाहिनी स्वाहा ।

षड्विध ऐश्वर्यसम्पन्न भगवान् आदित्यको नमस्कार है । उनकी प्रभा दिनका भार वहन करनेवाली है, हम उन भगवान्के लिये उत्तम आहुति देते हैं । जिन्हें मेधा अत्यन्त प्रिय है, वे ऋषिगण उत्तम परोंवाले पक्षीके रूपमें भगवान् सूर्यके पास गये और इस प्रकार प्रार्थना करने लगे—'भगवन् ! इस अन्धकारको छिपा दीजिये, हमारे नेत्रोंको प्रकाशसे पूर्ण कीजिये तथा तमोमय बन्धनमें बँधे हुए-से हम सब प्राणियोंको अपना दिव्य प्रकाश देकर मुक्त कीजिये । पुण्डरीकाक्षको† नमस्कार है । पुष्करेक्षणको नमस्कार है । निर्मल नेत्रोंवाले—अमलेक्षणको नमस्कार है । कमलेक्षणको नमस्कार है । विश्वरूपको नमस्कार है । महाविष्णुको नमस्कार है ।

इस (ऊपर वर्णित) चक्षुष्मतीविद्याके द्वारा आराधना किये जानेपर प्रसन्न होकर भगवान् श्रीसूर्यनारायण संसारके सभी नेत्र-पीड़ितोंके कष्टको दूर करके उन्हें पूर्ण दृष्टि प्रदान करें—यही प्रार्थना है ।

---

* उपर्युक्त अंशका अर्थ पृष्ठ ३३२ के मूलके साथ देखें ।

† पुण्डरीकाक्ष, पुष्करेक्षण और कमलेक्षण—इन तीनों नामोंका एक ही अर्थ है—कमलके समान नेत्रोंवाले भगवान् । कमलसे इन नेत्रों तथा उपमादिकी सूक्ष्मताओंको समझनेके लिये अमरकोशकी टीकाएँ, अनुशासिकी टीकाएँ आदि देखनी चाहिये । साहित्यदर्पण प्रपञ्चसारके अनुसार समानार्थक शब्दोंमें भी मन्त्रके चमत्कार सन्निहित रहते हैं ।

सूर्य और आरोग्य

(लेखक—डॉ॰ आदित्यप्रकाशजी शास्त्री, एम्॰ ए॰, पी एच्॰ डी॰, डी॰ लिट्॰, डी॰ एस्-सी॰)

भगवान् मरीचिमालीकी महत्ताका प्रतिपादन भारतीय वाङ्मयकी वह अमूल्य थाती है, जिसका आवश्यकतानुसार उपयोग कर भारतीय मेधाने स्वयको कृतकृत्य करनेका यदृश सफल प्रयास किया है। भगवान् सूर्य आकाशमण्डलके ममुज्ज्वलमणि, खेचर-समुदायके चक्रवर्ती, पूर्वदिशाके कर्णाभरण, ब्रह्माण्ड-मदनके दीपक, कमलसमूहके प्रिय, चक्रवाक-समुदायका शोक हरनेवाले, भ्रमरसमूहके आश्रयभूत, सम्पूर्ण दैनिक कार्यव्यवहारके सूत्रधार तथा दिनके स्वामी हैं। ये ही दिन और रातके निर्माता, वर्षको बारह मासोंमें विभक्त करनेवाले, छहों ऋतुओंके कारण यथासमय दक्षिण और उत्तर दिशाका आश्रय लेकर दक्षिणायन तथा उत्तरायणके विभाजक हैं। ये ही युगभेद, तथा कल्पभेदका विधान करते हैं। ब्रह्माकी परार्द्ध संख्या इन्हींके आश्रयसे सम्पन्न होती है। ये ही संसारके कर्ता, भर्ता और संहर्ता हैं। इन्हीं सब विशेषताओंके कारण वेद इनकी वन्दना करते हैं। गायत्री इन्हींका गान करती है और ब्राह्मण प्रतिदिन इन्हींकी उपासना किया करते हैं। ये ही भगवान् श्रीरामके कुलके मूल हैं। भगवान् नारायणका नाम भी इनके साथ जुड़कर अमित तेजस्विताका ज्ञापन करके मर्त्यलोकवासियोंको परमपिताके प्रति अपने दायित्वको निभानेकी प्रेरणा देता है। श्रीसूर्यनारायण हमारी दैनिक अर्चाके देव हैं।

अठारह पुराणोंमें भगवान् सूर्यके सम्बन्धमें प्रचुर सामग्री प्राप्त होती है। श्रीमद्भागवतमें कहा गया है कि सूर्यके द्वारा ही दिशा, आकाश, द्युलोक, भूर्लोक, स्वर्ग और मोक्षके प्रदेश, नरक और रसातल तथा अन्य समस्त भागोंका विभाजन होता है—

सूर्येण हि विभज्यन्ते दिशः खं द्यौर्मही भिदा।
स्वर्गापवर्गौ नरका रसौकांसि च सर्वशः॥
(५।२०।४५)

इसके साथ ही वहाँ यह भी स्पष्ट रूपमें बताया गया है कि भगवान् सूर्य ही देवता, तिर्यक्, मनुष्य, सरीसृप, लतावृक्षादि एवं समस्त जीवसमुदायके आत्मा और नेत्रेन्द्रियके अधिष्ठाता हैं—

देवतिर्यङ्मनुष्याणां सरीसृपसवीरुधाम्।
सर्वजीवनिकायानां सूर्य आत्मा दृगीश्वरः॥
(५।२०।४६)

भगवान् सूर्यकी स्थिति-गति आदिका परिचय श्रीमद्भागवतके पञ्चम स्कन्धमें बीसवें अध्यायसे बाईसवें अध्याय पर्यन्त दिया हुआ है।

श्रीविष्णुपुराणके द्वितीय अंशमें आठवें अध्यायसे दसवें अध्यायतक भगवान् सूर्यके वैशिष्ट्य, स्थिति-गति आदिका सुरुचिपूर्ण वर्णन हुआ है। दसवें अध्यायमें विभिन्न मासपरक सूर्यके बारह अन्वर्थक नाम इस प्रकार बताये गये हैं—

चैत्रके सूर्य हैं—धाता, वैशाखके अर्यमा, ज्येष्ठके मित्र, आषाढ़के वरुण, श्रावणके इन्द्र, भाद्रपदके विवस्वान्, आश्विनके पूषा, कार्तिकके पर्जन्य, मार्गशीर्षके अंशु, पौषके भग, माघके त्वष्टा तथा फाल्गुनके विष्णु।

भगवान् सूर्यके इन नामोंका वैज्ञानिक महत्त्व है, केवल परम्परानिर्वहणार्थ यह नामकरण नहीं किया गया है।

चैत्रके सूर्यका नाम है—धाता, धाता कहते हैं—निर्माता (Creator,), समाहक (Preserver), समर्थक (Supporter) प्राण (The soul) और भगवान् विष्णु तथा ब्रह्माको। उक्त सभी नामोंकी विशेषताएँ भगवान् सूर्यमें सन्निहित हैं। वे निर्माता भी हैं और रसोंके समाहक भी। ऑक्सीजन (Oxygen)के अधिष्ठान होनेके कारण प्राणभूत भी हैं और धान्यमें रसोत्पादक होनेके कारण समर्थक तथा प्राणात्मक होनेके कारण विष्णु भी हैं।

वैशाखके सूर्यका नाम है अर्यमा। अर्यमा कहते हैं—पितृश्रेष्ठको 'पितॄणामर्यमा चास्मि' (गीता १०। २९) अर्क (आक) के पौधेको जिस प्रकार पितृगण अपने वंशजोंके उपकारमें सन्नद्ध रहते हैं, उसी प्रकार सूर्य भी अर्क-वृक्षकी भाँति सदा हरे-भरे रहनेकी प्रेरणा देते हैं। अतः यह नाम भी अन्वर्थक है।

ज्येष्ठके सूर्य हैं मित्र। मित्र कहते हैं—वरुणके सहयोगी आदित्यको, राजाके पड़ोसी तथा सुहृद् (Friend) को। सूर्य वर्षाऋतुके मित्र और पड़ोसी हैं अर्थात् आषाढ़में वर्षा होनेसे पूर्व सूर्य अपने प्रभावसे भूमण्डलको तपाकर वर्षागमनकी पृष्ठभूमि तैयार करके एक सुहृद्की भाँति भूमण्डलका हितसाधन करते हुए वरुणके सहयोगी आदित्य तथा मित्र दोनों ही नामोंको अन्वर्थक बनाते हैं।

आषाढ़के सूर्यका नाम है वरुण। वरुणको 'अपाम्पति' कहा गया है, जिसका अर्थ है—जलके स्वामी। भगवान् श्रीकृष्णने इन्हें अपना स्वरूप बतलाते हुए भगवद्गीतामें कहा है—'वरुणो यादसामहम्' (१०।२९) इसके अतिरिक्त समुद्र (Ocean)को भी वरुण कहते हैं। आषाढ वर्षाऋतुका मास है। सूर्य समुद्रीय जलका आकर्षण कर वरुणरूपमें इसी मासमें उसे जगद्धितार्थ लौटाकर 'आदानं हि विसर्गाय सतां वारिमुचामिव' की उक्तिको सार्थक बनाते हुए अपने मासाधिष्ठातृभूत नामको अन्वर्थक बनाते हैं।

श्रावणके सूर्यका नाम है इन्द्र। इन्द्र कहते हैं—देवाधिप (The Lord of Gods,), वर्षाधिप (The God of rain), वर्षा शासक (ruler) तथा सर्वोत्कृष्ट (best) को। इस मासमें सूर्य इन्द्ररूपमें मेघोंका नियन्त्रण कर आवश्यकतानुसार वर्षणद्वारा पृथ्वीको आप्लावितकर अपनी सर्वोत्कृष्टता तथा शासनपटुताकी अमिट छाप जन-मनपर छोड़ते हैं। अतः यह नाम कितना अन्वर्थक है—इसे सहज ही जाना जा सकता है।

भाद्रपदके सूर्यका नाम है विवस्वान्। विवस्वान् कहते हैं—वर्तमान मनु, अर्कवृक्ष तथा अरुण आदिको। भाद्रपदकी उष्मा कितना उग्र होती है—इसका अनुमान इसीसे लगाया जा सकता है कि अनेक कृषक इससे व्यथित हो सन्यासीके समान घर त्याग देते हैं। सूर्य मनुकी भाँति इस समय धरापर अपना तेजस्विताकी छाप अङ्कित करने लगते हैं—'त्वष्टा विवस्वन्तमिवोल्लिलेख' (किरात, ५। ४८, १७। ४८ आदि)। इस प्रकार सूर्यका यह नाम भी अन्वर्थक है।

आश्विन मासमें सूर्यका नाम है—पूषा। पूषाका भावार्थ है—पोषक तथा गगक, क्योंकि इस मासके सूर्य धान्यका पोषण भी करते हैं और आकाशमें उन्मुक्त प्रकार होकर संचरण भी। अतः यह नाम भी अन्वर्थक और उनके ममान वैशिष्ट्यका परिचायक है—'सदा पान्थः पूषा गगनपरिमाणं कलयति' (नीतिशतक)

कार्तिकके सूर्यका नाम है—पर्जन्य, पर्जन्य कहते हैं—बरसने अथवा गरजनेवाले मेघको—A rain cloud Thundering cloud—'प्रवृद्ध इव पर्जन्य सारंगैरभिनन्दित '(रघु० १७।१५)। वर्षा (Rain) तथा इन्द्र (God of rain) को शरद् ऋतुमें पर्जन्य नाम देना कहाँतक सत्य है, इसके लिये गो० तुलसीदासजीके इस कथनको मानससे उद्धृत किया जा सकता है कि 'कहुँ कहुँ वृष्टि सारदी थोरी' । इस कालमें सूर्य पर्जन्य (मेघ) के रूपमें सृष्टिकी पिपासाकुल आत्माको परितोष देते हुए अपना नाम अन्वर्थक बनाते हैं और इन्द्र रूपमें सूखी मरदीको आर्द्रतासे सिंचित कर नियन्त्रित करते हैं । नामकी उपयुक्तता यहाँ भी पूर्ववत् है ।

मार्गशीर्षके सूर्यका नाम है—अंशुः । अंशुका अर्थ है–रश्मि (Rays), ऊष्मा (hot)। अपनी ऊष्मरश्मियोंसे मार्गशीर्षके प्रखर शीतको अपसारित करनेकी क्षमतासे सम्पन्न सूर्यका यह मासगत नाम भी सार्थक है ।

पौषके सूर्यका नाम है—भग । भग कहते हैं—सूर्य (Sun), चन्द्रमा (Moon) शिव-सौभाग्य (Good fortune) प्रसन्नता (happiness), यश (fame), सौन्दर्य (beauty,) प्रेम (love) गुण-धर्म (merit religious) प्रयत्न (Effort), मोक्ष (Final beatitude) तथा शक्ति (strength) को। पौषके भयकर शीतमें सूर्य चन्द्रकी भाँति शस्य बढ़ाकर, शिवकी भाँति कल्याण कर, प्रकृतिमें स्वर्गीय सुषमाकी सृष्टि कर, ठिठुरते हुए व्यक्तियोंको ऊष्माप्रदानद्वारा धार्मिक कृत्योंके सम्पादनार्थ शक्ति प्रदान कर तथा शीतसे मोक्ष प्रदान कर अपना नाम अन्वर्थक बनाते हैं ।

माघके सूर्यका नाम है–'त्वष्टा'। त्वष्टा कहते हैं–बढ़ई (carpenter), निर्माता (builder) तथा विश्वकर्मा (The architect of the Gods)—देवशिल्पीको। ये नाम भी सार्थक हैं, क्योंकि इस मासमें सूर्य प्रकृतिके जराजर्जरित उपादानोंको कुशल शिल्पीकी भाँति तराशकर (काट-छाँटकर—खरादकर) अभिनवरूप प्रदान करते हैं और त्वष्टाकी भाँति भूमण्डलको सानपर तराशकर उज्ज्वल रूप देनेकी दिशामें अग्रसर होने लगते हैं ।

फाल्गुनके सूर्यका नाम है—विष्णु, पराशरजीके वचनानुसार विष्णुका अर्थ है—रक्षक (protector) विश्वव्यापक, सर्वत्रानुविष्ट ।

यस्माद्विष्टमिदं विश्वं तस्य शक्त्या महात्मनः ।
तस्मात् स प्रोच्यते विष्णुर्विशेर्धातोः प्रवेशनात् ॥
(–विष्णुपुराण ३ । १ । ४५)

'यह सम्पूर्ण विश्व उन परमात्माकी ही शक्तिसे व्याप्त है, अतः वे विष्णु कहलाते हैं, क्योंकि 'विश' धातुका अर्थ प्रवेश करना है ।'

इस मासमें पहुँचते-पहुँचते सूर्य शक्तिसम्पन्न हो शिशिर विजडितसृष्टिमें शक्तिसंचार करनेमें समर्थ हो जाते हैं । उनकी उत्पादन-शक्ति प्रखर हो उठती है । अग्निका तेजस्विता उनमें प्रत्यक्षरूपसे अनुभूत होने लगती है तथा एक धर्मनिष्ठ व्यक्तिकी भाँति वे निजधर्मका तत्परतासे पालन करते हुए अपना नाम अन्वर्थक बनाने लगते हैं ।

इस प्रकार पुराणोक्त सूर्यके द्वादशमासीय महत्त्वपर स्वल्पमात्र दृष्टिपात कर हम अपने प्रतिपाद्य विषयकी ओर अग्रसर होते हैं ।

वेदोंमें जहाँ अपने उपाङ्गभूत आयुर्वेदका वर्णन है, वहाँ आयुर्वेदान्तर्गत चिकित्साकी विभिन्न पद्धतियों—सूर्यचिकित्सादिका भी उल्लेख है। प्राकृतिक चिकित्सामें सूर्य चिकित्साका विशेष स्थान है । वेदोंमें सूर्यचिकित्साकी महत्तापर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है । वेद

और पुराण—दोनोंमें ही सूर्यको विश्वकी आत्मा बताया गया है। वेद जहाँ **'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'**(यजु० ७। ४२) कहते हैं वहीं पुराण भी—**'अथ स एष आत्मा लोकानाम्** ।'(भा० ५। २२।५) कहते हैं।

संसारका सम्पूर्ण भौतिक विकास सूर्यकी सत्ता पर निर्भर है। सूर्यकी शक्तिके बिना पौधे नहीं उग सकते, वायुका शोधन नहीं हो सकता और जलकी उपलब्धि भी नहीं हो सकती है। सूर्यकी शक्तिके बिना हमारा जन्म तो दूर रहा, पृथ्वीकी उत्पत्ति भी असम्भव होता।

प्रकृतिका केन्द्र सूर्य हैं। प्रकृतिकी समस्त शक्तियाँ सूर्यद्वारा ही प्राप्त हैं। आत्मापर शरीरकी भाँति सूर्यकी सत्तापर जगत्‌की स्थिति है। यदि धारण करनेके कारण धराको माता माना जाय तो पोषणके कारण सूर्यको पिता कहा जा सकता है। शारीरिक रसोंका परिपाक सूर्यकी ही ऊष्मासे होता है। शारीरिक शक्तियोंका विकास, अङ्गोंकी पुष्टि तथा मलोंका शरीरसे निःसरण आदि कार्य सूर्यकी महत्-शक्तिद्वारा ही सम्पन्न होते हैं।

सूर्यमें ऐसी प्रबल रोगनाशक शक्ति है, जिससे कठिन-से-कठिन रोग दूर हो जाते हैं। उदाहरणार्थ उन्मुक्त वातावरणमें रहनेवाले उन ग्रामीणोंको लिया जा सकता है, जो बिना पौष्टिक आहारके भी स्वस्थ रहते हैं, वैसे नगरोंमें देखनेको भी नहीं मिलते। इसके विपरीत सूर्यके दर्शन न होनेसे ही यहाँके प्राणी अनवरत रोगोंके शिकार बने रहते हैं। स्त्रियोंमें पाये जानेवाले रोग आस्टोमलेशियाका कारण Astromalaba भी सूर्य-तापकी कमी ही है। महिलाओंमें अधिक रोग पाये जानेका कारण सूर्यके पूजनादिसे दूर रहना ही है। कुछ व्यक्ति स्त्रियोंके व्रतादि करनेके पक्षपाती नहीं होते। वे उनके लिये सूर्यके पूजनादिको भी हितकर नहीं मानते। उनकी इस धारणासे आधुनिक बहुत-सी स्त्रियोंमें सूर्य-व्रतादिके प्रति जो अरुचि उत्पन्न की उससे उनमें रोगोंकी अधिकता होने लगी और उनका स्वास्थ्य गिरता चला गया और सतत गिरता चला जा रहा है, क्योंकि सूर्यकी साधनात्मक संसर्ग न रहनेसे रोगका होना स्वाभाविक है।

स्वस्थ जीवनके लिये सूर्यकी सहायता पूर्णरूपेण अपेक्षित है। इसकी आवश्यकता और महत्ता देखकर हमारे स्वस्थ जीवनके लिये सूर्यकी सहायता पूर्णरूपेण अपेक्षित है, इसकी आवश्यकता और महत्ता देखकर ही हमारे ऋषियों और आचार्योंने सूर्य-प्रणाम एवं सूर्योपासना आदिका विधान किया था। पाश्चात्त्य विद्वान् डॉ० सोलेने लिखा है—'सूर्यमें जितनी रोगनाशक शक्ति विद्यमान है, *उतनी समारक अन्य किसी भी पदार्थमें नहीं है।* कैंसर, नासूर आदि दुस्साध्य रोग, जो बिजली और रेडियमके प्रयोगसे अच्छे (ठीक) नहीं किये जा सकते थे, सूर्य-रश्मियोंका ठीक ढंगसे प्रयोग करनेसे वे अच्छे हो गये।'

सूर्यकी रोगनाशक शक्तिका परिचय देते हुए अथर्ववेदमें लिखा है—

> अपचित्त प्र पतत सुपर्णो वसतेरिव।
> सूर्यः कृणोतु भेषजं चन्द्रमा वोऽपोच्छतु ॥
> (—६। ८३। १)

'जिस प्रकार गरुड़ वसतिसे दौड़ जाता है, उसी प्रकार अपचनादि व्याधियाँ दूर चली जायँगी। इसके लिये सूर्य ओषधि बनायें और चन्द्रमा अपने प्रकाशसे उन व्याधियोंका नाश करें।'

इस मन्त्रमें स्पष्टरूपसे कहा गया है कि सूर्य ओषधि बनाते हैं, विश्वमें प्राणरूप हैं तथा वे अपनी रश्मियोंद्वारा स्वास्थ्य ठीक रखते हैं, किंतु मनुष्य आज-

वश अँधेरे स्थानमें रहते हैं और सूर्यकी शक्तिसे लाभ न उठाकर सदा रोगी बने रहते हैं।

डॉ० होनगने लिखा है—'रक्तका पीलापन, पतलापन, लोहेकी कमी और नसोंकी दुर्बलता आदि रोगोंमें सूर्य-चिकित्सा लाभदायक पायी गयी है।'

सुप्रसिद्ध दार्शनिक 'योची' का मत है कि 'जबतक संसारमें सूर्य विद्यमान हैं तबतक लोग व्यर्थ ही दवाओंकी अपेक्षामें भटकते हैं। उन्हें चाहिये कि शक्ति, सौन्दर्य और स्वास्थ्यके केन्द्र इन (सूर्यदेव) की ओर देखें और उनकी सहायतासे वास्तविक अवस्थाको प्राप्त करें।'

हमारे ऋषि सूर्य-चिकित्साके रहस्यसे अपरिचित नहीं थे। प्राचीनकालमें पाठ याद न करनेपर अथवा किसी प्रकारकी अविनय करनेपर धूपमें खड़े रहनेका दण्ड दिया जाता था। योगी धूपमें तप करते थे। सूर्य सेवनसे कुष्ठनाशकी तो अनेकों कथाएँ प्रसिद्ध हैं।

रोगका कारण—सूर्यचिकित्साके सिद्धान्तके अनुसार रोगोत्पत्तिका कारण शरीरमें रंगोंका घटना-बढ़ना है। रंग एक रासायनिक मिश्रण है। हमारा शरीर भी रासायनिक तत्त्वोंसे बना हुआ है। जिसके जिस अङ्गमें जिस प्रकारके तत्त्वकी अधिकता होती है, उसके उसी अङ्गमें उसके अनुरूप उस अङ्गका रंग हो जाता है।

शरीरके विभिन्न अङ्गोंमें विभिन्न रंग होते हैं, जैसे चर्मका गेहुआँ, बालोंका काला एवं नेत्रगोलकका श्वेत आदि। शरीरमें किस तत्त्वकी कमी है यह अङ्ग-परीक्षा द्वारा जाना जा सकता है, जैसे—चेहरेकी निस्तेजताका कारण रक्ताल्पता है। शरीरमें रंग एक विशेष तत्त्व है। इसमें घट-बढ़ होना रोगका कारण माना जाता है। सूर्यमें सातों रंग विद्यमान रहते हैं, इसीलिये विभिन्न रंगोंकी बोतलोंमें जल भरकर उन्हें धूपमें रखकर उन रंगोंको इन रंगीन बोतलोंके माध्यमसे उस जलमें आकर्षित किया जाता है और फिर यह जल ओषधिके रूपमें रोगियोंको इस दृष्टिसे दिया जाता है कि जिससे रोगियोंके शरीरसे तत्तद् रंगोंकी कमी दूर हो और वे पूर्ण स्वास्थ्य लाभ करें।

अथर्ववेद—(१।२२)में वर्णचिकित्साके सम्बन्धमें यह उल्लेख मिलता है—

> अनु सूर्यमुदयतां हृद्द्योतो हरिमा च ते।
> गो रोहितस्य वर्णेन तेन त्वा परि दध्मसि॥

अर्थात्—ते हरिमा-तुम्हारा पीलापन (पाण्डु, कामला आदि) तथा हृद् द्योत—हृदयकी जलन (हृदय रोग), सूर्यमनु-सूर्यकी अनुकूलतासे, उत् अयताम्-उड़ जायें, गो-रश्मियोंके तथा प्रकाशके उस, रोहितस्य-लाल, वर्णेन-रंगसे, त्वा-तुझे, परि-सब ओर, दध्मसि-धारण करता हूँ।

भाव यह है कि पाण्डु-रोग और हृद्रोगोंमें सूर्योदयके समय सूर्यकी लालरश्मियोंके प्रकाशमें खुले शरीर बैठना तथा लाल रंगकी गौके दूधका सेवन करना बहुत ही लाभदायक होता है।

रोगनिवृत्ति ही नहीं अपितु दीर्घायुकी प्राप्तिके लिये भी प्रातःकाल सूर्योदयके समय उनके रक्तवर्णवाले प्रकाशका सेवन करना चाहिये। अथर्ववेदमें रक्तवर्णसे दीर्घायु-प्राप्तिका उपाय लिखा है—

> परि त्वा रोहितैर्वर्णैर्दीर्घायुत्वाय दध्मसि।
> यथायमरपा असदथो अहरितो भुवत्॥
> (१।२२

अर्थात्—दीर्घायु-प्राप्तिके लिये तुम्हें लाल रंगों चारों ओर धारण करता हूँ, जिससे पाण्डुता दूर होकर नीरोग हो जाऊँ, भाव स्पष्ट है लाल वर्णोंका प्रयोग पाण्डुरोग और तज्जन्य शारीरिक विकार दूर करता है तथा मानव आरोग्यके साथ-साथ दीर्घायु प्राप्त करता है।

लाल रंग शरीरके लिये अत्यधिक लाभदायक है, इसीलिये उदय होते हुए सूर्यका सेवन विशेष हितकर माना गया है और लाल गायका दूध पीना भी महत्त्व पूर्ण प्रतिपादित किया गया है—

या रोहिणीर्देवत्या गावो या उत रोहिणी ।
रूपरूपं वयो वयस्ताभिष्ट्वा परिदध्मसि ॥
(—अथर्व० १ । २२)

अर्थात् या देवत्या—जो चमकीली, रोहिणी—रक्तिम सूर्य-रश्मियाँ हैं, उत-और, या रोहिणी गाव—जो रक्तिम गौएँ (सूर्यकी किरणें) हैं, उनसे रूप और वय—आयु प्राप्त होती है, ताभि—उनके साथ, त्वा—तुझे, परि—चारों ओर, दध्मसि—धारण करते हैं। भाव यह है रक्तिम सूर्य-रश्मियोंके सेवन तथा रक्तिम गौओंका दूध पीनेसे रोग निवृत्त होकर आरोग्यरूप और दीर्घायुकी प्राप्ति होती है।

इतना ही नहीं, सूर्यरश्मियोंसे रोगोत्पादक कृमियोंका भी नाश हो जाता है—

उद्यन्नादित्य क्रिमीन् हन्तु निम्रोचन्
हन्तु रश्मिभि । ये अन्त क्रिमयो गवि ॥
(अथर्व० २ । ३२ । १)

अर्थात् उद्यन्नादित्य—उदय होता हुआ सूर्य, क्रमीन् हन्तु—कीटाणुओंका नाश करे तथा निम्रोचन् अस्त होता हुआ सूर्य अपनी—रश्मिभि—किरणोंसे, उन कृमियोंको नष्ट करे, जो—गवि अन्तः—पृथ्वी पर हैं।

सूर्य पृथ्वीपर स्थित रोगाणुओं (कृमियों) को नष्ट कर निज रश्मियोंका सेवन करनेवाले व्यक्तिको दीर्घायु प्रदान करते हैं। सूर्यद्वारा विनष्ट किये जानेवाले रोगोत्पादक कृमि निम्नलिखित हैं—

विश्वरूपं चतुरक्षं क्रिमिं सारङ्गमर्जुनम् ।
शृणाम्यस्य पृष्टीरपि वृश्चामि यच्छिरः ॥
(—अथर्व २ । ३२ । २)

अर्थात विश्वरूपम्—नानारूप-रंगवाले, चतुरक्षम्—चार नेत्रोंवाले, सारङ्गम्—सारंग वर्णवाले, अर्जुनम्—श्वेत रंगवाले कृमिको मैं शृणामि—मारता हूँ। अस्य—इस कृमिकी पृष्टीः—पसलियोंको तथा शिरः—सिरको भी वृश्चामि—तोड़ता हूँ।

रोगोत्पादक कृमि नाना वर्ण और आकृतिके होते हैं। सूर्यके सेवनद्वारा इन्हें नष्ट कर व्यक्तिको स्वास्थ्य लाभ करना चाहिये।

सूर्य स्वास्थ्य और जीवनीय शक्तिके भण्डार हैं। जो व्यक्ति सूर्यके जितने अधिक सम्पर्कमें रहते हैं, उतने ही स्वस्थ पाये जाते हैं और सूर्यसे बचकर रहनेवाले सर्वथा निस्तेज और भयकर रोगोंसे ग्रस्त मिलते हैं।

स्वास्थ्य स्थिर रखने और रोगोंसे बचनेके लिये आवश्यक है कि हम धूप और सूर्यके प्रकाशसे सदा बचकर न रहें और इनके अधिक सम्पर्कमें रहें—विशेषकर प्रातःकालीन आतप अधिक हितकर होता है, वही रुग्ण और स्वस्थ दोनोंको समान लाभ पहुँचाता है। केवल मध्याह्नकी धूपको छोड़कर शेष समय यथासम्भव उसके न्यूनाधिक सम्पर्कमें रहना चाहिये। सूर्य-स्नान करते समय यथासम्भव निर्वस्त्र रहे या बिल्कुल हल्के-पतले (झीने) वस्त्रोंका प्रयोग करना चाहिये, जिससे सूर्यकी किरणें सरलताके साथ प्रत्येक अङ्ग-उपाङ्गतक पहुँच सकें।

आजका प्रबुद्ध मानव इस तथ्यसे भलीभाँति परिचित हो चुका है कि संक्रामक रोगोंका विशेष प्रकोप ऐसे स्थानोंपर ही प्रमुखतः होता है, जहाँ सूर्यकी रश्मियाँ नहीं पहुँच पातीं। इस स्थितिमें हमें मकान सदा ऐसे बनवाने चाहिये, जहाँ धूप और वायुका उचित मात्रामें अबाध प्रवेश हो सके।

विटामिन (खाद्योज)की उत्पत्तिका कारण भी सूर्यकी रश्मियाँ हैं। सूर्यके बिना जीवनीय शक्ति सर्वथा नहीं क बराबर ही रहती है।

वश अँधेरे स्थानमें रहते हैं और सूर्यकी शक्तिसे लाभ न उठाकर सदा रोगी बने रहते हैं ।

डॉ० हौनगने लिखा है—'रक्तका पीलापन, पतलापन, लोहेकी कमी और नसोंकी दुर्बलता आदि रोगोंमें सूर्य-चिकित्सा लाभदायक पायी गयी है ।'

सुप्रसिद्ध दार्शनिक 'योची' का मत है कि 'जबतक संसारमें सूर्य विद्यमान हैं तबतक लोग व्यर्थ ही दवाओंकी अपेक्षामें भटकते हैं । उन्हें चाहिये कि शक्ति, सौन्दर्य और स्वास्थ्यके केन्द्र इन (सूर्यदेव) की ओर देखें और उनकी सहायतासे वास्तविक अवस्थाको प्राप्त करें ।'

हमारे ऋषि सूर्य चिकित्साके रहस्यसे अपरिचित नहीं थे । प्राचीनकालमें पाठ याद न करनेपर अथवा किसी प्रकारकी अविनय करनेपर धूपमें खड़ रहनेका दण्ड दिया जाता था । योगी धूपमें तप करते थे । सूर्य सेवनसे कुष्ठनाशकी तो अनेकों कथाएँ प्रसिद्ध हैं ।

रोगका कारण—सूर्यचिकित्साके सिद्धान्तके अनुसार रोगोत्पत्तिका कारण शरीरमें रंगोंका घटना-बढ़ना है । रंग एक रासायनिक मिश्रण है । हमारा शरीर भी रासायनिक तत्त्वोंसे बना हुआ है । जिसके जिस अङ्गमें जिस प्रकारके तत्त्वकी अधिकता होती है, उसके उसी अङ्गमें उसके अनुरूप उस अङ्गका रंग हो जाता है ।

शरीरके विभिन्न अङ्गोंमें विभिन्न रंग होते हैं, जैसे चर्मका गेहुआँ, केशोंका काला एवं नेत्रगोलकका श्वेत आदि । शरीरमें किस तत्त्वकी कमी है, यह अङ्ग-परीक्षा द्वारा जाना जा सकता है, जैसे—चेहरेकी निस्तेजताका कारण रक्ताल्पता है । शरीरमें रंग एक विशेष तत्त्व है । इसमें घट-बढ़ होना रोगका कारण माना जाता है । सूर्यमें सातों रंग विद्यमान रहते हैं, इसीलिये विभिन्न रंगोंवाली बोतलोंमें जल भरकर उन्हें धूपमें रखकर उन रंगोंको उन रंगीन बोतलके माध्यमसे उस जलमें आकर्षित किया जाता है और फिर वह जल औषधिके रूपमें रोगियोंको इस दृष्टिसे दिया जाता है कि जिससे रोगियोंके शरीरसे तत्तद् रंगोंकी कमी दूर हो और वे पूर्ण स्वास्थ्य लाभ करें ।

अथर्ववेद—(१ । २२)में वर्णचिकित्साके सम्बन्धमें यह उल्लेख मिलता है—

> अनु सूर्यमुदयतां हृद्द्योतो हरिमा च ते ।
> गो रोहितस्य वर्णेन तेन त्वा परि दध्मसि ॥

अर्थात्—ते हरिमा—तुम्हारा पीलापन (पाण्डु, कामला आदि) तथा हृद् द्योत—हृदयकी जलन (हृदय-रोग), सूर्यमनु—सूर्यकी अनुकूलतासे, उद् अयताम्—उड़ जायँ, गो—रश्मियोंके तथा प्रकाशके उस, रोहितस्य—लाल, वर्णेन—रंगसे, त्वा—तुझे, परि—सब ओर, दध्मसि—धारण करता है ।

भाव यह है कि पाण्डु-रोग और हृद्रोगोंमें सूर्योदयके समय सूर्यकी लालरश्मियोंके प्रकाशमें खुले शरीर बैठना तथा लाल रंगकी गौके दूधका सेवन करना बहुत ही लाभदायक होता है ।

रोगनिवृत्ति ही नहीं अपितु दीर्घायुकी प्राप्तिके लिये भी प्रातःकाल सूर्योदयके समय उनके रक्तवर्णवाले प्रकाशका सेवन करना चाहिये । अथर्ववेदमें रक्तवर्णसे दीर्घायु-प्राप्तिका उपाय लिखा है—

> परि त्वा रोहितैर्वर्णैर्दीर्घायुत्वाय दध्मसि ।
> यथायमरपा असदथो अहरितो भुवत् ॥
> (१ । २२)

अर्थात्—दीर्घायु-प्राप्तिके लिये तुम्हें लाल रंगोंसे चारों ओर धारण करता हूँ, जिससे पाण्डुता दूर होकर नीरोग हो जाऊँ, भाव स्पष्ट है लाल रंगके प्रयोगसे पाण्डुरोग और तज्जन्य शारीरिक पीलापन दूर हो जाता है तथा मानव आरोग्यके साथ-साथ दीर्घायु प्राप्त करता है ।

लाल रंग शरीरके लिये अत्यधिक लाभदायक है, इसीलिये उदय होते हुए सूर्यका सेवन विशेष हितकर माना गया है और लाल गायका दूध पीना भी महत्त्व पूर्ण प्रतिपादित किया गया है—

या रोहिणीर्देवत्या गावो या उत रोहिणी ।
रूपरूपं वयो वयस्ताभिष्ट्वा परिदध्मसि ॥
(—अथर्व० १ । २२)

अर्थात् या देवत्याः—जो चमकीली, रोहिणीः—रक्तिम सूर्य-रश्मियाँ हैं, उत—और, या रोहिणी गावः—जो रक्तिम गौएँ (सूर्यकी किरणें) हैं, उनसे रूप और वय—आयु प्राप्त होती है, ताभिः—उनके साथ, त्वा—तुझ, परि—चारों ओर, दध्मसि—धारण करते हैं। भाव यह है रक्तिम सूर्य-रश्मियोंके सेवन तथा रक्तिम गौओंका दूध पीनेसे रोग निवृत्त होकर आरोग्यरूप और दीर्घायुकी प्राप्ति होती है।

इतना ही नहीं, सूर्यरश्मियोंसे रोगोत्पादक कृमियोंका भी नाश हो जाता है—

उद्यन्नादित्यः क्रिमीन् हन्तु निम्रोचन् हन्तु रश्मिभिः । ये अन्तः क्रिमयो गवि ॥
(अथर्व० २ । ३२ । १)

अर्थात् उद्यन्नादित्यः—उदय होता हुआ सूर्य, क्रमीन् हन्तु—कीटाणुओंका नाश करे तथा निम्रोचन्, अस्त होता हुआ सूर्य अपनी—रश्मिभिः—किरणोंसे, उन कृमियोंको नष्ट करे, जो—गवि अन्तः—पृथ्वी पर हैं।

सूर्य पृथ्वीपर स्थित रोगाणुओं (कृमियों) को नष्ट कर निज रश्मियोंका सेवन करनेवाले व्यक्तिको दीर्घायु प्रदान करते हैं। सूर्यद्वारा विनष्ट किये जानेवाले रोगोत्पादक कृमि निम्नलिखित हैं—

विश्वरूपं चतुरक्षं क्रिमिं सारङ्गमर्जुनम् ।
शृणाम्यस्य पृष्टीरपि वृश्चामि यच्छिरः ॥
(—अथर्व २ । ३२ । २)

अर्थात् विश्वरूपम्—नानारूप-रंगवाले, चतुरक्षम्—चार नेत्रोंवाले, सारङ्गम्—सारंग वर्णवाले, अर्जुनम्—श्वेत रंगवाले कृमिको मैं शृणामि—मारता हूँ। अस्य—इस कृमिकी पृष्टीः—पसलियोंको तथा शिरः—सिरको भी वृश्चामि—तोड़ता हूँ।

रोगोत्पादक कृमि नाना वर्ण और आकृतिके होते हैं। सूर्यके सेवनद्वारा इन्हें नष्ट कर व्यक्तिको स्वास्थ्य लाभ करना चाहिये।

सूर्य स्वास्थ्य और जीवनीय शक्तिके भण्डार हैं। जो व्यक्ति सूर्यके जितने अधिक सम्पर्कमें रहते हैं, उतने ही स्वस्थ पाये जाते हैं और सूर्यसे बचकर रहनेवाले सर्वथा निस्तेज और भयंकर रोगोंसे ग्रस्त मिलते हैं।

स्वास्थ्य स्थिर रखने और रोगोंसे बचनेके लिये आवश्यक है कि हम धूप और सूर्यके प्रकाशसे सदा बचकर न रहें और इनके अधिक सम्पर्कमें रहें—विशेषकर प्रातःकालीन आतप अधिक हितकर होता है, वही रुग्ण और स्वस्थ दोनोंको समान लाभ पहुँचाता है। केवल मध्याह्नकी धूपको छोड़कर शेष समय यथासम्भव उसके न्यूनाधिक सम्पर्कमें रहना चाहिये। सूर्य-स्नान करते समय यथासम्भव निर्वस्त्र रहे या बिल्कुल हल्के-पतले (झीने) वस्त्रोंका प्रयोग करना चाहिये, जिससे सूर्यकी किरणें सरलताके साथ प्रत्येक अङ्ग-उपाङ्गतक पहुँच सकें।

आजका प्रबुद्ध मानव इस तथ्यसे भलीभाँति परिचित हो चुका है कि संक्रामक रोगोंका विशेष प्रकोप ऐसे स्थानोंपर ही प्रमुखतः होता है, जहाँ सूर्यकी रश्मियाँ नहीं पहुँच पातीं। इस स्थितिमें हमें मकान सदा ऐसे बनवाने चाहिये, जहाँ धूप और वायुका उचित मात्रामें अबाध प्रवेश हो सके।

विटामिन (खाद्योज) की उत्पत्तिका कारण भी सूर्यकी रश्मियाँ हैं। सूर्यके बिना जीवनीय शक्ति सर्वथा नहीं बराबर ही रहती है।

सूर्यकी उपयोगिता परिलक्षित कर आयुर्वेदमें भी सूर्य स्नानका प्रतिपादन किया गया है, अष्टाङ्गहृदयमें इसके महत्त्व पर विशेष बल दिया गया है, भले ही आज (Natureo Pathy) नेचुरोपैथीके लिये इसका प्रयोग किया जाता हो, पर है यह आयुर्वेदकी ही देन, और साथ ही हमारे महर्षियोंकी बुद्धिमत्ताका, विशेष ज्ञानका तथा मानव कल्याणकी भावनाका जीता-जागता उदाहरण भी।

स्वास्थ्यकामी प्रत्येक व्यक्तिको सूर्यकी महत्ताको पहचानकर, उसका सेवनकर अपने स्वास्थ्य और आयुकी वृद्धिके लिये प्रयत्न करना चाहिये। अत मत्स्य पुराणका वचन है—

'आरोग्यं भास्करादिच्छेत्'।

श्रीसूर्यसे स्वास्थ्य लाभ

(लेखक—डॉ० श्रीसुरेन्द्रप्रसादजी गर्ग, एम्०ए०, एल्-एल्० बी०, एन० डी०)

सूर्यनारायण प्रत्यक्ष भगवान् हैं। हमें उनका प्रत्यक्ष दर्शन होता है। उनके दर्शनके लिये भावनाकी वैसी कोई आवश्यकता नहीं है, जैसी अन्य देवोंके लिये अपेक्षित होती है। अत सूर्यदेवकी प्रत्यक्ष आराधना की जा सकती है।

सौरपुराणमें भगवान् सूर्यकी अलौकिक सम्पदाओं, शक्तियों आदिका विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। सूर्य-मण्डलमें प्रवेश करके ही जीव ब्रह्मलोक अर्थात् भगवान्‌का सांनिध्य प्राप्त कर सकता है। वस्तुत सूर्य नारायणकी आराधना किये बिना बुद्धि शुद्ध नहीं होती। सूर्यनारायण और श्रीकृष्ण एक ही हैं। श्रीकृष्णने स्वयं गीतामें 'ज्योतिषां रविरंशुमान्' कहा है। धर्मराज युधिष्ठिर सूर्यकी उपासना करते थे और सूर्यदेवने उन्हें एक अक्षय पात्र दिया था। भगवान् राम भी सूर्योपासक थे। ऋग्वेदमें सूर्यकी उपासनाके कई मन्त्र हैं और भगवान् आदित्यसे अनेक प्रकारसे प्रार्थना की गयी है। लिखा है—'आरोग्यं भास्करादिच्छेन्मोक्षमिच्छेज्जनार्दनात्।' आधुनिक चिकित्सा-शास्त्रियोंने सूर्यकी स्वास्थ्यदायिनी शक्तिको भलीभाँति समझा और अनुभव किया है। सूर्य-किरण-चिकित्सापर देशी विदेशी चिकित्सकोंने कई ग्रन्थ लिखे हैं। एक अंग्रेजी कहावत है—(Light is life and darkness is death) लाइट इज लाइफ ऐण्ड डार्कनेस इज डेथ अर्थात्—प्रकाश ही जीवन है और अन्धकार ही मृत्यु है। जहाँ सूर्यकी किरणें अथवा प्रकाश पहुँचता है, वहाँ रोगके कीटाणु स्वत मर जाते हैं और रोगोंका जन्म नहीं होता। सूर्य अपनी किरणोंद्वारा अनेक प्रकारके आवश्यक तत्त्वोंकी वर्षा करते हैं और उन तत्त्वोंको शरीरद्वारा ग्रहण करनेसे असाध्य रोग भी दूर हो जाते हैं। वैज्ञानिकोंने चिकित्साकी दृष्टिसे सूर्यका अनेक प्रकारसे प्रयोग किया है। शास्त्र कहते हैं कि सूर्यके प्रकाशमें सप्तरश्मियाँ—लाल, हरी, पीली, नीली, नारंगी, आसमानी और कासनी रंग—विद्यमान हैं एवं सूर्य-प्रकाशके साथ इन रंगों तथा तत्त्वोंकी भी हमारे ऊपर वर्षा होती है। उनके द्वारा प्राणी तथा वानस्पतिक वर्गको नवजीवन एवं नवचेतना प्राप्त होता रहता है। यह कहनेमें कि यदि सूर्य न होते तो हम जीवित नहीं रह सकते थे—कोई अत्युक्ति नहीं है। यही कारण है कि वेदोंमें सूर्य-पूजाका विधान तथा महत्त्व है और हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियोंने सूर्यसे शक्ति प्राप्तकर प्राकृतिक जीवन व्यतीत करनेका आदेश किया है। आदिकालसे ग्रीक और यूनानी लोगोंने भी सूर्य चिकित्साको अपनानेके साथ-साथ सूर्यकी पूजा की है। पाश्चात्त्य चिकित्सा-विज्ञानका प्रथम उपासक हिप्पोक्रेट्स भी सूर्यद्वारा रोगियोंको ठीक करता था।

धीरे धीरे अवनतिके गर्तमें पड़ते हुए संसारने सूर्यके महत्त्वको अपने मस्तिष्कसे भुला दिया। फलस्वरूप सैकड़ों रोगोंको, जिनका पहले नामोनिशानतक न था, जन्म दे दिया। वैज्ञानिकोंके निरन्तर प्रयत्नशील रहने तथा अनुसंधान और अन्वेषण करते रहनेपर भी वे संसारको रोगोंसे मुक्त न कर सके और अन्तमें निराश हो प्रकृतिकी ओर लौटे। कुछेकने सूर्यके महत्त्वको समझा और सूर्य ऊर्जा आदिका पता लगाया। सर्वप्रथम डेनमार्कके निवासी डॉ० नाइस फिंसेनने १२९३ ई०में सूर्य प्रकाशके महत्त्वको प्रकटकर १२९५में सूर्यद्वारा एक क्षयके रोगीको स्वस्थ किया। किंतु आपकी तैंतालीस वर्षकी अवस्थामें ही असामयिक मृत्यु हो गयी। दूसरे वैज्ञानिकोंको इतनेसे संतोष न हुआ। उन्होंने नयी-नयी खोजें आरम्भ कीं। इसके फलस्वरूप चिकित्सा-संसारमें सूर्यचिकित्सा अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखने लगी है। डॉ० ए० जी० हार्ले, डॉ० एल्फ्रेड व रोलियर आदिने बड़े-बड़े सैन्टोरियम स्थापित किये। सन् १००३से डॉ० रोलियर अपनी पद्धतियों (systems) द्वारा आल्पसपर्वतपर लेसीन नामक प्राकृतिक सौन्दर्यसे सुसज्जित स्थानमें रोगियोंकी चिकित्सा करते हैं और नैसर्गिक सूर्य-प्रकाशको काममें लाते हैं। (*श्रीमती कमलानेहरू शायद यहीं अपनी चिकित्साके लिये गयी थीं।*) डॉ० रोलियरका तरीका अपने ढंगका अकेला है और ये सहिष्णुता तथा पृथक्ता (एक्लीमेटीसेशन तथा आइसोलेशन) आदि विधियोंद्वारा चिकित्सा करते हैं। इसका पूर्ण उल्लेख यहाँ नहीं किया जा सकता। इसके बाद 'क्रोमोपैथी' (chromopathy) का जन्म हुआ और वैज्ञानिकोंने बतलाया कि शरीरमें किसी विशेष रंगकी कमीके कारण भी विशेष रोग उत्पन्न हो सकते हैं और उसी रंगकी बोतलमें तैयार किया जल पिलाने तथा शरीरपर प्रकाश डालनेसे वे रोग दूर हो सकते हैं। इस विषयके डॉ० आर० डी० स्पयर, डॉ० ए० ओ० इन्स, डॉ० वेबिट आदि ज्ञाता हुए हैं। यह चिकित्सा-पद्धति बड़ी उपयोगी और भारत जैसे गरीब देशके लिये अत्यावश्यक है। पर इसमें कठिनाइ केवल इतनी ही है कि 'क्रोमोपैथी' (chromopathy) द्वारा एक सद्वैद्य ही, जो रोगनिदानमें निपुण है, रोगियोंको लाभ पहुँचा सकता है। ठीक निदान न होनेपर हानि हो सकती है।

जटिल एवं तथोक्त असाध्य रोगों—जैसे क्षय, लकवा, पोलियो, कैंसर आदिमें भी विधिवत् सूर्य-स्नान करनेसे अद्भुत लाभ होता है और रोगको दूर भगानेमें बड़ी सहायता मिलती है। पर इस सम्बन्धमें विशेषज्ञोंसे परामर्श कर लेना वाञ्छनीय है। कई बार स्थानीय रूपमें भी सूर्यकी किरणोंका प्रयोग किया जाता है, अर्थात् शरीरके किसी एक अङ्गविशेषको कुछ समयके लिये धूपमें रखा जाता है।

सूर्य-किरण-चिकित्सा प्रणालीके अनुसार अलग-अलग रंगोंके अलग-अलग गुण होते हैं, उदाहरणार्थ लाल रंग उत्तेजना और नीला रंग शान्ति पैदा करता है। इन रंगोंसे लाभ उठानेके लिये रंगीन बोतलोंमें छः या आठ घंटेतक धूपमें लकड़ीके पाटोंपर सफेद काँचकी बोतलोंमें आधा-आधा कुएँ या नदीका शुद्ध जल भरकर रखा जाता है। फलस्वरूप इस जलमें रंगके गुण उत्पन्न हो जाते हैं और फिर उस जलकी दो-दो तोलेकी खुराक दिनमें तीन चार बार ली जाती है। पर बोतलको जमीनपर अथवा अन्य प्रकारके किसी प्रकाशमें नहीं रखना चाहिये। एक दिनका तैयार किया जल तीन दिनतक काम दे सकता है। जलकी भाँति तैल भी लगभग एक महीनेतक धूपमें रखकर तैयार किया जाता है। *यह तैल पर्याप्त गुणकारी होता है।*

सूर्य-रश्मियोंसे लाभ उठानेकी एक निरापद् एवं हानिरहित विधि यह है कि स्वेतवर्णकी बोतलमें जल तैयार करके उसका सेवन किया जाय।

बृहत्पाराशरस्मृतिके ध्यानयोगप्रकरणमें कहा है कि 'हृदयके मध्यमें प्रकाशमान सूर्यमण्डलका ध्यान करना चाहिये। उस सूर्यमण्डलके मध्यमें सोमका, सोमके मध्यमें अग्निका, अग्निके मध्यमें बिन्दुका, बिन्दुके मध्यमें नादका, नादके मध्यमें ध्वनिका, ध्वनिके मध्यमें तारका, तारके मध्यमें सूर्यका और इसी सूक्ष्म दिव्य प्रकाशमय सूर्यके मध्यमें ब्रह्मका चिन्तन करना चाहिये'—

चिन्तयेद्धृदि मध्यस्थं दीप्तिमत्सूर्यमण्डलम्।
तस्य मध्यगतः सोमो वह्निश्चन्द्रशिखो महान्॥

बिन्दुमध्यगतो नादो नादमध्यगतो ध्वनिः।
ध्वनिमध्यगतस्तारस्तारमध्यगतोऽशुमान्॥
(१२।३१३, ३१५)

'प्रश्नोपनिषद् (१।५)में आदित्यको प्राण कहा है—'आदित्यो ह वै प्राणः'। छान्दोग्योपनिषद्के अतिरिक्त पुराण-इतिहासादिमें भी इन्हें त्रयीमूर्ति कहा गया है। साथ ही ब्रह्मा, विष्णु और महेशसे इनकी अभेदताका प्रतिपादन करते हुए त्रिमूर्ति कहा गया है—

उदये ब्रह्मणो रूपं मध्याह्ने तु महेश्वरः।
अस्तमाने स्वयं विष्णुस्त्रिमूर्तिश्च दिवाकरः॥*
(भ० उ० पु०, आ० हृ० श्लो० ११८)

सृष्टिके उपकरणस्वरूप पञ्चतत्त्व—'पृथ्व्यप्तेजोवाय्वाकाशाः' (पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश)-मेंसे वायुतत्त्वके अधिकर्ता भगवान् सूर्य हैं—

आकाशस्याधिपो विष्णुरग्नेश्चैव महेश्वरी।
वायोः सूर्यः क्षितेरीशो जीवनस्य गणाधिपः॥

जिन पञ्चतत्त्वोंसे सृष्टिका निर्माण हुआ है, शरीरका भी उन्हींसे हुआ है†। इन तत्त्वोंकी विकृतिसे शरीरमें व्याधियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। दद्रु, स्फोट-कुष्ठादि रक्तविकार-सम्बन्धी रोग वायुतत्त्वके बिगड़नेसे होते हैं, क्योंकि वायुतत्त्वके बिगड़नेसे रक्तविकार-सम्बन्धी रोग होते हैं और भगवान् सूर्य वायुतत्त्वके अधिपति हैं, अतः हमारे पूर्वज—ऋषि-महर्षियोंने रक्तविकार-सम्बन्धी रोगोंमें सूर्योपासनाका‡ विशेषरूपसे निर्देश दिया है—

दद्रुस्फोटककुष्ठानि गण्डमाला विषूचिका।
सर्वव्याधिमहारोग
जायेत शरदां शतम्।
(वही ७५।७७)

अर्थात् 'भगवान् सूर्यकी उपासनासे दाद, फोड़ा, कुष्ठ, विषूचिका—हैजा (Cholera) प्रभृति रोग नष्ट हो जाते हैं तथा उपासक कठिन-से-कठिन रोगोंसे मुक्ति पाकर सैकड़ों वर्षकी लम्बी आयु प्राप्त करता है। पद्मपुराणमें भी कहा है—

अस्योपासनमात्रेण सर्वरोगात् प्रमुच्यते॥
(सृष्टि० ७७।१७)

भगवान् सूर्यकी उपासनामात्रसे सभी रोगोंसे मुक्ति मिल जाती है। जो भी भक्तिपूर्वक इनकी पूजा करता है, वह नीरोग होता ही है—

सूर्यो नीरोगतां दद्याद् भक्त्या यैः पूज्यते हि सः॥
(स्क० पु० २, का० मा० ३।१५)

सूर्यसे आरोग्यलाभकी बात सर्वप्रथम शुक्लयजुर्वेदमें देखी जाती है—

तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य।
विश्वमाभासि रोचनम्§॥ (यजुर्वेद ३३।३६)

'सूर्यदेव! आप निरन्तर गतिशील एवं आराधकोंके रोगोंके अपहारक तथा सम्पूर्ण जीव-जगत्के लिये

* (क) ब्रह्माविष्णुरुद्राणां शक्तिनाममात्रेण भिन्नता॥ (लो० स्मृ०)
(ख) अहं विष्णुश्च सूर्यश्च देवी त्रिलोकेश्वरस्तथा॥ (स्क० पु० २, का० मा० ३।१६)
(ग) एष ब्रह्मा च विष्णुश्च रुद्र एव हि भास्करः॥ (सू० ता० उ० १।६)
(घ) रुद्राय विष्णवे तुभ्यं ब्रह्मणे सूर्यमूर्तये॥ (शि० पा० म० उ० म० ८।१४)

† गर्भोपनिषदिता। ‡ सूर्यकी पूजा न केवल भारतमें होती है, अपितु ईरान, बेबीलोन, ग्रीक, मिस्र आदि देशोंमें भी होती है। § इस प्रकरणमें अन्य मन्त्रोंमें भी सूर्यसे आरोग्यकी बात कही गयी है।

दर्शनीय और आकाशके सभी ज्योतिष्पिण्डोंके प्रकाशक हैं।'

अथर्ववेदमें पाँव, जानु, श्रोणि, कक्षा, मस्तक, कपाल, हृदय आदिके रोगोंको उदीयमान सूर्यरश्मियोंके द्वारा दूर करनेकी बात कही गयी है[1]। पुनः इसी वेदमें उगते हुए सूर्यकी रक्ताभकिरणोंसे[2] रोगियोंको चिरायु करनेका वर्णन प्राप्त होता है[3]। अथर्ववेदमें ही सूर्यसे गण्डमालारोगको दूर करनेकी बात आयी है[4]।

यद्यपि श्रीमद्भागवतमें सूर्यसे तेज—'तेजस्कामो विभावसुम्', स्कन्दपुराणमें सूर्यसे सुख—'दिनेश सुखार्थी' तथा वाल्मीकीय रामायणमें सूर्यसे अरिविजयकी कामना की गयी है तथापि अन्य पुराणोंने एक स्वरसे 'सूर्यसे आरोग्य-लाभ'का डिण्डिमघोष किया है—

आरोग्य भास्करादिच्छेद् धनमिच्छेद्धुताशनात्।
ईश्वराज्ज्ञानमिच्छेच्च मोक्षमिच्छेज्जनार्दनात्॥
(मत्स्यपु० ६७। ७१)

इस तरह आजसे हजारों वर्ष पूर्वसे ही भारतीय जनसमुदाय सूर्यकी कृपासे आरोग्यलाभ प्राप्त करता आ रहा है। पाँच सहस्रसे भी अधिक वर्ष बीत गये, जब दुर्वासाके शापसे कुष्ठग्रस्त श्रीकृष्ण और जाम्बवती-नन्दन साम्बको सूर्यनारायणकी आराधनाने निरामय और सुन्दर बनाया था।

सुप्रसिद्ध भक्तकवि मयूरभट्ट, जो बाणके साले एवं भूषणभट्टके मातुल थे, सूर्यकी आराधना कर न केवल नीरोग, कञ्चनकाय हो गये, अपितु उन्होंने सूर्यकी स्तुतिमें रचित सौ श्लोकोंके संग्रह—'सूर्यशतकम्'-से अमरता भी प्राप्त कर ली। यह 'सूर्यशतकम्' आज संस्कृतसाहित्यकी एक अमूल्य निधि बना हुआ है।

इस तरह सूर्याराधनासे स्वास्थ्यलाभकी अनेक कथाएँ पुराणान्तरोंमें देखी जाती हैं। स्यात्, इसी कारण विश्वके अनेक देश 'सूर्यसे आरोग्यलाभ'पर प्रयोग चला रहे हैं, जिसका ज्वलन्तनिदर्शन प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति (Naturopathy) है। अमरिकाके सुप्रसिद्ध चिकित्साशास्त्री मिस्टर जॉन डोनने तो सूर्यरश्मियोंसे यक्ष्मा (T. B.)-जैसे भयंकर रोगके कीटाणुओंके नष्ट होनेका दावा किया है।

'मार्तण्डमरीचियोंसे निरामयता' पर विदेशोंमें आज जो अनुसंधान[6] और प्रयोग चल रहे हैं, आस्तिक हिंदूका उनके प्रति कोई आकर्षण नहीं है, क्योंकि वह जानता है कि शास्त्रोंमें जो कुछ कहा गया है, वह ऋषि-महर्षियोंकी दीर्घकालीन गवेषणाका परिणाम है। शास्त्रोंका एक-एक वचन अकारण-करुणाकर, सर्वमङ्गलकामी, दीनवत्सल, परमवैज्ञानिक ऋषि-मुनियोंके चिरकालीन अन्वेषण-मनन-चिन्तन एवं अनुभवके निकषपर कसकर ही अभिहित हुआ है। इसी आस्था सम्बलके सहारे वह आज भी निर्द्वन्द्व, निश्चिन्त चलते चल रहा है। उसकी धारणा है कि—

पुराणे ब्राह्मणे चैव देवे च मन्त्रकर्मणि।
तीर्थे वृद्धस्य वचने विश्वासः फलदायकः॥
(स्क० पु० २, उत्क० ख० ६०। ६२)

१ अथर्ववेद सं० (। ८। १०, २१, २२)

२ सूर्यरश्मिके सात रंगोंमें दूसरा रंग है नीला, जिसे अल्ट्रा-वायलेट भी कहते हैं। वैज्ञानिकोंके मतानुसार यह अत्यन्त स्वास्थ्य-वर्द्धक कहा गया है। ३ अथर्ववेदसंहिता (१। २२। १, २)

४ वही (६। ८३। १)

(क) नैयार्थी नियमादित्यमुपतिष्ठति धीयवान। नाम्ना पृथिव्यां विख्यातो राजन्यास्तस्वीति य॥
(मुद्रभा० २७। ४४)

(ख) युद्धकाण्डका ही 'आदित्यहृदयस्तोत्र'।

५ बाणभट्ट और मयूरभट्ट दोनों ही महाराज हर्षवर्द्धनके दरबारमें रहते थे।
(—बलदेव उपाध्यायका संस्कृत-साहित्यका इतिहास)

६ 'सूर्यरश्मियोंसे आरोग्यलाभ'पर डॉ० जम्सकुक, (Jams Cook) ए० बी० गार्डन, (A. B. Gorden) एस० औ० पेल्स प्रभृति अनेक पाश्चात्य मनीषी अनुसंधान कर रहे हैं।

मन्त्रे तीर्थे द्विजे देवे दैवज्ञे भैषजे गुरौ।
यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी ॥
(वही ५ । २ । २२७ । २०)

आधुनिक मनोविज्ञानका यह कहना कि व्यक्तिकी भावना ही बहुधा उसके सुख-दुःखका कारण बनती है, भारतीय समाज इसी आस्थामूलक धारणासे मिलता जुलता है और इसी धारणाके वशीभूत फलोन्मुखी अपेक्षा समय तथा साधनके अनुसार भगवान् सूर्यकी आराधनासे लाभान्वित हो जाती है। यद्यपि आधुनिक भौतिक विज्ञानने कुछ लोगोंकी आस्थाको डिगा दिया है, फिर भी कुछ लोग आज भी इसको परम सत्य, सरल तथा सुलभ मानकर दवाओंके चक्करमें न पड़कर सीधे उपासनापर उतर जाते हैं। पैसेवाले 'नाड़ी' या 'मैकाले मार्का-शिक्षा' (!) की किन्हीं उपाधियोंसे विभूषित तथा कथित भद्रमहाशय या तत्प्रभावित व्यक्ति पैसेके बलपर स्वास्थ्य खरीदनेमें जब अपने-आपको अक्षम पाते हैं और शनैः-शनैः स्वास्थ्यके साथ सम्पत्ति (Health and Welth) भी खो बैठते हैं तब 'जैसे उड़ि जहाजको पछी पुनि जहाजपर आवै'—घूम-फिरकर इन्हीं भगवान् सूर्यकी शरणमें आ जाते हैं और नीरोगताको प्राप्त करते हैं। पूर्वमें उनको न मानकर पश्चात् माननेसे उन्हें कोई क्षोभ या आक्रोश नहीं, क्योंकि उनकी तो उद्घोषणा है—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः ॥ (—गीता ९ । ३०)

कोई पूर्वका लाख दुराचारी क्यों न हो, यदि अनन्यभावसे भगवान्की भक्ति करने लगे तो उसे साधु ही मानना चाहिये। भगवान् भक्तिपूर्वक पूजा करनेवालेका शरीर नीरोग कर देते हैं—

सूर्यो नीरोगतां दद्याद् भक्त्या यैः पूज्यते हि सः ।
उसके शरीरको नीरोग तो करते ही हैं, दृढ़ भी बना देते हैं—

अरोगो दृढगात्रः स्याद् भास्करस्य प्रसादतः ॥
यही नहीं, अपितु भगवान् भास्कर नीरोग बनानेके साथ-साथ जिसपर प्रसन्न होते हैं उसे निःसन्देह धन और यश भी प्रदान करते हैं—

शरीरारोग्यकृच्चैव धनवृद्धियशस्करः ।
जायते नात्र संदेहो यस्य तुष्टो दिवाकरः ॥
(पद्मपु० १ । ८० । ५८)

'ज्योति तेरी जलती है'

(रचयिता—श्रीकन्हैयासिंहजी निगम, एम० ए०, एल्-एल्०बी०)

रोग को मिटाने दुख विपदा घटाने तू ही
तेरे ही प्रताप से धरित्री टिकी रहती है।
वन्ध्या को बालक और अधन को धन देता,
अष्ट सिद्धि तथा निद्धि सग लगी रहती है ॥
तू ही है अनादि नित्य अविचल अविनाशी देव,
तेरे ही प्रभाव से यह सृष्टि सब चलती है।
धर्म अर्थ काम मोक्ष चारों पुरुषार्थों का
स्वामी एक तू ही सुन 'ज्योति तेरी जलती है ॥

सूर्यचिकित्सा

(लेखक—पं० श्रीशंकरलालजी गौड़, साहित्य-व्याकरणशास्त्री)

मनीषियोंका कथन है कि सूर्यप्रकाशसे रोगोत्पादक कृमियोंका नाश होता है। जिस प्रकार वात चिकित्साका विधान शास्त्रोंमें वर्णित है, उसी प्रकार अथवा इससे कहीं अधिक सूर्य चिकित्साका विधान है। वायु चिकित्सा सूर्य-प्रकाशसे ही सफल होती है। यदि प्रकाश न हो और इन प्रत्यक्ष देवकी किरण विश्वमें प्रसारित न हों तो जीव जीवित नहीं रह सकते। उपनिषद्का वचन है—'अथादित्य उदयन् यत्प्राचीं दिशं प्रविशति तेन प्राच्यान् प्राणान् रश्मिषु संनिधत्ते' (प्रश्न० उ० १६) सूर्य जब उदय होते हैं तो सभी दिशाओंमें उनकी किरणोंद्वारा प्राण रखा जाता है अर्थात् सूर्यप्रकाश ही वायुमण्डलको शुद्ध करता है। सूर्यकी किरणोंके बिना प्राणकी प्राप्ति नहीं हो सकती है। वेदमें आयु, बल और आरोग्यादि वर्णनके साथ सूर्यका विशेष सम्बन्ध है। शीतकालमें शीत निवारणके लिये सूर्यकी ओर पीठकर उनकी रश्मियोंका सेवन करके आनन्द लेना चाहिये—जैसा कि प्राकृतिक चिकित्साकी विधि गोस्वामीजी अपनी विशुद्ध भावनाओंमें प्रकट करते हैं, यथा—भानु पीठि सेइअ उर आगी (मानस)। प्रायः हमने देखा है कि बहुत-से लोग अन्धकारयुक्त स्थानों अर्थात् अन्धकारयुक्त (अन्धतामिस्र) नरकमें जीवननिर्वाह करते हैं। जहाँ भगवान् सूर्यकी किरणें नहीं पहुँच पातीं, वहाँ शीतकालमें शीत तो बना ही रहता है। साथ ही वहाँके प्राणी भयंकर रोगके शिकार हो जाते हैं। उदाहरणार्थ—गठिया, गृध्रसी, स्नायुरोग, और पक्षाघात आदि। ऐसे लोग वैद्य, डाक्टर तथा हकीमोंकी शरणमें जाकर भी अपना शारीरिक कष्ट (रोग) निवारण नहीं कर पाते। सूर्यका प्रकाश दुर्गन्धको दूर करनेवाली वायुको शुद्ध करता है। तभी तो गोस्वामीजी लिखते हैं—भानु कृसानु सब रस खाहीं विशेष—'प्राणो वै वात' सूर्यकी किरणें रोगरूपी राक्षसोंका विनाश करती हैं। 'सूर्यो हि नाष्ट्राणा रक्षसामपहन्ता'। सूर्यप्रकाशसे रोगोत्पादक कृमियोंका नाश होता है। यथा—उत् पुरस्तात् सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा। दृष्टांश्च घ्नन्नदृष्टांश्च क्रिमीन् जम्भयामसि (अथर्व० ५। २३। ६) सूर्य पूर्व दिशामें उदय होता है तथा पश्चिम दिशामें अस्त होता है एवं वह अपनी किरणोंद्वारा सभी दिखने तथा न दिखनेवाले कृमियोंका नाश करता है। इन कृमियोंका स्वरूपवर्णन, वेदमें इस प्रकार आता है—शृणाम्यस्य पृष्टीरपि वृश्चामि यच्छिरः। भिनद्मि ते कुषुम्भं यस्ते विषधानः॥ (अथर्व० २। ३२। २,६) शरीरमें विद्यमान रहनेवाले विभिन्न प्रकारके कृमि भिन्न भिन्न रोग उत्पन्न करते हैं, उनका हनन भगवान् सूर्यके प्रकाशसे ही होता है। अब सूर्यके प्रकाश, धूप तथा किरणोंका सेवन प्रत्येक ऋतुमें आवश्यक है, इसे हम वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे तथा स्वास्थ्य-लाभकी दृष्टिसे बतलाते हैं। भारतीय विद्वानोंने वसन्तऋतुको ऋतुराजकी संज्ञा दी है। इसमें चैत्र वैशाख मास आते हैं। इस ऋतुमें प्रातः और सायंकाल घूमना हितकर बतलाया है। यथा—'वसन्ते भ्रमणं पथ्यम्' तथापि मध्याह्न-समयमें घूमना श्रेष्ठ नहीं है। प्रत्युत इससे ज्वर, माता, मोतीझरा, खसरा आदि रोगोंका प्रादुर्भाव भी सम्भव है। ग्रीष्मऋतुमें भुवनभास्कर अत्यन्त तीक्ष्ण किरण फेंकते हैं, इससे कफ क्षीण होकर वायु बढ़ती है। इसलिये इस ऋतुमें नमकीन, अम्ल, कटु पदार्थका भोजन व्यायाम और धूपका त्याग करना हितकर होता है। मधुर अम्ल, स्निग्ध एवं शीतल द्रव्य भोजन करे। ठण्डे जलमें स्नान एवं अङ्गोंका सिंचन कर शक्करयुक्त सत्तूका प्रयोग करे। मद्य (शराब) न पीवे। बेलाकी माला धारण करनी चाहिये। सफेद

चन्दनको घिसकर लगाना चाहिये। इससे शिरोरक्त एवं दाह शान्त होते हैं। एक धर्मशास्त्रीय वचन भी है, यथा—

चन्दनस्य महत् पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम्।
आपदं हरते नित्यं लक्ष्मीस्तिष्ठतु सर्वदा॥

आपदाका अर्थ यहाँ मात्र मस्तिष्कदाह तथा ऐहलौकिक एवं पारलौकिक विपत्तियोंके नाशसे है। वर्षाऋतुमें अग्निके मन्द होनेसे क्षुधाका ह्रास होता है 'वर्षास्वग्निबले क्षीणे कुप्यन्ति पवनादयः'—वर्षाऋतुमें जठराग्निका दुर्बल हो जाना सम्भव है, जिससे वात आदि रोग उत्पन्न होते हैं। वास्तवमें मल तथा अग्निका दूषित होना ही रोगोपद्रवका प्रमुख कारण है। 'आमाशयस्य कायाग्नेर्दौर्बल्यादपि पाचिनः' आमाशय की खराबीसे मन्दाग्नि हो जाती है, इसलिये अग्नि प्रदीप्त करनेवाली क्रोपवास प्राकृतिक चिकित्सा करनी चाहिये। इस ऋतुमें धुले हुए शुद्ध वस्त्र पहनने चाहिये। ऋतुओंमें सबसे खराब वर्षाऋतु होती है। इसमें धूप-सेवन थोड़ी देरतक ही करना चाहिये। शरद्‌ऋतुमें वास्तवमें सूर्य-चिकित्साका विधान भारतीय तथा पाश्चात्त्य विद्वानोंने किया है। इस ऋतुमें पित्त प्रकुपित रहता है, इसलिये भूख अच्छी लगती है। शीतल, मधुर, तिक्त, रक्तपित्तको शमन करनेवाला अन्न एवं जलका उचित मात्रामें सेवन करना चाहिये। साठी और गेहूँका सेवन करना ठीक है। विरेचन भी लेना चाहिये। दिवाशयन और पूर्वी वायुका सेवन त्याग देना चाहिये। इस ऋतुमें दिनमें सूर्यकी किरणोंसे तप्त और रात्रि किरणोंद्वारा शीतल अगस्त्य नक्षत्रके उदित होनेसे जल निर्मल और पवित्र हो जाता है। इस जलको हंसोदक कहते हैं। यह स्नान, पान और अवगाहनमें अमृतके समान होता है। इस प्रकार ऋतुओंमें होनेवाले भयंकर रोगोंसे हम सूर्यकी कृपासे बच सकते हैं। तभी तो कहा है—'आरोग्यं भास्करादिच्छेत्'। भगवान् सूर्यकी किरणें निःसन्देह शुद्ध करनेवाली हैं—'एते वा उत्पवितारो यत्सूर्यस्य रश्मयः' The rays of sun are certainly purifying सूर्य ही विनाशक राक्षसोंका नाश करनेवाले हैं अर्थात् जो राक्षसरूप भयंकर रोग हैं, उनका विनाश हो सकता है। 'For the sun is the speller of the evil spirits, and the sickness' सूर्यके प्रकाशसे रोगोत्पादक जन्तु मर जाते हैं, ऐसा ही सामवेदमें निर्देश है—'वेत्थाहि निर्ऋतीनां वज्र हस्त परिवृजम्। अहरहः शुन्ध्युः परिपदामिव।।' सूर्य! आप प्रतिदिन राक्षसोंके वर्जनको अवश्य जानते हैं अर्थात् सूर्य रोगरूपी राक्षसोंके विनाशक हैं। सूर्य दीर्घायुष्य देनेवाले परमात्मा हैं, यथा—'तु चे तुनाय तत्सुनोद्राघीय आयुर्जीवसे। आदित्यासः सु महसः कृणोतन॥' (सामवेद) सूर्यके प्रकाशद्वारा कीटाणु मर जाते हैं। इस विषयमें अथर्ववेदका प्रमाण प्रत्यक्ष है 'उद्यन्नादित्यः क्रिमीन् हन्तु निम्रोचन् हन्तु रश्मिभिः। ये अन्तः क्रिमयो गवि॥' (—अथर्व॰ २।३२।१) अर्थात् सूर्यकिरणोंसे छिपे हुए रोग-जन्तु भी नष्ट हो जाते हैं।

सूर्यसे विनय

येन सूर्य ज्योतिषा बाधसे तमो जगच्च विश्वमुदियर्षि भानुना।
तेनास्मद्विश्वामनिरामनाहुतिमपामीवामप दुष्ष्वप्न्यं सुव॥
(ऋ॰ १०।३७।४)

अये सूर्यदेव! आप अपनी जिस ज्योतिसे अँधेरेको दूर करते और विश्वको प्रकाशित करते हैं, उसी ज्योतिसे हमारे पापोंको दूर करें, रोगोंको और क्लेशोंको नष्ट करें तथा दारिद्र्यको भी मिटायें।

श्वेतकुष्ठ और सूर्योपासना

(लेखक—श्रीकान्तजी शास्त्री वैद्य)

श्रीपीताम्बरापीठ दतियाके संस्थापक परमपूज्य श्री स्वामीजी महाराजका अनुभव है कि सूर्याष्टकका श्रद्धापूर्वक नित्य पाठ करनेसे श्वेतकुष्ठके रोगी लाभान्वित होते हैं। शृङ्गवेरपुरनिवासी एक महात्माका अनुभव है कि रविवारका व्रत रखने और सूर्यनारायणको नित्य अर्घ्य देनेसे श्वेतकुष्ठ जाता रहता है। अर्घ्यके बाद कंडेकी आगपर शुद्ध घृत और गुग्गुलुका धूप देना चाहिये। जले हुए गुग्गुलुको उठाकर सफेद दागोंपर मलना चाहिये।

जिन लोगोंको लगातार विरुद्ध आहार करते रहना पड़ता है या जो पेचिसके रोगी हैं अथवा अम्लपित्तसे मस्त हैं, उनमें इसकी सम्भावना अधिक होती है, यह देखनेमें आता है। विरुद्ध आहारकी सूची लम्बी है, पर मोटे तौरसे यह समझ लेना चाहिये कि दूधके साथ खटाई और केले इत्यादिका सेवन विरुद्ध आहारोंमें आता है। अतः कारणोंपर ध्यान देकर थोड़ा-बहुत औषधोपचार चलाते रहनेसे लाभकी शीघ्र सम्भावना है। लौह-घटित योगको बाकुचीके हिमसे सेवन करानेसे भी लाभ देखा गया है।

इसके रोगीको खटाई, मिर्च, मांस, अंडा, मदिरा, गालडा, अरवी, उड़द, तली-भुनी वस्तुएँ, भारी चीजें नहीं खानी चाहिये। स्टेनलेस स्टील और अल्यूमिनियमके बर्तनोंका प्रयोग भी विशेषतः भोजन-पाक करनेमें अवश्य बंद कर देना चाहिये। (सूर्याष्टक आगे प्रकाश्य है।)

सूर्यकिरणें कल्पवृक्षतुल्य हैं

(एक विशेषज्ञसे हुई भेंट-वार्तापर आधारित)

'शरीरं व्याधिमन्दिरम्'—के अनुसार इस मानव-शरीरमें रोग होना स्वाभाविक है। सम्भवतः इसे ही देखकर ऋषियोंने लोककल्याणार्थ व्याधिचिकित्साके लिये उपवेदोंमें आयुर्वेदको भी स्थान दिया। आयुर्वेदमें कई रोगोंके निवारणार्थ सूर्यकिरण-सेवन और सूर्यार्चनका विधान है। मानव सूर्यकिरणोंद्वारा आरोग्य प्राप्त कर सकता है, यह मानकर एक प्रख्यात आयुर्वेदज्ञ और रसायनवेत्ता डॉक्टरसे सम्पर्क स्थापित कर 'सूर्यकिरणोंद्वारा स्वास्थ्यलाभ' विषयपर प्रेमसे चर्चा की तो उन्होंने इसपर विस्तृत प्रकाश डाला, जिसका संक्षिप्त रूप यहाँ प्रस्तुत है।

प्रश्न—डॉ० साहब! आप इस क्षेत्रके प्रख्यात चिकित्सक हैं और सूर्यकिरणोंके माध्यमसे चिकित्सा करते हैं, कृपया यह बताइये कि सूर्यकिरण चिकित्सा-पद्धति प्राचीन है या नवीन? यह पूर्वकी देन है या पश्चिमकी? वर्तमानरूपमें इसे लानेका श्रेय किसे है?

उत्तर—देखिये! इसमें कोई संदेह नहीं कि आयुर्वेदमें जहाँ रोगनाशहेतु औषधियोंकी बात कही गयी है, वहीं प्रत्येक रोगके रोगाधिकारी देवताओंकी उपासनाका भी निर्देश है। इसके लिये उसमें यन्त्र, मन्त्र और स्तोत्र भी वर्णित हैं। शिव-प्रणीत शाबरमन्त्रोंमें भी अनेक रोगनाशार्थ मन्त्र कहे गये हैं। जहाँतक सूर्य-किरण-चिकित्साकी बात है, यह निःसंदेह हमारे देशकी प्राचीन पद्धति है। वेदोंमें भी इसपर प्रकाश डाला गया है। 'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'—अर्थात् सूर्य ही स्थावर

चन्दनको घिसकर लगाना चाहिये। इससे शिरोरुक एवं दाह शान्त होते हैं। एक धर्मशास्त्रीय वचन भी है, यथा—

चन्दनस्य महत् पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम्।
आपदं हरते नित्यं लक्ष्मीस्तिष्ठतु सर्वदा॥

आपदाका भयकारकका भाव मस्तिष्कदाह तथा ऐहलौकिक एवं पारलौकिक विपत्तियोंके नाशसे है। वर्षाऋतुमें अग्निके मन्द होनेसे क्षुधाका ह्रास होता है 'वर्षास्वग्न्यबले क्षीणे कुप्यन्ति पवनादयः'—वर्षाऋतुमें जठराग्निका दुर्बल हो जाना सम्भव है, जिससे वात आदि रोग उत्पन्न होते हैं। वास्तवमें मल तथा अग्निका दूषित होना ही रोगोत्पादयका प्रमुख कारण है। 'आमाशयस्य कायाग्नेर्दौर्बल्यादपि पाचितः' आमाशयकी खराबीसे मन्दाग्नि हो जाती है, इसलिये अग्नि प्रदीप्त करनेवाली क्रोपवास प्राकृतिक चिकित्सा करनी चाहिये। इस ऋतुमें धुले हुए शुद्ध वस्त्र पहनने चाहिये। ऋतुओंमें सबसे खराब वर्षाऋतु होती है। इसमें धूप-सेवन थोड़ी देरतक ही करना चाहिये। शरद्‌ऋतुमें वास्तवमें सूर्य-चिकित्साका विधान भारतीय तथा पाश्चात्य विज्ञानोंने किया है। इस ऋतुमें पित्त प्रकुपित रहता है, इसलिये भूख अच्छी लगती है। शीतल, मधुर, तिक्त, रक्तपित्तको शमन करनेवाला अन्न एवं जलका उचित मात्रामें सेवन करना चाहिये। साठी और गेहूँका सेवन करना ठीक है। विरेचन भी लेना चाहिये। दिवा-शयन और पूर्वी वायुका सेवन त्याग देना चाहिये। इस ऋतुमें दिनमें सूर्यकी किरणोंसे तप्त और रात्रि-किरणोंद्वारा शीतल अगस्त्य नक्षत्रके उदित होनेसे जल निर्मल और पवित्र हो जाता है। इस जलको हंसोदक कहते हैं। यह स्नान, पान और अवगाहनमें अमृतके समान होता है। इस प्रकार ऋतुओंमें होनेवाले भयंकर रोगोंसे हम सूर्यकी कृपासे बच सकते हैं। तभी तो कहा है—'आरोग्यं भास्करादिच्छेत्'। भगवान् सूर्यकी किरणें निःसंदेह शुद्ध करनेवाली हैं—'एते वा उत्पवितारो यत्सूर्यस्य रश्मयः' The rays of sun are certainly purifying. सूर्य ही निशाचर राक्षसोंका नाश करनेवाले हैं अर्थात् जो राक्षसरूप भयंकर रोग हैं, उनका विनाश हो सकता है। 'For the sun is the speller of the evil spirits and the sickness.' सूर्यके प्रकाशसे रोगोत्पादक जन्तु मर जाते हैं, ऐसा ही सामवेदमें निर्देश है—'येस्याहि निर्ऋतीना वज्र हस्त परिव्रजम्। अहरहः शुन्ध्युः परिपदामिव।' सूर्य! आप प्रतिदिन राक्षसोंके वर्जनको अवश्य जानते हैं अर्थात् सूर्य रोगरूपी राक्षसोंके विनाशक हैं। सूर्य दीर्घायुष्य देनेवाले परमात्मा हैं, यथा—'तु नो तुनाय तत्सुनोद्राघीय आयुर्जीवसे। आदित्यासः सु महसः कृणोतन॥' (सामवेद) सूर्यके प्रकाशद्वारा कीटाणु मर जाते हैं। इस विषयमें अथर्ववेदका प्रमाण प्रत्यक्ष है 'उद्यन्नादित्यः क्रिमीन् हन्तु निम्रोचन् हन्तु रश्मिभिः। ये अन्तः क्रिमयो गवि॥' (—अथर्व० २।३२।१) अर्थात् सूर्यकिरणोंसे छिपे हुए रोग-जन्तु भी नष्ट हो जाते हैं।

सूर्यसे विनय

येन सूर्य ज्योतिषा बाधसे तमो जगच्च विश्वमुदियर्षि भानुना।
तेनास्मद्विश्वामनिरामनाहुतिमपामीवामप दुष्ष्वप्न्यं सुव॥
(ऋ० १०।३७।४)

अये सूर्यदेव! आप अपनी जिस ज्योतिसे अँधेरेको दूर करते और विश्वको प्रकाशित करते हैं, उसी ज्योतिसे हमारे पापोंको दूर करें, रोगोंको और क्लेशोंको नष्ट करें तथा दारिद्र्यको भी मिटायें।

श्वेतकुष्ठ और सूर्योपासना

(लेखक—श्रीकान्तजी शास्त्री वैद्य)

श्रीपीताम्बरापीठ दतियाके संस्थापक परमपूज्य श्रीस्वामीजी महाराजका अनुभव है कि सूर्याष्टकका श्रद्धापूर्वक नित्य पाठ करनेसे श्वेतकुष्ठके रोगी लाभान्वित होते हैं। शृङ्गवेरपुरनिवासी एक महात्माका अनुभव है कि रविवारका व्रत रखने और सूर्यनारायणको नित्य अर्घ्य देनेसे श्वेतकुष्ठ जाता रहता है। अर्घ्यके बाद कंडेकी आगपर शुद्ध घृत और गुग्गुलका धूप देना चाहिये। जले हुए गुग्गुलको उठाकर सफेद दागोंपर मलना चाहिये।

जिन लोगोंको लगातार विरुद्ध आहार करते रहना पड़ता है या जो पेचिसके रोगी हैं अथवा अम्लपित्तसे ग्रस्त हैं, उनमें इसकी सम्भावना अधिक होती है, यह देखनेमें आता है। विरुद्ध आहारकी सूची लम्बी है, पर मोटे तौरसे यह समझ लेना चाहिये कि दूधके साथ खटाई और केले इत्यादिका सेवन विरुद्ध आहारोंमें आता है। अतः कारणोंपर ध्यान देकर थोड़ा-बहुत औषधोपचार चलाते रहनेसे लाभकी शीघ्र सम्भावना है। लौह घटित योगको बाकुचीके हिमसे सेवन करानेसे भी लाभ देखा गया है।

इसके रोगीको खटाई, मिर्च, मांस, अंडा, मदिरा, डालडा, अरवी, उड़द, तली-भुनी वस्तुएँ, भारी चीजें नहीं खानी चाहिये। स्टेनलेस स्टील और अल्यूमिनियमके बर्तनोंका प्रयोग भी विशेषतः भोजन-पाक करनेमें अवश्य बंद कर देना चाहिये। (सूर्याष्टक आगे प्रकाश्य है।)

सूर्यकिरणें कल्पवृक्षतुल्य हैं

(एक विशेषज्ञसे हुई भेंट-वार्तापर आधारित)

'शरीरं व्याधिमन्दिरम्'—के अनुसार इस मानव-शरीरमें रोग होना स्वाभाविक है। सम्भवतः इसे ही देखकर ऋषियोंने लोककल्याणार्थ व्याधिचिकित्साके लिये उपवेदोंमें आयुर्वेदको भी स्थान दिया। आयुर्वेदमें कई रोगोंके निवारणार्थ सूर्यकिरण-सेवन और सूर्यार्चनका विधान है। मानव सूर्यकिरणोंद्वारा आरोग्य प्राप्त कर सकता है, यह मानकर एक प्रख्यात आयुर्वेदज्ञ और रसायनवेत्ता डॉक्टरसे सम्पर्क स्थापित कर 'सूर्यकिरणोंद्वारा स्वास्थ्यलाभ-विषयपर प्रश्नके' चर्चा की तो उन्होंने इसपर विस्तृत प्रकाश डाला, जिसका संक्षिप्तरूप यहाँ प्रस्तुत है।

प्रश्न—डॉ० साहब! आप इस क्षेत्रके प्रख्यात चिकित्सक हैं और सूर्यकिरणोंके माध्यमसे चिकित्सा करते हैं, कृपया यह बताइये कि सूर्यकिरण चिकित्सा-पद्धति प्राचीन है या नवीन? यह पूर्वकी देन है या पश्चिमकी? वर्तमानरूपमें इसे लानेका श्रेय किसे है?

उत्तर—देखिये! इसमें कोई संदेह नहीं कि आयुर्वेदमें जहाँ रोगनाशहेतु औषधियोंकी बात कही गयी है, वहीं प्रत्येक रोगके रोगाधिकारी देवताओंकी उपासनाका भी निर्देश है। इसके लिये उसमें यन्त्र, मन्त्र और स्तोत्र भी वर्णित हैं। शिव-प्रणीत शाबरमन्त्रोंमें भी अनेक रोगनाशार्थ मन्त्र कहे गये हैं। जहाँतक सूर्य-किरण-चिकित्साकी बात है, यह निःसंदेह हमारे देशकी प्राचीन पद्धति है। वेदोंमें भी इसपर प्रकाश डाला गया है। 'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'—अर्थात् सूर्य ही स्थावर

प्राकृतिक चिकित्सा और सूर्य-किरणें

(लेखक—महामण्डलेश्वर स्वामी श्रीभजनानन्दजी सरस्वती)

सम्पूर्ण सौर-मण्डलके प्रकाशक भगवान् सूर्य भारतीय परम्परामें देवरूप माने गये हैं। वेदमें भी चिकित्सा और ज्ञानकी दृष्टिसे सूर्यका वर्णन भिन्न-भिन्न स्थानोंमें आता है। ईशावास्योपनिषद्में आत्मारूपसे इनकी वन्दना की गयी है।

पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन् समूह। तेजो यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि ॥ १६ ॥

'हे जगत्के पोषण करनेवाले, एकाकी गमन करनेवाले, संसारका नियमन करनेवाले, प्रजापति-नन्दन सूर्य! आप अपनी किरणोंको समेट लें, क्योंकि जो आपका कल्याणतम रूप है, उसे मैं देख रहा हूँ। यह जो आदित्यमण्डलस्थ पुरुष है, वह मैं हूँ। अर्थात् आत्मज्योतिरूपसे हम एक हैं। इस प्रकार आत्मारूपसे भगवान् सूर्यकी वन्दना की गयी है। इसके अतिरिक्त मानव-जीवनमें श्रीसूर्य और किरणोंका क्या महत्त्व है—यह भी छिपा नहीं है।

सामान्य जन तो उदयमें प्रकाश और अस्तमें अन्धकारकी कल्पना करके शान्त हो जाते हैं, किंतु शास्त्रीय एवं वैज्ञानिक दृष्टिसे प्रतिक्षण सूर्यका सम्बन्ध हमारे जीवनसे रहता है। सूर्यके बिना क्षणभर भी रहना असम्भव है।

यदि यह कहा जाय कि सभीके जीवनका आधार सूर्य ही हैं तो अनुचित न होगा, क्योंकि हमारी सारी शक्तियोंके स्रोत सूर्य ही हैं और उन्हींके प्रभावसे सबका जीवन सुखमय बीतता है।

संसारकी सारी वनस्पतियाँ उन सूर्यकिरणोंद्वारा ही पुष्ट होती हैं, जिनके सहारे हमलोग जीवन धारण करते हैं। पौधे तथा हमलोग सूर्यसे अपने जीवनकी शक्ति प्राप्त करते हैं। दूध पीते समय जो प्रोटीन हमें प्राप्त होता है, वह सूर्यकी किरणोंसे ही, क्योंकि गौएँ घास और सब्जियोंको कार्बोहाइड्रेटमें परिणत किये बिना हमें दूध नहीं दे सकती हैं।

प्रत्यक्षरूपसे भी सूर्य किरणें मानव-जीवनको प्रभावित करती हैं। उनके रंगोंका प्रभाव हमारे ऊपर बहुत होता है। रंगकी किरणोंका अधिक महत्त्व है, क्योंकि रंगोंका समूह, जो हमारे वातावरणको बनाता है, उनको वे रूप देती हैं। रंगके प्रति जो हमारी प्रतिक्रियाएँ होती हैं, वे महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि वे हमलोगोंके न केवल शरीरको प्रभावित करती हैं, अपितु उनका मनोवैज्ञानिक प्रभाव भी हमपर पड़ता है। इस बातका प्रत्येकने अनुभव किया होगा कि जब बादल या धूल वातावरणमें रहते हैं और उनके बीचसे सूर्यकी किरणें आती हैं, तब कैसा अच्छा लगता है। कितना हमारी मनोदशा तथा जीवनकी स्थितिपर रंगका गहरा प्रभाव पड़ता है। हम हरे-भरे रंगको देखकर स्वयं भी हरे-भरे हो जाते हैं।

यह प्रयोगद्वारा देखा गया है कि नीले रंगका प्रभाव ठंडा होता है। लाल रंगसे उष्णता और तेज रंगसे घरमें तथा कारखानेमें काम करनेकी स्फूर्ति पैदा होती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि रंगका जो भावात्मक प्रभाव पड़ता है, उसीपर चिकित्सा करनेका एक सिद्धान्त बनाया गया है। मनकी स्वस्थताका प्रभाव शरीरपर प्रत्यक्षत पड़ता है।

प्रत्यक्षरूपसे जिस कारणको हम प्राप्त करते हैं, वह हमारे लिये मूल्यवान् है, किंतु अदृश्य किरणें भी हमारे लिये अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं। वर्णक्रमके अन्तमें जो लाल रंग रहता है, वहाँ तापक इन्फ्रा-रेड किरणें रहती हैं। ये ही किरणें हमारी पृथ्वीको गरम रखती हैं। ये बेधने वाली किरणें हैं। जैसे-जैसे ताप बढ़ने लगता है, वैसे-वैसे

चयोपचयिक क्रिया तेज होती जाती है। इसी कारण हम शीत ऋतुकी अपेक्षा ग्रीष्म ऋतुमें योग्यतापूर्ण कार्य करनेकी विशेष क्षमता प्राप्त करते हैं।

प्रभातकालीन सूर्यके सामने नंगे बदन रहना स्वास्थ्यके लिये अत्यधिक लाभदायक है। प्राकृतिक चिकित्सामें शरीरके आन्तरिक एवं बाह्य रोगोंमें रोगीको सूर्य-स्नान करवाया जाता है। इस चिकित्सामें सूर्यकी अनेक महत्त्वपूर्ण क्रियाओंमें सूर्यस्नान अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हुआ है।

यह सूर्यस्नान दोपहर होनेसे पहले किया जाता है। इस प्रयोगमें स्नानकर्ताको अपने सिरके ऊपर ठंडे जलसे भीगा हुआ एक तौलिया अवश्य रखना चाहिये। साथ ही नंगे बदन होकर एक गिलास जल पी लेना भी आवश्यक है। फिर नंगे बदन सिरपर भीगे हुए तौलिये सहित धूपमें चला जाय। गर्मीमें १५ २० मिनटतक एवं सर्दीमें ३० ३५ मिनटतक वहाँ रहना चाहिये। समयानुसार धूपमें रहकर पुनः तुरंत ठंडे जलसे स्नान करनेका विधान है। बादमें शरीरको पोंछकर कुछ देर विश्राम करके लगभग एक घंटे पश्चात् भोजन करे। इस स्नानसे शरीरके सभी चर्मरोग नष्ट हो जाते हैं। कुष्ठरोग तथा पाचन क्रियाके लिये एवं नेत्रज्योति और श्रवण-शक्ति आदि बड़े-बड़े रोगोंके लिये यह वरदान सिद्ध हुआ है। यहाँ सूर्यसे कुष्ठरोग विनष्ट होनेका एक ही प्रचलित उदाहरण देना पर्याप्त होगा। भारतीय संस्कृत भाषाके सुप्रसिद्ध गद्य साहित्यकार बाणभट्टके साले मयूरभट्ट एक बार कुष्ठरोगसे पीड़ित हो गये। सूर्योपासनासे उनका यह रोग समूल विनष्ट हो गया। क्या आपने कभी विचार किया कि किसानलोग अधिकतर बीमार क्यों नहीं पड़ते? मुख्यतः कारण यही है कि ऊपरसे पड़ती धूपमें काम करनेवाले किसानका सूर्य-स्नान प्रतिदिन होता है। कभी धूप तो कभी वर्षा—ऐसी स्थितिमें सूर्य-स्नान स्वतः हो जाता है।

प्राकृतिक चिकित्सामें रोगीको सूर्यका पूरा-पूरा लाभ उठानेके लिये उषाकालमें प्रतिदिन उठना चाहिये। उषाकालकी सुखद वायु एवं प्रभातकालीन सूर्यकी रश्मियोंका सेवन करनेवाला व्यक्ति सदैव नीरोग रहता है।

इतना ही नहीं, सूर्यकी किरणोंद्वारा विटामिन डी० की उत्पत्ति होती है। वर्णक्रमके अन्तिम छोरके गुलाबी रंगपर अदृश्य अल्ट्रावायलेट किरणें रहती हैं। जब ये किरणें त्वचातक पहुँचती हैं, तब हम उन्हें शोषित करते हैं। वे त्वचाके नीचे एक प्रकारके तेलयुक्त पदार्थद्वारा शोषित की जाती हैं। उन किरणोंकी शक्तिसे त्वचाके बीच रहनेवाले पदार्थ विटामिन 'डी'में परिणत किये जाते हैं। यही एकमात्र विटामिन है, जिसको हम अपने आप तैयार करते हैं तथा जो हमारे लिये आवश्यक है। उसी विटामिनके द्वारा शरीर मुख्य खनिज तत्त्वोंको व्यवहारमें लाता है—विशेषकर कैल्शियम और फासफोरसको। इनके द्वारा शरीरकी संरचना, हड्डियाँ और दाँत इत्यादिके निर्माण होते हैं। इन्हींके द्वारा शरीरकी क्रियाएँ सम्पन्न होती हैं।

वर्षा ऋतुका जल छोटे-छोटे गड्ढोंमें भरकर गंदा हो जाता है। वही जल एक दिन सूर्यकी किरणोंद्वारा वाष्प बनकर जब बादलोंके द्वारा पुनः बरसता है तो गङ्गाजलके सदृश निर्मल हो जाता है। इसे विज्ञानमें स्रावित-जल कहते हैं। यह बड़ी-बड़ी औषधियोंके काम आता है।

ऊपरकी बातोंको ध्यानमें रखकर हम जितना अधिक समय सूर्यकी किरणमें खुले बदन व्यतीत करेंगे, उतना ही हमारे लिये लाभप्रद होगा। हम कितनी ही अधिकमात्रामें पशुसे उत्पादित 'डी' विटामिन प्राप्त करें, आगसे सूर्यके बदले उष्णता प्राप्त करें और रंगके लिये विद्युत्‌का उपयोग करें, किंतु प्रत्यक्षरूपसे सूर्यकी किरणोंमें स्नान करनेसे जो पूर्ण लाभ प्राप्त होता है, वह इन साधनोंसे किसी हालतमें प्राप्त नहीं हो सकता। सूर्यकी किरणोंसे हमें न केवल रोशनी उष्णता और स्वास्थ्यप्रद विटामिन 'डी' प्राप्त होते हैं, अपितु उनसे टॉनिक भी प्राप्त होता है, जो हमारे शरीरको स्वस्थ रखनेके लिये क्रियाशील बनाता है।

है। इस योगवाला व्यक्ति सुखी, धनी तथा ऐश्वर्यवान् होता है।

७–राजभङ्गयोग—यदि सूर्य तुला-राशिमें दस अंशके अन्तर्गत हों तो राजभङ्ग योग बनता है। इस योग-वाला व्यक्ति दुःखी, उद्विग्न, मानसिक चिन्ताओंसे ग्रस्त तथा दरिद्री होता है। ऐसा व्यक्ति राजसुख नहीं भोगता।

८–अन्धयोग—सूर्य और चन्द्रमा—ये दोनों ग्रह बारहवें भावमें हों तो अन्धयोग बनता है। ऐसे योगमें उत्पन्न व्यक्ति अन्धा हो सकता है।

९–उन्मादयोग—यदि लग्नमें सूर्य तथा सप्तम भावमें मङ्गल हों तो उन्मादयोग बनता है। ऐसा व्यक्ति गप्पी तथा व्यर्थका वार्तालाप करनेवाला—बावली होता है।

१०–यदि पञ्चम भावमें कुम्भ-राशिके सूर्य हों तो वे जातकके बड़े भाइका नाश करते हैं।

११–तृतीय भावमें स्वगृही सूर्यके साथ यदि शुक्र स्थित हों तथा उसपर शनिकी दृष्टि पड़ती हो तो छोटे भाइ तथा पिताकी हानि होती है।

१२–यदि सूर्य तथा चन्द्रमा नवम भावमें स्थित हों तो पिताकी मृत्यु जलमें होनेकी सम्भावना रहती है।

१३–जन्म वृष लग्नका हो तथा सूर्य निर्बल होकर राहु एवं शनिसे दृष्ट अथवा युक्त हों तो व्यक्तिका कई बार स्थानान्तरण होता है तथा राजकीय सेवामें कई उत्थान-पतन देखने पड़ते हैं।

१४–यदि पञ्चम भावमें तुला राशिके सूर्य हों तो जातक हड्डियोंके रोगसे पीड़ित रहता है तथा उसे जीवनमें कई बार चोट लगती है।

१५–यदि मिथुन लग्नमें अकेले केतु हों तथा सूर्य चतुर्थ, सप्तम या दशम भावमें हों तो व्यक्ति पराक्रमी एवं तेजस्वी होता है।

१६–द्वितीय भावमें कर्क राशिके सूर्य और चन्द्रमा मङ्गलसे दृष्ट हों तो दृष्टिनाशक योग बनता है।

१७–मिथुन लग्नका जन्म हो और सूर्य दशम या एकादश भावमें हों तो व्यक्ति उच्च महत्त्वाकाङ्क्षी तथा श्रेष्ठतम लोगोंसे सम्पर्क रखनेवाला होता है।

१८–कर्क लग्नका जन्म हो और सूर्य दशम भावमें स्वगृही होकर मङ्गलके साथ स्थित हों तो जातकका राज्यपक्ष बड़ा प्रबल होता है। वह नृपतुल्य होता है।

१९–दशम भावमें मेष राशिके उच्च सूर्य जातकको राजाके समान प्रभावशाली बनाते हैं।

२०–यदि लग्नमें स्वगृही सूर्य हों तो व्यक्ति स्वाभिमानी, प्रशासनमें कुशल तथा राज्यमें उच्च पदका अधिकारी होता है।

२१–यदि तुला राशिके सूर्य लग्नमें हों तो व्यक्ति राजासे सम्मान पानेवाला अधिकारी होता है।

२२–वृश्चिक लग्नका जन्म हो, सूर्य छठे या दशम भावमें हों तो जातकका पिता कीर्तिमान् कीर्तिमान् होता है।

२३–धनुलग्नका जन्म हो, सूर्य दशम भावमें बृहस्पतिके साथ हों तो व्यक्ति श्रेष्ठ प्रशासक होता है।

२४–यदि सप्तम भावमें स्वगृही सूर्य हों तो उस पुरुषकी स्त्री साहसी, लड़ाकू तथा दृढ़ विचारोंवाली होती है।

२५–यदि नीच (तुला) राशिके सूर्य नवम भावमें हों तो उस पुरुषकी पत्नी अल्पायु होती है।

२६–यदि तृतीय भावमें मेष राशिके सूर्य हों तो व्यक्ति निश्चय ही उच्च विचारोंवाला तथा किसी बड़े पदका अधिकारी होता है।

२७–यदि द्वितीय भावमें उच्च राशिके सूर्य हों तो जातकके मामा यशस्वी, धनी तथा कुलमें श्रेष्ठ होते हैं।

२८–यदि मेष लग्नका जन्म हो तथा षष्ठेशसे युक्त सूर्य छठे या आठवें भावमें हों तो जातक राज रोगवाला होता है।

२९—यदि मेष जन्म लग्न हो एवं सूर्य तथा शुक्र लग्न या सप्तम भावमें हों तो जातककी स्त्री वन्ध्या होती है।

३०—लग्नसे दशम भावमें रहनेवाले सूर्य पितासे धन दिलाते हैं।

३१—यदि मेष लग्नमें सूर्य और चन्द्रमा एक साथ बैठे हों तो राजयोग बनाते हैं।

३२—यदि मेष लग्नमें सूर्य हों तथा एकादश भावमें शनि बैठे हों तो व्यक्तिके पैरोंमें चोट लगती है।

३३—यदि मेष लग्नमें शनि तथा छठे भावमें सूर्य हों तो जातक आजन्म रोगी बना रहता है।

३४—दशम भावके मेषलग्नमें स्थित सूर्य जातकको भाषणकी कलामें निपुण बनाते हैं।

३५—यदि जन्म-कुण्डलीमें सूर्य वृश्चिकके तथा शुक्र सिंहके हों तो उस व्यक्तिको ससुरालसे धन प्राप्त होता है।

३६—यदि चतुर्थ भावमें वृश्चिक राशि हो तथा उसमें सूर्य और शनि एक साथ बैठे हों तो जातकको वाहन-सुख प्राप्त होता है।

३७—यदि सूर्य लग्नमें स्वगृहीके हों तथा सप्तम भावमें मङ्गल हों तो जातकको उन्मादरोग होता है।

३८—वृश्चिक लग्नवाली कुण्डलीके तृतीय भावमें यदि सूर्य हों, लग्नमें स्थित शनिकी दृष्टि पड़ती हो तो जातकको हृदयरोग होता है।

३९—यदि लाभस्थानमें सूर्य नीच राशिके हों और उनके दोनों ओर कोई ग्रह न हो तो दारिद्र्ययोग बनता है।

४०—यदि पञ्चम भावमें उच्च राशिस्थ सूर्यके साथ बुध बैठे हों तो जातक धनवान् होता है।

४१—यदि धनु लग्न हो और उसमें सूर्य एवं चन्द्रमा साथ बैठे हों तो दारिद्र्ययोग बनता है।

४२—कुम्भ राशिके सूर्य लग्नमें हों तो व्यक्तिको दादका रोग होता है।

४३—यदि दशम भावमें कुम्भ लग्नके सूर्य हों तथा चतुर्थ भावमें मङ्गल हों तो जातककी मृत्यु सवारीसे गिरनेके कारण होती है।

ज्योतिषमें सूर्यका पारिभाषिक संक्षिप्त विवरण

सूर्य ग्रहराज हैं। सदा 'मार्गी (अनुक्रम—सीधी गतिसे चलनेवाले) हैं। ये कभी 'वक्री' नहीं होते। ये सिंह राशिके स्वामी हैं। इनका 'मूलत्रिकोण' भी सिंह राशि ही है। सिंह (चक्रके पाँचवें स्थान) में 'स्वगृही' कहे जाते हैं। इनकी उच्च राशि मेष और नीच तुला है। ये एक राशिपर १ मास रहते हैं। सूर्य क्षत्रिय वर्ण, सत्त्वगुणी, लाल-कृष्णवर्णके एवं स्थिर स्वभावके गोल (वर्गाकार) पुरुषग्रह हैं। ये राजविद्याके अधिष्ठाता, जगत्के पिता, आत्माके अधिकारी माने गये हैं। इनका रत्न माणिक्य और धातु ताँबा है।

सूर्य अन्य ग्रहोंकी भाँति अपने स्थानसे सातवेंमें स्थित ग्रहोंको पूर्णतः देखते हैं, किंतु तृतीय और दशममें स्थित ग्रहको एकपाद, पञ्चम एवं नवममें स्थितको द्विपाद, चतुर्थ अष्टममें स्थित ग्रहको त्रिपाद-दृष्टिसे देखते हैं। ये उत्तरायणमें बलवत्तर होते हैं। इनके पुत्र शनि सब ग्रहोंसे निर्बल माने गये हैं, पर ये सूर्य-बलको नष्ट करनेमें समर्थ होते हैं। सूर्यके चन्द्र मङ्गल बृहस्पति मित्र, बुध सम और शुक्र-शनि शत्रु कहलाते हैं। सूर्यके मारक (प्रभावको नष्ट करनेवाले) शनि और राहु हैं। परंतु सूर्य अन्य सब ग्रहोंके दोषोंका शमन करते हैं। सूर्यकी राशिगत और भावगत स्थितिसे फलका विचार होता है। भाव लग्नसे चलते हैं जो संक्षेपमें तन, धन इत्यादि नामसे प्रसिद्ध हैं।

जन्माङ्गपर सूर्यका प्रभाव

(लेखक—ज्योतिषाचार्य श्रीवल्लरामजी शास्त्री, एम्० ए०, साहित्यरत्न)

ज्योतिष-विज्ञानके फलित-विभागमें 'जातक' ग्रन्थोंका विशेष महत्त्व है । जातकोंका विशेष महत्त्व इसलिये है कि उनसे मानव अपने भविष्यका चिन्तन करता है । वह अपने सुखद भविष्यकी कल्पनासे प्रसन्न हो जाता है और दुःखद भविष्यकी बातको समझकर उपायमें लग जाता है । जातकको फलित ज्योतिषका यह जातक-अंश फल बतलाकर सावधान कर देता है । शिशु जब धरतीपर आता है, उस समय कौन लग्न किस अंशपर है, इसीको आधार मानकर जन्माङ्ग बनाया जाता है और लग्नका विचार कर सूर्यादि ग्रहोंकी स्थिति स्पष्ट की जाती है । जन्माङ्ग-चक्रमें ग्रहोंको स्थापित करके फलका विचार किया जाता है । प्रस्तुत प्रकरणमें ग्रहाधिपति सूर्यदेवका जन्माङ्गके ऊपर क्या प्रभाव पड़ता है ? इसपर संक्षिप्त विचार किया जा रहा है । यह तो सर्वविदित है कि सूर्य ग्रहोंके अधिपति हैं । ग्रहोंके राजा होनेके नाते सूर्य समस्त राशियोंपर अपना विशेष प्रभाव दिखलाते हैं, किंतु सिंहराशिपर सूर्यका विशेष प्रभाव पड़ता है ।

जन्माङ्गमें बारह भाव या स्थान होते हैं । तन, धन, सहज, सुख, पुत्र, शत्रु, जाया, मृत्यु, धर्म, कर्म, आय और व्यय—ये बारह भाव हैं । इन बारह भावोंसे मानवके समस्त जीवन प्रसङ्गोंका विचार होता है । तन-धन नाम केवल संकेतमात्र हैं । इतना ध्यानमें रहे कि केवल एक ही भावके आधारपर सम्पूर्ण विचार नहीं होते । इन सब बातोंका विचार करनेके लिये ग्रहोंके स्थान-बल, उनका दृष्टि-बल, आपसमें अन्य ग्रहोंकी मित्रता और शत्रुता, समता, एक दूसरेसे अन्यतम सम्बन्ध देखकर ही फल-विचार होता है । सूर्य कई कारणोंसे अशुभ ग्रह माने गये हैं । सूर्य सर्वत्र सभी स्थानों या भावोंमें अपना अशुभ फल ही नहीं देते, उत्तम फल भी देते हैं । सभीमें बारह भावोंमें सूर्यका सामान्य प्रभाव निम्न होता है ।

लग्न—सूर्य यदि लग्नमें पड़े हों तो बालक आकारमें लम्बा, कर्कश-स्वभाव, गर्म प्रकृतिका होता है और प्रायः वात, पित्त, कफसे पीड़ित रहता है । ऐसे बालकको अपनी बाल्यावस्थामें अनेक पीड़ाएँ भुगतनी पड़ती हैं तथा उसकी आँखोंमें भी कष्टकी आशङ्का बनी रहती है । स्वभावसे जातक वीर, क्षमाशील, कुशाग्रबुद्धि, उदार, साहसी, आत्मसम्मानी होता है । वह क्रोध तो करता ही है, कभी-कभी क्रोधावेशमें सनकीकी भाँति आचरण करने लगता है । उसके सिरमें चोट लगनेकी भी सम्भावना रहती है । हाँ, ये अनिष्ट फल विशेषतया तब घटित होते हैं, जब सूर्यदेव किसी दुःखद ग्रहके साथ हों या शत्रु-ग्रहके साथ हों अथवा शत्रुके गृहमें हों, तब सभी अनिष्ट फल घटते हैं अन्यथा अनिष्ट फल विलीन भी हो जाते हैं । यदि सूर्यभगवान् मेष राशिगत होकर लग्नमें हों तो जातकको नेत्ररोग अवश्य होता है, किंतु धनकी कमी नहीं रहती । सूर्य यदि बलवान् ग्रहसे देखे जाते हों तो जातक विद्वान् भी होता है । यदि सूर्य तुला राशिगत हों तो वह बालक विशेष नेत्ररोगसे प्रभावित होता है ।

द्वितीय भाव—द्वितीय भावमें सूर्यके रहनेसे बालक अपने जीवनमें मित्र-विरोधी बनता है, उसे वाहनका सुख नहीं मिलता है । ऐसे जातकको राजाकी ओरसे दण्ड मिलता है । नेत्रकष्ट और शरीरमें विकार होता है । शिक्षामें रुकावट होती है । जातक हठी और चिड़चिड़े स्वभावका होता है । पुत्र-सुख भी मिलता है । नेत्र-रोग भी होता है ।

तृतीय भाव—तृतीय भावमें रहकर सूर्य अपना उत्तम प्रभाव दिखलाते हैं । जातक पराक्रमी, कुशाग्रबुद्धि

प्रियभाषी होता है। धन-धान्य एवं नौकरोंसे युक्त होकर सम्मानित होता है। उसके सगे भाइयोंकी संख्या कम होती है। सूर्य यदि पापग्रहोंसे युक्त हों तो विष और अग्निसे भय तथा चर्मरोगकी सम्भावना होती है। सूर्य यदि पापग्रहसे युक्त हों या पापग्रहसे दृष्ट हों तो भाईकी मृत्यु होती है, कोई एक बहन विधवा भी हो सकती है। कभी-कभी भाई या बहनकी मृत्यु विष या सर्पदंशसे होती है। हाँ, ऐसा जातक धनवान् होता है। ग्रहोंके अन्य प्रभावसे अग्रजकी मृत्यु अल्प समयमें हो जाती है।

चतुर्थ भाव—चतुर्थ भावमें सूर्यके रहनेपर जातक मानसिक चिन्तायुक्त होता है। जातकका शरीर क्षीण या विकृत अवयवका होता है। जातक आत्मीय जनोंसे द्वेष रखता है, घृणा करता है और घमण्डी तथा कपटी होता है। उसकी ख्याति भी बढ़ती है। उसको कई स्त्रियाँ होती हैं। यह सब होते हुए भी ऐसा जातक धन-सुखसे रहित होता है। यह पिताकी सम्पत्तिसे वञ्चित होता है। यदि चतुर्थ स्थानका स्वामी बली ग्रहोंसे युक्त हों या लग्न, चतुर्थ, सप्तम या दशम किसी भी केन्द्रस्थानमें हों तो जातकको वाहनादि सुखकी प्राप्ति होती है। यदि चतुर्थका स्वामी केन्द्रके अतिरिक्त त्रिकोणगत भाव अर्थात् तृतीय, पञ्चम अथवा नवमगत हो तो भी जातकको वाहनादि सुखकी प्राप्ति होता है।

पञ्चम भाव—यदि सूर्य पञ्चम स्थानगत हों तो जातक अल्प सन्तानोंवाला होता है। उसका शरीर रोग होता है, वह शिव या शक्तिका पूजक होता है। जातक सत्क्रियाशील रहता है, किंतु उसका चित्त उद्भ्रान्त रहता है। ऐसा जातक सुख एवं सुतसे रहित भी होता है। वह पानरोगसे पीड़ित होता है। सूर्य यदि स्थिर राशि गत हों, अर्थात् वृष, सिंह, वृश्चिक, कुम्भराशिगत हों तो पञ्चम सन्तानकी मृत्यु अल्पकालमें हो जाता है। चर राशिगत सूर्य होनेसे अर्थात् मेष, कर्क, तुला, मकर राशिगत सूर्यके होनेसे जातककी सन्तानका नाश नहीं होता। ऐसे जातककी स्त्रीका कभी-कभी गर्भपात भी हो जाता है। पञ्चम स्थानका स्वामी यदि बलवान् ग्रहोंके साथ हों तो जातकको पुत्रका सुख मिलता है, यदि सूर्य पापग्रहोंके साथ हों या उनपर पापग्रहकी दृष्टि पड़ती हो तो उसको कन्याएँ अधिक होती हैं। पञ्चमस्थ सूर्यपर यदि शुभ ग्रहोंकी दृष्टि हो तो जातकको पुत्र-सुख मिलता है।

षष्ठ भाव—षष्ठ भावगत सूर्य होनेसे जातकको अत्यन्त सुखकी प्राप्ति होती है। जातक बलवान्, शत्रुपर प्रभाव दिखलानेवाला, विद्वान्, गुणवान् और तेजस्वी होता है। वह राजपरिवारसे सम्मानित होता है और सुन्दर वाहनोंसे युक्त होता है। षष्ठ स्थानगत सूर्य यदि बलवान् ग्रहोंसे युक्त हों तो जातक नीरोग होता है। छठे स्थानका स्वामी यदि बलहीन होता है तो शत्रुका नाश होता है।

सप्तम भाव—सप्तम स्थानमें सूर्यके रहनेसे जातकका शरीर दुबला तथा मझोला होता है। यह मनसे चञ्चल, पापकर्मलीन और भययुक्त होता है, स्वस्त्रीविरोधी और पर-स्त्रीप्रेमी होता है। दूसरोंके घर भोजन करनेमें वह दक्ष होता है। एक स्त्रीसे अधिक सम्बन्ध होते हुए दूसरीसे भी सम्बन्ध बनाये रहता है। वह राज्य-सरकारके कोपसे कष्ट पाता है। पर मिथुन राशिगत सूर्य यदि बली हों तो जातकको एक ही स्त्री होती है।

अष्टम भाव—सूर्य यदि अष्टम भावगत हों तो जातक बुद्धि-विवेकहीन, शरीरका दुबला और अल्प सन्तान वाला होता है। उसको नेत्ररोग भी होता है। उसे धनकी कमी रहती है तथा शत्रु बहुत सताते हैं। उसका शिरोभागमें रोगकी सम्भावना रहती है। सूर्य [illegible] ग्रहोंके साथ हों तो उसे [illegible]

मिलती है और यदि उच्चका हो अर्थात् मेष राशिगत हों तो जातक दीर्घजीवी होता है।

नवमभाव—सूर्य यदि नवम भावगत हों तो जातक मित्र और पुत्रसे सुखी होता है। वह मातृकुलका विरोधी और पिताका भी विरोधी होता है, किंतु देवोंकी पूजा करता है। जातक अच्छी सूझ-बूझका उदार व्यक्ति होता है, किंतु पैतृक सम्पत्तिका त्याग करता है। ऐसा जातक कलही तथा मितव्ययी होता है। उसकी कृषि उत्तम होती है। जातकके भाई नहीं होते हैं। यदि भाई हों तो जातकसे उनका सम्बन्ध नहीं रहता। सूर्य यदि उच्च अर्थात् मेष राशिगत हों अथवा सिंह राशिगत हों तो उसका पिता दीर्घायु होता है। उत्तम ग्रहोंके सहयोगसे जातक देवताओं और गुरुजनोंका पूजक होता है। सूर्यके तुला राशिगत होनेपर जातक भाग्यहीन और अधार्मिक होता है तथा यदि पापराशिगत हों या शत्रुगृही हों तो पिताके लिये अनिष्टकर होते हैं। शुभग्रहोंसे दृष्ट सूर्य पिताको आनन्द देते हैं।

दशमभाव—दशम भावगत सूर्यके होनेसे जातक बुद्धिमान्, धन-उपार्जनमें चतुर, साहसी और संगीतप्रेमी होता है, वह साधुजनोंसे प्रेम करता है, राजसेवामें तत्पर एवं अतिसाहसी होता है। वह पुत्रवान् और वाहन-सुखसे सम्पन्न होता है। स्वस्थ और शूरवीर भी होता है। सूर्य यदि मेषराशिक हों या सिंहराशिक हों तो यशस्वी भी होता है। ऐसा जातक धार्मिक स्थानके निर्माणसे यश प्राप्त करता है। सूर्य यदि पाप ग्रहोंसे युक्त हों तो जातक आचरणभ्रष्ट हो जाता है।

एकादशभाव—सूर्य एकादश भावगत हों तो जातक यशस्वी, मनस्वी, नीरोग, ज्ञानी और संगीतविद्यामें निपुण एवं रूपवान् तथा धन-धान्यसे सम्पन्न होता है। वह राज्यानुगृहीत होता है। ऐसा जातक सेवकजनोंपर प्रीति करनेवाला होता है। यदि सूर्य मेष या सिंहराशिगत हों तो जातकको राजा आदिसे धनकी प्राप्ति होती है। ऐसे जातकको सद्व्यापसे भी धन मिलता है।

द्वादशभाव—द्वादश भावगत सूर्यके होनेसे जातक पिताविरोधी, अतिव्ययी, अस्थिरबुद्धि, पापाचरणमें लीन, धनकी हानि करनेवाला, मनका मलीन, नेत्ररोगी और दरिद्र भी होता है। ऐसे जातकसे लोकविरोधी कार्य हो जाते हैं। वह दरिद्रताके कारण भी कष्ट पा जाता है। यदि बारहवें स्थानके स्वामी कोई शुभ ग्रह हों तो वह जातक किसी देवताकी सिद्धि प्राप्त कर लेता है, पर सूर्यके साथ कोई दुष्ट ग्रह हो तो वह जातक सदा अनैतिक कामोंमें अपना धन व्यय करता है। यदि सूर्यके साथ षष्ठ स्थानके स्वामी बैठे हों तो उस जातकको कुष्ठ-रोगसे कष्ट होता है। इस प्रकार सूर्यके भावगत फलको जानना चाहिये।

जन्माङ्गमें विभिन्न राशिगत सूर्यका फल

तन, धन, सहज आदि विभिन्न भावोंमें सूर्यके रहनेका फल जाननेके बाद विभिन्न राशिगत सूर्यका संक्षिप्त फल निम्न प्रकारसे है—

मेष—मेषराशिगत सूर्यके होनेपर जातक साहसी, भ्रमणशील और चतुर तथा धनी परिवारका सदस्य, किंतु रक्त एवं पित्तके विकारोंसे पीड़ित होता है। सूर्य यदि अपनी उच्च राशि मेषमें परमोच्च अंशातक हों तो जातक परम धनी होता है। सूर्य मेषमें दस अंशतक परमोच्च माने जाते हैं। सूर्यके प्रभावसे जातक अस्त्र शस्त्र धारण करनेवाला होता है।

वृष—वृषराशिगत सूर्यके होनेसे जातक उत्तम वस्त्र धारण करनेवाला एवं सुगन्धित पदार्थोंको धारण करनेवाला होता है। ऐसे जातकके पास चतुष्पदोंका सुख अधिक रहता है। ऐसे जातकको स्त्रियोंसे शत्रुता

होती है। वह समयानुसार योग्य कार्य सम्पादित करता है। ऐसे जातकको जलसे भयकी सम्भावना रहती है।

मिथुन—मिथुन राशिगत सूर्यके प्रभावसे जातक गणितशास्त्रका ज्ञाता होता है। विद्वान्, धनी एवं अपने वंशमें प्रख्यात होता है। ऐसा जातक नीतिमान्, विनयी और शीलवान् होता है। जातक सूर्यके प्रभावसे मधुरभाषी, वक्ता एवं धन तथा विद्याके उपार्जनमें अग्रणी होता है।

कर्क—कर्कराशिगत सूर्यके कारण जातक क्रूर स्वभाववाला, निर्दयी, दरिद्र, किंतु परोपकारी भी होता है। ऐसे जातकको पितासे विरोध रहता है।

सिंह—सिंह राशिगत सूर्य अपने राशिमें रहनेके कारण जातकको विशेष प्रभावित करते हैं। ऐसा जातक चतुर, कलाविद्, पराक्रमी, स्थिरबुद्धि और पराक्रमी होता है तथा कीर्ति प्राप्त करता है। वह प्राकृतिक पदार्थोंसे प्रेम करता है।

कन्या—कन्याराशिगत सूर्यके होनेसे जातक चित्रकला, काव्य एवं गणित आदि विद्याओंमें रुचि रखनेवाला होता है। ऐसा जातक संगीतविद्यासे भी प्रेम करता है और राजासे सम्मानित होता है। यह सब होते हुए भी ऐसा जातक यदि पुरुष है तो उसकी मुखाकृति स्त्रीके समान और यदि स्त्री है तो पुरुषाकृतिकी होती है।

तुला—तुला राशिगत सूर्यके होनेपर जातक साहसका परिचय देता है, किंतु राजपरिवारसे सताया जाता है। ऐसा जातक विरोधी स्वभावका होता है और पापकर्ममें निरत रहता है। कलहप्रिय होते हुए भी ऐसा जातक परोपकारी होता है। वह धनहीन होनेपर भी मद्यपान करनेमें प्रवृत्त होता है।

वृश्चिक—वृश्चिक राशिगत होनेपर सूर्यका प्रभाव निम्न प्रकारसे होता है। ऐसा जातक कलहप्रिय होते हुए भी आदरका पात्र होता है। माता-पिताका विरोधी भी रहता है। कृपण स्वभावके कारण अपमानित भी होता है। अस्त्र-शस्त्रका चालक होता तथा साहसी होता है। वह क्रूरकर्मा भी होता है। ऐसे जातकको विष और शस्त्रसे भय रहता है। वह विष, शस्त्र आदिसे धनोपार्जन करनेवाला होता है।

धनु—धनु राशिगत सूर्यके कारण जातक सन्तोषी, बुद्धिमान्, धनवान्, तीक्ष्णस्वभाव, मित्रोंसे धन प्राप्त करनेवाला और मित्रोंका हित करनेवाला भी होता है। ऐसे जातकका सम्मान प्रायः लोग करते हैं। ऐसे जातकको शिल्पका भी ज्ञान होता है।

मकर—मकर राशिगत सूर्यके कारण जातक नीच कर्ममें निरत रहता है तथा अपमानित होता है। अपने वंशवालोंसे विरोध करता है। वह अल्प धनके कारण भी दुःख पाता है। यह सब होते हुए ऐसा जातक कर्मशील होता है, भ्रमण करता है। यदा-कदा ऐसे जातकका भाग्य दूसरेके अधीन हो जाता है।

कुम्भ—कुम्भ राशिगत सूर्यके कारण जातक नीच कर्ममें निरत रहता है और मलिन वेष धारण करता है। जातकको अपने स्वभावसे सुख नहीं मिल पाता।

मीन—मीन राशिगत सूर्यके कारण जातक कृषि और व्यापारद्वारा धनका उपार्जन करता है। अपने स्वजनोंसे ही दुःख पाता है। धन और पुत्रका भी सुख उसे कम मिल पाता है। ऐसे जातकको जलसे उत्पन्न होनेवाली वस्तुओंसे प्रचुर धन मिल जाता है।

विशेष—सूर्यदेवसे जन्माङ्ग पर विचार करते समय सूर्यकी निम्न स्थितियोंको ध्यानमें रखना पड़ेगा।

सूर्य सिंह राशिके स्वामी होते हैं। ये मेष राशिमें दश अंशतक परम उच्च और तुला राशिमें दस अंशतक परम नीच माने जाते हैं। सूर्य प्रायः सिंहके बीस अंशतक मूल त्रिकोणगत माने जाते हैं,

वे शेष अंशमें 'खगृही' माने जाते हैं। वे काल पुरुषके आत्मा माने गये हैं। यह सब होते हुए इन्हें पापग्रह ही कहा गया है। पापग्रह केवल फलादेशके लिये माना गया है। सूर्य पुरुषग्रह हैं। सूर्य पूर्व दिशाके स्वामी और पित्तकारक भी माने गये हैं। फलादेशमें आत्मा, स्वभाव और आरोग्यता आदिके बोधक हैं। ये पितृकारक ग्रह माने गये हैं। सूर्यका प्रभाव राज्य, देवालय आदिपर विशेष पड़ता है। जातकके हृदय, स्नायु, मेरुदण्ड आदिपर भी इनका प्रभाव पड़ता है। सातवें स्थानपर सूर्यकी पूर्ण दृष्टि पड़ती है। इन बातोंपर ध्यान रखकर ही सूर्यसे फल विचार किया जाता है।

विभिन्न भावोंमें सूर्य-स्थितिके फल

(लेखक—पं० भागमेश्वरजी उपाध्याय, शास्त्री)

सूर्य सौर-मण्डलके प्रधान ग्रह हैं। इनकी दिव्य रश्मियाँ सभी जीव-जन्तुओंको प्रभावित करती हैं। सूर्य ऊर्जाके अक्षय कोश एवं सत्यके प्रतीक हैं—शक्तिकी अमरनिधि हैं। इनकी आकृति, प्रकृति और ऊर्जा-शक्ति सभी प्राणियोंपर अन्य ग्रहोंकी अपेक्षा अत्यधिक प्रभाव उत्पन्न करती है। इसीलिये फलित-ज्यौतिषमें सूर्यका स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

फलित-ज्यौतिषमें द्वादश भावोंकी कल्पना की गयी है। ये द्वादश भाव ग्रहोंके गृह भी कहे जाते हैं। इन द्वादश स्थानोंमें राशियाँ स्थित रहती हैं। इन भावों और ग्रह-संयोगके द्वारा जातकके जन्मजात नाना कर्मोत्पन्न कर्म, एवं कर्तव्यपथका विचार किया जाता है। ये स्थान भविष्यके निर्देशक हैं। प्रवेशका कार्यक्रम इन्हीं भावोंद्वारा सम्पादित किया जाता है—चाहे उसका स्वरूप कुछ भी हो। ये भाव क्रमसे निम्नलिखित हैं—

देहं द्रव्यपराक्रमौ सुखसुतौ शत्रुः कलत्रं मृतिः
भाग्यं राज्यपदं क्रमेण गदितौ लाभव्ययौ लग्नतः।
भावा द्वादश तत्र सौख्यशरणं देहं मनो देहिनां
तन्मानेन शुभाशुभाख्यफलजः कार्यो बुधैर्निर्णयः॥

(जातकालंकार १)

इसीको प्रकारान्तरसे लिखते हैं—

धन २, व्यय १२, सहज ३, तनु १, लाभ ११, सुहृत् ४, कर्म १०, सुत ५, ७ जाया, धर्म ९, ६ रिपु, ८ मृत्यु

इन द्वादश भावोंमें सूर्यकी सत्ता विभिन्न परिस्थितियोंकी जन्मदात्री है। अथवा यह भी कहा जा सकता है कि द्वादश भावोंमें सूर्यका विद्यमान होना भिन्न-भिन्न प्रकारसे लोगोंको प्रभावित कर सकता है। इन द्वादश भावोंका क्रमसे अध्ययन कर प्राचीन आचार्यगण विभिन्न परिणामोंतक पहुँचे हैं, जो अत्यधिक सीमातक सत्य उतरते हैं। उदाहरणार्थ द्वादश भावोंका फलकथन आवश्यक है।

(१) जिस जातकके तनुभावमें सूर्य स्थित हो, वह समुन्नतकाय, आलसी, क्रोधी, उग्र स्वभाववाला, पर्यटक, कामी, नेत्ररोगसे युक्त एवं रूक्षकाय होता है। यथा—

तनुस्थो रविस्तुङ्गयष्टिं विधत्ते
मनः सतापदारदायादवर्गात्।

वपुः पीड्यते वातपित्तेन नित्यं
स वै पर्यटन् ह्रासवृद्धिं प्रयाति ॥
(—चमत्कारचिन्तामणि १)

लग्नेऽर्केऽल्पकचः क्रियालसतनुः क्रोधी प्रचण्डोन्नतः
कामी लोचनरुक्सुकर्कशतनुः शूरः क्षमी निर्घृणः ।
(—जातकाभरणम्, सूर्यभावाध्याय १)

(२) धनभावमें स्थित सूर्य जातकको भाग्यशाली होनेकी सूचना देते हैं । धनभावमें स्थित सूर्यकी मैत्री धनेशसे हो तो जातक निश्चय ही धनवान् होगा । उस जातकको पशु-सुख भी उत्तम रहेगा । पुत्र पौत्रादिक भी सुख उसे अनायास प्राप्त होते रहेंगे । कतिपय आचार्योंके अनुसार वह जातक वाहनहीन रहेगा—

धने यस्य भानुः स भाग्याधिकः स्या-
च्चतुष्पात्सुखं सद्व्यये स्वं च याति ।
कुटुम्बे कलिर्जायया जायतेऽपि
क्रिया निष्फला याति लाभस्य हेतोः ॥
(—चमत्कारचिन्तामणि २ । २)

(३) सहजभावमें स्थित अर्क सभी प्रकारके सुखोंके दाता होते हैं—

प्रियंवदः स्याद्धनवाहनाढ्यः
सुकर्मचित्तोऽनुचरान्वितश्च ।
मितानुजः स्यान्मनुजो बलीयान्
दिनाधिनाथे सहजेऽधिसंस्थे ॥
(—जातकाभरणम्)

अन्य आचार्योंके अनुसार वह (जातक) सदा शौर्यशाली एवं यशस्वी होता है ।

(४) मित्रभावमें स्थित [illegible] जातकके मनको भङ्ग करनेवाले होते हैं । जातक स्थायी रूपसे एक स्थानपर स्थिर नहीं रह सकता ।

तुरीये दिनेशेऽतिसंबाधितात्मा
जनः सैल्यभेदिभिः [illegible] बन्धुतोऽपि ।
प्रवासी विपक्षाहवे मानभङ्गः
कदाचिन्न शान्तो भवेत्सद्मनाश ॥
(—चमत्कारचिन्तामणि)

(५) सुतभावमें विद्यमान सूर्य मनुष्यको बुद्धिमान् एवं धनिक बनाते हैं । श्रीनारायण दैवज्ञके अनुसार जिसके पञ्चम भावमें सूर्य होते हैं, वह जातक हृदय रोगसे मरता है—

सुतस्थानगे पूर्वजापत्यतापी
कुशाग्रा मतिर्भास्करे मन्त्रविद्या ।
रतिर्वञ्चने सञ्चकोऽपि प्रमादी
मृतिः क्रोडरोगादिजा भावनीया ॥
(—चमत्कारचिन्तामणि)

(६) जिसके रिपु (छठे) भावमें दिवाकर रहते हैं वह व्यक्ति रिपुध्वंसक होता है—प्रायः सभी आचार्योंकी ऐसी सम्मति है । षष्ठ भाव (रिपुभाव)में स्थित सूर्य उत्तम जीविकाप्रदायक भी होते हैं—

शश्वत्सौख्येनान्वितः शत्रुहन्ता
सत्त्वोपेतश्चारुयानो महौजाः ।
पृथ्वीभर्तुः स्यादमात्यो हि मर्त्यः
शत्रुक्षेत्रे मित्रसंस्था यदि स्यात् ॥
(—जातकाभरणम्)

(७) जिस जातकके जाया (सप्तम) भावमें सूर्य होते हैं वह व्यक्ति व्याधियोंसे संयुक्त, चिड़चिड़े स्वभावका होता है । अनेक दैवज्ञोंके अनुसार सप्तमस्थ सूर्य शोकप्रद कारक भी होते हैं—

धनाप्त्यै यदा द्यूनयाता नरस्य
प्रियातापनं पिण्डपाडा च चिन्ता ।
भयक्षुच्छलैश्च क्रय विक्रयेऽपि
प्रतिस्पर्धया नैति निद्रां कदाचित् ॥
(—चमत्कारचिन्तामणि)

यदि किसी और कुण्डलीमें सूर्य सप्तम हों तो [illegible] कुरूपा एवं दर्पनिर्गर्भिता होती है ।

(८) मृत्युभावमें स्थित सूर्य [illegible] प्रदायक [illegible] करते रहते हैं । [illegible] स्थित सूर्य [illegible] होते हैं । [illegible] एवं दुष्ट फलदायक ही होते हैं ।

वे शेष अशमें 'स्वगृही' माने जाते हैं। वे काल पुरुषके आत्मा माने गये हैं। यह सब होते हुए इन्हें पापग्रह ही कहा गया है। पापग्रह केवल फलादेशके लिये माना गया है। सूर्य पुरुषग्रह हैं। सूर्य पूर्व दिशाके स्वामी और पित्तकारक भी माने गये हैं। फलादेशमें आत्मा, स्वभाव और आरोग्यता आदिके बोधक हैं। ये पितृकारक ग्रह माने गये हैं। सूर्यका प्रभाव राज्य, देवालय आदिपर विशेष पड़ता है। जातकके हृदय, स्नायु, मेरुदण्ड आदिपर भी इनका प्रभाव पड़ता है। सातवें स्थानपर सूर्यकी पूर्ण दृष्टि पड़ती है। इन बातोंपर ध्यान देकर ही सूर्यसे फल विचार किया जाता है।

विभिन्न भावोंमें सूर्य-स्थितिके फल

(लेखक—पं० श्रीरामेश्वरजी उपाध्याय, शास्त्री)

सूर्य सौर-मण्डलके प्रधान ग्रह हैं। इनकी दिव्य रश्मियाँ सभी जीव-जन्तुओंको प्रभावित करती हैं। सूर्य ऊर्जाके अक्षय कोश एवं सत्यके प्रतीक हैं—शक्तिकी अमरनिधि हैं। इनकी आकृति, प्रकृति और ऊर्जा शक्ति सभी प्राणियोंपर अन्य ग्रहोंकी अपेक्षा अत्यधिक प्रभाव उत्पन्न करती है। इसीलिये फलित-ज्योतिषमें सूर्यका स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

फलित-ज्योतिषमें द्वादश भावोंकी कल्पना की गयी है। ये द्वादश भाव ग्रहोंके गृह भी कहे जाते हैं। इन द्वादश स्थानोंमें राशियाँ स्थित रहती हैं। इन भावों और ग्रह-संयोगके द्वारा जातकके जन्मजात याता वर्णोत्पन्न धर्म एवं कर्तव्यपथका विचार किया जाता है। ये स्थान भविष्यके निर्देशक हैं। प्रवेशका कार्यक्रम इन्हीं भावोंद्वारा सम्पादित किया जाता है—चाहे उसका स्वरूप कुछ भी हो। ये भाव क्रमसे निम्नलिखित हैं—

देहं द्रव्यपराक्रमौ सुखसुतौ शत्रु कलत्रं मृति
भाग्यं राज्यपदं क्रमेण गदितौ लाभव्ययौ लग्नतः।
भावा द्वादश तत्र सौख्यशरणं गृहं मतं देहिनां
तस्मादेव शुभाशुभाख्यफलजं कार्यो सुधैर्निर्णयः ॥
(—जातकालङ्कार १।५)

इसीको प्रकारान्तरसे लिखते हैं—

इन द्वादश भावोंमें सूर्यकी सत्ता विभिन्न परिस्थितियों की जन्मदात्री है। अथवा यह भी कहा जा सकता है कि द्वादश भावोंमें सूर्यका विद्यमान होना भिन्न-भिन्न प्रकारसे लोगोंको प्रभावित कर सकता है। इन द्वादश भावोंका क्रमसे अध्ययन कर प्राचीन आचार्यगण विभिन्न परिणामोंतक पहुँचे हैं, जो अत्यधिक सीमातक सत्य उतरते हैं। उदाहरणार्थ द्वादश भावोंका फलकथन आवश्यक है।

(१) जिस जातकके तनुभावमें सूर्य स्थित हों, वह समुन्नतकाय, आलसी, क्रोधी, उग्र स्वभाववाला, पर्यटक, कामी, नेत्ररोगसे युक्त एवं रूक्षकाय होता है। यथा—

तनुस्था रविस्तुङ्गयष्टिं विधत्ते
मनः सतपदारदायादवर्गात्।

वपुः पीड्यते वातपित्तेन नित्यं
स वै पर्यटन् ह्रासवृद्धिं प्रयाति ॥
(—चमत्कारचिन्तामणि १)

लग्नेऽर्केऽल्पकच क्रियालसतनु क्रोधी प्रचण्डोन्नत
कामी लोचनरुक्सुकर्कशतनु शूर क्षमी निर्घृण ।
(—जातकाभरणम्, सूर्यभावाध्याय १)

(२) धनभावमें स्थित सूर्य जातकको भाग्यशाली होनेकी सूचना देते हैं। धनभावमें स्थित सूर्यकी मैत्री धनेशसे हो तो जातक निश्चय ही धनवान् होगा। उस जातकको पशु-सुख भी उत्तम रहेगा। पुत्र पौत्रादिक भी सुख उसे अनायास प्राप्त होते रहेंगे। कतिपय आचार्योंके अनुसार वह जातक वाहनहीन रहेगा—

धने यस्य भानु स भाग्याधिक स्या
चतुष्पात्सुखं सद्व्यये स्वं च याति ।
सुद्धम्ये कलिर्जायया जायतेऽपि
क्रिया निष्फला याति लाभस्य हेतो ॥
(—चमत्कारचिन्तामणि २ । २)

(३) सहजभावमें स्थित अर्क सभी प्रकारके सुखोंके दाता होते हैं—

प्रियंवद स्याद्धनवाहनाढ्य
सुकर्मचित्तोऽनुचरान्वितश्च ।
मितानुज स्यान्मनुजो बलवान्
दिनाधिनाथे सहजेऽधिसस्थे ॥
(—जातकाभरणम्)

अन्य आचार्योंके अनुसार वह (जातक) अतीव शौर्यशाली एव यशस्वी होता है।

(४) मित्रभावमें स्थित दिनकर जातकको मनोवृत्तिको भङ्ग करनेवाले होते हैं। जातक स्थायी रूपमें एक स्थानपर स्थित नहीं रह सकता—

तुरीये दिनेशोऽतिशोभाधिकारी
जन सैल्लमेदिग्रह बन्धुताऽपि ।
प्रवासी विपक्षाहवे मानभङ्ग
कदाचिन्न शान्त भवेत्तस्य चेतः ॥
(—चमत्कारचिन्तामणि)

(५) सुतभावमें विद्यमान सूर्य मनुष्यको बुद्धिमान् एव धनिक बनाते हैं। श्रीनारायण दैवज्ञके अनुसार जिसके पञ्चम भावमें सूर्य होते हैं, वह जातक हृदय रोगसे मरता है—

सुतस्थानगे पूर्वजापत्यतापी
कुशाग्रा मतिर्भास्करे मन्त्रविद्या ।
रतिर्वञ्चनो वञ्चकोऽपि प्रमादी
मृतिं क्रोडरोगादिजा भावनीया ॥
(—चमत्कारचिन्तामणि)

(६) जिसके रिपु (छठे) भावमें दिवाकर रहते हैं वह व्यक्ति रिपुमर्दक होता है—प्राय सभी आचार्योंकी ऐसी सम्मति है। षष्ठ भाव (रिपुभाव)में स्थित सूर्य उत्तम जीविकाप्रदायक भी होते हैं—

शश्वत्सौख्येनान्वित शत्रुहन्ता
सत्त्वोपेतश्चारुयानो महौजा ।
पृथ्वीभर्तु स्यादमात्यो हि मर्त्य
शत्रुक्षेत्रे मित्रसखा यदि स्यात् ॥
(—जातकाभरणम्)

(७) जिस जातकके जाया (सप्तम) भावमें सूर्य होते हैं वह व्यक्ति व्याधियोंसे सयुक्त, चिड़चिड़े स्वभावका होता है। अनेक दैवज्ञोंके अनुसार सप्तमस्थ सूर्य स्त्रीक्लेश कारक भी होते हैं—

घुनाथो यदा द्यूनजातो नरस्य
प्रियातापन पिण्डपीडा च चिन्ता ।
भवत्सुच्छलब्धि क्रये विक्रयेऽपि
प्रतिस्पर्धया नैति निद्रा कदाचित् ॥
(—चमत्कारचिन्तामणि)

यदि किसी स्त्रीकी कुण्डलीमें सूर्य सप्तमस्थ हों तो वह कुल्टा एव परपतिगामिनी होती है।

(८) मृत्युभावमें स्थित सूर्य जातकको अनेक प्रकारके विघ्न-बाधाओंसे क्लान्त रखते हैं। अष्टम भावमें स्थित सूर्य वित्तीय तथा एव शरीरसे सम्बन्धकारक भी होते हैं। जो कुछ भी हो अष्टमस्थ सूर्य हानिकारक एव तुच्छ फलदायक ही होते हैं।

(९) धर्मस्थानमें स्थित सूर्य जातकको कुशाग्रबुद्धि बनाते हैं, किंतु व्यक्ति दुराग्रही, कुतार्किक और नास्तिक भी हो सकता है। नवमस्थ सूर्य जातकके अन्तःपुरमें कलहके उद्रेककर्ता भी होते हैं।

(१०) दशमभावमें स्थित सूर्य जातकको उच्च आशय प्रदान करते हैं। पारिवारिक असुविधा भी यदा कदा प्राप्त हो सकती है, लेकिन जातक लक्ष्मीसे युक्त होता है। दशम भावस्थ सूर्य आभूषणादिक संग्रहण कर्ता भी होते हैं।

(११) आय या एकादश स्थानमें विद्यमान सूर्य जातकको कलाप्रेमी एवं संगीतज्ञ बनाते हैं। ये सूर्य व्यक्तिको सभी प्रकारका सौख्य एवं श्री प्रदान करते हैं। अन्य आचार्यगणके अनुसार एकादश भावस्थ सूर्य पुत्रके लिये क्लेशकारक भी होते हैं।

गीतप्रीति चारुकर्मप्रवृत्ति
चञ्चत्कीर्ति वित्तपूर्ति नितान्तम्।
भूपात् प्रीति नित्यमेव प्रकुर्यात्
प्राप्तिस्थाने भानुमान् मानवानाम्॥
(—जातकाभरणम्)

जिस कन्याके एकादशभावमें सूर्य रहते हैं, वह सद्गुणयुक्ता होती है—

भूपप्रिया भवस्थेऽर्के सदा लाभसुखान्विता।
गुणज्ञा रूपशीलाढ्या धनपुत्रसमन्विता॥
(—स्त्रीजातकम्)

(१२) सभी दैवज्ञ एकमतसे उद्घोषक मत करते हैं—द्वादश भावस्थ सूर्य नेत्ररुजकारक होते हैं तथा जातक कामातुर भी होता है। कतिपय आचार्योंके कथनानुसार व्ययस्थ सूर्य धनदायक होते हैं, लेकिन यात्राकालमें असम्भावित क्षति भी हो सकती है, यथा—

रविर्द्वादशे नेत्रदोषं करोति
विपक्षाहवे जायतेऽसौ जयार्थी।
स्थितिर्लब्धया लीयते देहदुःखं
पितृव्यापदो हानिरध्वप्रदेशे॥
(—चमत्कारचिन्तामणि)

इस प्रकारसे भगवान् सूर्यदेव विभिन्न भावोंमें रहकर जातकके लिये विभिन्न स्थितियोंको समुत्पन्न करते हैं। निदान, ग्रहपति सूर्य सत्‌परिणामदायक, सभी दैवज्ञोंके ध्येय, नमस्य एवं प्रणम्य हैं। गगनाङ्गणमें चमकते इन दिव्य पुरुषको हमारे शत शत नमन हैं।

सूर्यादि ग्रहोंका प्रभाव

दैवज्ञों और वृद्धोंका अनुभव है कि ग्रह राज्य-पदपर बैठा देते हैं और प्रतिकूल परिस्थिति उत्पन्नकर सत्ताच्युत भी करा देते हैं। सच तो यह है कि ग्रहोंके प्रभावसे यह सारा चराचरात्मक संसार व्याप्त है। शास्त्रका वचन है—

ग्रहा राज्यं प्रयच्छन्ति ग्रहा राज्यं हरन्ति च। ग्रहैस्तु व्यापितं सर्वं जगदेतच्चराचरम्॥

इसी आधारपर यह शास्त्रोक्ति है कि ज्योतिषमें सभी लोगोंके शुभाशुभ फल कहे गये हैं—

'ज्योतिश्शास्त्रं तु लोकस्य सर्वस्योक्तं शुभाशुभम्।'

पाश्चात्य विद्वान् एलेन लियोने अपनी पुस्तक एस्ट्रोलॉजी फार आल (Astrology for all) की प्रस्तावनामें लिखा है कि 'अश्रद्धाकी दृष्टिको छोड़कर, परिश्रमसे यदि इस विज्ञानकी सत्यताको खोजा जाय तो हमारे पूर्वज ऋषियोंके उच्चकोटिके विचार और अनुभव सत्य प्रमाणित होंगे।'

ग्रहणका रहस्य—विविध दृष्टि

(लेखक—पं० श्रीदेवदत्तजी शास्त्री, व्याकरणाचार्य, विद्यानिधि)

जो वस्तु ब्रह्माण्डमें पायी जाती है, वह वस्तु पिण्डमें पायी जाती है। जैसे ब्रह्माण्डमें सूर्य और चन्द्रमा हैं, वैसे पिण्डमें भी हैं। जाबालोपनिषद्के चतुर्थ खण्डमें योगाके लिये शरीरस्थ चन्द्रग्रहणका स्वरूप इस प्रकार बतलाया गया है—

इडाया कुण्डलीस्थानं यदा प्राणः समागतः ।
सोमग्रहणमित्युक्तं तदा तत्त्वविदां वर ॥
(४६)

वहीं सूर्यग्रहणके विषयमें कहा गया है—

यदा पिङ्गलया प्राणः कुण्डलीस्थानमागतः ।
तदा तदा भवेत् सूर्यग्रहणं मुनिपुंगव ॥

साङ्कृतिके गुरु महायोगी दत्तात्रेयजी अपने शिष्य साङ्कृतिको अष्टाङ्गयोगका उपदेश करते हैं। उसी योगोपदेशके प्रसङ्गमें इडा, कुण्डली, पिङ्गला—इन नाडियोंका वर्णन है। कन्दके मध्यमें सुषुम्ना नाडी है। जिसके चारों ओर बहत्तर हजार नाडियाँ हैं। उनमेंसे चौदह नाडियाँ मुख्य हैं। पीठके बीचमें स्थित जो हड्डीरूप वीणादण्डके समान मेरुदण्ड है, उससे मस्तकपर्यन्त निकली हुई नाडीको सुषुम्ना कहते हैं। सुषुम्नाके बायें भागमें इडा नाडी है और दक्षिणमें पिङ्गला नाडी है। नाभिकन्दसे दो अङ्गुलि नीचे कुण्डली नाडी है। इडा नाडीसे जब प्राण कुण्डलीके स्थानमें पहुँचता है तब चन्द्रग्रहण होता है। जब पिङ्गलामें कुण्डलीके स्थानमें प्राण जाता है तब सूर्यग्रहण होता है। योगीलोग इसीको चन्द्रग्रहण तथा सूर्यग्रहण कहते हैं।

पुराणोंमें ग्रहणका स्वरूप

श्रीमद्भागवतके अष्टम स्कन्धके नवम अध्यायमें चौबीसवें श्लोकसे छब्बीसवेंतक ग्रहणके विषयमें कहा गया है—

देवलिङ्गप्रतिच्छन्नः स्वर्भानुर्देवसंसदि ।
प्रविष्टः सोममपिबच्चन्द्रार्काभ्यां च सूचितः ॥
चक्रेण क्षुरधारेण जहार पिबतः शिरः ।
हरिस्तस्य कबन्धस्तु सुधयाप्लावितोऽपतत् ॥
शिरस्त्वमरतां नीतमजो ग्रहमचीक्लृपत् ।
यस्तु पर्वणि चन्द्रार्कावभिधावति वैरधीः ॥

'भगवान् विष्णु जब मोहिनीका रूप बनाकर देवताओंको अमृत पिलाने लगे तब राहु देवताओंका रूप बनाकर उनकी पङ्क्तिमें बैठ गया। उस समय सूर्य और चन्द्रमाने राहुकी सूचना दे दी। सूचना देनेपर भगवान्ने सुदर्शनचक्रसे राहुके सिरको काट दिया, परंतु अमृतसे भरपूर धड़का नाम केतु और अमरत्वको प्राप्त हुए शिरका नाम राहु हो गया। भगवान्ने उसको ग्रह बना दिया। यह वैरके कारण पौर्णमासीमें चन्द्रमाकी ओर तथा अमावास्यामें सूर्यकी ओर दौड़ता है, यही पुराणोंमें ग्रहणका स्वरूप है।

ज्योतिषशास्त्रकी दृष्टिसे ग्रहण

ग्रहणकालमें पृथिवीकी छाया चन्द्रमाको ढक लेती है। यदि सूर्यग्रहण हो तो चन्द्रमा सूर्यको ढक लेते हैं, जैसा कि 'सिद्धान्तशिरोमणि'के पर्वसम्भवाधिकारमें श्रीभास्कराचार्यजीने कहा है—'भूभा विधुं विधुरिनं ग्रहणे पिधत्ते' (श्लोक ०)। यही बात सूर्यसिद्धान्तके चन्द्रग्रहणाधिकारप्रकरणमें कही गयी है।

छादको भास्करस्येन्दुरधःस्थो घनवद् भवेत्।
भूच्छायां प्राङ्मुखश्चन्द्रो विशत्यस्य भवेदसौ ॥

अर्थात्—नीचे होनेवाला चन्द्रमा बादलकी भाँति सूर्यको ढक लेता है। पूर्वकी ओर चलता हुआ चन्द्रमा पृथिवीकी छायामें प्रविष्ट हो जाता है। इसलिये पृथिवीकी छाया चन्द्रमाको ढकनेवाली है। यह विशेषरूपसे ध्यातव्य है कि पृथिवीकी छायाको 'सूर्यसिद्धान्त' के ग्रहणाधिकार (५) में 'तम' नामसे कहा है—'विशोध्य लब्धं सूच्या तमो लिप्तास्तु

अमरकोशमें 'तम' नाम राहुका है—'तमस्तु राहु स्वर्भानु सैंहिकेयो विधुन्तुद'। पृथिवीकी छायाका अधिष्ठाता राहु है यह विषय सिद्धान्तशिरोमणिके श्लोकसे भी पुष्ट हो जाता है। श्रीभास्कराचार्यजी स्पष्ट कहते हैं—

> राहुः कुभामण्डलगः शशाङ्कं
> शशाङ्कगश्छादयतीव बिम्बम्।
> तमोमयः शम्भुवरप्रदानात्
> सर्वागमानामविरुद्धमेतत्॥

'पृथिवीकी छायाका अधिष्ठाता राहु चन्द्रमाको ढक लेता है।' इसलिये 'सिद्धान्तशिरोमणि'के पर्वसम्भवाधिकार (२) में 'अगु च तदोक्तवत्' इस पद्यांशसे 'अगु' अर्थात् राहुको भी ग्रहणके लिये स्पर्श करना लिखा है।

कूर्मपुराणके पूर्वार्ध ४१वें अध्यायमें स्पष्ट लिखा है कि पृथिवीकी छायासे राहुका अन्धकारमय मण्डल बनता है, जैसा कि कहा है—

> उद्धृत्य पृथिवीच्छायां निर्मितो मण्डलाकृतिः।
> स्वर्भानोस्तु बृहत् स्थानं तृतीयं यत्तमोमयम्॥

सूर्यग्रहणके अमावास्या एवं चन्द्रग्रहणके पौर्णमासीको होनेके कारण

सूर्यसिद्धान्त, चन्द्रग्रहणाधिकार छठे श्लोकके अनुसार पृथिवीकी छाया सूर्यसे ६ राशिके अन्तरपर भ्रमण करती है और पौर्णमासीको चन्द्रमाकी सूर्यसे ६ राशिके अन्तरपर भ्रमण करती है—

> 'भानोर्भार्धे महीच्छाया तत्तुल्येऽर्कसमेऽपि वा।'

इसलिये पृथिवीकी छाया चन्द्रमाको ढक लेती है, परंतु छः राशिका अन्तर होते हुए जिस पौर्णमासीको सूर्य तथा चन्द्रमा दोनोंके अंश, कला तथा विकला पृथिवीके समान होते हैं, उसी पौर्णमासीको चन्द्रग्रहण होता है।

अमावास्याका दूसरा नाम सूर्येन्दुसंगम भी है, अर्थात् अपनी-अपनी कक्षामें होते हुए भी सूर्य और चन्द्रमा अमावास्याको एक राशिमें होते हैं। ऐसा संगम प्रत्येक अमावास्यामें होता है। 'अमावास्या' शब्दकी व्युत्पत्तिसे भी पता चलता है कि सूर्य और चन्द्रमा अमावास्याको एक राशिमें होते हैं। 'अमया सह वसतः चन्द्रार्कौ अस्यामिति अमावास्या'—जिस तिथिको सूर्य और चन्द्रमा एक राशिमें रहते हैं, उस तिथिको अमावास्या कहते हैं। परंतु जिस अमावास्याको सूर्य तथा चन्द्रमाके अंश, कला, विकला समान हों, उस अमावास्याको ही सूर्यग्रहण होता है। इसी विषयको सूर्यसिद्धान्तके चन्द्रग्रहणाधिकार (९)में स्पष्ट कहा है—

> तुल्यौ राश्यादिभिः स्याताममावास्यान्तकालिकौ।
> सूर्येन्दू पौर्णमास्यन्ते भार्धे भागादिकौ समौ॥

ग्रहणके समय चन्द्रमाका विभिन्न रंग तथा सूर्यका काला ही क्यों रहता है?

यह विषय सूर्यसिद्धान्तके छेद्यकाधिकार (२३)में स्पष्ट है—

> अर्धादूने तु धूम्रः स्यात् कृष्णमर्धाधिकं भवेत्।
> विमुञ्चतः कृष्णताम्रं कपिलं सकलग्रहे॥

यदि आधेसे कम चन्द्रमाका ग्रास हो तो ताँबे-जैसा, आधेसे अधिक ग्रासमें काला, चतुर्थांशसे अधिकके ग्रासमें कृष्णताम्र और सम्पूर्णके ग्रासमें चन्द्रमाका रंग कपिल होता है। पृथिवीकी छाया काली है तथा चन्द्रमा श्वेत रंगके हैं। इसलिये इन वर्णोंका मेल होनेसे ग्रासकी न्यूनता तथा अधिकताके कारण चन्द्रमाके विभिन्न रंग हो जाते हैं। चन्द्रमा तो जलमय है। इसलिये अमावास्यामें चन्द्रमाका दृश्य बिम्ब सदा ही काले रंगका होता है। ग्रहणकालमें सूर्यका आच्छादक चन्द्रमा होता है, इसलिये ग्रहणकालमें सूर्यका रंग सदा काला ही रहता है चाहे कितने ही भागका ग्रास हो। आदिकाव्य वाल्मीकिरामायण (सुन्दरकाण्ड, सर्ग २७ श्लोक ७८)में त्रिजटाकी राक्षसियोंके प्रति उक्ति है—

अथार्वैगुण्यमात्र तु शङ्के दुःखमुपस्थितम्।

सीताजी दु:खकी उपस्थिति छायावैगुण्यमात्र अर्थात् ग्रहणकालमें चन्द्रमाके छायावैगुण्यकी भाँति है। इससे ग्रहणकालमें पृथिवीकी छायाका अनुमोदन हो जाता है।

काव्यकी दृष्टिसे ग्रहण—जिन कालिदासको ऐतिहासिक दो सहस्र वर्षसे अधिक पुराना मानते हैं, उन्होंने रघुवंश (१४ । ७)में पृथिवीकी छायाका चन्द्रमापर पड़ना स्पष्ट लिखा है—

अवैमि चैनामनघेति किन्तु
लोकापवादो बलवान् मतो मे।
छाया हि भूमेः शशिनो मलत्वे-
नारोपिता शुद्धिमतः प्रजाभिः॥

जब मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् राम चौदह वर्षका वनवास व्यतीत कर अयोध्या लौट आये तो सीताके विषयमें लोकापवाद सुनकर कहते हैं कि मैं समझता हूँ कि सीता निष्कलङ्क है, परन्तु लोकापवाद बलवान् है, क्योंकि पड़ती तो चन्द्रमापर पृथिवीकी छाया है, परंतु प्रजा उसे चन्द्रमाका मल कहती है। यह ज्ञान कालिदासको भी था। वैज्ञानिकोंने कोई नयी खोज नहीं की है।

किस स्थानमें किस ग्रहणका महत्त्व अधिक है?—पुराणोंमें चन्द्रग्रहणका महत्त्व वाराणसीमें बताया है और सूर्यग्रहणका महत्त्व कुरुक्षेत्रमें। यही कारण है कि श्रीकृष्णके पिता वसुदेवजी सूर्यग्रहणमें कुरुक्षेत्र आये और उन्होंने वहाँ जाकर यज्ञ किया। यह श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके उत्तरार्धमें स्पष्ट लिखा है।

धर्मशास्त्रकी दृष्टिसे ग्रहण—धर्म-शास्त्र तथा पुराणोंका कथन है कि ग्रहणकालमें जप तथा दान एवं हवन करनेसे बहुत फल होता है। यह विषय श्रीभास्कराचार्यजीने उठाया और समर्थन किया है। 'धर्मसिन्धु'में आता है कि ग्रहण लगनेपर स्नान, ग्रहणके मध्यकालमें हवन तथा देवपूजन और श्राद्ध, ग्रहण जब समाप्त होनेवाला हो तब दान और समाप्त होनेपर पुनः स्नान करना चाहिये। यदि सूर्यग्रहण रविवारको हो और चन्द्रग्रहण सोमवारको हो तो उसे चूड़ामणि कहते हैं। उस ग्रहणमें स्नान, जप, दान, हवन करनेका और भी विशेष फल है।

तन्त्रशास्त्रकी दृष्टिसे ग्रहण—शारदातिलक, द्वितीय पटलके दीक्षा-प्रकरणकी पदार्थदर्शी-व्याख्यामें रुद्रयामल ग्रन्थको उद्धृत करके लिखा है—

सत्तीर्थेऽर्कविधुग्रासे तन्तुदामनपर्वणोः।
मन्त्रदीक्षां प्रकुर्वाणो मासर्क्षादीन् न शोधयेत्॥

अगस्तिसंहितामें भी कहा है—

सूर्यग्रहणकालेन समोऽन्यो नास्ति कश्चन।
तत्र यद् यत् कृतं सर्वमनन्तफलदं भवेत्॥
सिद्धिर्भवति मन्त्रस्य विनाऽऽयासेन वेगतः।
कर्तव्यं सर्वयत्नेन मन्त्रसिद्धिरभीप्सुभिः॥

तीर्थों और सूर्यग्रहण तथा चन्द्रग्रहणमें मन्त्र-दीक्षा लेनेके लिये कोई विचार न करे। सूर्यग्रहणके समान और कोई समय नहीं है। सूर्यग्रहणमें अनायास ही मन्त्रकी सिद्धि हो जाती है। इन श्लोकोंमें मन्त्र शब्द यन्त्रका भी उपलक्षक है। इसका सारांश यह है कि ग्रहणकालमें मन्त्रोंको जपनेसे तथा मन्त्रोंको लिखनेसे विलक्षण सिद्धि होती है। इसके अतिरिक्त इस कालमें रुद्राक्ष-मालाके धारणमात्रसे भी पापोंका नाश हो जाता है। इसलिये जाबालोपनिषद्के चौथी व्याख्यामें ऐसा लिखा है कि—

ग्रहणे विषुवे चैवमयने संक्रमेऽपि च।
दर्शेषु पौर्णमासेषु पूर्णेषु दिवसेषु च॥
रुद्राक्षधारणात् सद्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते।

गणपत्युपनिषद्में भी लिखा है कि सूर्यग्रहणमें महानदी अर्थात् गङ्गा, यमुना, सरस्वती आदि नदियोंमें या किसी प्रतिमाके पास मन्त्र जपनेसे वह सिद्ध हो जाता है।

'सूर्यग्रहणे महानद्या प्रतिमासन्निधौ वा जप्त्वा स सिद्धमन्त्रो भवति' (गणपत्युपनिषद्, मन्त्र ८)

इसलिये सूर्यग्रहण तथा चन्द्रग्रहणमें दान तथा हवन एवं मन्त्रोंका जप तथा यन्त्रोंको लिखना चाहिये।

ग्रहणकालमें कुशाका महत्त्व—ग्रहणकालमें निश्चित जल आदिमें कुशा डालना चाहिये। कुशा डालनेसे ग्रहणकालमें जो अशुद्ध परमाणु होते हैं, उनका कुशा डाली हुई वस्तुपर कोई प्रभाव नहीं होता, यह डाक्टरोंका अनुभव है और धर्मशास्त्रादिसम्मत भी है। इसलिये निर्णयसिन्धुमें 'मन्वर्थमुक्तावली'के वचनको उद्धृत करके कुशाके महत्त्वको बताया है—'वारितक्रारनालादि तिलदर्भैर्न दुष्यति'—ग्रहणकालमें जल, छाछ (लस्सी) तथा आरनाल आदिमें कुशा डालनेसे वे दूषित नहीं होते। इसीलिये कुशाके आसनपर बैठकर योगसाधन तथा मननका विधान है। यह श्रीमद्भगवद्गीताके छठे अध्यायके ११वें श्लोकसे भी स्पष्ट है। कुशाके आसनपर बैठनेसे अशुद्ध परमाणुओंका सम्पर्क सर्वथा नहीं होता। अतएव मन पूरा संयत रहता है और बुद्धि इतनी स्वच्छता से काम करती है कि तनिक भी प्रमाद नहीं होने पाता। कुशाका महत्त्व महाभाष्यके तीसरे आह्निकमें 'वृद्धिरादैच् (१।१।१)'—इस सूत्रके व्याख्यानमें बताया है—'प्रमाणभूतो आचार्यो दर्भपवित्रपाणिः सूत्राणि प्रणयति स्म' इत्यादि अर्थात् प्रामाणिक आचार्यने कुशाकी पवित्री हाथमें डालकर पवित्र स्थानमें पूर्वाभिमुख बैठकर सूत्र बनाये हैं, इसलिये किसी सूत्रका एक वर्ण भी अनर्थक नहीं हो सकता—'वृद्धिरादैच्' इतना बड़ा सूत्र कैसे अनर्थक हो सकता है? प्रतिदिन होनेवाले तर्पण, हवन तथा श्राद्धकर्ममें कुशाका महत्त्वपूर्ण स्थान है। श्राद्ध और कुशकण्डिकामें उसकी प्रधानता है।

वैज्ञानिक कहते हैं कि पृथिवीकी छाया पड़नेसे ग्रहण होता है, यह उनका कथन कुछ अंशतक ठीक है। वस्तुतः पृथिवीकी छाया पड़नेसे चन्द्रग्रहण होता है और चन्द्रमाद्वारा सूर्यके ढके जानेसे सूर्यग्रहण होता है, जो हमने शास्त्रके प्रमाणोंसे ही सिद्ध कर दिया है। वैज्ञानिकोंके सिद्धान्त अपने ढंगके हैं। पहले वैज्ञानिक आकाशको नहीं मानते थे, अब 'ईथर' नामसे उसे मानने लगे हैं। भारतीय ग्रन्थोंमें तो श्रुति, स्मृति, पुराण, दर्शन, ज्योतिष आदिमें आकाशको माना है। न्यायशास्त्रमें तो बड़े दृढ़ प्रमाण देकर आकाशको सिद्ध किया गया है। आकाश अन्यतम पञ्चमहाभूत है।

कुछ वैज्ञानिक आत्मामें भी भार मानते थे, किंतु अब मानना छोड़ दिया है। दिव्यदृष्टि महर्षियोंने सब बातें योगबलसे प्रत्यक्ष करके लिखी हैं। इसलिये ग्रहणका स्वरूप भी हमने भारतीय शास्त्रोंके आधारपर लिया है।

ग्रहणमें स्नानादिके नियम

चन्द्र-सूर्य दोनों राहुसे ग्रस्त हुए अस्त हो जायँ तो पुनः उनका दर्शन करके स्नान और भोजन करना चाहिये। भोजन अपने घरका करे। ग्रहणकालमें दिन-रात—दोनोंमें भोजन निषिद्ध है। चन्द्रमा राहुग्रस्त उदित होते हों तो प्रथम दिन भोजन न करे। चन्द्रमाके प्रातःकाल ग्रस्तास्त हो जानेपर प्रथम रात्रि तथा अगले दिनका भोजन निषिद्ध है; किंतु स्नान-हवन आदि मोक्ष-समयमें किया जा सकता है। ग्रहणके एक प्रहर पहले बालक, वृद्ध और रोगी भी भोजन न करें। वेध या ग्रहण-कालमें पकवान भी नहीं खाना चाहिये। ग्रहणमें सभी वर्णोंको सूतक लगता है—'सर्वेषामेव वर्णानां सूतकं राहुदर्शने।' मक्खन, दूध-दही, मट्ठा, घीका पका अन्न और मणियोंमें रखा जल तिल या कुश डालनेपर अपवित्र नहीं होते। गङ्गाजल अपवित्र नहीं होता। जैमिनि पुत्रवान्‌को रविवार और संक्रान्तिके सिवा ग्रहणमें भी उपवास वर्जित करते हैं। हाँ, सबके लिये जप आदिका विधान और शयन आदिका निषेध अवश्य है—

सूर्येन्दुग्रहणं यावत् तावत् कुर्याज्जपादिकम्। न स्वपेन्न च भुञ्जीत स्नात्वा भुञ्जीत मुक्तयोः॥

(नि० सि०)

सूर्यचन्द्र-ग्रहण-विमर्श

ग्रहण आकाशीय अद्भुत चमत्कृतिका अनोखा दृश्य है। उससे अश्रुतपूर्व, अद्भुत ज्योतिष्क-ज्ञान और ग्रह-उपग्रहोंकी गतिविधि एवं स्वरूपका परिस्फुट परिचय प्राप्त हुआ है। ग्रहोंकी दुनियाकी यह घटना भारतीय मनीषियोंको अत्यन्त प्राचीनकालसे अभिज्ञात रही है और इसपर धार्मिक तथा वैज्ञानिक विवेचन धार्मिक ग्रन्थों और ज्योतिष-ग्रन्थोंमें होता चला आया है। महर्षि अत्रि मुनि ग्रहण-ज्ञानके उपज्ञ (प्रथम ज्ञाता) आचार्य थे। ऋग्वेदीय प्रकाशकालसे ग्रहणके ऊपर अध्ययन मनन और स्थापन होते चले आये हैं। गणितके बलपर ग्रहणका पूर्ण पर्यवेक्षण प्रायः पर्यवसित हो चुका है, जिसमें वैज्ञानिकोंका योगदान भी सर्वथा स्तुत्य है।

ऋग्वेदके एक मन्त्रमें यह चामत्कारिक वर्णन मिलता है कि 'हे सूर्य! असुर राहुने आपपर आक्रमण कर अन्धकारसे जो आपको विद्ध कर दिया—ढक दिया, उससे मनुष्य आपके (सूर्यके) रूप-(मण्डल) को समग्रतासे देख नहीं पाये और (अतएव) अपने अपने कार्यक्षेत्रोंमें हतप्रभ (टप)से हो गये। तब महर्षि अत्रिने अपने अर्जित सामर्थ्यसे अनेक मन्त्रोंद्वारा (अथवा चौथे मन्त्र या यन्त्रसे) मायांश (छाया)का अपनोदन (दूरीकरण) कर सूर्यका समुद्धार किया।'—

यत् त्वा सूर्य स्वर्भानुस्तमसा विध्यदासुरः।
अक्षेत्रविद्यथा मुग्धो भुवनान्यदीधयुः॥
स्वर्भानोरध यदिन्द्र माया
अवो दिवो वर्तमाना अवाहन्।
गूळ्हं सूर्यं तमसापव्रतेन
तुरीयेण ब्रह्मणाऽविन्ददत्रिः॥
(—ऋ० ५।४०।५६)

अगले एक मन्त्रमें यह आता है कि 'इन्द्रने अत्रिकी सहायतासे ही राहुकी मायासे सूर्यकी रक्षा की थी।' इसी प्रकार ग्रहणके निरसनमें समर्थ महर्षि अत्रिके तप-सन्धानसे समुद्भूत अलौकिक प्रभावोंका वर्णन वेदके अनेक मन्त्रोंमें प्राप्त होता है।* किंतु महर्षि अत्रि किस अद्भुत सामर्थ्यसे इस अलौकिक कार्यमें दक्ष माने गये, इस विषयमें दो मत हैं—प्रथम परम्परा प्राप्त यह मत कि वे इस कार्यमें तपस्याके प्रभावसे समर्थ हुए और दूसरा यह कि वे कोई नया यन्त्र बनाकर उसकी सहायतासे ग्रहणसे उन्मुक्त हुए सूर्यको दिखलानेमें समर्थ हुए।† यही कारण है कि महर्षि अत्रि ही भारतीयोंमें ग्रहणके प्रथम आचार्य (उपज्ञ) माने गये। सुतरां इससे स्पष्ट है कि अत्यन्त प्राचीनकालमें भारतीय सूर्यग्रहणके विषयमें पूर्णतः अभिज्ञ थे।

मध्ययुगीन ज्योतिर्विज्ञानके उच्चतम आचार्य भास्कराचार्य प्रभृतिने सूर्यग्रहणका समीचीन विवेचन प्रस्तुत किया है तथा उसके अनुसन्धानकी विशिष्ट प्रणाली भी प्रदर्शित की है। किंतु इस आकाशीय चमत्कृतिके लिये प्रयासका पर्यवसान उन्होंने भी वेद-पुराण जाननेवालोंके माध्यमसे ग्रहणकालमें जप, दान, हवन, श्राद्धादिके बहुफलक होनेकी फलश्रुतिमें करते हुए भारतकी अन्तरात्मा—धर्मको ही पुरस्कृत किया है—

'बहुफलं जपदानहुतादिके
श्रुतिपुराणविदः प्रवदन्ति हि।'

आधुनिक पाश्चात्य खगोलशास्त्रियों-(वियद् विज्ञानियों)ने भी अटूट श्रमकर विषय-वस्तुको बहुत कुछ स्पष्ट कर दिया है। किंतु उनका ध्येय ग्रहणके तीन प्रयोजनोंमेंसे तीसरा प्रयोजन—सूर्य चन्द्रमाके बिम्बोंका भौतिक एवं रासायनिक अन्वेषण-विश्लेषण ही

*—द्रष्टव्य—५।४०।७—९ तकके मन्त्र।

†—पहला मत सायणप्रभृति वेद भाष्यकारोंके उल्लेखानुसार परम्पराप्राप्त है और दूसरा मत वेदमहार्णव पं० मधुसूदनजी ओझाका है, जिसे उन्होंने अपने 'अत्रिख्याति' नामक ग्रन्थमें प्रतिष्ठित किया है।

है। वे धार्मिक महत्त्वको तथा लोगोंमें कौतूहलजनक उसके चमत्कारको उतनी उच्च मान्यता नहीं देते हैं। यहाँ हम संक्षेपमें सूर्यचन्द्र-ग्रहणोंका सामान्य परिचयात्मक विवरण प्रस्तुत कर रहे हैं।

आकाशीय तेजस्वी ज्योतिष्कपिण्डोंके सामने जब कोई अप्रकाशित अपारदर्शक पदार्थ आ जाता है तब उस तेजस्वी ज्योतिष्कपिण्डका प्रकाश उस अपारदर्शक पदार्थ भागके कारण छिप जाता है और दूसरे पारवालोंके लिये छाया बन जाती है। यही छाया 'उपराग' या 'ग्रहण'का रूप ग्रहण कर लेती है।

चन्द्रमा पृथ्वीके उपग्रह और अपारदर्शक हैं जो स्वतः प्रकाशक न होनेके कारण अप्रकाशित पिण्ड हैं। अण्डेके आकारवाले अपने भ्रमण-पथ (कक्षा) पर घूमते हुए वे (सूर्यकी परिक्रमा करती हुई) पृथ्वीकी परिक्रमा करते हैं।* वे कभी पृथ्वीके पास और कभी इससे दूर रहते हैं। उनका कम-से-कम अन्तर १,२१,००० मील और अधिक-से-अधिक २,५३,००० मील होता है। अपने भ्रमण-पथपर चलते हुए चन्द्रमा अमावास्याको सूर्य और पृथ्वीके बीचमें आ जाते हैं और कभी-कभी (जब तीनों बिल्कुल सीधमें होते हैं तब) सूर्यके प्रकाशको रोक लेते हैं—हमारे लिये उसे मेघकी भाँति रोक लेते हैं, जिससे सूर्योपराग अर्थात् सूर्यग्रहण हो जाता है।† जब वे पृथ्वीके पास हों और राहु या केतु बिन्दु‡पर हों, तब उनकी परछाईं पृथ्वीपर पड़ती है। पास होनेके कारण उनका बिम्ब बड़ा होता है, जिससे हमारे लिये सूर्य पूर्णतः ढक जाते हैं और तब हम पूर्ण सूर्यग्रहण कहते हैं। उस समय चन्द्रमाका अप्रकाशित भाग हमारी ओर होता है और उसकी घनी और हल्की परछाईं पृथ्वीपर पड़ती है। सूर्य पृथ्वीके जितने भागपर घनी छाया (प्रच्छाया) रहनेसे दिखलायी नहीं देते, उतने भागपर सूर्यका सर्वग्रास (खग्रास) सूर्यग्रहण होता है और जिस भागपर कम परछाईं (उपच्छाया) पड़ती है, उसपर सूर्यका खण्डग्रास होता है। निष्कर्ष यह कि सूर्य, चन्द्र और पृथ्वी—तीनों जब एक सीधमें नहीं होते अर्थात् चन्द्र, ठीक राहु या केतु बिन्दुपर न होकर कुछ ऊँचे या नीचे होते हैं तब सूर्यका खण्ड-ग्रहण होता है। और, जब चन्द्रमा दूर होते हैं तब उनकी परछाईं पृथ्वीपर नहीं पड़ती तथा वे छोटे दिखलायी पड़ते हैं—उनके बिम्बके छोटे होनेसे सूर्यका मध्यभाग ही ढकता है, जिससे चारों ओर कङ्कणाकार सूर्य-प्रकाश दिखलायी पड़ता है। इस प्रकारके ग्रहणको कङ्कणाकार या वलयाकार सूर्यग्रहण कहते हैं। पूर्ण सूर्यग्रहणको 'खग्रास' और अपूर्णको 'खण्डग्रास' भी कहा जाता है। निदान, सूर्यग्रहण मुख्यतः तीन प्रकारके होते हैं—(१) सर्वग्रास या खग्रास—जो सम्पूर्ण सूर्य-बिम्बको ढकनेवाला होता है, (२) कङ्कणाकार या वलयाकार जो सूर्य

* चन्द्रमाकी अपने कक्षकी एक परिक्रमा २७ दिन ७ घंटे ४३ मिनट और ११ सेकण्डमें होती रहती है।

† सिद्धान्तशिरोमणि (गो॰ ग्र॰ वा॰ १) में भास्कराचार्यने इस स्थितिका निरूपण निम्नाङ्कित श्लोकमें किया है—

पश्चाद्भागाज्जलदवदधः संस्थितोऽभ्येत्य चन्द्रो भानोर्बिम्बं स्फुरदसिततया छादयत्यात्ममूर्त्या।
पश्चात् स्पर्शो हरिदिशि ततो मुक्तिरस्यात एव क्वापि च्छन्नः क्वचिदपिहितो नैष कक्षान्तरत्वात्॥

‡ ज्योतिषियोंका किसी असुरके शरीरसे दिलचस्पी (लगाव) नहीं है। उनके लिये तो राहु और केतुका मूलतः यही अर्थ है। जिस मार्गपर पृथ्वी सूर्यकी परिक्रमा करती है या यों कहिये कि सूर्य पृथ्वीकी परिक्रमा करता है वह क्रान्तिवृत्त एवं चन्द्रमाका पृथ्वीके चारों ओरका मार्ग-वृत्त (भ्रम)—ये दोनों जिन बिन्दुओंपर एक-दूसरेको काटते हैं, उनमेंसे एकका नाम 'राहु' और दूसरेका 'केतु' है। (—सम्पादक) [‡ आकाशमें उत्तरकी ओर चढ़ते हुए चन्द्रमाकी कक्षा जब सूर्यकी कक्षाको काटती है तो उस सम्पात बिन्दुको राहु और दक्षिणकी ओर नीचे उतरते हुए चन्द्रमाकी कक्षा जब सूर्यकी कक्षाको पार करती है, तब उस सम्पात-बिन्दुको केतु कहते हैं।]

टिप्पणी—सूर्यका क्रान्तिवृत्त प्रत्यक्ष सारा अंशोंका बारह राशियोंमें (१२×३०=) ३६० अंशोंका माना गया है। मोटे तौरपर पूर्णिमाका चन्द्र-मण्डल आधे अंशका होता है।

बिम्बके बीचके भाग ढकता है तथा (३) खण्ड-ग्रहण—जो सूर्य-बिम्बके अंशको ही ढकता है । इनकी निम्नाङ्कित परिस्थितियाँ होती हैं—

(१) खग्रास सूर्य-ग्रहण तब होता है जब (क) अमावास्या* हो, (ख), चन्द्रमा, ठीक राहु या केतु बिन्दुपर और (ग) पृथ्वी-समीप बिन्दुपर हो । इस प्रकारकी स्थितिमें चन्द्रमाकी गहरी छाया जितने स्थानोंपर पड़ती है, उतने स्थानोंपर खग्रास ग्रहण दृग्गोचर होता है और जितने स्थानोंपर हल्की परछाईं पड़ती है, उतने स्थानोंपर खण्डग्रास ग्रहण होता है और जहाँ ये दोनों परछाइयाँ नहीं होतीं वहाँ ग्रहण ही नहीं दीखता है । इसलिये ग्रहण लिखते समय ग्रहणके स्थानों एवं प्रकारको भी सूचित करना पञ्चाङ्गकी प्रक्रिया है ।

(२) कङ्कणाकार अथवा वलयाकार सूर्य-ग्रहण तब होता है जब—(क) अमावास्या होती है, (ख) चन्द्रमा ठीक राहु या केतु बिन्दुपर होते हैं, किंतु (ग) चन्द्रमा पृथ्वीसे दूरबिन्दुपर होते हैं ।

(३) खण्डित ग्रहण तब होता है जब—(क) अमावास्या होती है, (ख) चन्द्रमा ठीक राहु या केतु बिन्दुपर न होकर उनमेंसे किसी एकके समीप होते हैं ।

चन्द्रग्रहण—चन्द्रग्रहण पूर्णिमाको होता है—जबकि सूर्य और चन्द्रमाके बीच पृथ्वी होती है और तीनों—सूर्य, पृथ्वी और चन्द्रमा—बिल्कुल सीधमें, एक सरल रेखामें होते हैं । पृथ्वी जब सूर्य और चन्द्रमाके बीच आ जाती है और चन्द्रमा पृथ्वीकी छायामें होकर गुजरते हैं तब चन्द्रग्रहण होता है—पृथ्वीकी यह छाया चन्द्रमण्डलको ढक लेती है, जिससे चन्द्रमामें काला मण्डल दिखलायी पड़ता है । यही चन्द्रग्रहण कहा जाता है । सूर्य और चन्द्रमाके बीचसे गुजरनेवाली पृथ्वीकी बायीं ओर आधे भागपर रहनेवाले मनुष्योंको चन्द्रग्रहण दिखलायी पड़ता है ।

सूर्यबिम्बके बहुत बड़े होने तथा पृथ्वीके छोटे होनेके कारण पृथ्वीकी परछाईं हमारी परछाईंकी भाँति न होकर काले ठोस शङ्कुके समान—सूच्याकार होती है और चन्द्र-कक्षाको पारकर बहुत दूरतक निकल जाती है ।† आकाशमें फैली हुई पृथ्वीकी यह छाया लगभग ८,५७,००० मील लम्बी होती है । इसकी लम्बाई पृथ्वी और सूर्यके बीचकी दूरीपर निर्भर होती है, अतः यह छाया घटती-बढ़ती रहती है । इसीलिये यह परछाईं कभी ८,७१,००० मील और कभी केवल ८,४३,००० मील लम्बी होती है । शङ्कु-सदृश इस प्रच्छायाके साथ ही शङ्कुके ही आकारवाली उपच्छाया भी रहती है । चन्द्रमा अपने भ्रमण-पथपर चलते हुए जब पृथ्वीकी उपच्छायामें पहुँचते हैं तब विशेष परिवर्तन होता नहीं दिखलायी पड़ता, पर ज्यों ही वे प्रच्छायाके समीप आ जाते हैं, त्यों ही उनपर ग्रहण प्रतीत होने लगता है और जब उनका सम्पूर्ण मण्डल प्रच्छायाके भीतर आ जाता है तब पूर्ण चन्द्रग्रहण अथवा पूर्णग्रास चन्द्रग्रहण लग जाता है । इसे हम ज्योतिषके दृष्टिकोणसे और स्पष्टतासे समझें ।

'रात्रिमें दिखलायी देनेवाला अन्धकार पृथ्वीकी छाया है । यह छाया जब चन्द्रमापर पड़ जाती है तब चन्द्रमापर ग्रहण लगा कहा जाता है । चन्द्रमा पृथ्वीके उपग्रह हैं । अतः वे पृथ्वीकी परिक्रमा करते हैं । पृथ्वी यन सूर्यकी

*—द्रष्टव्य—कमलाकरका निम्नाङ्कित श्लोक—

अथात्र भाधारपथेन युक्तौ यदा स्थितौ सूर्यविधू स्फुटौ तौ । अमान्तकालेऽपि स एव विशेषः ग्रहार्थं प्रथमं प्रसाध्य ॥

—सि० तत्त्व वि०, सूर्य ग्रहणाधिकार ५

† भानोर्बिम्बपृथुत्वादपृथुत्वात् पृथिव्याः प्रभा हि सूच्यग्रा । दीर्घतया शशिकक्षामतीत्य दूरं बहिर्याता ॥

—भास्कराचार्य

परिक्रमा करती है, अब पृथ्वी भी एक ग्रह है। दोनोंके भ्रमण-क्रम कुछ ऐसे हैं कि पूर्णिमाको पृथ्वी सूर्य और चन्द्रमाके बीच हो जाती है। उसकी छाया शङ्कुवत होती है। जब यह छाया चन्द्रमापर पड़ जाती है अथवा यों कहिये कि चन्द्रमा अपनी गतिके कारण पृथ्वीकी छाया-शङ्कुमें प्रविष्ट हो जाते हैं, तब कभी सम्पूर्ण चन्द्रमण्डल ढक जाता है और कभी उसका कुछ अंश ही ढकता है। सम्पूर्ण चन्द्रके ढकनेकी अवस्थामें सर्वग्रास चन्द्रग्रहण और अंशतः ढकनेपर खण्ड चन्द्रग्रहण होता है, परन्तु यहाँ प्रश्न उठता है कि प्रत्येक पूर्णिमाको उपर्युक्त ग्रह-स्थिति नियत रहनेपर प्रत्येक पूर्णिमाको ग्रहण क्यों नहीं लगता? इसका समाधान यह है कि पृथ्वी और चन्द्रमाके मार्ग एक समतलमें नहीं हैं। वे एक दूसरेके साथ पाँच अंशका कोण बनाते हैं, जिससे ग्रहणका अवसर प्रतिपूर्णिमाको नहीं होता है। (एक समतलमें दोनोंके भ्रमण-पथ होते तो अवश्य ही प्रति पूर्णिमा और अमावास्याको चन्द्र-सूर्य ग्रहण होते।) बात यह है कि चन्द्रमाकी कक्षा पृथ्वीकी कक्षासे ५ अंशके कोणपर झुकी हुई है और यह भी है कि चन्द्रमाकी पातरेखा चल है। पात रेखाकी परिक्रमाका समय प्रायः १८ वर्ष ११ दिन है। इस अवधिके बाद ग्रहणोंके क्रमकी पुनरावृत्ति होती है। इस समयको 'चन्द्रकक्ष' कहा जाता है।

भारतके प्रसिद्ध ज्योतिषी पं० श्रीबापदेवजी शास्त्रीने भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रको लिखे अपने एक पत्रमें लिखा था कि 'सूर्य अस्त हो जानेपर रात्रिमें जो अन्धकार दीखता है, वही पृथ्वीकी छाया है। पृथ्वी गोलाकार है और सूर्यसे बहुत छोटी है, इसलिये उसकी छाया सूच्याकार काले ठोस शङ्कुके आकारकी होती है। यह आकाशमें चन्द्रमाके भ्रमण-मार्गको लाँघकर बहुत दूरतक सदा सूर्यसे छः राशिके अन्तरपर रहती है। पूर्णिमाके अन्तमें चन्द्रमा भी सूर्यसे छः राशिके अन्तरपर रहते हैं। इसलिये पृथ्वीकी परिक्रमा करते हुए चन्द्रमा जिस पूर्णिमाको पृथ्वीकी छायामें आ जाते हैं अर्थात् पृथ्वीकी छाया चन्द्रमाके बिम्बपर पड़ती है, उसी पूर्णिमाको चन्द्रग्रहण होता है और जो छाया चन्द्रमापर दिखायी पड़ती है, वही ग्रास कहलाती है। पौराणिक श्रुति प्रसिद्ध है कि 'राहु नामक एक दैत्य चन्द्रग्रहण कालमें पृथ्वीकी छायामें प्रवेशकर चन्द्रमाको और प्रजा (जनता) को पीड़ा पहुँचाता है। इसलिये लोकमें राहुकृतग्रहण कहलाता है और उस कालमें स्नान, दान, जप, होम करनेसे राहुकृत पीड़ा दूर होती है तथा पुण्य लाभ होता है।'

'चन्द्रग्रहणका सम्भव भूच्छायाके कारण प्रति पूर्णिमाके अन्तमें होता है और उस समयमें केतु और सूर्य साथ रहते हैं, परन्तु केतु और सूर्यका योग यदि नियत संख्याके अर्थात् पाँच राशि, सोलह अंशसे लेकर छः राशि चौदह अंशके अथवा ग्यारह राशि सोलह अंशसे लेकर बारह राशि चौदह अंशके भीतर होता है, तभी ग्रहण लगता है और यदि योग नियत संख्याके बाहर पड़ जाता है, तो ग्रहण नहीं होता।'

यह प्रकारान्तरसे कहा जा चुका है कि पृथ्वीके मध्य बिन्दुके क्रान्तिवृत्तकी समतलमें होनेसे पृथ्वी वर्णित पूर्णिमामें सूर्यका प्रकाश चन्द्रमापर नहीं पड़ने देती, जिससे उसकी छायाके कारण चन्द्रमाका तेज कम हो जाता है। ऐसी स्थिति राहु और केतु बिन्दुपर या उनके समीप—कुछ ऊपर या नीचे—चन्द्रमाके होनेपर ही आती है। यह भी कहा जा चुका है कि चन्द्रमाके राहु-केतु बिन्दुपर होनेपर ही पूर्ण चन्द्रग्रहण होता है और उनके समीप होनेपर खण्ड चन्द्रग्रहण होता है अर्थात् चन्द्रमाके कुछ भागका प्रकाश कम हो जाता है, जिससे वे निस्तेज प्रतीत होने लगते हैं, पर बिल्कुल काले नहीं होते। हाँ, वे जब गहरी छाया (प्रच्छाया) में आ जाते हैं, तब काले होने लगते हैं। फिर

पूर्णत अदृश्य न होकर कुछ लालिमा लिये हुए ताँबेके रंगके दृष्टिगोचर होते हैं, क्योंकि सूर्यकी रक्तिम किरणें पृथ्वीके वायुमण्डलद्वारा नीलाशशोषित होनेपर परिवर्तित होकर चन्द्रमातक पहुँच जाती हैं। इसी कारण हम पूर्ण चन्द्रग्रहणके समय भी चन्द्रमण्डलको देख सकते हैं।

ग्रहण-कालकी अवधि—चन्द्रमा और पृथ्वीकी दूरीके ऊपर निर्भर होती है। कभी पृथ्वीकी छाया उस स्थानपर चन्द्रमाके व्याससे तिगुनीसे भी अधिक हो जाती है, जहाँ चन्द्रमा उसे पार करते हैं। छायाकी चौड़ाई इस स्थानपर जितनी अधिक होती है, उतनी ही अधिक अवधितक चन्द्रग्रहण रहता है। पूर्ण चन्द्रग्रहणकी अवधि प्राय दो घंटेतक और ग्रहणका सम्पूर्ण समय चार घंटेतकका हो सकता है। चन्द्रमण्डलकी ग्रस्तताके अनुसार खण्ड चन्द्रग्रहण अथवा पूर्ण चन्द्रग्रहण (खग्रास चन्द्रग्रहण) कहा-सुना जाता है। इसी प्रकार 'चन्द्रोपराग' भी शास्त्रीय चर्चामें व्यवहृत होता है।

खगोल-शास्त्रियोंने गणितसे निश्चित किया है कि १८ वर्ष १८ दिनोंकी अवधिमें ४१ सूर्यग्रहण और २९ चन्द्रग्रहण होते हैं। एक वर्षमें ५ सूर्यग्रहण तथा दो चन्द्रग्रहणतक होते हैं। किंतु एक वर्षमें दो सूर्यग्रहण तो होने ही चाहिये। हाँ, यदि किसी वर्ष दो ही ग्रहण हुए तो दोनों ही सूर्यग्रहण होंगे। यद्यपि वर्षभरमें ७ ग्रहणतक सम्भाव्य हैं, तथापि चारसे अधिक ग्रहण बहुत कम देखनेमें आते हैं। प्रत्येक ग्रहण १८ वर्ष ११ दिन बीत जानेपर पुन होता है। किंतु वह अपने पहलेके स्थानमें ही हो—यह निश्चित नहीं है, क्योंकि सम्पात-बिन्दु चल है।

साधारणतया सूर्य-ग्रहणकी अपेक्षा चन्द्रग्रहण अधिक देखे जाते हैं, पर सच तो यह है कि चन्द्रग्रहणसे कहीं अधिक सूर्यग्रहण होते हैं। तीन चन्द्रग्रहणसे चार सूर्यग्रहणका अनुपात आता है। चन्द्रग्रहणोंके अधिक देखे जानेका कारण यह होता है कि वे पृथ्वीके आधेसे अधिक भागमें दिखलायी पड़ते हैं, जब कि सूर्यग्रहण पृथ्वीके बहुत थोड़े भागमें—प्राय सौ मीलसे कम चौड़े और दो हजारसे तीन हजार मील लम्बे भूभागमें—दिखलायी पड़ते हैं। बम्बईमें खग्रास सूर्यग्रहण हो तो सूरतमें खण्ड सूर्यग्रहण दिखायी देगा और अहमदाबादमें दिखायी ही नहीं पड़ेगा।

खग्रास चन्द्रग्रहण चार घंटेतक दिखायी पड़ता है, जिनमें दो घंटेतक चन्द्रमण्डल बहुत ही धुंधला नजर आता है। खग्रास सूर्यग्रहण दो घंटेतक रहता है, परंतु पूरा सूर्यमण्डल ८–१० मिनटोंतक ही घिरा रहता है और साधारणत दो ही-तीन मिनटतक गाढ़ा रहता है। उस समय रात्रि-जैसा दृश्य हो जाता है।

सूर्यका खग्रास ग्रहण दिव्य होता है। सूर्यके पूरी तरह ढकनेके पहले पृथ्वीका रंग बदल जाता है और यत्किंचित् भयका भी संचार होता है। चन्द्रमण्डल तेजीसे सूर्यबिम्बको ढक लेता है, जिससे अँधेरा छा जाता है। पशु-पक्षी भी विशेष परिस्थितिका अनुभवकर अपना रक्षाका उपाय करने लगते हैं। परंतु आकाशकी भव्यता और उपयोगिता बढ़ जाती है। सूर्यके पार्श्व प्रान्तमें मनोरम दृश्य देखनेको मिलता है। उसके चारों ओर मोतीके समान स्वच्छ 'मुकुटावरण' दृग्गोचर होता है, जिसके तेजसे आँखोंमें चकाचौंध होने लगती है। उसके नीचेसे सूर्यकी लाल आग (प्रोज्ज्वल ज्वाला) निकलती दीख पड़ती है। उस समय उसके हल्के प्रकाशसे मनुष्योंके मुँह लाल वर्णके-से जान पड़ते हैं। किंतु यह दृश्य दो चार मिनटतक ही दिखायी पड़ता है, फिर अदृश्य हो जाता है। इस मनोज्ञ दिव्य दृश्यको देखनेके लिये दैवज्ञ ज्योतिषी और भूगोलविद् दूर-दूरसे ज्ञान-पिपासा शान्त करनेकी प्रक्रियामें यन्त्रोंसे सज्ज होकर प्रयोगार्थ वहाँ पहुँचते हैं, जहाँ पूर्ण सूर्यग्रहण (खग्रास सूर्यग्रहण) होता है। भारतवर्षमें सन १८७१ ई०

और सन् १९०८ ई०में सूर्यके खग्रास ग्रहण लगे थे ।

ग्रहणसे ज्ञानार्जन— बहुत होता है । भारतके प्रसिद्ध प्राचीन ज्योतिषियों और धर्मशास्त्रियोंने ग्रहणके लोकोपयोगी धर्म विचार भी प्रस्तुत किये हैं । आचार्य आर्यभट और ब्रह्मगुप्तने लिखा है कि सूर्य और चन्द्रमाकी गतिकी जानकारी ग्रहणसे ही हुई । हम गणितसे कह सकते हैं कि स्थान विशेषमें कितनी अवधिमें कितने ग्रहण लग सकते हैं । उदाहरणार्थ— वर्षभरमें प्रायः चार सूर्यग्रहण एवं दो चन्द्रग्रहण हो सकते हैं । किंतु न्यूनतम दो सौ वर्षके कालान्तरपर कुछ विशेष सात ग्रहणोंका होना सम्भव है, जिनमें चार सूर्यग्रहण और तीन चन्द्रग्रहण अथवा पाँच सूर्यग्रहण तथा दो चन्द्रग्रहण हो सकते हैं। साधारणतः प्रतिवर्ष दो ग्रहणोंका होना अनिवार्य है। हाँ, इतना नियत है कि जिस वर्ष दो ही ग्रहण होते हैं, उस वर्ष दोनों ही सूर्यग्रहण ही होते हैं । गणितद्वारा आगामी हजारों वर्षोंके ग्रहणोंकी संख्या उनकी तिथि और ग्रहणकी अवधि ठीक-ठीक निकाली जा सकती है ।

ग्रहण केवल सूर्य और चन्द्रमामें ही नहीं लगते, प्रत्युत अन्य ग्रहों, उपग्रहोंमें भी होते हैं, जिनके लिये विशेषकृत्य निर्धारित नहीं है । नक्षत्र, ग्रहों, उपग्रहोंकी गतिशीलताकी विशेष स्थितिमें एकसे अन्यके प्रकाशका आवरण हो जाना या छायासे उसका ढक जाना नितान्त सम्भव है, जो सूर्य-चन्द्रसे सम्बद्ध होनेपर ही 'ग्रहण' कहा जाता है।* पृथ्वीपर ग्रहणके प्रभाव होनेसे धार्मिक कृत्य— स्नान, दान, जपादिका विधान है ।

ग्रहणके धार्मिक कृत्य—सूर्यग्रहणके बारह घंटे और चन्द्रग्रहणके नौ घंटे पहलेसे विधवा, यति, संन्यासी और विरक्तोंको भोजन नहीं करना चाहिये । बाल, वृद्ध, रोगी और पुत्रवान् गृहस्थके† लिये नियम अनिवार्य नहीं है । ग्रहणकालमें शयन और शौचादि क्रिया भी निषिद्ध है । देवमूर्तिका स्पर्श भी नहीं करना चाहिये । सूर्यग्रहणमें पुष्कर और कुरुक्षेत्रके तथा चन्द्रग्रहणमें काशीमें स्नान,‡ जप, दानादिका बहुत महत्त्व है । ग्रहणमें विहित श्राद्ध कच्चे अन्न या स्वर्णसे ही करनेका विधान है । श्राद्ध अवश्य ही करना

* किंतु जब बुधका भास्करीय ग्रहण नहीं, 'अधिक्रमण' कहा जाता है । यह ग्रहण जैसा ही होता है जिसे सूर्यके पारक्रमण भी कहते हैं । बुध जब सूर्य और पृथ्वीकी सीधमेंसे गुजरते हैं तो सूर्यबिम्बपर छोटे-से काले बिन्दु-सा दिखलायी पड़ता है । ज्योतिषी इसे ग्रहण-जैसा कोई महत्त्व नहीं देते हैं, पर आकाशीय यह घटना दर्शनीय होती है । बुध सूर्यसे दूसरी मिलता, इसकी पृथक गोलाई और शीघ्रगामितासे समझी आती है । बुध सूर्यसे प्रायः साढ़े तीन करोड़ मील दूर रहते हैं ।

पिछला बुध-पारक्रमण ७ नवम्बर १९६० को तथा शनिवार ९ मई १९७० ई० को हुआ था और भारत, चीन, रूस—एशिया, अफ्रीका, यूरोप, दक्षिणी अमेरिका, कुछ भागोंको छोड़कर उत्तरी अमेरिका, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, जापान, ग्रीनलैंड फिलीपाइन्स आदि समस्त प्रायः सभी देशोंमें देखा गया था । ऐसा ही योग (निकटतम भूतकाल) १० नवम्बर, १९७३ में हुआ था । पुनः १२ नवम्बर १९८६ ई० को होगा । ज्योतिषमें अधिकमासगामी ऐसे योगको अनिष्टकारी बताया गया है और सत्तापरिवर्तनमें नेतृपरिवर्तन सम्भाव्य होता है । (बुध-सूर्यका वेधयोग भी होता है—जब बुध पृथ्वीके बीचमें आ जाते हैं ।)

† आदित्यऽहनि संक्रान्तौ ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः । पारणं चोपवासं च न कुर्यात् पुत्रवान् गृही ॥
—पुत्रवान् गृहीके लिये रविवार, संक्रान्तिमें भी पारण तथा उपवास वर्जित है ।

‡ स्नानके लिये गरम जलकी अपेक्षा शीतजल, दूसरेके जलसे अपना जल, भूमिसे निकाले हुएकी अपेक्षा भूमिमें स्थित जलाशय और उससे सरोवर, उससे गङ्गाका और गङ्गासे समुद्रका जल अधिक पुण्यप्रद होता है ।

चाहिये, अन्यथा नास्तिकतारूप कीचड़में फँसी गायकी भाँति दुर्गतिमें पड़ना पड़ता है।*

जन्मनक्षत्र अथवा अनिष्टफल देनेवाले नक्षत्रमें ग्रहण लगनेपर उसके दोषकी शान्तिके हेतु सूर्यग्रहणमें सोनेका और चन्द्रग्रहणमें चाँदीका बिम्ब तथा घोड़ा, गौ, भूमि, तिल एवं घीका यथाशक्ति दान देनेका महत्त्व शास्त्रोंमें प्रतिपादित है। भगवन्नाम-सङ्कीर्तन और जप आदि तो सभीको करना ही चाहिये।

'सूर्येन्दुग्रहणं यावत्तावत्कुर्याज्जपादिकम्'

वैदिक सूर्य तथा विज्ञान

(लेखक—श्रीपरिपूर्णानन्दजी वर्मा)

गायत्रीके 'सवितुर्वरेण्यम्' मन्त्रके ऋषिसे लेकर आजतक—जब भारतीय वैज्ञानिक मेघनाद शाहा, विदेशी वैज्ञानिक एडिंगटन, जीन्स, फाउलर, एडवर्ड आर्थर, मिलने या रसेलने भगवान् सूर्यके सम्बन्धमें बहुत छानबीन तथा खोज कर डाली है—वैदिक कालमें सूर्यकी सत्ता, गति तथा महत्ताके विषयमें जो सिद्धान्त प्रतिपादित कर दिये गये थे, उनमें न तो कोई मौलिक अन्तर पड़ा है और न कोई ऐसी बात कही गयी है जो यह सिद्ध कर सके कि भारतीय सूर्यके वैज्ञानिक रूपसे अपरिचित थे तथा उन्हें केवल एक दैविक शक्ति मानकर उनके विषयमें छानबीन करना अपराध या पाप समझते थे। भारतीय सभ्यताकी प्राचीन कालीन सबसे बड़ी विशिष्टता है—विचार-स्वातन्त्र्य तथा विचार-औदार्य। प्रत्येक महापुरुष तथा मनीषीको पूरी स्वच्छन्दता थी कि वह जगत्के गूढ़तम सत्यकी खोज अपने ढंगसे करे और उसे प्राप्त करनेका स्वतन्त्र प्रयास करे। उदाहरणके लिये कपिल तथा कणादको लें। कपिल बुद्धसे बहुत पहले तथा उपनिषदोंमेंसे कुछकी रचनाके पूर्व ऋषि हैं, इसमें सन्देह नहीं है। श्वेताश्वतरोपनिषद्के 'ऋषिं प्रसूतं कपिलं यस्तमग्रे'(५।२) से ही यह प्रकट है। पर कपिल वैदिक धारणाके विपरीत असंख्य आत्मा या पुरुष मानते थे। प्रकृति सब आत्माओंसे सम्बन्ध निबाहनेके लिये कार्यरत है। इसी प्रकार खेतोंमें गिरे अन्नको खाकर जीवननिर्वाह करनेवाले तपस्वी कणादके वैशेषिक दर्शनमें ईश्वरका उल्लेख नहीं है। इसलिये कुछ लोग उन्हें नास्तिक भी कहते हैं जो उचित नहीं है। पुनर्जन्म और कर्मफलको माननेवाला व्यक्ति नास्तिक कैसे हो सकता है? अतः कणादकी रचनाको छः आस्तिक-दर्शनोंमें माना गया है।

तात्पर्य यह है कि हिंदू या आर्य-धर्म सदासे वैज्ञानिक खोज तथा निरन्तर अनुसन्धानमें लगा रहा। किंतु वेदमें वर्णित प्रत्येक विषयकी जानकारी प्राप्त करनेके लिये बहुत समझ-बूझकी आवश्यकता पड़ती है। वैदिक प्रसङ्गोंमें शब्दोंके अर्थका उसके सामान्यतः प्रचलित अर्थसे निश्चय नहीं करना चाहिये, न किया जा सकता है। बादरायण व्यासने वेदान्तसूत्र (१।२।१०) में स्पष्ट लिख दिया है कि वैदिक शब्दोंका अर्थ सन्दर्भके अनुसार करना समुचित है—प्रकरणाच्च। सम्बद्ध प्रसङ्गका अनिवार्य ही स्पष्टीकरण कर सकता है, क्योंकि प्रसङ्गको जाननेपर ही वाक्योंका अन्वय ठीक-ठीक बैठता और तात्पर्य ज्ञान होता है—वाक्यान्वयात् (१।४।१९)। उदाहरणके लिये छान्दोग्य उपनिषद्में प्राण शब्दको

* तस्मादेतानि कर्तव्यं श्राद्धं वै राहुदर्शने। अकुर्वाणस्तु नास्तिक्यात्पङ्के गौरिव सीदति॥

(—महाभा० अनु० प० ७०)

लें। प्रश्न होता है—यह कौन-सा देव है? उत्तर है—प्राण (१।११।४)। प्राणका अर्थ यहाँ प्रश्न हुआ। वेदमें 'आकाश' केवल पञ्च महाभूत—(क्षिति, अप, तेज, वायु तथा आकाश) वाला ही एक महाभूत नहीं है। यह वेदान्तसूत्रके अनुसार (१।१।२२) ब्रह्मका (भी) वाचक है। अस्तु।

हमारे शास्त्रोंमें १२ आदित्योंका वर्णन है। आज विज्ञानने मान लिया है कि १२ सूर्योंका तो पता चला है, किन्तु बाकी कितने हैं, यह नहीं कहा जा सकता। यह भी सिद्ध है कि इन १२ आदित्योंमें जो हमसे सबसे निकट हैं, वे ये ही सूर्य हैं, जिन्हें हम देखते हैं। पर सभी आदित्योंमें ये सबसे छोटे हैं। जिन भगवान् सूर्यकी अनन्त महिमा है, वे स्यात् हमारी दृष्टिकी परिधिके बाहर हैं। आज विज्ञान भी कहता है कि ग्रहोंमें सूर्य सबसे बड़े और प्रकाशमान होते हुए भी वास्तवमें सबसे छोटे और धुँधले हैं। यही नहीं, ये अपने निकटतम तारेसे कम-से-कम ३,००,००० गुना अधिक दूर हैं। सत्रहवीं सदीमें जॉन केप्लरने यह हिसाब लगाया था। अति प्रकाशमान 'एरोस' (सूर) पृथ्वीसे १ करोड़ ४० लाख मील दूर है। पृथ्वीसे सूर्यकी दूरीका जो हिसाब प्राचीन भारतीय ग्रन्थोंसे लगता है, वे भी अब निर्धारित हो रहे हैं। पृथ्वीसे ९,२९,००,००० मील दूरीका अनुमान तो लग चुका है। इतने विशाल सूर्य कैसे बन गये, यह विज्ञान कहाँ अनुमान कर सका है। इनका व्यास लगभग ८,६४,००० मील है। अणु-परमाणुके इन महान् पुञ्जको निकटसे देखनेसे वास्तवमें वे एकदम साफ प्रकाशकी लहरोंसे नहीं, बल्कि प्रज्वलित देदीप्यमान चाकचक्य वर्णोंके समूह-से दीखते हैं। इनका अध्ययन अत्यन्त रोचक है।

इन्हीं सूर्यसे सृष्टिका पोषण होता है—यह हमारा शास्त्र कहता है। विज्ञान कहता है कि इनमें निहित ६६ तत्त्वोंका पता लग चुका है, जो पृथ्वीके लिये पोषक तथा जीवनदाता हैं, पर और कितने अनगिनत तत्त्व हैं तथा किस शक्तिने इनको एक ग्रहमें रख दिया है, इसका अनुमान भी नहीं लग पाता। यह विज्ञानका मत है कि जिन सूर्यसे हम प्रकाश पा रहे हैं, उनकी न्यूनतम केन्द्रीय उष्णता ६,००० डिग्रीकी अवश्य है। प्रतिक्षण ये सूर्य संसारको ३३७९×१० मान शक्ति दे रहे हैं। इनकी यह शक्ति प्रकाश तथा उष्णताके रूपमें प्राप्त हो रही है। यदि हम शक्तिका वजनमें कथन किया जाय तो सूर्यसे प्रतिक्षण प्रति सेकेण्ड चालीस लाख ४०,००,००० टन शक्ति झर रही है, जो हमारे ऊपर गिर रही है। इतनी शक्तिका क्षय होनेपर भी उनका शक्ति-कोष खाली नहीं हो रहा है और कैसे उतनी शक्ति बराबर बनती जा रही है—इसका उत्तर विज्ञानके पास नहीं है। विज्ञानके लिये यह 'अद्भुत रहस्य' है।

सूर्यका उपयोग

सूर्यका नाम द्वादशात्मा भी है, विवस्वान् तथा भग भी है। 'सूर्यः सरति' अर्थात् आकाशमें सूर्य खिसक रहा है, अतः आकाशके प्रलयका कारण होगा—यह भारतीय मान्यता है। आज विज्ञान भी कहता है कि १२ सूर्य धीरे-धीरे पृथ्वीके निकट आ रहे हैं और अधिक निकट आ गये तो प्रलय हो जायगी। आज विज्ञान सूर्यकी शक्तिका संकलन करके कोयला, पानी, ईंधन और बिजली—इन सबका काम उससे लेना चाहता है। नये नये यन्त्र इसलिये बनाये गये हैं कि सूर्यकी किरणोंसे प्राप्त शक्तिका संचय कर उससे काम लें। अमेरिकाकी 'टाइम' पत्रिकाके अनुसार इस समय ४०,००० अमेरिकन घरोंमें सूर्य शक्तिसे यन्त्रद्वारा प्रकाश प्राप्त करने, भोजन बनाने तथा मकानको गर्म रखनेका कार्य हो रहा है। इजरायलमें जितने मकान हैं, उनके पाँचवें अंशों यानी २०,००० मकानोंमें सूर्य-शक्ति ही काम दे रही है।

बीस लाख (२०,००,०००) मकानोंमें सूर्य शक्ति ही कार्य कर रही है। इसमें एक बड़ा छापाखाना केवल सूर्य शक्तिसे चलता है। वैज्ञानिकोंका अनुमान है कि यदि सूर्यकी शक्तिका ठीकसे संचय हो जाय तो आज संसारमें जितनी बिजली पैदा होती है, उसकी एक लाख (१,००,०००) गुना अधिक बिजली प्राप्त हो सकती है। आज हम भारतीय तो सूर्य-उपासना छोड़ते जा रहे हैं, पर पश्चिमीय जगत्‌ने (इस सदर्भमें) ३ मई, बुधवार १९७८ को सूर्य दिवस मनाया था। उस दिन अमेरिकन राष्ट्रपति कार्टरने सूर्यकी उपासना की थी। विश्व सूर्यकी महिमाको अधिकाधिक समझने लग गया है। भारतने अत्यन्त प्राचीन समयमें ही सूर्योपासना प्रारम्भ कर दी थी जो आज भी दैनन्दिन सन्ध्या-गायत्रीमें प्रचलित है।

हमने ऊपर लिखा है कि भारतमें सदैव चिन्तन तथा विचारकी स्वतन्त्रता रही है तथा यदि प्रचलित धार्मिक विश्वासके प्रतिकूल कोई बूँद निकलती थी तो लोगोंने उसको धैर्यपूर्वक सुना और आदर किया। आर्यभट्टने छठी सदीमें गणितमें सूर्यकी गति, १२ महीनेका वर्ष, प्रति तीसरे साल एक माह जोड़नेकी विधि निकाली थी, ग्रहण आदिका निरूपण किया था। उन्हीं दिनों यदि वे मध्य यूरोप आदिमें उत्पन्न हुए होते तो इस अनुसन्धान आविष्कारके पुरस्कारमें मार डाले जाते।

यूनानमें ईसासे ५३० से ४३० वर्ष पूर्वका काल बड़े वैज्ञानिक खोजका वर्ष समझा जाता है। यह काल कपिल, कणाद, बादरायण आदिके बादका है। पर यूनानमें जब अनाक्सगोरसने यह सिद्ध किया कि सूर्य तथा चन्द्रमाकी गतिका वैज्ञानिक आधार है तो यूनानी शासनने उन्हें 'अधार्मिक' करार प्राणदण्ड सुना दिया था। यह तो कहिये कि उनकी शासक पेरीक्लीजसे मित्रता थी, अतएव उन्होंने उसे राज्यसे भाग जानेमें सहायता दी, अन्यथा वह मृत्युके मुँहमें चला गया होता। ऐसी थी यूनानी धारणा!

भारतमें ऐसा कभी नहीं हुआ। अतएव आज भी सूर्य तथा चन्द्रमाके वैज्ञानिक अन्वेषणके प्रति हमको आदर तथा सहिष्णुताका भाव रखना पड़ेगा और तब हम किसी निष्कर्षपर पहुँचेंगे कि समीक्षा अधिक स्पष्ट हो गयी है, पर वैदिक सिद्धान्त सर्वोपरि है।

वैज्ञानिक सौरतथ्य

१-सूर्यका व्यास ८ ६०,००० मील है अर्थात् यह पृथ्वीसे लगभग ११० गुना बड़ा है।

२-सूर्यका भार भी पृथ्वीके भारसे लगभग ३,३३,००० गुना अधिक है। यदि समस्त सौरमण्डलके सूर्यका भार समस्त ग्रहोंके भारसे एक हजारगुना अधिक है। ग्रहोंके भारको सम्मिलित कर लिया जाय तो

३-सूर्यसे पृथ्वीकी दूरी ९ करोड़ ७० लाख मील है।

४-सूर्यके प्रतिवर्ग इंचपर २०,००,००,००,००० मनका दबाव है तथा इसका तापक्रम ४,००,००,००० अंश है।

५-सूर्यके केन्द्र भागका तापमान लगभग १६,००,००,००० सेंटीग्रेड है।

६-प्रकाश-किरणोंका वेग प्रतिसेकण्ड ३,००,००० किलोमीटर है।

७-सूर्यकी किरणोंको पृथ्वीतक पहुँचनेमें ८ मिनट १८ सेकण्ड समय लगता है।

८-एक वर्षमें प्रकाश ९४ ६३,००,००,००,००० किलोमीटरकी यात्रा करता है।

९-सूर्यसे आकाशगङ्गाके केन्द्रकी दूरी लगभग ३०,००० प्रकाश-वर्ष है।

१०-सूर्यको आकाशगङ्गाके केन्द्रकी एक परिक्रमा पूरी करनेमें लगनेवाला समय २५ करोड़ वर्ष है।

११-सूर्यकी आयु लगभग ६ अरब वर्ष है।

प्रेषक—श्रीजगन्नाथप्रसादजी, बी० काम०

सूर्य, सौरमण्डल, ब्रह्माण्ड तथा ब्रह्मकी मीमांसा

(लेखक—श्रीगोरखनाथसिंहजी, एम्० ए०, अंग्रेजी-दर्शन)

एक अंग्रेजी कहावतके अनुसार (Man does not live on bread alone) 'मनुष्य केवल रोटीसे ही जिंदा नहीं रहता है' उसे अपनी जिज्ञासाकी शान्तिके लिये कुछ और चाहिये। इसमें उसका सम्पूर्ण परिवेश—जीव, ब्रह्माण्ड तथा ब्रह्म सभी आते हैं। पुनश्च जीव और ब्रह्माण्डकी प्रवृत्तिमें पर्याप्त समानताएँ हैं। इस उद्देश्यसे भी यह मीमांसा समीचीन है। इसी तथ्यको हावर्ड विश्वविद्यालयके प्रसिद्ध प्रोफेसर एवं ज्योतिषी हार्लो शेपली (Harlow Shapley) ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'तारे और मनुष्य—बढ़ते हुए ब्रह्माण्डमें मानवीय प्रतिक्रिया' (Stars and Human—Response to an expanding universe) के तीसरे अध्यायमें निम्न प्रकारसे व्यक्त किया है—'मनुष्यके शरीरमें जितने तत्त्व हैं, वे सब-के-सब पृथ्वीकी ठोस पपड़ीमें या उसके ऊपर मौजूद हैं। यदि सबका नहीं तो उनमेंसे अधिकांश ने अस्तित्वका तारोंके उत्तप्त वातावरणोंमें भी परिचय दिया है। जन्तुओंके शरीरोंमें किसी प्रकारके भी ऐसे परमाणु नहीं मिले हैं, जिनकी उपस्थिति अजीव-परिवेशमें सुपरिचित न हो। स्पष्ट है कि मनुष्य भी तारोंके साधारण द्रव्यसे ही बना है और उसे इस बातका गर्व होना चाहिये।

इस बातमें जन्तु और पौधे तारोंसे बढ़कर हैं। अणुओं तथा आणविक संगठनोंकी जटिलतामें जीवित प्राणी, अजीव-जगत्के पारमाणविक संयोजनोंसे बहुत आगे बढ़ गये हैं। कटरपिलरकी रचना कार्बनिक-रसायन सम्बन्धी रचनाकी तुलनामें सूर्यके प्रज्वलित वातावरण तथा अन्तरङ्गकी रासायनिक संरचना बहुत ही सरल पायी गयी है। यही कारण है कि हम कीटडिम्भ (Insect Larvae)की अपेक्षा तारोंका रहस्य अधिक समझ सके हैं। तारोंकी प्रक्रियाएँ गुरुत्वाकर्षण, गैसों तथा विकिरणके नियमोंके अनुसार होती हैं। अतः उनपर दबाव, घनत्व एवं तापमानका प्रभाव पड़ता है, किंतु प्राणियोंके शरीर गैसों, द्रवों तथा ठोस पदार्थोंके निराशाजनक मिश्रण हैं—निराशाजनक इस अर्थमें कि उनके लिये हम कोई परिपूर्ण गणितीय तथा भौतिक-रासायनिक सूत्र प्राप्त करनेमें सफल नहीं हो सके हैं। जीवरसायन विज्ञानी (Bio-chemists) को जिन कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है, उनको देखते हुए ताराभौतिकज्ञ (Astro physicist) का काम बहुत ही सरल है।'

यह आकाश तारों, ग्रहों, उपग्रहों, उल्काओं तथा धूमकेतुओंसे परिपूर्ण है। तारे स्वयं प्रकाशमान होते हैं। सूर्य* भी विभिन्न गैसोंसे युक्त एक प्रकारका तारा है। इसमें पृथ्वी जैसे बारह लाख गोले समा सकते हैं। इसकी दूरी पृथ्वीसे लगभग १५ करोड़ किलोमीटर है। यह पृथ्वीके निकटका सबसे बड़ा तारा है, इसलिये इतना विशाल दिखायी पड़ता है।

आकाशमें उन पिण्डोंको सौरमण्डल कहा जाता है, जिनका सम्बन्ध सूर्यसे है। ये सूर्यके चारों ओर परिक्रमा करते हैं। इन्हें ग्रह कहा जाता है। इनमेंसे पृथ्वी भी एक ग्रह है। इसके अतिरिक्त आठ अन्य ग्रह भी हैं। ये सब अपनी अपनी कक्षामें सूर्यके चारों ओर चक्कर लगाते हैं। सूर्यके चारों ओर चक्कर लगानेके साथ ये ग्रह पृथ्वीकी भाँति अपनी धुरीपर भी चक्कर लगाते हैं। सूर्य भी अपनी धुरीपर घूमता है। इस सौरमण्डलमें ३० उपग्रह भी हैं। उपग्रह हमारी धरती-जैसे ग्रहोंके चारों ओर घूमते हैं। इसके अतिरिक्त १५०० सूक्ष्मपिण्ड भी सौर

* वैज्ञानिक भौतिक ज्योति पिण्डका ही विश्लेषण करते हैं। उनकी शैली परम्परागत मान्यताके लिये एकवचनका प्रयोग मान्य है। हमने उसे उसी रूपमें रहने दिया है। (आधिदैविकरूपके पूज्य होनेसे आदरार्थक बहुवचन प्रयोग होता है।) [—सं०]

परिवारमें हैं। उल्लेखनीय है कि मनुष्यद्वारा निर्मित उपग्रह भी अनेक हैं। इस प्रकारका उपग्रह सर्वप्रथम १९५७ ई०में बना। ये उपग्रह कुछ घण्टोंमें ही पृथ्वीका एक चक्कर लगा लेते हैं।

चन्द्रमा पृथ्वीका उपग्रह है। यह २९ दिनोंमें पृथ्वीका एक चक्कर लगाता है। यह पृथ्वीसे ४ लाख किलोमीटर दूर है। मनुष्य चन्द्रमापर १९६० ई०में सबसे पहली बार उतरा। फलतः अनेक भ्रान्तियोंका निवारण हुआ। सूर्यके पासका ग्रह बुध है। इसके बाद क्रमसे शुक्र, पृथ्वी, मङ्गल, बृहस्पति, शनि, यूरेनस, नेपच्यून तथा प्लूटो हैं। ये अपनी कक्षाओंमें होकर सूर्यके चतुर्दिक् चक्कर लगाते हैं।

जिस प्रकार पृथ्वी अपनी कीलीपर २४ घंटेमें एक बार परिक्रमा करती है और उसके फलस्वरूप प्रात, दोपहर, साय, रात और दिन होते हैं, उसी प्रकार पृथ्वी सूर्यकी परिक्रमा एक वर्ष (३६५ दिन)में करती है। इसीसे जाड़ा, गरमी और बरसात होती है।

सूर्यसे हमें उष्मा और प्रकाश दोनों प्राप्त होते है। यही उष्मा ऊर्जा (Energy)का स्रोत है। ऊर्जाका उपयोग भापके इंजिनोंके चलानेमें भी होता है। यह महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि सूर्यसे मिलनेवाली ऊर्जासे ही लकड़ी, कोयला और पट्रोल आदि बनते हैं। सूर्यकी उष्मा ही समुद्रके जलको भाप बनाकर बादलके रूपमें पहाड़ोंपर पहुँचाती है। वही भाप पहाड़ोंपर बर्फके रूपमें मिलती है। कालान्तरमें यही बर्फ पिघलकर नदियोंमें बहती है, जिससे हमें विद्युत् बनाने के लिये 'ऊर्जा' मिलती है। हवा, आँधी एव तूफान भी सूर्यकी उष्मासे ऊर्जा प्राप्त करते हैं। पृथ्वीपर जिन स्रोतोंसे भी हमें ऊर्जा मिलती है, वे सब सूर्यसे ही ऊर्जा प्राप्त करते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि इस पृथ्वीपर ऊर्जाका असली स्रोत यह सूर्य है, जिसके अभावमें इस पृथ्वीपर किसी जीवकी कल्पना करना असम्भव है। इसी बातको डाक्टर निहालकरण सेठी भी अपनी पुस्तक 'ताराभौतिकी'में इस प्रकार दुहराते हैं—'सूर्यसे तो हमें गर्मी भी बहुत मिलती है। हमारे दिन-रात, हमारी ऋतुएँ, हमारे पेड़ पौधे तथा कृषि—वस्तुतः हमारा समस्त जीवन सूर्यकी उष्मापर ही आधारित है।'

सूर्यकी बनावट—सूर्यके सर्वग्रहणको देखकर वैज्ञानिकोंको उसके अदरकी बनावटके बारेमें पर्याप्त पता चल गया है। अब वे उसे छः भागोंमें विभाजित करते हैं। यथा (१) प्रकाश-मण्डल, (२) सूर्य-कलङ्क, (३) सूर्यकी जटाएँ, (४) पल्टाऊ तह, (५) सूर्यगुल्म, (६) हाइड्रोजन अथवा कलिशयम गैस।

(१) प्रकाश-मण्डल—सूर्यका वह भाग है, जो हमको रोज दिखायी पड़ता है तथा जिसे हम प्रकाश-मण्डल कहते हैं। यह बहुत गर्म है।

(२) सूर्य-कलङ्क—चन्द्रमाकी भाँति सूर्यपर भी काले धब्बे हैं। ये कभी छोटे, कभी बड़े, कभी कम और कभी बहुत-से दिखायी देते हैं। इन्हें 'सूर्य-कलङ्क' कहा जाता है। सूर्य-कलङ्क सदा एक ही जगहपर नहीं रहते हैं, क्योंकि धरतीके समान सूर्य भी अपनी धुरीपर नाचता है। यह अपनी धुरीपर चौबीससे बत्तीस दिनोंमें एक चक्कर पूरा कर लेता है।

(३) सूर्यकी जटाएँ—जब सम्पूर्ण ग्रहण लगता है तो सूर्यके काले गोलेके चारों ओर जलती गैसोंकी लम्बी-लम्बी ज्वालाएँ निकलती हुई दिखायी पड़ती हैं। ये जटाएँ लाखों मील लम्बी होती हैं। ये प्रकाश-मण्डलसे भी अधिक गरम हैं तथा इसकी तह करीब १,००० मील मोटी है।

(४) पल्टाऊ तह—प्रकाश-मण्डलके ऊपर उससे कुछ कम गर्म गैसोंकी तहको 'पल्टाऊ तह' कहते हैं।

इस तहमें वे सभी तत्त्व हैं, जो धरतीपर पाये जाते हैं। परंतु भयानक गर्मीके कारण ये पदार्थ अपनी असली हालतमें वहाँ नहीं रह सकते। इसमें हीलियम नामकी एक गैस भी पायी जाती है।

(५) सूर्य मुकुट—सूर्यके गोलेके बाहर सूर्यका मुकुट है। इसका आकार सदा एक-सा नहीं रहता है। यह सूर्यके प्रकाश-मण्डलसे बीस-पचीस लाख मील ऊपरतक फैला है। यह गैसका एक बहुत ही पतली झीनी तह है। सूर्यकी जटाएँ सूर्य-मुकुटके बाहर फैली हैं।

(६) हाइड्रोजन गैस—सूर्यमें हाइड्रोजन गैस बादलके रूपमें धब्बोंके पास चक्कर काटती हुई जान पड़ती है। इसके अतिरिक्त सूर्यपर कल्शियमके बादल भी हैं। ये बड़े ही सुन्दर जान पड़ते हैं।

पृथ्वीसे सूर्यकी दूरी—पृथ्वीसे सूर्यकी दूरी ९,२८,७०,००० मील है। यह दूरी इतनी है कि सूर्यके प्रकाशको, जो १,८६,००० मील प्रति सेकंडके वेगसे चलता है, पृथ्वीतक पहुँचनेमें लगभग ८ मि० १८ से० का समय लग जाता है।

सूर्यका व्यास—इसका व्यास ८,६४,००० मील है। यह संख्या पृथ्वीके व्याससे १०० गुनीसे भी अधिक है।

सूर्यका भ्रमण—सूर्य पृथ्वीकी तरह अपने अक्षपर घूमते हैं। ये चार सप्ताहमें एक चक्कर लगाते हैं। वैज्ञानिकोंके अनुसार सूर्यकी रचना 'ठोस' नहीं है, बल्कि 'गैसीय' है। यह अनेक प्रकारकी गैसोंसे निर्मित है, जो इसकी अनन्त उष्मा और ऊर्जाके कारण हैं और ये ही इस पृथ्वीके समस्त ऊर्जा-स्रोत हैं।

ब्रह्माण्डकी परिभाषा तथा उसका स्वरूप—आकाश, सूर्य, चन्द्रमा, तारे, ग्रह तथा अन्य अनेक अगणित पिंड जिनसे भिन्न हैं, उसे ब्रह्माण्ड (Universe) कहते हैं। यह शब्द 'विश्व' तथा 'जगत्'का पर्याय है। प्रारम्भमें गैलेक्सी (Galaxy) शब्द 'मिल्की-वे' (Milky-way) का पर्याय था। इसका अर्थ था 'दूधियामार्ग'। भारतमें इसे 'आकाशगङ्गा' अथवा 'मन्दाकिनी' कहते हैं। इसमें असंख्य तारे हैं। हमारा सूर्य भी उन्हींमेंसे एक तारा है। जितने तारे आँखोंसे अथवा दूरबीनसे दिखायी पड़ते हैं, वे सब आकाशगङ्गाके ही सदस्य हैं। यही हमारा विश्व है। इसका विस्तार बहुत बड़ा किंतु परिमित है।

आकाशमें कुछ ऐसी वस्तुएँ भी हैं, जो तारोंके समान बिन्दुसदृश नहीं हैं, किंतु बादलके टुकड़ेके समान दिखायी देती हैं। इन्हें 'नीहारिका' (Nebula) कहते हैं। इनमेंसे कुछ आकाशगङ्गाके सदृश हैं तथा उसीके अन्तर्गत आती हैं। परंतु करोड़ों नीहारिकाएँ हमारी आकाशगङ्गासे (हमारे विश्वसे) बिल्कुल बाहर और बहुत ही अधिक दूरीपर स्थित हैं। इन्हें 'अगाङ्ग नीहारिकाएँ' (Extra Galetic Nebulae) कहा जाता है।

ये 'अगाङ्ग नीहारिकाएँ' हमारी आकाशगङ्गाकी तरह असंख्य तारोंके समूह हैं। इन अगाङ्ग नीहारिकाओंके समूह भी हमारे विश्वकी तरह दूसरे विश्व हैं। इस प्रकारसे इस ब्रह्माण्डमें कई करोड़ विश्व हैं। अब 'विश्व' शब्द अपने प्राचीन अर्थमें न तो हमारी 'आकाशगङ्गा'के लिये उपयुक्त है और न 'अगाङ्ग नीहारिकाओं'के लिये ही। इन्हें अब 'उपविश्व' (Sub-Universes) अथवा द्वीपविश्व (Islands universes) कहने लगे हैं, तथापि 'विश्व' शब्द अब भी इनके लिये प्रचलित है और 'विश्व' द्वारा इन करोड़ों द्वीपविश्वोंके अखिल समुदायको भी व्यक्त किया जाता है, जो सर्वथा भ्रामक है। अतः इसके स्थानपर 'ब्रह्माण्ड' शब्दका प्रयोग करना अधिक समीचीन होगा। ब्रह्माण्ड अनन्त है।

ब्रह्माण्डकी उत्पत्तिके सिद्धान्त—ब्रह्माण्डकी उत्पत्तिके सिद्धान्त उपस्थापित—विश्वविख्यात भौतिकशास्त्री आइंस्टीन (Albert Einstein) के सापेक्षतावादके सिद्धान्त

(Theory of Relativity) पर आधारित हैं। इन सिद्धान्तोंमें दो प्रमुख हैं—(१) विस्तारशील सिद्धान्त तथा (२) सन्तुलित ब्रह्माण्डका सिद्धान्त। प्रथमके अनुसार ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति शक्तिके एक विशाल गोलेके भेग् विस्फोटके फलस्वरूप हुई और उस विस्फोटसे उत्पन्न मन्दाकिनियाँ अब भी घूम रही हैं। गणितज्ञोंने यहाँतक हिसाब लगाया है कि यह विस्फोट ५० लाखसे ८० लाख साल पहलेके बीचमें हुआ। इस मतके वैज्ञानिकोंका कथन है कि वर्तमान स्थिति बार-बार घटित होनेवाली प्रक्रियाकी ही एक मंजिल है। कोई एक समय ऐसा आयेगा, जब यह प्रक्रिया उलट जायगी, या विश्वका प्रलय हो जायगा और ब्रह्माण्ड सिकुड़कर फिर एक विशाल गोला बन जायगा। तत्पश्चात् पुनः विस्फोट होगा—सृष्टिकी शुरुआत होगी।

सन्तुलित ब्रह्माण्डके सिद्धान्तके अनुसार—ब्रह्माण्डकी न तो कोई शुरुआत है और न कोई अन्त। इसमें द्रव्यका विभाजन सदासे रहा है और आगे भी रहेगा। जैसे-जैसे मन्दाकिनियाँ खिसकती जाती हैं, वैसे-वैसे नयी मन्दाकिनियोंके निर्माणके लिये आवश्यक द्रव्य इस गतिसे पैदा होता जाता है कि वर्तमान मन्दाकिनियोंकी कमी पूरी हो सके। लेकिन वर्तमान मन्दाकिनियाँ कहाँ जायँगी? चूँकि ये ज्यादा-से-ज्यादा गतिके साथ एक दूसरेसे अलग हटती जा रही हैं और इससे इनकी गति और भी बढ़ती जा रही है, इसलिये अन्तमें जाकर इनकी रफ्तार प्रकाशकी गतिके बराबर हो जायगी। वर्तमान सिद्धान्तोंके अनुसार पदार्थ या द्रव्य इतनी द्रुतगति नहीं प्राप्त कर सकता है। तो क्या ये मन्दाकिनियाँ गायब हो जायँगी? इसका निश्चित उत्तर अभी विज्ञानके पास नहीं है।

ब्रह्माण्ड तथा ब्रह्मकी मीमांसा—अन्तिम प्रश्न है ब्रह्माण्ड और ब्रह्मकी मीमांसाका। इस सम्बन्धमें भी हार्लो शेपली महोदयने पुस्तकके प्रथम अध्यायमें निम्नवत् विवेचन किया है। उनका प्रश्न है—'यह ब्रह्माण्ड क्या है?' इसके उत्तरमें उनका कहना है—'ब्रह्माण्ड रचनाके सम्बन्धमें विचार और अनुसंधानमें व्यस्त वैज्ञानिक और वे थोड़ेसे दार्शनिक जिनके अध्ययनमें ब्रह्माण्डविज्ञान (Cosmology) भी समाविष्ट है, शीघ्र ही इस परिणामपर पहुँचते हैं कि यह भौतिक जगत् जिन मूलभूत सत्ताओं-(Entities)-के संयोगसे बना है या जिनके द्वारा हमें उसका ज्ञान प्राप्त होता है और जिनकी सहायतासे हम उसका पर्याप्त स्पष्टतासे वर्णन कर सकते हैं, उनकी संख्या चार है। हम इन्हें आसानीसे पहचान सकते हैं, इनका नामकरण कर सकते हैं और किसी हदतक इन्हें एक-दूसरेसे पृथक् भी कर सकते हैं। सम्भव है कि निकट भविष्यमें यह संख्या चारसे अधिक हो जाय। अतः सुगमताके लिये हम भौतिक विज्ञानके जडजगत्को और शायद समस्त जीवजगत्को भी इन्हीं चार सत्ताओंके ढाँचेमें निविष्ट करनेके लोभका संवरण नहीं कर सकते। ये चार सत्ताएँ निम्न हैं—(१) आकाश(space)(२)काल (Time)(३)द्रव्य (Matter) और (४) ऊर्जा (Energy)। इनके अतिरिक्त अनेक उपसत्ताओंसे भी हम परिचित हैं, यथा गति, वर्ण, धातन क्रिया (Metabolism), एण्ट्रापी (Antropy), सृष्टि आदि।

किंतु प्रश्न यह उठता है कि यद्यपि अभीतक इन सत्ताओंका अस्तित्व सर्वमान्य नहीं हुआ है और न ये एक दूसरेसे पृथक् ही की जा सकती हैं, तो क्या इनसे अधिक महत्त्वपूर्ण सत्ताएँ हैं ही नहीं? विशेषतः क्या इन चारके अतिरिक्त भौतिक जगत्का एक ऐसा भी गुण और है जो इस ब्रह्माण्डके अस्तित्व तथा प्रवर्तनके लिये अनिवार्यतः आवश्यक हो? इस प्रश्नको दूसरे रूपमें यों पूछा जा सकता है—यदि आपको ये चारों मूल सत्ताएँ दे दी जायँ, आपको पूरा अधिकार और सुविधाएँ प्राप्त हो जायँ एवं आपके मनमें इच्छा भी

हो तो क्या आप आकाश, काल, द्रव्य और ऊर्जाके द्वारा इस जगत्के समान ही दूसरे जगत्का निर्माण कर सकते हैं ? या आपको किसी पाँचवीं सत्ता, मूलगुण या क्रियाकी आवश्यकता पड़ जायगी ?

शायद ऐसा सम्भव हो सकता है कि हम इस पाँचवीं सत्तापर अधिक जोर दे रहे हैं, किन्तु आगे चलकर इस रहस्यमय पाँचवीं सत्ताका अनेक बार जिक्र करना पड़ेगा। उसका अस्तित्व है, इसमें शङ्का करना कठिन है। तब क्या वह कोई प्रधान सत्ता है ?—शायद आकाश और द्रव्यसे भी अधिक आधारभूत है, सम्भवतः उसमें ये दोनों ही समाविष्ट हैं। क्या वह उपर्युक्त चारों सत्ताओंसे सर्वथा भिन्न है ? क्या उसके बिना काम नहीं चल सकता है ? क्या वह ऐसी सत्ता है, जिसके ही कारण तारों, पेड़-पौधों और जीव-जन्तुओंसे भरे हुए तथा प्राकृतिक नियमोंसे नियमित इस जगत्का कार्य यथाक्रम चल रहा है ? क्या इसकी अनुपस्थितिमें इस संसारकी समस्त क्रियाएँ अव्यवस्थित हो जायँगी ?

सम्भवतः इस सम्बन्धमें कुछ पाठकोंका ध्यान 'ईश्वर'के नाम और उसके द्वारा व्यक्त धारणाकी ओर अवश्य किया जाय। सम्भवतः इस संसारमें कुछ ऐसे प्रत्यक्ष प्रमाण अवश्य विद्यमान हैं, जिनको प्रेरणा देनेवाली कोई स्वतन्त्र विश्वशक्ति है, जिसे हम निर्देशन, निरूपण, सञ्चालन, सर्वशक्तिमान्‌की इच्छा अथवा चेतना कह सकते हैं। किन्तु यदि इस सञ्चालन अथवा चेतनाका अस्तित्व हो भी तो उसे विश्वव्यापी होना चाहिये। (इसे हम ब्रह्म अथवा ईश्वरकी संज्ञा दे सकते हैं, जिस ब्रह्मकी इच्छासे ही सृष्टिप्रक्रिया चलती है।)

ब्रह्माण्डके सम्बन्धमें निम्न तीन प्रश्न हो सकते हैं।

१ इसका स्वरूप क्या है ? २ इसकी क्रियाएँ कैसे घटित होती हैं ? ३ इसका अस्तित्व क्यों है ?

पहले प्रश्नका प्रारम्भिक तथा स्थूल उत्तर हम दे सकते हैं और इस सांख्यिक किन्तु आंशिक उत्तरमें हम जड़ द्रव्य, गुरुत्वाकर्षण, काल, प्रोटोप्लाज्म आदिके सम्बन्धमें कुछ अस्पष्ट बातें कह सकते हैं। दूसरेके उत्तरमें हम प्राकृतिक नियमोंका, उष्माके लोप हो जानेका तथा नक्षत्रिकाओंके निरन्तर दूरगामी पलायनका उल्लेख कर सकते हैं। किन्तु इसका अस्तित्व क्यों है ? इस प्रश्नके उत्तरमें शायद हमें यही कहना पड़े कि 'ईश्वर ही जाने'। यह ईश्वर सब कारणोंके कारणके रूपमें निरूपित किया जा सकता है और वास्तवमें यही इसका असली कारण भी है। वस्तुतः यही ब्रह्म है।

विज्ञान दर्शन—समन्वय

उपर्युक्त वैज्ञानिक दृष्टि-विमर्शका निष्कर्ष है कि विश्व-ब्रह्माण्डकी सञ्चालिका कोई विशिष्ट शक्ति है। भारतीय मनीषियोंने अचिन्त्य सद्‌रूपी ब्रह्मकी सैद्धान्तिक प्रतिष्ठा कर निश्चयात्मकरूपसे कह दिया है कि वही यह विशिष्ट शक्ति है—'एतद्वै तत्।' वस्तुतः उसी ब्रह्मका—उस ब्रह्मकी इच्छाशक्तिका-विलास यह विश्व है जो अनन्त ब्रह्माण्डोंमें व्याप्त हुआ है। यह ब्रह्म यद्यपि सर्वत्र परिव्याप्त है, फिर भी गूढ़ होनेसे सूक्ष्मदर्शियोंके द्वारा ही और उनकी भी सूक्ष्म बुद्धिसे ही उसे समझा जा सकता है। (क० उ० १। १२) इसी ज्ञान-दिशामें अग्रसर वैज्ञानिकोंकी विमर्शना किसी विशिष्ट शक्तिका स्पर्श कर रही है। प्राच्यदर्शन और पाश्चात्य विज्ञानकी यह समन्वय-दिशा अद्भुत और स्पृहणीय है। ××××× सृष्टि-क्रममें सृष्टिके सब जीव और निर्जीव स्थूल पदार्थ जिस क्रमसे उत्पन्न होते हैं, ठीक विपरीत क्रमसे उनका लय प्रलयमें सूक्ष्म प्रकृतिमें और प्रकृतिका मूल ब्रह्ममें हो जाता है। सृष्टि और संहारका यह क्रम शाश्वत है। ब्रह्मके अव्यक्त (सूक्ष्म) प्रकृतिमें लय होनेको सूर्योपनिषद्‌ने इसी रूपमें दर्शाते हुए दिशा-निर्देश किया है—

अव्यक्त आदि प्रतीक सूर्यका सूर्योपनिषद्‌ इसी रूपमें दर्शाते हुए दिशा-निर्देश किया है—

सूर्याद् भवन्ति भूतानि सूर्येण पालितानि तु। सूर्ये लयं प्राप्नुवन्ति यः सूर्यः सोऽहमेव च॥

पुराणोंमे सूर्यसम्बन्धी कथा

(लेखक—श्रीतारिणीशजी झा)

पुराणोंमें सूर्यकी कथाएँ अनन्त हैं। इसका कारण यह है कि सूर्य प्रत्यक्ष देवता और जगच्चक्षु हैं। इनके बिना संसारकी स्थितिकी कल्पना ही नहीं की जा सकती। इसलिये हिंदुओंकी पञ्चदेवोपासनामें प्रथम स्थान इन्हींको प्राप्त है। वैदिक कर्मकलापके प्रारम्भमें पञ्चदेवताकी पूजा आवश्यक मानी गयी है, जिसमें पञ्चदेवताके आवाहनके लिये—'सूर्यादिपञ्चदेवता इहागच्छत इह तिष्ठत'—पढ़ा जाता है। इससे भगवान् भुवन-भास्करकी प्रमुखता स्वयं सिद्ध है।

ऐसे प्रत्यक्ष देवकी कथा न केवल पुराणोंमें अपितु वेद-वेदाङ्गादि शास्त्रोंमें भूरिशः वर्णित है। किंतु यहाँ हमें पुराणोक्त सूर्य-कथापर ही थोड़ा प्रकाश डालना है। मार्कण्डेयपुराणके अनुसार विस्पष्ट, परमा विद्या, ज्योतिष्मा, शाश्वती, स्फुटा, कैवल्या, ज्ञान, आविर्भू, प्राकाम्य, संवित्, बोध, अवगति इत्यादि सूर्यकी मूर्तियाँ हैं। 'भूः भुवः स्वः'—ये तीन व्याहृतियाँ ही सूर्यका स्वरूप हैं। ॐसे सर्वप्रथम सूक्ष्मरूप आविर्भूत हुआ। पश्चात् उससे—'महः, जनः, तपः, सत्यम्' आदि भेदसे यथाक्रम स्थूल और स्थूलतर सप्तमूर्तिका आविर्भाव हुआ। इन सबका आविर्भाव और तिरोभाव हुआ करते हैं। ॐ ही उनका सूक्ष्म रूप है। उस परम रूपका कोई आकार प्रकार नहीं है। वही साक्षात् परब्रह्म है। इस प्रकार मार्कण्डेयपुराण सूर्यको अव्याकृत ब्रह्मका मर्तरूप निरूपित करके आगे उनकी उत्पत्ति विवरण भी प्रस्तुत करता है, जो यह है—

अदितिने देवताओंको दितिने दैत्योंको और दनुने दानवोंको जन्म दिया। दिति और अदितिके पुत्र सम्पूर्ण जगत्में व्याप्त हो गये। अनन्तर दिति और दनुके पुत्रोंने मिलकर देवताओंके साथ युद्ध आरम्भ कर दिया। इस युद्धमें देवता पराजित हुए। तब अदितिदेवी सन्तानकी मङ्गलकामनासे भगवान् सूर्यकी आराधनामें लग गयीं। भगवान्ने उनकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर कहा—'मैं आपके गर्भसे सहस्रांशसे जन्म लेकर शत्रुओंको विनष्ट करूँगा।' अनन्तर अदितिके तपस्यासे निवृत्त होनेपर सूर्यकी 'सौषुम्न' नामक किरण उनके उदरमें प्रविष्ट हो गयी। देवजननी अदिति भी समाहित होकर कृच्छ्र चान्द्रायणव्रत आदिका अनुष्ठान करने लगीं। किंतु उनके पति कश्यपजीको उनके द्वारा अनुष्ठान करना पसंद नहीं आया। इसलिये एक दिन उन्होंने अदितिसे कहा—'तुम प्रतिदिन उपवास आदि करके क्या इस गर्भाण्डको मार डालोगी?' इसपर अदितिने कहा—'मैं इसे मारूँगी नहीं। यह स्वयं शत्रुओंकी मृत्युका कारण बनेगा।'

अदितिने यह बात कहकर उसी समय गर्भाण्डको त्याग दिया। गर्भाण्ड तेजसे जलने लगा। कश्यपने उदीयमान भास्करके समान प्रभाविशिष्ट उस गर्भको देखकर प्रणाम किया। पश्चात् सूर्यने पद्मरागसप्रतिभ कलेवरमें उस गर्भाण्डसे प्रकट होकर अपने तेजसे दिशा मुखको परिव्याप्त कर दिया। उसी समय आकाशवाणी हुई—'हे मुने! इस अण्डको 'मारितं' अर्थात् मार डालनेकी बात तुमने कही है, इसलिये इसका नाम 'मार्तण्ड' होगा। यह पुत्र जगत्में सूर्यका कर्म और यज्ञभागहारी असुरोंका विनाश करेगा।'

अनन्तर प्रजापति विश्वकर्मा सूर्यके पास गये और अपनी संज्ञा नामकी कन्याको उनके हाथमें सौंप दिया। संज्ञाके गर्भसे तीन सन्तानें उत्पन्न हुईं—यमुना नामकी एक कन्या और वैवस्वत मनु तथा यम नामके दो पुत्र। किंतु संज्ञाको सूर्यका तेज असह्य लगता था, इसलिये

हो तो क्या आप आकाश, काल, द्रव्य और ऊर्जाके द्वारा इस जगत्‌के समान ही दूसरे जगत्‌का निर्माण कर सकते हैं? या आपको किसी पाँचवीं सत्ता, मूलगुण या क्रियाकी आवश्यकता पड़ जायगी?

शायद ऐसा सम्भव हो सकता है कि हम इस पाँचवीं सत्तापर अधिक जोर दे रहे हैं, किंतु आगे चलकर इस रहस्यमय पाँचवीं सत्ताका अनेक बार जिक्र करना पड़ेगा। उसका अस्तित्व है, इसमें शङ्का करना कठिन है। तब क्या यह कोई प्रधान सत्ता है?—शायद आकाश और द्रव्यसे भी अधिक आधारभूत है, सम्भवतः उसमें ये दोनों ही समाविष्ट हैं। क्या यह उपर्युक्त चारों सत्ताओंसे सर्वथा भिन्न है? क्या उसके बिना काम नहीं चल सकता है? क्या यह ऐसी सत्ता है, जिसके ही कारण तारों, पेड़-पौधों और जीव-जन्तुओंसे भरे हुए तथा प्राकृतिक नियमोंसे नियमित इस जगत्‌का कार्य यथाक्रम चल रहा है? क्या इसकी अनुपस्थितिमें इस संसारकी समस्त क्रियाएँ अव्यवस्थित हो जायँगी?

सम्भवतः इस सम्बन्धमें कुछ पाठकोंका ध्यान 'ईश्वर' नाम और उसके द्वारा व्यक्त धारणाकी ओर अवश्य किया जाय। सम्भवतः इस संसारमें कुछ ऐसे प्रच्छन्न लक्षण अवश्य विद्यमान हैं, जिनको प्रेरणा देनेवाली कोई स्वतन्त्र विश्वशक्ति है, जिसे हम निर्देशन, नियमन, संचालन, सर्वशक्तिमान्‌की इच्छा अथवा चेतना कह सकते हैं। किन्तु यदि इस भगवान् अथवा चेतनाका अस्तित्व हो भी तो उसे विश्वव्यापी होना चाहिये। (इसे हम ब्रह्म अथवा ईश्वरका नाम दे सकते हैं, जिस ब्रह्मकी इच्छासे ही सृष्टिप्रक्रिया चलती है।)

ब्रह्माण्डके सम्बन्धमें निम्न तीन प्रश्न हो सकते हैं। १ इसका स्वरूप क्या है? २ इसकी क्रियाएँ कैसे घटित होती हैं? ३ इसका अस्तित्व क्यों है?

पहले प्रश्नका प्रारम्भिक तथा स्थूल उत्तर हम दे सकते हैं और इस मार्मिक किन्तु अनिश्चित उत्तरमें हम जड़ द्रव्य, गुरुत्वाकर्षण, काल, प्रोटोप्लाज्म आदिके सम्बन्धमें कुछ अस्पष्ट बातें कह सकते हैं। दूसरेके उत्तरमें हम प्राकृतिक नियमोंका, उष्माके लोप हो जानेका तथा नीहारिकाओंके निरन्तर दूरगामी पलायनका उल्लेख कर सकते हैं। किन्तु इसका अस्तित्व क्यों है? इस प्रश्नके उत्तरमें शायद हमें यही कहना पड़े कि 'ईश्वर ही जाने'। यह ईश्वर सब कारणोंके कारणके रूपमें निरूपित किया जा सकता है और वास्तवमें यही इसका असली कारण भी है। वस्तुतः यही ब्रह्म है।

विज्ञान-दर्शन—समन्वय

उद्भवतम वैज्ञानिक द्वारा चिन्तनका निष्कर्ष है कि विश्व ब्रह्माण्डकी समष्टिका कोई विशिष्ट नियन्ता है। प्राच्य मनीषियोंने अचिन्त्य सद्रूपी ब्रह्मकी सैद्धान्तिक प्रतिष्ठा कर निश्चयात्मकरूपसे कह दिया है कि वही वह विशिष्ट शक्ति है—'एतद्वै तत्।' वस्तुतः उसी ब्रह्मका—उस ब्रह्मकी इच्छाशक्तिका-विस्तार यह विश्व है जो अनन्त ब्रह्माण्डोंमें व्यक्त हुआ है। वह ब्रह्म यद्यपि सर्वत्र परिव्याप्त है, फिर भी गूढ होनेसे सूक्ष्मदर्शियोंके द्वारा ही और उनकी भी सूक्ष्म बुद्धिसे ही देखा जा सकता है। (क० उ० ३।१२) उसी दर्शन-दिशामें अग्रसर वैज्ञानिकोंकी चिन्तना किसी विशिष्ट शक्तिका स्पर्श कर रही है। प्राच्यदर्शन और पाश्चात्य विज्ञानकी यह समन्वय-दिशा अद्भुत और स्पृहणीय है। xxxxx सद्रूपी परमात्मासे पृथिवी तक सब जीव और निर्जीव स्थूल पदार्थ जिस क्रमसे उत्पन्न होते हैं, उसके ठीक विपरीत क्रमसे उनका लय अव्यक्त (सूक्ष्म) प्रकृतिमें और प्रकृतिका मूल ब्रह्ममें हो जाता है। सृष्टि और प्रलयका यह क्रम शाश्वत है। ब्रह्मके अव्याकृत आदि प्रतीक सूर्यका सूर्योपनिषद्‌ने इसी रूपमें दर्शाते हुए दिशा निर्देश किया है—

सूर्याद्भवन्ति भूतानि सूर्येण पालितानि तु। सूर्ये लयं प्राप्नुवन्ति यः सूर्यः सोऽहमेव च॥

काशीके द्वादश आदित्योंकी पौराणिक कथाएँ

(लेखक—श्रीराधेश्यामजी खेमका, एम्० ए०, साहित्यरत्न)

सर्वतीर्थमयी विश्वनाथपुरी काशी त्रैलोक्यमङ्गल भगवान् विश्वनाथ एवं कलि-कल्मषहारिणी भगवती भागीरथीके अतिरिक्त अगणित देवताओंकी आवासभूमि है। यहाँ कोटि-कोटि शिवलिङ्ग चतुष्षष्टियोगिनियाँ, षट्पञ्चाशत् विनायक, नव दुर्गा, नव गौरी, अष्ट भैरव, विशालाक्षीदेवी-प्रभृति समस्त देव-देवियाँ काशी वासीजनोंके योग-क्षेम, रक्षण, दुरित एवं दुर्गतिका निरसन करते हुए विराजमान हैं। इनमें द्वादश आदित्योंका स्थान और माहात्म्य भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। उनका चरित्र-श्रवण महान् अभ्युदयका हेतु एवं दुरित और दुर्गतिका विनाशक है। यहाँ साधकोंके अभ्युदयके लिये द्वादश आदित्योंका संक्षिप्त माहात्म्य चित्रण कथाओंमें प्रस्तुत किया जा रहा है—

(१) लोलार्ककी कथा—किसी समय भगवान् शिवको काशीका वृत्तान्त जाननेकी इच्छा हुई। उन्होंने सूर्यसे कहा—सप्ताश्व! तुम शीघ्र वाराणसी नगरीमें जाओ। धर्ममूर्ति दिवोदास वहाँका राजा है। उसके धर्मविरुद्ध आचरणसे जैसे वह नगरी उजड़ जाय, ऐसा उपाय शीघ्र करो, किंतु राजाका अपमान न करना।

भगवान् शिवका आदेश पानेके अनन्तर सूर्यने अपना स्वरूप बदल लिया और काशीकी ओर प्रस्थान किया। उन्होंने काशी पहुँचकर राजाकी धर्मपरायणताके लिये विविध रूप धारण किये एवं अतिथि, भिक्षु आदि बनकर उन्होंने राजासे दुर्लभ-से-दुर्लभ वस्तुएँ माँगी, किंतु राजाके कर्तव्यमें त्रुटि या राजाकी धर्म-विमुखताकी गन्धतक उन्हें नहीं मिला।

उन्होंने शिवजीकी आज्ञाकी पूर्ति न कर सकनेके कारण शिवजीकी झिड़कीके भयसे मन्दराचल लौट जानेका विचार त्याग कर काशीमें ही रहनेका निश्चय किया। काशीका दर्शन करनेके लिये उनका मन लोल (सतृष्ण) था, अतः उनका नाम 'लोलार्क' हुआ। वे गङ्गा-असि-सङ्गमके निकट भदयनी (भदैनी) में विराजमान हैं। वे काशीनिवासी लोगोंका सदा योग-क्षेम वहन करते रहते हैं। वाराणसीमें निवास करके जो लोलार्कका भजन, पूजन आदि नहीं करते हैं, वे क्षुधा, पिपासा, दरिद्रता, दद्रु (दाद) फोड़-फुंसी आदि विविध व्याधियोंसे ग्रस्त रहते हैं।

काशीमें गङ्गा-असि-सङ्गम तथा उसके निकटवर्ती लोलार्क आदि तीर्थोंका माहात्म्य स्कन्दपुराण आदिमें वर्णित है—

> सर्वेषां काशितीर्थानां लोलार्कः प्रथमं शिरः।
> गङ्गार्कसङ्गनिष्पन्ना असिधारविखण्डिता।
> काश्या दक्षिणदिग्भागे न विदोषुर्महामला॥
>
> (—स्कन्दपु० काशीखण्ड, ४६। ४९, ६७)

(२) उत्तरार्ककी कथा—बलिष्ठ दैत्योंद्वारा देवता बार-बार युद्धमें पराजित हो जाते थे। देवताओंने दैत्योंके आतङ्कसे सदाके लिये छुटकारा पानेके निमित्त भगवान् सूर्यकी स्तुति की। स्तुतिसे सम्मुख उपस्थित प्रसन्नमुख भगवान् सूर्यसे देवताओंने प्रार्थना की कि बलिष्ठ दैत्य कोई-न-कोई बहाना बनाकर हमारे ऊपर आक्रमण कर देते हैं और हमें परास्त कर हमारे सब अधिकार छीन लेते हैं। निरन्तरकी यह महाव्याधि सदाके लिये कैसे समाप्त हो जाय, ऐसा समाधानकर उत्तर आप हमें देनेकी कृपा करें।

भगवान् सूर्यने विचारकर अपनेसे उत्पन्न एक शिला उन्हें दी और कहा कि यह तुम्हारा समाधानका उत्तर है। इसे लेकर तुम वाराणसी जाओ और विश्वकर्मा द्वारा इस शिलाकी शास्त्रोक्त विधिसे मेरी मूर्ति बनवाओ। मूर्ति बनाते समय शिलासे जो प्रस्तर

वह अपनी जगह छायाको छोड़कर पिताके घर चला गया। विश्वकर्मासे यह रहस्य मालूम होनेपर सूर्यने उनसे अपना तेज घटा देनेको कहा। विश्वकर्मा सूर्यकी आज्ञा पाकर शाकद्वीपमें उन्हें भ्रमि यन्त्रपर चढ़ाकर तेज घटानेको उद्यत हुए। जब समस्त जगत्‌के नाभिस्वरूप भगवान् सूर्य भ्रमिपर चढ़कर घूमने लगे तब समुद्र, पर्वत एवं वनके साथ सारी पृथ्वी आकाशकी ओर उठने लगी। ग्रहों और तारोंके साथ आकाश नीचेकी ओर जाने लगा। सभी समुद्रोंका जल बहने लगा। बड़े-बड़े पहाड़ फट गये और उनकी चोटियाँ चूर-चूर हो गयीं। इस प्रकार आकाश, पाताल और मृत्युभुवन—सभी व्याकुल हो उठे। समस्त जगत्‌को व्यस्त होते देख ब्रह्माके साथ सभी देवगण सूर्यकी स्तुति करने लगे। विश्वकर्माने भी नाना प्रकारसे सूर्यका स्तवन कर उनके सोलहवें भागसे मण्डलस्थ किया। पंद्रह भाग तेज शाणित होनेसे सूर्यका शरीर अत्यन्त कान्तिविशिष्ट हो गया। पश्चात् विश्वकर्माने उनके पंद्रह भाग तेजसे विष्णुका चक्र, महादेवका त्रिशूल, कुबेरकी शिबिका, यमराजका दण्ड और कार्तिकेयकी शक्ति बनायी। अनन्तर उन्होंने अन्यान्य देवताओंके भी परम प्रभाविशिष्ट अस्त्र बनाये। (इस प्रकार उस तेजभागका विशिष्ट उपयोग हुआ।)

भगवान् दिवाकरका तेज घट जानेसे वे बड़े मनोहर दिखायी देने लगे। संज्ञा सूर्यका यह कमनीय रूप देखकर बड़ी प्रसन्न हुई।

भगवान् सूर्यकी उत्पत्ति और माहात्म्य आदिका विशेष विवरण भविष्यपुराणके ब्राह्मपर्वमें, पद्मपुराणके आदित्योत्पत्ति नामक अध्यायमें, विष्णुपुराणके तृतीय अंशके द्वितीय अध्यायमें, कूर्मपुराणके ४०वें अध्यायमें, मत्स्यपुराणके १०१में अध्यायमें और मार्कण्डेयपुराणके आदित्यमाहात्म्यके ५०वें अध्यायमें मिलता है। विस्तार हो जानेके भयसे यहाँ वह सब नहीं दिया जा रहा है। हाँ, विभिन्न पुराणोंमें सूर्यके वर्णन-सम्बन्धमें कुछ-कुछ भिन्नता पायी जाती है, पर उनकी उपासना और महत्त्वके सम्बन्धमें सभी पुराण एकमत हैं। उनकी उपासनामें विशेष आडम्बरकी आवश्यकता भी नहीं है। नमस्कार करनेमात्रसे ये देव प्रसन्न हो जाते हैं। कहा भी है—'नमस्कारप्रियो भानुर्जलधाराप्रियः शिवः'। अतः सूर्योपस्थान और सूर्यनमस्कारसे सूर्योपासना करना प्रत्येक कल्याणकामीका कर्तव्य है।

सूर्योपस्थान और सूर्य-नमस्कार

सन्ध्योपासना करनेवाले चार वैदिक मन्त्रोंसे सूर्यनारायणका उपस्थान (उपासना) करते हैं। यह होना चाहिये—दाहिने पैरकी एड़ी उठाकर सूर्याभिमुख भक्ति-भावसे श्रद्धान्वित हृदयसे मन्त्रोंका पाठ करें और सब आगे नीचे झुके हाथ पसारकर एकटक उनका ध्यान करते हुए निम्नलिखित चार मन्त्रोंसे सूर्योपस्थान करें—(१) ॐ उद्वयन्तमसस्परि०, (२) ॐ उदु त्यं जातवेदसम्०, (३) ॐ चित्रं देवानाम्०, (४) ॐ तच्चक्षुर्देवहितम्०। सूर्योपस्थानसे वर्चस्विता प्राप्त होती है।

सूर्यनमस्कार—अपने आपमें सूर्योपासना भी है और व्यायाम भी। आराधनासे सिद्धि मिलती है और व्यायामसे शारीरिक स्वास्थ्य सौन्दर्य एवं आयुवृद्धि होती है। अतः विधिपूर्वक सिद्धि और शारीरिक सौन्दर्य सम्पत्ति प्राप्त करते हैं।*

* सूर्यनमस्कार-विधि आगे प्रकाशित है।

काशीके द्वादश आदित्योंकी पौराणिक कथाएँ

(लेखक—श्रीराधेश्यामजी खेमका, एम० ए०, साहित्यरत्न)

सर्वतीर्थमयी विश्वनाथपुरी काशी त्रैलोक्यमङ्गल भगवान् विश्वनाथ एवं कलि-कल्मषहारिणी भगवती भागीरथीके अतिरिक्त अगणित देवताओंकी आवासभूमि है। यहाँ कोटि-कोटि शिवलिङ्ग चतुष्षष्टियोगिनियाँ, षट्पञ्चाशत् विनायक, नव दुर्गा नव गौरी, अष्ट भैरव विशालाक्षी-देवी-प्रभृति सैकड़ों देव-देवियाँ काशी वासीजनोंके योग-क्षेम, संरक्षण, दुरित एवं दुर्गतिका निरसन करते हुए विराजमान हैं। इनमें द्वादश आदित्योंका स्थान और माहात्म्य भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। उनका चरित्र-श्रवण महान् अभ्युदयका हेतु एवं दुरित और दुर्गतिका विनाशक है। यहाँ साधकोंके अभ्युदयके लिये द्वादश आदित्योंका संक्षिप्त माहात्म्य चित्रण कथाओंमें प्रस्तुत किया जा रहा है—

(१) **लोलार्ककी कथा**—किसी समय भगवान् शिवको काशीका वृत्तान्त जाननेकी इच्छा हुई। उन्होंने सूर्यसे कहा—सप्ताश्व! तुम शीघ्र वाराणसी नगरीमें जाओ। धर्ममूर्ति दिवोदास वहाँका राजा है। उसके धर्मविरुद्ध आचरणसे जैसे वह नगरी उजड़ जाय, वैसा उपाय शीघ्र करो, किंतु राजाका अपमान न करना।

भगवान् शिवका आदेश पानेके अनन्तर सूर्यने अपना स्वरूप बदल लिया और काशीकी ओर प्रस्थान किया। उन्होंने काशी पहुँचकर राजाकी धर्मपरीक्षाके लिये विविध रूप धारण किये एवं अतिथि, भिक्षु आदि बनकर उन्होंने राजासे दुर्लभ से दुर्लभ वस्तुएँ माँगीं, किंतु राजाके कर्तव्यमें त्रुटि या उनकी धर्म-विमुखताकी गन्धतक उन्हें नहीं मिली।

उन्होंने शिवजीकी आज्ञाकी पूर्ति न कर सकनेके कारण शिवजीकी झिड़कीके भयसे मन्दराचल लौट जानेका विचार त्याग कर काशीमें ही रहनेका निश्चय किया। काशीका दर्शन करनेके लिये उनका मन लोल (सतृष्ण) था, अतः उनका नाम 'लोलार्क' हुआ। वे गङ्गा-असि-सङ्गमके निकट भदैनी (भदैनी) में विराजमान हैं। वे काशीनिवासी लोगोंका सदा योग-क्षेम वहन करते रहते हैं। वाराणसीमें निवास करके जो लोग इनका भजन, पूजन आदि नहीं करते हैं, वे क्षुधा, पिपासा, दरिद्रता, दद्रु (दाद) फोड़े-फुंसी आदि विविध व्याधियोंसे ग्रस्त रहते हैं।

काशीमें गङ्गा-असि-सङ्गम तथा उसके निकटवर्ती लोलार्क आदि तीर्थोंका माहात्म्य स्कन्दपुराण आदिमें वर्णित है—

> सर्वेषां काशितीर्थानां लोलार्कः प्रथमं शिरः।
> लोलार्कश्चरनिःप्रख्या असिधारविखण्डिता॥
> काश्या दक्षिणदिग्भागे न विद्येयुर्महामलाः॥
> (—स्कन्दपु० काशीखण्ड, ४६। ८०, ६७)

(२) **उत्तरार्ककी कथा**—बलिष्ठ दैत्योंद्वारा देवता बार-बार युद्धमें परास्त हो जाते थे। देवताओंने दैत्योंके आतङ्कसे सदाके लिये छुटकारा पानेके निमित्त भगवान् सूर्यकी स्तुति की। स्तुतिसे सम्मुख उपस्थित प्रसन्नमुख भगवान् सूर्यसे देवताओंने प्रार्थना की कि बलिष्ठ दैत्य कोई-न-कोई बहाना बनाकर हमारे ऊपर आक्रमण कर देते हैं और हमें परास्त कर हमारे सब अधिकार छीन लेते हैं। निरन्तरकी यह महान्व्याधि सदाके लिये जैसे समाप्त हो जाय, वैसा समाधानकारक उत्तर आप हमें देनेकी कृपा करें।

भगवान् सूर्यने विचारकर अपनेसे उत्पन्न एक शिला उन्हें दी और कहा कि यह तृणाग्र समाधानका उत्तर है। इसे लेकर तुम वाराणसी जाओ और विश्वकर्मा द्वारा इस शिलाकी शास्त्रोक्त विधिसे मेरी मूर्ति बनवाओ। मूर्ति बनाते समय इसीसे जो आग्नेयास्त्र जो प्रस्तर

सुहल्लमें कुण्डके तटपर है। साम्बादित्यका माहात्म्य भी बड़ा चमत्कारी है।

साम्बादित्यस्तदारभ्य सर्वव्याधिहरो रविः ।
ददाति सर्वभक्तेभ्योऽनामयाः सर्वसम्पदः ॥
(—स्कन्दपुराण, काशीखण्ड ४८ । ४७)

(४) द्रौपदादित्यकी कथा—प्राचीन कालमें जगत् कल्याणकारी भगवान् पञ्चवक्त्र शिवजी ही पाँच पाण्डवोंके रूपमें प्रादुर्भूत हुए एवं जगज्जननी उमा द्रौपदीके रूपमें यज्ञकुण्डसे उद्भूत हुईं। भगवान् नारायण उनके सहायतार्थ श्रीकृष्णके रूपमें अवतीर्ण हुए।

महाबलशाली पाण्डव किसी समय अपने चचेरे भाई दुर्योधनकी दुष्टतासे बड़ी विपत्तिमें पड़ गये। उन्हें राज्य त्यागकर वनोंकी धूलि फाँकनी पड़ी। अपने पतियोंके इस दारुण क्लेशसे दुःखी द्रौपदीने भगवान् सूर्यकी मनोयोगसे आराधना की। द्रौपदीकी इस आराधनासे सूर्यने उसे कलछुल तथा ढक्कनके साथ एक बटलोई दी और कहा कि जबतक तुम भोजन नहीं करोगी, तबतक जितने भी भोजनार्थी आयेंगे वे सब-के-सब इस बटलोईके अन्नसे तृप्त हो जायँगे। यह सरस व्यञ्जनोंकी निधान है एवं इच्छानुसारी खाद्योंकी भण्डार है। तुम्हारे भोजन कर चुकनेके बाद यह खाली हो जायगी।

इस प्रकारका वरदान काशीमें सूर्यसे द्रौपदीको प्राप्त हुआ। दूसरा वरदान द्रौपदीको सूर्यने यह दिया कि विश्वनाथजीके दक्षिण भागमें तुम्हारे सम्मुख स्थित मेरी प्रतिमाकी जो लोग पूजा करेंगे उन्हें क्षुधा-पीड़ा कभी नहीं होगी। द्रौपदादित्यजी विश्वनाथजीके समीप अक्षय वटके नीचे स्थित हैं। द्रौपदादित्यके सम्बन्धमें काशीखण्डमें बहुत माहात्म्य है। उसीमेंसे यह एक बानगी है—

आदित्यकथामेतां द्रौपद्याराधितस्य वै।
यः श्रोष्यति नरो भक्त्या तस्यैनः क्षयमेष्यति ॥
(—स्कन्दपुराण, काशीखण्ड ४९ । २४)

(५) मयूखादित्य कथा—प्राचीन कालमें पञ्चगङ्गाके निकट 'गभस्तीश्वर' शिवलिङ्ग एवं भक्तमङ्गलकारिणी मङ्गला गौरीकी स्थापना कर उनकी आराधना करते हुए सूर्यने हजारों वर्षतक कठोर तपस्या की। सूर्य स्वरूपतः त्रैलोक्यको तप्त करनेमें समर्थ हैं। तीव्रतम तपस्यासे वे और भी अत्यन्त प्रदीप्त हो उठे। त्रैलोक्यको जलानेमें समर्थ सूर्य-किरणोंसे आकाश और पृथ्वीका अन्तराल भभक उठा। वैमानिकोंने तीव्रतम सूर्य-तेजमें फतिंगा बननेके भयसे आकाशमें गमनागमन त्याग दिया। सूर्यके ऊपर, नीचे, तिरछे—सब ओर किरणें ही दिखायी देती थीं। उनके प्रखरतम तेजसे सारा संसार काँप उठा। सूर्य इस जगतकी आत्मा हैं, ऐसा भगवती श्रुतिका उद्घोष है। वे ही यदि इसे जला डालनेको प्रस्तुत हो गये तो कौन इसकी रक्षा कर सकता है? सूर्य जगदात्मा हैं, जगच्चक्षु हैं। रात्रिमें मृतप्राय जगत्को वे ही नित्य प्रातःकालमें प्रबुद्ध करते हैं। वे जगत्के सकल व्यापारोंके संचालक हैं। वे ही यदि सर्वविनाशक बन गये तो किसकी शरण ली जाय? इस प्रकार जगत्को व्याकुल देखकर जगत्के परित्राता भगवान् विश्वेश्वर वर देनेके लिये सूर्यके निकट गये। सूर्य भगवान् अत्यन्त निश्चल एवं समाधिमें इस प्रकार निमग्न थे कि उन्हें अपनी आत्माकी भी सुधि नहीं थी। उनकी ऐसी स्थिति देखकर भगवान् शिवको उनकी तपस्याके प्रति महान् आश्चर्य हुआ। तपस्यासे प्रसन्न होकर उन्होंने सूर्यको पुकारा, पर वे काष्ठवत् निश्चेष्ट रहे। जब भगवान्‌ने अपने अमृत-वर्षी हाथोंसे सूर्यका स्पर्श किया तब उस दिव्य स्पर्शसे सूर्यने अपनी आँखें खोलीं और उन्हें दण्डवत्-प्रणामकर उनकी स्तुति की।

भगवान् शिवने प्रसन्न होकर कहा—'सूर्य! उठो, सब भक्तोंके क्लेशको दूर करो। तुम मेरे स्वरूप ही हो। तुमने मेरा और गौरीका जो स्तवन किया है, इन दोनों
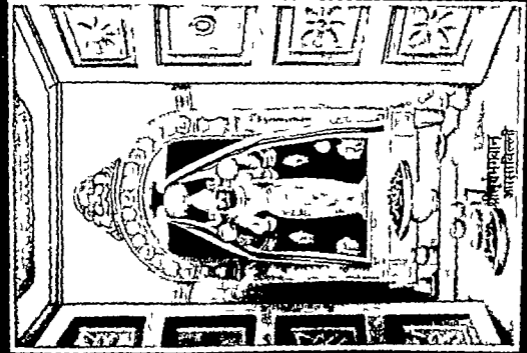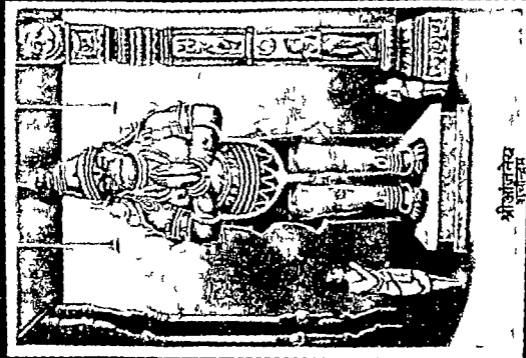
दाक्षिणात्य प्राचीन मूर्तियाँ

स्तवनोंका पाठ करनेवालोंको सब प्रकारकी सुख-सम्पदा, पुत्र-पौत्रादिकी वृद्धि, शरीरारोग्य आदि प्राप्त होंगे एवं प्रिय वियोगजनित दुःख कदापि नहीं होंगे। तुम्हारे तपस्या करते समय तुम्हारे मयूख (किरणें) ही दृष्टिगोचर हुए, शरीर नहीं, इसलिये तुम्हारा नाम मयूखादित्य होगा। तुम्हारा पूजन करनेसे मनुष्योंको कोई व्याधि नहीं होगी। रविवारके दिन तुम्हारा दर्शन करनेसे दारिद्र्य सर्वथा मिट जायगा—

त्वदर्चनान्नृणां कश्चिन्न व्याधिः प्रभविष्यति।
भविष्यति न दारिद्र्यं रविवारे त्वदीक्षणात्॥
(—स्कन्दपुराण, काशीखण्ड ४९।९४)

मयूखादित्यका मन्दिर मङ्गलागौरीमें है। -

(शेष अगले अङ्कमें)

आचार्य श्रीसूर्य और अध्येता श्रीहनुमान्

[एक भावात्मक कथा विवेचन]

(लेखक—श्रीरामपदारथसिंहजी)

प्रकाश विकीर्ण कर लोगोंको सत्यका ज्ञान देनेवाले एवं अचेतनोंमें चेतनाका संचार करनेवाले सर्वप्रेरक सूर्यदेव आचार्योचित पूजाके योग्य हैं। उनके ज्ञान-दानकी प्रशंसा वेदकी ऋचाओंमें भी सुशोभित है। तथ्योद्घाटनके लिये एक प्रमाण यहाँ पर्याप्त होगा—

केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे।
समुषद्भिरजायथाः॥ (—ऋ० १।६।३)

'हे मनुष्यो! अज्ञानीको ज्ञान देते हुए, अरूपको रूप देते हुए ये सूर्यरूप इन्द्र किरणोंद्वारा प्रकाशित होते हैं।'

सूर्यदेवद्वारा वेद-वेदाङ्ग-यमयोगादिकी शिक्षा दी जानेकी चर्चा अन्य आर्ष ग्रन्थोंमें भी प्राप्त होती है। उनसे मनु, याज्ञवल्क्य, साम्ब आदि शिक्षित होकर कृतार्थ हुए। अञ्जनादेवीके अङ्कमें त्रिभुवनगुरु शिव जब अवतरित हुए, तब उनके भी आचार्य सूर्यदेव ही बने। श्रीआञ्जनेय सविधि विद्या-अध्ययनके लिये उन्हींके पास गये—'भानु सों पढ़न हनुमान गए' (—हनु० बा० ४)।

भगवान् सूर्य और हनुमानजीके मध्य गुरु-शिष्य सम्बन्धका प्रारम्भ जिस ढंगसे हुआ, वह बड़ा ही रहस्यपूर्ण और सांकेतिक है। आदिकाव्यमें कथा आती है कि बाल हनुमानको एक बार बड़ी भूख लगी। उन्होंने उदीयमान सूर्यको लाल फल समझा और उछलकर उन्हें निगल लिया। उसी प्रसङ्गका स्मरण हनुमानचालीसामें निम्नाङ्कित रूपमें है—

जुग सहस्र जोजन पर भानू।
लील्यो ताहि मधुर फल जानू॥
(—हनुमानचालीसा १८)

उस दिन सूर्यग्रहण होनेवाला था। राहु हनुमान्‌जीके डरसे भागा और सुरेन्द्रसे शिकायत करने गया कि उसका भक्ष्य दूसरेको क्यों दे दिया गया? देवराज ऐरावतपर चढ़कर राहुको आगे कर घटनास्थलको चले। राहु उनके भरोसे सूर्यदेवकी ओर बढ़ा कि हनुमान्‌जी उसे बड़ा फल समझकर पकड़ने दौड़े। वह 'इन्द्र-इन्द्र' कहता हुआ भागा। देवराज 'डरो मत' कहते हुए आगे बढ़े कि हनुमान्‌जी ऐरावतको ही बड़ा फल समझकर पकड़ने दौड़े। वह भी उल्टे पाँव भागा। इन्द्र भी डरे और उन्होंने बचावके लिये वज्रप्रहार कर दिया, जिससे हनुमान्‌जीका चिबुक कुछ टेढ़ा हो गया और उन्हें तनिक मूर्च्छा भी आ गयी। इससे पवनदेवको बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने क्रुद्ध होकर अपनी गति बंद कर दी जिसके कारण समस्त प्राण एकाएक

आचार्य सूर्य और अध्येता हनुमान्

दाक्षिणात्य प्राचीन मूर्तियाँ
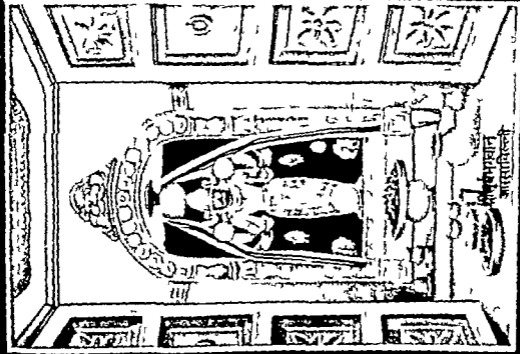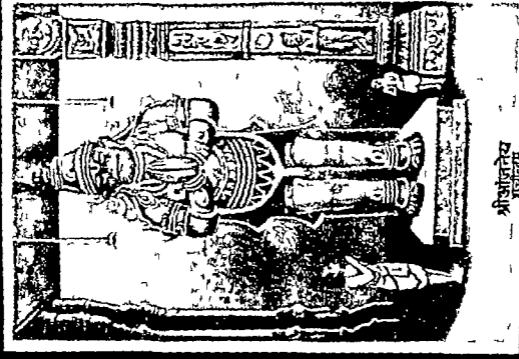
पड़ गये। इसके बाद सब देवता ब्रह्माजीको साथ लेकर पवनदेवके पास गये और उन्हें प्रसन्न किया तथा हनुमान्‌जीको आशीर्वाद और अपने-अपने शस्त्रोंसे अवध्यताका वर दिया। उस समय सूर्यदेवने भी उन्हें अपने तेजका शतांश देते हुए शिक्षा देकर अद्वितीय विद्वान् बना देनेका आश्वासन दिया, यथा—

मार्त्तण्डस्त्वब्रवीत्तत्र भगवांस्तिमिरापहः।
तेजसोऽस्य मदीयस्य ददामि शतिकां कलाम्॥
यदा च शास्त्राण्यध्येतुं शक्तिरस्य भविष्यति।
तदास्य शास्त्रं दास्यामि येन वाग्मी भविष्यति।
(—वा० रा० ७। ३६। १३-१४)

उपर्युक्त परिस्थितिमें सूर्य भगवान्‌ने हनुमान्‌जीको शिक्षा देनेका जो आश्वासन दिया, वह विचारणीय है। उन्हें अपने तेजका शतांश ही देना था तो दूसरे देवताओंकी भाँति अपने शस्त्रास्त्रोंसे अवध्यताका वर देते या कोई दूसरी वस्तु, जैसे श्रीमद्भागवतके अनुसार राज्याभिषेकके समय महाराज पृथुको जब सब अपने-अपने पासकी कुछ-न-कुछ उत्तम वस्तु देने लगे, तब सूर्यदेवने उन्हें रश्मिमय बाण दिये—'सूर्यो रश्मिमयानिषून्' (—४। १५। १८)। हनुमान्‌जीको भी वैसा ही कुछ दिया जा सकता था, पर उन्हें मिला शिक्षाका आश्वासन। इससे ध्वनित होता है कि वे सूर्यदेवके पास ज्ञानके लिये ही गये थे। उनकी ऊँची उड़ान आचार्याभिमुख होनेके निमित्त हुई थी।

ज्ञान जीवनका फल है। सूर्यदेव ज्ञानस्वरूप हैं। अतः ज्ञानरूपी फलकी प्राप्तिके लिये बाल हनुमान् उनकी ओर उड़े। उनके मानकी शुद्धताका प्रमाण यह भी है कि सूर्यदेवने उन्हें निर्दोष ही नहीं वरन् दोषानभिज्ञ भी समझा और जलाया नहीं। यथा—

शिशुरेष त्वदोषज्ञ इति मत्वा दिवाकरः।
कार्यं चास्मिन् समायत्तमित्येवं न ददाह सः॥
(—वा० रा० ७। ३५। ३०)

'यह बालक दोषको जानता ही नहीं है और आगे इससे बड़ा कार्य होगा, यह विचारकर दिवाकरने इन्हें जलाया नहीं।'

हनुमान्‌जीकी भूख शुभेच्छाका प्रतीक है, जो ज्ञानकी प्रथम भूमिका है। अतः उन्हें सूर्यदेवकी अनुकूलता प्राप्त हुई। सम्पाती भी सूर्यदेवके समीप उड़कर चले गये थे, पर शुभेच्छापूर्वक नहीं, अभिमानपूर्वक। उन्होंने स्वयं स्वीकारा है—'मैं अभिमानी रबि निअरावा' (—रा० च० मा० ४। २७। २)। परिणाम प्रतिकूल हुआ। उनके पंख जल गये—'जरे पंख अति तेज अपारा' (—रा० च० मा० ४। २७। २)। हनुमान्‌जी ज्ञानके भूखे थे, सम्पातीकी भाँति मानके भूखे नहीं थे। उनकी तीव्र भूख सद्गुणकी थी। सद्गुणके उत्कर्षसे ज्ञान होता है—'सत्त्वात्संजायते ज्ञानम्' (—गीता १४। १७)। इसीलिये ज्ञानस्वरूप सूर्यदेवने उन्हें विद्या देनेका आश्वासन दिया।

देवराज इन्द्रका वाहन ऐरावत गज वस्तु—वाहनादिके लोभका और राहु प्रमादका प्रतीक है, जो क्रमशः रजोगुणी और तमोगुणी है। लोभ और प्रमाद ज्ञानके बाधक हैं। प्रमादी शरीर-सुखको जीवनका बड़ा फल समझता है और ज्ञानकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न नहीं करता। वह विद्याको उदरपूर्तिका साधन समझता है, यथा—

मातु पिता बालकन्हि बोलावहिं। उदर भरै सोइ धर्म सिखावहिं
(—रा० च० मा० ७। ९९। ४)

लोभी दृष्ट-अदृष्ट सुखको जीवनका बड़ा फल समझकर उसके लिये प्रयत्न करता है, ज्ञानके लिये नहीं। अतः लोभ भी ज्ञानका शत्रु है और प्रकारान्तरसे प्रमादकी सहायता करता है। इसीलिये राहुकी सहायतामें ऐरावत आता है। ज्ञानेच्छुको प्रमाद और लोभको दबाना चाहिये। हनुमान्‌जी राहु और ऐरावतको दूर कर देते हैं। वे वायु, गरुड़ और मनको

कर देनेवाली गतिसे सूर्यदेवकी ओर आकाशमें उड़ चले थे। वे यदि राहु और ऐरावतको सचमुच पकड़ना चाहते तो वे दोनों बचकर भाग नहीं सकते थे। इससे मालूम होता है कि हनुमान्‌जी उन्हें बड़ा फल समझकर पकड़नेकी मुद्रामें उनकी ओर दौड़कर उन्हें भयभीत कर भगाना ही चाहते थे।

राहुके लिये ज्ञानस्वरूप सूर्य भक्षणीय हैं और हनुमान्‌जीके लिये सुरक्षणीय। अतः उन्होंने उन्हें सुरक्षाकी दृष्टिसे मुखमें रख लिया, क्योंकि पुस्तकीय ज्ञानसे अधिक सुरक्षित मुखस्थ ज्ञान होता है और महत्त्वपूर्ण वस्तुको मुखमें सुरक्षित रखनेका उनका स्वभाव भी है। श्रीसीताजीको पहचानमें देनेके लिये भगवान् श्रीरामद्वारा उन्हें जो मुद्रिका मिली थी, उसे वे मुखमें ही रखकर लङ्का गये थे, यथा—

प्रभु मुद्रिका मेलि मुख माहीं। जलधि लाँघि गए अचरज नाहीं॥
(—हनुमानचा० १९)

सर्वान्तर्यामी सूर्यदेव हनुमान्‌जीकी भावनासे संतुष्ट हो हुए, रुष्ट नहीं। विविध विघ्नोंकी विजयके बाद ज्ञान-प्राप्तिकी साधना करनेवालोंके समक्ष देवता बाधक बनकर आते हैं। रामचरितमानसके ज्ञान-दीपक-प्रसङ्गसे इस तथ्यकी पुष्टि होती है, यथा—

जौं तेहि बिघ्न बुद्धि नहिं बाधी। तौ बहोरि सुर करहिं उपाधी॥
(—रा० च० मा० ७।११८।५)

देवराजकी भूमिका ऐसी ही है, पर अदम्य ज्ञानेच्छाके समक्ष उनके कठिन कुलिशके मद-रद टूट गये और ज्ञान-सूर्यने हनुमान्‌जीसे संतुष्ट होकर ज्ञान देनेका आश्वासन दिया। देवावतार रामायणका यह प्रसङ्ग वैदिक ऋचाओंकी भाँति ही आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक अभिप्रायोंसे युक्त है।

कुछ समयके पश्चात् अध्ययन-अध्यापन प्रारम्भ हुआ। उनकी अध्ययनशैली अद्भुत है। आदिकविने उस ओर संकेत करते हुए कहा है—

असौ पुनर्व्याकरणं ग्रहीष्यन्
सूर्योन्मुखः प्रष्टुमनाः कपीन्द्रः।
उद्यद्गिरेरस्तगिरिं जगाम
ग्रन्थं महद्धारयनप्रमेयः॥
(—वा० रा० ७।३६।४५)

'अप्रमेय वानरेन्द्र ये हनुमान् व्याकरण सीखनेके लिये सूर्यके सम्मुख हो प्रश्न करते हुए, महाग्रन्थको याद करते हुए उदयाचलसे अस्ताचलतक चले जाते थे।' गोस्वामी तुलसीदासने भी इस अध्ययन-अध्यापनकी अद्भुतताका वर्णन किया है—

भानुसों पढ़न हनुमान गये भानु मन
अनुमानि सिसुकेलि कियो फेरफार सो।
पाछिले पगनि गम गगन मगन-मन
क्रमको न भ्रम, कपि बालक-बिहार सो॥
(—ह० बा० ४)

आशय यह है कि सूर्यभगवान्‌के पास हनुमान्‌जी पढ़ने गये, सूर्यदेवने बाल-क्रीडा समझकर टालमटोल की कि मैं स्थिर नहीं रह सकता और बिना आमने-सामनेके पढ़ना-पढ़ाना असम्भव है। वे हनुमान्‌जीकी ज्ञानेच्छाकी पुनः परीक्षा ले रहे थे। हनुमान्‌जीकी ज्ञानकी प्रबल भूखने कठिनाइयोंकी तनिक भी परवाह नहीं की। उन्होंने सूर्यदेवकी ओर मुख करके पीठकी ओर पैरोंसे प्रसन्नमन आकाशमें बालकोंके खेल-सदृश गमन किया और उसमें पाठ्यक्रममें किसी प्रकारका भ्रम नहीं हुआ।

सूर्यदेव दो हजार, दो सौ, दो योजन प्रति निमिषार्द्धकी चालसे चलते हुए वेद-वेदाङ्गों एवं सम्पूर्ण विद्याओंके रहस्य जल्दी-जल्दी समझाते चले जाते थे और हनुमान्‌जी सब कुछ धारण करते जाते थे। ऐसा अद्भुत और आश्चर्यमय अध्ययन-अध्यापन इन्द्रादि लोकपाल तथा त्रिदेवादिने कभी देखा नहीं था। इस दृश्यको देखकर वे चकित रह गये और उनकी आँखें चौंधिया गयीं—

कौतुक बिलोकि लोकपाल हरि हर बिधि,
　　लोचननि चकाचौंधी चित्तनि खभार सो ॥
　　　　(—ह० बा० ४)

हनुमान्‌जीने सूर्यभगवान्‌से सम्पूर्ण विद्याएँ शीघ्र ही पढ़ लीं। एक भी शास्त्र उनके अध्ययनसे अछूता नहीं रहा, यथा—

ससूत्रवृत्त्यर्थपदं महार्थं
　　ससंग्रहं सिद्ध्यति वै कपीन्द्रः ।
न ह्यस्य कश्चित् सदृशोऽस्ति शास्त्रे
　　वैशारदे छन्दगतौ तथैव ॥
सर्वासु विद्यासु तपोविधाने
　　प्रस्पर्धतेऽयं हि गुरुं सुराणाम् ।
　　　　(—वा० रा० ७ । ३६ । ४५-४६)

अर्थात्—'वानरेन्द्रने (तत्कालीन) सूत्र, वृत्ति, वार्तिक और संग्रह*-सहित 'महाभाष्य' ग्रहण कर उनमें सिद्धि प्राप्त की। इनके समान शास्त्र-विशारद और कोई नहीं है। ये समस्त विद्या, छन्द, तपोविधान—सबमें बृहस्पतिके समान हैं।'

गोस्वामी तुलसीदासने भी हनुमान्‌जीको 'ज्ञानिनाम् अग्रगण्यम्' और 'सकलगुणनिधानम्' माना है और उनकी गुणनिर्देशात्मक स्तुति करते हुए कहा है—

जयति वेदान्तविद विविध विद्या-विशद
　　वेद-वेदांगविद ब्रह्मवादी ।
ज्ञान-विज्ञान-वैराग्य-भाजन विभो
　　विमल गुण गनति शुक नारदादी ॥
　　　　(—वि० प० २६)

भगवान् श्रीरामसे हनुमान्‌जीकी जब पहले-पहल बातचीत हुई, तब श्रीभगवान् बड़े प्रभावित हुए और उनकी विद्वत्ता एवं वाग्मिताकी प्रशंसा करते हुए लक्ष्मणजीसे बोले—

नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः ।
नासामवेदविदुषः शक्यमेवं विभाषितुम् ॥
नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम् ।
बहु व्याहरतानेन न किंचिदपशब्दितम् ॥
　　　　(—वा० रा० ४ । ३ । २८-२९)

अर्थात्—'जिसे ऋग्वेदकी शिक्षा न मिली हो, जिसने यजुर्वेदका अभ्यास नहीं किया हो तथा जो सामवेदका विद्वान् न हो, वह ऐसा सुन्दर नहीं बोल सकता। निश्चय ही इन्होंने सम्पूर्ण व्याकरणका अनेक बार अध्ययन किया है, क्योंकि बहुत-सी बातें बोलनेपर भी इनके मुखसे कोई अशुद्धि नहीं निकली।'

श्रीसीताशोधके लिये लङ्काकी यात्रा करते समय सुरसाद्वारा ली गयी बड़ी परीक्षामें हनुमान्‌जीकी बुद्धिमत्ता प्रमाणित हुई और लङ्कामें उन्होंने पग-पगपर बुद्धिमानीका ऐसा परिचय दिया कि रावणके समीपस्थ सचिव, पत्नी-पुत्र-भ्राता—सब उनके पक्षका समर्थन करने लगे। इससे उनकी विद्या-बुद्धिकी विलक्षणताकी झलक मिलती है और साथ ही आचार्य सूर्यकी शिक्षाकी सफलतापर भी प्रकाश पड़ता है। हनुमान्‌जीकी बौद्धिक सफलताका कारण आचार्यका प्रसाद था।

अध्ययनके उपरान्त यथाशक्ति गुरुदक्षिणाकी भी विधि है। हनुमान्‌जीने अपने आचार्यसे गुरुदक्षिणाके लिये इच्छा व्यक्त करनेका निवेदन किया। निष्काम सूर्यदेवने शिष्य-संतोषार्थ अपने अंशोद्भूत सुग्रीवकी सुरक्षाकी कामना की। हनुमान्‌जीने गुरुजीकी इच्छा पूरी करनेकी प्रतिज्ञा की और सुग्रीवके पास पहुँचे—

सूर्याज्ञया तदंशस्य सुग्रीवस्यान्तिकं ययौ।
मातुराज्ञामनुप्राप्य रुद्रांशः कपिसत्तमः ॥
　　　　(—शतरुद्रसं० ३ । २० । १२)

वे सुग्रीवके साथ छायाकी भाँति रहकर उनकी सुरक्षा और सेवामें तत्पर रहे। श्रीभगवान्‌के-

*—संग्रह एक लाख श्लोकोंका महान् व्याकरणका ग्रन्थ था जो अब उपलब्ध नहीं है।

राज्याभिषेकके बाद जब सब वानर अपने-अपने स्थानको भेजे जाने लगे, तब हनुमान्‌जीने सुग्रीवसे प्रार्थना की कि श्रीभगवान्‌की सेवामें केवल दस दिन और रहकर पुनः आपके पास पहुँच जाऊँगा। सुग्रीवने उन्हें सदाके लिये श्रीभगवान्‌की सेवामें ही रह जानेका आदेश दे दिया।

सुग्रीव अब निर्भय और सुरक्षित थे। सुग्रीवका उपकार कर हनुमान्‌जीने अपने गुरु भगवान् सूर्यकी दक्षिणा पूरी की। अध्येता हनुमान् और अध्यापक आचार्य सूर्यदेव हमारे अध्ययनको तेजस्वी बनायें—'तेजस्वि नावधीतमस्तु'!

साम्बपर भगवान् भास्करकी कृपा

(लेखक—श्रीकृष्णगोपालजी माथुर)

भगवान् श्रीकृष्णके पुत्र साम्ब महारानी जाम्बवतीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। बाल्यकालमें इन्होंने बलदेवजीसे अस्त्रविद्या सीखी थी। बलदेवजीके समान ही ये बलवान् थे। महाभारतमें इनका विस्तृत वर्णन मिलता है।* ये द्वारकापुरीके सात अतिरथी वीरोंमें एक थे, जो युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें भी श्रीकृष्णके साथ हस्तिनापुरमें आये थे। इन्होंने वीरवर अर्जुनसे धनुर्वेदकी शिक्षा प्राप्त की थी। इन्होंने शल्यके सेनापतित्वमें क्षेमवृद्धिको युद्धमें पराजित किया था और वेगवान् नामक दैत्यका भी वध किया था।

भविष्यपुराणमें उल्लेख है कि साम्ब बलिष्ठ होनेके साथ ही अत्यन्त रूपवान् थे। अपनी सुन्दरताके अभिमानमें वे किसीको कुछ नहीं समझते थे। यही अभिमान आगे इनके पतनका कारण बना। अभिमान किसीको भी गिरा देता है।

हुआ यह कि एक बार वसन्त ऋतुमें रुद्रावतार दुर्वासा मुनि तीनों लोकोंमें विचरते हुए द्वारकापुरीमें आये। उन्हें तपसे क्षीणकाय देखकर साम्बने उनका परिहास किया। इससे दुर्वासा मुनिने क्रोधमें आकर अपने अपमानके बदलेमें साम्बको शाप दिया कि 'तुम अति शीघ्र कोढ़ी हो जाओ।' उपहास बुरा होता है, वही हुआ। साम्ब शप्त होनेपर संतप्त हो उठे।

साम्बने अति व्याकुल हो कुष्ठ-निवारणार्थ अनेक प्रकारके उपचार किये, परंतु किसी भी उपचारसे उनका कुष्ठ नहीं मिटा। अन्तमें वे अपने पूज्य पिता आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्रके पास गये और उनसे विनीत प्रार्थना की कि 'महाराज! मैं कुष्ठरोगसे अत्यन्त पीड़ित हो रहा हूँ। मेरा शरीर गलता जा रहा है, स्वर दबा जा रहा है, पीड़ासे प्राण निकले जा रहे हैं, अब क्षणभर भी जीवित रहनेकी क्षमता नहीं है। आपकी आज्ञा पाकर अब मैं प्राण त्याग करना चाहता हूँ। आप इस असह्य दुःखकी निवृत्तिके लिये मुझे प्राण त्यागनेकी अनुमति दें।'

महायोगेश्वर श्रीकृष्ण क्षणभर विचारकर बोले—'पुत्र! धैर्य धारण करो। धैर्य त्यागनेसे रोग अधिक सताता है। मैं उपाय बताता हूँ, सुनो। तुम श्रद्धापूर्वक श्रीसूर्यनारायणकी आराधना करो। पुरुष यदि विशिष्ट देवताकी आराधना विशिष्ट ढंगसे करे, तो अवश्य ही विशिष्ट फलकी प्राप्ति होती है। देवाराधन निष्फल नहीं होता।

साम्बके संदेह करनेपर श्रीकृष्ण पुनः बोले—शास्त्र और अनुमानसे हजारों देवताओंका होना सिद्ध होता है,

---

* आदिपर्व १८५। १७, सभा० ३४। १४, ७, ३४। १६, वन० १६। १–१६, २०, १२० १३ १४, विराट० ७२। २२, आश्र० ६६। ३, मौसल० १। १६–२७। १९। २५। ३। ४४, स्वर्गा० ५। १६–१८।

किंतु प्रत्यक्षमें सूर्यनारायणसे बढ़कर कोई दूसरा देवता नहीं है। सारा जगत् इन्हींसे उत्पन्न हुआ है और इन्हींमें लीन हो जायगा। ग्रह, नक्षत्र, राशि, आदित्य, वसु, इन्द्र, वायु, अग्नि, रुद्र, अश्विनीकुमार, प्रभा, दिशा, भूः, भुवः, स्वः आदि सब लोक, पर्वत, नदी-नद, सागर-सरिता, नाग-नग एवं समस्त भूतग्रामकी उत्पत्तिके हेतु सूर्यनारायण ही हैं। वेद, पुराण, इतिहास सभीमें इनको परमात्मा, अन्तरात्मा आदि शब्दोंसे प्रतिपादित किया गया है। इनके सम्पूर्ण गुण और प्रभावका वर्णन सौ वर्षोंमें भी कोई नहीं कर सकता। तुम यदि अपना कुष्ठ मिटाकर संसारमें सुख भोगना चाहते हो और मुक्ति-भुक्तिकी इच्छा रखते हो तो विधिपूर्वक सूर्यनारायणकी आराधना करो, जिससे आध्यात्मिक, आधिभौतिक दुःख तुमको कभी नहीं होंगे।' (सूर्यदेवकी समाराधना स्वस्थ-सुखी बनाती है।)

पिता श्रीकृष्णकी आज्ञा शिरोधार्य कर साम्ब चन्द्रभागा नदीके तटपर जगत्प्रसिद्ध मित्रवन नामक सूर्यक्षेत्रमें गये। वहाँ सूर्यकी 'मित्र' नामक मूर्तिकी स्थापनाकर उसकी आराधना करने लगे। जिस स्थानपर इन्होंने मूर्तिकी स्थापना की थी, आगे चलकर उसीका नाम 'मित्रवन' हुआ। साम्बने चन्द्रभागा नदीके तटपर 'साम्बपुर' नामक एक नगर भी बसाया, जिसे आजकल पंजाबका मुल्तानगर कहते हैं। (साम्बरा नामकी एक जादूगरी विद्या भी है, जिसका आविष्कार साम्बने ही किया था।) मित्रवनमें साम्ब उपवासपूर्वक सूर्यके मन्त्रका अखण्ड जप करने लगे। उन्होंने ऐसा घोर तप किया कि शरीरमें अस्थि मात्र शेष रह गया। वे प्रतिदिन अत्यन्त भक्तिभावसे गद्गद होकर—'यदेतन्मण्डलं शुक्लं दिव्यं चाजरमव्ययम्'—इस प्रथम चरणवाले स्तोत्रसे सूर्यनारायणकी स्तुति करते थे। इसके अतिरिक्त तप करते समय वे सहस्रनामसे भी सूर्यका स्तवन करते थे।*

इस आराधनसे प्रसन्न होकर सूर्यभगवान्ने स्वप्नमें दर्शन देकर साम्बसे कहा—'प्रिय साम्ब! सहस्रनामसे हमारी स्तुति करनेकी आवश्यकता नहीं है। हम अपने अत्यन्त गुह्य और पवित्र इक्कीस नामोंका पाठ तुम्हें बताते हैं† जिनके पाठ करनेसे सहस्रनामके पाठ करनेका फल मिलता है। हमारा यह स्तोत्र त्रैलोक्यमें प्रसिद्ध है। जो दोनों सन्ध्याओंमें इस स्तोत्रका पाठ करते हैं वे सब पापोंसे छूट जाते हैं और धन, आरोग्य, संतान आदि वाञ्छित पदार्थ प्राप्त करते हैं।' साम्बने इस स्तवराजके पाठसे अभीष्ट फल प्राप्त किया। यदि कोई भी पुरुष श्रद्धा-भक्तिपूर्वक इस स्तोत्रका पाठ करे, तो वह निश्चय ही सब रोगोंसे छूट जाय।

साम्ब भगवान् सूर्यके आदेशानुसार इक्कीस नामोंका पाठ करने लगे। तत्पश्चात् साम्बकी अटल भक्ति, कठोर तपस्या, श्रद्धायुक्त जप और स्तुतिसे प्रसन्न होकर सूर्यनारायणने उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिये और बोले—'वत्स साम्ब! तुम्हारे तपसे हम बहुत प्रसन्न हुए हैं, वर माँगो।' देवता प्रसन्न होनेपर अभीष्ट सिद्धि देते हैं।

अब साम्ब भक्तिभावमें अत्यन्त लीन हो गये थे। उन्होंने केवल यही एक वर माँगा—'परमात्मन्! आपके श्रीचरणोंमें मेरी दृढ़ भक्ति हो।'

भगवान् सूर्यने प्रसन्न होकर कहा—'यह तो होगा ही, और भी कोई वर माँगो।' तब लज्जित-से होकर साम्बने

---

* सूर्यसहस्रनामस्तोत्र गीताप्रेससे प्रकाशित है।

† इक्कीस नाम ये हैं—

ॐ विकर्तनो विवस्वांश्च मार्तण्डो भास्करो रविः। लोकप्रकाशकः श्रीमान् लोकचक्षुर्ग्रहेश्वरः॥
लोकसाक्षी त्रिलोकेशः कर्ता हर्ता तमिस्रहा। तपनस्तापनश्चैव शुचिः सप्ताश्ववाहनः॥
.. .. । गभस्तिहस्तो ब्रह्मा च ...

दूसरा वर माँगा—'भगवन् ! यदि आपकी ऐसी ही इच्छा है, तो मुझे यह वर दीजिये कि मेरे शरीरका यह कलङ्क निवृत्त हो जाय।' कुष्ठ जीवनका सबसे बड़ा पाप-फल समझा जाता है।

सूर्यनारायणके 'एवमस्तु' कहते ही साम्बका रूप दिव्य और स्वर उत्तम हो गया। इसके अतिरिक्त सूर्यने और भी वर दिये, जैसे कि—'यह नगर तुम्हारे नामसे प्रसिद्ध होगा। हम तुमको स्वप्नमें दर्शन देते रहेंगे, अब तुम इस चन्द्रभागा नदीके तटपर मन्दिर बनवाकर उसमें हमारी प्रतिमा स्थापित करो।'

साम्बने श्रीसूर्यके आदेशानुसार चन्द्रभागा नदीके तटपर मित्रवनमें एक विशाल मन्दिर बनवाकर उसमें विधिपूर्वक सूर्यनारायणकी मूर्ति स्थापित करायी।

इसके बाद मौसल-युद्धमें साम्बने वीरगति प्राप्त की। मृत्युके पश्चात् भगवान् भास्करकी कृपासे ये विश्वेदेवोंमें प्रविष्ट हो गये।

[साम्बकी कथा और भक्ति-पद्धतिसे हजारों—लाखों लोगोंने लाभ उठाया है और सूर्योपासनासे स्वास्थ्य और सुख प्राप्त किया है। साम्बपुराण (उपपुराण)में साम्बकी कथा, उपासना और उससे सम्बद्ध ज्ञातव्य बातें विस्तारसे वर्णित हैं। अन्य पुराणोंमें भी साम्बकी कथा और उपासनाकी चर्चा है।]

भगवान् सूर्यका अक्षयपात्र

(लेखक—आचार्य श्रीवल्लभजी शास्त्री, एम्० ए०)

महाराज युधिष्ठिर सत्यवादी, सदाचारी और धर्मके अवतार थे। महान्-से-महान् संकट पड़नेपर भी उन्होंने कभी धर्मका त्याग नहीं किया। ऐसा सब कुछ होते हुए भी राजा होनेके नाते दैववशात् वे द्यूतक्रीडामें सम्मिलित हो गये। जिस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र दूरस्थ देशमें अपने शत्रुओंके विनाश करनेमें लगे हुए थे, उस समय महाराज युधिष्ठिरको द्यूतमें अपना राज्य, धन-धान्य एवं समस्त सम्पदा गँवानी पड़ी। अन्तमें उन्हें बारह वर्षोंका वनवास भी द्यूतमें हार-स्वरूप मिला। महाराज युधिष्ठिर अपने पाँचों भाइयोंके साथ वनवासके कठिन दुःखको झेलने चल पड़े। साथमें महासती द्रौपदी भी थीं। महाराज युधिष्ठिरके साथ उनके अनुयायी ब्राह्मणोंका वह दल भी चल पड़ा, जो अपने धर्मात्मा राजाके बिना अपना जीवन व्यर्थ मानता था। उन ब्राह्मणोंको समझाते हुए महाराज युधिष्ठिरने कहा—'ब्राह्मणो ! द्यूतमें मेरा सर्वस्व हरण हो गया है। हम फल-मूल तथा अन्नके आहारपर रहने का निश्चय कर खिन्न-हृदयसे वनमें जा रहे हैं। वनकी इस यात्रामें महान् कष्ट होगा, अतः आप सब मेरा साथ छोड़कर अपने-अपने स्थानको लौट जायँ।' ब्राह्मणोंने दृढ़ता के साथ कहा—'महाराज ! आप हमारे भरण-पोषणकी चिन्ता न करें। अपने लिये हम स्वयं ही अन्न आदिकी व्यवस्था कर लेंगे। हम सभी ब्राह्मण आपका अभीष्ट चिन्तन करेंगे और मार्गमें सुन्दर-सुन्दर कथा प्रसङ्गसे आपके मनको प्रसन्न रखेंगे, साथ ही आपके साथ प्रसन्नतापूर्वक वन विचरणका आनन्द भी उठायेंगे।' (महाभा० वनपर्व २। १०-११)

महाराज युधिष्ठिर उन ब्राह्मणोंके इस निश्चय और अपनी स्थितिको जानकर चिन्तित हो गये। उनको चिन्तित देखकर परमात्म-चिन्तनमें तत्पर और अध्यात्म-विषयके महान् विद्वान् शौनकजीने महाराज युधिष्ठिरसे सांख्ययोग एवं कर्मयोगपर विचार विमर्श किया और धनकी अनुपयोगिता सिद्ध करते हुए बोले—'जो मानव धर्म करनेके लिये धनके उपार्जनकी कामना

करता है, उसकी यह इच्छा ठीक नहीं है, अतः धनके उपार्जनकी इच्छा नहीं करना ही उचित है। कीचड़ लगाकर पुनः उसके धोनेसे कीचड़ नहीं लगाना ही ठीक है, श्रेयस्कर है—

धर्मार्थं यस्य वित्तेहा वरं तस्य निरीहता।
प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य दूरादस्पर्शनं वरम्॥
(—महाभा० वनपर्व २।४९)

शौनकजीने वन-यात्रामें युधिष्ठिरको आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिये एक विचित्र त्यागीका मार्ग अपनानेके लिये बताया था। फिर भी किसी सत्पुरुषके लिये अपने अतिथियोंका स्वागत-सत्कार करना परम कर्तव्य है, तो ऐसी स्थितिमें स्वागत कैसे किया जा सकेगा? युधिष्ठिरके इस प्रश्नपर शौनकजीने कहा—

तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सूनृता।
सतामेतानि गेहेषु नोच्छिद्यन्ते कदाचन॥
(—महाभा० वनपर्व २।५४)

'हे युधिष्ठिर! अतिथियोंके स्वागतार्थ आसनके लिये तृण, बैठनेके लिये स्थान, जल और चौथी मधुर वाणी—इन चार वस्तुओंका अभाव सत्पुरुषोंके घरमें कभी नहीं रहता।' इनके द्वारा अतिथि-सेवाका धर्म निभ सकता है।

महाराज युधिष्ठिर अपने पुरोहित धौम्यकी सेवामें उपस्थित हुए और उनकी सलाहसे सूर्यभगवान्‌की उपासनामें जुट गये। पुरोहितने भगवान् सूर्यके अष्टोत्तर शतनाम-स्तोत्र (एक सौ आठ नामोंका जप) का अनुष्ठान बताया और उपासनाकी विधि समझायी। महाराज युधिष्ठिर सूर्योपासनाके कठिन नियमोंका पालन करते हुए सूर्य, अर्यमा, भग, त्वष्टा, पूषा, अर्क, सविता, रवि इत्यादि एक सौ आठ नामोंका जप करने लगे। महाराज युधिष्ठिरने सूर्यदेवकी प्रार्थना करते हुए कहा—

त्वं भानो जगतश्चक्षुस्त्वमात्मा सर्वदेहिनाम्।
त्वं योनिः सर्वभूतानां त्वमाचारः क्रियावताम्॥
त्वं गतिः सर्वसांख्यानां योगिनां त्वं परायणम्।
अनावृतार्गलं द्वारं त्वं गतिस्त्वं मुमुक्षताम्॥
त्वया संधार्यते लोकस्त्वया लोकः प्रकाश्यते।
त्वया पवित्रीक्रियते निर्व्याजं पाल्यते त्वया॥
(—महा०, वन० ३।३६-३८)

'हे सूर्यदेव! आप अखिल जगत्‌के नेत्र तथा समस्त प्राणियोंकी आत्मा हैं। आप ही सब जीवोंके उत्पत्ति-स्थान हैं और सब जीवोंके कर्मानुष्ठानमें लगे हुए जीवोंके सदाचार हैं। हे सूर्यदेव! आप ही सम्पूर्ण सांख्ययोगियोंके प्राप्तव्य स्थान हैं। आप ही मोक्षके खुले द्वार हैं और आप ही मुमुक्षुओंकी गति हैं। हे सूर्यदेव! आप ही सारे संसारको धारण करते हैं। सारा संसार आपसे ही प्रकाश पाता है। आप ही इसे पवित्र करते हैं और आप ही इस संसारका बिना किसी स्वार्थके पालन करते हैं।'

इस प्रकार विस्तारसे महाराज युधिष्ठिरने भगवान् सूर्यकी प्रार्थना की। भगवान् सूर्य युधिष्ठिरकी इस आराधनासे प्रसन्न होकर सामने प्रकट हो गये और उनके मनोगत भावको समझकर बोले—

यत्तेऽभिलषितं किञ्चित्तत्त्वं सर्वमवाप्स्यसि।
अहमन्नं प्रदास्यामि सप्त पञ्च च ते समाः॥
(—महा० वन० ३।७१)

'धर्मराज! तुम्हारा जो भी अभीष्ट है, वह तुमको मिलेगा। मैं बारह वर्षोंतक तुमको अन्न देता रहूँगा।'

भगवान् सूर्यने इतना कहकर महाराज युधिष्ठिरको वह अपना 'अक्षयपात्र' प्रदान किया, जिसमें बना भोज्य पदार्थ 'अक्षय्य' बन जाता था। भगवान् सूर्यका वह अक्षयपात्र ताम्रकी एक विचित्र 'बटलोई' थी। उसकी विशेषता यह थी कि उसमें बना भोज्य पदार्थ तबतक अक्षय्य बना रहता था, जबतक रानी द्रौपदी भोजन नहीं कर लेती थी। पुनः जब वह पात्र माँज धोकर पवित्र कर दिया जाता था और उसमें पदार्थ बनता था तो नहीं

गृहाणेदं पिठरं ताम्रं मया दत्तं नराधिप ।
यावद् वत्स्यन्ति पाञ्चाली पात्रेणानेन सुव्रत ॥
फलमूलामिषं शाकं संस्कृतं यन्महानसे ।
चतुर्विधं तदन्नाद्यमक्षय्यं ते भविष्यति ॥
(—महा०, वन० ३ । ७२-७३)

इस प्रकार भगवान् सूर्यने धर्मात्मा युधिष्ठिरको उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर अपना 'अक्षयपात्र' प्रदान किया और युधिष्ठिरकी मनःकामना सिद्ध करके भगवान् सूर्य अन्तर्हित हो गये ।

महाभारतमें उसी प्रसङ्गमें यह भी लिखा है कि जो कोई मानव या स्त्री अपने मनको संयममें रखकर—चित्त-वृत्तियोंको एकाग्र करके युधिष्ठिरद्वारा प्रयुक्त स्तोत्रका पाठ करेगा, वह यदि कोई अति दुर्लभ वर भी माँगेगा तो भगवान् सूर्य उसे वरदानके रूपमें पूरा कर देंगे—

इमं स्तवं प्रयतमनाः समाधिना
पठेदिहान्योऽपि वरं समर्थयन् ।
तत् तस्य दद्याच्च रविर्मनीषितं
तदाप्नुयाद् यद्यपि तत् सुदुर्लभम् ॥
(—महा०, वन० ३ । ७,)

—:o:—

सूर्यप्रदत्त स्यमन्तकमणिकी कथा

(लेखक—साधु श्रीवल्लभदासजी महाराज)

प्रसेनो द्वारवत्यां तु निवसन्त्यां महामणिम् ॥
दिव्यं स्यमन्तकं नाम समुद्रादुपलब्धवान् ।
तस्य सत्राजितः सूर्यः सखा प्राणसमोऽभवत् ॥
(हरिवंशपु० १ । ३८ । १३ १४)

प्रसेन द्वारकापुरीमें विराजमान थे । उन्हें स्यमन्तक नामकी एक दिव्य मणि अपने बड़े भाई सत्राजित्से प्राप्त हुई थी । यह सत्राजित्को समुद्रके तटपर भगवान् भुवन भास्करसे उपलब्ध हुई थी । सूर्यनारायण सत्राजित्के प्राणोंके समान प्रिय मित्र थे ।

सुप्रसिद्ध महाराज यदुकी वंशपरम्परामें अनमित्रके पुत्र निघ्न नामक एक प्रतापी राजा हुए जिनसे प्रसेन और सत्राजित् नामक दो पुत्रोंकी उत्पत्ति हुई । वे शत्रुओंकी सेनाओंको जीतनेमें पूर्ण समर्थ थे ।

एक समयकी बात है—रथियोंमें श्रेष्ठ सत्राजित् रात्रिके अन्तमें स्नान एवं सूर्योपस्थान करनेके लिये समुद्रके तटपर गये थे । जिस समय सत्राजित सूर्योपस्थान कर रहे थे कि उसी समय सूर्यनारायण उनके सामने आकर खड़े हो गये । सर्वशक्तिसम्पन्न भगवान् सूर्यदेव अपने तेजस्वी मण्डलके मध्यमें विराजमान थे, जिससे सत्राजितको सूर्यनारायणका रूप स्पष्ट नहीं दीख रहा था । इसलिये उन्होंने अपने सामने खड़े हुए भगवान् सूर्यसे कहा—'ज्योतिर्मय ग्रह आदिके स्वामिन् ! मैं आपको जैसे प्रतिदिन आकाशमें देखता हूँ, यदि वैसे ही तेजका मण्डल धारण किये हुए आपको अपने सामने अब भी खड़ा देखूँ तो फिर आप जो मित्रभावसे मेरे यहाँ पधारे—इसमें विशेषता ही क्या हुई* ?'

इतना सुनते ही भगवान् सूर्यनारायणने अपने कण्ठसे उस मणिरत्न स्यमन्तकको उतारा और एकान्तमें अलग स्थानपर रख दिया । तब राजा सत्राजित स्पष्ट अवयवों वाले सूर्यनारायणके शरीरको देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने उन भगवान् सूर्यके साथ मुहूर्तभर (दो घड़ी) वार्तालाप किया । बातचीत करनेके अनन्तर जब सूर्यनारायण वापस लौटने लगे, तब राजा सत्राजितने

* ... । यथैव व्योम्नि पश्यामि सदा त्वां ज्योतिषाम्पते ॥
तेजोमयं लिङ्गं दृष्ट्वा नैव पुनः विभक्तम् । को विशेषोऽस्ति मे त्वत्तः सख्येनोपगतस्य वै ॥
(—हरिवंशपु० १ । ३८ । १७-१८)

उनसे प्रार्थना की—'भगवन् ! आप जिस दिव्यमणिसे तीनों लोकोंको सदा प्रकाशित करते रहते हैं, वह स्यमन्तकमणि मुझे देनेकी कृपा कीजिये* ।

तब भगवान् सूर्यनारायणने कृपा करके वह तेजस्वी मणि राजा सत्राजित्को दे दी । वे उसे कण्ठमें धारण कर द्वारकापुरीमें गये । 'ये सूर्य आ रहे हैं'—ऐसा कहते हुए अनेक मनुष्य उन नरेशके पीछे दौड़ पड़े । इस प्रकार नगरवासियोंको विस्मित करते हुए सत्राजित् अपने रनिवासमें चले गये ।

वह मणि वृष्णि और अन्धककुलवाले जिस व्यक्तिके घरमें रहती थी, उसके यहाँ उस मणिके प्रभावसे सुवर्णकी वर्षा होती रहती थी । उस देशमें मेघ समय पर वर्षा करते थे तथा वहाँ व्याधिका किंचिन्मात्र भय नहीं होता था । वह मणि प्रतिदिन आठ भार सोना दिया करती थी† ।

जब भगवान् भी संसारी लोगोंके साथ क्रीडा करनेके लिये अवतार धारण करते हैं तो सर्वसाधारण अल्पज्ञ व्यक्ति उन नटनागरको अपने समान ही कर्मबन्धनमें बँधा हुआ समझते हैं । वे उनके कार्योंपर शङ्का करते हैं, लाञ्छन लगानेवाली समालोचना भी कर बैठते हैं । जब भगवान्को नरनाट्य करना होता है तो वे अपनी भगवत्ताका प्रदर्शन नहीं करते ।

लोभका ऐसा घृणित प्रभाव है कि उसके कारण भाई-भाईमें विरोध उत्पन्न हो जाता है, अपने पराये हो जाते हैं तथा मित्र शत्रु बन जाते हैं । इसी भावको प्रदर्शित करनेके लिये भगवान् श्यामसुन्दरने स्यमन्तकमणिके हरणकी लीला दिखायी थी । इस स्यमन्तक-मणिके हरण एवं ग्रहणकी लीलाकी कथाका प्रसङ्ग विस्तृतरूपसे श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके ५६-५७ अध्यायोंमें आया है ।

ऐसी प्रसिद्धि है कि भाद्रमासके कृष्णपक्षकी चतुर्थी तिथिमें उदित चन्द्रमाका दर्शन होनेसे मनुष्यमात्रको कलङ्क लगनेकी सम्भावना होती है । चन्द्र-दर्शन हो जानेपर कलङ्कका निवारण हो जाय, इसके लिये श्रीमद्भागवतके इन दो (५६-५७) अध्यायोंका कथाप्रसङ्ग पढ़ना एवं सुनना अत्यन्त लाभप्रद है ।

इस स्यमन्तकोपाख्यानकी फलश्रुतिका वर्णन करते हुए श्रीशुकदेवजी कहते हैं—'सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापक भगवान् श्रीकृष्णके पराक्रमोंसे परिपूर्ण यह पवित्र आख्यान समस्त पापों, अपराधों और कलङ्कोंका मार्जन करनेवाला तथा परम मङ्गलमय है । जो इसे पढ़ता, सुनता अथवा स्मरण करता है, वह सब प्रकारकी अपकीर्ति और पापोंसे छूटकर परम शान्तिका अनुभव करता है ।‡

---

* तदेतन्मणिरत्नं मे भगवन् दातुमर्हसि ॥ (–हरिवंशपु० ३८ । २१)

† चार धानकी एक गुञ्जी या एक रत्ती होती है । पाँच रत्तीका एक पण (आधे मासेसे कुछ अधिक), आठ पणका एक धरण, आठ धरणका एक पल (जो ढाई रुपयेके लगभग होता है), सौ पल (आठ सेर लगभग) का एक तुला होती है, बीस तुलाका एक भार होता है अर्थात् आठ मासे आठ मनका एक भार होता है ।

‡ यस्त्वेतद् भगवत ईश्वरस्य विष्णोर्वीर्याढ्यं वृजिनहरं सुमङ्गलं च ।
आख्यानं पठति शृणोत्यनुस्मरेद् वा दुष्कीर्तिं दुरितमपोह्य याति शान्तिम् ॥ (–श्रीमद्भा० १०

सूर्यभक्त ऋषि जरत्कारु

(—ब्रह्मलीन परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

महाभारतके आदिपर्वमें जरत्कारु ऋषिकी कथा आती है। वे बड़े भारी तपस्वी और मनस्वी थे। उन्होंने सर्पराज वासुकिकी बहिन अपने ही नामकी नागकन्यासे विवाह किया। विवाहके समय उन्होंने उस कन्यासे यह शर्त की थी कि यदि तुम मेरा कोई भी अप्रिय कार्य करोगी तो मैं उसी क्षण तुम्हारा परित्याग कर दूँगा। एक बारकी बात है, ऋषि अपनी धर्मपत्नीकी गोदमें सिर रक्खे लेटे हुए थे कि उनकी आँख लग गयी। देखते-देखते सूर्यास्तका समय हो आया, किंतु ऋषि जागे नहीं, वे निद्रामें थे। ऋषिपत्नीने सोचा कि ऋषिकी सायंसन्ध्याका समय हो गया, यदि इन्हें जगाती हूँ तो ये नाराज होकर मेरा परित्याग कर देंगे और यदि नहीं जगाती हूँ तो सन्ध्याकी वेला टल जाती है और ऋषिके धर्मका लोप होता है। धर्मप्राणा ऋषिपत्नीने अन्तमें यही निर्णय किया कि पतिदेव मेरा परित्याग चाहे भले ही कर दें, परंतु उनके धर्मकी रक्षा मुझे अवश्य करनी चाहिये। यही सोचकर उसने पतिको जगा दिया। ऋषिने अपनी इच्छाके विरुद्ध जगाये जानेपर रोष प्रकट किया और अपनी पूर्व प्रतिज्ञाका स्मरण दिलाकर पत्नीको छोड़ देनेपर उतारू हो गये। जगानेका कारण बतानेपर ऋषिने कहा—'हे मुग्धे! तुमने इतने दिन मेरे साथ रहकर भी मेरे प्रभावको नहीं जाना। मैंने आजतक कभी सन्ध्याकी वेलाका *अतिक्रमण नहीं किया। फिर क्या आज सूर्य* भगवान् मेरा अर्घ्य लिये बिना ही अस्त हो सकते थे! कभी नहीं'—

> शक्तिरस्ति न वामोरु मयि सुप्ते विभावसो।
> अस्तं गन्तुं यथाकालमिति मे हृदि वर्तते॥
> (—महा० आदि० ४७। २५-२६)

सच है, जिस भक्तकी उपासनामें इतनी दृढ़ निष्ठा होती है, सूर्यभगवान् उसकी इच्छाके विरुद्ध कोई कार्य *कर नहीं सकते। इसीसे भक्तोंके लिये भगवान्को* अपने नियम भी तोड़ने पड़ते हैं।

(—तत्त्व चिन्तामणि भाग ५ से)

मानवीय जीवनमें सुधा घुल जाये

(डॉ० श्रीछोटेलालजी शर्मा 'नागेन्द्र', एम्० ए०, पी-एच्० डी०, बी० एड्०)

अन्धकारके विकट वैरी अंशुमाली विभो!
मेटि भय अङ्गना प्रकाश बिखराइये।
दौर्बल्य दुरित मलिन-दीन मानसमें
प्रखर-मरीचि-पुञ्ज दीप्ति भरमाइये।
भवज-निशीथिनीमें पथसे भटक रहे
दीजिये प्रकाश ज्ञान नहीं तरसाइये।
मानवीय जीवनमें सुधा घुल जाये देव!
नीरस रसा पै ऐसा रस बरसाइये॥

कलियुगमें भी सूर्यनारायणकी कृपा

(लेखक—श्रीअवधकिशोरदासजी श्रीवैष्णव 'प्रेमनिधि')

आप विश्वास करें, इस कलियुगमें भी देवगण कृपा करते हैं तथा समय पड़नेपर वे साक्षी भी देते हैं। 'भक्तमाल'में वर्णित प्रसिद्ध श्रीजगन्नाथधामके पास श्रीसाक्षीगोपालजीके मन्दिरके विषयमें तो सभी जानते ही हैं, परंतु कच्छकी यह एक नवीन घटना भी श्रद्धा बढ़ानेवाली वस्तु है।

कच्छके राजाओंमें राव देशलकी श्रद्धा तथा भगवद्भक्ति लोकविश्रुत है संवत् १८०५में वैशाख शुक्ल १, शुक्रवारसे 'भुज'में 'शिवरामण्डप'के उत्सव प्रसङ्गमें आपने सवा लाख स्तोकी लगातार दस दिनोंतक सेवा की थी। निम्नलिखित घटना उसीसे सम्बद्ध है, जो सत्यको प्रोत्साहित तथा श्रद्धाभावनाको दृढ़ करती है। संक्षेपमें घटना इस प्रकार है—

एक दिन कच्छकी राजधानी 'भुज'में एक अद्भुत वाद (फरियाद) आया। एक साहूकारने एक पटेलपर दावा दायर कर दिया। वह दस्तावेज लिखकर देनेवाला किसान गरीब था—उसने उसमें लिखा था कि—'कोरी (स्थानीय रजतमुद्रा) रावजी (तत्कालीन राजा) के छापकी एक हजार रोकड़ी मैंने तुम्हारे पाससे ब्याजपर ली है। समयपर ये कोरियाँ मैं आपको ब्याजके साथ भर दूँगा। दस्तावेजके नीचे साक्षियोंके नाम हैं। सबसे नीचे 'साख श्रीसूरजकी' लिखा है।'

आज उसी दस्तावेजने राजदरबारके सामने एक विकट समस्या खड़ी कर दी है। किसान कहता है—एक हजार कोरियाँ ब्याजसहित साहूकारको भर दी हैं।

साहूकार कहता है—'बात असत्य है। हमको एक कोरी भी नहीं मिली है। यह झूठ बोलता है। मेरे पास पटेलकी सहीवाला दस्तावेज मौजूद है।'

इधर दस्तावेज कहता है—'किसानको एक हजार कोरियाँ भरनेको हैं।' किसानने कोरी चुकती कर दी, इस बातका कोई साक्षी नहीं है—कागजपर ऐसा कोई चिह्न भी नहीं है। अदालतने साक्षी, तर्क एवं कानूनके आधारपर पूरा छानबीनकर सभी प्रमाण किसान पटेलके विरुद्ध प्राप्त किये। कोई भी बात किसानके पक्षमें नहीं है। प्रमाणसे सिद्ध होता है—'किसान झूठा है' और पटेलके विरुद्ध फैसला भी सुना दिया जाता है।

'भुज'की राजगद्दीपर उस समय राव देशलजी बावा विराजमान थे। प्रखर मध्याह्नका समय था। सूर्य मानो अग्निकी ज्वाला बरसा रहे थे। वे भुजके पहाड़को प्रचण्ड उत्तप्त तापसे तपाकर अपनी सम्पूर्ण गरमी भुज नगरीपर फेंक रहे थे। ऐसी गरमीमें कच्छके रावजीकी आँखें अभी जरा-सी ही मिली थीं कि बाहरसे करुण क्रन्दन सुनायी पड़ा—

'महाराज! मेरी रक्षा करो—रक्षा करो, मैं गरीब मनुष्य बिना अपराधके मारा जा रहा हूँ।'

किसानकी करुण चीख सुनकर रावजीकी आँखें खुल गयीं। कच्छका मालिक नंगे पाँव एकाएक बाहर आया। राजधर्मका यही तकाजा है।

'कौन है भाइ?' महारावकी शान्त, मीठी वाणीने वातावरणमें मधुरता भर दी।'

'चिरंजीव हों रावजी!' किसानका कण्ठ छलछला भर गया। वह धैर्य धारण कर बोला—'मैं एक हजार कोरीके लिये आँसू नहीं बहाता हूँ। मेरे सिरपर झूठ बोलनेका कलङ्क आता है, यह मुझसे सहा नहीं जाता, धर्मावतार! मुझे सच्चा एवं उचित न्याय चाहिये, गरीबनिवाज!'

पटेलने अपनी सारी राम-कहानी कच्छके अधिपति देशलजी बावाके चरणोंमें निवेदित की। महारावने सभी कागजात भुजकी अदालतसे अपने पास मँगवाये। उनके एक-एक अक्षरको ध्यानपूर्वक पढ़ा। किसानकी सचाई कागजोंमें

तो कहीं दीख न पड़ी, किंतु उसके नेत्रमें निर्भयता झाक रही थी।

कागजोंको देखकर सेठके अभिमानी निराशापूर्ण निःश्वास लेते हुए कहा—'क्या करूँ भाई! तूने कोरियाँ भर दी है, पर इसका कुछ भी प्रमाण इन कागजोंमें उपलब्ध नहीं हो पा रहा है।'

'प्रमाण तो है, अन्नदाता! मैंने अपने हाथसे ही इस दस्तावेजपर काली स्याहीसे चौकड़ी (× ऐसे निशान) लगाये हैं'—किसानने अपनी प्रामाणिकताका निवेदन करते हुए कहा।

'चौकड़ी!' महाराज देशलजी बावाने चौंककर कहा। 'हाँ धर्मावतार! चौकड़ी!! काली रोशनाईकी बड़ी-सी चौकड़ी!!! चारों कोनोंपर कागजके चारों ओर मैंने अपने हाथसे लगाया है, चार काली चौकड़ियाँ।'

'अरे, चौकड़ी तो क्या, इसपर तो काला बिंदु भी कहीं दिखायी नहीं देता'—राजाने कहा।

'यह सब चाहे जैसे हुआ हो, राजन्! आपके चरणोंपर हाथ रखकर मैं सत्य ही कहता हूँ'—किसानने बावाके दोनों चरणोंपर अपने दोनों हाथ रख दिये।

पटेल (कन्बी)की वाणीमें सचाई साफ-साफ झलकती थी। यह समस्या अब और भी कठिन हो गयी। महाराजोंके सिरपर पसीना आ गया, आँखोंकी त्योरियाँ चढ़ गयीं। तुरंत उस साहूकारको बुलाया गया। वह राजाके सम्मुख उपस्थित हुआ। अब तो कचहरीके सभी लोग भी आतुर बैठ गये थे तथा किसानके न्यायको तौलते हुए इस सत्य आत्मा न्यायमूर्ति राजाके न्यायको देख रहे थे।

'सेठ! मनमें कुछ भी छल-कपट हो तो निकाल दो!' राजाने साहूकारको गम्भीरतापूर्वक कहा।

'महाराज! जो कुछ होगा, वह तो यह कागज ही कहेगा, देख लीजिये।'

राजाने पुनः दस्तावेज हाथमें लिया। राजाकी दृष्टि कागजके कोने-कोनेपर सीधी चली जा रही थी। परंतु 'चौकड़ी'के प्रश्नका उत्तर किसी प्रकार नहीं मिल रहा था। इतनेमें राजाकी दृष्टि कागजके अन्तिम अक्षरोंपर पड़ी—'साख श्रीसूरजकी'।

अब विचार राजाके मस्तिष्कमें चढ़ गये—सूरज सत्य साक्षी देंगे? और उन्होंने वह दस्तावेजका कागज सूर्य भगवान्‌के सामने रख लिया।

'हे सूर्यदेव! इस दस्तावेजमें आपकी साक्षी लिखा है। मैं 'भुज'का राजा यदि आज न्याय न कर सका तो दुनिया मेरी हँसी उड़ायगी।' राजाने मन-ही-मन श्रीसूर्यनारायणसे बुद्धिदानकी प्रार्थना की और कागजको सूर्यके सम्मुख रख दिया। फिर वे टकटकी लगाकर ध्यानपूर्वक कागजको देखने लगे। एक चमत्कार उभरा! एक हल्की-सी पानीके दाग-सरीखी स्पष्ट चौकड़ी दस्तावेजके कागजपर दीखने लगी। फिर तो कच्छाधिपति ऐसे आनन्दमें हर्षित हो गये मानो उन्होंने किसी महान् देशको जीत लिया हो। आकाशमें जगमगाते हुए सूर्यनारायणके सामने उनके दोनों हाथ जुड़ गये।

अब राजाने किसानसे पूछा—'तुमने कागजपर चौकड़ी लगायी, उसका कोई साक्षी भी है?'

'काला कौआ भी नहीं गरीब-निवाज! साक्षी तो कोई भी नहीं था'—पटेलने निवेदन किया।

'परंतु इसमें तो लिखा है न कि—'साक्षी श्रीसूर्यजी।' 'हाँ हाँ—अन्नदाता!' साहूकारने उत्तर दिया।

'यह तो ऐसा लिखना पूर्वपरम्परासे चला आता है, रिवाजमात्र है। भला, सूर्य कभी साक्षी देते हैं?' राजाने किसानसे हँसकर पूछा।

'देखना तो साक्षी दे सकते हैं, राजन्!' परंतु अब तो कलियुग आ गया है। दुनियाके मनुष्योंकी

आगे सूर्यकी साक्षी कैसे समझ सकती हैं ? वैसे यह सकती है ?'—पटेलने श्रद्धापूर्वक कहा ।

'तनिक इधर तो आइये सेठजी !'—राजाने साहूकारको बुलाया और उसे सचेत कर सूर्यके सामने उस दस्तावेजको धर दिया ।

साहूकारकी आँखें देखता ही रह गयीं । दस्तावेजपर कोरी सफेद चौकड़ी साफ-साफ दीख रही थी । साहूकारका मुँह फक—स्याह हो गया ।

'बोल, अब सच्चा बोल ! स्याहीकी चौकड़ा तूने कैसे मिटायी थी ?'—राजाने तीक्ष्ण स्वरमें साहूकारसे पूछा । 'गरीबपरवर ! क्षमा करें'—थर थर काँपता साहूकार अपनी काली करतूतका वर्णन करता हुआ बोला—'रोशनाईसे लगायी चौकड़ीका निशान जब गायब हो गया था, उसी समय मैंने उसपर महीन पीसी हुई चीनीके कण चारों ओर छिड़क दी और उस दस्तावेजका कागज चींटियोंके बिलके बिल्कुल पास रख दिया । चींटियोंने चारों तरफकी चौकड़ीपर पड़ी चीनीमें लगी रोशनाई भी चाट ली । चीनीके साथ एक रस बने स्याहीके अणु-अणु चींटियोंने चूस लिये । इस प्रकार सम्पूर्ण चौकड़ी उड़ गयी दीनानाथ !'

यह सुनकर सभी स्तब्ध रह गये । सूर्यदेवकी साक्षीने किसानके प्राणका तथा राजाके न्यायका संरक्षण किया—पटेलको उत्तम न्याय (अमर इनाम) प्राप्त हुआ । इससे महाराव देशलजी (बावा)की दैवी शक्तिके रूपमें उनकी कीर्तिका डंका सम्पूर्ण कच्छराज्यमें बज गया । फिर तो 'देशरा-परमेसरा'का देव-दुर्लभ विरद 'देशलजी बावा'के नामके साथ सदा-सर्वदाके लिये जुड़ गया । बोलिये भगवान् सूर्यनारायणकी जय !

सूर्याराधनसे वेश्याका भी उद्धार

(लेखक—पं० श्रीसोमनाथजी शिमिरे, व्यास)

ततः प्रभृति योऽन्योऽपि रत्यर्थं गृहमागतः ।
स सम्यक् सूर्यवारेण सम पूज्यो यथेच्छया ॥
(—भविष्य, प्र० उ० प० अ० ११)

एक बार धर्मपुत्र महाराज युधिष्ठिरने भगवान् श्रीकृष्णसे वेश्याओंके उद्धारका उपाय पूछा । भगवान्‌ने इसका बड़ा ही सारगर्भित उत्तर दिया । यद्यपि यह एक लम्बा प्रसङ्ग है, पर स्थानाभावसे उसका सारांश मात्र ही यहाँ दिया जा रहा है ।

कोई भी पापस्वभाववाला व्यक्ति सहसा किसी दुष्कर्म या पापसे छूट नहीं सकता, अतः उसको शनैः शनैः छुड़ाया करते हैं । अतएव पुराणोंके सदाचार रूपी वेश्याएँ यदि दो बातोंका नियम पालन करें तो उनका बहुत सुधार हो सकता है ।

पालनीय बातें—

(१) वे दासीके रूपमें भोजन-वस्त्रमात्र लेकर किसी द्विजकी शरण जायें, उसकी आज्ञाकारिणी बनकर, सभ्य महिलाओंकी भाँति अपना शेष जीवन साधनामय बनायें ।

(२) प्रत्येक रविवारको उपवास रखकर किसी शान्त, लोभ निर्मुक्त, राग-द्वेषरहित, वेद पुराणोंके विलक्षण ब्राह्मणसे कथा सुनें, ब्राह्मणोंका सत्कार करें । ऐसा करनेसे वे समस्त दुष्कर्मोंसे एक ही जन्ममें मुक्त हो । लोकसाक्षी, दिनमणि अदितिनन्दन जगदात्मा भगवान् श्रीसूर्यनारायणके कृपा प्रसादसे स्त्रियोंके शान्त वेशभूषितोंको जन्म जन्मोंके उत्तरोत्तर मुक्त होकर अन्तमें अधिकारिणी बनकर भगवद् आनन्दमय मुक्तिपदको प्राप्त कर सकती हैं ।

भगवान् श्रीसूर्यदेवकी उपासनासे विपत्तिसे छुटकारा

(जगद्गुरु शंकराचार्य ज्योतिष्पीठाधीश्वर ब्रह्मलीन पूज्यपाद स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराजका उद्बोधन)

(श्रीसूर्यसम्बन्धी सत्य घटना)

[भारतके सुप्रसिद्ध महान् धर्माचार्य परमपूज्यपाद प्रातःस्मरणीय श्रीमज्जगद्गुरु शंकराचार्य ज्योतिष्पीठाधीश्वर अनन्तश्रीविभूषित ब्रह्मलीन स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराजके श्रीमुखसे सुनी भगवान् श्रीसूर्यसम्बन्धी सत्य घटना और सदुपदेश पाठकोंके लाभार्थ प्रपत्रके (यथास्मृत) अनुसार यहाँ दिये जा रहे हैं।]

श्रीसूर्यकी उपासनाका अद्भुत चमत्कार—

जिज्ञासुका प्रश्न—पूज्यपाद महाराजजी ! मैं बड़ा दुःखी हूँ, मेरा दुःख दूर कैसे हो ?

पूज्य जगद्गुरुजी—तुम किस जातिके हो ?

जिज्ञासु—मैं जातिका ब्राह्मण हूँ।

पूज्य जगद्गुरुजी—तुम ब्राह्मण होकर दुःखी हो, बड़ा आश्चर्य है ? तुम अपने स्वरूपको पहचानो और नित्यप्रति भगवान् श्रीसूर्यका भजन, पूजन, आराधन किया करो तथा भगवान् श्रीसूर्यके मन्त्रका जप करो। सूर्यकी उपासना करोगे तो तुम्हारे समस्त रोग-शोक, दुःख-दारिद्र्य इत्यादि सब तत्काल दूर हो जायँगे। भगवान् श्रीसूर्यकी उपासना करनेसे कौन-सा ऐसा कार्य है कि जो नहीं बन जाता ? भगवान् श्रीसूर्यकी उपासना करनेसे और भगवान् श्रीसूर्यके प्रसन्न हो जानेसे मनुष्यके प्रायः सभी मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं एवं सभी कार्य बन जाते हैं। भगवान् श्रीसूर्यकी महिमा बड़ी अद्भुत तथा विलक्षण है। भगवान् श्रीसूर्यकी उपासना करनेसे यह लोक और परलोक दोनों बन जाते हैं।

जिज्ञासु—महाराजजी ! वास्तवमें भगवान् श्रीसूर्यकी उपासना करनेसे दुःखोंसे और रोग-शोकसे छुटकारा मिल जाता है, क्या यह बात सत्य है ?

पूज्य जगद्गुरुजी—सत्य है और बिल्कुल अक्षरशः सत्य है।

जिज्ञासु—महाराजजी ! यह कैसे होता है, इसको कुछ और समझाकर उपदेश करें।

पूज्य जगद्गुरुजी—इसे जरा ध्यानसे सुनो। एक समयकी बात है कि हम अपने आश्रम दण्डीबाड़ा मठमें ठहरे हुए थे। एक ब्रजवासी ब्राह्मण हमारे पास आया। वह बड़ा पढ़ा-लिखा विद्वान् था, परंतु न तो उसके पास धन था और न उसकी कहीं नौकरी ही लगी थी। वह बड़ा परेशान और दुःखी था। उसने हमसे कहा कि महाराज ! मैं बड़ा दुःखी हूँ और जातिका ब्राह्मण हूँ। अंग्रेजीसे एम० ए० भी हूँ। पर न तो मेरे पास पैसा है और न मुझे कोई नौकरी ही मिल पाती है। इधर मैं रोगी भी रहता हूँ। जिससे मेरे सब रोग-शोक दूर हो जायँ अतः ऐसा कोई उपाय बतानेकी कृपा करें।

पूज्य जगद्गुरुजीने कहा—

'तुम ब्रजवासी ब्राह्मण हो इसलिये हम तुम्हें एक ऐसा उपाय बताते हैं, जिससे तुम्हारे समस्त रोग-शोक दूर हो जायँगे और तुम्हारी समस्त मनःकामना सिद्ध हो जायगी। तुम सब प्रकारसे सुखी हो जाओगे।'

उस ब्राह्मणने कहा कि महाराज ! बड़ी कृपा होगी।

इसपर हमने उससे कहा कि तुम हमारे स्थानपर ही ठहरो और भगवान् श्रीसूर्यकी शरण लो। भगवान् श्रीसूर्यकी उपासना करो। पंद्रह दिनोंतक नित्यप्रति शुद्ध जलसे स्नान करके भगवान् श्रीसूर्यके सामने खड़े होकर सूर्यभगवान्‌को जल दो। उन्हें हाथ जोड़कर साष्टाङ्ग प्रणाम करो और चन्दन पुष्पादिसे नित्यप्रति श्रद्धा-भक्ति सहित उनकी पूजा किया करो। हम जो विधि बतायें, उसके अनुसार श्रीसूर्यमन्त्रका जप, सूर्यके स्तोत्रोंका पाठ और

सूर्यके भक्त बनो, तुम्हारे सब कार्य सिद्ध हो जायँगे। श्रीसूर्योपासनासे कौन-सा ऐसा कार्य है कि जो सिद्ध न हो जाता हो।

उस ब्राह्मणने हमारी बातका विश्वास कर सूर्योपासना करनेका दृढ़ निश्चय कर लिया। वह अंग्रेजी पढ़ा था और फैशनमें रहता था तथा उसके सिरपर चोटी नहीं थी एवं वह चाय भी पीता था। हमने सबसे पहले उसके बाल कटवाकर उसके सिरपर चोटी रखवायी और उससे चाय न पीनेकी प्रतिज्ञा करायी। फिर उसे श्रीसूर्य भगवान्‌के मन्त्र और स्तोत्र बताकर सूर्योपासना करानी प्रारम्भ करा दी।

उसने हमारे बताये अनुसार बड़ी लगन और बड़ी श्रद्धा-भक्तिके साथ भगवान् श्रीसूर्यकी उपासना, उनके मन्त्रका जप और स्तोत्रका पाठ आदि करना प्रारम्भ कर दिया। उसके विधिपूर्वक श्रीसूर्योपासना करनेका प्रत्यक्ष फल और अद्भुत चमत्कार यह देखनेमें आया कि अभी सूर्योपासना करते पन्द्रह दिन भी पूरे नहीं हुए थे कि उसके घरसे एक तार आया कि तुम्हारी अमुक जगहसे नौकरी लगनेकी सूचना आयी है, इसलिये तुम तुरत वहाँपर पहुँच जाओ और कार्य सँभाल लो। वह यह देखकर आश्चर्यचकित रह गया। उसकी भगवान् सूर्यमें और भी श्रद्धा-भक्ति हो गयी। वह वहाँ गया और ऊँचे पदपर नियुक्त हो गया। वह आगे जाकर मालामाल हो गया। इस प्रकार उसके सब रोग-शोक, दुःख-दारिद्र्य समाप्त हो गये। यह सब भगवान् श्रीसूर्यदेवके भजन-पूजन, जप अनुष्ठान आदि करनेसे और भगवान् श्रीसूर्यके प्रसन्न होनेसे ही हुआ, जो स्वयं हमारी प्रत्यक्ष आँखोंदेखी सत्य घटना है।

भगवान् श्रीसूर्यकी कृपासे सब कुछ प्राप्त हो सकता है। आवश्यकता है कि हम श्रद्धा-भक्तिके साथ विश्वासपूर्वक भगवान् श्रीसूर्यकी उपासना करें।

प्रेषक—भक्त श्रीरामशरणदासजी

सूर्यका महत्त्व

"हैकलने अपनी विश्वपहेली नामक पुस्तकमें लिखा है कि सूर्य प्रकाश और उष्णताके अधिष्ठातृ देवता हैं, जिनका प्रभाव चैतन्य पदार्थोंपर प्रत्यक्ष तथा अज्ञात-रूपसे पड़ता है। आजकलके विज्ञान-वेत्ता सूर्योपासनाको और सब प्रकारके अस्तित्ववादोंसे उत्तम समझते हैं। यह उस प्रकारका अस्तित्ववाद है, जो वर्तमान समयके एक ईश्वरवादमें भी सरलतापूर्वक परिणत हो सकता है। क्योंकि आधुनिक ग्रह-उपग्रहका पदार्थ विज्ञान और पृथ्वीकी उत्पत्ति तथा निर्माणके सिद्धान्त हमको यह बतलाते हैं कि पृथ्वी सूर्यका एक भाग है जो उससे पृथक् हो गया है। अन्तमें कभी-न-कभी पृथ्वी सूर्यसे जा मिलेगी। वास्तवमें हमारा सम्पूर्ण शारीरिक तथा मानसिक जीवन, अन्ततः और सब प्रकारके इन्द्रियवान् पदार्थोंके जीवनकी भाँति, सूर्यके प्रकाश तथा उष्णतापर निर्भर है।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि हजारों वर्ष पहले सूर्योपासक लोग अन्य प्रकारके बहुतसे एकेश्वरवादियोंसे मानसिक तथा आध्यात्मिक बातोंमें अधिक बढ़े-चढ़े थे। लेखक जब सन् १८८१ ई०में बम्बईमें था, तब इसने बड़ी श्रद्धापूर्वक पारसी लोगोंको (भी) समुद्रके किनारे खड़े होकर अथवा अपने आसनपर झुककर उदय तथा अस्त होते हुए सूर्यकी पूजा करते देखा था।"

प्रेषक—श्रीरूपरामजी

सूर्य-पूजाकी व्यापकता

(लेखक—डॉ॰ श्रीसुरेशव्रतजी राय, एम्॰ ए॰, डी॰ फिल्॰, एल्-एल्॰ बी॰)

प्रकाश, ताप और ऊर्जाके स्रोत भगवान् भुवनभास्करके सम्मुख मानव आदिकालसे ही श्रद्धावनत रहा है। यदि वे वैज्ञानिकोंके लिये ऊर्जा तथा उष्णताके स्रोत हैं तो भक्तोंके लिये जीवनदाता, खगोल-शास्त्रियोंके लिये सौर-मण्डलके केन्द्र-बिन्दु और कवियोंको सात चपल अश्वों तथा सहस्र किरणोंवाले रश्मिरथीकी कल्पनामें मुग्ध करनेवाले दिव्य प्राणी हैं। (अपने देशमें) प्रातःकाल एवं संधिवेलामें किसी सरिता, सरोवरमें कमरतक जलके बीच अथवा भूमिपर ही खड़े होकर सूर्यको अर्घ्य अर्पित करने एवं सूर्य-नमस्कार करनेकी परम्परा आदिकालसे ही चली आ रही है। सभी वर्ग, जाति, धर्म और देशोंमें किसी-न-किसी रूपमें सूर्य-पूजा प्रचलित रही है तथा आज भी है। फारसमें अग्नि एवं सूर्योपासना-परम्परा अत्यन्त प्राचीन रही है। मैक्सिको-वासियोंकी मान्यतानुसार विश्वकी सृजनशक्तिका मूल सूर्य ही है। यूनानमें प्रचलित अपोलो (Apolo) तथा डेयाना (Diana) उपाख्यान सूर्योपासनाकी ओर संकेत करते हैं। अपने देशमें सौरोपासनाका अलग सम्प्रदाय ही रहा है। शैव-सूर्योपासनाका भी अलग सम्प्रदाय है। शैव सूर्योपासनाको अपनी उपासना-पद्धतिका अभिन्न अङ्ग मानते हैं। कालान्तरमें शैव-धर्मकी प्रधानताके कारण सौरोपासना गौण हो गयी। त्रेतायुगमें सूर्यवंशी-परम्परा भुवनभास्कर-जैसी देदीप्यमान रही। दिलीप, रघु, अज, दशरथ, राम सूर्यवंशके उल्लेखनीय नरेश थे। महारथी कर्ण सूर्य-पुत्र थे।

कोणार्क-जैसे सूर्य-मन्दिरोंमें एवं अन्यत्र सूर्य-प्रतिमाओंके रूपमें सूर्य-पूजाकी परम्परा अत्यन्त प्राचीनकालसे मिलती है। कहीं प्रतीक, कहीं मानव-रूपमें सूर्यका अङ्कन मिलता है। चक्रको प्राय सूर्यके प्रतीकात्मकरूपमें व्यक्त किया गया है। सुदर्शन-चक्रसे कहीं-कहीं तेज किरणें प्रस्फुटित होती दिखायी गयी हैं। वैदिककालमें सूर्यको नारायण भी कहा जाता था। अनेक प्राचीनकालीन (Punch marked) आहतचिह्नयुक्त सिक्कोंपर चक्र सूर्यके प्रतीकरूपमें अङ्कित मिलता है। इसी श्रेणीके कुछ सिक्कों तथा ऐरणसे प्राप्त तीसरी शताब्दी ईसापूर्वके सिक्कोंपर सूर्यको कमलके प्रतीक रूपमें अङ्कित किया गया है। सम्भवतः इस कारण सूर्यकी परवर्तीकालीन मानव-प्रतिमाओंके हाथमें कमल-पुष्प मिलता है। गर्गकुण्ड चोलपुरमें स्थित मन्दिरके निकट कमलके आकारकी विशाल प्रस्तर-प्रतिमा सूर्यकी प्रतीकात्मक अभिव्यक्तिको पुष्ट करती है। १०वीं शताब्दीकी इस प्रतिमाके चारों ओर सूर्यसे सम्बद्ध ऊषा, प्रत्यूषा-जैसी देवी-देवताओंकी मूर्तियाँ अङ्कित हैं। ब्रह्मोहिफ मित्र तथा भानुमित्रके सिक्कोंपर, तृतीय शताब्दी ई॰ पू॰की कर्दनामक जनजातिक सिक्कोंमें सूर्यका सोलर डिस्क अर्थात् वेदिका-जैसी पीठिकापर स्थित सूर्यका अङ्कन मिलता है। भीटा वसाढ़, राजघाटकी खुदाईमें प्राप्त सिक्कोंपर सूर्यके वृत्तको अग्निकुण्डके समीप पीठिकाके ऊपर अङ्कित दिखाया गया है।

मानवरूपमें सूर्यकी प्रतिमा पश्चिमी भारतके भौंगा नामक स्थानमें प्राप्त हुई है। इसके अतिरिक्त सूर्यकी मानवमूर्तियाँ खण्डगिरिकी गुफा (उड़ीसा) तथा बोध गयामें भी प्राप्त हुई हैं। खण्डगिरिकी जैनी-गुफा तथा बौद्धस्तूपकी वेदिकापर प्राप्त प्रतिमाओंसे प्रतीत होता है कि सूर्योपासना-पद्धति न केवल ब्राह्मणोंमें प्रत्युत बौद्ध एवं जैन-सम्प्रदायोंमें भी प्रचलित थी। बोधगयामें प्राप्त प्रथम शताब्दी ई॰ पू॰की सूर्य-प्रतिमामें सूर्यको एक

रथपर आसीन प्रस्तुत किया गया है, जिसे खींचनेवाले चार घोड़े चार युगोंके प्रतीक हैं। रथमें एक ही पहिया है, जिसे वर्षका प्रतीक माना गया है। रथके दोनों ओर दो स्त्रियोंकी आकृतियाँ, सम्भवतः ऊषा एवं प्रत्यूषा धनुषको प्रत्यञ्चापर चढ़ाये प्रदर्शित की गयी हैं। इन सूर्य पत्नियोंको प्रातः एवं सायंकाल दो पक्ष माना गया है। रथके नीचे सम्भवतः अन्धकारके प्रतीकरूपमें दैत्याकार मानवकी प्रतिमा प्रस्तुत की गयी है, जिसे कुचलता, नष्ट करता हुआ रथ आगे बढ़ रहा है। चार घोड़ोंवाले रथपर आसीन सूर्य शक तथा यूनानी परम्परामें भी मिलता है। कुछ ऐसा ही चित्रण पटनामें प्राप्त मुहरोंपर भी मिला है। पश्चिमी भारत (भाँजा)में प्राप्त बोध गयाकी सूर्य-प्रतिमासे मिलती-जुलती मूर्ति भी समकालीन है। कानपुरके समीप लालभगतसे प्राप्त प्रथम अथवा दूसरी शताब्दीकी सूर्य-प्रतिमामें अनेक परिवर्तन मिलते हैं। रथासीन सूर्यको खड़ेकी अपेक्षा बैठी मुद्रामें प्रस्तुत किया गया है। दायीं तथा बाँयीं ओर खड़ी स्त्रियाँ प्रत्यञ्चापर चढ़ाये धनुषकी अपेक्षा एक सूर्यभगवान्‌पर छत्र ताने है और दूसरी चँवर डुला रही है। तीन स्त्रियाँ नीचे खड़ी दिखलायी गयी हैं। अर्थात् सूर्यकी पाँच पत्नियाँ प्रस्तुत की गयी हैं। घोड़े एक दैत्यके मस्तकसे उछलते हुए प्रस्तुत किये गये हैं। भुवनेश्वरके समीप उड़ीसामें जैन-गुफाके खण्डगिरि-समूहमें अनन्त गुफासे प्रथम शताब्दीकी एक प्रतिमा मिली है। इन प्रतिमाओंमें प्रस्तुत सूर्यका रूप यूनानी देवता अपलोंसे बहुत कुछ मिलता है। इनके अतिरिक्त एलोरा-गुफाकी सूर्यमूर्ति, मन्दसौरमें पाँचवीं शताब्दीमें स्थापित सूर्य-मन्दिर, छठी शताब्दीमें मिहिरकुलके पन्द्रहवें राजाद्वारा स्थापित सूर्य-मन्दिर, ८वीं शताब्दीमें ललितादित्यके 'मार्तण्ड-प्रासाद', पालवंशीय शासनकालकी सूर्य-मूर्तियाँ, ११वीं शताब्दीमें अनेक सूर्य-मन्दिरोंकी स्थापनासे सूर्य-पूजनके व्यापक प्रचलनका परिचय मिलता है।

कतिपय परवर्ती सूर्य प्रतिमाओंपर विदेशी प्रभाव परिलक्षित होता है, जैसे भारीभरकम पहिने जिरजिस जैसे पैण्ट, बूट अथवा जूते धारण किये सूर्य प्रतिमा दिखायी गयी है। कलकत्ता संग्रहालयमें एक ऐसी ही प्रतिमा सुरक्षित है। इन मूर्तियोंमें अपनी अलग-अलग विशेषताएँ मिलती हैं। मथुरामें प्राप्त कुषाणकालीन सूर्य-प्रतिमामें चार अश्वोंके रथपर आसीन सूर्यके एक हाथमें कमल है और दूसरे हाथमें तलवार लिये लम्बा कोट और आच्छन्नपद भास्करके दोनों स्कन्धोंसे गरुड़की भाँति एक-एक पंख लगे हैं। प्रथम तथा द्वितीय शताब्दीमें स्वदेशी तथा विदेशी तत्त्वोंका समन्वय अद्भुत है। मथुरासे ही प्राप्त कुछ अन्य सूर्य प्रतिमायें सूर्यकी वेशभूषा शकोंजैसी है। शरीर आच्छन्न है और स्कन्धोंसे पंख नहीं लगे हैं, बाँयें हाथमें कमलकलिका और दाँयेंमें खड्ग है। यहाँ सूर्यरथमें चारके स्थानपर दो घोड़े दिखलाये गये हैं।

राजशाही बंगालके नियामतपुर, कुमारपुर, मध्यप्रदेशके नागौदमें भूमरासे प्राप्त गुप्तकालीन सूर्य-प्रतिमाओंपर कुषाणकालकी भाँति विदेशी प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। ये मूर्तियाँ रथपर सवार न होकर अलग खड़ी मुद्रामें हैं, साथमें क्रमशः दण्ड और कमल, लेखनी तथा दावात लिये, विदेशी-परिधानमें दण्डी एवं पिंगलकी प्रतिमाएँ अनुचररूपमें हैं। दण्डी तथा पिङ्गल लम्बे कोट (चोलक) एवं बूट (उपानह) पहिने हैं। मथुरासे प्राप्त गुप्तकालीन एक अन्य सूर्य-प्रतिमाके शरीरका मध्यभाग पुष्पमालासे अलंकृत है, जिसे सूर्य अपने दोनों हाथोंसे पकड़े हैं। गुप्तकालके पश्चात् सूर्यके साथ ऊषा, प्रत्यूषा, दण्डी, पिंगल, सारथी, अरुण सम्बद्ध हो गये पैरोंसे बूट उतर गये और उन्हें छिपा दिया गया। गुप्तकालीन संगमरमरकी एक सूर्य-प्रतिमामें अरुणको सारथीरूपमें अङ्कित किया गया है, दोनों हाथोंमें कमल है। राजशाही

सुरक्षित एवं बोगरामें प्राप्त गुप्तकालीन सूर्यकी नीली पाषाण-प्रतिमाके साथ सारथी अरुण, धनुर्धारिणी ऊषा, प्रत्यूषा विराजमान हैं। सूर्य निरजिस अथवा कोटके स्थानपर धोती पहिन हैं, जो कमरमें बंधी है, पैर रथकी पीठिकामें छिप गये हैं तथा किरीट-मुकुट एवं अलङ्करण युक्त सूर्यप्रतिमा अत्यन्त भव्य है। दोनों हाथोंमें सनाल कमलके फूलोंके गुच्छेसहित सूर्यके पीछे प्रभामण्डल दर्शकोंपर अपनी दिव्य छाप छोड़ता है। चौबीस परगना (बंगाल) के काशीपुर नामक स्थानमें प्राप्त सूर्यप्रतिमा विशुद्ध भारतीय वेश भूषामें है, परन्तु रथमें चारकी अपेक्षा सात घोड़े हैं, यद्यपि पहिया एक ही है और रथके नीचे दो दानव अङ्कित किये गये हैं, अरुण सारथीके रूपमें विराजमान हैं।

मध्यकालमें सूर्यपूजाका गुजरात, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल, उड़ीसामें व्यापक प्रचलन था। सम्भवतः इस कारण गुजरातमें मुढेरा-मन्दिर, मध्यप्रदेशमें खजुराहोका चित्रगुप्त-मन्दिर तथा उड़ीसामें कोणार्क-मन्दिरोंका निर्माण हुआ। मध्ययुगीन अधिकांश सूर्य प्रतिमाएँ खड़ी मुद्रामें मिलती हैं। एकाकी अथवा दो आकृतियोंवाली साधारण सूर्य-प्रतिमाएँ बिहार और खिचिंगमें प्राप्त हुई हैं। उड़ीसाके खिचिंग नामक स्थानमें प्राप्त १२वीं शताब्दीकी प्रतिमामें अलङ्करण, किरीटयुक्त, उदीच्यवेशधारी सूर्य पद्मासनपर खड़े दिखलाये गये हैं। दोनों हाथोंमें कन्धोंकी ऊँचाईतक पूर्णतः खिले कमल हैं। पीठिकामें सात घोड़ोंवाला एक पहियेवाला रथ अङ्कित है। मुख्यतः सूर्यके साथ ऊषा प्रत्यूषा, दण्डी, पिङ्गल तथा सारथि अरुण भी दिखलाये गये हैं। खिचिंगमें ही प्राप्त अन्य प्रतिमामें कोई परिचारिका नहीं है। दक्षिणी भारतके उत्तरी अर्काट (गुडीमल्लम)के परशुरामेश्वर-मन्दिरकी सूर्य-प्रतिमामें सूर्य जूता पहिने पद्मासनपर खड़े हैं। सातवीं शताब्दीकी इस प्रतिमाके साथ अनुचर, परिचारिकाएँ, सात अश्वोंवाले रथ तथा सारथि अरुणका अङ्कन नहीं हुआ है। सूर्यके दोनों हाथोंमें कमलकी अपेक्षा कलश दिखलाये गये हैं।

अधिकांश मध्यम रचनाओंमें सहायकोंका अङ्कन मिलता है। बिहारसे प्राप्त एक ऐसी प्रतिमामें एक चक्रवाले सप्ताश्वरथके अतिरिक्त सूर्यके साथ दण्डी, पिङ्गल, ऊषा, अरुण, शर-संधान किये दो स्त्रियाँ तथा दो विद्याधरियाँ अङ्कित मिलती हैं। अजमेरसे प्राप्त एक प्रतिमामें परिचारिकाओंके अतिरिक्त सूर्यके साथ राज्ञी तथा निक्षुभा-दो स्त्रियाँ भी दिखलायी गयी हैं। इनमें सूर्य तथा सारथि अरुणके बीच ऊषा दिग्दर्शित की गयी है। क्लिष्ट अथवा उत्तम श्रेणीकी सूर्य-प्रतिमामें सहायक मूर्तियोंकी संख्या बढ़ती गयी। प्रकृति जगत्का जीवनदाता होनेके कारण सूर्यके साथ प्रकृति-नायक सभी देवी-देवताओंकी प्रतिष्ठा होने लगी, जैसे कीर्तिमुख, बारह राशियाँ, आठ ग्रह (सूर्यको छोड़कर), छः ऋतुएँ, ग्यारह आदित्य, सप्तमातृकाएँ, गणेश, कार्तिकेय आदि। जूनागढ़ संग्रहालयमें सुरक्षित ऐसी एक सूर्यप्रतिमामें सूर्यके साथ अपनी पत्नियोंसहित सम आदित्य तथा शुक्र, शनि, राहु, केतु अङ्कित किये गये हैं। बंगालके रानीर नामक स्थानसे प्राप्त सूर्यप्रतिमामें रथासीन, प्रभामण्डलयुक्त सूर्यके साथ दण्डी, पिङ्गल, दोनों पत्नियोंके अतिरिक्त बारह आदित्यों, गन्धर्वों तथा ऋषिमुनियोंका अङ्कन हुआ है। सोनगढ़से प्राप्त सूर्यप्रतिमाके साथ दण्डी एवं पिङ्गल परस्पर प्रायः रूप किताओंकी ओर मुख किये, शर-संधान-मुद्रामें दो आकृतियाँ अर्धवृत्ताकारमें बारह आदित्यों, नीचे अष्टमातृकाओं, ऊपर सूर्यकी अर्चना-मुद्रामें रत मनुओं सोमी और न सप्तर्षि एकदम ऊपर गणेश और कार्तिकेयका अङ्कन हुआ है।

क्रमशः मध्योत्तरकालतक आते आते कारण मूर्तोपासनाके साथ अन्य उपासना-पद्धतियों तथा

सम्प्रदायोंके समन्वयका प्रयास मिलता है। यह प्रवृत्ति सूर्य प्रतिमाओंमें विशेष परिलक्षित हुई है। ऐसी प्रतिमाओंमें आधे भागमें एक तथा दूसरे भागमें अन्य देवी-देवताओं तथा उनके चिह्नोंका अङ्कन होता है। जैसे अर्धनारीश्वरकी प्रतिमा अथवा विशिष्ट देवी देवताकी अनेक भुजाएँ दिग्दर्शित कर प्रत्येक भुजामें अलग-अलग देवी-देवताओंके प्रतीकात्मक अस्त्र-शस्त्र देकर एक ही प्रतिमामें अनेकके समन्वयका प्रयास मिलता है, जैसे सुदर्शनचक्र, त्रिशूल, कमल, क्रमश विष्णु, शिव एव सूर्यके प्रतीक माने जाते हैं। इस शैलीकी प्रेरणा सम्भवत दुर्गा सप्तशती अथवा भागवतपुराणमें महिषासुरमर्दिनीके आविर्भावकी कथासे मिली होगी। ऐसी मूर्तियोंमें सूर्य-लोकेश्वर, सूर्यशिव, हरिहर, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य उल्लेखनीय हैं। बुन्देलखण्डके मथई नामक स्थानमें प्राप्त सूर्यप्रतिमाकी छ भुजाएँ दिखलायी गयी हैं, जिनमें कमल, त्रिशूल धारण किये ह तथा अन्य हाथ पद्म और वरदकी मुद्रामें हैं। पैरोंका आच्छन्न होना स्पष्ट ब्रह्मा, विष्णु, महेशके उपासना-सम्प्रदायोंमें समन्वय-का द्योतक है। राजशाही सग्रहालयमें सुरक्षित १२वीं शताब्दीकी मार्तण्डभैरवप्रतिमाके तीन मुख हैं। रौद्र, शान्त और वीरभाव प्रस्तुत करनेवाले दस हाथ हैं, जिनमें कमल, त्रिशूल, शक्ति, डमरू, खर्व, खड्ग आदि धारण किये हैं। खजुराहोके दूलादेव-मन्दिरमें शिव, सूर्य तथा ब्रह्माकी एव चिदम्बरम्-मन्दिरमें विष्णु, शिव तथा सूर्यकी प्रतिमाएँ मिलती हैं। खजुराहोकी सयुक्त मूर्तिकी आठ भुजाएँ हैं, दो भुजाओंमें पूर्ण विकसित कमल हैं। दो भुजाएँ टूटी हुई हैं। शेषमें त्रिशूल, अक्षमाल और कमण्डलु हैं।

आदिकालसे ही मानवजाति भारत ही क्या विश्वके कोने-कोनेमें जीवनदाता सूर्यके प्रति श्रद्धावनत रही है, चाहे कोणार्क-मन्दिर हो, चाहे अन्य कोई मन्दिर, सर्वत्र अपने आराध्यकी विभिन्न रूपोंमें कल्पना की गयी है, जबतक सृष्टिमें जीवन है, सूर्यकी अर्चना होती रहेगी।

गयाके तीर्थ

सूर्यकुण्ड—विष्णुपदके मन्दिरसे करीब १७५ गज उत्तर, ९५ गज लम्बी और ६० गज चौड़ी दीवारसे घिरा हुआ सूर्यकुण्ड नामक एक सरोवर है। उसके चारों ओर नीचेतक सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। कुण्डका उत्तरी भाग उदीची, मध्यका कनखल और दक्षिणका दक्षिण मानस तीर्थ कहा जाता है। तीनों स्थानोंपर तीन वेदियोंमें अलग-अलग पिण्डदान होते हैं। सूर्यकुण्डके पश्चिम एक मन्दिरमें सूर्यनारायणकी चतुर्भुज-मूर्ति खड़ी है, जिसको दक्षिणार्क कहते हैं। × × × × ×

गायत्रीदेवी—विष्णुपदके मन्दिरसे लगभग आधा मील उत्तर, फल्गु नदीके किनारे गायत्रीघाट है। नीचेसे ऊपर घाटमें ६८ सीढ़ियाँ लगी हुई हैं। ग्यारह सीढ़ियाँ चढ़नेपर गायत्रीदेवीका मन्दिर मिलता है। यह मन्दिर और घाट सन् १८०० ई० में दौलतराम माधवजी सेंधियाके पोते सेठ खुशहाल चतुर्थी स्त्रीने गयामें बनवाया था। गायत्री मन्दिरसे उत्तर लक्ष्मीनारायणका एक मन्दिर है। इसीके समीप यमनीघाटपर फल्गोश्वर (फल्गीश्वर) शिवका मन्दिर है। दक्षिणकी ओर एक मन्दिरमें सूर्यनारायणकी चतुर्भुज मूर्ति है जिसे लोग 'गयादित्य'के नामसे पुकारते हैं।

'भारतके तीर्थ'से साभार

सुरक्षित एवं बोगरामें प्राप्त गुप्तकालीन सूर्यकी नीली पाषाण-प्रतिमाके साथ सारथी अरुण, धनुर्धारिणी ऊषा, प्रत्यूषा विराजमान हैं। सूर्य निरजिस अथवा फ्रोटक स्थानपर धोती पहिन हैं, जो कमरमें कसी है, पैर रथकी पीठिकामें छिप गये हैं तथा किरीट-मुकुट एवं अलङ्करण-युक्त सूर्यप्रतिमा अत्यन्त भव्य है। दोनों हाथोंमें सनाल कमलके फूलोंके गुच्छेसहित सूर्यके पीछे प्रभामण्डल दर्शकोंपर अपना दिव्य छाप छोड़ता है। चौबीस परगना (बंगाल) के काशीपुर नामक स्थानमें प्राप्त सूर्यप्रतिमा विशुद्ध भारतीय वेश-भूषामें है, परंतु रथमें चारकी अपेक्षा सात घोड़े हैं, यद्यपि पहिया एक ही है और रथके नीचे दो दानव अङ्कित किये गये हैं, अरुण सारथीके रूपमें विराजमान हैं।

मध्यकालमें सूर्यपूजाका गुजरात, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल, उड़ीसामें व्यापक प्रचलन था। सम्भवतः इस कारण गुजरातमें मुढ़ेरा-मन्दिर, मध्यप्रदेशमें खजुराहोका चित्रगुप्त-मन्दिर तथा उड़ीसामें कोणार्क-मन्दिरोंका निर्माण हुआ। मध्ययुगीन अधिकांश सूर्य प्रतिमाएँ खड़ी मुद्रामें मिलती हैं। एककी अथवा दो आकृतियोंवाली साधारण सूर्य-प्रतिमाएँ बिहार और खिचिंगमें प्राप्त हुई हैं। उड़ीसाके खिचिंग नामक स्थानमें प्राप्त १२वीं शताब्दीकी प्रतिमामें अलङ्करण, किरीटयुक्त, उदीच्यवेशधारी सूर्य पद्मासनपर खड़े दिखलाये गये हैं। दोनों हाथोंमें कमलोंकी ऊँचाईतक पूर्णतः खिले कमल हैं। पीठिकामें सात घोड़ोंवाला एक पहियेका रथ अङ्कित है। मुस्कुराते सूर्यके साथ ऊषा, प्रत्यूषा, दण्डी, पिंगल तथा सारथि अरुण भी दिखलाये गये हैं। खिचिंगमें ही प्राप्त अन्य प्रतिमामें कोई परिचारिका नहीं है। दक्षिणी भारतके उत्तरी अर्काट (गुडीमल-)के परशुरामेश्वर-मन्दिरकी सूर्य प्रतिमामें सूर्य जूता पहिने पद्मासनपर खड़े हैं। सातवीं शताब्दीकी इस प्रतिमाके साथ अनुचर, परिचारिकाएँ, सात अश्वोंवाले रथ तथा सारथि अरुणका अङ्कन नहीं हुआ है। सूर्यके दोनों हाथोंमें कमलकी अपेक्षा कलश दिखलाये गये हैं।

अधिकांश मध्यम रचनाओंमें सहायकोंका अङ्कन मिलता है। बिहारसे प्राप्त एक ऐसी प्रतिमामें एक चक्रवाले सप्ताश्वरथके अतिरिक्त सूर्यके साथ दण्डी, पिंगल, ऊषा, अरुण, शर-संधान किये दो स्त्रियाँ तथा दो विद्याधरियाँ अङ्कित मिलती हैं। अजमेरसे प्राप्त एक प्रतिमामें परिचारिकाओंके अतिरिक्त सूर्यके साथ राज्ञी तथा निक्षुभा—दो स्त्रियाँ भी दिखलायी गयी हैं। इनमें सूर्य तथा सारथि अरुणके बीच ऊषा दिग्दर्शित की गयी हैं। क्लिष्ट अथवा उत्तम श्रेणीकी सूर्य-प्रतिमामें सहायक मूर्तियोंकी संख्या बढ़ती गयी। प्रकृति-जगत्‌का जीवन-दाता होनेके कारण सूर्यके साथ प्रकृति-जगत्‌के सभी देवी-देवताओंकी प्रतिष्ठा होने लगी, जैसे कीर्तिमुख, बारह राशियाँ, आठ ग्रह (सूर्यको छोड़कर), छः ऋतुएँ, ग्यारह आदित्य, अष्टमातृकाएँ, गणेश, कार्तिकेय आदि। जूनागढ़ संग्रहालयमें सुरक्षित ऐसी एक सूर्यप्रतिमामें सूर्यके साथ अपनी पत्नियोंसहित दस आदित्य तथा शुक्र, शनि, राहु, केतु अङ्कित किये गये हैं। बंगालके राजौर नामक स्थानसे प्राप्त सूर्यप्रतिमामें रथासीन प्रभामण्डलयुक्त सूर्यके साथ दण्डी, पिंगल, दोनों पत्नियाँके अतिरिक्त बारह आदित्यो, गन्धर्वों तथा कीर्तिमुखका अङ्कन हुआ है। सोनगरसे प्राप्त सूर्यप्रतिमाके साथ दण्डी एवं पिङ्गल परस्पर प्रतिकूल दिशाओंकी ओर मुख किये, शर-संधान-मुद्रामें दो आकृतियाँ, अर्द्धवृत्ताकाररूपमें बारह आदित्यों, नीचे अष्टमातृकाओं, ऊपर सूर्यकी अर्चना-मुद्रामें षट् ऋतुओं, दायीं और नव ग्रहों और एकदम ऊपर गणेश और कार्तिकेयका अङ्कन हुआ है।

क्रमशः सूर्योपासनाका महत्त्व बढ़ते जानेके कारण सूर्योपासनाके साथ अन्य उपासना-पद्धतियों तथा

सम्प्रदायोंके समन्वयका प्रयास मिलता है। यह प्रवृत्ति सूर्य प्रतिमाओंमें विशेष परिलक्षित हुई है। ऐसी प्रतिमाओंमें आधे भागमें एक तथा दूसरे भागमें अन्य देवी-देवताओं तथा उनके चिह्नोंका अङ्कन होता है। जैसे अर्धनारीश्वरकी प्रतिमा अथवा विशिष्ट देवी देवताकी अनेक भुजाएँ दिग्दर्शित कर प्रत्येक भुजामें अलग-अलग देवी-देवताओंके प्रतीकात्मक अस्त्र-शस्त्र देकर एक ही प्रतिमामें अनेकके समन्वयका प्रयास मिलता है, जैसे सुदर्शनचक्र, त्रिशूल, कमल, क्रमशः विष्णु, शिव एवं सूर्यके प्रतीक माने जाते हैं। इस शैलीकी प्रेरणा सम्भवतः दुर्गा सप्तशती अथवा भागवतपुराणमें महिषासुरमर्दिनीके आविर्भावकी कथासे मिली होगी। ऐसी मूर्तियोंमें सूर्य-लोकेश्वर, सूर्यगिरि, हरिहर, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य उल्लेखनीय हैं। बुन्देलखण्डके मयई नामक स्थानमें प्राप्त सूर्यप्रतिमाकी छः भुजाएँ दिखलायी गयी हैं, जिनमें कमल, त्रिशूल धारण किये हैं तथा अन्य हाथ पद्म और वरदकी मुद्रामें हैं। पैरोंका आच्छन्न होना स्पष्ट ब्रह्मा, विष्णु, महेशके उपासना-सम्प्रदायोंमें समन्वय का द्योतक है। राजशाही संग्रहालयमें सुरक्षित १२वीं शताब्दीकी मार्तण्डभैरवप्रतिमाके तीन मुख हैं। रौद्र, शान्त और वीरभाव प्रस्तुत करनेवाले दस हाथ हैं, जिनमें कमल, त्रिशूल, शक्ति, डमरू, खर्व, खड्ग आदि धारण किये हैं। खजुराहोके दूलादेव-मन्दिरमें शिव, सूर्य तथा ब्रह्माकी एवं चिदम्बरम्-मन्दिरमें विष्णु, शिव तथा सूर्यकी प्रतिमाएँ मिलती हैं। खजुराहोकी संयुक्त मूर्तिकी आठ भुजाएँ हैं, दो भुजाओंमें पूर्ण विकसित कमल हैं। दो भुजाएँ टूटी हुई हैं। शेषमें त्रिशूल, अक्षमाल और कमण्डलु हैं।

आदिकालसे ही मानवजाति भारत ही क्या विश्वके कोने-कोनेमें जीवनदाता सूर्यके प्रति श्रद्धावनत रही है, चाहे कोणार्क-मन्दिर हो, चाहे अन्य कोई मन्दिर, सर्वत्र अपने आराध्यकी विभिन्न रूपोंमें कल्पना की गयी है, जबतक सृष्टिमें जीवन है, सूर्यकी अर्चना होती रहेगी।

गयाके तीर्थ

सूर्यकुण्ड—विष्णुपदके मन्दिरसे करीब १७१ गज उत्तर, ९१ गज लम्बी और ६० गज चौड़ी दीवारसे घिरा हुआ सूर्यकुण्ड नामक एक सरोवर है। उसके चारों ओर नीचेतक सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। कुण्डका उत्तरी भाग उदीची, मध्यका कनखल और दक्षिणका दक्षिण-मानस-तीर्थ कहा जाता है। तीनों स्थानोंपर तीन वेदियोंमें अलग अलग पिण्डदान होते हैं। सूर्यकुण्डके पश्चिम एक मन्दिरमें सूर्यनारायणकी चतुर्भुज मूर्ति खड़ी है, जिसको दक्षिणार्क कहते हैं। × × × × ×

गायत्रीदेवी—विष्णुपदके मन्दिरसे लगभग आधा मील उत्तर, फल्गु नदीके किनारे गायत्रीघाट है। नीचेसे ऊपर घाटमें ६८ सीढ़ियाँ लगी हुई हैं। ग्यारह सीढ़ियाँ चढ़नेपर गायत्रीदेवीका मन्दिर मिलता है। यह मन्दिर और घाट सन १८०० ई० में दौलतराम माधवजी सेंधियाके पोते सेठ खुशहाल चन्द्रकी स्त्रीने गयामें बनवाया था। गायत्री मन्दिरसे उत्तर लक्ष्मीनारायणका एक मन्दिर है। इसीके समीप ब्रह्मनीघाटपर फल्गीश्वर (फल्गोश्वर) शिवका मन्दिर है। दक्षिणकी ओर एक मन्दिरमें सूर्यनारायणकी चतुर्भुज मूर्ति है जिसे लोग 'गयादित्य' के नामसे पुकारते हैं।

(भारतके तीर्थसे)

सूर्य-पूजाकी परम्परा और प्रतिमाएँ

(लेखक—आचार्य पं० श्रीबलदेवजी उपाध्याय)

सूर्य हिंदुओंके पञ्चदेवोंमें एक हैं। ऋग्वेदमें सूर्यको जगत्की आत्मा कहा गया है—

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।(—ऋक्० १। ११५। १)

वैदिक साहित्यमें सूर्यका विशद वर्णन है और वैदिक आख्यानोंके आधारपर ही पुराणोंमें विशेषकर भविष्य, अग्नि और मत्स्यमें सूर्य-सम्बन्धी परम्पराओंका विकास हुआ है। सूर्योपनिषद्में सूर्यको ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रका ही रूप माना गया है—

एष ब्रह्मा च विष्णुश्च रुद्र एष हि भास्करः।

वैसे तो द्वादशादित्यकी गणना शतपथ ब्राह्मणमें भी है, किंतु पुराणोंमें द्वादशादित्यकी संख्या और नामावली अपेक्षाकृत स्पष्ट हो गयी थी। इनके नाम क्रमश धातृ, मित्र, अर्यमन्, रुद्र, वरुण, सूर्य, भग, विवस्वान्, सविता, त्वष्टा और विष्णु मिलते हैं। मित्र तथा अर्यमन्के नामसे सूर्यकी पूजा ईरानियोंमें भी प्रचलित थी।

सूर्य-सम्बन्धी कई पौराणिक आख्यानोंका मूल वैदिक है। सूर्यकी उपासनाका इतिहास भी वैदिक है। उत्तर वैदिक साहित्य और रामायण-महाभारतमें भी सूर्यकी उपासनाकी बहुश चर्चा है। गुप्तकालके पूर्वसे ही सूर्यके उपासकोंका एक सम्प्रदाय उठ खड़ा हुआ था, जो 'सौर' नामसे प्रसिद्ध था। सौर सम्प्रदायके उपासक उपास्य देवके प्रति अनन्य आस्थाके कारण सूर्यको आदिदेवके रूपमें मानने लगे। भौगोलिक दृष्टिसे भी भारतमें सूर्योपासना व्यापक रही। मुल्तान, मथुरा, कोणार्क, कश्मीर, उज्जयिनी, मोढेरा (गुजरात) आदिमें सूर्योपासकोंके प्रसिद्ध केन्द्र थे। राजवंशोंमें भी कतिपय राजा सूर्यभक्त थे। मैत्रक राजवंश और पुष्यभूतिके कई राजा 'परम आदित्य-भक्त'के रूपमें माने जाते थे।

सूर्योपासनाका आरम्भिक स्वरूप प्रतीकात्मक था। सूर्यका प्रतीकत्व चक्र, कमल आदिसे व्यक्त किया जाता था। इन प्रतीकोंको विधिवत् मूर्तिकी ही तरह प्रतिष्ठित किया जाता था, जैसा कि पाञ्चालके मित्र राजाओंके सिक्कोंसे पता चलता है। मूर्तिरूपमें सूर्यकी प्रतिमाका प्रथम प्रमाण बोधगयाकी कलामें है। वहाँ सूर्य एक-चक्र रथपर आरूढ़ हैं। इस रथमें चार अश्व जुते हैं। ऊषा और प्रत्यूषा सूर्यके दोनों ओर खड़ी हैं। अन्धकाररूपी दैत्य भी प्रदर्शित है। बौद्धोंमें भी सूर्योपासना होती थी। भाजाकी बौद्ध-गुफामें सूर्यकी प्रतिमा बोध-गयाकी परम्परामें ही बनी है। इन दोनों प्रतिमाओंका काल ईसापूर्वकी प्रथम शती है। बौद्धोंकी ही तरह जैन-गुफामें भी सूर्यकी प्रतिमा मिली है। खंडगिरि (उड़ीसा) के अनन्त गुफामें सूर्यकी जो प्रतिमा है (दूसरी शती ईसवीकी) वह भी भाजा और बोध-गयाकी ही परम्परामें है। चार अश्वोंसे युक्त एकचक्र रथारूढ सूर्यकी प्रतिमा मिली है। गंधारसे प्राप्त सूर्यकी प्रतिमाकी एक विशेषता यह भी है कि सूर्यके चरणको जूतोंसे युक्त बनाया गया है। इस परम्पराका परिपालन मथुराकी सूर्य-मूर्तियोंमें भी किया गया है। मथुरामें बनी सूर्य-प्रतिमाओंको उदीच्यवेशमें बनाया गया है। बृहत्संहितामें उदीच्यवेश या शैलीमें सूर्य-प्रतिमाके निर्माणका विधान इस प्रकार है—

नासाललाटजङ्घोरुगण्डवक्षांसि चोन्नतानि रवेः।
कुर्यादुदीच्यवेशं गूढं पादादुरो यावत्॥
बिभ्राणः स्वकररुहे बाहुभ्यां पङ्कजे मुकुटधारी।
कुण्डलभूषितवदनः प्रलम्बहारो वियद्गवृतः॥
कमलोदरद्युतिमुखः कञ्चुकगुप्तः स्मितप्रसन्नमुखः।
रत्नोज्ज्वलप्रभामण्डलश्च कर्तुः शुभकरोऽर्कः॥
(—बृहत्संहिता ५७। ४६-४८)

पुराणमें सूर्यकी प्रतिमाका जो विधान वर्णित है उसमें इसकी भी चर्चा है। उदीच्य-वेशमें स्थापत्य सूर्यकी प्रतिमाका विधान मत्स्यपुराण (२६० । १०४)में है।

उदीच्यवेश शकोंके द्वारा समादृत सूर्यका परिधान होनेसे इस नामसे पुकारा जाता है। ऐतिहासिक तथ्य है कि शकोंके उपास्यदेव सूर्यभगवान् थे—इसका परिचय पुराणोंने शाकद्वीपमें उपास्य देवताके प्रसङ्गमें बहुत दिया है। उत्तरदेशके निवासियोंके द्वारा गृहीत होनेके कारण ही यह वेश 'उदीच्य' कहलाता है। इस वेशका परिचायक पद्य मत्स्यका उक्त सन्दर्भ है। सूर्यकी यह प्रतिमा अधिकतर खड़ी दिखलायी जाती है। यह प्रतिमा मात्रामें कम मिलती है। उसके ऊपर चोगा (चोल) रहता है जो पूरे शरीरको ढके रहता है। पैरोंमें बूट दिखलाये जाते हैं। कहीं कहीं बूट न दिखलाकर तेज पुञ्जके कारण नीचेके पैर दिखलाये ही नहीं जाते। शरीरके ऊपर जनेऊ दिखलाया जाता है जो कभी खड्गका भ्रम उत्पन्न करता है। यह वेश शक राजाओंका विशिष्ट राजसी वेश था जिसका विशद निदर्शन मथुरा-संग्रहालयमें रखी कनिष्ककी मूर्ति है।

गुप्तपूर्वकालीन सूर्य प्रतिमाएँ थोड़ी हैं। मथुरा-केन्द्रमें ही प्रमुख रूपसे सूर्यकी प्रतिमाएँ बनती थीं। यहाँ सूर्य प्रायः स्थानक प्रदर्शित हुए हैं। गुप्तकालीन प्रतिमाओंमें ईरानी प्रभाव कम या बिल्कुल ही नहीं है। निदायतपुर, कुमारपुर (राजशाही बंगाल) और भूमराकी गुप्तकालीन सूर्य प्रतिमाएँ शैली, भावविन्यास और आकृतिमें भारतीय हैं। भूमराकी प्रतिमामें सूर्य नहीं प्रदर्शित हैं। किंतु यह वेश तथा अन्य विशेषताओंमें कुषाणकालीन मथुराकी मूर्तिपरम्पराको प्रदर्शित करती है। दंडी और पिंगल भी दिखाये गये हैं जो ईरानी वेशमें हैं। सूर्यका मुख्य आयुध कमल (दोनों हाथोंमें) ही विशेषतया प्रदर्शित है। कहीं-कहीं सूर्य दोनों हाथोंसे अपने गलेमें पड़नी मालाको ही पकड़े हुए हैं।

मध्यकालीन सूर्यकी उपलब्ध प्रतिमाएँ दो प्रकार की हैं—एक तो स्थानक सूर्यकी प्रतिमाएँ और दूसरी पद्मस्थ प्रतिमाएँ। खिचिंगसे मिली सूर्यकी एक प्रतिमा ऊषा और प्रत्यूषाके अतिरिक्त अन्य अनेक सूर्य-पत्नियों-से युक्त है, यथा राज्ञी, निक्षुभा, छाया, सुवर्चसा और महाश्वेता। बंगाल, बिहारसे मिली अनेक सूर्य प्रतिमाएँ किरीट और प्रभावलीसे भी युक्त हैं।

पश्चिम भारत और दक्षिण भारतमें मिली सूर्य-प्रतिमाओंमें 'उदीच्यवेशीय' प्रभाव नहीं परिलक्षित होता। सूर्यके पैरोंमें न तो पदत्राण होता है और न सप्त अश्व या सारथी अरुण ही प्रदर्शित हुए हैं। चोगा भी नहीं धारण करते और न उनके साथ उनके प्रतिहार ही दिखाये जाते हैं।

नेपालमें सूर्य-तीर्थ

नेपाल—पाशुपत क्षेत्रके गुह्येश्वरी मन्दिरके समीप वाग्मती नदीके पूर्वी तटपर सूर्यघाट नामक एक स्थान है। यहाँ भगवान् सूर्यका मन्दिर है। प्राचीनकालीन भव्य मन्दिर तो अब नष्ट हो गया है, परंतु उसके स्थानपर एक छोटा-सा दूसरा नवीन सूर्य मन्दिर बना है, जहाँ प्रतिसप्तमी तिथिको मेला लगता है। इसका माहात्म्य यह है कि सूर्यघाटपर स्नानपूर्वक भगवान् सूर्यको अर्घ्य देकर पूजन करनेवालेके चक्षुरोग और चर्मरोग नष्ट हो जाते हैं।

सूर्यविनायक नामक एक और मूर्ति नेपालके भक्तपुरके निकट एक मन्दिरमें अवस्थित है। मूर्ति चतुर्भुज है। सिर किरणावलियोंसे आवृत है। हाथ शङ्ख, चक्र, गदा और अभय मुद्रा-युक्त हैं। किन्हीं राजाने अपने कुष्ठ-रोग निवृत्ति-हेतु इस मन्दिरकी स्थापना की थी। राजा नीरोग हो गये, अतः इसकी ख्याति है।

प्रेषक—पं० श्रीसोमनाथजी घिमिरे व्यास

वैदिक सूर्यका महत्त्व और मन्दिर

(लेखक—श्रीसावलिया विहारीलालजी वर्मा, एम्० बी० एल्०)

सूर्य प्रत्यक्ष देव हैं। पञ्चतत्त्वोंपर उनकी छत्रच्छाया है। अन्न, ओषधि, आरोग्य, ऋतु-परिवर्तन सभी कुछ सूर्याश्रित हैं। पल, विपल, घड़ी, प्रहर, दिवस, रात्रि, सप्ताह, पक्ष, मास, वर्ष आदि समय-गणना भी सूर्यसे समुद्भूत हैं। 'प्रत्यक्ष ज्योतिष शास्त्रं चन्द्रार्कौ यत्र साक्षिणौ' ज्योतिषशास्त्र प्रत्यक्ष है जिसके सूर्य और चन्द्र साक्षी हैं। दोनोंके उदयास्तकी सम्पूर्ण गति विधि शुभाशुभ फलग्रहणकी दिशा, प्रमाण, समय आदिका विस्तृत विवेचन तथा प्रत्यक्ष उदाहरण देनेमें भारतीय ज्योतिषशास्त्र विश्वमें अपनी तुलना नहीं रखता। शास्त्रोंमें ग्रहणके समय भोजनादि वर्जित है। इसकी वैज्ञानिकताकी परीक्षा अमेरिकी खगोलवेत्ताओंने अनेक वर्ष पूर्व की थी, जिसका सचित्र वर्णन 'स्काई' नामक मासिक पत्रमें प्रकाशित हुआ था। एक व्यक्तिको ग्रहणके कुछ पूर्व भोजन दिया गया, बादमें एक्सरे-सदृश आविष्कृत पारदर्शक काँचद्वारा देखा गया कि ग्रहण लगते ही पाचन-क्रिया बंद हो गयी। ग्रहणके मोक्षके बाद ही उदरकी जठराग्नि पुनः प्रचलित हुई। यह सब वर्णन बड़े-बड़े शीर्षकोंके साथ सचित्र छपा था।

सूर्यग्रहणका सर्वप्रथम शोध अत्रि ऋषिने 'तुरीय यन्त्र'की सहायतासे किया था। आजके साधारण पञ्चाङ्ग-कर्ता भी ग्रहणका समय और फलादेश ऋषि प्रणीत प्रणालियोंके अनुसार सहजमें कह देते हैं।

पाश्चात्त्य वैज्ञानिक कोपरनिकसने सूर्यको ब्रह्माण्डका मध्य बिन्दु माना है। यजुर्वेदके 'चक्षो' सूर्यो ऽजायत' के अनुसार सूर्य भगवान्के नेत्र हैं, जो सबको समान दृष्टिसे रखते हैं।

ऋग्वेदमें सूर्यका देवताओंमें महत्त्वपूर्ण स्थान है। हमारे देशमें वैदिक कालसे ही सूर्यकी उपासना विशेष रूपसे प्रचलित थी। प्रसिद्ध गायत्री-मन्त्र सूर्यपरक है। ऋग्वेद (७।१२।२)में, कौषीतकि ब्राह्मण उपनिषद्-(२।७)में, आश्वलायन गृह्यसूत्रमें और तैत्तिरीय आरण्यकमें सूर्योपासनाके सूक्त, विधियाँ आदि दी हुई हैं। वेदमें 'विष्णु' सूर्यका पर्यायवादी शब्द है। छान्दोग्योपनिषद्-(१।५।१२)में सूर्यको प्रणव कहकर, उनकी ध्यान-साधनामें पुत्र प्राप्तिका लाभ बताया है। कौषीतकि ऋषिने अपने पुत्रको एक समय बताया था कि 'मैंने इसी आदित्यका ध्यान किया, इससे तू मेरा एक पुत्र हुआ। तू भी यदि सूर्य-रश्मियोंका उसी प्रकार ध्यान करेगा तो तुम्हें भी पुत्र होगा। जो सूर्यका ध्यान करते हुए प्रणवकी साधना करता है उसे पुत्रकी प्राप्ति होती है, क्योंकि सूर्य ही प्रणव हैं। सूर्य गमन करते हुए ओङ्कारका ही जप करते हैं।

ब्रह्मवैवर्तपुराण सूर्यको परमात्माका प्रतिरूप मानते हुए अन्य देवोंको सूर्यके अधीन मानता है। सूर्यको अपना इष्टदेव और सर्वोपरि देवता माननेवाले व्यक्ति 'सौर' कहलाते हैं। विशुद्ध सौरकी संख्या आज भारतमें नगण्य है। वे लोग गलेमें स्फटिकमाला और ललाटपर रक्तचन्दनका तिलक तथा लाल फूलोंकी माला धारण करते हैं। ये अष्टाक्षर मन्त्र* जपते हैं और रविवार तथा संक्रान्तिको नमक नहीं खाते। सूर्यका दर्शन किये बिना वे जल ग्रहण करना भी पाप समझते हैं। अतएव वर्षा कालमें उन्हें बहुत कष्ट होता है। सम्भवतः इसी कारण उनकी संख्या नगण्य हो गयी है। सौर-मतावलम्बी सूर्य-मन्त्रादिके जपको ही मोक्षका साधन मानते हैं।

* 'ॐ घृणिः सूर्य आदित्योम्'—यही अथर्वाङ्गिरसका अष्टाक्षर मन्त्र है। इसका मन्त्र सूर्योपनिषद् (पृ० ८)में आ चुका है, वहीं देखें।

आज अनेक स्त्री पुरुष शारीरिक व्याधियों एवं चर्म-रोगोंसे त्राण पानेके लिये सूर्य-व्रत तथा सूर्योपासना करते हैं। इससे अपूर्व लाभ होता है।

भारतमें पहले सूर्यकी उपासना मन्त्रोंद्वारा होती थी, किंतु जब मूर्ति-पूजाका चलन आरम्भ हुआ, तब सूर्यकी प्रतिमा भी यत्र-तत्र स्थापित हुई। उत्कल-प्रदेशमें सूर्योपासनाका विशेषरूपसे प्रचार था। कोणार्कमें एक विश्व-विख्यात सूर्य-मन्दिर है, जिसको 'कोणादित्य' कहते हैं। ब्रह्मपुराणके अट्ठाइसवें अध्यायमें इस तीर्थ तथा एतत्सम्बन्धी सूर्य-पूजाका वर्णन है। कोणार्कका मन्दिर भग्नावस्थामें होनेपर भी दर्शनीय है। अनेक विदेशी उसकी कारीगरी देखनेके उद्देश्यसे आते रहते हैं। इसी कारण भारत-सरकारके पर्यटक-विभागने यहाँ होटल बनवाया है, जिसमें वास-स्थानकी भी सुविधा है। काश्मीरमें, मार्तण्ड-मन्दिरके सूर्यकी मूर्तिका भग्नावशेष मिला है। मार्तण्डका मन्दिर अमरनाथके मार्गपर है। चीन-पर्यटकोंके वर्णनके अनुसार मुल्तान-(पाकिस्तान)-में बहुत विशाल सूर्य-मन्दिर था, जिसका आज नामो निशान भी नहीं है।

विधर्मियोंद्वारा मन्दिरोंके विध्वंस कर देनेपर भी आज अनेक सूर्य-मन्दिर भारतके विभिन्न क्षेत्रोंमें हैं। उनमें अल्मोड़ा (उ० प्र०) का सूर्य-मन्दिर अपनी विशेषता रखता है। इस सूर्य-मन्दिरमें स्थापित सूर्यकी मूर्ति अद्भुत है। यहाँके सूर्य रथस्थ नहीं हैं, किंतु पद्मासन हैं। पैरोंको देखनेसे ज्ञात होता है कि वे बूट जूता पहने हुए हैं। सम्भवतः यह भारतीय मूर्तिकलाकी विशेषता नहीं है। विशेषतः अल्मोड़ाके मन्दिरके अतिरिक्त देवलाङ्गका विशाल मन्दिर, गयाका दक्षिणार्क मन्दिर है, पुराणप्रसिद्ध धर्मारण्य क्षेत्रमें सिद्धपुर गन्नेरा तीर्थ है, जहाँका सूर्य-मन्दिर विशाल है। अयोध्या, सहनिया (टिकमगढ़), जयपुरके गलताजी, जोधपुरसे ३९ मील दूर ओसियाका सूर्य-मन्दिर और देव (बिहार)का मन्दिर दर्शनीय है। कटारमल (अल्मोड़ा पहाड़की चोटीपर)के सूर्य-मन्दिरमें भगवान् सूर्यकी मूर्ति कमलके आसनपर है।

राजस्थान शिल्पकला और स्थापत्य-कलाके लिये प्रसिद्ध है। इस क्षेत्रमें रणकपुरका सूर्य-मन्दिर विख्यात है जो अपनी सादी कलाकी सुरुचिपूर्णताके लिये विख्यात है। खजुराहो (मध्य प्रदेश) में ८५ मन्दिर हैं, जो कलाकी दृष्टिसे प्रसिद्ध हैं। इनमें सूर्य-मन्दिर अपने ढंगका अनूठा है। यह भी दर्शनीय है। खम्भात खाड़ीके पास नगामा नगरवासमें एक सूर्य भगवान्‌का दर्शनीय मन्दिर है। इस स्थानपर ब्रह्माके तीन प्रसिद्ध मन्दिरोंमेंसे भी एक स्थापित है। दक्षिण भारतके कुम्भकोणममें शिव-मन्दिरके पास सूर्य-मन्दिर है।

सूर्यपूजा बहुत प्राचीन है। इसका एक प्रमाण मिश्रमें मिला एक बहुत प्राचीन मन्दिर है। फराउन बादशाह रसेमस द्वितीयने ३२०० वर्ष पूर्व स्थापित मन्दिरको एक पहाड़ीमें कटवाकर बनवाया था। मन्दिर ११० फुट ऊँचा है। मन्दिरके पास रसेमस द्वितीयकी ६५ फुट ऊँची मूर्ति है। मन्दिरमें सूर्यदेवताकी मूर्ति है।

इन तथ्योंसे ज्ञात होता है कि भारतमें सौरमतका प्रचार कभी खूब था, किंतु आज स्वतन्त्र सूर्योपासकोंका अभाव-सा है। फिर भी सूर्य-पूजनकी आज भारतमें काफी प्रतिष्ठा है। पञ्चदेवों और नवग्रहोंमें सूर्यका प्रमुख स्थान है। सभी स्मार्त उनकी पूजा करते हैं। कार्तिक शुक्ल षष्ठी और सप्तमीको तो अनेक हिंदू विशेषरूपसे सूर्य-षष्ठी-व्रत और सूर्यकी पूजा करते हैं। प्रतीत होता है कि विष्णुकी पूजा परमात्माके रूपमें प्रचलित हो जानेपर स्वतन्त्ररूपसे सूर्यकी उपासना मन्द पड़ गयी।

भारतके अतिरिक्त जापानमें आज भी उनके सूर्यका मन्दिर है। अन्य देशोंमें भी सूर्योपासना तथा सूर्य मन्दिरोंका विवरण प्राप्त होता है। अतः स्पष्ट है कि वैदिक सूर्यका महत्त्व सर्वत्र मान्य है।

भारतमें सूर्य-पूजा और सूर्य-मन्दिर

(लेखक—श्रीउमियाशंकरजी व्यास)

प्राचीन समयमें अग्नि, वरुण, इन्द्र और सूर्य-जैसे देवताओंकी प्रधानता थी, जिनके स्तोत्र वेदोंमें भरे पड़े हैं। विष्णु आदि देवोंका स्थान अपेक्षाकृत गौण था—यद्यपि विष्णु और सूर्यके स्वरूप एक ही माने गये हैं। बहुत समयके बाद आर्योंकी धर्मरुचिमें कुछ परिवर्तन होनेसे सूर्यका अन्य देवताओंके साथ विष्णुमें आविर्भावकी मान्यताका प्रचलन हुआ। ब्रह्मा, विष्णु और शिवकी त्रिगुणात्मक—उद्भव, पालक और संहारकके स्वरूपकी पूजा व्यापक होनेसे सूर्य आदि देवोंकी पूजा गौण बन गयी। फिर भी त्रिकाल-संध्या सूर्योपासनाकी अङ्गस्वरूप बनी रही और आज भी है।

गुप्तकालमें और उसके बाद बारहवीं शताब्दीतक भारतके विभिन्न भागोंमें विशेषतः पश्चिम-भारतमें सूर्यकी पूजा प्रचलित थी, किंतु विष्णु और शिवमें सारे वैदिक देवोंका अन्तर्भाव होनेके कारण अब केवल संध्योपासनामें रह गयी। ईसवी सन्‌की चौथी या पाँचवीं शताब्दीमें भारतमें हूण, शक आदि विदेशी जातियाँ प्रविष्ट हुईं। उस समयकी विदेशी प्रजाएँ भारतकी प्रजाके साथ मिल-जुल गयीं। उन्होंने भारतके चार वर्णोंमेंसे अपने अनुकूल वर्ण, शैव और वैष्णव तथा बौद्धमेंसे कोई एक मनचाहा धर्म स्वीकार कर लिया। दोनों जातियाँ भारतीय जनतामें घुल-मिल गयीं। अनेक रीति-रिवाजोंका विनिमय हुआ। विदेशियोंके कुछ तत्त्वोंको स्थानीय जनताने ग्रहण किया। चौथी और पाँचवीं शताब्दीमें भारतमें सूर्यपूजा बहुत प्रचलित हुई। वैदिक कालके पूर्वजोंमें सूर्यपूजा प्रचलित थी, अतः विदेशियोंकी सूर्यपूजाको ग्रहण करनेमें दूसरे धर्मका अनुमत नहीं हुआ, फिर भी सूर्यपूजाका विदेशीपन छिपा नहीं रह सका। सातवीं शताब्दीमें ईरानसे भागकर आयी हुई पारसी जाति अग्नि, सूर्य और वरुणको माननेवाली है। वह दूधमें शक्करकी भाँति इस देशमें मिल गयी।

प्राचीन वैदिक कालमें छः ऋतुओंमें छः आदित्यदेव माने जाते थे, जो सूर्य कहे जाते हैं। कहीं-कहीं सात देवोंके भी नाम मिलते हैं। पर बादमें बारह महीनोंके बारह आदित्य (सूर्य) हुए। जिनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—(१) धाता, (२) मित्र, (३) अर्यमा, (४) रुद्र, (५) वरुण, (६) सूर्य, (७) भर्ग, (या भग) (८) विवस्वान् (विश्वरूप), (९) पूषा, (१०) सविता, (११) त्वष्टा और (१२) विष्णु। सूर्यदेवके विषयमें अनेक वैदिक और पौराणिक कथाएँ हैं।

शिल्पग्रन्थोंमें सूर्यके नाम और स्वरूप दिये गये हैं। नामके प्रकरणसूत्रमें संतान, अपराजितपृच्छा और जय प्रतिनिका उल्लेख है, "देवतामूर्तिप्रकाशनम्" आदिमें सूर्यके बारह स्वरूप बताये गये हैं। उनमेंसे दस स्वरूपोंको हाथवाला बनाया गया है। नवाँ पूषा और दसवाँ विष्णुस्वरूप हैं। ये दो-दो हाथवाले बताये गये हैं।

प्रत्येक स्वरूपके ऊपरवाले दो हाथोंमें कमल और नीचेके हाथोंमें अलग-अलग दो-दो आयुध कहे गये हैं। किसीमें सोमरसपात्र, शूल, चक्र, गदा, माला, वज्रपाश, कमण्डलु, सुदर्शनचक्र, स्रुवा (होमका पात्र) है। इस तरह अलग-अलग दो-दो आयुध नीचेके दो-दो हाथोंमें देनेको कहा गया है। इन आयुधोंसे कहा जा सकता है कि सूर्यका विष्णुमें आविर्भाव हुआ।

विश्वकर्माप्रणीत 'दीपार्णव' नामक शिल्पग्रन्थमें बारहके स्थानमें तेरह सूर्यके नाम और स्वरूप दिये गये हैं। वे सभी दो-दो हाथोंके कहे गये हैं। उनके

दो-दो हाथोंके आयुधोंमें शङ्ख, कमल, वज्रदण्ड, पद्मदण्ड, शतदल (हरी सब्जियाँ), फलदण्ड और चक्र देनेको कहा गया है। उनके तेरह नाम इस प्रकार हैं— (१) आदित्यदेव, (२) रवि, (३) गौतम, (४) भानुमान्, (५) शान्ति, (६) दिवाकर, (७) धूम्रकेतु, (८) सम्भव, (९) भास्कर, (१०) सूर्यदेव, (११) सन्तुष्ट, (१२) सुवर्णकेन्द्र और (१३) मार्तण्ड। जैसे ये तेरह नाम हैं, वैसे ही उनके स्वरूप भी कहे गये हैं।

इस प्रकारकी मूर्तियाँ सूर्यमन्दिरोंमें पायी जाती हैं। ये मूर्तियाँ बैठी हुई या खड़ी—दोनों तरहकी देखनेमें आती हैं। सूर्यका सात मुँहवाले एक घोड़ेको या सात घोड़ोंके रथको वाहन कहा गया है।

छठी शताब्दीके विद्वान् वराहमिहिरने बृहत्संहिता नामक अतिविद्वत्तापूर्ण ग्रन्थकी रचना की है। उस (६०–१९)में वे लिखते हैं—मग ब्राह्मण सूर्यके पुजारी हैं। सूर्यमूर्तिका वर्णन करते हुए वे लिखते हैं—सूर्यकी मूर्तिमें नाक, कान, जाँघ, पिंडली, गाल और छाती आदि ऊँचे होने चाहिये। उसका पहनावा उत्तर-प्रदेशके लोगोंके-जैसा होना चाहिये। हाथोंमें कमल, छातीपर माला, कानोंमें कुण्डल, कमर खुली होनी चाहिये। मुखकी आकृति सफेद कमलके गर्भ-जैसी सुन्दर और हँसता हुआ शान्त चेहरा, मस्तकपर रत्नजटित मुकुट होना चाहिये। इस प्रकारकी मूर्ति निर्माताको सुख देती है।

इसीसे मिलती-जुलती सूर्यमूर्तिका वर्णन शुक्र-नीतिशास्त्रमें दिया गया है। प्राचीनकालकी मिली हुई सूर्यमूर्तियाँ पैरोंमें होलबूट पहनी हुई-जैसी दिखायी देती हैं। इस कारण उनके पैर या पैरकी अङ्गुलियाँ दिखायी नहीं देतीं। होलबूटकी लकीरों-जैसी कटी हुई डिजाइन रहती है। पैरोंकी अङ्गुलियाँ दिखाती हुई कुछ मूर्तियाँ प्रभास-वेरावलमें मेरे देखनेमें आयी हैं, लेकिन वे पिछले समयकी हो सकती हैं। इस तरहके जूते पहनी हुई मूर्तियाँ उनका विदेशीपन दिखा देती हैं। यहाँ अन्य किसी देवके पैरोंमें जूते नहीं रहते।

सूर्यप्रासादमें प्रमुख स्थानपर सूर्यकी मूर्ति परिकरवाली स्थापित की जाती है। इसी तरह अन्य देवोंके लिये भी कहा गया है। मुख्य देवके पर्याय-स्वरूपोंको मूल मूर्तिके चारों ओर खुदे फ्रेममें होनेपर परिकर कहा जाता है। विष्णु-मूर्तिके चारों ओर दशावतारोंकी छोटी-छोटी खुदी हुई प्राचीन मूर्तियाँ देखनेमें आती हैं। उसी ओर सूर्य-मूर्तिके चारों ओर नवग्रहोंके स्वरूप या सूर्यके अन्य स्वरूप गढ़े जाते हैं। कुछ मूर्तिके परिकरमें नीचेकी ओर खुदे या बैठे हुए मूर्ति गढ़ानेवाले यजमान और यजमानपत्नीकी मूर्तियाँ भी बनायी हुई रहती हैं। वर्तमान कालमें प्रधान पूजनीय मूर्तियोंसे परिकरकी प्रथा हटा दी गयी है। उत्तर भारतमें अलग-अलग विभागोंमें चौथी शताब्दीसे बारहवीं शताब्दीतक सूर्य-मन्दिर बनते रहे—यह बात लिखित प्रमाणोंसे या अवशेषोंके आधारसे कही जा सकती है।

(१) ई० सन् ४७३में दशपुर (मालवाका दशोर)में रेशम बुननेवाले सङ्घने एक सूर्य-मन्दिर बनवाया था। दशोर मालवामें एक शिलालेख है, जिसमें उक्त मन्दिरका जीर्णोद्धार करनेवाला शिल्पकार गुजरातसे दशपुर गया था—ऐसा लिखित है।

(२) राजतरङ्गिणीमें उल्लेख है कि कश्मीरके ललितादित्य मुक्तापिडने ई० सन्‌की आठवीं शताब्दीमें प्रख्यात मार्तण्ड-(सूर्य)का मन्दिर बनवाया था। उसका भग्नावशेष अभीतक स्पष्ट है।

(३) ह्वेन सॉंगने अपने प्रवास-वर्णनमें सातवीं शताब्दीमें, मुल्तानमें सोनेकी मूर्तिवाला प्रख्यात सूर्य मन्दिर देखनेका उल्लेख किया है। ग्यारहवीं शताब्दीमें

चमड़ा ओढ़े हुए लकड़ीकी मूर्तिवाला मन्दिर गीजनीके विद्वान् अल्बेरूनीने देखा था। अल्बेरूनीने अपने 'भारत-भ्रमण'नामक प्रवास-वर्णनमें लिखा है कि—'उस मन्दिरके पुजारी 'मग' ब्राह्मण हैं।' मुल्तानके सूर्य-मन्दिरमें सोनेकी सूर्य-मूर्ति विधर्मियोंसे भयभीत होकर पुजारियों द्वारा काष्ठमें परिवर्तित करायी गयी होगी।

(४) ह्वेन साँगने कन्नौजमें एक सूर्य-मन्दिर देखनेकी चर्चा की है।

(५ ६ ७) एलापुर (इलोरा) भाजा और खण्डगिरिकी गुफाओंमें भव्य सूर्य-मूर्तियाँ गढ़ी गयी हैं। चौथी और पाँचवीं शताब्दीसे बारहवीं शताब्दीतक भारतमें सूर्यपूजाका अधिक प्रचार था।

(८) प्राचीन कालमें गुजरातपर शासन करनेवाले पूर्व राजस्थानके वर्तमान भिनमाल स्थानमें एक अति प्राचीन कालीन सूर्य-मन्दिरका अवशेष अस्तित्वमें है।

(९) कच्छमें कण्ठकोटमें नवीं शतीका एक पुराना सूर्य-मन्दिर जीर्ण अवस्थामें है।

(१०) सौराष्ट्रमें थान मित्रेश्वरके पास ग्यारहवीं शताब्दीका सूर्य-मन्दिर है। शाकद्वीपक कौमीलमें सूर्योपासक काठी जातिके लोगोंने हालमें ही एक नया सूर्य-मन्दिर बनवाया है।

(११) साबरमती और हाथमतीके सङ्गमके सन्निकट बीजापुरके पास कोटेश्वरका बहुत प्राचीन मन्दिर है। यहाँ अभीतक ई० सन् १५०के क्षत्रिय राजा रुद्रदामके सिक्के मिलते हैं। यहाँ कोटि+अर्क=नगोड़ सूर्यके विशेष नामसे यह तीर्थ माना पहचाना जाता है। इसे स्कन्दपुराण नामक ग्रन्थोंका उत्पत्तिस्थान माना जाता है। उनके इष्टदेव कोटेश्वर या कोटेश्वरकी हैं। यहाँ पुराना सूर्यकुण्ड भी है। उस मन्दिरकी स्थिति सम्भवतः नवीं शतीके पूर्वकी हो सकती है, लेकिन जीर्णोद्धारसे उसका असली स्वरूप बदल गया है। फिर भी कहीं-कहीं मूलस्वरूप दिखायी देता है। वह उसकी प्राचीनताकी साक्षी देता है।

(१२) उसी ओर ग्यारहवीं शताब्दीमें बना हुआ उत्तर गुजरातका जगविख्यात मोढेराका सूर्य-मन्दिर मोढ बनिये और मोढ वैष्णवोंके इष्टदेवका स्थान माना जाता है। यह मन्दिर साधारण प्रकारका भ्रमयुक्त विशाल मन्दिर है। गर्भगृहके चारों ओर अन्दर प्रदक्षिणा-मार्ग है। उसके आगे गूढमण्डप है। उसके आगे एक सुन्दर नृत्यमण्डप है। उसके आगे प्रतोलीके दो स्तम्भ बगैर तोरणके खड़े हैं। तोरण नीचे गिरा हुआ है। आगे सूर्यकुण्ड शास्त्रोक्त विनियुक्त है। उसमें अनेक देव-देवियोंकी मूर्तियाँ आलोंमें रखी हुई हैं। जहाँ सूर्य-मन्दिर होता है वहाँ सूर्यकुण्ड होता ही है।

(१३) जैसा पश्चिममें मोढेराका सूर्य मन्दिर है वैसा ही पूर्वमें उड़ीसामें कोणार्कका विख्यात भव्य मन्दिर बारहवीं शतीमें वहाँके राजाने बनवाया था। इस मन्दिरके बाँधनेवाले शिल्पीकी कथा भी अद्भुत है। कहते हैं कि मन्दिर बाँधकर वह पासके समुद्रके पानीमें चलता हुआ आगे निकल गया। इसलिये माना जाता है कि वह दैवी शिल्पी था। पुराणोंमें अर्कक्षेत्र या पद्मक्षेत्रको कोणार्क-तीर्थ कहा गया है। उसके दक्षिणमें पूर्वकी ओर दो-एक मीलपर ही समुद्रकी खाड़ी है। मन्दिरके उत्तरमें आध मीलपर चन्द्रभागा नदी बहती है।

इस मन्दिरकी भव्यता अजब है। सुन्दर गर्भगृहकी दीवालें खड़ी हैं। उसका शिखर तोड़ दिया गया है। मण्डपमें ऊपरका भाग तोड़ दिया गया है और उसके द्वार बंद करके अंदर रेतीसे भर दिया गया है। मण्डप करीब अस्सी फुटका समचौरस है। मन्दिर आधार

समाभयुक्त सिंहासन है। मन्दिरकी अनेक सुन्दर मूर्तियाँ श्याम पाषाणकी परिकरवाली छः फुटसे भी अधिक ऊँची हैं। ये किसी मन्दिरमें प्रधानपदपर स्थापित करने योग्य हैं। मन्दिरको रथका स्वरूप दिया गया है। उसके पहियोंका व्यास पौने दस फुटका है। मन्दिरका पीठ साढ़े सोलह फुटका है।

भारतके पूर्वमें कोणार्क और पश्चिममें मोढेराके मन्दिर सुप्रसिद्ध माने जाते हैं। उसी तरह उत्तरमें कश्मीरका मार्तण्ड—सूर्य-मन्दिर उस समय जगद्विख्यात रहा होगा। दुर्भाग्यसे विधर्मियोंके हाथों वह प्रायः नष्ट हो गया है। वहाँके स्थापत्य-विधर्मियोंने अभ्यासकी दृष्टिसे उसे देखनेलायक नहीं रहने दिया है। कश्मीरप्रदेशके मन्दिरोंकी रचना उत्तरभारतके अन्य मन्दिरोंसे अलग है।

(१४) राजस्थान, जोधपुर और मेवाड़की सरहदपर जैनोंके राणकपरके पास जैन-मन्दिरोंका समूह है। वहाँ उसके दक्षिणमें अष्टभद्रयुक्त सुन्दर कलात्मक सूर्यमन्दिर अखण्डित है। बहुत समय पूर्वसे देखभालके अभावमें और अपूज्य रहनेसे यह मन्दिर जर्जरित हो गया है। शिखर अष्टभद्री और मण्डप भी अखण्डित है। उसमें सूर्यकी अनेक मूर्तियाँ खुदी हुई हैं। कक्षासनके स्थानपर खड़े हुए घोड़े खुदे हुए हैं। अखण्डित मन्दिरके जीर्णोद्धारकी आवश्यकता है। अष्टांश प्रासादका विधान शिल्पमें है, लेकिन व्यवहारमें वह कचित् ही देखनेको मिलता है।

(१५) प्रभासक्षेत्र(सोमनाथ)में छोटे-बड़े बहुत सूर्यमन्दिर रहे होंगे, जैसा उनके भग्नावशेषों और द्वापर मिले बिखरे हुए अन्तर्खों-अवशेषोंसे जाना जा सकता है। वर्तमान प्रभासमें दो बड़े सूर्यमन्दिर जीर्ण हालतमें खड़े हैं। त्रिवेणीपर सूर्यमन्दिरका शिखरका जीर्णोद्धार किसी अज्ञान कारीगरके हाथसे होनेके कारण उसके ऊपरका भाग खण्डित हो गया है। कुशल शिल्पियोंके द्वारा जीर्णोद्धार करानेसे ही असली आकृति जैसा देखा है। त्रिवेणी-सङ्गमपरका सूर्यमन्दिर पूर्वाभिमुख है। उसका गर्भगृह बिना मूर्तिके खाली है। मन्दिर भ्रमयुक्त साधार प्रकारके प्रासादका है। उसकी पीठकी ग्रासपट्टीके स्थानपर अश्व बनाया गया है। उसकी जाँघमें देवरूप अल्पसंख्यामें हैं, लेकिन मन्दिर बहुत बड़ा है।

(१६) प्रभासके पूर्व ईशानमें वीतराग नामसे पहचाने जानेवाले स्थानमें अरण्य-जैसे भागमें हिरण्य नदीके किनारे रम्य स्थानपर भ्रमयुक्त साधार प्रासादकी शैलीपर बना हुआ सूर्यमन्दिर है। उसका शिखर और मण्डपके ऊपरका भाग नष्टप्राय हो गया है। यह मन्दिर सुन्दर कलात्मक है। लगता है कि यह मन्दिर दक्षिणाभिमुख हो। गर्भगृहमें मूर्ति नहीं है। विशेषतः सूर्यमन्दिर पूर्वाभिमुख होते हैं। उसकी पीठिकामें (कीर्तियों) ऊपरके भागमें ग्रासपट्टीकी जगह अश्व बने हुए हैं।

प्रभासक्षेत्रमें पुराणोंके प्रमाणोंसे कहा जा सकता है कि वहाँ सूर्यके बारह बड़े मन्दिर थे। उनमेंसे सिर्फ दो बड़े प्रासाद खण्डित दशामें खड़े हैं। ये दोनों मन्दिर बारहवीं शताब्दीके आगे-पीछेके-जैसे नहीं लगते।

देवताओंके स्थपति विश्वकर्माकी पुत्री संज्ञाका पाणिग्रहण सूर्यके साथ हुआ था, किंतु वह सूर्यका तेज न सह सकनेसे प्रभासमें अपने मायके चली आयी। सूर्य संज्ञाको खोजते हुए प्रभास आये, पर इसके पूर्व संज्ञा घोड़ीके रूपमें विचरने लगी। सूर्यको यह मालूम होनेपर वह अश्वरूप लेकर उसके साथ रहे। घोड़ीके स्वरूपकी संतानें अश्विनीकुमारोंका जन्म हुआ। सूर्य अपना तेज सहनेमें सदा न जानेके कारण अपनी सोलह कलाओंमेंसे बारह कलाएँ प्रभासक्षेत्रमें स्थापित कीं। उसके ही ये बारह सूर्यमन्दिर प्रतिनिधिस्वरूप हैं।

सूर्यकी पत्नी संज्ञाका दूसरा नाम रन्नादेवी भी है। इसे पुत्र देनेवाली देवी मानकर लोग

उसकी पूजा करते हैं। स्त्रीके (प्रथम गर्भधारणा) सीमन्तके समय रन्नादेवीके प्राकृत स्वरूप गंदल माताके नामसे उसका छोटा मण्डप बनाकर उसमें छिले हुए नारियलमें उसकी मुखाकृतिकी कल्पना करके उसकी पूजा करते हैं। हिंदू-कुटुम्बोंमें तो सीमन्तके समय आठ दिनतक घरमें प्रतिदिन रातको उत्सव मनाया जाता है। स्त्रियाँ रावल माताके गीत और गरबा गाती हैं। यहाँ सूर्य एवं संज्ञा घोड़ा-घोड़ी-रूपके प्रतीकमें ही स्थित हैं। प्रतिदिन दर्शनार्थियोंको बतासे, खारीक या पाँच-पाँच सुपारियाँ बाँटी जाती हैं। सात दिनोंमें उत्सव पूरा होनेके बाद आखिरी दिन गंदल माताका और सूर्यदेवका छोटा मण्डप (प्रतिमायुक्त) सीमन्तिनी स्त्री और उसका तरुण पति सिरपर रखकर गाते-बजाते गाँवमें घुमाते हैं। पहले तरुण पति केवल सगुनके लिये सिरपर मण्डप लेकर एक चौकतक चलता है, बादमें स्त्रियाँ यह मण्डप आनन्दसे अपने सिरपर लेकर गंदल माताके गीत उमंगसे गाती हुई घूमती हैं। जहाँ चौक आता है, वहाँ उत्साहमें आकर मण्डपके साथ गरबा गाती हुई घूमती हैं। यह दृश्य अनोखा लगता है। लोगोंकी उत्कृष्ट धर्मभावना दिखती है। यह प्रथा अन्य स्थानोंपर भी मैंने देखी है। सोमपुराओंमें विशिष्ट खानदानोंमें सीमन्तके समय एक या तीन दिन रान्दल माताकी स्थापना की जाती है। गोदमें खेलनेवाला 'दे दे रन्ना दे' जैसा गाया जाता है।

संज्ञा—रन्नादेवीकी सुन्दर मूर्तियाँ सूर्यदेव-जैसी खड़ी ऊपरके दो हाथोंमें कमलदण्डवाली प्रभासपाटणमें स्थापित हैं, वे दर्शन करने योग्य हैं।

उत्तर भारतमें जगह-जगहपर सूर्य-मन्दिर अचर्चित स्थानोंपर भी होंगे, जिनकी प्रामाणिकता अपने पास नहीं है। किंतु ऐतिहासिक प्रमाण और वर्तमानमें खड़े हुए जीर्ण मन्दिर ही प्रमाण हैं।

दक्षिण भारतके द्रविडदेशमें सम्भवतः सूर्यपूजा उतनी प्रचलित नहीं होगी। उसके मुख्य मन्दिर होनेकी कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है। वहाँ लिंगायत, सुब्रह्मण्य विष्णु, शैव, देवी आदि अन्य देव-देवियोंके भव्य मन्दिर पाण्ड्य, चोल-जैसे बड़े राज्योंने अपने अक्षय राज्यभण्डार खाली करके बनवाये हैं। वे मन्दिर एक छोटे शहर जितने विशाल विस्तारमें फैले हुए और भव्य होते हैं। द्रविड प्रदेशोंमें मुस्लिमोंका पद-सञ्चार अल्प हुआ है, इसलिये वहाँके भव्य मन्दिर अभी भी अखण्डित रह सके हैं।

सूर्यनारायण-मन्दिर, मल्लगा

मल्लगा (बेलगाँव, कर्नाटक) में प्रायः ४०० वर्ष पुरानी सूर्यनारायणकी भव्य मूर्ति है जो २ फुट ऊँची है। मन्दिरमें प्रतिदिन सूर्य-सूक्तका नियमित पाठ होता है। हनुमज्जयन्तीके दिन सूर्योदयके समय हनुमान्‌जीकी पालकी सूर्यनारायणके मन्दिरके सामने आती है। सूर्य मूर्तिके दाहिने बाजूमें 'जय' और बायेंमें 'विजय' की प्रतिमाएँ हैं। मूर्तिके नीचे (पीठपर) मध्यमें सूर्यदेवजीका मुख है और दोनों बाजुओंको मिलाकर सात अश्वोंके मुख हैं।

प्रेषक—श्रीकाशिनाथजी कुलकर्णी

भारतीय पुरातत्त्वमें सूर्य

(लेखक—प्रोफेसर श्रीकृष्णदत्तजी वाजपेयी)

सूर्यकी मान्यता प्राचीन विश्वके प्रायः सभी सभ्य देशोंमें रही है। वे आदिम जन भी किसी-न-किसी रूपमें सूर्यके प्रति आस्था या आदरका भाव रखते थे।

सूर्य न केवल प्रकाशदाता एवं जीवन-रक्षक हैं, अपितु वे प्रकृतिके नियामक तत्त्वोंके सर्जक भी हैं। वे शक्ति, आभा तथा आरोग्यप्रदायक लक्षणोंके प्रत्यक्ष रूप हैं। मानव तथा अन्य प्राणियोंके साथ सम्पूर्ण वनस्पति जगत्के वे पोषक एवं संवर्धक हैं। सूर्यके इन्हीं निर्विवाद गुणोंके कारण उनकी मान्यता संसारके अत्यन्त प्राचीन देशों—मिश्र, मेसोपोटामिया, भारत, चीन, ईरान आदिमें मिलती है। इन देशोंके साहित्यिक तथा पुरातत्त्वीय प्रमाण इसकी पुष्टि करते हैं। सूर्यकी मान्यता एवं पूजाके विविध प्रकार आजतक प्राचीन देशोंके उपलब्ध साहित्य, मन्दिरों, मूर्तियों तथा लोक-वार्ताके अनेक रूपोंमें देखे जा सकते हैं।

भारतीय प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेदमें सूर्यके महत्त्वके बहुसंख्यक उल्लेख हैं। इसी प्रकार अन्य वैदिक साहित्य, रामायण, महाभारत, पुराण-ग्रन्थ तथा परवर्ती संस्कृत प्राकृत आदिके साहित्यमें सूर्यके प्रति सम्मानकी महती भावना द्रष्टव्य है। सूर्यकी विविध संज्ञाएँ—सविता, आदित्य, विवस्वान्, भानु, प्रभाकर आदि प्रसिद्ध हुईं। सूर्योदयके पहलेसे लेकर सूर्यास्तके बादतक भानुके जो विविध रूप होते हैं, उनके रोचक वर्णन कवियों, नाट्यकारों, कथाकारों आदिने किये। अनेक वर्णनोंमें उत्कृष्ट काव्य-छटा मिलती है।

भारतमें सूर्यके प्रति विशेष सम्मानका भाव इस बातसे देखा जा सकता है कि उन्हें तत्त्व-ज्ञानका स्रोत माना गया। इस कल्याणकारी ज्ञानको विवस्वान्-(सूर्य) ने मनुको दिया और मनुने उसे अपनी समस्त संततिमें इक्ष्वाकुद्वारा वितरित किया। भारतके प्रमुखतम राजवंश (सूर्यवंश) का उद्भव भी सूर्यसे माना गया। उनके वंशमें ही मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम प्रकट हुए, जिन्होंने आर्य-संस्कृतिकी रक्षाके साथ उसके व्यापक प्रचारका श्रेयस्कर कार्य सम्पन्न किया।

सूर्यके प्रभावशाली स्वरूप तथा उनके प्रति प्रतिष्ठाका निदर्शन भारतीय पुरातत्त्वमें प्रचुर मात्रामें उपलब्ध है। प्राचीन अभिलेखों, मुद्राओं, मन्दिरों, मूर्तियों आदिके देखनेसे यह बात प्रमाणित होती है। भारतीय सूर्योपासना इतनी प्रबल हुई कि उसका प्रचार इस देशके बाहर अफगानिस्तान, नेपाल, बर्मा, श्याम, कम्बोडिया, जावा, सुमात्रा आदि देशोंमें हुआ। इन देशोंमें सुरक्षित मूर्ति-अवशेष आज भी इसका उद्घोष करते हैं। सूर्यके नामपर सूर्यवर्मा आदि अनेक नाम विदेशोंमें प्रचलित हुए।

ईरानके साथ भारतका सम्बन्ध बहुत पुराना है। इन दोनों देशोंने सूर्यपूजाको भी व्यापक रूपमें अपनाया। ईरानके सूर्य-पूजक पुजारियोंका आगमन ईसवी पूर्व प्रथम शतीसे विशेष रूपमें हुआ। हमारे यहाँ उन्हें अच्छा सम्मान मिला। उनके प्रयाससे उत्तर पश्चिम भारतके अनेक स्थानोंपर सूर्यमन्दिरों और प्रतिमाओंका निर्माण हुआ। ईरानमें सूर्यकी प्रतिमाएँ प्रभावशाली शासकके रूपमें बनायी जाती थीं। उनमें शिरस्त्राण, कवच, अधोवस्त्र (सुथना)के साथ उपानह (जूते) भी पहनाये जाते थे। ईरान तथा मध्य एशियामें अधिक सर्दीके कारण यह वेश भूषा आवश्यक थी। पेशावर, तक्षशिला, मथुरा आदिमें सूर्यकी ऐसी अनेक पाषाण-मूर्तियाँ मिली हैं, जिनमें सूर्यदेवको खड़े या बैठे हुए तथा उक्त वेश-भूषामें दिखाया गया है। उत्तरी क्षेत्रों (ईरान तथा मध्य एशिया)में

यह वेश बहुत प्रचलित था। इसीसे भारतमें उसे 'उदीच्यवेश'की सज्ञा दी गयी। इस प्रकारकी प्रतिमाओं में सूर्यको दो या चार घोड़ोंके रथपर आसीन दिखाया गया है। बादमें (मूर्तियोंमें) घोड़ोंकी सख्या सात हो गयी, जो सूर्य-किरणोंके सात मुख्य रगोंके घोतक हैं।

गंधार क्षेत्र तथा मथुरासे प्राप्त सूर्यकी उदीच्य वेशवाली प्रतिमाएँ विशेष उल्लेखनीय हैं। इनमें सूर्यके एक हाथमें प्राय कटार तथा दूसरे हाथमें सनाल कमल मिलता है। इन मूर्तियोंका निर्माण-काल ईसवी प्रथमसे चौथी शतीतक है।

गुप्तकाल-(ई० चौथीसे छठी शतीतक)में सूर्यका महत्त्व बहुत बढ़ा। वे प्रमुख पञ्चदेवोंमेंसे एक हुए। अन्य चार देवता और थे—विष्णु, शिव, देवी तथा गणेश। 'पञ्चदेवोपासना'ने भारतीय धर्म और कलाको नयी दिशाएँ प्रदान कीं। अब इन पाँचों मन्दिरों और उनकी प्रतिमाओंका दशक अनेक भागोंमें बड़े रूपमें निर्माण होने लगा।

उत्तर गुप्त-युगसे उदीच्यवेशके अतिरिक्त सूर्यकी ऐसी बहुसख्यक प्रतिमाएँ बनने लगीं जो अन्य भारतीय देवोंके ढगकी हैं। उनमें सूर्यको भारतीय वेश-भूषामें दिखाया जाता था। उन्हें धोती तथा उत्तरीय पहने और दोनों हाथोंमें सनाल कमल धारण किये हुए प्रदर्शित किया जाने लगा। उनके रथमें अब प्राय सप्ताश्व मिलते हैं तथा उनका सारथि अरुण भी दिखाया जाने लगा। धनुष-बाण धारण की हुई, अन्धकारपर आक्रमण करती हुई, सूर्यके एक ओर ऊषा और दूसरी ओर प्रत्यूषा दिखायी जाती है। कुछ प्रतिमाओंपर सूर्यकी पत्नीयाँ और उनके मुख्य दो गणों—दण्ड (या दण्डी) तथा पिङ्गल—का भी प्रदर्शन मिलता है। सूर्यकी मध्यकालीन अनेक प्रतिमाओंमें सूर्यको चक्रवर्ती सम्राट्की तरह तेजस्वी-रूपमें प्रभामण्डलसहित दिखाया गया है। ये प्रतिमाएँ अनेक अलङ्करणों, परिकरों आदिसे सम्पन्न हैं।

उत्तर तथा दक्षिण भारतके विभिन्न प्राचीन स्थलोंमें सूर्यके मंदिर थे। प्रारम्भिक मन्दिरोंमें मूलस्थान (मुल्तान), मथुरा, इन्द्रपुर (इंदौर), दशपुर (मंदसौर, मध्यप्रदेश) के सूर्य-प्रासाद उल्लेखनीय हैं। मध्यकालीन मंदिरोंमें मड़खेरा (जि० टीकमगढ़, म० प्र०), औसिया (जोधपुर) तथा कोणार्क (उड़ीसा) के मंदिर विशेष प्रसिद्ध हैं। इनमें कोणार्क-मंदिर सबसे विशाल है। सूर्य-मन्दिरोंमें उनकी पूज्य प्रतिमा गर्भगृहमें प्रतिष्ठापित की जाती थी और उसे विष्णु, शिव आदिके मन्दिरों-जैसा अलङ्कृत किया जाता था, मंदिरोंमें दीप-ज्वलन, पूजा-अर्चाकी सम्यक् व्यवस्था होती थी।

मध्ययुगसे पहले सूर्यकी मूर्तियाँ प्राय स्वतन्त्र रूपमें ही मिली हैं। बादमें स्वतन्त्र प्रतिमाओंके साथ-साथ उन्हें नवग्रहवाले शिलापट्टोंपर भी अङ्कित किया गया। नवग्रहोंमें प्रथम सूर्य हैं, अत उनका अङ्कन खड़े या बैठेरूपमें पहले मिलता है, बादमें अन्य ग्रहोंका। पूर्ण आकारके अतिरिक्त भारतीय कलामें उनके प्रतीक-रूपमें भी मिलता है। सूर्यको विष्णु तथा शिवके साथ प्रदर्शित करनेकी भावना भी विकसित हुई। विष्णु, शिव तथा सूर्यकी एक साथ सम्मिलित प्रतिमाएँ बनायी जाने लगीं। इनकी सज्ञा हरिहर-हिरण्यगर्भ हुई। ऐसी प्रतिमाओंमें तीनों देवोंके लक्षणोंको प्रदर्शित किया गया। कुछ ऐसी 'सर्वतोभद्र' प्रतिमाएँ भी बनायी गयीं, जिनमें विष्णु, शिव, सूर्य तथा देवीको शिलापट्टपर एक-एक ओर अङ्कित किया गया। ऐसे चौकोर पत्थरोंमें प्रत्येक ओर एक देवताके दर्शन होते हैं। जैन धर्ममें ऐसे बहुत बड़ी सख्यामें बनाये गये हैं। उनपर प्राय उनके चार मुख्य तीर्थंकरों—आदिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ तथा महावीर—को एक-एक ओर अङ्कित किया गया है।

मध्ययुगमें सूर्य प्रतिमा निर्माण तथा उनकी पूजापर तान्त्रिक प्रभाव भी पड़ा । यह बात अनेक मूर्तियोंके देखनेपर स्पष्ट हो जाती है ।

अनेक प्राचीन शिलालेखों और ताम्रपत्रोंमें सूर्यके ध्यान तथा उनकी मूर्तियों या मन्दिरोंके निर्माणके महत्त्वपूर्ण उल्लेख मिले हैं । सातवाहन-वंशी शासक सातकर्णि प्रथमकी पत्नी नागनिकाके नानाघाटमें प्राप्त शिलालेखके प्रारम्भमें अन्य प्रमुख देवोंके साथ सूर्य देवताको भी नमस्कार किया गया है । गुप्तवंशी सम्राट् कुमारगुप्त प्रथमके समयका एक शिलालेख मंदसोर (प्राचीन दशपुर) में मिला है । इस लेखसे ज्ञात हुआ है कि लाट (प्राचीन गुजरात) से आकर दशपुर (पश्चिमी मालवा) में बसनेवाले जुलाहोंकी एक श्रेणीद्वारा दशपुरमें सूर्य-मन्दिरका निर्माण कराया गया था । इस क्षेत्रका यह मन्दिर बहुत प्रसिद्ध था ।

इन्दौर (जि० बुलन्दशहर, उत्तर प्रदेश) से एक ताम्रपत्र गुप्त सम्राट् स्कन्दगुप्तके समयका मिला है । उसमें लिखा है कि इस स्थानपर क्षत्रिय अचलवर्मा तथा भृकुंठसिंहद्वारा भगवान् भास्करका मन्दिर बनवाया गया था और वहाँके तेलियोंकी श्रेणीद्वारा मन्दिरमें निरंतर दीप प्रज्वलित रखनेके लिये दान दिया गया । यह कार्य ब्राह्मणदेवविष्णुको सौंपा गया ।

अनेक प्राचीन सिक्कों तथा मुहरोंसे भी प्राचीन सूर्यपूजा और सूर्यके महत्त्वपर प्रकाश पड़ा है । पञ्चालके राजाओंमेंसे दोके नाम क्रमशः सूर्यमित्र और भानुमित्र थे । इन दोनोंने जो सिक्के चलाये उनपर एक ओर ब्राह्मीमें उन्होंने अपना नाम लिखाया और दूसरी ओर सूर्यकी प्रतिमा प्रदर्शित की । कई सिक्कोंपर सूर्यकी आकृतिमें उनके हाथ-पैर भी दिखानेका प्रयास किया गया है । सूर्यका प्रभामण्डल किरणयुक्त दिखाया गया है । इन शासकोंका समय ईसवीपूर्व प्रथमसे ई० द्वितीय शतीके बीचका है । कुषाणवंशीय शासकोंने 'मीरो' (मिहिर) वाले अपने सिक्के चलाये, जिनपर सूर्यकी आकृति भी मिलती है । उज्जयिनीमें ईसवीपूर्व प्रथम शतीमें शासन करनेवाले एक राजा सूर्यमित्रकी मुद्रा मिली है । भारतके बहुसंख्यक आहत तथा जन पदीय सिक्कोंपर सूर्यका अङ्कन प्राप्त हुआ है ।

मध्यप्रदेशकी नर्मदा तथा बेतवाकी घाटियोंमें हालमें कुछ रोचक शिलागृह ढूँढ़े गये हैं, जिनमेंसे अधिकांश चित्रित हैं । चित्रोंमें स्वस्तिक, वेदिकावृक्ष, चन्द्रमेरु जैसे चिह्नोंके साथ सूर्य-चिह्नका भी आलेखन है, जो विशेष उल्लेखनीय है ।

भारतीय पुरातत्त्वमें उपलब्ध प्रमाण इस देशमें सूर्यके व्यापक महत्त्व एवं प्रभावके परिचायक हैं ।

भारतमें सूर्य-मूर्तियाँ

(लेखक—श्रीहरदराय प्राणशंकरजी बधेका)

कई प्राचीन शिल्पविद् और स्थापत्यविद् सूर्यमूर्तियों को तीन भागोंमें विभक्त करते हैं—(१) राजस्थानके प्रकारकी सूर्य-मूर्तियाँ, जो जूनागढ़, टँका और रानपुरमें दिखायी पड़ती हैं । (२) चौमुख प्रकारकी मूर्तियाँ, जो मोढेराके सूर्यमन्दिरमें पायी जाती हैं और (३) मिश्रित प्रकारकी सूर्य-मूर्तियाँ, जो प्रभास, कन्थार और थानमें पायी जाती हैं ।

कई मूर्तियोंमें सूर्यनारायणके दो और कई मूर्तियोंमें चार हाथमें कमल होते हैं । सूर्यनारायण सात अश्वोंके रथमें घूमते दिखायी पड़ते हैं—'सप्ततुरङ्गवाहन ।' कई-कई जगहोंपर अश्वोंके ऊपर सर्पकी लगाम पायी जाती है—'भुजगयमिताः सप्ततुरगाः ।' रथका चालक अरुण पादहीन होता है—'चरणरहित सारथिरपि ।' रथका एक ही पहिया दीखता है—'रथस्यैकं चक्रम् ।' दो पुरुष-अनुचर—दण्ड पकड़ना हुआ दण्ड और लेखन साधनके साथ कुन्दा तथा दो पत्नियाँ—प्रभा और छाया होती हैं । मूर्तियाँ कवचयुक्त और पादत्राणयुक्त होती हैं । कई मूर्तियोंमें सूर्य-भगवान् कमरपर चैसे कमर

आते हैं और सात अश्वोंके रथमें घूमते दिखायी पड़ते हैं। कई मूर्तियाँ सैनिककी पोशाकमें सुसज्ज हैं। अस्त्र शस्त्रयुक्त इन मूर्तियोंके पैरोंमें पाँवकी अँगुलियाँ ढक जायँ वैसे पादत्राण पहनाये गये हैं। नंगे पैरवाली मूर्तियाँ भी क्वचित् दृग्गोचर होती हैं।

कई मूर्तियोंमें सूर्यकी दो पत्नियाँ—प्रभा और छाया (कई पुराणोंके अनुसार ऊषा और प्रत्यूषा)के साथ दो अन्य पत्नियाँ राज्ञी और निक्षुभा भी दिखायी देती हैं। 'विष्णुधर्मोत्तरपुराण, मत्स्यपुराण और स्कन्दपुराणमें राज्ञी और निक्षुभा सूर्यकी पत्नियाँ हैं। श्रीवासुदेवशरण अग्रवालकी दृष्टिसे इस देशकी पुरानी परम्पराके अनुसार ऊषा और प्रत्यूषा सूर्यकी पत्नियाँ हैं। इस मान्यताके साथ राज्ञी और निक्षुभाकी परम्परा बाहरसे आकर मिल गयी। ईरानी मित्र (मिहिर) धर्मके अनुसार मित्रके दो पार्श्वचर थे—एक रस्न और दूसरा नरोफ। ये रस्न और नरोफ ही रूपान्तरित होकर भारतीय सूर्यपूजामें राज्ञी और निक्षुभा कहलाये।

गुजरातराज्यके नीरगाँव तालुकेके अभारगाँवसे चौबीस आरस प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं। उनमें प्रथम प्रतिमाकी कला विशिष्ट है। यह प्रतिमा चतुर्भुज है। दो भुजाएँ योगमुद्रायुक्त हैं और दो भुजाओंमें कमल हैं। अन्य मूर्तियाँ विष्णुकी हैं। इसी कारणसे कई लोगोंकी दृष्टिमें प्रथम मूर्ति विष्णुमूर्ति ही है। लेकिन विष्णुके हाथमें चक्र होता है और उभय हस्तमें कमलयुक्त मूर्ति सूर्यकी ही होती है।

सूर्यके साथ अन्य ग्रहोंकी मूर्तियाँ भी होती हैं। सोमनाथ मन्दिरके सूर्य-मन्दिरका शिल्प-पट्टिकोंपर नव आकृतियाँ हैं। उनमें प्रथम सात सूर्य, चन्द्र, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र और शनिकी हैं। सिरपर कुण्डली लगा करती हुई प्रतिमा, जिसके ऊपरका हिस्सा आदमी जैसा है, राहु और केतुकी हो सकती है। सोमनाथके मन्दिरकी तरह थानके मन्दिरमें भी ऐसी ही आकृतियाँ हैं। राजकोटके अजायबघरमें जो सूर्यमूर्ति है, उसके ऊपर वर्तुलाकार मुकुट पहनाया गया है। साथमें पिंगल, दण्ड, राज्ञी, सवर्णा, छाया और सुवर्चसा हैं। जूनागढ़के अजायबघरमें पत्थरके चौकमें सूर्यकी दो प्रकारकी मूर्तियाँ हैं। एक उत्कटिकासन अवस्थामें सात अश्वोंवाली मूर्ति है। बाहर ऊषा और प्रत्यूषा हैं। अन्य एक गवाक्षमें सूर्यकी खड़ी हुई मूर्ति है। महाराष्ट्रके भाजाकी गुफाओंमें सूर्यनारायण रथ चलाते हुए दिखाये गये हैं। रथके पहिये आसुरी तत्त्वरूप अन्धकारके राक्षसको कुचलते हुए दिखाये गये हैं।

सोलंकी राजा भीमदेव पहलाने छठी शताब्दीमें मोढेरा (गुजरात) में सूर्य-मन्दिर बनवाया था। यह मन्दिर आज नष्टप्राय दशामें है। इस मन्दिरमें ईरानकी शिल्पकलाका प्रभाव दिखायी पड़ता है। उसकी दीवारोंपर जूते और कमरपट्टेवाले सूर्य नारायणकी मूर्ति है। मथुराके संग्रहालयमें भिन्न-भिन्न मुद्राओंवाली, लाल पत्थरोंसे बनी हुई कई सूर्य-मूर्तियाँ हैं। ईसाकी दूसरी शताब्दीमें ये मूर्तियाँ बनायी गयी थीं।

मोढेरा और कोणार्क (उड़ीसा) के सूर्य-मन्दिर भारत प्रसिद्ध हैं। उनमें कोणार्कका मन्दिर गंगवंशके राजा नरसिंहदेवने कलिंग-स्थापत्य शैलीमें बनवाया है। कोणार्क-मन्दिर सात वेगयुक्त अश्वोंके द्वारा खींचे जाते हुए सूर्य-रथके रूपमें बनाया गया है। कश्मीरके मटन तीर्थमें मार्तण्ड-मन्दिरमें मनोहर सूर्य-मूर्तियाँ हैं। इस मन्दिरका उल्लेख कल्हणकी राजतरंगिणीमें आता है। सिकन्दरने इस मन्दिरका नाश किया था। मुल्तानके, जो अभी पाकिस्तानमें है, सूर्य-मन्दिरमें भी मनोहर सूर्य-मूर्तियाँ हैं। प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसांग ई० सन् ६४१ के यात्रा-वर्णनमें इस मन्दिरका उल्लेख किया है। पहले महमूद गजनवी और बादमें औरंगजेबने मुल्तानके मन्दिर को नष्ट किया था। आन्ध्रप्रदेशके अरसावल्ली नामक स्थानमें भी कलात्मक सूर्य-मूर्तियाँ हैं। सूर्यनारायणके साथ प्रभा और छाया भी हैं।

सिताबल और गोवामें अब सूर्य-मूर्तियाँ नहीं हैं, लेकिन पहले थीं। सुत्रापाड़ा, शिरोगी, थान, गाम्भर

और कि दरखेड़में प्राचीन सूर्य-मन्दिर अवश्य हैं, परंतु इन मन्दिरोंमें उपलब्ध मूर्तियाँ अर्वाचीन हैं। कुम्भकोणम्के नागेश्वर-मन्दिरमें भी सूर्य-मूर्तियाँ हैं। दक्षिण भारतके सूर्यनारकोइल और महाबलीपुरमें भी सूर्य मूर्तियाँ पायी जाती हैं।

वेदके समयसे सूर्यपूजाका महत्त्व लोगोंमें था। सूर्यके साक्षात् देव होनेपर भी उनके मन्दिर भारतमें जगह-जगहपर दिखायी देते हैं। इससे सौर-धर्म और सूर्य-पूजकोंकी भारतव्यापिनी अवस्थितिका परिज्ञान किया जा सकता है।

भारतके अत्यन्त प्रसिद्ध तीन प्राचीन सूर्य-मन्दिर

(लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

भारतमें सूर्यपूजा, मन्दिर निर्माण, प्रतिमाराधन आदि वैदिक पुराणोंसे अत्यन्त प्राचीन कालसे ही सिद्ध है। नारदादि ऋषि एवं सूर्यवंशी क्षत्रिय सूर्याराधक थे। द्वापरमें भगवान् कृष्ण एवं साम्ब विशेष सूर्याराधक हुए। इनमें साम्बका विस्तृत चरित्र साम्बविजय, साम्ब-उपपुराण तथा वराह, भविष्य, ब्रह्म एवं स्कन्दादि महापुराणोंमें प्राप्त होता है। उन्होंने कुष्ठरोगसे मुक्तिके लिये मूलस्थानमें सूर्य-मन्दिरका निर्माण कराया एवं सूर्यकी आराधनाद्वारा उनकी कृपा प्राप्तकर रोगमुक्त हुए। सूर्यदेवने उन्हें अपनी प्रतिमा-लाभ एवं स्थापनाकी भी बात बतलायी। शीघ्र ही उन्हें चन्द्रभागा*नदीमें एक बहती हुई विश्वकर्मानिर्मित प्रतिमा भी मिली, जिसे उन्होंने मित्रवनमें स्थापित किया। भगवान् सूर्यने साम्बको फिर प्रातःकाल सुतीर (मुण्डीर), मध्याह्नमें कालप्रिय (काल्पी) तथा सायंकालमें मूलस्थानमें अपने दर्शनकी बात बतलायी—

सांनिध्यं मम पूर्वाह्णे सुतीरे द्रक्ष्यते जनः।
कालप्रिये च मध्याह्नेऽपराह्णे चात्र नित्यशः॥

तदनुसार साम्बने उदयाचलके पास सुतीरपर, यमुनातटपर काल्पीमें तथा मूलस्थान (मुल्तान†)में सूर्यप्रतिमाएँ स्थापित कीं। सुतीरकी जगह स्कन्दपुराणमें मुण्डीर पाठ प्राप्त होता है तथा साम्बपुराणमें इसे रविक्षेत्र या सूर्यकानन कहा गया है। ब्रह्मपुराणमें इसे कोणादित्य या उत्कलका कोणार्क कहा गया है, जो वस्तुतः पुरीसे ३० मील दूरीपर स्थित आजका कोणार्क नगर ही है। हाजरा (Studies in the Upparanas I, Page 106)के अनुसार वर्तमान सूर्यमन्दिरको नरसिंहदेवने प्रथम शती विक्रमीमें निर्माण कराया था।

वराहपुराणके अनुसार साम्बने कुष्ठमुक्तिके लिये श्रीकृष्णसे आज्ञा प्राप्तकर भुक्तिमुक्ति फल देनेवाली मथुरामें आकर देवर्षि नारदकी बतायी विधिके अनुसार प्रातः, मध्याह्न और सायंकालमें उन परसूर्यकी पूजा एवं दिव्य स्तोत्रद्वारा उपासना आरम्भ की। भगवान् सूर्यने भी योगबलकी सहायतासे एक सुन्दर रूप धारणकर साम्बके सामने आकर कहा—'साम्ब! तुम्हारा कल्याण

* चन्द्रभागा नदियाँ भारतमें कई हैं। इनमें पंजाबकी चन्द्रभागा (चनाव) तथा उड़ीसाकी चन्द्रभागा विशेष प्रसिद्ध हैं। यह चन्द्रभागा सूर्यकानन या मित्रवनके पासकी कोणार्कके पासवाली चन्द्रभागा ही है।

† मुल्तानकी स्वर्णमयी सूर्यप्रतिमाकी ह्युएनसांगने बहुत प्रशंसा की है। (S. Beal's Huentsiang IV Page 740) मुहम्मद कासिमके भारत आक्रमणके समय उसे तेरह हजार दो सौ मन सोना प्राप्त हुआ था। राजपूतोंने प्रतिमाको नष्ट होनेसे बचानेके लिये ही अरबोंके साथ युद्ध नहीं किया।

हो। तुम मुझसे कोई वर माँग लो और मेरे कल्याणकारी मन्त्र एवं उपासनापद्धतिका प्रचार करो। मुनिवर नारदने तुम्हें जो 'साम्बपञ्चाशिका' स्तुति बतलायी है, उसमें वैदिक अक्षरों एवं पदोंसे सम्बद्ध पचास श्लोक हैं। वीर! नारदजीद्वारा निर्दिष्ट इन श्लोकोंद्वारा तुमने जो मेरी स्तुति की है, इससे मैं तुमपर पूर्ण सन्तुष्ट हो गया हूँ।' ऐसा कहकर भगवान् सूर्यने साम्बके सम्पूर्ण शरीरका स्पर्श किया। उनके छूते ही साम्बके सारे अङ्ग सहसा रोगमुक्त होकर दीप्त हो उठे और दूसरे सूर्यके समान ही विद्योतित होने लगे। उसी समय याज्ञवल्क्य मुनि माध्यन्दिन यज्ञ करना चाहते थे। भगवान् सूर्य साम्बको लेकर उनके यज्ञमें पधारे और वहाँ उन्होंने साम्बको 'माध्यन्दिन-संहिता'का अध्ययन कराया। तबसे साम्बका भी एक नाम 'माध्यन्दिन' पड़ गया। 'वैकुण्ठक्षेत्र'के पश्चिम भागमें यह स्वाध्याय सम्पन्न हुआ था। अतएव इस स्थानको 'माध्यन्दिनीय' तीर्थ कहते हैं। यहाँ स्नान एवं दर्शन करनेसे मानव समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है। साम्बके प्रश्न करनेपर सूर्यने जो प्रवचन किया, वही प्रसङ्ग 'भविष्यपुराण'के नामसे प्रख्यात पुराण बन गया। यहाँ साम्बने 'कृष्णगङ्गा'के दक्षिण तटपर मध्याह्नके सूर्यकी प्रतिमा प्रतिष्ठापित की। जो मनुष्य प्रातः, मध्याह्न और अस्त होते समय इन सूर्यदेवका यहाँ दर्शन करता है, वह परम पवित्र होकर सूर्यलोकको प्राप्त होता है।

इसके अतिरिक्त सूर्यकी एक दूसरी उत्तम प्रातःकालीन विख्यात प्रतिमा भगवान् 'कालप्रिय' नामसे प्रतिष्ठित हुई। तदनन्तर पश्चिम भागमें 'मूलस्थान' अस्ताचलके पास 'मूलस्थान' नामक प्रतिमाकी प्रतिष्ठा हुई। इस प्रकार साम्बने सूर्यकी तीन प्रतिमा स्थापित कर उनकी प्रातः, मध्याह्न एवं सन्ध्या—इन तीनों कालोंमें उपासनाकी भी व्यवस्था की*। साम्बने 'भविष्यपुराण'में निर्दिष्ट विधिके अनुसार भी अपने नामसे प्रसिद्ध एक मूर्तिकी यहाँ स्थापना करायी। मथुराका वह श्रेष्ठ स्थान 'साम्बपुर' नामसे प्रसिद्ध हुआ।

कालपीके सूर्यका विवरण भवभूतिके सभी नाटकोंमें तो है ही, राष्ट्रकूट राजा इन्द्र तृतीयके यात्राविवरणके साथ गोविन्दराज तृतीयके ताम्रपत्रमें भी इस प्रकार प्राप्त होता है—

यन्माद्यद्द्विपदन्तघातविषमं कालप्रियप्राङ्गणं
तीर्णा यत्तुरगैरगाधयमुना सिन्धुप्रतिस्पर्द्धिनी।
येनेदं हि महोदयारिनगरं निर्मूलमुन्मूलितं
नाम्नाद्यापि जनैः कुशस्थलमिति ख्यातिं परां नीयते॥

मोढेराका सूर्य-मन्दिर भी प्राचीन है, पर इतिहासके विद्वान् उसे १० वीं शती विक्रमीमें निर्मित मानते हैं।†

---

* 'वराहपुराण'का यह साम्बोपाख्यान या 'सूर्योपासनाध्याय' बड़े महत्त्वका है। इसमें सूर्यभगवान्‌के अनन्य दिव्य स्तोत्र 'साम्बपञ्चाशिका'—स्तुति तथा कालपी, काश्मीर एवं मुल्तानके प्राचीन भव्य सूर्य-मन्दिरोंका भी संकेत है जिनकी प्रतिनिधिभूत प्रतिमाएँ मथुरामें प्रतिष्ठित थीं। इस विषयमें अलबरूनीके 'Indica p. ?98'का 'Multan was originally called Kasyapapura, then Hamsapur then Bagpur then Sambpur and then Mulasthan' यह कथन बड़े महत्त्वका है, जिसमें मुल्तान नगरके पूर्वनाम 'काश्यपपुर' या कश्यपपुर, फिर हंसपुर, बागपुर, साम्बपुर तथा मूलस्थान आदि निर्दिष्ट हैं। इसीके खण्ड १ पृ० ११६७ पर अलबरूनीने इसके मन्दिर तथा प्रतिमाध्वंसका कथा—Jalam I Ben Shaiban, the userper broke the idol into pieces and killed its priests.' आदि शब्दोंमें विस्तृत वर्णन किया है।

† लेखक प्रस्तुत निबन्धों स्फुट तथ्योंके लिये सर्वश्री मिराशी, डायरा एवं दे आदिके ग्रन्थोंका आभारी है।